4195

# भगवती जोड़

## (खण्ड-२)

श्रीमज्जयाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगमों के मुख्य दो विभाग हैं—अंग और अंग-बाह्य। अंग बारह थे। आज केवल ग्यारह अंग ही उपलब्ध होते हैं। उनमें पांचवां अंग है—भगवती। इसका दूसरा नाम व्याख्या-प्रज्ञप्ति है। इसमें अनेक प्रश्नों के व्याकरण हैं। जीव-विज्ञान परमाणु-विज्ञान, सृष्टि-विधान, रहस्यवाद, अध्यात्म विद्या वनस्पति-विज्ञान आदि विद्याओं का यह आकर-ग्रन्थ है। उपलब्ध आगमों मे यह सबसे बड़ा है। इसका ग्रन्थमान १६००० अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण माना जाता है। नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरी ने इस पर टीका लिखी। उसका ग्रंथ-मान अठारह हजार श्लोक प्रमाण है

भगवती सूत्र की सबसे बड़ी व्याख्या है-यह 'भगवती जोड़'। इसकी भाषा है राजस्थानी। यह पद्यात्मक व्याख्या है, इसलिए इसे 'जोड़' की संज्ञा दी गई है।

इस ग्रन्थ मे सर्व प्रथम जयाचार्य द्वारा प्रस्तुत जोड़ के पद्य और ठीक उनके सामने उन पद्यों के आधार-स्थल दिये गये है। जयाचार्य ने मूल के अनुवाद के साथ-साथ अपनी ओर से स्वतन्त्र समीक्षा भी की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

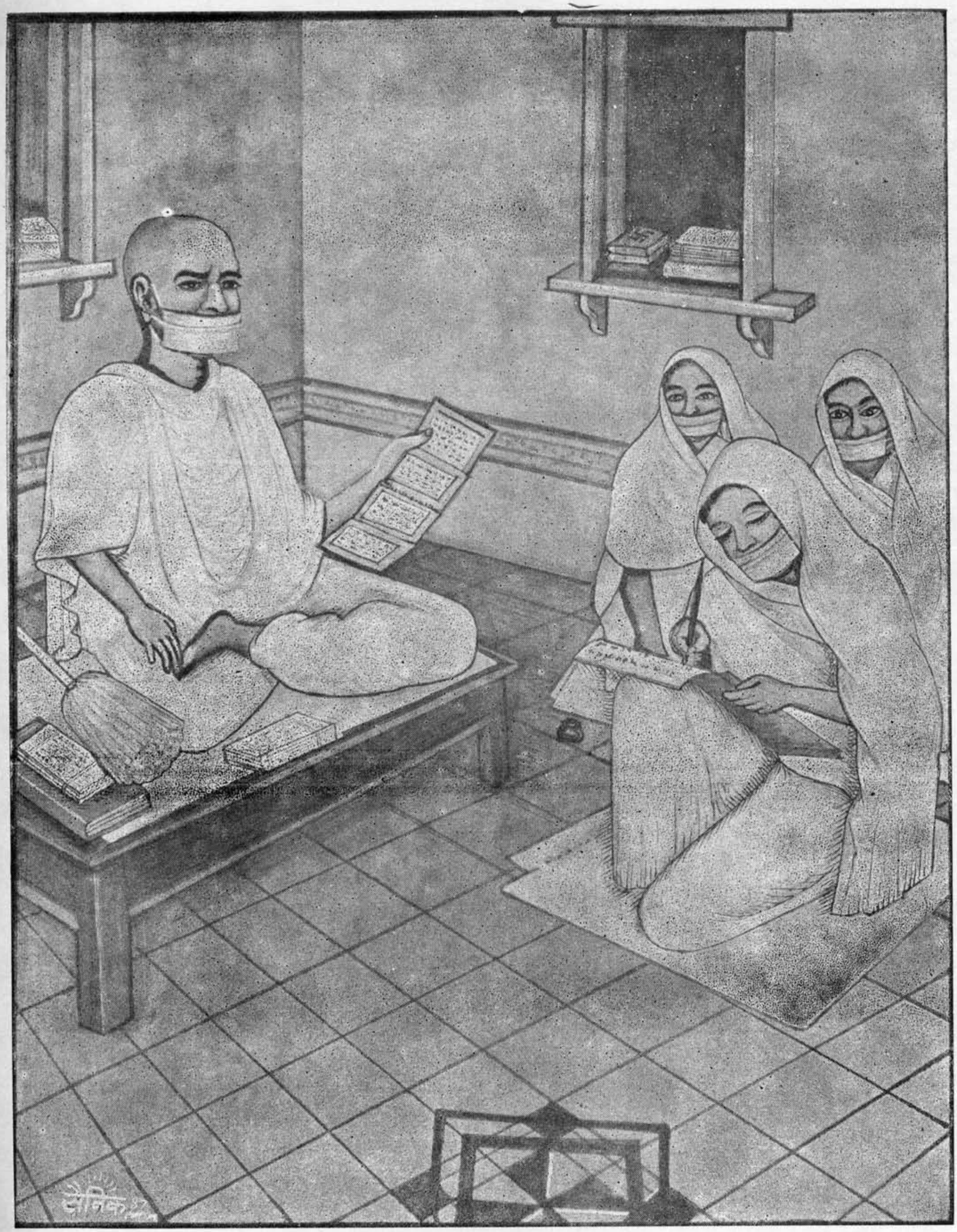

तेरापंथ के चौथे यशस्वी गणी श्रीमज्जयाचार्य 'भगवती-जोड़' के स्व-रचित आशु पद्य साध्वी श्री गुलाबांजी को लिखाते हुए। उनके हाथ में भगवती सूत्र तथा उसकी टीका की प्रति है। जोड़ का रचना-काल—
वि० सं० १९१९ से १९२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# भगवती-जोड़

श्रीमज्जयाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय वाङ्मय : ग्रन्थ १४

# भगवती-जोड़

## खण्ड २

प्रवाचक
आचार्य तुलसी

प्रधान सम्पादक
युवाचार्य महाप्रज्ञ

प्रकाशक
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादन

**साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रबन्ध-सम्पादक :
**श्रीचन्द रामपुरिया**
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जैन विश्व भारती)

आर्थिक सौजन्य :
*समाज भूषण भगवत प्रसाद*
*रणछोड़दास चेरिटेबल ट्रस्ट,*
*अहमदाबाद*

प्रथम संस्करण :
**१९८९**

मूल्य : **१५० रुपये**

मुद्रक :
मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
**जैन विश्व भारती प्रेस**, लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# प्रकाशकीय

'भगवती-जोड़' का प्रथम खंड जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के अवसर पर 'जय वाङ्मय' के चतुर्दश ग्रन्थ के रूप में सन् १६८१ में प्रकाशित हुआ था। अब उसी ग्रन्थ का द्वितीय खंड पाठकों के हाथों में सौंपते हुए अति हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्रथम खण्ड में उक्त ग्रंथ के चार शतक समाहित थे। प्रस्तुत खण्ड में पांचवें से लेकर आठवें शतक की सामग्री समाहित है।

साहित्य की बहुविध दिशाओं में आगम ग्रंथों पर श्रीमज्जयाचार्य ने जो कार्य किया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्राकृत आगमों को राजस्थानी जनता के लिए सुबोध करने की दृष्टि से उन्होंने उनका राजस्थानी पद्यानुवाद किया जो सुमधुर रागिनियों में ग्रथित है।

प्रथम आचारांग की जोड़, उत्तराध्ययन की जोड़, अनुयोगद्वार की जोड़, पन्नवणा की जोड़, संजया की जोड़, नियंठा की जोड़—ये कृतियां उक्त दिशा में जयाचार्य के विस्तृत कार्य की परिचायक हैं।

"भगवई" अंग ग्रंथों में सबसे विशाल है। विषयों की दृष्टि से यह एक महान् उदधि है। जयाचार्य ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आगम-ग्रंथ का भी राजस्थानी भाषा में गीतिकाबद्ध पद्यानुवाद किया। यह राजस्थानी भाषा का सबसे बड़ा ग्रंथ माना गया है। इसमें मूल के साथ टीका ग्रंथों का भी अनुवाद है और वार्तिक के रूप में अपने मंतव्यों को बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें विभिन्न लय ग्रथित ५०१ ढालें तथा कुछ अन्तर ढालें हैं। ४१ ढालें केवल दोहों में हैं। ग्रन्थ में ३६२ रागिनियां प्रयुक्त हैं।

इसमें ४६६३ दोहे, २२२५४ गाथाएं, ६५५२ सोरठे, ४३१ विभिन्न छंद, १८८४ प्राकृत, संस्कृत पद्य तथा ७४४६ पद्य-परिमाण ११६० गीतिकाएं, ६३२६ पद्य-परिमाण ४०४ यंत्रचित्र आदि हैं। इसका अनुष्टुप् पद्य-परिमाण ग्रंथाग्र ६०६०६ है।

प्रस्तुत खंड में मूल राजस्थानी कृति के साथ सम्बन्धित आगम पाठ और टीका की व्याख्या गाथाओं के समकक्ष में दे दी गई हैं। इससे पाठकों को समझने की सहूलियत के साथ-साथ मूल कृति के विशेष मंतव्य की जानकारी भी हो सकेगी।

इस ग्रंथ का कार्य युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के तत्त्वावधान में हुआ है और साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी ने उनका पूरा-पूरा हाथ बंटाया है। उनका श्रम पग-पग पर अनुभूत होता-सा दृग्गोचर होता है।

तेरापंथ संघ के युगप्रधान आचार्य तुलसी के अमृत महोत्सव के सातवें चरण के अवसर पर ऐसे ग्रंथ-रत्न के द्वितीय खंड का पाठकों के हाथों में प्रदान करते हुए जैन विश्व भारती अपने आपको अत्यन्त गौरवान्वित अनुभव करती है।

इस अवसर पर हम श्री भगवत प्रसाद रणछोड़दास परिवार को हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने जैन विश्व भारती में साहित्य प्रकाशन स्थायी कोष के निर्माण हेतु स्वर्गीय समाजभूषण सेठ भगवतप्रसाद रणछोड़दास (१६२१-१६८०) की पुण्य स्मृति में पचास हजार रुपये की राशि भगवतप्रसाद रणछोड़दास चेरिटेबल ट्रस्ट, १४ पटेल सोसाइटी, शाहीबाग, अहमदाबाद, ६४, से प्रदान किया। उक्त ट्रस्ट को हम इस उदार अनुदान हेतु अनेक धन्यवाद ज्ञापन करते हैं।

इस ग्रंथ का मुद्रण कार्य जैन विश्व भारती के निजी मुद्रणालय में संपन्न हुआ है, जिसकी स्थापना जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से हुई थी।

२-१२-८६
सुजानगढ़

**श्रीचन्द रामपुरिया**
कुलपति
जैन विश्व भारती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# सम्पादकीय

तेरापंथ धर्मसंघ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य विलक्षण पुरुष थे। उन्होंने अपनी प्रज्ञा के द्वार खोले और ऊर्जा का भरपूर उपयोग किया। एक ओर संघ के अन्तरंग व्यवस्था पक्ष में क्रान्तिकारी परिवर्तन, दूसरी ओर साहित्य के आकाश में उन्मुक्त विहार। एक ओर प्रशासन, दूसरी ओर साहित्य सृजन। उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसे तत्त्व थे कि एक साथ कई मार्गों की यात्रा करने पर भी वे श्रान्त नहीं हुए। साहित्यिक यात्रा में तो उन्हें अपरिमित तोष मिलता था। इसलिए छोटे-बड़े, दार्शनिक-व्यावहारिक, सैद्धान्तिक-संघीय किसी भी प्रसंग पर उनकी लेखनी बराबर चलती रहती थी। किशोर वय में उन्होंने लिखना शुरू किया। यौवन की दहलीज पर पांव रखने से पहले ही उनके लेखन में निखार आ गया। परिपक्वता बढ़ती गई और वे अपने युग में असाधारण शब्द-शिल्पियों की श्रेणी में आ गए।

जयाचार्य की प्रत्येक रचना महत्त्वपूर्ण है। पर 'भगवती की जोड़' अद्भुत है। इसे गंभीरता से पढ़ा जाए तो पाठक आत्म-विभोर हो जाता है। आचार्यश्री तुलसी के मन में तो इसका स्थान बहुत ही ऊंचा है। आपने समय-समय पर इसके सम्बन्ध में जो भावना व्यक्त की, उसका सारांश इस प्रकार है—मैं जब-जब 'भगवती की जोड़' को देखता हूं, मेरा मन आह्लाद से भर उठता है। इसके अध्ययन, मनन और समीक्षण काल में कालबोध समाप्त हो जाता है। इसकी विशद व्याख्याएं और गहरी समीक्षाएं मन को पूरी तरह से बांध लेती हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ को बार-बार प्रणाम करने की इच्छा होती है। इसके रचनाकार की अनूठी इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्पशक्ति का चित्र तो इसके बृहत्तम आकार को देखते ही उभर आता है। कैसी थी उस महान् शब्द-शिल्पी की धृति, बुद्धि और वैचारिक स्थिरता। रचनाधर्मिता के प्रति संपूर्ण समर्पण बिना ऐसी कृतियों के सृजन की संभावना भी नहीं की जा सकती।"

**इतिहास का सृजन**

संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। कुछ लोग काम की दुरूहता की कल्पना मात्र से आहत हो जाते हैं। वे किसी बड़े या महत्त्वपूर्ण काम का प्रारंभ भी नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति तीसरी श्रेणी में आते हैं। कुछ व्यक्ति इतने उत्साही होते हैं कि कोई भी नई योजना सामने आते ही उसकी क्रियान्विति में जुट जाते हैं। किन्तु विघ्न, बाधाओं की बौछार से वे विचलित हो जाते हैं और शुरू किए हुए काम को बीच में ही छोड़ देते हैं। ऐसे व्यक्ति मध्यम श्रेणी में आते हैं। उत्तम कोटि के व्यक्ति वे होते हैं, जो कठिन से कठिन काम को भी पूरे मन से सम्पादित करते हैं। प्रतिकूलताओं और बाधाओं से प्रताड़ित होकर भी जो अकम्प भाव से चलते रहते हैं, काम को पूरा करके ही विराम लेते हैं।

जयाचार्य इस उत्तम श्रेणी के व्यक्ति थे। 'क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे'—इस उक्ति के अनुसार वे न्यूनतम साधन सामग्री से भी इतना काम कर गए कि इतिहास पुरुष बन गए। भगवती सूत्र का राजस्थानी भाषा में पद्यात्मक भाष्य करके उन्होंने एक ऐसे इतिहास का सृजन किया है, जिसे दोहराना मुश्किल है। उनकी यह कृति साहित्य के क्षेत्र में कीर्तिमान ही नहीं है, एक ऐसी आलोक रश्मि है, जो संस्कृत और प्राकृत भाषा नहीं जानने वाले लाखों-लाखों लोगों का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

'भगवती की जोड़' का प्रथम खण्ड सम्पादित होकर मुद्रित हो चुका है। उसमें प्रथम चार शतक की जोड़ है। प्रस्तुत ग्रंथ उस शृंखला में दूसरा खण्ड है। इसमें भी चार शतक—पांचवें से लेकर आठवें तक, समाविष्ट हैं। प्रथम खण्ड की भांति इस खण्ड में भी जोड़ के सामने 'भगवती' के मूल पाठ और वृत्ति को उद्धृत किया गया है। कुछ स्थलों पर पादटिप्पण भी दिए गए हैं। यत्र-तत्र प्राप्त अन्य ग्रन्थों की सूचना के अनुसार उनके प्रमाण देने का प्रयत्न भी किया गया है।

भगवती की सम्पूर्ण जोड़ को एक ही शृंखला में अनेक खण्डों में सम्पादित करके जनता तक पहुंचाने की योजना है। दूसरे खण्ड की पृष्ठ संख्या प्रथम खण्ड से कुछ अधिक है। एक ही सीरीज के सब खण्ड आकार-प्रकार में भी एकरूप होते तो इनका सौन्दर्य बढ़ता। किन्तु सौन्दर्य के लिए सत्य को विखण्डित करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। मूल आगम में शतक छोटे-बड़े हैं। पृष्ठ संख्या में बांधकर उन्हें पूरी-अधूरी प्रस्तुति देने से रचनाकार और पाठक दोनों के साथ ही न्याय नहीं होता। इस दृष्टि से प्रत्येक खण्ड की पृष्ठ संख्या समान नहीं रह सकेगी।

प्रस्तुत खण्ड के सभी शतक दस-दस उद्देशक वाले हैं। प्रत्येक शतक के प्रारंभ में संग्रहणी गाथा के आधार पर उसके प्रतिपाद्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का संकेत दे दिया गया है। संग्रहणी गाथा की जोड़ भी कितनी मूलस्पर्शी है—

चम्पा रवी उदस्थ, पवन जाल ग्रंथिक बलि।
शब्द विषय छद्मस्थ, आयू पुद्गल कंपवो ।।
निर्ग्रंथ पुत्र अनगार, किणनै कहियै राजगृह[१]।
चंपा चंद्र विचार, दस उदेश पंचम शते ।।

चंप-रवि अनिल गंठिय, सद्दे छउमाउ एयण नियंठे।
रायगिहं चंपा-चंदिमा य, दस पंचमम्मि सए ।।

XXX——————————XXX

पुगद्ल नुं पहलुं कह्यु, आशीविष नों जाण।
वृक्ष तणो तीजो अख्यो, चउथो क्रिया बखाण ।।
आजीवका नो पांचमो, छट्ठो प्रासुक दान।
अदत्त विचारण सप्तमो, प्रत्यनीक पहचान ।।
नवमों बंध तणों कह्यो, आराधना नो अर्थ।
उद्देशक दस आखिया, अष्टम शते तदर्थ[२] ।।

पोग्गल आसीविस रुक्ख किरिय, आजीव फासुक मदत्ते।
पडिणीय बंध आराहणा य, दस अट्ठमंमि सते ।।

## गुजराती का प्रभाव

जयाचार्य की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। जयाचार्य न तो गुजरातीभाषी थे और न ही कभी गुजरात उनका विहार क्षेत्र रहा। फिर भी उनकी रचनाओं पर गुजराती का प्रभाव सहेतुक है। आचार्य भिक्षु ने आगमों का अध्ययन टबों के आधार पर किया था। जयाचार्य के अध्ययन का क्रम भी यही था। आगमों के टबों की भाषा गुजराती है। आचार्य भिक्षु ने उस भाषा को नहीं पकड़ा। फलतः उनका साहित्य शुद्ध मारवाड़ी बोली में है। जयाचार्य अपनी ग्रहणशीलता को यहां भी छोड़ नहीं सके। इस कारण उनकी भाषा गुजराती मिश्रित हो गई।

भगवती की जोड़ में किसी भी ढाल की रचना पर गुजराती का प्रभाव ज्ञात किया जा सकता है, पर वहां प्रवाह में बहुत साफ-साफ परिलक्षित नहीं होता। जोड़ के मध्य जहां-जहां वार्तिकाएं लिखी हुई हैं, उन्हें पढ़ने से प्रतीत होता है कि जयाचार्य की रचनाओं में अनायास ही गुजराती भाषा के प्रयोगों की बहुलता है।

## बहुश्रुतता के साक्ष्य

जयाचार्य बहुश्रुत आचार्य थे। उन्होंने शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया। विदेशी संस्कृति में उस व्यक्ति को विशिष्ट माना जाता है, जो अपना जीवन यायावरी में नियोजित कर देता है। भारतीय संस्कृति में 'वेल ट्रेवेल्ड' के स्थान पर 'वेल लर्नेड' व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण माना गया है। 'वेल लर्नेड' का ही अर्थ है बहुश्रुत। बहुश्रुत शब्द का एक अर्थ यह भी हो सकता है—जिसने बहुत सुना है, वह बहुश्रुत। व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह अर्थ असंगत नहीं है, किन्तु 'बहुश्रुत' शब्द की प्रवृत्ति उक्त अर्थ का बोध नहीं देती है। इसलिए इसका प्रचलित अर्थ ही मान्य होना चाहिए। उसके अनुसार बहुश्रुत वह होता है जो अपने और दूसरे सम्प्रदायों के शास्त्रों का पारगामी विद्वान् होता है।

जयाचार्य की बहुश्रुतता का साक्ष्य उनकी अपनी रचनाएं हैं। जहां कहीं किसी बात को प्रमाणित करने के लिए उन्हें साक्षी रूप में आगम पाठ उद्धृत करने की अपेक्षा हुई, एक ही प्रसंग में दसों आगमों को प्रस्तुत कर दिया। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों सब आगम उनकी आंखों के सामने अंकित थे।

पांचवे शतक में अतिमुक्तक मुनि की दीक्षा का प्रसंग है। वहां वृत्तिकार ने छह वर्ष की अवस्था में उनकी दीक्षा का उल्लेख किया है। यह तथ्य आगम सम्मत नहीं है। आगमों में यत्र-तत्र सातिरेक आठ वर्ष की अवस्था को दीक्षा के लिए उचित ठहराया गया है। इस सन्दर्भ में जयाचार्य ने व्यवहार[३], भगवती[४], उत्तराध्ययन[५] और औपपातिक[६] सूत्रों के प्रमाण देकर वृत्तिकार के मत का निरसन किया है—

---

१. पृ० १, ढा० ७४।२,३।

२. पृ० ३०२, ढा० १३०।४-६।

३-६. पृ० २८, ढा० ८१, गा० ४-७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठ वर्ष ऊणा भणी, दीक्षा कल्पै नांहि ।
आठ वर्ष जाझे चरण, ववहार दसमा मांहि ।।

असोच्चा केवली तणों, आयू जघन्य कहेस ।
आठ वर्ष जाझो भगवती, नवम इकतीसमुद्देश ।।

शुक्ल लेश उत्कृष्ट स्थिति, ऊणी नव वर्षेण ।
पूर्व कोड उत्तरज्झयण, चोतीसम अज्झेण ।।

आऊ आठ वरस अधिक, शिवपद पामै ताम ।
सूत्र उववाई में कह्यो, इत्यादिक बहु ठाम ।।

वृत्तिकार के अभिमत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिख दिया—

तिण कारण टीका मझे, अइमुत्त नां षट् वास ।
आख्या तेह विरुद्ध छै, समय वचन थी तास ।।

इस गाथा से आगे की आठ गाथाओं में उक्त तथ्य की समीक्षा करते हुए जयाचार्य ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि यदि छह वर्ष में दीक्षा हो सकती तो इसी अवस्था में केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्ति की संभावना को भी नकारा नहीं जा सकता । शास्त्रों में ऐसा कोई उल्लेख मिलता नहीं है । इसलिए दीक्षा का कल्प आठ वर्ष से कुछ अधिक होने पर ही मान्य किया गया है ।

जयाचार्य को जहां कहीं वृत्तिकार का अभिमत ठीक नहीं लगा, उन्होंने विस्तार के साथ उसकी समीक्षा कर दी । समीक्षा के लिए उन्होंने दो प्रकार की शैली काम में ली—१. पद्यात्मक और गद्यात्मक । पद्य शैली में की गई समीक्षा की भांति वार्तिका नाम से गद्यशैली की कई समीक्षाएं काफी विस्तृत और गंभीर हैं ।

आठवें शतक में ज्ञान और अज्ञान के प्रसंग में अज्ञान के तीन प्रकारों का उल्लेख हुआ है— मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग-ज्ञान । विभंगज्ञान का अर्थ करते हुए वृत्तिकार ने लिखा—'विरुद्धा भंगा—वस्तुविकल्पा यस्मिंस्तद्‌विभङ्गं····अथवा विरूपो भंगः—अवधिभेदो विभङ्गः[1]····।' जयाचार्य ने विभंगज्ञान का अर्थ विरुद्ध विकल्पों वाला ज्ञान स्वीकृत नहीं किया । अपने अभिमत को विस्तार से प्रस्तुति देने के लिए उन्होंने एक बहुत बड़ी वार्तिका[2] लिखी है । उसका निष्कर्ष यह है कि अवधिज्ञान और विभंगज्ञान में वस्तुबोध की दृष्टि से अन्तर नहीं है । इनमें अन्तर है पात्रता का । सम्यक् दृष्टि का जो अतीन्द्रिय ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है, वही मिथ्यात्व के योग से विभंगज्ञान हो जाता है ।

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० ३१६ पर गद्यात्मक वार्तिका में वृत्तिकार के अभिमत की विस्तृत समीक्षा की गई है । उसे पढ़ने से ऐसा लगता है कि जयाचार्य एक तटस्थ और निर्भीक समीक्षक थे । उनकी सभी समीक्षाएं ज्ञान चेतना के आवृत द्वारों को खोलने वाली हैं ।

इसी क्रम में शतक ८, ढाल १५२ में परीषह-वर्णन का प्रसंग लिया जा सकता है । उक्त ढाल की गाथा ७३ से ८८ तक जयाचार्य ने वृत्तिकार का मत उद्धृत किया है उसके बाद उन्होंने उक्त मन्तव्य की यथार्थता को स्वीकारने या नकारने का दायित्व पाठकों को देते हुए लिख दिया—

ए सगलो विस्तार, टीका मांहे आखियो ।
बुद्धिवंत न्याय विचार, मिलतो हुवै ते मानियै[3] ।।

इस पद्य के बाद एक लम्बी वार्तिका लिखकर आपने पाठकों को चिन्तन करने का पर्याप्त अवकाश दे दिया । ऐसे अनेक स्थल हैं, जो जयाचार्य की बहुश्रुतता और अनाग्रही वृत्ति के उदाहरण बन सकते हैं ।

भगवती की जोड़ का सृजन करते समय जयाचार्य को मूल ग्रंथ से सम्बन्धित जितनी सामग्री मिली, उसका उन्होंने मुक्त मन

१. वृ० प० ३४४ ।
२. पृ० ३३८-३४०, ढा० १३४ ।
३ पृ० ४६४, ढा० १५२, गा० ८६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से उपयोग किया है। उस सामग्री में मूल सूत्र की वृत्ति तो है ही, उसके साथ मुनि धर्मसी के यन्त्र या टबों और बृहत् टबे का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है—

कह्यो धर्मसी ताहि, भवनपति विगलिंदिया।
तिरि पंचेन्द्री मांहि, मनुष्य व्यंतर ज्योतिषि[1]॥

पूर्व भवे अबन्ध, बन्धै छै गुण ग्यारमें।
बन्धस्यै त्रिहुं गुण संध, पंचम भंगे धर्मसी[2]॥

बृहत् टबे इम वाय, शंका त्रस उत्पत्ति तणी।
वृत्ति पिण भांजी नांय, जिन भाखै तेहीज सत्य[3]॥

धर्मसी का यंत्र, टबा और बृहत् टबा आदि अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। जयाचार्य को वे ग्रंथ कहां से मिले और उनके द्वारा काम में लिए जाने के बाद वे अप्राप्त कैसे हो गए? इस सम्बन्ध में अन्वेषण की अपेक्षा है।

### मननीय स्थल : समीक्षाएं

"भगवती की जोड़" भगवती सूत्र का पद्यात्मक अनुवाद मात्र नहीं है। इसकी रचना शैली के आधार पर इसे "भगवती" का भाष्य कहा जा सकता है। जयाचार्य ने सूत्रकार, वृत्तिकार तथा सम्बन्धित प्रसंगों पर अन्य आचार्यों के अभिमत का अनुवाद तो पूरी दक्षता के साथ किया ही है, उसके साथ प्रत्येक विवादास्पद विषय पर अपनी ओर से स्वतंत्र समीक्षाएं लिखी हैं। समीक्षाएं पद्य और गद्य दोनों शैलियों में लिखी गई हैं। प्रत्येक समीक्षा मनन पूर्वक पठनीय है। उनके सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं—

"श्रावक की आत्मा सामायिक में भी अधिकरण है" आचार्य भिक्षु द्वारा मान्य इस सिद्धान्त की पुष्टि में १११ वीं ढाल में लम्बी समीक्षा है।[4]

मिथ्यात्वी मोक्ष का देश आराधक है। उसकी करणी भी निरवद्य हो सकती है। मिथ्यात्वी के प्रत्याख्यान को दुष्प्रत्याख्यान माना गया है, यह संवर धर्म की अपेक्षा से है, निर्जरा धर्म की अपेक्षा से नहीं। इस सम्बन्ध में ११५ वीं ढाल में बहुत अच्छी समीक्षा है[5]।

प्राण, भूत, जीव और सत्व को दुःख न देने से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है, यह कथन आगमानुमोदित है। इसके विपरीत कुछ लोग सुख देने से साता वेदनीय कर्म का बन्ध मानते हैं। इस सन्दर्भ में ११८ वीं ढाल में समीक्षा लिखी गई है।[6]

### न्याय का मिलान

भगवती सूत्र में कुछ स्थल ऐसे हैं, जहां तथ्यों का संकेत मात्र है अथवा संक्षेप में वर्णन किया गया है। वहां पाठक के सामने कठिनाई उपस्थित हो सकती है। पर जयाचार्य ने अनेक स्थानों पर यौक्तिक ढंग से उन तथ्यों को विश्लेषित कर दिया है। पांचवें शतक की ६७ वीं ढाल की कुछ गाथाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

मूल पाठ के आधार पर वहां जोड़ की एक गाथा है—

सेलेसी मुनि मोटका, चउदसमें गुणठाणे।
अल्पवेदनावंत ते, महानिर्जरा माणे॥

इस गाथा में अस्पष्ट तथ्य को स्पष्ट करते हुए जयाचार्य ने लिखा है—

चउदशमे गुणठाण, अल्पवेदना तसु कही।
बहुलपणे करि जाण, एहवूं न्याय जणाय छै॥

---

१. पृ० १७२, ढा० १०५, गा० ४५।
२. पृ० ४४७, ढा० १५०, गा० १०१।
३. पृ० १६२, ढा० १०३, गा० ७८।
४. पृ० २०८, ढा० १११, गा० ३६-६८।
५. पृ० २२८, ढा० ११५, गा० १६-२६।
६. पृ० २५३, ढा० ११८, गा० ७४-८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि गजसुकुमालादि, दीसै तसुं बहुवेदना ।
ते कारण ए साधि, भजना इहां जणाय छै ।।
अथवा दूजो न्याय, कर्मनिर्जरा अति घणी ।
ते देखंतां ताय, अल्पवेदना संभवै[1] ।।

इसी प्रकार छठे शतक में भी शालि, व्रीही आदि धान्यों की योनि-विध्वंस का सूत्रानुसारी काल निर्धारण करके चार सोरठों में उसका न्याय मिलाया गया है[2]।

बडा टबा में वाय, सजीवपणुं टली करी ।
अजीवपणुं थाय, मिलतो अर्थ अछ तिको ।।
सूको धान अजीव, केइक करै परूपणां ।
पिण इहां आख्यो जीव, अर्थ अनूपम देखलो ।।
दशवैकालिक देख, द्वितीय उद्देश पंचमभ्रयण ।
बावीसमीं उवेख, गाथा में इहविध कह्यु ।।
चावल नो पहिछाण, आटो मिश्र उदक बली ।
शस्त्र अपरिणत जाण, ते काचा लेणां नहीं ।।

इसी प्रकार अनेक स्थलों में भ्रांति उत्पन्न करने वाले प्रसंगों में जयाचार्य ने अपनी सूक्ष्मग्राही मेधा का उपयोग कर पाठकों का मार्ग प्रशस्त किया है ।

## अनुवाद शैली

जयाचार्य ने भगवती मूल पाठ और उसकी वृत्ति का अनुवाद इतनी सहजता और सरलता से किया है कि संस्कृत और प्राकृत को नहीं समझने वाला पाठक भी अनुवाद के आधार पर मूलस्पर्शी अर्थबोध कर सकता है। कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं—

| | |
|---|---|
| हे भगवान ! श्रावक तिको, पहिलांईज पिछाण ।<br>त्रस वधवो पचख्यो तिणे, पृथ्वी नां पचखाण ।। | समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव तसपाणसमारंभे<br>पच्चक्खाए भवइ, पुढवी समारंभे अपच्चक्खाए भवइ । |
| ते पृथ्वी खणते थके, कोइक त्रस हणाय[3] ।<br>तो प्रभु श्रावक व्रत तणो, अतिचार रूप भंग थाय ।। | से य पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा,<br>से णं भंते तं वयं अतिचरति ? |

XXX————————————XXX

| | |
|---|---|
| नमस्कार थावो मांहरो, भगवंत श्री महावीर ।<br>धर्म नी आदिकरण धुरा, शासणनाथ सधीर ।। | नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स । |
| यावत मुक्ति जावा तणां, वांछक तसु अभिलाख ।<br>धर्म आचारज मांहरा, धर्मोपदेशक साख[4] ।। | जाव सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स मम<br>धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, |

जयाचार्य ने मूल सूत्र का अनुवाद किया हो या भाष्य, उसे पढ़ने से मूल ग्रन्थ को पढ़ने की इच्छा जागृत होती है। प्राकृत, संस्कृत आदि इस युग में अप्रचलित या कम प्रचलित भाषाओं को राजस्थानी में इस प्रकार रूपान्तरित कर देना अपनी मातृभाषा के प्रति उनके गहरे अनुराग, अनुभवों की प्रौढ़ता तथा सतत क्रियाशीलता का प्रतीक है ।

## सम्पादन यात्रा के सहयात्री

"भगवती की जोड़" का संपादन श्रमसाध्य कार्य है। यह उन सबका अनुभव है, जो इस काम के साथ जुड़े हुए हैं। जोड़ के

१. पृ० ११७, ढा० ६७, गा० ३२-३४ ।
२. पृ० १७४, ढा० १०६, गा० १३-१६ ।
३. पृ० २०६, ढा० १११, गा० ६६,७० ।
४. पृ० २८८, ढा० १२६, गा० ७१,७२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलपाठ को शुद्ध करना, भगवती सूत्र के पाठ और उसकी वृत्ति के साथ उसे तुलनात्मक प्रस्तुति देना, जोड़ में प्रयुक्त अन्य आगमों तथा ग्रन्थों के प्रमाण खोजना आदि अनेक पड़ावों को पार करने के बाद ही इस यात्रा को विराम मिलता है।

प्रस्तुत खण्ड का सम्पादन इसके प्रथम खण्ड की भांति श्रद्धास्पद आचार्यवर की अमृतमयी सन्निधि में बैठकर किया गया है। आपकी प्रत्यक्ष उपस्थिति के बिना इसका सम्पादन कठिन ही नहीं, असंभव था। यात्रा, जनसम्पर्क आदि व्यस्तताओं के बावजूद आपने इस काम के लिए अपने अमूल्य समय दिया। इसी से इस ग्रन्थ की गरिमा बहुगुणित हो जाती है। सम्पादन कार्य में साध्वी जिनप्रभाजी और कल्पलताजी का योग बराबर मिलता रहा। मुनि हीरालालजी का सहयोग तो अविस्मरणीय है। जहां कहीं आगम ग्रन्थों के प्रमाण खोजने होते मुनिश्री बहुत कम समय में पूरे मनोयोग से हमारा काम सरल बना देते।

"भगवती की जोड़" की हस्तलिखित प्रतियां हमारे धर्मसंघ के भण्डार में है। उसे धारण करने का काम "जैन विश्व भारती" द्वारा कराया जा चुका है। सम्पादन के इस क्रम में "जोड़" के समानान्तर मूलपाठ और वृत्ति को धारने का काम मुमुक्षु बहिनों ने किया। प्रूफ निरीक्षण में अधिक समय और श्रम साध्वी जिनप्रभाजी का लगा। उनके साथ अन्य कई साध्वियों ने निष्ठा से काम किया। जैन विश्व भारती के मुद्रण विभाग ने भी इस दुरूह काम को पूरा करने में ईमानदारी पूर्वक श्रम किया। मेटर कम्पोज हो जाने के बाद पाण्डुलिपि में किए गए परिवर्तन का संशोधन काफी श्रमसाध्य होता है। पर प्रेस की ओर से कभी यह शिकायत ही नहीं आई कि पाण्डुलिपि में परिवर्तन क्यों किया जाता है।

"भगवती की जोड़" के सम्पादन में मेरा नाम जोड़ा गया, यह मेरा सौभाग्य है। वास्तविकता यह है कि कोई भी अकेला व्यक्ति इस गुरुतर कार्य को संपादित नहीं कर सकता। श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर का मंगल आशीर्वाद, सफल मार्गदर्शन और सतत सान्निध्य, युवाचार्य श्री का दिशा-निर्देश तथा सहकर्मी साधु-साध्वियों की निष्ठा और श्रमशीलता—इन सबके समुचित योग से यह काम हो पाया है। अभी तक दो ही खण्डों का काम हुआ है। जितना काम हुआ है, करणीय उससे बहुत अधिक है। शेष कार्य को पूर्णता तक पहुंचाने के लिए हमें अपनी गति को तीव्रता देनी होगी। श्रद्धास्पद गुरुदेव की अमृतमयी सन्निधि "भगवती की जोड़" से जुड़े हुए प्रत्येक व्यक्ति में नई ऊर्जा का संप्रेषण करे और हम सब मिलकर इस काम को आगे बढ़ाएं, यह अपेक्षा है। सम्पूर्ण "भगवती जोड़" को एक ही शैली में सम्पादित करने का गुरुदेव का जो सपना है, उसे आकार देने में हम किंचित् भी निमित्त बन सकें तो हमारे जन्म की सार्थकता होगी।

१५ अगस्त, १९८६
लाडनूं

साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शतक ५ : १-११०

शतक ६ : ११०-२०३

शतक ७ : २०४-३०२

शतक ८ : ३०२-५५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ७४

### सोरठा

१. चतुर्थ शतके अंत, कह्यो लेस अधिकार ए।
प्राये लेस्यावंत, तास निरूपण पंचमे ॥

२. चंपा रवी उदस्थ, पवन जाल ग्रन्थिक बलि।
शब्द विषय छदमस्थ, आयू पुद्गल कंपवो ॥

३. निर्ग्रंथ-पुत्र अणगार, किणन कहियै राजगृह।
चंपा-चन्द्र विचार, दस उदेश पंचम शते ॥

### दूहा

४. तिण काले नै तिण समय, नगरी चम्पा नाम।
पूर्णभद्र सुचैत्य वर, बिहु वर्णक अभिराम ॥

५. स्वामी तिहां समवसर्‍या, जाव परषदा आय।
वाण सुणी श्री वीर नीं, आई जिण दिशि जाय ॥

६. तिण काले नै तिण समय, महावीर नो जान।
अंतेवासी जेष्ठवर, इंद्रभूति अभिधान ॥

७. गोत करि गोतम कह्यु, जाव वदै इम वाय।
नमस्कार वंदन करी, पूछै प्रश्न सुहाय ॥

*गोयम प्रभुजी सूं वीनवै ॥

वीर थकी धर कोड, पूछै बे कर जोड़।
विनय करी मान मोड़, मेटी अविनय खोड़ ॥ (ध्रुपदं)

८. सूर्य बे जम्बूदीप में, तसु पूछा हे भदन्त !
ऊगै क्रूण ईशाण में, अग्नि-क्रूण आथमंत ?

९. अग्नि क्रूण ऊगी करी, नैऋत क्रूण आथमंत।
नैऋत क्रूण ऊगी करी, वायव्य अस्तज हुंत ॥
(स्वाम सुणो मोरी वीनती)

१०. वायव्य क्रूण ऊगी करी, आथमियै ईशाण ?
जिन कहै हंता गोयमा! पूछ्यो तिम जिन वाण ॥[1]

---

*लय : लछमण राम सूं वीनवै.........

१. देखें प० सं० १।

१. चतुर्थशतान्ते लेश्या उक्ताः पञ्चमशते तु प्रायो लेश्यावन्तो निरूप्यन्ते।
(वृ० प० २०६)

२, ३. चंपरविअनिलगंठिय, सद्दे छउमाउ एयण नियंठे।
रायगिहं चंपा-चंदिमा य दस पंचमम्मि सए ॥
(श० ५।संगहणी-गाहा)

'गंठिय' त्ति जालग्रन्थिकाज्ञातज्ञापनीयार्थ-निर्णयपरः..........'एयण' त्ति पुद्गलानामेजनाद्यर्थप्रतिपादकः.......'नियंठे' त्ति निर्ग्रन्थीपुत्राभिधानानगारविहितवस्तुविचारसारः।
(वृ० प० २०६)

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नगरी होत्था—वण्णओ। (श० ५।१)
तीसे णं चंपाए नगरीए पुण्णभद्दे नामं—चेइए होत्था—वण्णओ।

५. सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया।
(श० ५।२)

६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अन्तेवासी इंदभूई नामं अणगारे।

७. गोयमे गोत्तेणं जाव एवं वयासी—

८. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उदीण-पाईण-मुग्गच्छ पाईण- दाहिणमागच्छंति।

९. पाईण-दाहिणमुग्गच्छ दाहिण-पडीणमागच्छंति, दाहिणपडीणमुग्गच्छ पडीण-उदीणमागच्छंति।

१०. पडीण-उदीणमुग्गच्छ उदीचि-पाईणमागच्छंति ? हंता गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ जाव उदीचि-पाईणमागच्छंति।
(श० ५।३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. रवि ऊगै वलि आथमै, देखणहारा लोग।
तेहनी जे वांछा[1] करी, ते वच कहियै प्रयोग।।
१२. जे मनुष्य नें अदृश्य थको, दीसै सूर्य जिवार।
ते सूर्य ऊगो कहै, जग मांहे तिणवार।।
१३. जे नर दृश्य थको रवि, अदृश्य होवे तिवार।
सूर्य आथमियो कहै, एम कह्यु वृत्तिकार।।
१४. पिण रवि उदय अस्तपणो, अनियत तास विचार।
संचरतो रवि रहै सदा, गमन सर्व दिशि धार।।
१५. तो पिण तेहना प्रकाश नों, प्रतिनियत थी ताय।
रात्रि दिवस नों विभाग ते, खेत्र भेद हिव कहाय।।
१६. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप रै मांय।
मेरू नामा पर्वत थकी, दक्षिणार्द्धे दिन थाय।।
१७. तिण काले उत्तरार्द्धे में, दिवस हुवै जगनाथ!
उत्तरार्द्धे जद दिवस ह्वै, पूरव पश्चिम रात?

१८. जिन कहै हंता गोयमा! वृत्ति मांहि इम माग।
दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध ते, दक्षिण उत्तर भाग।।

१९. दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध ते, जो संपूर्ण अर्द्ध होय।
अर्द्ध बिहुं ग्रहिवै करी, सर्व खेत्र ग्रह्यु सोय।।
२०. दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध ए, सर्व विषे दिन थाय।
तो पूर्व पश्चिम विषे, रात्रि केम ह्वै ताय?
२१. तिण कारण अर्द्ध शब्द नों, भाग अर्थ अवलोय।
आदि भाग मात्र दक्षिण नों, पिण पूर्ण अर्द्ध न कोय।।

२२. हे भदंत! जिण काल में, जंबूद्वीप रै मांय।
मेरू थी पूर्व दिन हुवै, पश्चिम पिण दिन थाय।।

२३. पश्चिम विदेह में दिन हुवै, जद मेरू थी ताय।
दक्षिण उत्तर निशि हुवै? जिन कहै हंता थाय।।

२४. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप मझार।
दक्षिणार्द्धे उत्कृष्ट थी, दिन ह्वै मुहूर्त्त अठार।।
२५. उत्तरार्द्धे पिण तिण समै, उत्कृष्टो अवधार।
अष्टादश मुहूर्त्त तणो, दिवस हुवै तिणवार।।

११. इह चोद्गमनमस्तमयं च द्रष्टृलोकविवक्षयाऽवसेयं।
(वृ० प० २०७)

१२,१३. येषामदृश्यौ सन्तौ दृश्यौ तौ स्यातां ते तयोरुद्गमनं व्यवहरन्ति येषां तु दृश्यौ सन्ता-वदृश्यौ स्तस्ते तयोरस्तमयं व्यवहरन्ति।
(वृ० प० २०७)

१४,१५. अनियतावुदयास्तमयौ, इह च सूर्यस्य सर्वतो गमनेऽपि प्रतिनियतत्वात्तत्प्रकाशस्य रात्रिदिवस-विभागोऽस्तीति तं क्षेत्रभेदेन दर्शयन्नाह —
(वृ० प० २०७)

१६. जया णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे दिवसे भवइ,

१७. तया णं उत्तरड्ढेवि दिवसे भवइ जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवइ?

१८. हंता गोयमा! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे जाव पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवई।
(श० ५।४)

इह च यद्यपि दक्षिणार्द्धे तथोत्तरार्द्धे इत्युक्तं तथाऽपि दक्षिणभागे उत्तरभागे चेति बोद्धव्यं, अर्द्धशब्दस्य भागमात्रार्थत्वात्। (वृ० प० २०८)

२०,२१. यतो यदि दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च समग्र एव दिवसः स्यात्तदा कथं पूर्वेणापरेण च रात्रिः स्यादिति वक्तुं युज्येत। इतश्च दक्षिणार्द्धादिशब्देन दक्षिणादिदिग्भागमात्रमेवावसेयं न त्वर्द्धं।
(वृ० प० २०८)

२२. जया णं भंते! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमे णं वि दिवसे भवइ,

२३. जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं जंबू-दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं राई भवइ? हंता गोयमा! जया णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं दिवसे जाव उत्तर-दाहिणे णं राई भवइ। (श० ५।५)

२४. जया णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ।

२५. तया णं उत्तरड्ढे वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ;

१. विवक्षा।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. उत्तरार्द्ध उत्कृष्ट थी, दिन हुवै मुहूर्त्त अठार।
जद मेरू थी पूर्व पश्चिम, रात्री मुहूर्त्त बार ?

२७. "जिन कहै हंता गोयमा ! तेहनुं छै इम न्याय।
सर्वाभ्यंतर मंडले, उत्कृष्ट दिन कहिवाय॥
२८. दिवस अठारै मुहूर्त्त नुं, दक्षिणार्द्धे कहिवाय।
उत्तरार्द्धे पिण एतलुं, बे सूरज इण न्याय॥
२९. निशि बारै मुहूरत तणी, पूर्व महाविदेह मांय।
पश्चिम विदेह पिण एतली, बे चंदा इण न्याय॥" (ज० स०)
३०. दक्षिणार्द्ध उत्तरार्द्ध में, उत्कृष्ट दिन जद होय।
तिण काले जंबूद्वीप नां, भाग कीजै दस जोय॥
३१. ते दस भागां मांहिला, तीन भाग इज जाण।
ताप-खेत्र इक रवि तणो, पंडित लीजो पिछाण॥
३२. इम बीजा सूरज तणो, जंबूद्वीप ना तेथ।
दस भाग कीजै त्यां मांहिला, तीन भाग ताप-खेत॥
३३. बारै-बारै-मुहूरत तणी, निशि पूरव पश्चिमेत।
ते दस भागां मांहिला, बे-बे भाग निशि खेत॥
३४. दोय दिवस अरु रात्रि ना, साठ मुहूर्त्त इम हुंत।
ते साठ मुहूर्ते रवि, मंडल प्रति पूरंत॥
३५. दस भाग कीजै साठ मुहूर्त्त नां, तीन भागरूप माग।
ए उत्कृष्टा दिवस नां, षट् मुहूर्त्त इक भाग॥
३६. रात्रि बारै मुहूर्त्त नी तदा, दोय भाग रूप देख।
दस भाग कीजै साठ मुहूर्त्त नां, ते मांहिला सुविशेख॥

३७ तथा लघु दिन नैं विषे, दोय भाग ताप खेत।
तीन भाग रात्रि-खेत्र छै, इक रवि आश्री एथ॥

३८ एहनों बहु विस्तार छै, जंबूद्वीपपन्नती मांय।
पिण प्रस्ताव थकी इहां, संक्षेपे कह्यु ताय[1]॥
३९. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप मभार।
मेरू थी पूर्व पश्चिमे, दिन हुवै मुहूर्त्त अठार॥

४०. तिण काले जंबूद्वीप में, उत्तर दक्षिण मांय।
जघन्य निशा बारै मुहूर्त्त नीं ? जिन कहै हंता थाय॥
४१. मास आषाढ ह्वै भरत में, महाविदेह पिण तेह।
मास आषाढ सुजाणवूं, कह्युं धर्मसी एह॥

१. देखें प० सं० २

२६. जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जंबुद्दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?

२७. हंता गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे जाव दुवालस-मुहुत्ता राई भवइ।
(श० ५।६)

३०,३१. यदाऽपि दक्षिणोत्तरयोः सर्वोत्कृष्टो दिवसो भवति तदाऽपि जम्बूद्वीपस्य दशभागत्रयप्रमाणमेव तापक्षेत्रं तयोः प्रत्येकं स्यात्।
(वृ० प० २०८)

३२,३३. दशभागद्वयमानं च पूर्वपश्चिमयोः प्रत्येकं रात्रि-क्षेत्रं स्यात्।
(वृ० प० २०८)

३४. षष्ट्या मुहूर्त्तैः किल सूर्यो मण्डलं पूरयति।
(वृ० प० २०८)

३५,३६. उत्कृष्टदिनं चाष्टादशभिर्मुहूर्त्तैरुक्तं, अष्टा-दश च षष्टेर्दशभागत्रितयरूपा भवन्ति, तथा यदाऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा रात्रिर्द्वा-दशमुहूर्त्ता भवति, द्वादश च षष्टेर्दशभागद्वयरूपा भवन्तीति। (वृ० प० २०८)

३७. सर्वलघौ च दिवसे तापक्षेत्रमनन्तरोक्तरात्रिक्षेत्र-तुल्यं रात्रिक्षेत्रं त्वनन्तरोक्ततापक्षेत्रतुल्यमिति।
(वृ० प० २०९)

३८. (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्खार ७ सम्पूर्ण)

३९. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमे वि उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ।

४०. जया णं पच्चत्थिमे णं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे उत्तरदाहिणे णं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ? हंता गोयमा ! जाव भवइ। (श० ५।७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. कर्क संक्रांति प्रथम दिने, सर्वाभ्यंतर भाण।
'युग में कोइक'[1] आसाढ नीं, पूनम तेह पिछाण।।
४३. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप मझार।
मेरू थी दक्षिण दिन हुवै, ऊणो मुहूर्त्त अठार।।
४४. उत्तर दिशि पिण एतलु होवै दिवस तिवार।
पूरव पश्चिम निशि हुवै, जाझी मुहूर्त्त बार?

४३. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारस-मुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ।

४४. तया णं उत्तरड्ढे वि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ?

४५. जिन कहै हंता गोयमा ! एहनुं न्याय पिछाण।
सर्वाभ्यन्तर मंडल थकी, दूजे मंडल भाण।।
४६. कर्क संक्रांति दूजे दिने, दूजे मंडल भाण।
युग में कोइक श्रावण तणी, विद एकम ए जाण।।
४७. भाग इकसठ एक मुहूर्त्त नां, दिवस घटै बे-बे भाग।
बे-बे भाग वधै निशा, इक-इक मंडल माग।।

४५. हंता गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे जाव राई भवइ।
(श० ५।८)

४७. यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरे मण्डले वर्तते सूर्य-स्तदा मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनाष्टादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति .....राइ त्ति द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टि-भागाभ्यामधिका द्वादशमुहूर्त्ता राई भवइ।
(वृ० प० २०६)

४८. हे भदंत ! जिण काल में, मेरू थी पूरव मांय।
अठार मुहूर्त्त ऊणो दिन हुवै, इतलो पश्चिम थाय।।

४८. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमे वि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ;

४९. अठार मुहूर्त्त ऊणो पश्चिमे, दक्षिण उत्तर ताम।
बार मुहूर्त्त जाझी निशा ? जिन कहै हंता आम।।

४९. जया णं पच्चत्थिमे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तदा णं जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ? हंता गोयमा ! जाव भवइ। (श० ५।९)

५०. इम अनुक्रम करि आखवूं, सतरै मुहूर्त्त दिन्न।
तेरै मुहूर्त्त रात्रि छै, इकतीसम मंडल जन्न।।
५१. बीजा मंडल थी जदा, इकतीसम अर्द्धेह।
सतरै मुहूर्त्त दिन ह्वै तदा, तेर मुहूर्त्त निशि जेह।।

५०. एवं एएणं कमेणं ओसारेयव्वं–सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई,

५१. तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरमण्डलादारभ्यैकत्रिंश-त्तममण्डलार्द्धे यदा सूर्यस्तदा सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वोक्तहानिक्रमेण त्रयोदशमुहूर्त्ता च रात्रि-रिति। (वृ० प० २०६)

५२. "सर्वाभ्यंतर मंडले, दिन ह्वै मुहूर्त्त अठार।
द्वादश मुहूर्त्त ह्वै निशा, हिव आगल सुविचार।।
५३. भाग इकसठ इक मुहूर्त्त ना, बीजै मंडलै जाण।
दिन अष्टादश मुहूर्त्त में, दोय भाग दिन हाण।।
५४. इकतीसम मंडलार्द्ध में, सतरै मुहूर्त्त दिन जाण।
तेर मुहूर्त्त निशा ह्वै तदा, बे-बे भाग नीं हाण।।

---

१. किसी युग में।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. बीजा मंडल नै विषे, दोय भाग दिन हाण।
च्यार भाग तीजे मंडले, इम प्रति मंडल जाण॥" (ज० स०)

५६. सतरे मुहूर्त्त थी अनंतरे, दिवस हुवै छै जेह।
तेर मुहूर्त्त जाझी निशा, बतीसमें अद्धेह॥

५६. सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा तेरसमुहुत्ता राई।
अयं च द्वितीयादारभ्य द्वात्रिंशत्तममण्डलार्द्धे भवति। (वृ० प० २०६)

५७ सोल मुहूर्त्त दिन ह्वै जदा, चवद मुहूर्त्त निशि होय।
इकसठमा मंडल विषे, बीजा मंडल थी जोय॥

५७. सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई।
द्वितीयादारभ्यैकषष्टितममण्डले। (वृ० प० २०६)

५८. बे भाग ऊणो सोल मुहूर्त्त नों, दिवस हुवै छै जेह।
चौदह मुहूर्त्त जाझी निशा, बासठमे मंडलेह॥

५८. सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा चउद्दसमुहुत्ता राई।

५९. पनर मुहूर्त्त दिन हुवै जदा, पनर मुहूर्त्त तब रात।
बाणूमां मंडलार्द्ध में, दूजा मंडल थी थात॥

५९. पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई।
द्विनवतितम-मण्डलार्द्धे वर्त्तमाने सूर्ये। (वृ० प० २०६)

६० ऊणो पनर मुहूर्त्त दिन हुवै, पनर मुहूर्त्त जाझी तेह।
रात्रि हुवै तिण अवसरे, साढा बाणूमे मंडलेह॥

६०. पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा पण्णरसमुहुत्ता राई।

६१. चवद मुहूर्त्त दिन हुवै जदा, सोल मुहूर्त्त निशि न्हाल।
इक सो बावीस मंडले, बीजा मंडल थी भाल॥

६१. चोद्दसमुहुत्ते दिवसे, सोलसमुहुत्ता राई।
द्वाविंशत्युत्तरशततमे मण्डले। (वृ० प० २०६)

६२. चवदै मुहूर्त्त ऊणो दिन हुवै, सोलै मुहूर्त्त जाझी रात।
इक सौ तेवीसमे मंडले, दूजा मंडल थी ख्यात॥

६२. चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा सोलसमुहुत्ता राई।

६३. तेर मुहूर्त्त नो दिन जदा, सतरै मुहूर्त्त निशि मान।
इक सौ साढा बावन में, दूजा मंडल थी जान॥

६३. तेरसमुहुत्ते दिवसे, सत्तरसमुहुत्ता राई।
सार्द्धद्विपञ्चाशदुत्तरशततमे मण्डले। (वृ० प० २०६)

६४. तेरै मुहूर्त्त ऊणो दिन जदा, सतरै मुहूर्त्त जाझो रात।
इकसौ साढातेपनमे मंडले, दूजा मंडल थी थात॥

६४. तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे, साइरेगा सत्तरसमुहुत्ता राई। (श० ५।१०)

६५. बारै मुहूर्त्त नों दिन जदा, निशि हुवै मुहूर्त्त अठार।
इकसौ तयांसीमे मंडले, बीजा मंडल थी धार॥

६५. 'बारसमुहुत्ते दिवसे'त्ति त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले सर्वबाह्य इत्यर्थः। (वृ० प० २०६)

६६. दूजा मंडल थी सहु, कहिवुं एह विचार।
संख्या ए मंडल तणी, वृत्ति तणें अनुसार॥

६७. जंबू दक्षिणार्द्ध विषे जदा, जघन्य बारै मुहूर्त्त दिन्न।
तिण काले उत्तरार्द्ध में, बार मुहूर्त्त रवि जन्न॥

६७. जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे वि,

६८. उत्तरार्द्ध दिन बारै मुहूर्त्त ह्वै, मेरू थकी तिवार।
पूर्व पश्चिम उत्कृष्ट थी, निशि ह्वै मुहूर्त्त अठार?

६८. जया णं उत्तरड्ढे, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ?

६९. जिन कहै हंता गोयमा! निश्चै करिनै एह।
उच्चारवूं छै जाव ही, निशि उत्कृष्ट ह्वै तेह॥

६९. हंता गोयमा! एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव राई भवइ। (श० ५।११)

७०. हे भदंत! जिण काल में, जंबू पूरव मांय।
जघन्य दिवस बारै मुहूर्त्त ह्वै, तब पश्चिम जघन्य थाय॥

७०. जया णं भंते! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमे ण वि;



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. जद पश्चिम जघन्य दिवस हुवै, दक्षिण उत्तर देख।
निशि उत्कृष्ट अठार नीं ? जिन कहै हंता पेख॥

७१. जया णं पच्चत्थिमे, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं उक्कोसिया अट्ठारस-मुहुत्ता राई भवइ ? हंता गोयमा ! जाव राई भवइ। (श० ५।१२)

७२. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप रै मांय।
दक्षिणार्द्धे चउमास नुं, प्रथम समय पडिवज्जाय॥

७३. उत्तरार्द्धे वर्षा काल नुं, प्रथम समय पडिवज्जंत।
प्रथम समय वर्षा काल नुं, उत्तरार्द्धे जद हुंत॥

७४. तब जंबू मंदर थकी, पूरव पश्चिम मांय।
प्रथम समय वर्षा काल नुं, समय आगमिय थाय ?

७२. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ;

७३,७४. तया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडि-वज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमे समए पडि-वज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं अणंतरपुरक्खडे समयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ ?

७५. जिन कहै हंता गोयमा ! धुर समय वर्षा नुं ताय।
दक्षिण उत्तर थी पछै, पडिवज्जै विदेह मांय॥

७५. हंता गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तह चेव जाव पडिवज्जइ; (श० ५।१३)

७६. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप रै मांय।
मेरु थी पूरव दिशे, धुर समय वर्षा नुं थाय॥

७७. पश्चिम तब वर्षा काल नुं, प्रथम समय पडिवज्जंत।
वर्षांत नुं धुर समय जे, पश्चिम दिशि जद हुंत॥

७८. तब जंबू मंदर थकी, उत्तर दक्षिण मांय।
प्रथम समय वर्षा काल नुं, समय अतीत कहाय ?

७६. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ,

७७,७८. तया णं पच्चत्थिमे ण वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं पच्चत्थिमे णं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवन्ने भवइ ?

७९. जिन कहै हंता गोयमा! धुर समय वर्षा नुं थाय।
विदेह थकी पहिला पडिवज्जै, दक्षिण उत्तर मांय॥

७९. हंता गोयमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव पडिवन्ने भवइ। (श० ५।१४)

८०. प्रथम समय वर्षा काल नुं, जिम भाख्यो छै तेम।
भणिवूं आवलिका भणी, सास उस्सास पिण एम॥

८०. एवं जहा समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा आवलियाएवि भाणियव्वो। आणापाणूणवि,

८१. सात उस्सास निःस्वास नुं, थोव एक इम पेख।
सप्त थोवे इक लव कह्यु, सितंतर लव मुहूर्त एक॥

८१. थोवेणवि, लवेणवि, मुहुत्तेणवि,
स्तोकः सप्तप्राणप्रमाणः लवस्तु—सप्तस्तोकरूपः मुहूर्त्तः पुनर्लवसप्तसप्ततिप्रमाणः। (वृ० प० २११)

८२. मुहूर्त्त तीस तणुं कह्यु, अहोरात्रि इक मान।
पनरै दिवस रात्रि तणुं, पक्ष एक इम जान॥

८२. अहोरत्तेणवि,पक्खेणवि,

८३. इमज बे पक्षे मास छै, बे मासे ऋतु एम।
ए सहु नों कहिवूं सही, समय आलावो जेम॥

८३. मासेणवि, उऊणवि। एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणियव्वो। (श० ५।१५)
ऋतुस्तु मासद्वयमानः। (वृ० प० २११)

८४. हे भदंत ! जिण काल में, जंबू दक्षिण मांय।
हेमंत ते सीयाला तणुं, प्रथम समय पडिवज्जाय॥

८५. जिम कह्यु चउमासा तणुं, सीयाला नुं तेम।
ग्रीष्म ना ए पिण दसूं, भणिवा समया जेम॥

८४. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ,

८५. जहेव वासाणं अभिलावो तहेव हेमंताणं वि, गिम्हाण वि भाणियव्वो।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. जाव ऋतु लग जाणवा, तीनूं काल ना एह।
भणवा तीस आलावगा, इक इक ना दस जेह॥
८७. दक्षिण नैं उत्तर विषे, दिन हुवै मुहूर्त्त अठार।
तीन मुहूर्त्त दिन पाछिलै, विदेह प्रकाश तिवार॥
८८. ते वेला थी विदेह में, कहियै दिवस जिवार।
मुहूर्त्त तीन पछै इहां, कहियै रात्रि तिवार॥
८९. ते रात्रि बारै मुहूर्त्त नो, पछला मुहूर्त्त तीन।
एवं पनरै मुहूर्त्त थया, महाविदेह में लीन॥
९०. शेष तीन मुहूर्त्त जोइये, तेहनों निसुणो न्याय।
तीन मुहूर्त्त पछै दक्षिण उत्तरे, दिन ऊगै छै ताय॥
९१. धुरला तीन मुहूर्त्त लगै, महाविदेह रै मांय।
दिवस प्रकाश रहै अछै, विमल विचारो न्याय॥
९२. पनरै नैं त्रिण मुहूर्त्त नों, अष्टादश इम लीह।
उत्कृष्टो दिन विदेह में, एम कह्यु धर्मसीह॥
९३. महाविदेह खेत्र थकी, भरत एरवत मांय।
पनरै मुहूर्त्त पहिला तदा, वर्ष लागतो जणाय॥
९४. समय नाम इहां आखियो, तेहनों छै इम न्याय।
कितलाइक मुहूर्त्त पहर नैं, समय कहीजै ताय॥
९५. इम दक्षिण उत्तर विषे, पूरव पश्चिम तास।
घट वृद्धि दिन निशि मुहूर्त्त नीं, जथाजोग सहु मास॥
९६. सर्वाभ्यंतर मंडल थकी, बाह्य मंडल रवि जाय।
दिन घटतो जावै तदा, रात्रि वृद्धि ह्वै ताय॥
९७. बाहिरला मंडल थकी, रवि अभ्यंतर आय।
मंडल मंडल दिन वृद्धि, रात्रि घटंती जाय॥
९८. सर्वाभ्यंतर मंडले, पूनम आसाढी पेख।
सर्व बाह्य पोसी पूनमे, नय ववहारे देख॥
९९. पंच वर्ष ना युग मध्ये, पोस आषाढ को एक।
तेहनी पूनम रै दिनै, जघन्य उत्कृष्ट दिन देख॥
१००. कर्क संक्रांति प्रथम दिने, सर्वाभ्यंतर भाण।
अष्टादश मुहूर्त्त तणो, दिवस तदा पहिछाण॥
१०१. मकर संक्रांति प्रथम दिने, सर्व बाह्य मंडल भाण।
द्वादश मुहूर्त्त तणो हुवै, दिवस तदा पहिछाण॥
१०२. देश अंक एकावन तणुं, च्यार सितरमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल॥

८६. जाव उऊए। एवं तिण्णि वि। एएसिं तीसं आला-
वगा भाणियव्वा। (श० ५।१६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ७५

### दूहा

१. हे भदंत ! जिण काल में, जंबूद्वीप रै मांय।
मेरू थी दक्षिण दिशे, प्रथम अयन पडिवज्जाय ।।

२. प्रथम विभागज अयन नों, संवत श्रावण आदि।
ए श्रावण युग नों कोइक, दक्षिणायन कर्कादि ।।

३. मकरादि उत्तरायण, तेह तणी पेक्षाय।
पहिला दक्षिण अयन छै, धुर विभाग तसुं ताय ।।

४. दक्षिण दिशि दक्षिणायन ह्वै, तब उत्तरार्द्धे ताम।
प्रथम अयन ते पडिवज्जे, ए पूछा अभिराम ।।

५. जेम समय तिम अयन पिण, जाव दक्षिण उत्तरेह।
दक्षिणायन पहिला हुवै, विदेहखेत्र थी लेह ।।

६. जेम अयन तिम वरष पिण, पंच वर्ष युग एक।
दक्षिण उत्तर साथ ह्वै, प्रथम विदेह थी पेख ।।

७. इम सौ वर्ष संघात पिण, सहस्र वर्ष पिण एम।
लाख वर्ष कहिवूं इमज, पूर्व भाख्यूं तेम ।।

*वीर कहै सुण गोयमा (ध्रुपदं)

८. चउरासी लाख वर्ष बलि, ए पूरव नो अंगो रे।
तेहनै चउरासी लाख गुणा कियां, पूरव एक सुचंगो रे ।।

९. वर्ष सित्तर लक्ष कोड छै, ऊपर छपन सहस्र कोड़ो।
पूरव एक कह्यो तसुं, चिहुं अंक बिंदु दस जोड़ो ।।

१०. पूर्वे पूर्व कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणीजै।
एक तुटित नों अंग ए, षट अंक पनरै बिंदु लीजै ।।

११. एह तुटित ना अंग नैं, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै।
तुटित कहीजै तेहनैं, अंक आठ बिंदु बीस लीजै।

१२. पूर्वे तुटित कह्यो तसुं, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै।
एक अडड नों अंग ते, अंक दस बिंदु पणवीस लीजै ।।

१३. एक अडड ना अंग नैं, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै।
अडड कहीजै तेहनैं, अंक बारै बिंदु तीस लीजै ।।

१४. पूर्वे अडड कह्यो तसुं, वर्ष चोरासी लक्ष गुणीजै।
एक अवव नों अंग छै, अंक चवदै बिंदु पैंती लीजै ।।

*लयः सल कोइ मत राखज्यो……

१. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ।

२. दक्षिणायनं श्रावणादित्वात्संवत्सरस्य।
(वृ० प० २११)

४. तया णं उत्तरड्ढे वि पढमे अयणे पडिवज्जइ,

५. जहा समएणं अभिलावो तहेव अयणेण वि भाणियव्वो जाव अणंतरपच्छाकड़समयंसि पढमे अयणे पडिवन्ने भवइ। (श० ५।१७)

६. जहा अयणेणं अभिलावो तहा संवच्छरेण वि भाणियव्वो। जुएण वि,
युगं पंचसंवत्सरमानं (वृ० प० २११)

७. वाससएण वि, वाससहस्सेण वि, वाससयसहस्सेण वि,

८. पुव्वंगेण वि, पुव्वेण वि,
पूर्वाङ्गं चतुरशीतिर्वर्षलक्षाणां पूर्वं पूर्वाङ्गमेव चतुरशीतिवर्षलक्षेण गुणितं। (वृ० प० २११)

१०. तुडियंगेण वि,

११. तुडिएण वि—

१२. अडडंगे,

१३. अडडे,

१४. अववंगे,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. एह अवव ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणीजै ।
एक अवव कहियै तसुं, अंक सौलै बिंदु चाली लीजै ।। — १५. अववे,

१६. पूर्वे अवव कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक हूहूक नों अंग छै, अंक अठारै पैंतालो बिंदु ।। — १६. हूहूयंगे,

१७. एह हूहूक ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक हूहूक कहियै तसुं, अंक वीस पचास है बिंदु ।। — १७. हूहूए,

१८. पूर्वे हूहूक कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक उत्पल नों अंग छै, अंक बावीस पचपन बिंदु ।। — १८. उप्पलंगे,

१९. एह उत्पल ना अंग नै, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक उत्पल कहियै तसुं, अंक चोवीस साठ है बिंदु ।। — १९. उप्पले,

२०. पूर्वे उत्पल कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक पद्म नों अंग छै, अंक छब्बीस पैंसठ बिंदु ।। — २०. पउमंगे,

२१. एह पद्म ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक पद्म कहियै तसुं, अंक सतावीस सित्तर बिंदु ।। — २१. पउमे,

२२. पूर्वे पद्म कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक नलिन नों अंग छै, अंक गणतीस पचंतर बिंदु ।। — २२. नलिणंगे,

२३. एह नलिन ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक नलिन कहियै तसुं, अंक इकतीस अस्सी बिंदु ।। — २३. नलिणे,

२४. पूर्वे नलिन कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
इक अर्थ निपुर नों अंग छै, अंक तेतीस पच्यासी बिंदु ।। — २४. अत्थणिउरंगे,

२५. ए अर्थ निपुर ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
इक अर्थ निपुर कहियै तसु अंक पैंतीस नेउ बिंदु ।। — २५. अत्थणिउरे,

२६. अर्थ निपुर कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक अयुत नों अंग छै, अंक सैंतीस पचाणूं बिंदु ।। — २६. अउयंगे,

२७. एह अयुत ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक अयुत कहियै तसुं, अंक गणचालीस सौ बिंदु ।। — २७. अउए,

२८. पूर्वे अयुत कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक नयुत नों अंग छै, अंक इकताली इकसौ पंच बिंदु ।। — २८. णउयंगे,

२९. एह नयुत ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक नयुत कहियै तसुं, अंक तयाली इकसौ दस बिंदु ।। — २९. णउए,

३०. पूर्वे नयुत कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक प्रयुत नों अंग छै, अंक पैंताली इकसौ पनर बिंदु ।। — ३०. पउयंगे,

३१. एह प्रयुत ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक प्रयुत कहियै तसुं, अंक सैंताली इकसौ बीस बिंदु ।। — ३१. पउए,

३२. पूर्वे प्रयुत कह्यो तसुं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक चूलिका नों अंग छै, अंक गणपचा सवासौ बिंदु ।। — ३२. चूलियंगे,

३३. एह चूलिका ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिंदु ।
एक चूलिका कहियै तसुं, अंक एकावन इकसौ तीस बिंदु ।। — ३३. चूलिया,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. एह चुलिका तेहनैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
सीसपहेलिका नुं अंग छै, अंक बावन इकसौ पैंती बिंदु ।।
३५. ए सीसपहेलिका ना अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ष गुणिदु ।
सीसपहेलिका कहियै तसुं, अंक चोपन इकसौ चाली बिंदू ।।
३६. अंक बीच बिंदु जेह छै, ते तो अंकां मांहै गुणिया ।
बिंदु सर्व अंक ऊपरै, छेहडे बिंदु में थुणिया ।।
३७. इमज पल्योपम पिण हुवै, सागरोपम पिण एमो ।
दस कोडाकोड जे पल्य तणुं, सागर कहियै तेमो ।।
३८. हे भदंत ! जिण काल में, जंबू दक्षिण दिशि मांह्यो ।
पहिला अवसर्पिणी पडिवज्जे, उत्तर पिण जद थायो ।।

३९. सर्व भाव घटता जाय तेहनैं, अवसर्पिणी कहिवायो ।
तेहनोंज पहिलो विभाग छै, ते प्रथमा अवसर्पिणी तायो ।।
४०. उत्तर दिशि मांहे जदा, प्रथमा अवसर्पिणी थायो ।
पूर्व पश्चिम में तदा, अवसर्प उत्सर्पिणी नांयो ।।

४१. अवस्थित ते सदा सारिखो, काल तिहां कहिवायो ।
हे आउखावंत! श्रमण! प्रभु! इम पूछ्ये कहै जिन वायो ।।
४२. जिन कहै हंता गोयमा ! तिमहिज पाठ उचरिवूं ।
जाव श्रमण आयुष्मन् लगै, कहिवूं शंक न धरिवूं ।।
४३. जिह विध एह कह्यो अछै, अवसर्पिणी नों आलावो ।
तिमहिज उत्सर्पिणी तणो, तिण में बधता जावै भावो ।।
४४. हे प्रभु ! लवण समुद्र में, ऊगै रवि ईशाणो ।
अग्निकूण में आथमैं, पूरववत् पहिछाणो ।।
४५. कही जंबू नीं वक्तव्यता जिका, तिका लवणसमुद्र नीं भणवी ।
णवरं एणे आलावे करी, सर्व आलावे थुणवी ।।

४६. हे प्रभु ! लवणसमुद्र में, जद दक्षिण दिशि दिन होयो ।
तिम जाव तदा लवणोदधि, निशि पूर्व पश्चिम जोयो ।।

४७. इम एणे आलावे करी, सर्व आलावा कहिवा ।
अवसर्पिणी उत्सर्पिणी, छेहलूं तसुं इम लहिवा ।।
४८. प्रभु! लवणसमुद्र विषे जदा, अवसर्पिणी नुं प्रथम विभागो ।
दक्षिण भाग विषे हुवै, तदा उत्तर भागे पिण लागो ।।

४९. उत्तर भाग विषे जदा अवसर्पिणी नुं प्रथम विभागो ।
पूर्व पश्चिम लवण तदा नहीं, अव-उत्सर्पिणी मागो ।।

३४. सीसपहेलियंगे,

३५. सीसपहेलिया—

३७. पलिओवमेण, सागरोवमेण वि भाणियव्वो ।
(श० ५।११८)

३८. जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ;

३९. अवसर्प्पयति भावानित्येवंशीला अवसर्प्पिणी तस्याः प्रथमो विभागः प्रथमावसर्प्पिणी । (वृ० प० २११)

४०. जया णं उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं नेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी;

४१. अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ?

४२. हंता गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं जाव समणाउसो । (श० ५।११९)

४३. जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एवं उस्सप्पिणीए वि भाणियव्वो । (श० ५।१२०)

४४. लवणे णं भंते ! समुद्दे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति ।

४५. जच्चेव जंबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव सव्वा अपरिसेसिया लवणसमुद्दस्स वि भाणियव्वा, नवरं—अभिलावो इमो जाणियव्वो । (श० ५।१२१)

४६. जया णं भंते ! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तं चेव जाव तदा णं लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवति । (श० ५।१२२)

४७. एएणं अभिलावेणं नेयव्वं जाव

४८. जया णं भंते ! लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ;

४९. जया णं उत्तरड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं नेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. श्रमण ! आयुष्मन् ! हे प्रभु ! इम पूछै चित शंतो ।
जिन कहै हंता गोयमा ! जाव श्रमण ! आउष्मंतो !

५१. धातकीखंड द्वीपे प्रभु ! ऊगै रवि ईशाणो ।
अग्निकूण में आथमै, पूरववत् पहिछाणो ॥

५२. कही जंबू नीं वारता, तिका धातकीखंड नी भणवी ।
णवरं एणे आलावे करी, सर्व आलावे थुणवी ॥

५३. प्रभु ! धातकीखंड द्वीपे जदा, दक्षिणार्द्ध दिन होयो ।
तब उत्तर भाग विषे तदा, दिवस हुवै छै सोयो ॥

५४. उत्तरार्द्ध दिन ह्वै तदा, बे मेरू थी धातकीखंडे ।
पूर्व पश्चिम निशि हुवै ? हंता जिन वच मंडे ॥

५५. धातकीखंड द्वीपे प्रभु ! बेहुं मेरू थी पहिछाणी ।
पूर्व दिशि दिन हुवै जदा, तब पश्चिम पिण दिन जाणी ॥

५६. पश्चिम दिवस हुवै जदा, बे मेरू थी धातकीखंडे ।
उत्तर दक्षिण निशि हुवै ? हंता जिन वच मंडे ॥

५७. इम एणे आलावे करी, सर्व आलावा कहिवा ।
अवसर्पिणी उत्सर्पिणी, छेहलूं तसु इम लहिवा ॥

५८. जाव जदा प्रभु ! धातकी, तेहनैं दक्षिण भागे ।
हुवै प्रथम भाग अवसर्पिणी, तब उत्तर भागे पिण लागे ॥

५९. उत्तर भाग विषे जदा अवसर्पिणी नुं प्रथम विभागो ।
पूर्व पश्चिम धातकी नहीं, अव-उत्सर्पिणी नुं भागो ॥

६०. जाव श्रमण ! आउखावंत ! ए, इम पूछै चित शंतो ।
जिन कहै हंता गोयमा ! जाव श्रमण ! आउखावंतो !

६१. जिम लवणसमुद्र नीं वार्ता, तिम कालोदधि पिण भणवी ।
णवरं कालोदधि नाम ले, विध सर्व आलावे थुणवी ॥

६२. अभ्यंतर पुक्खरार्द्ध विषे, प्रभु ! ऊगै रवि ईशाणो ।
जिम धातकीखंड नीं वारता, तिम अभ्यंतर पुस्करार्द्ध नीं जाणो ॥

६३. णवरं एतो विशेष छै, अभ्यंतर पुक्खरार्द्ध नुं ताह्यो ।
नाम लेइ भणवुं अछै, एह आलावे मांह्यो ॥

६४. जाव तदा अभ्यंतरे, पुस्करार्द्ध विषे कहाई ।
मेरू थी पूर्व पश्चिमे, अव-उत्सर्पिणी नांही ॥

६५. सदा काल एक सारिखो, हे श्रमण ! आउखावंतो !
गोतम स्वाम तदा कहै, सेवं भंते ! सेवं भंतो !

६६. पंचम शतक उदेश पहिलो कह्यो, पीचंतरमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो ॥

**पंचमशते प्रथमोद्देशकार्थः ॥५/१॥**

५०. समणाउस्सो ? हंता गोयमा ! जाव समणाउसो ॥ (श० ५।२३)

५१. धायइसंडे णं भंते! दीवे सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति,

५२. जहेव जंबुद्दीवस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव धायइसंडस्स वि भाणियव्वा नवरं—इमेणं अभिलावेणं सव्वे आलावगा भाणियव्वा । (श० ५/२४)

५३. जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तदा णं उत्तरड्ढे वि;

५४. जया णं उत्तरड्ढे, तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं राई भवइ ? हंता गोयमा ! एवं चेव जाव राई भवइ । (श० ५/२५)

५५. जया णं भंते ! धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमे ण वि;

५६. जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं उत्तर-दाहिणे णं राई भवइ ? हंता गोयमा ! जाव भवइ । (श० ५/२६)

५७. एवं एएणं अभिलावेणं नेयव्वं जाव

५८. जया णं भंते ! दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी तया णं उत्तरड्ढे वि;

५९. जया णं उत्तरड्ढे, तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं नत्थि ओसप्पिणी

६०. जाव समणाउसो ?
हंता गोयमा ! जाव समणाउसो । (श० ५/२७)

६१. जहा लवणसमुद्दस्स वत्तव्वया तहा कालोदस्स वि भाणियव्वा, नवरं—कालोदस्स नामं भाणियव्वं । (श० ५/२८)

६२. अब्भितरपुक्खरद्धे णं भंते ! सूरिया उदीण-पाईणमुग्गच्छ पाईण-दाहिणमागच्छंति, जहेव धायइसंडस्स वत्तव्वया तहेव अब्भितरपुक्खरद्धस्स वि भाणियव्वा,

६३. नवरं—अभिलावो जाणियव्वो

६४. जाव तया णं अब्भितरपुक्खरद्धे मंदराणं पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं नेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी,

६५. अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५/२९,३०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ७६

### दूहा

१. प्रथम उदेशे दिशि विषे, दिनादि विभाग ताय।
ते दिशि विषेज वायु छै, ते वायु भेद कहिवाय।।

२. नगर राजगृह नैं विषे, जावत् गोतम स्वाम।
विनय करी प्रभु वीर नैं, इम बोल्या गुण धाम।।

* प्रभुजी ! धिन धिन आपरो ज्ञान।। (ध्रुपदं)

३. हे भगवंत ! छै वायरो जो, थोडा सा तेह सहीत।
ईसिं पुरेवाया पाठ नों जो, अर्थ कियो इह रीत।।

४. हितकारी वनस्पति भणी, ते पथ्य-वाय वाजंत।
मंद-वाय महा-वाय छै ? हंता जिन वच तंत।।

५. मेरू थी पूर्व दिशि विषे प्रभु ! थोडा सा तेह सहीत।
वाजै पथ्य मंद महावाय छै ? जिन वच हंता प्रतीत।।

६. इमहिज पश्चिम नैं विषे, दक्षिण उत्तर एम।
ईशाण अग्नि नैऋत विषे, वायवकूणे तेम।।

७. पूरवदिशि विषे जदा प्रभु ! अल्प स्नेह सहीत वाय।
वाजै पथ्य मंद महावायरो, तब पश्चिम पिण चिउं थाय।।

८. पश्चिम दिशि विषे जदा, बाजै थोडा तेह सहित वाय।
तब पूरव पिण चिउं हुवै ? जिन कहै हंता थाय।।

९. एवं दिशा विदिशा विषे, दिशि ना बे सूत्र कहाय।
दोय सूत्र छै विदिशि ना, हिव प्रकारंतरे वाय।।

१०. छै प्रभु ! द्वीप संबंधिया, बाजै थोडा तेह सहित वाय।
पथ्य मंद महा अर्थ में ? जिन कहै हंता थाय।।

११. छै प्रभु ! समुद्र संबंधिया, बाजै अल्प तेह सहित वाय।
पथ्य मंद महा अर्थ में ? जिन कहै हंता थाय।।

१२. चिउं वायु द्वीप संबंधिया प्रभु ! जिण काले बाजंत।
तिण काले उदधि संबंधिया पिण, च्यारूंइ वायरा हुंत।।

---

* लय : इण सावां रा भेष में······

१. प्रथम उद्देशके दिक्षु दिवसादिविभाग उक्तः, द्वितीये तु तास्वेव वातं प्रतिपिपादयिषुर्वातभेदांस्तावदभिधातुमाह— (वृ० प० २११)

२. रायगिहे नगरे जाव एवं वयासी—

३. अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरेवाया
मनाक् सत्रेहवाताः (वृ० प० २१२)

४. पत्था वाया मंदा वाया महावाया वायंति ?
हंता अत्थि। (श० ५/३१)
पथ्या वनस्पत्यादिहिता वायवः (वृ० प० २१२)

५. अत्थि णं भंते ! पुरत्थिमे णं ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मंदा वाया महावाया वायंति ?
हंता अत्थि। (श० ५/३२)

६. एवं पच्चत्थिमे णं, दाहिणे णं, उत्तरेणं उत्तर-पुरत्थिमे णं, दाहिण-पच्चत्थिमे णं, दाहिणपुरत्थिमे णं, उत्तर-पच्चत्थिमे णं। (श० ५/३३)

७. जया णं भंते! पुरत्थिमे णं ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मंदा वाया महावाया वायंति, तया णं पच्चत्थिमे णं वि ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मंदा वाया महावाया वायंति।

८. जया णं पच्चत्थिमे णं ईसिं पुरेवाया पत्थावाया मंदा वाया महावाया वायंति, तया णं पुरत्थिमे ण वि ?
हंता गोयमा ! (श० ५/३४)

९. एवं दिसासु विदिसासु (श० ५/३५)
इह च द्वे दिक्सूत्रे द्वे विदिक्सूत्रे इति
(वृ० प० २१२)

१०. अत्थि णं भंते ! दीविच्चया ईसिं पुरेवाया ?
हंता अत्थि। (श० ५/३६)

११. अत्थि णं भंते ! सामुद्दया ईसिं पुरेवाया ?
हंता अत्थि। (श० ५/३७)

१२. जया णं भंते ! दीविच्चया ईसिं पुरेवाया, तया णं सामुद्दया वि ईसिं पुरेवाया,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. चिउं वायु समुद्र संबंधिया, जिण काले बाजंत ।
द्वीप संबंधिया वायरा पिण, तिण काले चिउं हुंत ?
१४. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, प्रभु! किण अर्थे इम वाय ?
द्वीप समुद्र ना वायरा, समकाले नहिं थाय ।।

१५. जिन कहै ते वायरा तणें, विपरीतपणों मांहोमांहि ।
तिण सूं लवणसमुद्र नी वेल नैं, अतिक्रमै नहिं ताहि ।।
१६. तथाविध वाय द्रव्य ना, समर्थपणां थी कहाय ।
वेल ना तथाविध स्वभाव थी, तथा लोक ना स्वभाव थी ताय ।।
१७. तिण अर्थे द्वीप उदधि ना, वायु समकाले नहिं होय ।
अक्षरार्थ ए आखियो, तथा वृत्ति टबा थी जोय ।।

१८. धर्मसीह कह्यो द्वीप नैं विषे, वायु जे बाजतो होय ।
ते समुद्र विषे आवै नहीं, तसुं परमारथ जोय ।।
१९. द्वीप नो वायु समुद्र नी, वेल अतिक्रमै नांहि ।
धर्मसीह कृत ते यंत्र छै, एह अर्थ तिण मांहि ।।
२०. हिवै वायु नो बाजवो, तेहना छै तीन प्रकार ।
त्रिण सूत्र त्रिण भेदे करी, कहियै ते अधिकार ।।
२१. हे भगवंत ! वायू अछै, थोडा सा तेह सहीत ।
बाजै पथ्य मंद महा वायरो ? जिन कहै हंता प्रतीत ।।
२२. ए चिहुं वायु बाजे कदा प्रभु ! जिन कहै वाऊकाय ।
स्वभाव गति करि चालतां, बाजै च्यारूं वाय ।।

२३. हे भगवंत ! वायू अछै, थोडा सा तेह सहीत ।
बाजै पथ्य मंद महा वायरो? जिन कहै हंता प्रतीत ।।
२४. ए चिहुं वायु बाजे कदा प्रभु ! जिन कहै वाऊकाय ।
उत्तर-क्रिया गति चालतां, बाजे च्यारूं वाय ।।

२५. ऊदारीक तसुं मूलगो, वैक्रिय उत्तरकाय ।
ते आश्रय क्रिया गति चालवूं, ते उत्तर-क्रिया कहाय ।।

२६. हे भगवंत ! वायू अछै थोडा सा तेह सहीत ।
बाजे पथ्य मंद महा वायरो ? जिन कहै हंता प्रतीत ।।
२७. ए चिहुं वायु बाजै कदा ? जिन कहै वाउकुमार ।
अथवा वाउकुमार नीं, बहु देवी तिण वार ।।
२८. आपण पर बेहुं तणें, प्रयोजने कहिवाय ।
करै ऊदीरणा वाउकाय नीं, बाजै तब चिउं वाय ।।

१३. जया णं सामुद्दया ईसिं पुरेवाया, तया णं दीविच्चया वि ईसिं पुरेवाया ?
१४. णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ५/३८)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जया णं दीविच्चया ईसिं पुरेवाया, णो णं तया सामुद्दया ईसिं पुरेवाया, जया णं सामुद्दया ईसिं पुरेवाया, णो णं तया दीविच्चया ईसिं पुरेवाया ?
१५. गोयमा ! तेसिं णं वायाणं अण्णमण्णविवच्चासेणं लवणसमुद्दे वेलं नाइक्कमइ ।
१६. तथाविधवातद्रव्यसामर्थ्याद्वेलायास्तथास्वभावत्वाच्चेति । (वृ० प० २१२)
१७. से तेणट्ठेणं जाव णो णं तया दीविच्चया ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मंदा वाया महावाया वायंति ।
(श० ५/३९)

२१. अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरेवाया पत्था वाया मंदा वाया महावाया वायंति ? हंता अत्थि। (श० ५/४०)
२२. कया णं भंते ! ईसिं पुरेवाया जाव वायंति ?
गोयमा ! जया णं वाउयाए अहारियं रियति, तया णं ईसिं पुरेवाया जाव वायंति । (श० ५/४१)
२३. अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरेवाया ?
हंता अत्थि । (श० ५/४२)
२४. कया णं भंते ! ईसिं पुरेवाया ?
गोयमा ! जया णं वाउयाए उत्तरकिरियं रियइ, तया णं ईसिं पुरेवाया जाव वायंति । (श० ५/४३)
२५. वायुकायस्य हि मूलशरीरमौदारिकमुत्तरं तु वैक्रियमत उत्तर—उत्तरशरीराश्रया क्रिया गतिलक्षणा यत्र गमने तदुत्तरक्रियं । (वृ० प० २१२)
२६. अत्थि णं भंते ! ईसिं पुरेवाया ?
हंता अत्थि । (श० ५/४४)
२७. कया णं भंते ! ईसिं पुरेवाया पत्था वाया ?
गोयमा ! जया णं वाउकुमारा, वाउकुमारीओ वा
२८. अप्पणो परस्स वा तदुभयस्स वा अट्ठाए वाउकायं उदीरेंति तया णं ईसिं पुरेवाया जाव वायंति ।
(श० ५/४५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. वाऊ तणा अधिकार थी, वलि कहियै छै तास ।
प्रभु ! वाउकाय वायु प्रतै, ग्रहै छै सास उसास ।।

३०. जेम खंधक आलावो कह्यो, तिमज आलावा च्यार[1] ।
प्रथम तो सासउस्सास ले, वायरा नों ईज तिवार ।।

३१. वाऊकाय वाउकाय में, मरी-मरी उपजंत ।
अनेक लाखां भव इम करै, ए दूजो आलावो कहंत ।।

३२. शस्त्र थकी फर्स्यां मरै, फर्स्यां विना न मरेह ।
ए तीजो आलावो जाणवो, चउथो शरीर नुं एह ।।

३३. ओदारिकादि रहित नीकले, तेजस कार्मण सोय ।
ए बेहुं शरीर सहित नीकले, ए चोथो आलावो जोय[2] ।।

३४. देश बावनमां अंक नों, छिहुंतरमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय|थी, 'जय-जश' मंगलमाल ।।

२६. वायुकायाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २१२)
वाउयाए णं भंते ! वाउयायं चेव आणमंति वा ? पाणमंति वा ? ऊससंति वा ? नीससंति वा ?

३०. जहा खंदए तथा चत्तारि आलावगा नेयव्वा अणेगसय-सहस्स पुट्ठे उद्दाइ ससरीरी निक्खमइ । (सं० पा०) (श० ५/४६)

३१. वाउयाए णं भंते ! वाउयाए णं वाउयाए चेव अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाति ?
हंता गोयमा ! वाउयाएणं वाउयाए चेव अणेगसय-सहस्सखुत्तो उद्दाइता उद्दाइता तत्थेव भुज्जो भुज्जो पच्चायाति । (श० ५/४७)

३२. से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाति ? अपुट्ठे उद्दाति ?
गोयमा ! पुट्ठे उद्दाति, नो अपुट्ठे उद्दाति । (श० ५/४८)

३३. से भंते ! किं ससरीरी निक्खमइ ? ... .....
ओरालिय-वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेययकम्मएहिं निक्खमइ । (श० ५/४६,५०)

## ढाल : ७७

### दूहा

१. पूर्वे वायू चिंतव्युं, वनस्पत्यादि शरीर ।
तास प्रश्न पूछै हिवै, इंद्रभूति बडवीर ।।

१. वायुकायश्चिन्तितः, अथ वनस्पतिकायादीन् शरीरतश्चिन्तयन्नाह— (वृ० प० २१२)

---

१. भगवई श० २/८-१२

२. इस ढाल की तीसवीं गाथा में 'जेम खंदक आलावो' कहकर संक्षिप्त पाठ के आधार पर जोड़ की गई है। उसके सामने पाद टिप्पण का संक्षिप्त पाठ उद्धृत किया गया है। स्कन्दक-आलापकों की भुलावण देने के बावजूद आगे ३१-३३ में उन्हीं आलापकों को आंशिक रूप में स्पष्ट किया गया है। इसलिए तीसवीं गाथा के सामने संक्षिप्त पाठ उद्धृत करने पर भी अगली गाथाओं के सामने कुछ पाठ अंगसुत्ताणि भाग २ श० ५/४६-५० का लिखा गया है। क्योंकि जोड़ के साथ तुलना करने की दृष्टि से यह आवश्यक समझा गया।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. *अथ हिव प्रभुजी! हो, चोखा ओदन कहाय, कुलमाषा कुलथ थाय ।
सुरा ते मदिरा जाणियै ए ।।

३. पृथ्वी प्रमुख हो, आखी छै छ काय, केहना शरीर कहाय?
ए गोयम प्रश्न पिछाणियै ।।

४. श्री जिन भाखै हो, चोखा कुलथ ए ताय, पूर्व भाव पेक्षाय ।
वनस्पति जीव तनु अछै ।।

५. ऊंखल मूसल हो, यंत्र शस्त्र थी ताय, अतिक्रमी पूर्व पर्याय ।
ते शस्त्र-अतीत थया पछै ।।

६. शस्त्रे करिनैं हो, परिणमाया छै ताय, कीधा नव पर्याय ।
तेह शस्त्रपरिणामिया ।।

७. अग्नि करिनैं हो, तेह धम्या छै अथाग, निज वर्ण नुं परित्याग ।
तास कह्या अगणिज्झामिया ।।

८. वलि अग्नि करि हो, पूर्व स्वभाव पिछाण, तेह खपाव्या जाण ।
अगणिझूसिया ते कह्युं ।।

९. अग्नि कर सेव्या हो, अग्निसेविया ताम, अग्नि परिणामिया आम।
उष्ण परिणामपणुं लह्युं ।।

१०. अथवा आख्या हो, सत्थातीया आदि, शस्त्र अग्नि तेहिज साधि ।
शस्त्र अनेरो गिण्यूं नहीं ।।

११. ओदन कुलमाषा हो, ए बेहुं ही सोय, अग्नि परिणम्या जोय ।
अग्नि जीव तनु तसुं कही ।।

१२. सुरा द्रव्य ना हो, भेद कह्या छै दोय, घन द्रव्य, कठण सुजोय ।
गुल धातकी पुष्पादिक तणो ।।

१३. दूजो द्रव द्रव्य हो, पतली मदिरा एह, भेद सुरा ना ए बेह ।
हिव लेखो शरीर तणो सुणो ।।

१४. सुरा द्रव्य नों हो, घन द्रव्य प्रथम कहिवाय, पूर्व भाव पेक्षाय ।
वनस्पति नों शरीर छै ।।

१५. सत्थातीया हो, प्रमुख पाठ छै ताय, अग्नि शस्त्र परिणमाय ।
अग्नि जीव तनु ते पछै ।।

१६. पतली मदिरा हो, द्रव द्रव्य दूजो ताय, ते पूर्व पर्याय ।
आऊ जीव नों शरीर छै ।।

१७. सत्थातीया हो, प्रमुख पाठ कहिवाय, अग्नि शस्त्र परिणमाय ।
अग्नि जीव तनु ते पछै ।।

* लय : हिव राणी नै हो समभावं.........

२,३. अह णं भंते ! ओदणे, कुम्मासे, सुरा—एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया ?

४. गोयमा ! ओदणे कुम्मासे सुराए य जे घणे दव्वे—एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा ।

५. तओ पच्छा सत्थातीया,
शस्त्रेण— उदूखलमुशलयंत्रकादिनाकरणभूतेनातीतानि—अतिक्रान्तानि पूर्वपर्यायमिति शस्त्रातीतानि । (वृ० प० २१३)

६. सत्थपरिणामिया,
शस्त्रेण परिणामितानि—कृतानि नवपर्यायाणि शस्त्रपरिणामितानि । (वृ० प० २१३)

७. अगणिज्झामिया,
वह्निना ध्यामितानि—श्यामीकृतानि स्वकीयवर्णत्याजनात् । (वृ० प० २१३)

८. अगणिझूसिया,
अग्निना शोषितानि पूर्वस्वभावक्षपणात् । (वृ० प० २१३)

९. अग्निना सेवितानि वा
अगणिपरिणामिया
संजाताग्निपरिणामानि उष्णयोगादिति । (वृ० प० २१३)

१०. अथवा 'सत्थातीता' इत्यादौ शस्त्रमग्निरेव (वृ० प० २१३)

११. अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया ।

१२,१३. सुरायां द्वे द्रव्ये स्यातां—घनद्रव्यं द्रवद्रव्यं च । (वृ प० २१३)

१४. अतीतपर्यायप्ररूपणामङ्गीकृत्य वनस्पतिशरीराणि, पूर्वं हि ओदनादयो वनस्पतयः । (वृ० प० २१३)

१६. सुराए य जे दवे दव्वे—एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च आउजीवसरीरा ।

१७. तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया । (श ५/५१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. कह्यु धर्मसी हो, मदिरा प्रथम उपन्न, वनस्पति नुं तन्न ।
रस थयां अप नो शरीर छै।।

१९. अग्नि चढाव्यो हो, अग्नि शरीर पिछाण, यंत्र धर्मसी नुं जाण ।
तिण में ए अर्थ कियो अछै।।

२०. अथ प्रभु! लोहडो हो, तांबो तरुवो जान, सीसो दग्ध पाषान ।
कसवटी कट्ट धातु कही।।

२०. अह णं भंते ! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया—
उवलेत्ति इह दग्धपाषाणः कसट्टिय त्ति कट्टः
(वृ० प० २१३)

२१. किसी काय ना हो, एह शरीर कहाय ? जिन कहै ए सहु ताय ।
पूर्व भाव पृथ्वी ना सही।।

२१. एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले कसट्टिया—
एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च पुढवीसरीरा ।

२२. सत्थातीता हो, प्रमुख पाठ कहिवाय, अग्नि शस्त्र परिणमाय ।
अग्नि जीव तनुं ते पछै।।

२२. तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया । (श० ५।५२)

२३. अथ प्रभु! अस्थि हो, बल्यो हाड वलि तेह, चरम बल्यो-चरम जेह ।
रोम नैं रोम-दहीजिया।।

२३. अह णं भंते ! अट्ठी, अट्ठिज्झामे, चम्मे, चम्मज्झामे, रोमे, रोमज्झामे,

२४. सींग दग्ध-सींग हो, खुर नैं बलि खुर-झाम, नख दग्ध-नख ताम ।
केहना शरीर कहीजिया ?

२४. सिंगे, सिंगज्झामे, खुरे, खुरज्झामे, नखे, नखज्झामे एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया ?

२५. श्री जिन भाखै हो, हाड चरम रोम जाण, नख खुर सींग[1] पिछाण ।
त्रस प्राण जीव ना शरीर छै।।

२५. गोयमा ! अट्ठी, चम्मे, रोमे, सिंगे, खुरे, नखे एए णं तसपाणजीवसरीरा ।

२६. ए छहुं बाल्या हो, त्रस तनु पूर्व पर्याय, अग्नि शस्त्रे परिणमाय ।
अग्नि शरीर कह्या पछै।।

२६. अट्ठिज्झामे, चम्मज्झामे, रोमज्झामे, सिंगज्झामे, खुरज्झामे नखज्झामे—एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा । तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया । (श० ५।५३)

२७. प्रभु ! अंगारा हो, एह कोयला कहाय, छार भस्म कहिवाय ।
भुस ते जव गोहूं ना चोथो छगण ही।।

२७. अह णं भंते ! इंगाले छारिए भुसे गोमए—

२८. इहां भुस गोबर हो, गया काल नीं पर्याय, ते आश्री कह्या ताय ।
पिण दग्ध अवस्था बिहूं कही।।

२८. इह च बुसगोमयौ भूतपर्यायानुवृत्त्या दग्धावस्थौ ग्राह्यौ । (वृ० प० २१३)

२९. ए च्यांरूइ हो, केहना शरीर कहिवाय ? हिव भाखै जिनराय ।
पूर्व भाव कहाविया।।

२९. एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! इंगाले, छारिए, भुसे गोमए--एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च

३०. जीव एकेंद्री हो, जाव पंचेंद्री विचार, तास शरीर व्यापार ।
तेणे करीनें परिणामिया।।

३०. एगिंदियजीवसरीरप्पयोगपरिणामिया वि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पयोगपरिणामिया वि ।

३१. आख्यो वृत्ति में हो, बेंद्रि आदि प्रयोग, यथासंभव कहिवूं योग ।
पिण सर्व ही पद नैं विषै नहीं।।

३१. द्वीन्द्रियादिजीवशरीरपरिणतत्वं च यथासंभवमेव न तु सर्वपदेष्विति । (वृ० पं २१३)

३२. पूर्व अंगारा हो, भस्म एकेंद्रियादि जाण, तास शरीर पिछाण ।
ईंधण एकेंद्रियादि तनु सही।।

३२. तत्र पूर्वमङ्गारो भस्म चैकेन्द्रियादिशरीररूपं भवति, एकेन्द्रियादिशरीराणामिन्धनत्वात् । (वृ० प० २१३)

---

१. अंग सुत्ताणि भाग २ में नख के स्थान पर सींग और सींग के स्थान पर नख पाठ है। सम्भव है जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में वैसा पाठ रहा हो। अंगसुत्ताणि में पाठान्तर का कोई उल्लेख नहीं है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. भुस जव गोहूं ना हो, हरित अवस्था जोय, एकेंद्री तनु होय ।
तिण सूं एकेंद्री तणुं शरीर छै ।।
३४. छगण तृणादि हो, अवस्था विषे जोय, एकेंद्री तनु होय ।
तेहथी प्रयोग परिणाम छै ।।
३५. वलि गायादिक हो, बेंद्री प्रमुख भखंत, तेहनुं पिण तनु हुंत ।
तिण सूं बेंद्री प्रमुख त्रस पाठ ही ।।
३६. बलि ते च्यारूं हो, सत्थातीया थाय, जाव अग्नि परिणमाय ।
अग्नि शरीर कह्यु सही ।।
३७. ए तो आख्यो हो, पृथ्वी प्रमुख विचार, हिव अपकाय प्रकार ।
लवणसमुद्र तणो कहै ।।
३८. प्रभु! लवणोदधि हो, छै कितलो चक्रवाल, विखंभ पिहुलपणें न्हाल?
जीवाभिगम नें विषे लहै ।।
३९. जाव लोक-स्थिति हो, त्यां लग कहिवूं तास, वारू अर्थ विमास ।
संक्षेप मात्र कहीजियै ।।
४०. जल नीं संख्या हो, ऊंची सोलै हजार, सहस्र योजन ऊंडो सार ।
सतरै हजार लहीजियै ।।
४१. जे उदके करि हो, जंबूद्वीप नें ताय, जलमय करतो नाय ।
हे प्रभु ! ए किण कारणे ?
४२. श्री जिन भाखै हो, तीर्थंकर जिन देव, चक्री बल वासुदेव ।
जंघाचारण विद्याचारणै ।।
४३. बलि विद्याधर हो, तीर्थ च्यार प्रभाव, भद्रक मनुष्य स्वभाव ।
स्वभावे क्रोधादि पातला ।।
४४. बलि स्वभावे हो, मनुष्य विनीत कहाय, अविनय अवगुण नांय ।
प्रतिपक्ष वचने कह्या भला ।।
४५. बलि जुगलिया हो, देव देवी बहु देख, तास प्रभावे पेख ।
जलमय जंबू करै नहीं ।।
४६. लोक स्थिति हो, लोक तणो अनुभाव, एह अनादि कहाव ।
ए जीवाभिगम थी कह्यं सही ।।
४७. जिन प्रतिमा नें हो, प्रभावे कह्यु नांय, देखो दिल रै मांय ।
ज्ञान नेत्रे करि देखियै ।।
४८. सेवं भंते ! हो, सेवं भंते ! ताम, इम कहि गोतम स्वाम ।
यावत् विचरै विसेखियै ।।
४९. बावन अंके हो, ढाल सितंतरमीं ताय, भिक्षु भारीमल ऋषराय ।
'जय-जश' हरष बधावणा ।।
५०. सम्यक् ज्ञानी हो, तेहनीं कही सत्य वाय, मिथ्यादृष्टि नीं ताय ।
हिव तसु असत्य परूपणा ।।

**पंचमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।। ५।२ ।।**

३३. बुसं तु यवगोधूमहरितावस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्,
(वृ० प० २१३,२१४)

३४. गोमयस्तु तृणाद्यवस्थायामेकेन्द्रियशरीरम्,
(वृ० प० २१४)

३५. द्वीन्द्रियादीनां तु गवादिभिर्भक्षणे द्वीन्द्रियादिशरीरमिति । (वृ० प० २१४)

३६. तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया । (श० ५।५४)

३७. पृथिव्यादिकायाधिकारादप्कायरूपस्य लवणोदधेः स्वरूपमाह— (वृ० प० २१४)

३८. लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते ?
उक्ताभिलापानुगुणतया नेतव्यं जीवाभिगमोक्तं लवणसमुद्रसूत्रम् । (जी० सू० ७०६)
(वृ० प० २१४)

३९. एवं नेयव्वं जाव लोगट्ठिई,

४६. लोगाणुभावे । (श० ५।५५)

४८. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव विहरइ । (श० ५।५६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ७८

### दूहा

१. द्वितीय उदेशक अंत में, सत्य परूपण ख्यात ।
तृतीय आदि अन्ययुथिक नीं, असत्य परूपण आथ ।।

२. अन्यतीर्थी प्रभु ! इह विधे सामान्ये आखंत ।
भाखै तेह विशेष थी, हेतु करि पन्नवंत ।।

३. परूपणा कहै भेद करि, यथानाम दृष्टंत ।
जालगंठिया जे हुइं, निसुणो तेह उदंत ।।

*हो प्रभुजी ! देव जिनेन्द्र दाखीजै ।
भिन्न भिन्न भेद भाखीजै, हो जिनजी ! कृपा अनुग्रह कीजै (ध्रुपदं)

४. मच्छ नुं बंधन जाल तेहनी परि, गंठि अछै जिह मांही ।
केहवै स्वरूपे जाल हुवै जे, आगल ते कहिवाई ।।

५. आणुपुव्विगढिया ते अनुक्रम—परिपाटिये गूंथी जेह ।
पहिला देवा योग्य गांठ पहिलां दीधी, छेहडे देवा योग्य दीधी छेह ।।

६. एहिज कहै छै विस्तार करीनें, अनंतरगढिया त्यांही ।
पहिली गांठ नें अन्तर रहित गांठ दीधी छै ज्यांही ।।

७. परंपरगढिया ते परंपराए, अनंतर गांठ थी ताह्यो ।
गांठ अनेरी दीधी छै वलि, एतलै स्यूं कहिवायो ।।

८. अण्णमण्णगढिया एक गांठ सूं, गांठ अनेरी दीधी ।
तेह गांठ सूं वलि अन्य दीधी, गूंथी अन्योऽन्य सीधी ।।

९. अण्णमण्णगरुयत्ताए कहितां, गूंथवा थी मांहोमांय ।
विस्तीर्ण भाव कीधा तेहनें, अण्णमण्ण गुरुपणो थाय ।।

१०. अण्णमण्णभारियत्ताए कहितां, कीधा भारपणै मांहोमांय ।
गुरुभार ए जुदा कह्या छै, हिवै इक पद विहुं कहिवाय ।।

१. अनन्तरोक्तं लवणसमुद्रादिकं सत्यं सम्यग्ज्ञानिप्रतिपादितत्वाद्, मिथ्याज्ञानिप्रतिपादितं त्वसत्यमपि स्यादिति दर्शयंस्तृतीयोद्देशकस्यादिसूत्रमिदमाह—
(वृ० प० २१४)

२. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति भासंति पण्णवेंति ।

३. परूवेंति—से जहानामए जालगंठिया सिया ···

४. जालं—मत्स्यबन्धनं तस्येव ग्रन्थयो यस्यां सा जालग्रन्थिका— जालिका, किंस्वरूपा सा ?
(वृ० प० २१४)

५. आणुपुव्विगढिया
आनुपूर्व्या—परिपाट्या ग्रथिता—गुम्फिता आद्युचितग्रन्थीनामादौ विधानाद् अन्तोचितानां क्रमेणान्त एव करणात्,

६. अणंतरगढिया (वृ० प० २१४)
एतदेव प्रपञ्चयन्नाह—'अनंतरगढिय' त्ति प्रथमग्रन्थीनामनन्तरं व्यवस्थापितैर्ग्रन्थिभिः सह ग्रथिता अनन्तरग्रथिता, (वृ० प० २१४,२१५)

७. परंपरगढिया
परम्परैः— व्यवहितैः सह ग्रथिता परम्परग्रथिता,
(वृ० प० २१५)

८. अण्णमण्णगढिया,
अन्योऽन्यं—परस्परेण एकेन ग्रन्थिना सहान्यो ग्रन्थिरन्येन च सहान्य इत्येवं ग्रथिता अन्योऽन्यग्रथिता,
(वृ० प० २१५)

९. अण्णमण्णगरुयत्ताए
अन्योऽन्येन ग्रन्थनाद् गुरुकता—विस्तीर्णता अन्योऽन्यगुरुकता, (वृ० प० २१५)

१०. अण्णमण्णभारियत्ताए
अन्योऽन्यस्य यो भारः स विद्यते यत्र तदन्योऽन्यभारिकं तद्भावस्तत्ता, (वृ० प० २१५)

---

*लय : आधाकर्मी थानक में साधु ·····



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. अण्णमण्णगरुयसंभारियत्ताए, मांहोमांहे प्रसीधा।
विस्तीर्णपणैं कीधा छै जे, वले भारीपणे पिण कीधा।।

१२. अण्णमण्णघडत्ताए मांहोमांहे समुदाय रचना जे मांय।
तेहपणैं रहे छै ए दृष्टंत, दार्ष्टांतिक हिव कहिवाय।।

१३. इण न्याय करी घणां जीव संबंधी, बहु देवादि जन्म रै मांय।
बहु आयु सहस्र ते आउखा ना स्वामी, वलि जन्म स्वामी ते कहाय।।

१४. अनुक्रम बहु आयु बांध्या थका ईज, जाव रहै बहु जंतु।
भारपणो कर्म पुद्गल अपेक्षा, हिवैं किम आयु वेदंतु।।

१५. इक पिण जीव समय इक मांहे, आउखा भोगवै दोय।
इह भव नों जे आउखो भोगवै, वलि पर भव नों सोय।।

१६. जे समय इह भव नुं आउखो भोगवै, ते समय पर भव नुं वेदंत।
प्रथम-शतक[1] में विस्तार कह्यो छै, जावत् किम भयवंत।।

१७. श्री जिन भाखै जे अन्यतीर्थी, बात कही ते मिच्छा।
हूं पिण एम कहूं छूं गोयम ! सांभलजै धर इच्छा।
(रे गोयम ! सांभल्जै चित ल्याय)।।

१८. वृत्तिकार कह्यु अन्यतीर्थी नुं, मिथ्यापणुं ए कहियै।
घणां जीवा नां बहु आयु विषे जे, जालग्रन्थिका ज्यूं रहियै।।
(रे भवियण ! सांभलजो चित ल्याय)।।

१९. घणां जीवां रा आउखा छै ते, मांहोमां बंध्या कहै अनाणी।
जालग्रन्थिका ज्यूं परस्परे ते, आयु बंध्या कहै जाणी।।

२०. इक नों आयु बीजा ना आयु साथे, बीजा नुं आयु तीजा संघात।
इम बहु जीवां ना आयु मांहोमां, बंध्या कहै ते मिथ्यात।।

२१. इम जालग्रन्थिका ज्यूं आयु हुवै तो, सर्व जीवा नैं जाणी।
सर्व आउ वेदवै करि सहु भव, उत्पत्ति प्रसंग पिछाणी।।

२२. सहु जीवायु मांहोमां संबंध हुवै तो, तिण लेखे भूठ एकंत।
असंबंध हुवै तो इक भव मांहे, इक समय बे आयु न वेदंत।।

1. भगवई १।४२०

११. अण्णमण्णगरुयसंभारियत्ताए
अन्योऽन्येन गुरुकं यत्सम्भारिकं च तत्तथा तद्भावस्तत्ता, (वृ० प० २१५)

१२. अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठइ;
अन्योऽन्यं घटा—समुदायरचना यत्र तदन्योऽन्यघटं तद्भावस्तत्ता इति दृष्टान्तोऽथ दार्ष्टान्तिक उच्यते— (वृ० प० २१५)

१३. एवामेव बहूणं जीवाणं बहूसु आजातिसहस्सेसु बहूइं आउयसहस्साइं
अनेनैव न्यायेन बहूनां जीवानां सम्बन्धीनि 'बहूसु आजाइसहस्सेसु' त्ति अनेकेषु देवादिजन्मसु प्रतिजीवं क्रमप्रवृत्तेष्वधिकरणभूतेषु बहून्यायुष्कसहस्राणि तत्स्वामिजीवानामाजातीनां च बहुशतसहस्रसंख्यत्वात्, (वृ० प० २१५)

१४. आणुपुव्विगढियाइं जाव चिट्ठंति।
आनुपूर्वीग्रथितानीत्यादि पूर्ववद्व्याख्येयं नवरमिह भारिकत्वं कर्मपुद्गलापेक्षया वाच्यम्। (वृ० प० २१५)

१५. एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं दो आउयाइं पडिसंवेदेइ, तं जहा—इहभवियाउयं च, परभवियाउयं च।

१६. जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ, तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ। (श० ५/५७)
से कहमेयं भंते ! एवं ?

१७. गोयमा ! जण्णं तं अण्णउत्थिया तं चेव जाव परभवियाउयं च। जे ते एवमाहंसु तं मिच्छा, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि, भासामि पण्णवेमि परूवेमि—

१८. मिथ्यात्वं चैषामेवम्—यानि हि बहूनां जीवानां बहून्यायूंषि जालग्रन्थिकावत्तिष्ठन्ति। (वृ० प० २१५)

२१. तथाऽपि तत्कल्पने जीवानामपि जालग्रंथिकाकल्पत्वं स्यात्तत्संबद्धत्वात्, तथा च सर्वजीवानां सर्वायुःसंवेदनेन सर्वभवभवनप्रसङ्ग इति (वृ० प० २१५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. इक जीव समय इक बे आयु वेदैं, ते मिथ्या इण न्यायो।
इक समय बे आउ वेदवै युगपत, बे भव ना प्रसंग थी ताह्यो॥

२४. जिन कहै हूं बलि एम कहूं छूं, जालग्रन्थिका दृष्टंत।
संकलिका मात्र छै इण पक्षे, जाव समुदाय रचना रहंत॥

२५. इण दृष्टांते इक-इक जीव नैं, पिण बहु जीवां रै नहिं मांहोमांहि।
बहु जन्म सहस्र विषे घणां आउखा ना, सहस्र गमे थया ताहि॥

२६. काल अतीत विषे अनुक्रमै, बहु आयु सहस्र थया ताह्यो।
वर्तमान भव तांई कहियै, निसुणो तेहनुं न्यायो॥

२७. अन्य भव अन्य भवे करि आयु-प्रतिबद्ध बंध कहायो।
सर्व परस्पर इम आयु-बंध ह्वै, पिण इक भव बहु न बंधायो॥

२८. अनुक्रमै जाव एम रहै छै, इक जीव समय इक मांह्यो।
इक आयु वेदै ते इह भव नं, तथा परभव नुं वेदायो॥

२९. जे समय इह भव ते, वर्तमान भव नों आउखो वेदै जेह।
ते समय विषे परभव नुं आउखो निश्चय नहीं वेदेह॥

३०. जे समय विषे परभव नुं आउखो वेदै छै जीव।
ते समय विषे इह भव नुं आउखो, वेदै नहीं अतीव।

३१. इह भव नों आउखो वेदवै करि, परभव नुं आयु न वेदंत।
पर भव नों आउखो वेदवै करि, इह भव नों नहीं भोगवंत॥

३२. इम निश्चय इक जीव एक समय करि, आउखो एक वेदंत।
इह भव नुं अथवा परभव नुं, वलि आयु अधिकार कहंत॥

३३. जीव प्रभु! जावा जोग्य नरक में, स्यूं आयु सहित जावंत।
कै आउखा रहित जावै छै? हिव भाखै भगवंत॥

३४. आउखा सहित जावै छै नरके, आउखा रहित न जाय।
एम सुणी नैं गोतम स्वामी, प्रश्न करै बलि ताय॥

३५. ते प्रभु! आयु किहां कियो बांध्यो, वलि ते किहां समाचरित्तं?
ए आयु ना कारण अंगीकरण थी, हिवै जिन उत्तर कहित्तं॥

३६. पूर्वं भवे कियो बांध्यो आउखो, पाछल भव समाचरित्तं।
आउ ना कारण अंगीकरण थी, इम जाव वैमानिक कहित्तं॥

२३. यच्चोक्तमेको जीव एकेन समयेन द्वे आयुषी वेदयति तदपि मिथ्या, आयुर्द्वयसंवेदने युगपद्भवद्वयप्रसङ्गा-दिति। (वृ० प० २१५)

२४. से जहानामए जालगंठिया सिया जाव अण्णमण्ण-घडत्ताए चिट्ठति। इह पक्षे जालग्रन्थिका—सङ्कलि-कामात्रम् (वृ० प० २१५)

२५., २६. एवामेव एगमेगस्स जीवस्स बहूहिं आजाति-सहस्सेहिं बहूइं आउयसहस्साइं आणुपुव्विगढियाइं जाव चिट्ठंति

एकैकस्य जीवस्य न तु बहूनां बहुधा आजाति-सहस्रेषु क्रमवृत्तिष्वतीतकालिकेषु तत्कालापेक्षया सत्सु बहून्यायुःसहस्राण्यतीतानि वर्तमानभवान्तानि। (वृ० प० २१५)

२७. अन्यभविकमन्यभविकेन प्रतिबद्धमित्येवं सर्वाणि परस्परं प्रतिबद्धानि भवन्ति न पुनरेकभव एव बहूनि। (वृ० प० २१५)

२८. एगे वि य णं जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पडि-संवेदेइ, तं जहा—इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा।

२९. जं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ, नो तं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ।

३०. जं समयं परभवियाउयं पडिसंवेदेइ, नो तं समयं इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ।

३१. इहभवियाउयस्स पडिसंवेदणाए, नो परभवियाउयं पडिसंवेदेइ। परभवियाउयस्स पडिसंवेदणाए, नो इहभवियाउयं पडिसंवेदेइ।

३२. एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एगं आउयं पडि संवेदेइ, तं जहा – इहभवियाउयं वा, परभवियाउयं वा। (श० ५/५८)

३३. जीवे णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! किं साउए संकमइ? निराउए संक-मइ?

३४. गोयमा! साउए संकमइ, नो निराउए संकमइ। (श०५/५९)

३५. से णं भंते! आउए कहिं कडे? कहिं समाइण्णे?

३६. गोयमा! पुरिमे भवे कडे, पुरिमे भवे समाइण्णे। एवं जाव वेमाणियाणं दंडओ। (श० ५/६०, ६१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. जे योनि उपजवा योग्य प्रतै प्रभु ! ते आयु प्रतै पकरंत ?
नरक तिर्यंच नर सुर आयु प्रति ? जिन कहै हंता तंत ।।

३८. नरक नों आउखो करते छते जे, बांधै सात प्रकारे ।
रत्नप्रभा जाव अहेसप्तमी, ए नरक आयु प्रति धारे ।।

३९. तिर्यंच आयु करते छते जे उपार्ज्यो पंच प्रकारे ।
एकेंद्री आयु भेद सहु भणवा, पंचेंद्री तांइ विचारे ।।

४०. मनुष्य आउखो दोय प्रकारे, गर्भज समुच्छिम जंत ।
च्यार प्रकारे सुरायु बांधै, सेवं भंते ! सेवं भंत ।।

४१. पंचम शतके तीजो उदेशो, अठंतरमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल ।।

**पंचमशते तृतीयोद्देशकार्थः ।।५।३।।**

३७. से नूणं भंते ! जे जं भविए जोणिं उववज्जित्तए, से तमाउयं पकरेइ, तं जहा– नेरइयाउयं वा ? तिरिक्खजोणियाउयं वा ? मणुस्साउयं वा ? देवाउयं वा ? हंता गोयमा !

३८. नेरइयाउयं पकरेमाणे सत्तविहं पकरेइ, तं जहा— रयणप्पभापुढविनेरइयाउयं वा जाव अहेसत्तमा- (सं० पा०) पुढविनेरइयाउयं वा ।

३९. तिरिक्खजोणियाउयं पकरेमाणे पंचविहं पकरेइ, तं जहा—एगिंदियतिरिक्खजोणियाउयं वा भेदो सव्वो भाणियव्वो । (सं० पा०)

४०. मणुस्साउयं दुविहं पकरेइ, तं जहा—सम्मुच्छिममणुस्साउयं वा, गब्भवक्कंतियमणुस्साउयं वा । देवाउयं चउव्विहं पकरेइ···
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५/६२,६३)

## ढाल : ७९

### दूहा

१. अन्यतीर्थी छद्मस्थ नी, वक्तव्यता कही एह ।
हिव छद्मस्थ मनुष्य वलि, केवलि तणी कहेह ।।

*जिन वाण सुधारस जानी, आतो हलुकर्मी चित आनी (ध्रुपदं)

२. प्रभु ! मन छद्मस्थ पिछानी, मुख-कर-दंडादि करि जानी ।
संख पटह झालर आदि आनी, एह संबंध थी सुणै सद्दानी ।।

३. संख सींग शब्द सुविधानी, संखिय लघु-संख सुन्हानी ।
काहलि[1] खरमुही कहानी, मोटी काहलि पोया मानी ।।

१. अनन्तरोद्देशकेऽन्ययूथिकछद्मस्थमनुष्यवक्तव्यतोक्ता, चतुर्थे तु मनुष्याणां छद्मस्थानां केवलिनां च प्रायः सोच्यते इत्येवंसंबन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—
(वृ० प० २१६)

२. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ,
मुखहस्तदण्डादिना सह शंखपटहझल्लर्यादिभ्यो वाद्यविशेषेभ्य आकुट्यमानेभ्यो वा एभ्य एव ये जाताः शब्दास्ते (वृ० प० २१६)

३. तं जहा—संखसद्दाणि वा, सिंगसद्दाणि वा, संखियसद्दाणि वा, खरमुहीसद्दाणि वा, पोयासद्दाणि वा, 'संखिय' त्ति शंखिका, ह्रस्वः शङ्खः, 'खरमुहि' त्ति काहला, 'पोया' महती काहला । (वृ० प० २१६)

---

*लय : चिन्तातुर सुन्दर चाली
१. शिवजी का वाद्ययंत्र



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. पिरिपिरिय नुं अर्थ पिछानी, कोलिक ते शूकर-चर्म जानी।
तेणे मंढ्यो वाजंत्र वखानी, सांभल तसु शब्द रसानी॥

४. पिरिपिरियासद्दाणि वा,
'परिपिरिय' त्ति कोलिकपुटकावनद्धमुखो वाद्य-विशेषः (वृ० प० २१६)

५. लघु पडहो ते पणव लहानी, पडह अर्थ ढोल विशेषानी।
भंभा ढक्का दमामा जानी, होरंभा[1] रुढिगम्या कहानी॥

५. पणवसद्दाणि वा, पडहसद्दाणि वा, भंभासद्दाणि वा, होरंभसद्दाणि वा,
'पणव' त्ति भाण्डपटहो लघुपटहो वा तदन्यस्तु पटह इति 'भंभ' त्ति ढक्का 'होरंभ' त्ति रूढिगम्या।
(वृ० प० २१७)

६. भेरि नुं अर्थ ढक्का महानी, झालर वलयाकार प्रसिद्धानी।
दुंदुभि देव-वाजित्र वानी, उक्तानुक्त हिवै संग्रहानी॥

६. भेरिसद्दाणि वा, झल्लरीसद्दाणि वा, दुंदुभिसद्दाणि वा,
'भेरि' त्ति महाढक्का 'झल्लरि' त्ति वलयाकारो वाद्यविशेषः 'दुंदुहि' त्ति देववाद्यविशेषः, अथोक्तानुक्तसंग्रहद्वारेणाह— (वृ० प० २१७)

७. वीणादिक ना शब्द ततानी, वितत पडह प्रमुख जे सद्दानी।
घन ते कंस्य ताल घनानी, वंसादिक ना शब्द झूसरानी॥

७. तताणि वा, विततणि वा, घणाणि वा, झुसिराणि वा?
ततं वीणादिकं ज्ञेयं, विततं पटहादिकं।
घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम्॥
(वृ० प० २१७)

८. जिन भाखै हंता जानी, सुणै छद्मस्थ सर्व सद्दानी।
प्रभु! सुणै स्यूं श्रोत्र फर्स्यानी, कै अणफर्शी सुणै वानी?

८. हंता गोयमा! छउमत्थे णं मणुस्से आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—संखसद्दाणि वा जाव झुसिराणि वा। ताइं भंते! किं पुट्ठाइं सुणेइ? अपुट्ठाइं सुणेइ?

९. जिन कहै सुणै श्रोत्र फर्स्यानी, अणफर्शी सुणै नही वानी।
जाव नियमा छ दिशि संभलानी, प्रथम शतके[2] आहार जिम जानी॥

९. गोयमा! पुट्ठाइं सुणेइ, नो अपुट्ठाइं सुणेइ जाव नियमा (सं० पा०) छद्दिसिं सुणेइ। (श० ५/६४)
'पुट्ठाइं सुणेइ' इत्यादि तु प्रथमशते आहाराधिकारवदवसेयमिति। (वृ० प० २१७)

१०. प्रभु! छद्मस्थ मनुष्य पिछानी, शब्द सांभलै आरगतानो?
श्रोत्र इन्द्रिय विषे आगतानि, ते आरगत शब्द कहानि॥

१०. छउमत्थे णं भंते! मणूसे किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ?
'आरगयाइं' त्ति आराद्भागस्थितानिन्द्रियगोचरमागतानित्यर्थः (वृ० प० २१७)

११. कै शब्द सांभलै पारगतानि? श्रोत्र इंद्रिय विषय न आनी।
कह्या शब्द पारगत तानी, हिव उत्तर दै जिन ज्ञानी॥

११. पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ?
'पारगयाइं' ति इन्द्रियविषयात्परतोऽवस्थितानिति (वृ० प० २१७)

१२. शब्द सांभलै आरगत आनी, इन्द्रिय गोचर आव्या सुणानी।
नहीं सांभलै पारगतानि, श्रोत्र विषय न आव्या तानि॥

१२. गोयमा! आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ। (श० ५/६५)

---

१. ढोल का एक प्रकार
२. भगवई १।३२
आहारोवि जहा पण्णवणाए (प० २८।१) पढमे आहारुद्देसए तहा भाणियव्वो।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. प्रभु ! जिम छद्मस्थ नरानि, शब्द सांभलै आरगतानि ।
नहीं सांभलै पारगतानि, तिम केवली स्यूं ते सुणानि ?

१४. जिन भाखै केवलज्ञानी, आरगत तथा पारगतानी ।
इन्द्रिय गोचर आव्या तानि, तथा नाया इंद्रिये गोचरानि ।।

१५. सव्वदूर पाठ पहिछानी, तसुं अर्थ अतिहि दूर जानी ।
मूलं कहिता अतिही निकटानि, तिहां रह्या शब्द अनेकानि ।।

१६. अतिहि दूरवर्त्ति आख्यानि, वले कह्या अत्यन्त निकटानि ।
हिवै मध्य बीच रह्या यानी, तेहनुं आगल पाठ कहानी ।।

१७. अणंतियं पाठ पिछानी, मध्य बीच रह्या जे शब्दानि ।
आदि अंत मध्य त्रिहुं आनी, योग थी इहां शब्द पिछानी ।।

१८. ते शब्द नें केवलज्ञानी, जाणें देखै महिमानी ।
प्रभु ! किण अर्थ ए कहानि ? वतका केवली नीं वखानि ।।

१९. जिन भाखै केवलज्ञानी, पूर्व दिशि में पहिछानी ।
मियं—प्रमाण सहित द्रव्यानि, जाणै गर्भज मनुष्य जीवानि ।।

२०. अमियं नो अर्थ अनंतानि, वनस्पति तणां जीव जानि ।
तथा असंखेज्ज कहिवानी, पृथ्वी प्रमुख जीव पहिछानी ।।

२१. इम दक्षिण, पश्चिम, उत्तरानि, ऊंची, नीची दिशि विषे जानि ।
जाणै प्रमाण सहित द्रव्यानि, असंख अनंत द्रव्य पिण जानि ।।

२२. सर्व जाणै केवलज्ञानी, सर्व देखे केवली ध्यानी ।
जाणै देखै सर्व थी ज्ञानी, केवली थी वात नहिं छानी ।।

२३. सर्व थी सर्व काल पिछानी, सर्व भाव केवली जानी ।
वलि सर्व भाव पर्यवानी, देखै छै केवलज्ञानी ।।

२४. केवलज्ञानी तणं सुविधानि, वारू ज्ञान अनंत वखानि ।
वलि केवली रै सुप्रधानी, ओ तो अनंत दर्शन जानी ।।

२५. वलि केवली रै छै निधानि, निरावरण ज्ञान गुणखानि ।
वलि केवली र अधिकानि, निरावरण दर्शन गुणखानि ।।

२६. वाचनांतर वृत्ति वखानि, निव्वुडे वितिमिरे यानि ।
विसुद्धे त्रिहुं पद विशेषानि, ज्ञान दर्शण तणां कहानि ।।

२७. निवृत्त ते निष्ठांगत ज्ञानी, क्षीण आवरण वितिमिर जानि ।
वारू एहिज विशुद्ध वखानी, विशेषण ज्ञान दर्शन आनी ।।

२८. तिण अर्थ करी महिमानि, केवलि जाव सर्वविदानि ।
पंचम शतक तणो पहिछानो, देश चौथा उदेशा नों जानी ।।

---

१३. जहा णं भंते ! छउमत्थे मणूसे आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ, तहा णं केवली किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ ? पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ?

१४. गोयमा ! केवली णं आरगयं वा, पारगयं वा

१५-१७. सव्वदूर-मूलमणंतियं सद्दं
सर्वथा दूरं—विप्रकृष्टं मूलं च—निकटं सर्वदूरमूलं तद्योगाच्छब्दोऽपि सर्वदूरमूलोऽतस्तम् अत्यर्थं दूरवर्तिनमत्यन्तासन्नं चेत्यर्थः अन्तिकं—आसन्नं तन्निषेधादनन्तिकं तद्योगाच्छब्दोऽप्यनन्तिकोऽतस्तम् ।
(वृ० प० २१७)

१८. जाणइ पासइ । (श० ५/६६)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—केवली णं आरगयं वा, पारगयं वा सव्वदूरमूलमणंतियं सद्दं जाणइ-पासइ ?

१९. गोयमा ! केवली णं पुरत्थिमे णं मियं पि जाणइ,
'मियं पि' त्ति परिमाणवद् गर्भजमनुष्यजीवद्रव्यादि,
(वृ० प० २१७)

२०. अमियं पि जाणइ ।
'अमियंपि' त्ति अनन्तमसंख्येयं वा वनस्पतिपृथिवीजीवद्रव्यादि । (वृ० प० २१७)

२१. एवं दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं, उड्ढं, अहे मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ ।

२२. सव्वं जाणइ केवली, सव्वं पासइ केवली ।
सव्वओ जाणइ केवली, सव्वओ पासइ केवली ।

२३. सव्वकालं जाणइ केवली, सव्व कालं पासइ केवली ।
सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली ।

२४. अणंते नाणे केवलिस्स, अणंते दंसणे केवलिस्स ।

२५. निव्वुडे नाणे केवलिस्स, निव्वुडे दंसणे केवलिस्स ।

२६. वाचनान्तरे तु 'निव्वुडे वितिमिरे विसुद्धे' त्ति विशेषणत्रयं ज्ञानदर्शनयोरभिधीयते । (वृ० प० २१७)

२७. तत्र च 'निर्वृतं' निष्ठागतं 'वितिमिरं' क्षीणावरणमत एव विशुद्धमिति । (वृ०प० २१७)

२८. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—केवली णं आरगयं वा, पारगयं वा सव्वदूर-मूलमणंतियं सद्दं जाणइ-पासइ । (श० ५/६७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. गुण्यासीमी ढाल कहानी, भिक्षु भारीमाल बहु ध्यानी।
ऋषराय प्रसाद निधानि, सुख 'जय-जश' हरष किल्यानि ॥

## ढाल : ८०

### दूहा

१. छद्मस्थ केवली नीं कही, वक्तव्यता अधिकार।
बलि तेहनीज कहै अछै, निसुणो तेह विचार ॥

* देव जिनेन्द्रनां वच विमल निमल निकलंक रे ॥ (ध्रुपदं)

२. हे प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, ओतो हसैं हासो करै ताम रे।
तथा उत्सुकपणो आणै बलि ? तब जिन कहै हंता आम रे ॥
तब जिन कहै हंता आम कै···

३. जिम प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, हसै उत्सुकपणो आणै अथाय।
तिम केवली हासो उत्सुकपणो करै? अर्थ समर्थ नहीं, जिन वाय ॥

४. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यु, जिन भाखै जीव हसेह।
वलि उत्सुकपणो करै तिको, चारित मोहकर्म उदयेह ॥

५. चारित मोहनीय कर्म ते, केवली रै नहीं कोय।
तिण अर्थे जाव छद्मस्थ ज्यूं, केवली रै हासादि न होय ॥

६. प्रभु ! एक जीव हसतो छतो, उत्सुकपणो करतो पहिछाण।
कर्म प्रकृति बांधै केवली ? जिन भाखै सप्त अठ जाण ॥

७. एवं जाव वैमानीक नै, एक वचन सहु कहिवाय।
एकेंद्री नै पूर्व भव परिणाम थी, पूर्वे हस्या तेहनीं अपेक्षाय ॥

### सोरठा

८. पूर्व भव रै मांय, बद्धायु अभिमुख बलि।
तेह तणी अपेक्षाय, एकेंद्री में संभवै ॥

१. अथ पुनरपि छद्मस्थमनुष्यमेवाश्रित्याह—
(वृ० प० २१७)

२. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से हसेज्ज वा ? उस्सुयाएज्ज वा ? हंता हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा।
(श० ५/६८)

३. जहा णं भंते ! छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा, तहा णं केवली वि हसेज्ज वा ? उस्सुयाएज्ज वा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ५/६९)

४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जहा णं छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा उस्सुयाएज्ज वा, नो णं तहा केवली हसेज्ज वा ? उस्सुयाएज्ज वा ?
गोयमा ! जं णं जीवा चरित्तमोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं हसंति वा, उस्सुयायंति वा।

५. से णं केवलिस्स नत्थि। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जहा णं छउमत्थे मणुस्से हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा, नो णं तहा केवली हसेज्ज वा, उस्सुयाएज्ज वा। (श० ५/७०)

६. जीवे णं भंते ! हसमाणे वा, उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपगडीओ बंधइ ?
गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा।

७. एवं जाव वेमाणिए।
एवमिति जीवाभिलापवन्नारकादिर्दण्डको वाच्यो यावद्वैमानिक इति, ...इह च पृथिव्यादीनां हासः प्राग्भविकतत्परिणामादवसेय इति।
(वृ० प० २१७,२१८)

---

* लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल······।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. *प्रभु! बहु नेरइया हसता छता, किती कर्म-प्रकृति बंधकार ।
जिन कहै सहु सप्त बंधगा, आउबंध विरह तिणवार ।।
१०. अथवा सप्त बंधगा घणा, अष्टविध बंधगो एक ।
अथवा सप्त बंधगा घणा, अष्टविध बंधगा बहु पेख ।।

११. जीव एकेंद्री वरजी करी, उगणीस दंडक भंग त्रिण पेख ।
जीव एकेंद्री बहु सप्त बंधगा, अष्ट बंधगा बहु भंग एक ।।
१२. नेरइयाणं हसमाणे कति कम्मपगडीओ इत्यादि ।
एहवो किणहिक पुस्तक नैं विषे, दीसै छै विशेष सुसाधि ।।
१३. हे प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, निद्रा--सुखे जागै ते लेवंत ।
प्रचला—ऊभो रह्यो जे नींद ले ? हंता जिन उत्तर तंत ।।

१४. जेम कह्यु हसवा विषे, तिम निद्रा विषे कहिवाय ।
णवरं दर्शणावरणी कर्म नैं उदै करि निद्रा प्रचलाय ।।
१५. दर्शणावरणी कर्म क्षय गयो, तिण सूं केवली रै नहिं कोय ।
अन्य पाठ कहिवो सहु, हसवा नीं परे अवलोय ।।
१६. इक वच जीव तिको प्रभु ! निद्रा प्रचला करतो ते मांय ।
कर्म प्रकृति बांधै केतली ? सप्त अष्ट बंध जिन वाय ।।

१७. एवं जाव वैमानिक लगै, एक वच सर्व पाठ सुचीन ।
बहु वचने कहियै हिवै, उगणीस दंडके भांगा तीन ।।
१८. जीव अनैं एकेंद्री विषे, एक भांगो कहिवाय ।
सप्त कर्म बंधगा घणा, अष्ट बंध बहु थाय ।।
१९. निद्रा दर्शणावरणी उदय थी, तेहथी पाप कर्म न बंधाय ।
पाप बंधै मोह उदय थी, तो सप्त अष्ट बंधै किण न्याय ।।
२०. मोहकर्म नैं उदय करी, अशुभ स्वप्न आवै निद्रा मांय ।
पाप कर्म बंधै तेहथी, सप्त अष्ट बंधै इण न्याय ।।

**सोरठा**

२१. "खंधक[1] नैं अधिकार, गुरु-लघु कह्यो जीव नैं ।
ते शरीर आश्री धार, पिण चेतन गुरुलघु नहीं ।।
२२. तिम इहां जाणो न्याय, अशुभ स्वप्न मोह कर्म थी ।
तेहथी पाप बंधाय, पिण निद्रा सूं नहि कर्म बंध ।।
२३. मोह उदय थी जाण, बिगड्यो जीव कहीजियै ।
तिण कारण पहिछाण, तेहथी पाप बंधै अछै ।।

९. नारकादिषु तु त्रयं, तथाहि—सर्वे एव सप्तविध-
बन्धकाः स्युरित्येकः । (वृ० प० २१८)
१०. अथवा सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकश्चेत्येवं
द्वितीयः, अथवा सप्तविधबन्धकाश्चाष्टविधबन्धकाश्चे-
त्येवं तृतीयः इति । (वृ० प० २१८)
११. पोहत्तएहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।
(श० ५/७१)

१३. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से निद्दाएज्ज वा ? पयला-
एज्ज वा ? हंता निद्दाएज्ज वा, पयलाएज्ज वा ।
(श० ५/७२)
निद्रां—सुखप्रतिबोधलक्षणां कुर्यात् निद्रायेत,
प्रचलाम्—ऊर्ध्वस्थितनिद्राकरणलक्षणां कुर्यात्
प्रचलायेत् । (वृ० प० २१८)
१४,१५. जहा हसेज्ज वा तहा नवरं दरिसणावरणिज्जस्स
कम्मस्स उदएणं निद्दायंति वा पयलायंति वा, से णं
केवलिस्स नत्थि अण्णं तं चेव (सं० पा०)
(श० ५/७३, ७४)
१६. जीवे णं भंते ! निद्दायमाणे वा, पयलायमाणे वा कइ
कम्मपगडीओ बंधइ ?
गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा ।
१७. एवं जाव वेमाणिए । पोहत्तिएसु जीवेगिंदियवज्जो
तियभंगो । (श० ५/७५)

*लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल

१. देखें भगवती जोड़, ढाल ३४ गाथा ३० का टिप्पण, पृ० २१४, २१५ ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. दर्शणावरणी देख, तास उदय जंतु दबै ।
तिण कारण संपेख, तेहथी कर्म बंधै नहीं ।।
२५. एकेंद्रियादि पेख, निद्रा विषेज मोह नैं ।
उदय कषाय विशेख, वलि अविरत थी असुभ बंध" ।।
(ज०स०)

**दूहा**

२६. कही बात छद्मस्थ नीं, छद्मस्थ गर्भ साहरंत ।
ते अधिकार कहै हिवै, वृत्तौ वीर उदंत ।।
२७. तथा केवली अधिकार थी, केवली श्री महावीर ।
तसु घटनाक्रम आश्रयी, कहियै बात गभीर ।।
२८. यद्यपि वीर विधान इह, ए पद नहिं देखाय ।
तथापि हरिणेगमेषी इण वचन थकीज जणाय ।।

२७. केवल्यधिकारात्केवलिनो महावीरस्य संविधानकमाश्रित्येदमाह— (वृ० प० २१८)
२८. इह च यद्यपि महावीरसंविधानाभिधायकं पदं न दृश्यते तथाऽपि हरिनैगमेषीति वचनात्तदेवानुमीयते । (वृ० प० २१८)

२९. हरिणेगमेषी वीर नैं, गर्भ विषे आणेह ।
हरिणेगमेषी हे प्रभु ! इह विध प्रश्न करेह ।।
३०. गर्भ हरण सामान्य थी, तास विविक्षा होय ।
तो देवे णं भंते ! इसो प्रश्न करत अवलोय ।।
३१. हरि इंद्र है तेहना संबंध थी कहिवाय ।
हरिणेगमेषी नाम ए सर्व वृत्ति रै मांय ।।
३२. *हरिणेगमेषी सुर प्रभु ! शक्र आदेशकारो कहाय ।
पदाती अनीक नुं अधिपति, शक्र दूत कह्यो इण न्याय ।।

२९. हरिनैगमेषिणा भगवतो गर्भान्तरे नयनात् । (वृ० प० २१८)
३०. यदि पुनः सामान्यतो गर्भहरणविवक्षाऽभविष्यत्तदा 'देवे णं भंते !' इत्यवक्ष्यदिति । (वृ० प० २१८)
३१. तत्र हरिः—इन्द्रस्तत्सम्बन्धित्वात् हरिनैगमेषीति नाम । (वृ० प० २१८)
३२. 'से नूणं भंते ! हरि-नेगमेसी' सक्कदूए शक्रदूतः—शक्रादेशकारी पदात्यनीकाधिपतिः । (वृ० प० २१८)

**दूहा**

३३. येन[1] शक्र आदेश थी, महावीर भगवान ।
देवानंदा गर्भ थी, तिसला गर्भे आन ।।
३४. *स्त्री गर्भ संहरतो थको, ले जातो थको बीजे स्थान ।
जीव सहित पुद्गल-पिंड गर्भ नैं, संहरण चोभंगो जान ।।
३५. गर्भ थकी गर्भ संहरै, गर्भ थी ते उदर थी हुंत ।
जीव सहित पुद्गल-पिंड गर्भ नैं, संहरति -प्रवेश करंत ।।
३६. तथा गर्भ थकी योनि संहरै, गर्भ थी ते उदर थी जाण ।
योनि तणो प्रवेश करै अछै, योनि उदर करी घालै जाण ।।

३३. येन शक्रादेशाद् भगवान् महावीरो देवानन्दागर्भात् त्रिशलागर्भे संहृत इति । (वृ० प० २१८)
३४. इत्थीगब्भं संहरमाणे स्त्रियाः सम्बन्धी गर्भः—सजीवपुद्गलपिण्डकः स्त्रीगर्भस्तं (वृ० प० २१८)
३५. किं गब्भाओ गब्भं साहरइ ? तत्र 'गर्भाद्' गर्भाशयादवधेः 'गर्भं' गर्भाशयान्तरं 'संहरति' प्रवेशयति 'गर्भं' सजीवपुद्गलपिण्डलक्षणमिति ।
३६. गब्भाओ जोणिं साहरइ ? तथा गर्भादवधेः 'योनिं' गर्भनिर्गमद्वारं संहरति योन्योदरान्तरं प्रवेशयतीत्यर्थः । (वृ० प० २१८)

---
१. हरिणेगमेषिणा
* लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल······



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. योनि थकी गर्भ साहरै, योनि गर्भ-निर्गम द्वार।
जीव सहित पुदगल-पिंड ते, गर्भं तणुं प्रवेश विचार।।

३७. जोणीओ गब्भं साहरई ?
योनिद्वारेण गर्भं संहरति गर्भाशयं प्रवेशयतीत्यर्थः।
(वृ० प० २१८)

३८. योनि थकी योनि संहरै, योनि उदर थकी काढी बार।
योनि द्वारे करी तेहनों, प्रवेश करै तिणवार।।

३८. जोणीओ जोणिं साहरइ ?
योनेः सकाशाद्योनिं संहरति नयति योन्योदराग्नि-ष्काश्य योनिद्वारेणैवोदरान्तरं प्रवेशयतीत्यर्थः।
(वृ० प० २१८)

३९. वीर कहै सुण गोयमा ! पहिलो भांगो दूजो चोथो भंग।
ए त्रिहुं भंगे न संहरै, तीजा भांगा नों इहां प्रसंग।।
४०. तथा विध व्यापार करण करी, सुर कला गर्भ फर्सी विशेष।
सुखे सुखे योनि द्वारे करी, गर्भाशय जीव तणुं प्रवेश।।

३९,४०. गोयमा ! नो गब्भाओ गब्भं साहरइ, नो गब्भाओ जोणिं साहरइ, नो जोणीओ जोणिं साहरइ, परामुसिय परामुसिय अव्वाबाहेणं अव्वाबाहं जोणीओ गब्भं साहरइ। (श० ५।७६)
तथाविधकरणव्यापारेण संस्पृश्य संस्पृश्य स्त्रीगर्भम् अव्याबाधमव्याबाधेन सुखंसुखेनेत्यर्थः।
(वृ० प० २१८)

## दूहा

४१. हरिणेगमेषी नुं कह्यु, गर्भ-संहरण विचार।
हिव तेहनुं सामर्थपणुं, देखाडै इहवार।।

४१. अयं च तस्य गर्भसंहरणे आचार उक्तः, अथ तत्सामर्थ्यं दर्शयन्नाह— (वृ० प० २१८)

४२. *हरिणगमेषी सुर प्रभु ! शक्रदूत स्त्री-गर्भ ते जीव।
नखाग्र रोमकूपे करी, समर्थ घालण काढण अतीव।।

४२. पभू णं भंते ! हरि-नेगमेसी सक्कदूए इत्थीगब्भं नहसिरंसि वा, रोमकूवंसि वा, साहरित्तए वा ? नीहरित्तए वा ?

४३. जिन कहै हां समर्थ अछै, निश्चै करी गर्भ रै ताय।
थोडी घणी पीडा उपावै नहीं, चामडी नुं छेद बलि थाय।।
४४. छवि नुं छेद थयां बिना, नख अग्र प्रमुख न प्रवेश।
सूक्ष्मपणें प्रवेश नीहरण करै, एहवी सुर लाधी लब्धि विशेष।
४५. देश आख्युं चोपनमा अंक नुं, आखी ढाल असीमीं उदार।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, सुखसंपति 'जय-जश' सार।।

४३. हंता पभू, नो चेव णं तस्स गब्भस्स किंचि आबाहं वा विबाहं वा उप्पाएज्जा, छविच्छेदं पुण करेज्जा।
४४. ए सुहुमं च णं साहरेज्ज वा, नीहरेज्ज वा।
(श० ५।७७)
गर्भस्य हि छविच्छेदमकृत्वा नखाग्रादौ प्रवेशयितुम-शक्यत्वात्। (वृ० प० २१८,२१९)

ढाल : ८१

## दूहा

१. गर्भ-हरण महावीर नुं, थयुं अछेरो जेह।
तसुं शिष्य अइमुत्ता तणुं, हिव अधिकार कहेह।।

१. अनन्तरं महावीरस्य सम्बन्धि गर्भान्तरसंक्रमण-लक्षणमाश्चर्यमुक्तम्, अथ तच्छिष्यसम्बन्धि सदेव दर्शयितुमाह— (वृ० प० २१९)

---

* लय : पुत्र वसुदेव नो गजसुकुमाल……



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. तिण काले नै तिण समय, वीर तणो शिष्य सार ।
अइमुत्तो नामे कुमार-श्रमण महासुखकार ।।
३. "वृत्तिकार षट वर्ष में, प्रव्रज्या कहि तास ।
ठाम ठाम सूत्र चरण, कह्यं अधिक अठ वास ।।
४. आठ वर्ष उणा भणी, दीक्षा कल्पै नांहि ।
आठ वर्ष जाझे चरण, ववहार दसमा मांहि ।।

५. असोच्चा केवली तणों, आयू जघन्य कहेस ।
आठ वर्ष जाझो भगवती, नवम इकतीसमुद्देश ।।

६. शुक्ल लेश उत्कृष्ट स्थिति, ऊणी नव वर्षेण ।
पूर्व कोड उत्तरज्झयण, चोतीसम अज्झेण ।।

७. आऊ आठ वरस अधिक, शिव पद पामै ताम ।
सूत्र उववाई में कह्यो, इत्यादिक बहु ठाम ।।
८. तिण कारण टीका मझे, अइमुत्त ना षट् वास ।
आख्या तेह विरुद्ध छै, समय वचन थी तास ।।
९. शुक्ललेश-स्थिति भव-स्थिति, अठ वर्ष ऊणी नांहि ।
तीन काल नीं बात ए, दाखी सूतर मांहि ।।
१०. तिण कारण त्रिहुं काल ना जिन नीं पिण ए रीत ।
आठ वर्ष ऊणा भणी, न दियै चरण वदीत ।।
११. आठ वर्ष जाझा भणी, चारित्र केवल सिद्धि ।
आख्या छै सूत्रां मझे, पावै ए त्रिहुं ऋद्धि ।।
१२. जिन षट वर्ष दियै दीक्षा, तो केवल शिव पिण थाय ।
चरण कहै तो केवली अरु शिव नहिं किण न्याय ?
१३. षट् वर्ष ए त्रिहुं हुवै, तो शुक्ल-लेश स्थिति ताय ।
षट् वर्ष ऊणी तसुं, पूर्व कोड कहिवाय ।।
१४. चरम-शरीरी आयु पिण, कहिवूं जघन्य छ वास ।
आठ वर्ष जाझो कह्युं, सूत्र उववाई तास ।।
१५. शुक्ल लेश-स्थिति वर्ष नव, ऊणी पूरव कोड ।
नवमा नुं ए देश है, तिण सूं नव वर्ष जोड ।।
१६. इत्यादिक बहु न्याय करि, चरण केवल शिव रीत ।
आठ वर्ष जाझे हुवै, काल त्रिहुं सुवदीत ।।" (ज० स०)
*श्रमण अइमुत्तो रे, चरण-रयण चित चंगे ।
प्रकृति-भद्रीक विनीत प्रवर, जिन-आणा-रति-रस रंगे ।। (ध्रुपदं)

१७. प्रकृति स्वभावे उपशमवंतो, पतली च्यार कषाया ।
कोमल निरहंकार गुणे करि, शोभत ते मुनिराया ।।

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-समणे ।

३. षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात् (वृ० प० २१६)

४. नो कप्पइ निग्गंथाणं वा······साइरेगट्ठवासजायं उवट्ठावेत्तए वा संभुंजित्तए वा ।
(व्यवहार १०।२१,२२)

५. से णं भंते ! कयरम्मि आउए होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउए होज्जा (भ० श० ६।४१)

६. मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ ।
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ।।
(उत्तरा० ३४।४६)

७. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झंति ? गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडीयाउए सिज्झंति ।
(ओवाइयं सू० १८८)

पगइभद्दए

१७. पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने ।

* लय : कुन्थु जिनवर रे·········



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. लीन नहीं संसार विषे मुनि, इंद्रिय वस हद कीनी ।
भद्रिक भाव विनय गुण करिनें, आतम अतिही भीनी ।।

१९. तिण अवसर ते कुमर अइमुत्तो, श्रमण तपस्वी तीखो ।
एक दिवस महा वृष्टि थयां पछै, च्यार तीर्थ जश टीको ।।

२०. पडघो—पात्र रजोहरण—ओघो, काख विषे जे लेई ।
बहिर्भूमिका अर्थे मुनिवर, चाल्यो बाहिर तेही ।।

२१. तिण अवसर ते कुमर अइमुत्तो, श्रमण घणुं सुखदाई ।
बाहलो जल नों वहितो देखी, बाल-लीला मन आई ।।
[श्रमण अइमुत्तो रे, बाल लीला चित लागै ।
चरम शरीरी उत्तम प्राणी, पिण हिवडां जल रागै ।।] (ध्रुपदं)

२२. पाल माटी नीं बांधी नें मुनि, पात्रो मेली खेवै ।
ए मुझ नावा ए मुझ नावा, नावडिया जिम खेवै ।।

२३. उदक विषे पडघा प्रति करिनै, वाहतो थको मुनि खेलै ।
रमण क्रिया करतो इम रमतो, रामत रस रंग रेलै ।।

२४. अइमुत्ता प्रति रमतो देखी, स्थविर मुनि गुणगेह ।
तेहनीं अत्यंत अनुचित चेष्टा, निरखी निज नयणेह ।।

२५. अइमुत्ता मुनिवर नों तेहवै, ते उपहास्य करंता ।
श्रमण प्रभू महावीर समीपे, आवी एम वदंता ।।

२६. इम निश्चै देवानुप्रिया नों, अंतेवासी सीस ।
कुमर अइमुत्तो श्रमण किते भव सीझस्यै अंत करीस ?

२७. हे आर्यो ! इम दे आमंत्रण, भगवंत श्री महावीरं ।
ते स्थविरां प्रति इहविध भाखै, मेरु तणी पर धीरं ।।

२८. इम निश्चै करिनें हे आर्यो ! मांहरो अंतेवासी ।
नाम अइमुत्तो कुमार-श्रमण ए, ऋषि रूडो गुणरासी ।।

२९. प्रकृति स्वभावे भद्रिक यावत्, विनयवंत विश्वासी ।
ते अइमुत्तो कुमार-श्रमण मुनि, इण भव मुक्ति सिधासी ।।

३०. यावत् सकल कर्म दुख नों मुनि, इणहिज भव क्षय करसी ।
ते माटै एहनें मति हेलो, अविचल वधु ए बरसी ।।

३१. हे आर्यो ! अइमुत्ता मुनि नें, मने करि मति निंदो ।
लोक सुणंता पिण मति खिसो, ए महामुनि गुणवृंदो ।।

३२. तेहनी साख करि मति गरहो, नवि कीजै अपमानं ।
योग्य भक्ति अणकरिवै करिनें, ए अपमान नुं स्थानं ।।

---

१८. अल्लीणे विणीए । (श० ५/७८)

१९. तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे अण्णया कयाइ महावुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि ।

२०. कक्खपडिग्गह-रयहरणमायाए बहिया संपट्ठिए विहाराए । (श० ५।७९)

२१. तए णं से अइमुत्ते कुमार-समणे वाहयं वहमाणं पासइ,

२२,२३. पासित्ता मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता 'णाविया मे, णाविया मे' नाविओ विव णावमयं पडिग्गहगं उदगंसि पव्वाहमाणे-पव्वाहमाणे अभिरमइ ।

२४,२५. तं च थेरा अद्दक्खु । जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वदासी—
'अद्राक्षुः' दृष्टवन्तः, ते च तदीयामत्यन्तानुचितां चेष्टां दृष्ट्वा तमुपहसन्त इव भगवन्तं पप्रच्छुः,
(वृ० प० २१९)

२६. एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-समणे, से णं भंते ! अइमुत्ते कुमारसमणे कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति ?
(श० ५।८०)

२७. अज्जोति ! समणे भगवं महावीरे ते थेरे एवं वयासी—

२८. एवं खलु अज्जो ! ममं अंतेवासी अइमुत्ते नामं कुमार-समणे ।

२९. पगइभद्दए जाव विणीए, से णं अइमुत्ते कुमार-समणे इमेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झिहिति ।

३०. जाव अंतं करेहिति । तं मा णं अज्जो ! तुब्भे अइमुत्तं कुमार-समणं हीलेह ।

३१. निंदह खिसह
'निंदह' त्ति मनसा 'खिसह' त्ति जनसमक्षं
(वृ० प० २१९)

३२. गरहह अवमण्णह ।
'गरहह' त्ति तत्समक्षम् 'अवमण्णह' त्ति तदुचितप्रतिपत्त्यकरणेन (वृ० प० २१९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. क्वचित् पाठ 'परिभवह' करो मति सर्व पूर्व कह्या जेह ।
वलि प्रभु वीर कहै स्थविरां नैं, सांभलजो हिव तेह ॥
३४. तुम्हे अहो देवानुप्रियाओ !, ए अइमुत्तो कुमार ।
तेह प्रतै अगिलाणपणैं ग्रहो, खेद रहित अंगीकार ॥

३५. अखेदपणैं उपष्टंभ द्यो एहनैं, उवगिण्हह तणुं अर्थ एह ।
अखेदपणैं भात उदक विनय करि, व्यावच तुम्हैं करेह ॥

३६. कुमर अइमुत्तो श्रमण अंतकर, भव नुं छेदणहार ।
अंतिम-शरीर ते चर्म शरीरी, निश्चेइ जाणो सार ॥

३७. स्थविर तदा प्रभु वचन सुणी नैं, जिन वंदी करी नमस्कार ।
कुमर अइमुत्ता श्रमण प्रतै करै खेद रहित अंगीकार ॥

३८. यावत् विविध वैयावच करता, अग्लान पणैं तिणवार ।
वीर वचन थी चित स्थिर कीधो, स्थविर बडा गुणधार ॥

**सोरठा**

३९. "अइमुत्ता नैं जोय, प्रायश्चित इहां चाल्यो नहीं ।
पिण कारज अवलाय, दंड आवै जेहवो अछै ॥
४०. वच रहनेमि विरुद्ध, सीहो रोयो मोह वस ।
कारज एह अशुद्ध, तसुं दंड पिण चाल्यो नहीं ॥
४१. सेलक पासत्थ थाय, वीर लब्धि फोडी वलि ।
पंथ तीन चिहुं मांय, नागश्री हेली मुनि ॥
४२. इत्यादिक बहु जाण, दंड नहिं चाल्यो सूत्र में ।
पिण कारज विण-आण, तेहनों दंड लीधो हुसै ॥
४३. नशीत में अवलोय, कार्य ना प्रायश्चित कह्या ।
ते कार्य करै कोय, प्रायश्चित तेहनों अछै" ॥ (ज० स०)

४४. *अंक चोपन नुं देश कह्यु, ए, इक्यासीमीं ढालं ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमालं ॥

*लय : कुन्थु जिनवर रे······

३३. 'परिभवह' त्ति क्वचितपाठस्तत्र परिभव:—समस्त-पूर्वोक्तपदाकरणेन (वृ० प० २१९)
३४. तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! अइमुत्तं कुमार-समणं अगिलाए संगिण्हह,
'अगिलाए' त्ति अग्लान्या अखेदेन (वृ० प० २१९)
३५. अगिलाए उवगिण्हह, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करेह ।
'उवगिण्हह' त्ति उपगृह्णीत उपष्टम्भं कुरुत ।
(वृ० प० २१९)
३६. अइमुत्ते णं कुमार-समणे अंतकरे चेव, अंतिमसरीरिए चेव । (श० ५।८१)
'अंतकरे चेव' त्ति भवच्छेदकर:, स च दूरतरभवेऽपि स्यादत आह—'अंतिमसरीरिए चेव' त्ति चरमशरीर इत्यर्थ: । (वृ० प० २१९)
३७. तए णं ते थेरा भगवंतो समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, अइमुत्तं कुमार-समणं अगिलाए संगिण्हंति,
३८. अगिलाए उवगिण्हंति, अगिलाए भत्तेणं पाणेणं विणएणं वेयावडियं करेंति । (श० ५।८२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ८२

### दूहा

१. चरमशरीरी वीर-शिष्य, अइमुत्तो सुविमास।
अन्य मुनि कितला केवली, हिव तसु प्रश्न प्रकाश।।

*जगनाथ दयाल कृपाल प्रभु पूरण संपदा।
जिनेन्द्र मोरा त्रिभुवन-तिलक महावीर हो।। (ध्रुपदं)

२. तिण काले नें तिण समै, जिनेन्द्र मोरा, सप्तम कल्प शोभाय हो।
महाशुक्र नाम मनोहरू, जिनेन्द्र मोरा, पुन्यवंत प्राणी पाय हो।।

३. महासामान्य नामैं भलो, प्रवर विमान थी पेख।
महाऋद्धिवंत बे देवता, जाव महानुभाव देख।।

४. श्रमण भगवंत महावीर पै, प्रगट थया तिणवार।
वीर प्रतै वंदै मन करी, मने करी नमस्कार।।

५ प्रश्न इसूं पूछै मन करी, देवानुप्रिया ना तेह।
सीस किता सय सीझसै, यावत् अंत करेह?

६. सुर बिहुं मन थी पूछ्ये छते, भगवंत श्री महावीर।
मने करीनैं उत्तर दिये, तारक भवदधि तीर।।

७. इम निश्चै हे देवानुप्रिया! प्रभु भाखै मुझ शिष्य महागुणवंत।
प्रवर सप्त सया भल सीझसैं, प्रभु भाखै जाव करसी दुख अंत।।

८. मन थी इम प्रभु वागर्यां छतां, सुर बिहुं सुण हरषाय।
यावत् हरष ना बस थकी, अधिक हृदय विकसाय।।

९. श्रमण भगवंत महावीर नैं, वंदै करै नमस्कार।
मन थी सुश्रूषा करता छता, प्रणमन करता उदार।।

१०. सन्मुख प्रभु नें रह्या थका, जाव करै पर्युपास।
स्वाम तणी सेवा तणो, मन में अधिक हुलास।।

११. तिण कालै नैं तिण समय, वीर तणो सुविचार।
जेष्ठ अंतेवासी भलो, इन्द्रभूती अणगार।।

१२. जाव अतिही दूरो नहीं, नहीं अति प्रभु नैं नजीक।
ऊर्द्ध जानु जाव विचरता, धरता ध्यान सधीक।।

*लय: सौंहल नृप कहै चंद नै......

१. यथाऽयमतिमुक्तको भगवच्छिष्योऽन्तिमशरीरोऽभवद् एवमन्येऽपि यावन्तस्तच्छिष्या अन्तिमशरीराः संवृत्तास्तावतो दर्शयितुं प्रस्तावनामाह—
(वृ० प० २१९)

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं महासुक्काओ कप्पाओ,

३. महासामाणाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा

४. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया। तए णं ते देवा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति,

५. मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं पुच्छंति—
(श० ५/८३)

कति णं भंते! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अन्तं करेहिंति?

६. तए णं समणे भगवं महावीरे तेहिं देवेहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ—

७. एवं खलु देवाणुप्पिया! मम सत्त अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति।

८. तए णं ते देवा समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया

९. समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता मणसा चेव सुस्सूसमाणा नमंसमाणा

१०. अभिमुहा विणएणं पंजलियडा पज्जुवासंति।
(श० ५/८४)

११. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे

१२. जाव अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. भगवंत गोतम नों जदा, ध्यानांतर वर्तमान।
प्रारंभ्यो ध्यान पूरो थयो, नवो न आरंभ्यो ध्यान।।

१३. तए णं तस्स भगवओ गोयमस्स झाणंतरियाए वट्ट-माणस्स
ध्यानान्तरिका — आरब्धध्यानस्य समाप्तिरपूर्वस्याना-रम्भणमित्यर्थः (वृ० प० २२१)

१४. इम ध्यानांतर वर्तमान नैं, एहवा मन अध्यवसाय।
जाव गोतम नैं ऊपना, सांभलजो चित ल्याय।।

१४. इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

१५. इम निश्चै बिहुं देवता, महाऋद्धिवान विमास।
जाव महाभाग्य तणा धणी, प्रगट थया प्रभु पास।।

१५. एवं खलु दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया,

१६. ते भणी हूं निश्चै करी, बिहुं सुर जाणुं नांय।
किसा कल्प—देवलोक थी, आव्या छै इहां चलाय।।

१६. तं नो खलु अहं ते देवे जाणामि कयराओ कप्पाओ वा
कप्पाओ त्ति देवलोकात् (वृ० प० २२१)

१७. अथवा आया किण स्वर्ग थी, स्वर्ग ते प्रतर वास।
कल्प तणा जे देश नैं, स्वर्ग कह्यो इहां तास।।

१७. सग्गाओ वा
सग्गाओ त्ति स्वर्गाद्, देवलोकदेशात्प्रस्तटादित्यर्थः (वृ० प० २२१)

१८. अथवा आया किण विमाण थी, देश प्रतर नुं ताय।
किण कार्य अर्थे प्रयोजने? तिण अर्थे शीघ्र आय।।

१८. विमाणाओ वा कस्स वा अत्थस्स अट्ठाए इहं हव्व-मागया?
विमाणाओ त्ति प्रस्तटैकदेशादिति। (वृ० प० २२१)

१९. ते भणी वीर पासै जइ, करूं वंदणा नमस्कार।
जाव सेव कर प्रभु भणी, पूछूं ए प्रश्न उदार।।

१९. तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमं-सामि जाव पज्जुवासामि, इमाइं च णं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामि

२०. इम मन मांहे चिंतवी, ऊठै ऊठी नैं तास।
वीर प्रभु पै आयनै जाव करै पर्युपास।।

२०. त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवा-गच्छइ जाव पज्जुवासइ। (श० ५/८५)

२१. हे गोतम! इम नाम ले, वीर गोयम नै कहंत।
ध्यान पूर्ण थये गोयमा! तूं मन इम चिंतवंत।।

२१. गोयमादि! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—से नूणं तव गोयमा! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए

२२. यावत् माहरूं समीप छै, तिहां उतावलो आय।
हे गोतम! अर्थ समर्थ ए? हां स्वामी! सत्य वाय।।

२२. जाव जेणेव ममं अंतिए तेणेव हव्वमागए, से नूणं गोयमा! अट्ठे समट्ठे?
हंता अत्थि।

२३. ते भणी तूं जा गोयमा! निश्चै करि ए देव।
उत्तर एहवा प्रश्न नों, वागरस्यै स्वयमेव।।

२३. तं गच्छाहि णं गोयमा! एए चेव देवा इमाइं एया-रूवाइं वागरणाइं वागरेहिंति। (श० ५/८६)

२४. इम जिन आज्ञा दीधे छते, वीर वंदी नमस्कार।
गमन करै सुरवर कन्है, कार्य अन्य निवार।।

२४. तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, जेणेव ते देवा तेणेव पहारेत्थ गम-णाए। (श० ५/८७)

२५. तिण अवसर ते देवता, गोतम आवता देख।
हरष संतोष पाम्या घणां, यावत् विकस्या विशेख।।

२५. तए णं ते देवा भगवं गोयमं एज्जमाणं पासंति, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. शीघ्र ऊठीज सन्मुख जई, आया गोतम पाय।
जावत नमण करी तदा, बोलै एहवी वाय।

२७. इम निश्चै भगवंत अम्है महाशुक्र महासामान।
तेहथी बे देव महिड्ढिया जाव प्रगट थया जान॥

२८. तिण अवसर म्है वीर नैं, करि वंदना नमस्कार।
मने करीनैं एहवो, प्रश्न पूछ्यो सुखकार॥

२९. केतला हे प्रभु! आपरै, अंतेवासी सय जेह।
केवल पामी सीझस्यै, यावत् अंत करेह॥

३०. इम मन करि पूछ्ये छते, मन थी उत्तर जिन देह।
सात सौ मुझ शिष्य सीझस्यै, यावत् अंत करेह॥

३१. इम मन सूं पूछा तणो, मन सूं उत्तर महावीर।
दीधे छते म्है प्रभु प्रतै, वंदां नमण करां धीर॥

३२. जाव करां पर्युपासना, एम कही सुर ताय।
गोतम नैं वंदी नमी, आया जिण दिशि जाय॥

**सोरठा**

३३. "इहां पाठ रै मांय, कह्या सप्त सय केवली।
तेहिज छै सत्य वाय, अधिका केम कहिजियै?

३४. पनरै सय नैं तीन, तापस नै गोयम गणी।
प्रतिबोध्या कहै चीन, सर्व थया ते केवली॥

३५. किहांइक टीकाकार, एहवो अर्थ कियो अछै।
ते अणमिलतो धार, एह वचन अवलोकतां॥

३६. सहस्र चोरासी साध, बीस सहस्र केवलधरा।
ऋषभ तणैं मुनि लाध, वलि संख्या अजितादि नैं॥

३७. तिम ए चउद हजार, ते मांहे केवलधरा।
सप्त सयां सुखकार, पिण अधिका नहिं केवली॥

३८. चउद सहस्र रै मांहि, वीर मुनी सहु आविया।
तिमज सातसौ ताहि, चउद सहस्र में एतला"॥ (ज. स.)

३९. *अंक चोपन नों देश ए, ढाल बयांसीमी धार।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति सार॥

* लय : सींहल नृप कहै चंद नै ........

२६. खिप्पामेव अब्भुट्ठेंति, अब्भुट्ठेत्ता खिप्पामेव अब्भुवगच्छंति जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति जाव नमंसित्ता एवं वयासी—

२७. एवं खलु भंते! अम्हे महासुक्काओ कप्पाओ महासामाणाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया जाव महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया।

२८. तए णं अम्हे समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो, वंदित्ता नमंसित्ता मणसा चेव इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छामो—

२९. कइ णं भंते! देवाणुप्पियाणं अंतेवासीसयाइं सिज्झिहिंति जाव अंतं करेहिंति?

३०. तए णं समणे भगवं महावीरे अम्हेहिं मणसा पुट्ठे अम्हं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ— एवं खलु देवाणुप्पिया! मम सत्त अंतेवासीसयाइं जाव अंतं करेहिंति।

३१. तए णं अम्हे समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा चेव पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो

३२. जाव पज्जुवासामो त्ति कट्टु भगवं गोयमं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। (श० ५/८८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ८३

### दूहा

१. सुर प्रस्ताव थकी हिवै, सुर नैं सन्मुख जाण ।
किण रीते बोलावियै, प्रश्नोत्तर पहिछाण ।।

२. हे भदंत ! इह विध कही, भगवंत गोतम जान ।
श्रमण प्रभु महावीर नैं, जाव वदै इम वान ।।

*स्वाम वयण सुखकारी

स्वाम वयण सुखकारी, प्रभू थी प्रीत गोयम रै अतिभारी ।
विविध प्रकार प्रश्न वर पूछ्या, स्वाम वयण सुखकारी ।।
(ध्रुपदं)

३. हे प्रभु ! देव संजती एहवो, वयण तास कहिवूं होई ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, अभ्याख्यानज ए जोई ।।

४. हे प्रभु ! देव असंजती एहवो, वयण तास कहिवुं होई ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, निष्ठुर कठिन वचन जोई ।।

५. हे प्रभु ! देव संजतासंजती, एहवुं तसुं कहिवुं होई ।
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, असद्भूत ए वच जोई ।।

### सोरठा

६. असद्भूत ए जोय, अछतो वच ए छै सही ।
तिण कारण अवलोय, संजतासंजती सुर नहीं ।।

७. *से किं खाइ अथ प्रश्ने पुन, सुर नैं किम कहिवूं होई ?
नहीं संजती सुर इम कहिवूं, वचन कठिन नहि ए कोई ।।

८. अर्थ असंजत तणोज आव्यो, ए पर्याय नाम आख्यूं ।
मूंआ भणी परलोक गयो कहै, तेहनीं परि ए पिण भाख्यूं ।।

९. देव तणां अधिकार थकी वलि, सुर नीं बात कहै सारी ।
हे प्रभु ! भाषा किसी वदै सुर, किसी बोलता तसु प्यारी ?

### सोरठा

१०. भाषा षट्विध होय, प्राकृत नै संस्कृत पुनः ।
मागध पिशाची जोय, सूरसेनी वलि पंचमी ।।

---

१. देवप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० २२१)

२. भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति जाव एवं वयासी—

३. देवा णं भंते ! संजया ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे । अब्भक्खाणमेयं देवाणं । (श० ५/८९)

४. देवा णं भंते ! असंजता ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे । निट्ठुरवयणमेयं देवाणं । (श० ५/९०)

५. देवा णं भंते ! संजयासंजया ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे । असब्भूयमेयं देवाणं । (श० ५/९१)

७. से किं खाइ णं भंते ! देवा ति वत्तव्वं सिया ?
गोयमा ! देवा णं नोसंजया ति वत्तव्वं सिया । (श० ५/९२)
से इति अथार्थः किमिति प्रश्नार्थः (वृ० प० २२१)

८. असंयतशब्दपर्यायत्वेऽपि नोसंयतशब्दस्यानिष्ठुरवचनत्वान्मृतशब्दापेक्षया परलोकीभूतशब्दवदिति । (वृ० प० २२१)

९. देवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २२१)
देवा णं भंते ! कयराए भासाए भासंति ? कयरा व भासा भासिज्जमाणी विसिस्सति ?

१०,११ भाषा किल षड्विधा भवति, यदाह—
प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषा च शौरसेनी च ।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो, देशविशेषादपभ्रंशः ।। (वृ० प० २२१)

---

* लय : नाहरगढ ले चालो बनांजी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. छट्ठी इहां कहीज, सूरसेनी नों भेद ए।
देश विशेष थकीज, अपभ्रंसी कहियै तसुं ।।

१२. किंचित् मागध जाण, किंचित् प्राकृत लक्षणे।
जेह विषे पहिछाण, अर्द्धमागधी ते कही ।।

१३. *जिन कहै अर्द्धमागधी भाषा, वदै देवता जशधारी।
अर्द्धमागधी सुलभ बोलतां, सुणतां समझ लगै प्यारी ।।

१४. कह्या सात सय केवलज्ञानी, वलि छद्मस्थ देव आख्युं।
हिव छद्मस्थ केवली ना प्रस्ताव थकी आगल दाख्युं ।।

१५. अंतकरं—भव-छेद करै प्रभु! अथवा चरम-तनु त्यांनें।
केवलज्ञानी जाणै देखै? जिन भाखै हंता जानें ।।

१६. अंतकरं वा चरमशरीरक, जाणैं देखै जिन ज्यांही।
तिम ही छद्मस्थ जाणैं देखै? जिन कहै अर्थ समर्थ नांही ।।

१७. किणहि प्रकार थकी वलि जाणैं, ए अधिकार हिवैं आणै।
सांभल नें जाणैं ए बिहुं प्रति, तथा प्रमाण थकी जाणै ।।

१८. से किं तं सोच्चा अथ स्यूं ते, ए बिहुं जाणै सांभल नै?
जिन कहै केवली कन्है सुणी नैं, जाणै अंतकरादिक नैं ।।

१९. केवली ना श्रावक नैं पासै, केवलि नीं श्राविका पासै।
केवली तणा उपासक पासै, वलि तसुं उपासिका आसै ।।

**सोरठा**

२०. केवली पास सुणंत, श्रावक अर्थी सुणवा तणो।
ए करसी भव-अंत, इत्यादिक सुण जाणियै ।।

२१. उपासक सेव करेह, सुणवा नीं वांछा नथी।
सेवा तत्पर एह, जाण तसु पासै सुणी ।।

२२. *केवलीपाक्षिक स्वयंबुद्ध पै, वलि तसुं श्रावक पै माणै।
तेहनीं वलि श्राविका पासै, सांभल नैं ते वलि जाणैं ।।

* लय : नाहरगढ़ ले चालो ·····

१२. तत्र मागधभाषालक्षणं किञ्चित्किञ्चिच्च प्राकृतभाषालक्षणं यस्यामस्ति सार्द्धं मागध्या इति व्युत्पत्त्याऽर्द्धमागधीति। (वृ० प० २२१)

१३ गोयमा! देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति। सा वि य णं अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सति। (श० ५/९३)

१४. केवलिछद्मस्थस्यवक्तव्यताप्रस्ताव एवेदमाह—
(वृ० प० २२१)

१५. केवली णं भंते! अंतकरं वा, अंतिमसरीरियं वा जाणइ-पासइ?
हंता जाणइ-पासइ। (श० ५/९४)

१६. जहा णं भंते! केवली अंतकरं वा, अंतिमसरीरियं वा जाणइ-पासइ, तहा णं छउमत्थे वि अंतकरं वा, अंतिमसरीरियं वा जाणइ-पासइ? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

१७. सोच्चा जाणइ-पासइ, पमाणतो वा। (श० ५/९५)

१८. से किं तं सोच्चा?
सोच्चा णं केवलिस्स वा,

१९ केवलिसावगस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलिउवासगस्स वा, केवलिउवासियाए वा,

२०. 'केवलिसावगस्स व' त्ति जिनस्य समीपे यः श्रवणार्थी सन् शृणोति तद्वाक्यान्यसौ केवलिश्रावकः तस्य वचनं श्रुत्वा जानाति, स हि किल जिनस्य समीपे वाक्यान्तराणि शृण्वन् अयमन्तकरो भविष्यतीत्यादिकमपि वाक्यं शृणुयात् ततश्च तद्वचनश्रवणाज्जानातीति। (वृ० प० २२२)

२१. केवलिनमुपास्ते यः श्रवणानाकांक्षी तदुपासनमात्रपरः सन्नसौ केवल्युपासकः तस्य वचः श्रुत्वा जानाति।
(वृ० प० २२२)

२२. 'तप्पक्खियस्स' वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा,
तप्पक्खियस्स त्ति केवलिपाक्षिकस्य स्वयंबुद्धस्येत्यर्थः।
(वृ० प० २२२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. स्वयंबुद्ध तणा उपासक पासै, स्वयंबुद्ध उपासिका पाख्यो ।
करसी भव नुं अंत इत्यादिक, वचन सुणी जाणैं ताह्यो ॥
२४. यां दस पै निसुणी नैं जाणे, ए भव-अंत करणवालो ।
अथवा चरमशरीरी ए छै, से तं सोच्चा नीहालो ॥
२५. अथ स्यूं ते प्रमाण हिवै ? जिन भाखै चउविध त्यांही ।
प्रत्यक्ष अनुमान ओपम आगम, जिम अनुयोगद्वार मांही ॥

२६. प्रमाण यावत् जंबू उपरंत, आत्मागम कहियै नांही ।
अनंतरागम पिण नहिं कहियै, परंपरागम छै ज्यांही ॥

**सोरठा**

२७. जाणै जिण करि ताय, प्रमाण कहियै तेहनैं ।
तेह चतुर्विध पाय, प्रत्यक्षादिक जाणवा ॥
२८. अक्ष जीव कहिवाय, अथवा अक्षज इंद्रिय ।
प्रति गत प्राप्तज थाय, प्रत्यक्ष कहियै तेहनैं ॥
२९. लिंगग्रहण धूमादि-संबंधस्मरणादि अनु —
पछै ज्ञान अविवादि, गणे करि अनुमान तें[1] ॥
३०. सदृशपणां करेह, ग्रहै वस्तु जेण करी ।
उपमा कहियै तेह, तृतीय प्रमाणज नाम ए ॥
३१. गुरु-पारम्पर्येण, आवै ते आगम कह्युं ।
ए चिहुं प्रमाण वैण, हिव तसुं भेद जुआ जुआ ॥
३२. प्रत्यक्ष दोय प्रकार, इंद्रिय नैं नोइंद्रिय ।
इंद्रिय पंच प्रकार, श्रोत्रेंद्रियादिक पंच ही ॥

३३. नोइंद्रिय प्रत्यक्ष, त्रिविध जिनेश्वर आखियो ।
अवधिज्ञान वर दक्ष, मनपज्जव केवल प्रत्यक्ष ॥

३४. त्रिविध कह्यो अनुमान, पूर्ववत पहिलुं कह्युं ।
शेषवत पहिछान, तृतीय दृष्टसाधर्म्यवत ॥

३५. पूर्ववत धुर भेद, माता अपणा पुत्र जे ।
बाल अवस्था वेद, देशांतरे गयो हुंतो ॥
३६. काल केतलै तेह, तरुण होय आयो फिरी ।
कोइक चिह्न करेह, पूर्व दृष्ट क्षतादि जे ॥

१. यहां धूआं है, इस लिंग—हेतु का ग्रहण, फिर धूम और अग्नि के नित्य सम्बन्ध (व्याप्ति) का स्मरण, इसके अनु—पश्चात् होने वाला मान—ज्ञान अनुमान कहलाता है ।

२३. तप्पक्खियउवासगस्स वा, तप्पक्खियउवासियाए वा

२४. से तं सोच्चा । (श० ५/९६)

२५. से किं तं पमाणे ?
पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा- पच्चक्खे अणुमाणे ओवम्मे आगमे, जहा अणुओगदारे तहा नेयव्वं
२६. पमाणं जाव तेण परं सुत्तस्स वि अत्थस्स वि नो अत्तागमे, नो अणंतरागमे, परंपरागमे ।
(श० ५/९७)

२७. प्रमीयते येनार्थस्तत्प्रमाणं प्रमिति र्वा प्रमाणं
(वृ० प० २२२)
२८. अक्षं—जीवं अक्षाणि वेन्द्रियाणि प्रति गतं प्रत्यक्षं ।
(वृ० प० २२२)
२९. अनु लिंगग्रहणसम्बन्धस्मरणादेः पश्चान्मीयतेऽनेनेत्यनुमानम् (वृ० प० २२२)
३०. उपमीयते—सदृशतया गृह्यते वस्त्वनयेत्युपमा सैव औपम्यम् (वृ० प० २२२)
३१. आगच्छति गुरुपारम्पर्येणेत्यागमः एषां स्वरूपं शास्त्रलाघवार्थमतिदेशत आह—
३२. पच्चक्खे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—इंदियपच्चक्खे नोइंदियपच्चक्खे य ।
से किं तं इंदियपच्चक्खे ? इंदियपच्चक्खे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियपच्चक्खे... ।
(अणुओग० ५१६,५१७)
३३. से किं तं नोइंदियपच्चक्खे ?
नोइंदियपच्चक्खे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओहिनाणपच्चक्खे मणपज्जवनाणपच्चक्खे केवलनाणपच्चक्खे ।
(अणु० ५१८)
३४. से किं तं अणुमाणे ?
अणुमाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुव्ववं सेसवं दिट्ठसाहम्मवं । (अणु०/५१९)
३५,३६. से किं तं पुव्ववं ? पुव्ववं—
गाहा—माता पुत्तं जहा नट्ठं जुवाणं पुणरागतं ।
काई पच्चभिजाणेज्जा पुव्वलिंगेण केणई ॥
तं जहा—खतेण वा ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. श्वान हिड़कियो आदि, खाधां करिवूं दाह नूं ।
तेह वर्ण संवादि, मस लच्छन तिलकादि जे ।।
३८. तिण करि जाणैं जेह, माहरूं ए अंगज अछै ।
ते अनुमान करेह, निर्णय करियै तेहनुं ।।
३९. शेषवत पंच भेदि, कार्य करि कारण करि ।
गुण करिनें संवेदि, अवयव करि आश्रय करि ।।

४०. कार्य करिनें जाण, जाणें शंखज शब्द करि ।
भेरी ताडवैं माण, धड़ूकवैं करि वृषभ नैं ।।

४१. मोर केकारव साज, हय हींसारव शब्द करि ।
गुलगुलाट गजराज, घणघणाट करि रथ प्रतैं ।।
४२. कारण करिके सोय, पट नों कारण तांतूवा ।
पिण तांतव नों जोय, कारण पट—वस्तर नथी ।।
४३. इमहिज चटाई नाम, कट नों कारण वीरणा ।
पिण वीरण नों ताम, कारण नहि छै तेह कट ।।
४४. घट नों कारण देख, माटी नों जे पिंड छै ।
मृत्-पिंड नों जे पेख, कारण नहिं छै ते घड़ो ।।
४५. तोजो गुण करि जाण, सुवर्ण रेखज कसवटी ।
दश वानी नूं मान, ए पंचवानी नूं सुवन्न ।।
४६. पुष्प गंध करि जान, शतपत्रादिक पुष्प ए ।
लवण रसे करि मान, विविध भेद जे लवण ना ।।
४७. आस्वादे करि सोय, ए मदिरा छै अमकड़ो ।
स्पर्श करो अवलोय, एह फलाणो वस्त्र छै ।।
४८. अवयव करि जाणेह, सींग देखवैं महिष प्रति ।
शिखा देखवैं लेह, कुर्कट प्रति जाणैं वलि ।।
४९. दांते करि गज भूर, सूयर दाढाइं करी ।
पांखे करो मयूर, खुर देख्यां थो अश्व प्रति ।।
५०. नख करि बाघ विचार, वालाग्र धड[1] करि चमरि प्रति ।
पूंछ देखवै धार, बंदर[2] छै इम जाणियै ।।

३७. वणेण वा लंछणेण वा मसेण वा तिलएण वा ।
(अणु० ५२०)

३९. से किं तं सेसवं ?
सेसवं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—कज्जेणं कारणेणं गुणेणं अवयवेणं आसएणं । (अणु० ५२१)
४०. से किं तं कज्जेणं ?
कज्जेणं—संखं सद्देणं, भेरिं तालिएणं, वसभं ढिंकिएणं ।
४१. मोरं केकाइएणं, हयं हेसिएणं, हत्थिं गुलगुलाइएणं, रहं घणघणाइएणं । से तं कज्जेणं (अणु० ५२२)
४२. से किं तं कारणेणं ?
कारणेणं—तंतवो पडस्स कारणं न पडो तंतुकारणं,
४३. वीरणा कडस्स कारणं न कडो वीरणकारणं,

४४. मप्पिंडो घडस्स कारणं न घडो मप्पिंडकारणं ।
से तं कारणेणं । (अणु० ५२३)
४५. से किं तं गुणेणं ?
गुणेणं—सुवण्णं निकसेणं,
४६. पुप्फं गंधेणं, लवणं रसेणं,

४७. मइरं आसाएणं, वत्थं फासेणं ।
से तं गुणेणं । (अणु० ५२४)
४८. से किं तं अवयवेणं ?
अवयवेणं—महिसं सिंगेणं, कुक्कुडं सिहाए,
४९. हत्थिं विसाणेणं, वराहं दाढाए, मोरं पिंछेणं, आसं खुरेणं,
५०,५१. वग्घं नहेणं, चमरिं बालगुंछेणं, दुपयं मणुस्सयादि, चउप्पयं गवमादि, बहुपयं गोम्हियादि, 'वानरं नंगुलेणं',

१ यहां अणुओगद्दाराइं में 'वालगुंछेणं' पाठ है । वालग्गेणं पाठ पाठान्तर में लिया है ।
२ मूलसूत्र में 'चमरिं वालगुंछेणं' के बाद 'दुपयं मणुस्सयादि' पाठ है । पाठान्तर में इसके स्थान पर 'वानरं नंगलेणं' पाठ है । जयाचार्य ने जोड़ में इसी क्रम को स्वीकार किया है । उन्हें उपलब्ध आदर्श में यही पाठ रहा होगा । इस जोड़ के सामने जो पाठ उद्धृत किया गया है वह वर्तमान में सम्पादित 'अणुओगद्दाराइं' का पाठ है, इसलिए उसमें क्रम का व्यत्यय है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. बे पग देख्यां वादि, मनुष्य आदि इम जाणियैं ।
चउ पद करि गो आदि, कान्हसलो बहु पद करी ।।
५२. केसर करि के सींह, स्थूभ स्कंध देखो करी ।
जाणं वृषभ अबीह, वलय-बांह करि स्त्री प्रतै ।।
५३. बखतर आदि बंधेण, देखो जाणैं सुभट प्रति ।
फुन पहिर्‍यां वेसेण, जाणं ते महिला प्रतै ।।
५४. सोझी जे इक सीत[1], जाणै अन्न हांडी तणुं ।
गाथा एक पुनीत, सुण जाणे ए कवि अछै ।।
५५. अथ आश्रय करि जाण, धूमे करिनैं अग्नि प्रति ।
बुगलां करि सर माण, अभ्र विकारे वृष्टि प्रति ।।

५६. शील समाचरणेह, जाणै वलि कुलपुत्र प्रति ।
शेषवत कह्युं एह द्वितीय भेद अनुमान नुं ।।
५७. पूर्वे जाण्यो जेह, जे साथै छे तुल्यपणुं ।
दृष्टसाधर्म्य कहेह, तेहना दोय प्रकार छै ।।

५८. सामान्यदृष्ट थकीज, दीठो ते सामान्यदृष्ट ।
विशेष दृष्टे लोज, दीठो तेह विशेषदृष्ट ।।

५९. धुर सामान्यज दृष्ट, जिम एक पुरुष तिम बहु पुरुष ।
जिम बहु पुरुषा इष्ट, तिम जाणैं इक पुरुष प्रति ।।
६०. एक पुरुष नैं देख, जाणैं बहुला पुरुष नैं ।
घणां पुरुष नैं पेख, जाण लियै इक पुरुष प्रति ।।
६१. जिम इक सुवर्ण ज्ञान, तिम बहु सोनइयां प्रति ।
जिम बहु सुवर्ण जाण, तिम इक सोनइया प्रति ।।

६२. वलि देख्यूंज विशेख, विशेष-दृष्टज दूसरो ।
घणां पुरुष में देख, एक पुरुष नैं ओलखै ।।
६३. पूर्वे इक नर दृष्ट, घणां पुरुष मांहै तिको ।
देख्यां जाणैं इष्ट, पूर्व देख्यो तेह ए ।।
६४. पूर्वे सोनइयो देख, घणां सोनइयां में तिको ।
देखी जाणै पेख, पूर्वे देख्यो तेह ए ।।

६५. तेहना तीन प्रकार, कहियै एह संक्षेप थी ।
अतीत-ग्रहण विचार, वर्तमान आगामिक ।।

---

१ अनाज का एक कण

५२. सीहं केसरेणं, वसहं ककुहेणं, महिलं वलयबाहाए ।

५३. परियरबंधेण भडं, जाणेज्जा महिलियं निवसणेणं ।

५४. सित्थेण दोणपागं कविं च एगाए गाहाए ।
(अणु० ५२५)

५५. से किं तं आसएणं ?
आसएणं—अग्गिं धूमेणं, सलिलं बलागाहिं, वुट्ठिं अब्भविकारेणं,

५६. कुलपुत्तं सीलसमायारेणं ।
से तं आसएणं । से तं सेसवं । (अणु०/५२६)

५७. से किं तं दिट्ठसाहम्मवं ?
दिट्ठसाहम्मवं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—
दृष्टेन पूर्वोपलब्धेनार्थेन सह साधर्म्यं दृष्टसाधर्म्यम् ।
(अनु० वृ० प० १९९)

५८. सामन्नदिट्ठं च विसेसदिट्ठं च । (अणु० ५२७)
सामान्यतो दृष्टार्थयोगात्सामान्यदृष्टं, विशेषतो दृष्टार्थयोगाद्विशेषदृष्टम् । (अनु० वृ० प० १९९)

५९. से किं तं सामन्नदिट्ठं ?
सामन्नदिट्ठं—जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा, जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो ।

६१. जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा, जहा बहवे करिसावणा तहा एगो करिसावणो ।
(अणु० ५२८)

६२. से किं तं विसेसदिट्ठं ?
विसेसदिट्ठं—से जहानामए केइ पुरिसे बहूणं पुरिसाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं पुरिसं पच्चभिजाणेज्जा—अयं से पुरिसे,

६४. 'बहूणं वा करिसावणाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं करिसावणं पच्चभिजाणेज्जा—अयं से करिसावणे ।'
(अणु० ५२९)

६५. तस्स समासओ तिविहं गहणं भवइ, तं जहा—
तीयकालगहणं पडुप्पण्णकालगहणं अणागयकालगहणं । (अणु० ५३०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. अतीत-ग्रहण सुजन्न, ऊगा तृण वन नें विषे ।
सर्व धान्य निष्पन्न, तिण करि शोभै मेदनी ।।

६६. से किं तं तीयकालगहणं ?
तीयकालगहणं—उत्तिणाणि वणाणि निप्फण्णसस्सं वा मेइणि,

६७. द्रह सर कुंड तलाव, पूर्ण भरिया पेख नें ।
थइ सुवृष्टिज भाव, जाणै अतीत-ग्रहण ए ।।

६७. पुण्णाणि य कुंड-सर-नदि-दह-तलागाणि पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा—सुवुट्ठी आसी । से तं तीयकालगहणं । (अणु० ५३१)

६८. गयो गोचरी संत, मिलै प्रचुरज अन्न जल ।
हिवडां सुभिक्ष हुंत, ए वर्त्तमान अद्धा-ग्रहण ।।

६८. से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?
पडुप्पण्णकालगहणं—साहुं गोयरग्गगयं विच्छड्डिय पउरभत्तपाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा—सुभिक्खे वट्टइ । से तं पडुप्पण्णकालगहणं ।
(अणु० ५३२)

६९. काल अनागत-ग्रहण, अभ्र गगन निर्मलपणुं ।
गिरि वर कृष्णज वर्ण, विद्युत सहितज मेघ फुन ।।
७०. वलि घन गर्जत ताय, वृष्टि योग्य प्रदक्षिण दिशि ।
भ्रमत प्रशस्तज वाय, संध्या रक्तज चींगटी ।।

६९,७०. से किं तं अणागयकालगहणं ?
अणागयकालगहणं—गाहा—
अब्भस्स निम्मलत्तं कसिणा य गिरी सविज्जुया मेहा ।
थणिय-वाउब्भामो संझा निद्धा य रत्ता य ।।
स्तनितं—मेघगर्जितं, 'वाउब्भामो त्ति तथाविधो वृष्ट्यव्यभिचारी प्रदक्षिणं दिक्षु भ्रमन् प्रशस्तो वातः । (अनु० वृ० प० १९९)

७१. वारुण मंडल जाण, तथा माहेंद्रज मंडलो ।
ग्रन्थांतरे पिछाण, लक्षण तेहनूं इम कह्युं ।।
७२. पूर्वाषाढा पेख, वलि उत्तराभाद्रज कह्यो ।
अश्लेषा सुविशेख, आर्द्रा मूलज रेवती ।।
७३. वलि शतभिषा कहाय, एहिज नक्षत्रे करी ।
वारुण मंडल थाय, अथ माहेंद्रज मंडलो ।।
७४. अनुराधा अवलोय, जेष्ठा उत्तराषाढ फुन ।
श्रवण धनेष्ठा जोय, रोहिणि माहिंद्र मंडलो ।।
७५. अन्य कोइक उतपात, दिग्-दाहादिक प्रशस्तहि ।
वृष्टी कर्त्ता ख्यात, देखी नें इम जाणियै ।।
७६. यथा सुवृष्टि सुहाय, हुसैज इह अन्य क्षेत्र में ।
काल अनागत पाय, ग्रहण करै अनुमान करि ।।

७१. वारुणं वा माहिंदं वा

७५,७६. अण्णयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा—सुवुट्ठी भविस्सइ । से तं अणागयकालगहणं । (अणु० ५३३)
उत्पातम्—उल्कापातदिग्दाहादिकम्
(अनु० वृ० प० २००)

७७. विण तृण वन वलि धान अनिष्पन्न शुष्क सर प्रमुख ।
थई कुवृष्टी जान, काल अतीतज-ग्रहण ए ।।

७७. तीयकालगहणं नित्तिणाइं वणाइं अनिप्फण्णसस्सं वा मेइणि, सुक्काणि य कुंड-सर-नदि-दह-तलागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा कुवुट्ठी आसी ।
(अणु० ५३५)

७८. मुनी गोचरी मांहि, भिक्षा नें अणपामवै ।
दुर्भिक्ष वर्त्ते ताहि, वर्तमान जाणैं अद्धा ।।

७८. पडुप्पण्णकालगहणं—साहुं गोयरग्गगयं भिक्खं अलभमाणं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा—दुब्भिक्खे वट्टइ । (अणु० ५३६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. आग्नेय मंडल जाण, अथवा वायव्य मंडलो ।
ग्रन्थांतरे पिछाण, दाख्यो ते कहियै अछे ।।

७९. अणागयकालगहण—अग्गेयं वा वायव्वं वा ।

८०. भरणी अनें विशाख, पूर्वा फाल्गुनी और पुष ।
पूर्वाभाद्र विशाख, मघा सप्त आग्नेय ह्वै ।।
८१. चित्रा हस्त मझार, मृगशिर स्वातिज अश्विनी ।
पुनर्वसू वलि धार, उत्तराभद्र वायव्य मंडल ।।
८२. ए बे मंडल ख्यात, वृष्टि तणां घातक अछै ।
वली अन्य उत्पात, देखी नैं जाणैं इसो ।।
८३. हुस्यै कुवृष्टि अनिष्ट, अद्धा अनागत-ग्रहण ए ।
ए विशेष थी दृष्ट, एह दृष्टसाधर्म्यवत ।।

८२,८३. अण्णयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ, जहा—कुवुट्ठी भविस्सइ । से तं अणागयकालगहणं ।

८४. आख्यो ए अनुमान, चिउं प्रमाण में दूसरो ।
हिव कहियै उपमान, भेदज तृतीय प्रमाण नों ।।

८४. से तं अणुमाणे । (अणु० ५३७)

८५. उपमा दोय प्रकार, साधर्म करि उपनीत ज्यां ।
विषम धर्म करि धार, वैधर्म्यज-उपनय जिहां ।।

८५. से किं तं ओवम्मे ?
ओवम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साहम्मोवणीए य वेहम्मोवणीए य । (अणु० ५३८)

८६. सदृश धर्मपणेण, उपनय तेहनुं मेलवूं ।
प्रथम साधर्म नामेण, साधर्म्यज-उपनीत ते ।।

८६. साधर्म्येणोपनीतम्—उपनयो यत्र तत्साधर्म्योपनीतम् । (अनु० वृ० प० २०१)

८७. विषम धर्म भावेण, उपनय तेहनुं मेलवूं ।
द्वितीय वैधर्म नामेण, वैधर्मज-उपनीत ते ।।

८७. वैधर्म्येणोपनीतम्—उपनयो यत्र तद्वैधर्म्योपनीतम् । (अनु० वृ० प० २०१)

८८. साधर्म्य त्रिविधज तास, धुर किंचित्साधर्म्य हि ।
बहुलसाधर्म्य विमास, तृतीय सर्वसाधर्म्य फुन ।।

८८. से किं तं साहम्मोवणीए ?
साहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—किंचिसाहम्मे, पायसाहम्मे, सव्वसाहम्मे । (अणु० ५३९)

## गीतक-छंद

८९. किंचित् साधर्म्यओपम इम जिम, मेरु तिम सरिसव अणुं ।
वलि जेम सरिसव तेम मेरू, मूर्त्तता सदृशपणुं ।।

८९. से किं तं किंचिसाहम्मे ?
किंचिसाहम्मे—जहा मंदरो तहा सरिसवो, जहा सरिसवो तहा मंदरो ।

९०. जिम समुद्र तिम गोपद वलि, जिम गोपदो तिम उदधि ही ।
उदक सहितपणांज मात्र हि, तसुं सरिखुं किंचित् लही ।।

९०. जहा समुद्दो तहा गोप्पयं, जहा गोप्पयं तहा समुद्दो ।।

९१. जिम तरणि तिम खद्योत फुन, जिम आगियो तिम रवि मणुं ।
ए उभय नुं गगने गमन, उद्योत किंचित् सदृशपणुं ।।

९१. जहा आइच्चो तहा खज्जोतो, जहा खज्जोतो तहा आइच्चो ।

९२. जिम चंद्र तिमहिज कुमुद कमलज, जिम कुमुद तिम शशि भणुं ।
चंद कुमुद बिहुं नुं शुक्ल भावज, किंचित ए सदृशपणुं ।।

९२. जहा चंदो तहा कुंदो, जहा कुंदो तहा चंदो ।।
से तं किंचिसाहम्मे । (अणु० ५४०)

## दूहा

९३. ए किंचितसाधर्म्य करि, वर धुर भेद कहेह ।
प्राय बहुलसाधर्म्य करि, उपनय मेलवियेह ।।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## गीतक-छंद

९४. जिमहीज गो तिम गवय फुन, जिम गवय तिम गो जाणियै ।
इह खुर ककुद श्रृंग पूछ प्रमुखज, सदृश बिहु नों माणियै ।।

९४. से किं तं पायसाहम्मं ?
पायसाहम्मे—'जहा गो तहा गवओ, जहा गवओ तहा गो ।' से तं पायसाहम्मे । (अणु० ५४०)
खरककुदविषाणलाङ्गूलादेर्द्वयोरपि समानत्वात्
(अनु० वृ० प० २०१)

## सोरठा

९५. णवरं इतो विशेख, गो नु कंबल प्रगट ही ।
कंठ वाटलुं देख, गवय—रोझ नु जाणियै ।।

९५. नवरं सकम्बलो गौर्वृत्तकण्ठस्तु गवय इति प्रायः-साधर्म्यता । (अनु० वृ० प० २०१)

९६. बहुलपणुं ते पाय, सदृशपणु कह्यु तसु ।
तृतीय भेद हिव आय, सर्वसाधर्म्य तणूं कहुं ।।
९७. सर्व भिन्न छै सोय, क्षेत्र काल प्रमुख करी ।
एक सरीख न होय, तिण सुं सर्वसाधर्म्य नहिं ।।
९८. तृतीय भेद किम ख्यात, तथापि तसु वंछा तणु ।
अरह प्रमुख विख्यात, तिण करि ओपम कहीजिय ।।

९७,९८. से किं तं सव्वसाहम्मं ?
सव्वसाहम्मे ओवम्मं नत्थि तहावि तस्स तेणेव ओवम्मं कीरइ ।

## गीतक-छंद

९९. अरिहंत जे अरिहंत सादृश, करत कारज जेहवूं ।
चिउं तीर्थ वर धुर स्थापवै, जन अन्य नहिं को एहवूं ।।

९९. जहा अरिहंतेहिं अरहंतसरिसं कयं ।
तत्किमपि सर्वोत्तमं तीर्थप्रवर्तनादिकार्यमर्हता कृतं यदर्हन्नेव करोति नापरः कश्चिदिति भावः ।
(अनु० वृ० प० २०१)

१००. वलि चक्रवर्ती चक्रि सदृश, कार्य कर्त्ता जाणियै ।
षट् खंड साधन प्रमुख जे जन, अन्य को नहि ठाणियै ।।

१००. चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिसं कयं,

१०१. फुन अर्द्धचक्री करत कारज, अर्द्धचक्री सारिखो ।
युद्ध सूर नैं प्रतिमल्ल हंता, अन्य को नहिं पारिखो ।।

१०१. वासुदेवेण वासुदेवसरिसं कयं,

१०२. बलदेव ते बलदेव सादृश, कृत्य कृत पद अमर ही ।
सुर सहस्राधिष्ठित हलादिक युद्ध अन्य ए सम को नहीं ।।

१०२. बलदेवेन बलदेवसरिसं कयं,

१०३. मुनि करै कारज मुनी सरिखू, अन्य को न करै इसुं ।
सम्यक्त्व चारित्र बिन क्रिया कृत, तेह पिण नहिं मुनि जिसुं ।।

१०३. साहुणा साहुसरिसं कयं ।
से तं सव्वसाहम्मे । से तं साहम्मोवणीए ।
(अणु० ५४२)

## सोरठा

१०४. साधर्म्य-उपनय ख्यात, वैधर्म्य-उपनय त्रिविध ।
किंचित्‌वैधर्म्य जात, प्राय-सर्व-वैधर्म्य फुन ।।

१०४. से किं तं वेहम्मोवणीए ?
वेहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते—किंचिवेहम्मे, पायवेहम्मे, सव्ववेहम्मे । (अणु० ५४३)

१०५. सबली-काबरी गाय, जन्म्यो जेहवो वाछरो ।
तेहवो वाछर नांय, बहुली-कालो गा जण्यों ।।
१०६. बहुली-काली जात, जेहवो छै जे वाछरो ।
तेहवो वच्छ न थात, गाय काबरी नों जण्यों ।।

१०५. से किं तं किंचिवेहम्मे ?
किंचिवेहम्मे—जहा सामलेरो न तहा बाहुलेरो,
१०६. जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो । से तं किंचिवेहम्मे । (अणु० ५४४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०७. शेष धर्म तुल्य हेर, ते माता ना भेद ई थी ।
ईषत् वच्छ में फेर, तिण सूं किंचित् वैधर्म्य ।।

१०८. जेहवो पायस—क्षीर, तेहवूं वायस—काग नहि ।
जेहवूं वायस भीर, तेहवो पायस—क्षीर नहि ।।

१०८. से किं तं पायवेहम्मे ?
पायवेहम्मे—जहा वायसो न तहा पायसो, जहा पायसो न तहा वायसो। (अणु० ५४५)

१०९. धर्म सचेतन आदि, नहिं छै बहु सदृशपणुं ।
प्राय बहुल संवादि, कहियै बहुवैधर्म्य ए ।।

११०. पायस वायस नाम, बिहुं ना बे बे वर्ण तुल्य ।
निज निज सत्व सुपाम, इत्यादिक सदृशपणुं ।।

१११. तिण सूं ए आख्यात, प्राय—बहुल वैधर्म्यवत ।
तृतीय भेद हिव आत, सर्व थकी जे वैधर्म्य ।।

११२. सर्व-वैधर्म्य नांहि, अछै जाणवा जोग्य सहु ।
छतापणुं सहु मांहि, एह सरिखू ते भणी ।।

११२. से किं तं सव्ववेहम्मे ?
सव्ववेहम्मे ओवम्मं नत्थि,

११३. तो तृतीय भेद आख्यात, तेहनुं ह्वै निरर्थकपणुं ।
ते माटै अवदात, सर्ववैधर्म्य उपम हिव ।।

११४. तेहनैं तेहिज साथ, कीजै छै उपमा जिका ।
नीच कर्‍यु गुरु घात, अकृत नीच करै जिसुं ।।

११४. तहा वि तस्स तेणेव ओवम्मं कीरइ, जहा—नीचेण नीचसरिसं कयं ।

११५. दासे दास सरीस, कीधूं छै कारज जिको ।
काग कृत्यज ईष, काग करै छै जेहवूं ।।

११५. काकेण कागसरिसं कयं,

११६. श्वाने श्वान सरीस, कारज कीधूं छै तिणे ।
पाण चंडालज ईष, जे चंडाल सरीख कृत[1] ।।

११६. साणेण साणसरिसं कयं ।

११७. शिष कहै स्वामीनाथ ! नीचे नीच सरीख कृत ।
इत्यादिक अवदात, साधर्म्य पिण वैधर्म्य किम ?

११७. आह—नीचेन नीचसदृशं कृतमित्यादि ब्रुवता साधर्म्यमेवोक्तं स्यान्न वैधर्म्यम्,
(अनु० वृ० प० २०१)

११८. गुरु कहै ए सत्य बात, किंतु प्राये नीच पिण ।
न करै ए महाघात, स्यूं कहिवुं ज अनीच नुं ।।

११८. सत्यं, किन्तु नीचोऽपि प्रायो नैवंविधं महापापमाचरति किं पुनरनीचः ?

११९. सर्व लोक विपरीत, प्रवर्त्या नीं वंछना ।
इहां वैधर्म्य प्रतीत, इम दासादिक पिण सहु ।।

११९. एव दासाद्युदाहरणेष्वपि वाच्यम् ।
(अनु० वृ० प० २०१)
ततः सकलजगद्विलक्षणप्रवृत्तत्वविवक्षया वैधर्म्यमिह भावनीयम् । (अनु० वृ० प० २०१)

१२०. सर्व वैधर्म्य ख्यात, वैधर्म्य उपनय ए कह्यु ।
ए उपमा अवदात, तृतीय प्रमाण कह्युं प्रवर ।।

१२०. से तं सव्ववेहम्मे । से तं वेहम्मोवणीए । से तं ओवम्मे । (अणु० ५४६)

१२१. आगम तुर्य प्रमाण, दोय प्रकारज दाखियो ।
लौकिक प्रथम पिछाण, लोकोत्तर दूजो वलि ।।

१२१. से किं तं आगमे ?
आगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—लोइए लोगुत्तरिए य । (अणु० ५४७)

---

१. गाथा ११५ और ११६ में दास और पाण शब्द हैं, वे अनुयोगद्वार के इस आदर्श के पाठान्तर में हैं ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२२. लौकिक जेह कथित, अज्ञानी मिथ्यातीइं ।
स्वछंदबुद्धि रचित, भारत जावत वेद चिहुं ।।[1]

१२३. द्वितीय लोकोत्तर जन्न, जे अरिहंत भगवंत जी ।
उत्पन्न ज्ञान दर्शन्न, तास धरणहारे प्रभु ।।

१२४. तीन काल नां जाण, आंसू-वह्लितं अमर नर ।
निरख्या जिन गुण-खाण, महिय तास गुणग्राम करि ।।

१२५. पूजित भाव करेह, सर्व वस्तु ना जाण प्रभु ।
सर्व वस्तु देखेह, तिणे परूप्या बार अंग ।।

१२६. प्रथम अंग आचार, यावत् दृष्टीवाद[2] फुन ।
अथवा आगम सार, तीन प्रकार परूपिया ।।

१२७. गणधर कृत वर सुत्त, अर्थागम अरिहंत कृत ।
उभयागम बिहुं उक्त, अथवा आगम त्रिविध फुन ।।

१२८. आत्मागम धुर आण, अनंतरागम द्वितीय फुन ।
परंपरागम माण, हिव निर्णय एहनों कहुं ।।

१२९. तीर्थंकर नैं जाण, अर्थागम आत्मा थकी ।
विण उपदेश पिछाण, तिण सुं आत्मागम थया ।।

१३०. गणधर नै पहिछाण, सूत्रागम छै आत्म थी ।
तेहनों गूंथ्यो जाण, आत्मागम ते सूत्र नों ।।

१३१. अर्थ तणो अवलोय, आगम जाणपणो प्रवर ।
अणंतरागम जोय, गणधर तणें कहीजियै ।।

१३२. गणधर नां शिष्य सार, जंबू नैं जे सूत्र नों ।
अणंतरागम धार, परंपरागम अर्थ नों ।।

१३३. तिण उपरंत विचार, प्रभवादिक नैं सूत्र नुं ।
अर्थ तणुं पिण धार, जाणपणो छै ज्ञान ते ।।

१३४. आत्मागम न कहाय, अणंतरागम पिण नहीं ।
परंपरागम थाय, हिव ए कहूं जुओ-जुओ ।।

१३५. अर्थ तणो पहिछाण, आत्मागम तीर्थंकरे ।
गणवर तणेंज जाण, अणंतरागम अर्थ नों ।।

१३६. गणधर ना जे शीस, अथवा प्रशिष्य तेहना ।
अनुक्रम शीस जगीस, परंपरागम अर्थ नों ।।

१२२. से किं तं लोइए आगमे ?
लोइए आगमे --जण्णं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छा-दिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धि-मइ-विगप्पियं, तं जहा— भारहं जाव चत्तारि वेया संगोवंगा । से तं लोइए आगमे । (अणु० ५४८)

१२३. से किं तं लोगुत्तरिए आगमे ?
लोगुत्तरिए आगमे—जण्णं इमं अरहंतेहिं, भगवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं

१२४,१२५. तीयपडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं तेलोक्कवहिय-महिय-पूइएहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं,

१२६. आयारो जाव दिट्ठिवाओ । (अणु० ५४९)

१२७. अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते तं जहा—सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे । (अणु० ५५०)
अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते,

१२८. अत्तागमे अणंतरागमे परंपरागमे ।

१२९. तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे ।

१३०. गणहराणं सुत्तस्स अत्तागमे,

१३१. अत्थस्स अणंतरागमे ।

१३२. गणहरसीसाणं सुत्तस्स अणंतरागमे, अत्थस्स परंपरागमे ।

१३३,१३४. तेणं परं सुत्तस्स वि अत्थस्स वि नो अत्तागमे, नो अणंतरागमे, परंपरागमे ।

---

१, २. यह जोड़ संक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है । अनुयोगद्वार के इस आदर्श में पाठ पूरा है । संक्षिप्त पाठ की सूचना पाद-टिप्पण में दी गई है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३७. सूत्र थकी कहिवाय, आत्मागम गणधर तणें ।
तेहना शिष्य नें ताय, अणंतरागम सूत्र नों ।।
१३८. जंबू नां जे शीस, प्रभव तथा तसु प्रशिष्य नें ।
चरम लगै सुजगीस, परंपरागम सूत्र नों ।।
१३९. ए सगलो विस्तार, अनुयोगद्वार थकी अख्यूं ।
जाव शब्द में सार, कह्यु भगवती नें विषै ।।

## दूहा

१४०. केवली नें छद्मस्थ नां, प्रस्ताव थी सुविचार ।
केवली नें छद्मस्थ नों, हिव कहियै विस्तार ।।
१४१. *हे प्रभु ! चरिम तिके छेहला कर्म, चरिम निर्जरा वलि जाणी ।
तेह केवली जाणैं देखै ? हंता जिन वच गुणखाणी ।।
१४२. चरिम कर्म ते शैलेसी जे, चरम समय वेदै जेही ।
तेहिज निर्जर्या समय अनंतर, चरम निर्जरा छै तेही ।।
१४३. जेम केवली ए बिहुं जाणै, तिम छद्मस्थ जाणै बेही ।
अंतकरं ना दोय आलावा, आख्या तिम कहिवा एही ।।
१४४. हे प्रभु ! केवलि अतिहि शुभ मन, अतिहि शुभ वच व्यापारै ?
श्री जिनवर भाखै छै हंता, अतिहि शुभ मन वच धारै ।।
१४५. केवली ना अति शुभ मन वच प्रभु ! वैमानिक जाणै देखै ?
जिन कहै कोइक जाणैं देखै, को नवि जाणै नवि पेखै ।।
१४६. ते किण अर्थे ? तब जिन भाखै, वैमानिक बिहु विध थाई ।
माई मिथ्यादृष्टि ऊपनों, वलि समदृष्टि अमाई ।।
१४७. त्यां जे माई मिथ्यादृष्टि, ते नवि जाणै नवि देखै ।
हिवै अमाई समदृष्टी नुं, सूत्रे संक्षेपे लेखै ।।

*लय : नाहरगढ़ ले चालो

१४१. केवली णं भंते ! चरिमकम्मं वा, चरिमणिज्जरं वा जाणइ-पासइ ?
हंता जाणइ-पासइ । (श० ५/९८)
१४२. चरमकर्म यच्छैलेशीचरमसमयेऽनुभूयते चरमनिर्जरा तु यत्ततोऽनन्तरसमये जीवप्रदेशेभ्यः परिशटतीति । (वृ० प० २२३)
१४३. जहा णं भंते ! केवली चरिमकम्मं वा, चरिमणिज्जरं वा जाणइ-पासइ, तहा णं छउमत्थे वि चरिमकम्मं वा, चरिमणिज्जरं वा जाणइ-पासइ ? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। सोच्चा जाणइ-पासइ, पमाणतो वा । जहा णं अंतकरेणं आलावगो तहा चरिमकम्मेण वि अपरिसेसिओ नेयव्वो ।
(श० ५/९९)
१४४. केवली णं भंते ! पणीयं मणं वा, वइं वा धारेज्जा ? हंता धारेज्जा । (श० ५ १००)
'पणीय' त्ति प्रणीतं शुभतया प्रकृष्टं 'धारेज्ज' त्ति धारयेद् व्यापारयेदित्यर्थः । (वृ० प० २२३)
१४५. जण्णं भंते ! केवली पणीयं मणं वा, वइं वा धारेज्जा, तण्णं वेमाणिया देवा जाणंति-पासंति ? गोयमा ! अत्थेगतिया जाणंति-पासंति, अत्थेगतिया ण जाणंति, ण पासंति । (श० ५/१०१)
१४६. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगतिया जाणंति-पासंति, अत्थेगतिया ण जाणंति, ण पासंति ? गोयमा ! वेमाणिया देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—माइमिच्छादिट्ठीउववण्णगा य, अमाइसम्मदिट्ठीउववण्णगा य ।
१४७. तत्थ णं जे ते माइमिच्छादिट्ठीउववण्णगा ते ण जाणंति ण पासंति । तत्थ णं जे ते अमाइसम्मदिट्ठीउववण्णगा ते णं जाणंति-पासंति ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४८. अनंतर प्रथम समय नां ऊपना, ने जाणै देखै नांही।
परंपर घणां समय नां ऊपना, दोय भेद तेहनां थाई।।

१४९. पर्याप्त नैं अपर्याप्त जे, अपर्याप्त ते नवि जाणै।
पर्याप्त नां दोय भेद, उपयोग सहित रहित ठाणं।।

१४८,१४९. अमाइसम्मदिट्ठी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोववण्णगा य, परंपरोववण्णगा य। तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते ण जाणंति, ण पासंति। तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते णं जाणंति-पासंति।
परंपरोववण्णगा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अपज्जत्तगा य, पज्जत्तगा य। तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते ण जाणंति, ण पासंति। तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं जाणंति-पासंति। पज्जत्तगा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणुवउत्ता य उवउत्ता य।

१५०. तिहां उपयोग-रहित अछै जे, नवि जाणै नैं नवि देखै।
उपयोग-सहित ते जाणै देखै, तिण अर्थे भाख्यूं लेखै।।

१५०. तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते ण जाणंति, ण पासंति। तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते णं जाणंति-पासंति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—अत्थेगतिया जाणंति-पासंति, अत्थेगतिया ण जाणंति, ण पासंति।
(श० ५/१०२)

१५१. वृत्तिकार कह्यो वाचनांतरे ए साख्यातपणें जाणी।
सूत्र सर्व आख्यो छै किहांइक, किहांइक छै संक्षेपाणी।।

१५१. वाचनान्तरे त्विदं सूत्रं साक्षादेवोपलभ्यते।
(वृ० प० २२३)

१५२. अर्थ अंक ए देश चोपन नुं, ढाल तयासीमी साची।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' सुख संपति जाची।।

## ढाल : ८४

### दूहा

१. वैमानिक जिन वारता, आखी इहां उदार।
वलि विशेष तेहिज तणुं, कहियै छै अधिकार।।

*स्वामी ! हूं तो अरज करूं जोड़ी हाथ।
स्वामी ! थे तो मया करो जगनाथ।। (ध्रुपदं)

२. अनुत्तर विमान नां देव तिहां रह्या,
जगत-प्रभु ! इहां रह्या केवली साथ।
एक बार बार-बार बोलायवा,
स्वामी ! ए तो समर्थ करवा बात ?

२. पभू णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए ?
'आलावं व' त्ति सकृज्जल्पं 'संलावं व' त्ति मुहुर्मुहुर्जल्पं। (वृ० प० २२३)

---

* लय : कोइ कहै छाने कोई कहै छपके······



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. श्री जिन भाखै हंता समर्थ, स्वामी ! आतो,
किण अर्थे कही बात ?
जिन कहै अनुत्तर विमान तणां सुर, अहो शिष्य !
तिहां रह्याज साख्यात ।
(गोयम ! तूं तो सांभलजै अवदात,
गोयम ! आ तो आश्चर्यकारी बात ।।)

३. हंता पभू । (श० ५/१०३)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—पभू णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए ? गोयमा ! जण्णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा ।

४. अर्थ तथा हेतु अथवा प्रश्न प्रति,
गोयम ! आ तो कारण प्रति कहिवाय ।
पूछा नों उत्तर ते व्याकरण प्रति,
अहो शिष्य ! सुरवर पूछै ताय ।।
(गोयम ! तूं तो सांभलजे चित ल्याय,
गोयम ! त्यांरो अवधि-ज्ञान अधिकाय ।।)

४. अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा कारणं वा वागरणं वा पुच्छंति,

५. ते इहां रह्या थकाज केवली, अहो शिष्य ! एहिज वागरै वाय ।
तिण अर्थे तिहां रह्या थका सुर, अहो शिष्य! केवली सूं वतलाय ।।

५. तण्णं इहगए केवली अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा कारणं वा वागरणं वा वागरेइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—पभू णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा संलावं वा करेत्तए (श० ५/१०४)

६. हे प्रभु ! जे इहां रह्या केवली, अहो प्रभु ! अर्थ जाव वागरंत ।
अनुत्तर विमान नां देव तिहां रह्या, अहो प्रभु ! जाणैं अनैं देखंत ?
(स्वामी ! हूं तो अरज करूं धर खंत,
जगत-प्रभु ! उत्तर दो भगवंत)

६. जण्णं भंते ! इहगए केवली अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा कारणं वा वागरणं वा वागरेइ, तण्णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा जाणंति-पासंति ?

७. जिन कहै हंता, प्रभु ! किण अर्थे ?
अहो शिष्य ! तब भाखै भगवंत ।
ते सुर नैं अनंती मनो-द्रव्य-वर्गणा,
अहो शिष्य ! लाधी अवधि विषय हुंत ।।
(गोयम ! तूं तो सांभलजै धर खंत, अनुत्तर देव तणों विरतंत)

७. हंता जाणंति-पासंति । (श० ५/१०५)
से केणट्ठेणं जाव पासंति ?
गोयमा! तेसि णं देवाणं अणंताओ मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ ।
'लद्धाओ' त्ति तदवधेर्विषयभावं गताः ।
(वृ० प० २२३)

८. ते अवधि करी नैं सामान्य थी पामी,
अहो शिष्य ! अभिसमण्णागया मंत ।
तेहनुं ए अर्थ विशेष थी पामी,
अहो शिष्य ! तिण अर्थे देखंत ।।

८. पत्ताओ अभिसमण्णागयाओ भवंति । से तेणट्ठेणं जण्णं इहगए केवली जाव पासंति (सं० पा०)
(श० ५/१०६)
'पत्ताओ' त्ति तदवधिना सामान्यतः प्राप्ताः परिच्छिन्ना इत्यर्थः 'अभिसमन्नागयाओ' त्ति विशेषतः परिच्छिन्नाः । (वृ० प० २२३)

९. वृत्ति विषेज संभिन्न-लोकनाडी
अहो प्राणी ! विषय ग्राहक अवधि हुंत ।
ते माटै मनोद्रव्य-वर्गणा,
अहो प्राणी ! ग्राहक अवधि कहंत ।।

९. यतस्तेषामवधिज्ञानं संभिन्नलोकनाडी विषयं, यच्च लोकनाडीग्राहकं तन्मनोवर्गणाग्राहकं भवत्येव ।
(वृ० प० २२३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

१०. लोक विषय संख्यात-विषयक अवधि जे हुवै ।
ते पिण जाणै ख्यात, मनोद्रव्य निज शक्ति स्यूं ।।

११. तो किंचित् ऊणो ताहि, लोकनाडि नो विषय जसु ।
ते किम जाणै नांहि, मनोद्रव्य सामान्य थी ?

१२. संख्यातमैं जे भाग, लोक तणों नें पल्य तणों ।
अवधिवंत नो माग, मनोद्रव्य पिण जाणोइं[1] ।।

१३. *हे प्रभु ! देव अनुत्तरवासी, अहो प्रभु ! स्यूं मोह उदय कहंत ?
उपशांतमोहा नें क्षीणमोहा छै? अहो प्रभु! हिव जिन उत्तर दित ।।

१४. उत्कट जे वेद-मोह अपेक्षा, अहो शिष्य ! उदय-मोहा नहिं हुंत ।
अनुत्कट वेद-मोह ते माटै, अहो शिष्य ! उपशांत-मोह कहंत ।

१५. काय फर्श रूप शब्द अनें मन,
अहो शिष्य ! नहिं परिचारणा मंत ।
पिण सर्वथा मोह उपशांत नहीं छै,
अहो शिष्य ! वलि क्षीण-मोहा न हुंत ।।

## सोरठा

१६. पूर्व सूत्र पिछाण, आख्यूं छै छद्मस्थ नुं ।
तेह थकी अन्य जाण, केवलि नुं अधिकार हिव ।।

१७. *केवली इन्द्रिय करि जाणैं देखै ?
अहो शिष्य ! समर्थ नहीं ए बात ।
किण अर्थे केवली इन्द्रिये करि,
अहो शिष्य ! नहिं जाणै न देखात ?

१८. जिन कहै केवली पूर्व दिशि में,
अहो शिष्य ! जाणैं मित परिमाणवंत ।
गर्भज मनुष्य जीव इत्यादिक,
अहो वलि, अमित असंख अनन्त ।।

१९. जावत् निवृत्त दर्शण जिन नै, अहो शिष्य ! तिण अर्थे ए हुंत ।
केवली इन्द्रिय करि नवि जाणै, अहो शिष्य! इन्द्रिय करि न देखंत ।।

१०. यतो योऽपि लोकसंख्येयभागविषयोऽवधिः सोऽपि मनोद्रव्यग्राही । (वृ० प० २२३)

११. यः पुनः संभिन्नलोकनाडीविषयोऽसौ कथं मनोद्रव्यग्राही न भविष्यति ? (वृ० प० २२३)

१२. इष्यते च लोकसंख्येयभागावधेर्मनोद्रव्यग्राहित्वं, यदाह—"संखेज्ज मणोदव्वे भागो लोगपलियस्स बोद्धव्वो ।" (वृ० प० २२३)

१३. अणुत्तरोववाइया णं भंते ! देवा किं उदिण्णमोहा ? उवसंतमोहा ? खीणमोहा ?

१४. गोयमा ! नो उदिण्णमोहा, उवसंतमोहा, 'उदिन्नमोह' त्ति उत्कटवेदमोहनीयाः 'उवसंतमोह' त्ति अनुत्कटवेदमोहनीयाः । (वृ० प० २२३)

१५. नो खीणमोहा । (श० ५।१०७)
परिचारणायाः कथञ्चिदप्यभावात्, न तु सर्वथोपशान्तमोहाः । (वृ० प० २२३)

१६. पूर्वतन सूत्रे केवल्यधिकारादिदमाह— (वृ० प० २२३)

१७. केवली णं भंते ! आयाणेहिं जाणइ-पासइ ? गोयमा ! नो तिणट्ठे समट्ठे । (श० ५।१०८)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ - केवली णं आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ ?
'आयाणेहिं' ति आदीयते—गृह्यतेऽर्थ एभिरित्यादानानि—इन्द्रियाणि । (वृ० प० २२४)

१८. गोयमा ! केवली णं पुरत्थिमे णं मियं पि जाणइ अमियं पि जाणइ ।

१९. जाव निव्वुडे दंसणे केवलिस्स । से तेणट्ठेणं (सं० पा०)
गोयमा ! एवं वुच्चइ—केवली णं आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ । (श० ५।१०९)

---

१. लोक के संख्यातवें भाग को जानने वाला अवधिज्ञानी भी अपने अवधिज्ञान से मनोद्रव्य को जान लेता है ।

***लय : कोई कहै छानें कोई कहै छपकै……**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. केवली ए वर्त्तमान समय विषे, अहो प्रभु ! जेह आकाश प्रदेश ।
हस्त पांव बाहू नें साथल, अहो प्रभु ! अवगाही नैं रहेस ।।
(स्वामी ! हूं तो अरज करूं छूं,
जिनेश ! सानुग्रह उत्तर दो सुविशेष)

२०. केवली णं भंते ! अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा ओगाहित्ता णं चिट्ठति,
'अस्सि समयंसि' त्ति अस्मिन् वर्त्तमाने समये (वृ० प० २२४)

२१. समर्थ केवली काल आगमिये, अहो प्रभु ! जेह आकाश प्रदेश ।
हस्त तथा यावत् कह्या पूर्वे, अहो प्रभु ! अवगाही नैं रहेस ?

२१. पभू णं केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपदेसेसु हत्थं वा, पायं वा, बाहं वा, ऊरुं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए ?

२२. जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, अहो प्रभु ! किण अर्थे ए वात ?
हस्तादि मेली वलि ने प्रदेशे, अहो प्रभु ! केवली सूं न रहात ।।

२२. गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे (श० ५।११०)
केणट्ठेणं भंते ! जाव केवली (सं० पा०) णं अस्सि समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव (सं० पा०) चिट्ठित्तए ?

२३. जिन कहै वीर्य-अंतराय नां क्षय थी,
अहो शिष्य ! केवली नैं आख्यात ।
ऊपनी शक्ति तेहिज प्रधान छै,
अहो शिष्य ! जोग व्यापार विख्यात ।।

२३. गोयमा ! केवलिस्स णं वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए ।
वीर्यं—वीर्यान्तरायक्षयप्रभवा शक्तिः तत्प्रधानं सयोगं—मानसादिव्यापारयुक्तं । (वृ० प० २२४)

२४. मन प्रमुख वर्गणा युक्त जे,
अहो शिष्य ! जीव द्रव्य नै कहात ।
चलित—अथिर उपकरण—अंग ह्वै,
अहो शिष्य ! तिण सूं सागी प्रदेश न आत ।।

२४. मनःप्रभृतिवर्गणायुक्तो वीर्यसयोगसद्द्रव्यस्तस्य भावस्तत्ता तया हेतुभूतया । (वृ० प० २२४)
चलाइं उवकरणाइं भवंति चलोवकरणट्ठयाए य णं केवली अस्सिं समयंसि जेसु आगासपदेसेसु हत्थं वा जाव चिट्ठति णो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव जाव चिट्ठित्तए ।
'चलाइं' ति अस्थिराणि 'उवकरणाइं' ति अङ्गानि ।
(वृ० प० २२४)

**सोरठा**

२५. तिण अर्थे कर तेह, यावत् कहियै केवली ।
वर्त्तमान समयेह, यावत् अवगाही रहै ।।
२६. केवली नीं कही बात, श्रुतकेवली नुं हिवै ।
कहियै छै अवदात, ते चउदै पूरवधरा ।।

२५. से तेणट्ठेणं जाव वुच्चइ—केवली णं अस्सि समयंसि जाव चिट्ठित्तए । (श० ५।१११)
२६. केवल्यधिकारात् श्रुतकेवलिनमधिकृत्याह—
(वृ० प० २२४)

२७. *हे प्रभु ! चउद पूर्वधर साधु,
अहो प्रभु ! घट नीं निश्राये विख्यात ।
सहस्र घडा प्रति निपजावी नैं,
अहो प्रभु ! देखावा समर्थ थात ?

२७. पभू णं भंते ! चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं,
घटादवधेर्घटं निश्रां कृत्वा (वृ० प० २२४)

२८. एक घडा ना सहस्र घट करि सकै,
अहो प्रभु ! पट थी सहस्र पट थात ।
कट ते चटाई थी सहस्र चटाई,
अहो प्रभु ! रथ थी सहस्र रथ आत ।।

२८. पडाओ पडसहस्सं, कडाओ कडसहस्सं, रहाओ रहसहस्सं

*लय : कोई कहै छानै कोई कहै छुपकै······



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. छत्र थकी सहस्र छत्र प्रतै वलि, अहो प्रभु ! इक दंड थकी विख्यात।
सहस्र जे दंड प्रतै निपजावी, अहो प्रभु ! देखावा समर्थ ख्यात ?

२९. छत्ताओ छत्तसहस्सं, दंडाओ दंडसहस्सं अभिनिव्वट्टेत्ता उवदंसेत्तए ?

३०. श्री जिन भाखै हंता गोयम ! अहो शिष्य ! श्रुत करि लब्धि पावंत।
तेण करी निपजावी देखाडिवा, अहो शिष्य ! समर्थ छै ते संत ।।

३०. हंता पभू। (श० ५।११२)
श्रुतसमुत्थलब्धिविशेषेणोपदर्शयितुं प्रभुः।
(वृ० प० २२४)

३१. किण अर्थे ? तब श्री जिन भाखै, अहो शिष्य ! चवद पूर्वधर संत।
तेहनैं अनंत द्रव्य उत्कारिका ना, अहो शिष्य ! भेदे करीनैं भेदंत ।।

३१. से केणट्ठेणं पभू चोद्दसपुव्वी जाव उवदंसेत्तए ? गोयमा ! चोद्दसपुव्विस्स णं अणंताइं दव्वाइं उक्कारियाभेएणं भिज्जमाणाइं

३२. एरंड बीज तणी पर छिटकी,
अहो शिष्य ! अलगुं थायवूं हुंत।
तिम छिटकी-छिटकी नैं सहस्र घट,
अहो शिष्य ! जुआ-जुआ थावंत ।।

३३. लद्धाइं कहितां लब्धि विशेष थी, अहो शिष्य ! ग्रहणविषयपणुं हुंत।
पत्ताइं तेहिज लब्धि विशेष थी, अहो शिष्य ! ग्रहण किया ते संत ।।

३३. लद्धाइं पत्ताइं
'लद्धाइं' ति लब्धिविशेषाद् ग्रहणविषयतां गतानि 'पत्ताइं' ति तत एव गृहीतानि। (वृ० प० २२४)

३४. अभिसमण्णागया रूप घटादि, अहो शिष्य ! परिणामवा आरंभत।
तथा पछै घटादिक निपजावी, अहो शिष्य ! बहु जन नैं देखाडंत ।।

३४. अभिसमण्णागयाइं भवंति।
'अभिसमन्नागयाइं' ति घटादिरूपेण परिणमयितुमारब्धानि ततस्तैर्घटसहस्रादि निर्वर्तयति।
(वृ० प० २२४)

## सोरठा

३५. तिण अर्थे आख्यात, समर्थ चउदश पूर्वधर।
पूर्व उक्त अवदात, यावत् उवदंसेत्तए ।।

३५. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—पभू णं चोद्दसपुव्वी उवदंसेत्तए। (श० ५।११३)

३६. इहां पुद्गल नों भेद, पंच प्रकारे ते हुवै।
खंड भेद धुर वेद, खंड हुवै पाषाणवत् ।।

३६. इह पुद्गलानां भेदः पञ्चधा भवति, खण्डादिभेदात्, तत्र खण्डभेदः खण्डशो यो भवति लोष्टादेरिव।
(वृ० प० २२४)

३७. प्रतर भेद पहिछाण, अभ्र-पटल जिम ते हुवै।
भेद चूर्णिका जाण, तिलादिक नां चूर्णवत् ।।

३७. प्रतरभेदोऽभ्रपटलानामिव चूर्णिकाभेदस्तिलादिचूर्णवत्
(वृ० प० २२४)

३८. अनुतटिका जे भेद, कूआ तलाव ना भेदवत्।
उत्कारिका संवेद, एरंड बीज तणी परै ।।

३८. अनुतटिकाभेदोऽवटतटभेदवत् उत्कारिकाभेदएरण्डबीजानामिवेति। (वृ० प० २२४)

३९. तिहां उत्कारिका भेदेन, भिद्यमान पुद्गल तिकै।
वर लब्धि विशेषेन, पूर्वधर घट सहस्र कृत ।।

३९. तत्रोत्कारिकाभेदेन भिद्यमानानि (वृ० प० २२४)

४०. आहारक शरीरवत् ताय, रूप बणावी नैं तदा।
पूर्वधर मुनिराय, देखाडै लोकां भणी ।।

४०. आहारकशरीरवत्, निर्वर्त्य च दर्शयति जनानां
(वृ० प० २२४)

४१. इहां उत्कारिका भेद, भिन्नईज जे द्रव्य नां।
वछित घटादि वेद, निपजावा समर्थ अछै ।।

४१. इह चोत्कारिकाभेदग्रहणं तद्भिन्नानामेव द्रव्याणां विवक्षितघटादिनिष्पादनसामर्थ्यमस्ति।
(वृ० प० २२४)

*लय : कोई कहै छानें कोई कहै छपकै·········



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. पुद्‌गल चिहुं विध जेह, अन्य कह्या छै तेहना ।
ग्रहण करै नहिं तेह, उत्कारिका प्रतैज ग्रहै ।।

४२. नान्येषामितिकृत्वेति । (वृ० प० २२४)

४३. *सेवं भंते अंक चोपनमों ए,
अहो भवि ! च्यार असीमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे,
अहो भवि ! 'जय-जश' हरष विशाल ।।
(परम पूज स्वाम भिक्षु गुणमाल,
भारीमाल रायऋषी सुरसाल ।)

४३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५।११४)

।। पंचमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।५।४।।

ढाल : ८५

## दूहा

१. तुर्य उदेशे चतुर्दश, पूरवधर नो तंत ।
महानुभावपणो प्रवर, देखाड्यो अत्यंत ।।
२. महानुभावपणां थकी, चउद पूर्वधर संत ।
सीझै ते छद्मस्थ पिण, ए शंका उपजंत ।।
३. ते शंका टालण भणी, पंचमुदेशक आद ।
कहूं बात छद्मस्थ नीं, सुणजो धर अहलाद ।।

१. अनन्तरोद्देशके चतुर्दशपूर्वविदो महानुभावतोक्ता, (वृ० प० २२४)
२,३. स च महानुभावत्वादेव छद्मस्थोऽपि सेत्स्यतीति कस्याप्याशङ्का स्यादतस्तदपनोदाय पञ्चमोद्देशकस्येदमादिसूत्रम्— (वृ० प० २२४)

†प्रभु नें वंदै हो गोयम गुणनिलो । (ध्रुपदं)

४. हे प्रभु ! छद्मस्थ मनुष्य ते, गया अनंत काल मांय, सुज्ञानो रे ।
सास्वता समय विषे तिको, केवल संजम सूं शिव पाय ?सुज्ञानो रे ।।
५. जिम प्रथम शतक नें विषे कह्या, चउथे उदेशे आलाव ।
तेहनीं परि इहां जाणवो, जाव अलमस्तु केवली भाव ।।

४. छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं सव्वदुक्खाणं अंतं करिंसु ?
५. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । जहा पढमसए चउत्थुद्देसे (२०१-२०६)आलावगा तहा नेयव्वा जाव अलमत्थु त्ति वत्तव्वं सिया । (श० ५/११५)

## सोरठा

६. आधोवधिक पिछाण, वलि परमाधोवधिक है ।
ते नहिं सीझै जाण, केवल संजम आदि कर ।।
७. यावत् उत्पन्न ज्ञान-दर्शण-धर जे केवली ।
अलमस्तु पहिछाण, कहिवुं त्यां लग ए सहु ।।

६,७. आधोऽवधिकः परमाधोऽवधिश्च केवलेन संयमादिना न सिद्ध्यतीत्याद्यर्थपरं तावन्नेयं यावदुत्पन्नज्ञानादिधरः केवली अलमस्त्विति वक्तव्यं स्यादिति, (वृ० प० २२५)

*लय : कोई कहै छाने कोई कहै छपकं.........
†लय : पूज नें नमो हो शोभो गुण......



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. पूर्वे एह कहीज, वलि इहां आख्यो प्रश्न जे।
संबंध विशेष थकीज, करण उदेशक तिण अर्थ॥

९. *कही स्वतीर्थी नीं वारता, हिवे अन्यतीर्थी नीं कहाय।
अन्यतीर्थी प्रभु! इम कहै, जाव परूपै ताय॥

१०. सर्व प्राण सर्व भूत ते, सर्व जीव सर्व सत्व जंतु।
जेहवूं बांध्यूं तेहवूं अवश्य भोगवै, एवंभूत वेदना वेदंतु॥

११. ते किम ए प्रभु! वेदवूं? तब भाखै जिनराय।
अन्यतीर्थी जे इम कहै, ते मिथ्या कहिवाय॥

१२. हूं पिण गोयम! इम कहूं, यावत् इम परूपंत।
केइ प्राण भूत जीव सत्व ते, एवंभूत वेदना वेदंत॥

१३. जीव कर्म जेहवा बांध्या अछै, तेहवा ईज कर्म भोगवंत।
बंधी दीर्घ स्थिति ह्रस्व करै नहीं, तीव्र रस ते न मंद करंत॥

१४. केइ प्राण भूत जीव सत्व ते, एवंभूत वेदन न वेदंत।
बांधी दीर्घ स्थिति सात कर्म नीं, थोड़ा काल नीं स्थिति करंत॥

१५. तीव्र रस बंध्या पिण मंद रस करै, ते एवंभूत वेदन वेदै नांय।
किण अर्थे प्रभु! ए बिहुं? हिवै वीर बतावै न्याय॥

१६. प्राण भूत जीव सत्व जे, जिम कीधा कर्म तिम वेदंत।
ते वेदै एवंभूत वेदना, स्थिति रस नों घात न करंत॥

१७. प्राण भूत जीव सत्व जे, कर्म कीधा तिम नहिं वेदंत।
ते एवंभूत वेदन वेदै नहीं, स्थिति नैं रस घात करंत॥

१८. तिण अर्थे करि इम कह्युं, वलि गोयम पूछंत।
प्रभु! नरक एवंभूत वेदना, कै अनेवंभूत वेदंत?

१९. श्री जिन भाखै नेरइया, वेदन एवंभूत पिण वेदंत।
अनेवंभूत वेदै वलि, किण अर्थे? भगवंत!

---

८. यच्चेदं पूर्वाधीतमपीहाधीतं तत्सम्बन्धविशेषात्, स पुनरुद्देशकपातनायामुक्त एवेति। (वृ० प० २२५)

९. स्वयूथिकवक्तव्यताऽनन्तरमन्ययूथिकवक्तव्यतासूत्रम्,
(वृ० प० २२५)

अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति—

१०. सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता एवं-भूयं वेदणं वेदेंति। (श० ५/११६)

११. से कहमेयं भंते! एवं?
गोयमा! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव सव्वे सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु।

१२. अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति।

१४,१५. अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवंभूयं वेदणं वेदेंति। (श० ५/११७)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति, अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवंभूयं वेदणं वेदेंति?

१६. गोयमा! जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा तहा वेदणं वेदेंति, ते णं पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति।

१७. जे णं पाणा भूया जीवा सत्ता जहा कडा कम्मा नो तहा वेदणं वेदेंति, ते णं पाणा भूया जीवा सत्ता अणे-वंभूयं वेदणं वेदेंति।

१८. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एवंभूयं वेदणं वेदेंति, अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता अणेवंभूयं वेदणं वेदेंति।
(श० ५/११८)
नेरइया णं भंते! किं एवंभूयं वेदणं वेदेंति? अणेवं-भूयं वेदणं वेदेंति?

१९. गोयमा! नेरइया णं एवंभूयं पि वेदणं वेदेंति, अणेवं-भूयं पि वेदणं वेदेंति। (श० ५/११९)
से केणट्ठेणं भंते!…

---

*लय : पूज नै नमै हो शोभो गुण……



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. श्री जिन भाखै नेरइया, जिम कर्म किया तिम वेदंत ।
ते वेदै एवंभूत वेदना. न्याय पूर्ववत् तंत ।।
२१. जे नेरइया जेम कर्म किया, तिण विध नहिं भोगवंत ।
ते वेदै अनेवंभूत नैं, तिण अर्थे विहुं हुंत ।।

२२. इम जाव वैमानिक लगै, संसार-मंडल जाण ।
संसारी जीव चक्रवाल नैं, कहिवो सर्व पिछाण ।।
२३. वृत्तिकार कह्यो अथवा इहां वाचनांतरे हुंत ।
कुलगर तीर्थकरादि नी, वक्तव्यता दीसंत ।।
२४. जिनागम में प्रसिद्ध एहवा, संसार-मंडल शब्देन ।
सूचित करी इहां संभवे, ते आगल कहिये एन ।।
२५. हे प्रभु ! जंबूद्वीप में, भरत क्षेत्र रै मांहि ।
इण अवसर्पिणी काल में, किता कुलगर हुवा ताहि ?
२६. जिन कहै सात कुलकर थया तीर्थंकर चउवीस ।
मात पिता चउवीस नां, प्रथम शिष्यणी सुजगीस ।।
२७. बारै चक्रवर्त्ति नैं माता पिता, द्वादश स्त्री रत्न ताम ।
नाम वलि नव बलदेव नां, नव वासुदेव नां नाम ।।
२८. बल-वासुदेव नां माता पिता, नव प्रतिवासुदेव ।
जिम समवायांग नैं विषे, नाम परिपाटी तेम कहेव[1] ।।

२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! कही, जाव विचरै गोतम स्वाम ।
अर्थ पंचमा शतक नों, पंचम उदेशा नों पाम ।।
३० ढाल पिच्यासीमीं कही, भिक्खु भारीमाल ऋषराय ।
'जय-जश' संपति साहिबी, गण-वृद्धि हरष सवाय ।।

**पंचमशते पंचमोद्देशकार्थः ।।५।५।।**

२०. गोयमा ! जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा तहा वेदणं वेदेंति, ते णं नेरइया एवंभूयं वेदणं वेदेंति ।
२१. जे णं नेरइया जहा कडा कम्मा नो तहा वेदणं वेदेंति, ते णं नेरइया अणेवंभूयं वेदणं वेदेंति । से तेणट्ठेणं । (श० ५/१२०)
२२. एवं जाव वेमाणिया । (श० ५/१२१)
संसारमंडलं नेयव्वं । (श० ५/१२२)
२३. अथ चेह स्थाने वाचनान्तरे कुलकरतीर्थकरादिवक्तव्यता दृश्यते, (वृ० प० २२५)
२४. ततश्च संसारमण्डलशब्देन पारिभाषिकसञ्ज्ञया सेह सूचितेति संभाव्यत इति । (वृ० प० २२५)
२५. जंबुद्दीवे णं भंते ! इह भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए कइ कुलगरा होत्था ?
२६. गोयमा ! सत्त । एवं तित्थयरमायरो, पियरो, पढमा सिस्सिणीओ ।
२७. चक्कवट्टिमायरो, इत्थिरयणं, बलदेवा, वासुदेवा ।
२८. वासुदेवमायरो, पियरो, एएसिं पडिसत्तू जहा समवाए (पइण्णगसमवाओ २१८-२४६) नामपरिवाडीए तहा नेयव्वा ।
२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ । (श० ५/१२३)

## ढाल : ८६

### दूहा

१. पंचमुदेशै जीव नुं, कह्यु कर्म वेदन्न ।
छट्ठे कर्म तणूंज हिव, बंध निबंधन जन्न ।।

१. अनन्तरोद्देशके जीवानां कर्मवेदनोक्ता, षष्ठे तु कर्मण एव बन्धनिबन्धनविशेषमाह— (वृ० प० २२५)

१. २५ से २८ तक चार गाथाओं की जोड़ जिस पाठ के आधार पर की गई है, वह पाठ अंगसुत्ताणि भाग २ में नहीं है । उस पाठ को वहां पाठान्तर के रूप में पादटिप्पण में उद्धृत किया है । जोड़ के सामने वही पाठ लिया गया है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२ *हे प्रभु ! किम जीवां तणैं, अल्प आउखो कर्म बंधाय ?
जिन कहै तीन ठाणैं करी, तिके सांभलजे चित ल्याय जी।
ओ तो जीव हणैं षट काय जी, वले बोलै मूसावाय जी।
तथारूप श्रमण सुखदाय जी, दूजो नाम माहण मुनिराय जी।
त्यांनैं सचित असूझता ताय जी, असणादिक चिउं अधिकाय जी।
प्रतिलाभै ते वहिराय जी, इम निश्चै करि कहिवाय जी।
ज्यांरै अल्प आउखो बंधाय जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा! ॥

२. कहण्णं भंते ! जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ? गोयमा ! पाणे अइवाएत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता—एवं खलु जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति। (श० ५।१२४)

३. हे प्रभु ! किम जीवां तणैं जी, दीर्घ आउखो बंधाय ?
जिन कहै तीन ठाणैं करी, नहिं जीव हणैं षटकाय जी।
वलि बोलै नहि मूसावाय जी, तथारूप श्रमण सुखदाय जी।
दूजो नाम माहण मुनिराय जी, असणादिक चिउं अधिकाय जी।
प्रतिलाभै ते वहिराय जी, इम निश्चै करी कहिवाय जी।
ज्यांरै दीर्घ आउखो बंधाय जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

३. कहण्णं भंते ! जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ? गोयमा ! नो पाणे अइवाएत्ता, नो मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता—एवं खलु जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति (श० ५/१२५)

४. हे प्रभु ! किम बहु जीवडा, अशुभ दीर्घायु कर्म बांधंत ?
जिन कहै जीव हिंसा करी, वलि मृषावाद वदंत जी।
तथारूप श्रमण तपवंत जी, दूजो नाम माहण दयावंत जी।
त्यां नैं जात्यादि करिनैं हीलंत जी, वले मने करी तास निंदंत जी।
जन साख करीनैं खिसंत जी, तेहनों साख करी गरहंत जी।
अपमानी ऊभो न थावंत जी, अनेरा अणगमता अत्यंत जी।
एहवा आहार च्यारूं असोभंत जी, ते पिण अप्रीति भाव तिहां हुंत जी।
प्रतिलाभै ते देवंत जी, त्यांरै अशुभ दीर्घायु बंधंत जी।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

४. कहण्णं भंते ! जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ? गोयमा ! पाणे अइवाएत्ता, मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता निंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता, अवमण्णित्ता 'अण्णयरेणं अमणुण्णेणं अपीतिकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता—एवं खलु जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति। (श० ५।१२६)
तत्र हीलनं—जात्याद्युद्घट्टनतः कुत्सा, निन्दनं—मनसा, खिसनं—जनसमक्षं, गर्हणं—तत्समक्षं, अपमाननं—अनभ्युत्थानादिकरणम्। (वृ० प० २२७)

५. हे प्रभु ! किम बहु जीवडा, शुभ दीर्घायु कर्म बांधंत।
जिन कहै जीव हणैं नहीं, वलि मृषावाद न वदंत जी।
तथारूप श्रमण तपवंत जी, दूजो नाम माहण दयावंत जी।
त्यांनैं वांदै ते स्तुति करंत जी, नमस्कार ते सिर नामंत जी।
वलि सत्कारी सनमानंत जी, कल्लाणं मंगलं देवयंत जी।
चित्त प्रसन्नकारी जाणी तंत जी, पर्युपासना सेव सोभंत जी।
अनेरा मनगमता अत्यंत जी, एहवा आहार च्यारूंइं शोभंत जी।
ते पिण प्रीति भाव तिहां हुंत जी, प्रतिलाभै ते देवंत जी।
त्यांरै शुभ दीर्घायु बंधंत जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा ! ॥

५. कहण्णं भंते ! जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ? गोयमा ! नो पाणे अइवाएत्ता, नो मुसं वइत्ता, तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासित्ता 'अण्णयरेणं मणुण्णेणं पीतिकारएणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता—एवं खलु जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पकरेंति।
(श० ५/१२७)

**सोरठा**

६. "अल्पायु पढमेह, द्वितीय प्रश्न दीर्घ आउखो।
अशुभ दीर्घायू जेह, शुभ दीर्घायु चतुर्थे॥

*लय : तीन बोलां करी जीव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. अल्प आउखो एह, कहियै तेहिज क्षुल्लक भव।
अशुभ कहीजै तेह, अपेक्षाय नहिं अल्प शुभ॥
८. जीव हणै षट काय, वदै झूठ वलि जाणनैं।
सचित असूझतो ताय, बहिरावै मुनिवर भणी॥
९. ए त्रिहुं बोलज नीच, तेहथी शुभ अल्प आयु किम।
'नडिया मिथ्या मीच'[1], कहै एहथी अल्प शुभ॥
१०. दूजा दंडक मांहि, ते समचै दीर्घ आयू कह्यो।
पिण शुभ आश्री ताहि, तास भेद बे आगलै॥
११. तीजा दंडक मांहि, अशुभ दीर्घ आयू कह्यु।
चोथे दंडक ताहि, आख्यो शुभ दीर्घ आउखो॥
१२. दीर्घ आयु पुन्य पाप, तिण सुं बे भेदे करी।
श्री जिन कीधो थाप, करणो फल चिहुं जूजुआ॥
१३. अल्प आउ बे भेद, शुभ अल्पायू अशुभ फुन।
इम नहिं कह्या सवेद, तिण सुं ए अल्प अशुभ छै॥ (ज०स०)
१४. इहां पाछै पहिछान, कर्मबंध क्रिया कही।
अन्य क्रिया हिव जान, कहियै छै तेहनों विषय॥

१४. अनन्तरं कर्मबन्धक्रियोक्ता, अथ क्रियान्तराणां विषयनिरूपणायाह— (वृ० प० २२८)

१५. *हे प्रभु! गृहस्थ गाथापती जी, भंड क्रियाणो बेचंत।
इतरै कोइ भंड चोर लै, प्रभु! भंड नैं तेह जोवंत जी।
तेहनैं आरंभिया क्रिया हुंत जी, तथा परिग्रहिया लागंत जी?
मायावत्तिया कषायमंत जी, अपचखाण अव्रत कहंत जी?
मिथ्यादर्शन तणी होवंत जी? जिन कहै धुर च्यार थावंत जी।
मिथ्यादर्शण भजना भवंत जी, गृहस्थ मिथ्यादृष्टि ह्वै तो हुंत जी।
समदृष्टि रै नांहि कहंत जी, जोवतां भंड तेह लाधंत जी।
जब पतली च्यारूं उपजंत जी, जोवतां बहु उद्यम करंत जी।
लाधां पछै अल्प उद्यमवंत जी, श्री वीर कहै सुण गोयमा!॥

१५. गाहावइस्स णं भंते! भंडं विक्किणमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा, तस्स णं भंते! 'भंडं अणुगवेसमाणस्स' किं आरंभिया किरिया कज्जइ? पारिग्गहिया किरिया कज्जइ? मायावत्तियाकिरिया कज्जइ? अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ? मिच्छादंसणवत्तियाकिरिया कज्जइ?
गोयमा! आरंभियाकिरिया कज्जइ, पारिग्गहियाकिरिया कज्जइ, मायावत्तियाकिरिया कज्जइ, अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ, मिच्छादंसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ।
अह से भंडे अभिसमण्णागए भवइ, तओ से पच्छा सव्वाओ ताओ पयणुईभवंति। (श० ५/१२८)

## सोरठा

१६. हिव अलावा च्यार, धुर बे भंड वस्तू तणां।
तीजो चोथो धार, धन आश्री आख्या अछै॥

१७. *गाथापति नैं हे प्रभु! क्रियाणो बेचता नैं ताय।
गाहक भंड प्रतै लियै, सचकार ते साई देवाय जी।
भंड वस्तु पोता री ठहराय जी, पिण भंड हजी ग्रह्यो नांय जी।
वस्तु बेचणहार रै पाय जी, प्रभु गाथापति नैं कहाय जी।
भंड थी कितली क्रिया थाय जी, तथा ग्राहक नैं पिण ताय जी।

१७. गाहावइस्स णं भंते! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, भंडे य से अणुवणीए सिया। गाहावइस्स णं भंते! ताओ भंडाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ? कइयस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ?

---
१. मिथ्यात्व रूपी मित्र के साथ बंधे हुए।
*लय: तीन बोलां करी जीव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांचां मांहिली किती कहिवाय जी ? जिन भाखै गोयम सुण वाय जी ।
गाथापति जे वस्तु बेचाय जी, तिण रै भंड थी चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन मांय जी, गाहक नैं सहु पतली थाय जी ।
अजे वस्तु न लीधी ए न्याय जी, ए प्रथम आलावो कहाय जी ।।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

गोयमा ! गाहावइस्स ताओ भंडाओ आरंभियाक्रिरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ । मिच्छादंसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ । कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुईभवंति ।
(श० ५/१२९)

क्रयिको—ग्राहको भाण्डं 'स्वादयेत्' सत्यङ्कारदानतः स्वीकुर्यात् । (वृ० प० २२९)

१८. तथा गाथापति नैं हे प्रभु ! क्रियाणो बेचता नैं ताय ।
गाहक भंड प्रतै लियै, संचकार ते साई देवाय जी ।
भंड वस्तु पोता री ठहराय जी, भंड वस्तु ल्यायो घर मांय जी ।
बेचणहार पासै रही नांय जी, प्रभु ! गाहक कइया' नैं कहाय जी ।
तसु भंड थी के क्रिया थाय जी, तथा गाथापति नैं ताय जी ।
भंड थी पांचां में किती पाय जी ? जिन भाखै गोयम! सुण वाय जी ।
गाहक—कइयो जे वस्तु लिवाय जी, तिण रै भंड थी चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन मांय जी, गाथापति नैं सहु पतली पाय जी ।
वस्तु सूंपे दीधी ए न्याय जी, ए द्वितीय आलावो कहाय जी ।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

१८. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, भंडे से उवणीए सिया । कइयस्स णं भंते ! ताओ भंडाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ? गाहावइस्स वा ताओ भंडाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ? गोयमा ! कइयस्स ताओ भंडाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति । मिच्छादंसणकिरिया भयणाए ।
गाहावइस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुईभवंति ।
(श० ५/१३०)

### सोरठा

१९. भंड आश्री बे आलाव, पहिले भंड सूंप्यो नथी ।
द्वितीय आलावे भाव, भंड सूंप्यो गाहक भणी ।।

१९. इदं भाण्डस्यानुपनीतोपनीतभेदात्सूत्रद्वयमुक्तम् ।
(वृ० प० २२९)

२०. *गाथापति नैं हे प्रभु ! क्रियाणो बेचता नैं ताय ।
गाहक भंड प्रतै लियै, संचकार ते साई देवाय जी ।
भंड वस्तु पोता री ठहराय जी, पिण धन हजो सूंप्यो नांय जी ।
धन छै गाहक—कइया पाय जी, प्रभु ! गाहक कइया नै कहाय जी ।
धन थी कितली क्रिया थाय जी, तथा गाथापति नैं ताय जी ।
धन थी पांचां में किती पाय जी ? तब भाखै श्री जिनराय जी ।
गाहक कइया तणैं कहिवाय जी, धन थी धुर चिहु अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन मांय जी, गाथापति नैं पतली थाय जी ।
हजी न लियो धन ए न्याय जी, ए तृतीय आलावो कहाय जी ।।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

२०. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, धणे य से अणुवणीए सिया ? कइयस्स णं भंते ! ताओ धणाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ? गाहावइस्स वा ताओ धणाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ? गोयमा ! कइयस्स ताओ धणाओ हेट्ठिल्लाओ चत्तारि किरियाओ कज्जंति । मिच्छादंसणकिरिया भयणाए ।
गाहावइस्स णं ताओ सव्वाओ पयणुईभवंति ।
(श० ५/१३१)

२१. गाथापति नैं हे प्रभु ! क्रियाणो बचता नैं ताय ।
गाहक भंड प्रतै लियै, संचकार ते साई देवाय जी ।
भंड—वस्तु ल्यायो घर मांय जी, धन सूंप दियो तसु ताय जी ।
गाहक—कइया पासै रह्यो नांय जी, प्रभु! गाथापति नैं कहिवाय जी ।

२१. गाहावइस्स णं भंते ! भंडं विक्किणमाणस्स कइए भंडं साइज्जेज्जा, धणे से उवणीए सिया । गाहावइस्स णं भंते ! ताओ धणाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ? कइयस्स वा ताओ धणाओ किं आरंभियाकिरिया कज्जइ ? जाव मिच्छादंसणकिरिया कज्जइ ?

*लय : तीन बोलां करी जीव

१. खरीदने वाला



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन थी पांचां में किती पाय जी ? तब भाखै श्री जिनराय जी ।
गाथापति तणैं कहिवाय जी, धन थी धुर चिहुं अधिकाय जी ।
भजना मिथ्यादर्शन मांय जी, गाहक—कइया नैं पतली थाय जी ।
धन सूंप दियो इण न्याय जी, ए चोथो आलावो पाय जी ।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

गोयमा ! गाहावइस्स ताओ धणाओ आरंभिया-किरिया कज्जइ जाव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ । मिच्छादंसणकिरिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ । कइयस्स णं ताओ सव्वाओ पयणईभवंति ।
(श० ५/१३२)

## सोरठा

२२. धन आश्री बे आलाव, तीजे धन सूंप्यो नथी ।
चोथे आलावे भाव, धन सूंप्यो गाथापति भणी ।।
२३. एवं च्यार आलाव, सूत्रे बे विस्तारिया ।
बे संक्षेपे भाव, इहां विस्तार टीका थकी ।।
२४. "तृतीय आलावे धन्न, गाथापति नैं सूंप्यो नथी ।
जिम भंड सूंप्यो जन्न, इम कहिवूं सूत्रे कह्यु ।।
२५. भंड सूंप्यो द्वितीय आलाव, ए बीजो तास भलावियो ।
तेहनों छै इम न्याव, बीजो तीजो इक गमो ।।
२६. बीजे आलावे जाण, भंड सूंप्यो ग्राहक भणी ।
जबर क्रिया पहिछाण, भंड थी गाहक नैं कही ।।
२७. तृतीय आलावे पेख, गाहक धन सूंप्यो नथी ।
तिण कारण सुविशेख, जबर क्रिया ग्राहक भणी ।।
२८. जबरी किरिया जाण, गाहक नैं तिण कारणैं ।
द्वितीय तृतीय पहिछाण, एक गमो इम आखियो ।।
२९. चोथो आलावो एम, धन तेहनैं सूंप्यो हुई ।
प्रथम आलावो जेम, भंड नहिं सूंप्यो तेम ए ।।
३०. भंड नहिं सूंप्यो प्रथम आलाव, ए पहिलो तास भलावियो ।
तेहनों छै इम न्याव, पहिलो चोथो इक गमो ।।
३१. भंड थी जबरी थाय, गाथापति नैं चिहुं क्रिया ।
तिण भंड सूंप्यो नांय, प्रथम आलावै में कह्यो ।।
३२. भंड थी जबरी मंड, ग्राहक नैं इण विध हुवै ।
गाहावइ सूंप्यो भंड, दूजा आलावा में कह्यु ।।
३३. धन थी जबरी जास, गाहक नैं इण कारणैं ।
धन ही सूंप्यो तास, तृतीय आलावै में कह्यु ।।
३४. धन थी जबर उपन्न, गाथापति नैं इह विधे ।
गाहक सूंप्यो धन्न, चोथै आलावा में कह्यु ।।

१. जयाचार्य ने इस गीत की २० वीं और २१ वीं गाथा की रचना टीका के आधार पर की है, यह तथ्य इस गाथा से स्पष्ट हो जाता है । अंगसुत्ताणि भाग २ में यह पाठ मूल में है । संभव है जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श में पाठ पूरा नहीं था, इसीलिए उन्हें शेष दो विकल्पों की रचना टीका के आधार पर करनी पड़ी ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. तिण कारण इम ख्यात, प्रथम चउथ नों इक गमो ।
एक गमो अवदात, बीजा तीजा नों कह्यु ।।
३६. प्रथम आलाव सुजन्न, भंड छै गाथापति कनैं ।
चउथ गमा में धन्न, गाथापति नैं सूंपियो ।।
३७. तिण सूं जबरी जोय, भंड थकी अरु धन थकी ।
गाथापति नैं होय, प्रथम चउथ इम इक गमो ।।
३८. द्वितीय आलावे सोय, गाहक नैं भंड सूंपियो ।
तृतीय आलावे जोय, गाहक धन सूंप्यो नथी ।।
३९. तिण सूं जबरी जाण, भंड थकी अरु धन थको ।
गाहक नैं पहिछाण, बितिय तृतिय इम इक गमो ।।" (ज० स०)

४०. *अंक छप्पन नों देश ए, कही छयांसीमो ढाल ।
श्री भिक्षु भारीमाल जी, ऋषिराय गणिंद दयाल जी ।
तसु शुभ दृष्टी थी न्हाल जी, वर 'जय-जश' संपति माल जी ।
गण ऋद्धि वृद्धि सुविशाल जी, मेटण मिथ्यात जंबाल[1] जी ।
श्री वीर कहै सुण गोयमा ।।

ढाल : ८७

**दूहा**

१. क्रिया तणा अधिकार थी, वलि क्रियाज विचार ।
पूछै गोयम गणहरू, अति हित प्रश्न उदार ।।

†मोरा प्रभुजी हो, गोयम जिनजी नैं वीनवै ।। (ध्रुपदं)

२. प्रभुजी हो, अग्निकाय तत्काल नो, दीप्ये थके अधिकाय ।
प्रभुजी हो, अति महाकर्म बंधै जेहनैं, दाहरूप क्रिया महा थाय ।।

३. कारण जे महा कर्म नों, अति महा आश्रव तास ।
वलि अति महा तसुं वेदना, कर्म थी उपनी जास ।।
४. समैं समैं अगनी हिवैं, अपकर्ष—हीणी थाय ।
बूझ्ये चरम काल समय में, अंगारा—खीरा कहाय ।।
५. मुर्म्मुरभूत भ्रासर थयो, छारभूत थयां पछै जोय ।
अल्प कर्म क्रिया आश्रव वेदना ? जिन कहै हंता होय ।।

*लय : तीन बोलां करी जीव
†लय : भाभीजी हो डूंगरिया हरिया
१. कर्दम

१. क्रियाऽधिकारादिदमाह— (वृ० प० २२६)

२. अगणिकाए णं भंते ! अहुणोज्जलिए समाणे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियातराए चेव,
'अधुनोज्ज्वलितः' सद्यःप्रदीप्तः······दाहरूपा ।
(वृ० प० २२६)
३. महासवतराए चेव, महावेदणतराए चेव भवइ ।

४. अहे णं समए-समए वोक्कसिज्जमाणे-वोक्कसिज्जमाणे चरिमकालसमयंसि इंगालब्भूए
५. मुम्मुरब्भूए छारियब्भूए तओ पच्छा अप्पकम्मतराए चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव, अप्पवेयणतराए चेव भवइ ? हंता गोयमा ! अगणिकाए णं अहुणोज्जलिए समाणे तं चेव ।
(श० ५/१३३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. अंगारादिक आश्रयी, अल्प स्तोक अथह ।
छार आश्रयी नैं इहां, अल्प अभाव गिणेह ।।
७. पुरुष धनुष प्रतै कर ग्रही, बाण प्रतै ग्रही ताय ।
धनुष बाण जोडै तदा, बेठो गोडा नमाय ।।
८. बाण न्हाखण रै कारणै, कान लगै शर आण ।
ऊंचो आकाश विषे तदा, तीर चलायो ताण ।।
९. तीर आकाश जातो तदा, प्राण भूत सत्व जीव ।
साह्मां आवतां थकां, शर हणै अधिक अतीव ।।
१०. तन संकोच न पामवै, वत्तेइ वाटलाकार ।
लेस्सेइ आतम नैं विषे, श्लेष करै तिण वार ।।

११. संघाएइ भेला करै, संघट्टेइ संघट्टंत ।
परितापेइ परितापना, सर्व थकी पीडंत ।।

१२. किलामेइ मारणांतिकी, समुद्घात पहुंचाडंत ।
स्व स्थान थी अन्य स्थानके, पहुंचाडै सरजंत ।।

१३. प्राण छोडावै सर्वथा, तिण अवसर भगवान ।
तेह पुरुष नै केतली, क्रिया लागै आण?
१४. गोयमजी हो, श्री जिन भाखै तिण समै, पुरुष धनुष ग्रहि हाथ ।
गोयमजी हो, जाव आकाश विषै तदा, मूकै बाण विख्यात ।।

(गोयमजी हो, वीर प्रभू इम वागरै)

१५. तेह पुरुष नैं कायिकी, जावत् प्राणातिपात ।
फरसै पंच क्रिया करी, तेह थी कर्म बंध थात ।।

१६. जे पिण जीव नां तनु करी, धनुष निपायो नाम ।
ते पिण फर्से जीवडा, पंच क्रिया करि आम ।।

१७. धनुष-पृष्ठ जे जीव नां, शरीर थकी निप्पन्न ।
ते जीव पंच क्रिया करी, फर्सै कर्म उप्पन्न ।।

१८. जीवा ते पुणछ ना जीवडा, फर्सै किरिया पंच ।
धनुष नीं पुणछ नुं बांधणुं, ते न्हारू नें पंच विरंच ।।

१९. शर पत्र फलादि समुदाय नैं, कहिये उसु बाण ।
तेहना जोवां नैं हुइ, पंच क्रिया पहिछाण ।

२०. सांठी शरीडुं एकलुं, ते शर नैं पिण पंच ।
पत्र ते जीव नां पींछडा, तेहनैं पंच सुसंच ।।

६. अङ्गाराद्यवस्थामाश्रित्य, अल्पशब्दः स्तोकार्थः, (क्षारावस्थायां त्वभावार्थः) । (वृ० प० २२६)

७. पुरिसे णं भंते ! धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता ठाणं ठाइ,

८. ठिच्चा आयतकण्णातयं उसुं करेति, उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ ।

९. तए णं से उसू उड्ढं वेहासं उव्विहिए समाणे जाइं तत्थ पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणइ ।

१०. वत्तेति लेसेति
'वत्तेइ' त्ति वर्त्तुलीकरोति शरीरसङ्कोचापादनात्
'लेसेइ' त्ति 'श्लेषयति' आत्मनि श्लिष्टान् करोति ।
(वृ० प० २३०)

११. संघाएइ संघट्टेति परितावेइ
'संघाएइ' त्ति अन्योऽन्यं गात्रैः संहतान् करोति 'संघट्टेइ' त्ति मनाक् स्पृशति 'परितावेइ' त्ति समन्ततः पीडयति । (वृ० प० २३०)

१२. किलामेइ ठाणाओ ठाणं संकामेइ,
'किलामेइ' त्ति मारणान्तिकादिसमुद्घातं नयति
(वृ० प० २३०)

१३. जीवियाओ ववरोवेइ । तए णं भंते ! से पुरिसे कतिकिरिए ?

१४. गोयमा ! जावं च णं से पुरिसे धणुं परामुसइ उसुं परामुसइ, ठाणं ठाइ, आयतकण्णातयं उसुं करेति, उड्ढं वेहासं उसुं उव्विहइ,

१५. तावं च णं से पुरिसे काइयाए, अहिगरणियाए, पाओसियाए, पारियावणियाए, पाणाइवायकिरियाए—पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे ।

१६. जेसि पि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणू निव्वत्तिए ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा ।

१७. एवं धणुपट्ठे पंचहिं किरियाहिं,

१८. जीवा पंचहिं, ण्हारू पंचहिं,

१९. उसू पंचहिं
इषुरिति शरपत्रफलादिसमुदायः । (वृ० प० २३०)

२०,२१ सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं ।
(श० ५/१३४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. फल ते भालोडो लोहडुं, पंच क्रिया फसंत ।
न्हारू पांख नुं बांधणुं, पंच क्रिया तसुं हुंत ।।

**सोरठा**

२२. इहां कह्यं वृत्ति मझार, पंच क्रिया हुवै पुरुष नैं ।
काइयादिक व्यापार, प्रत्यक्ष दीसै छै तसुं ।।
२३. धनुष आदि दे जाण, जीवां तणां शरीर नों ।
नीपजियो पहिछाण, पंच क्रिया किम तेहनैं ?
२४. काय अचेतन तास, ते काय मात्र थी बंध ह्वै ।
तो सिद्धां नैं सुविमास, तसु तन पिण वध-हेतु है ।।

२५. क्रिया हेतु कर्मबंध, धनुष आदि नैं जे हुवै ।
तो पात्र दंडके संध, जंतु-रक्षा हेतु पुन्य ?

२६. तसु उत्तर इम देह, अव्रत सेती कर्म बंध ।
सिद्धां में नहिं तेह, एम कह्यो टीका मझे ।।

२७. पात्र रजोहरण ताहि, मुनी भोगवै तेहनीं ।
तसु अनुमोदन नांहि, तिण सूं पुन्य तेहनुं नहीं ।।
२८. वलि जिन वचन प्रमाण, जेम कह्यो तिम सरधवूं ।
सिर धारेवी आण, विषम दृष्टि निवारियै ।।

२९. *हिवै ते बाण पोता तणैं, गुरुपणां करि जेह ।
वलै पोता नैं भारीपणैं, गुरुसंभारिपणं तेह ।।
३०. निज स्वभाव हेठो पड़ै, पडतां ते प्राण हणाय ।
जावत् ते जीवितव्य थकी, रहित करै छै ताय ।।
३१. निश्चै कर तिण अवसरे, तेतले काले जेह ।
किती क्रियावंत पुरुष ते ? हिव जिन उत्तर देह ।।
३२. बाण पोता नैं गुरुपणैं, जावत जीव हणाय ।
च्यार क्रिया ते पुरुष नैं, पाणाइवाय न थाय ।।

३३. जे पिण जीव नां तनु करी, धनुष निपायो ताम ।
ते पिण फर्सै जीवडा, च्यार क्रिया करि आम ।।
३४. धनुषपृष्ठ जे जीव नां, शरीर थकी निष्पन्न ।
ते जीव च्यार क्रिया करी, फर्सै कर्म उप्पन्न ।।

२२. ननु पुरुषस्य पञ्च क्रिया भवन्तु, कायादिव्यापाराणां तस्य दृश्यमानत्वात् । (वृ० प० २३०)

२३. धनुरादिनिर्वर्त्तकशरीराणां तु जीवानां कथं पञ्च क्रियाः ? (वृ० प० २३०)

२४. कायमात्रस्यापि तदीयस्य तदानीमचेतनत्वात्, अचेतनकायमात्रादपि बन्धाभ्युपगमे सिद्धानामपि तत्प्रसङ्गः, तदीयशरीराणामपि प्राणातिपातहेतुत्वेन लोके विपरिवर्त्तमानत्वात् । (वृ० प० २३०)

२५. किञ्च—यथा धनुरादीनि कायिक्यादिक्रियाहेतुत्वेन पापकर्मबन्धकारणानि भवन्ति, तज्जीवानामेवं पात्र-दण्डकादीनि जीवरक्षाहेतुत्वेन पुण्यकर्मनिबन्धनानि स्युः । (वृ० प० २३०)

२६. अत्रोच्यते, अविरतिपरिणामाद् बन्धः, अविरति-परिणामश्च यथा पुरुषस्यास्ति एवं धनुरादिनिर्वर्त्तक-शरीरजीवानामपीति, सिद्धानां तु नास्त्यासाविति न बन्धः, (वृ० प० २३०)

२७. पात्रादिजीवानां तु न पुण्यबन्धहेतुत्वं तद्धेतोर्विवेका-देस्तेष्वभावादिति । (वृ० प० २३०)

२८. किञ्च --सर्वज्ञवचनप्रामाण्याद्यथोक्तं तत्तथा श्रद्धेय-मेवेति । (वृ० प० २३०)

२९. अहे णं से उसू अप्पणो गुरुयत्ताए, भारियत्ताए, गुरु-संभारियत्ताए ।

३०. अहे वीससाए पच्चोवयमाणे जाइं तत्थ पाणाइं जाव जीवियाओ ववरोवेइ ।

३१. तावं च णं से पुरिसे कतिकिरिए ?

३२. गोयमा ! जावं च णं से उसू अप्पणो गुरुयत्ताए जाव जीवियाओ ववरोवेइ, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव चउहिं किरियाहिं पुट्ठे ।

३३. जेसिं पि य णं जीवाणं सरीरेहिं धणू निव्वत्तिए ते वि जीवा चउहिं किरियाहिं,

३४. धणुपट्ठे चउहिं,

* लय : भाभीजी हो डूंगरिया हरिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. जीवा पुणछ नां जीवडा, फर्सै क्रिया च्यार ।
धनुष नीं पुणछ नु बांधणुं, ते न्हारू नैं पिण चिउं धार ।।
३६. शर पत्र फलादि समुदाय नैं, कहियै उसु बाण ।
तेहनां जीवां नैं हुइं, पंच क्रिया पहिछाण ।।
३७. सांठी शरीड एकलुं, ते शर नैं पिण पंच ।
पत्र ते जीव नां पींछडा, तेहनैं पंच सुसंच ।।
३८. फल ते भालोडी लोहडुं, पंच क्रिया फर्सत ।
न्हारूं पांख नु बांधणुं, पंच क्रिया तसु हुंत ।।
३९. जे बाण नीचे पंथ जावतां, बीच अवग्रह मांय ।
जीव ना पखोवादिक तणुं, सान्निध्य स्हाज जो थाय ।।
४०. ते जीव नैं पिण हुवै, क्रिया पंच कहिवाय ।
काइया प्रथम क्रिया कही, जाव पाणाइवाय ।।

३५. जीवा चउहिं, ण्हारू चउहिं,

३६. उसू पंचहिं—
इषुरिति शरपत्रफलादिसमुदायः । (वृ० प० २३०)
३७,३८. सरे, पत्तणे, फले, ण्हारू पंचहिं ।

३९. जे वि य से जीवा अहे पच्चोवयमाणस्स उवग्गहे वट्टंति,
४०. ते वि य णं जीवा काइयाए जाव पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा । (श० ५/१३५)

## सोरठा

४१. कह्यु वृत्ति रै मांय, जदपि सर्व क्रिया विषे ।
किण हि प्रकारे थाय, निमित्त भाव नर धनुष नैं ।।
४२. तो पिण वांछित बंध, अमुख्य प्रवृत्ति तिणे करी ।
वांछित वध क्रिया संध, कर्तापणे बांछी नहीं ।।

४३. शेष क्रिया नैं जाण, निमित्तभावमात्रेण पिण ।
कर्तापणै पिछाण, वांछी तिण स्यूं चिहुं क्रिया ।।
४४. बाणादिक ना जीव, तसु शरीर साख्यात वध ।
क्रिया प्रवृत अतीव, तिण सूं पंच क्रिया कही ।।

४५. *अंक छपन नु देश ए, सात असीमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मंगल माल ।।

४१. इह धनुष्मदादीनां यद्यपि सर्वक्रियासु कथञ्चिन्निमित्तभावोऽस्ति । (वृ० प० २३०)
४२. तथाऽपि विवक्षितबन्धं प्रत्यमुख्यप्रवृत्तिकतया विवक्षितवधक्रियायास्तैः कृतत्वेनाविवक्षणात् ।
(वृ० प० २३०)
४३. शेषक्रियाणां च निमित्तभावमात्रेणापि तत्कृतत्वेन विवक्षणाच्चतस्रस्ता उक्ताः । (वृ प० २३०)
४४. वाणादिजीवशरीराणां तु साक्षाद् बधक्रियायां प्रवृत्तत्वात्पञ्चेति । (वृ० प० २३०)

## ढाल : ८८

## दूहा

१. आखी सम्यक् परूपणा, हिव मिथ्या पूर्व निरास ।
सम्यक् परूपणा प्रतै, देखाडै छै तास ।।

२. अन्यतीर्थी प्रभु ! इम कहै, यथानाम दृष्टंत ।
युवती प्रतै युवान नर, कर करि हस्त ग्रहंत ।।

१. अथ सम्यक्प्ररूपणाधिकारान्मिथ्याप्ररूपणानिरासपूर्वकं सम्यक्प्ररूपणामेव दर्शयन्नाह—
(वृ० प० २३०)
२. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमातिक्खंति जाव परूवेंति—से जहानामए जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा,

*लय : भाभीजी हो डूंगरिया हरिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. चक्र नाभि नैं जिम अरा, तिम यावत् चउ पंच।
सय जोजन नर लोक ए, भर्‌यो मनुष्य करि संच॥

४. ते किम हे भगवंत ! ए ? तब भाखै जिनराय।
अन्यतीर्थी जे इम कहै, ते मिथ्या कहिवाय॥

५. हूं पिण गोयम ! इम कहूं, यावत् इमहिज साध।
जाव च्यार सय पांच सय, जोजन क्यांइक लाध॥

६. नरकलोक नरके करी, भर्‌यूं अछै बहु ताय।
नरक तणा अधिकार थी, नरक सूत्र हिव आय॥

७. नेरइया प्रभु ! शस्त्र इक, विकुर्वण समर्थवंत।
शस्त्र बहु विकुर्वेवा समर्थ ? जिन कहै हंत॥

८. जिम जीवाभिगमे कह्यु, आलाव गोतम ! जाण।
जावत् खमतां दोहिली, वेदन लग पहिछाण॥

९. एह वेदना तो हुवै, आराधन विन जेह।
आराधना ना भाव हिव, देखाडै छै तेह॥
*प्रभु पूरणनाणी, गोयमजी पूछै प्रश्न पिछाणी॥ (ध्रुपदं)

१०. आधाकर्मी ए निरवद्य होय, एहवो मन में धारै कोय।
११. स्थानक ते आलोयां विना सोय, वलि पडिकमियां विना जोय।
१२. काल करै तो आराधन नांहि, तिण रै सल रह्यो मन मांहि।
१३. स्थानक ते आलोयो जाणी, वलि पडिकमियो गुणखाणी।
१४. इण विध काल करै तो ताय, तिण रै आराधना तसु थाय।

१५. ए धुर बोल कह्यो तिम कहीजै, संक्षेपे नव बोल सुणीजै।
१६. कीयगड मोल लियो तिणवारी, साधु अर्थ थाप्यो निश्चो धारी।
१७. मोदक नों चूर्ण ते मुनि काज, वलि मोदक रचियो समाज।

*लय : पुनवंतो जीव पाछिल भव

३. चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया, एवामेव जाव चत्तारि पंच जोयणसयाइं बहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं। (श० ५/१३६)

४. से कहमेयं भंते ! एवं ?
गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमातिक्खंति जाव बहुसमाइण्णे मणुयलोए मणुस्सेहिं। जे ते एवमाहंसु 'मिच्छं ते एवमाहंसु'।

५. अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—से जहानामए जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया एवामेव जाव चत्तारि पंचजोयणसयाइं

६. बहुसमाइण्णे निरयलोए नेरइएहिं। (श० ५/१३७)
'नेरइएहिं' इत्युक्तमतो नारकवक्तव्यतासूत्रम्—
(वृ० प० २३१)

७. नेरइया णं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए ? पुहत्तं पभू विउव्वित्तए ?
गोयमा ! एगत्तं पि पहू विउव्वित्तए, पुहत्तंपि पहू विउव्वित्तए।
'एगत्तं' ति एकत्वं प्रहरणानां 'पुहुत्तं' ति पृथक्त्वं बहुत्वं प्रहरणानामेव। (वृ० प० २३१)

८. जहा जीवाभिगमे (सू० ११०,१११) आलावगो तहा नेयव्वो जाव विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहण-माणा-अभिहणमाणा वेयणं उदीरेंति—उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं। (श० ५/१३८)

९. इयं च वेदना ज्ञानाद्याराधनाविरहेण भवतीत्या-राधनाऽभावं दर्शयितुमाह— (वृ० प० २३१)

१०. आहाकम्मं 'अणवज्जे' त्ति मणं पहारेत्ता भवति,

११. से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंते
१२. कालं करेइ—नत्थि तस्स आराहणा।
१३. से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते
१४. कालं करेइ—अत्थि तस्स आराहणा।
(श० ५/१३९)

१५. एएणं गमेणं नेयव्वं—
१६. कीयगडं ठवियं,
१७,१८. रइयं,
'रइयगं' ति मोदकचूर्णादि पुनर्मोदकादितया रचित-मौद्देशिकभेदरूपं। (वृ० प० २३१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. तेह रचित[1] है उद्देशिक भेद, एहवो वृत्ति में अर्थ संवेद।
१६. कंतार-भक्त ते अटवी मांहि, भिखारियां काजै कीधो ताहि।

१६. कंतारभत्तं,
कान्तारम्—अरण्यं तत्र भिक्षुकाणां निर्वाहार्थं यद्-विहितं भक्तं तत्कान्तारभक्तम्। (वृ० प० २३१)

२०. दुर्भिक्ष-भक्त दुकाल में जेह, भिक्षु अर्थे कीधो भक्त तेह।
२१. वद्दलिया-भक्त ते मेह-झड मांय, भिक्षु अर्थे भात निपजाय।
२२. गिलाण-भक्त ते रोगी नैं अर्थे कीधो भात विशेष तदर्थे।

२०. 'दुब्भिक्खभत्तं',
२१. वद्दलियाभत्तं,
२२. गिलाणभत्तं,
ग्लानस्य नीरोगतार्थं भिक्षुकदानाय यत्कृतं भक्तं तद् ग्लानभक्तम्। (वृ० प० २३१)

२३. सेज्यातर-पिंड सूवै जिण स्थान, तेहनां घर नों आहार ए जान।
२४. राय पिंड ते राजा-अभिषेक कीधे छते जे आहार विशेख।
२५. तथा पिंड मांहै राज समान, मंस प्रमुख अकल्पतो जान।
२६. ए दस दोष कह्या जिनराय, निर्दोष जाणैं मन मांय।

२३. सेज्जायरपिंड,
२४. रायपिंडं। (श० ५/१४०)

२६. आधाकर्मादीनां सदोषत्वेनागमेऽभिहितानां निर्दोषता-कल्पनम्। (वृ० प० २३१)

२७. विना आलोयां आराधना नहीं छै, आलोयां आराधना कही छै।
२८. ए दस दोष निरवद्य कहीनें, घणां लोकां मांहै भाखी नैं।
२९. स्वयमेव भोगवी नैं न आलोय, तिण नैं आराधना नहिं होय।
३०. आलोयां पडकमियां नैं स्थान, तिण रै आराधना पहिछान।

२८-३० आहाकम्मं 'अणवज्जे' त्ति सयमेव परिभुंजित्ता भवति, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंते कालं करेइ—नत्थि तस्सआराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१४१)

---

१. साधु के भोजन सम्बन्धी दोषों में एक दोष है—रचित दोष। भगवती की वृत्ति (वृ० प० २३१) में इसे औद्देशिक का एक भेद बताया गया है, पर उसका कोई कारण नहीं बताया गया। प्रश्न व्याकरण सूत्र की वृत्ति में जो अर्थ किया है, उससे रचित दोष की औद्देशिकता घटित हो सकती है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए आचार्य श्री तुलसी ने पांच सोरठे लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—

**सोरठा**

प्रश्नव्याकरण उदार, दशम अध्ययन नीं वृत्ति में।
दोष-विवरण मभार, रचित दोष नों अर्थ ए॥
मोदक चूर्ण विचार, साध्वादिक नैं अर्थ वलि।
अग्नि आदि थी धार, तपावि मोदक सांधियो॥
साध्वादिक नैं अर्थ, अग्नि आरंभ थयो इहां।
उद्देशिक भेद तदर्थ, एम करीनैं संभवै॥
भगवति-वृत्ति सुजाण, तपाविवा नों अर्थ नहिं।
तेहथी अर्थ प्रमाण, प्रश्नव्याकरण वृत्ति नो॥
ओदन दधी मिलाण, करवादिक करवो तिको।
पर्यवजात पिछाण, दोष रचित आगल कह्यो॥



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. ए दस दोष निरवद्य कही नैं, ओ तो मांहोमांहि देई नैं।
३२. ए पिण विराधक बिना आलोय, आलोयां आराधक होय।

३१,३२. आहाकम्मं 'अणवज्जे' त्ति अण्णमण्णस्स अणुप्प-दावइत्ता भवइ, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंते कालं करेइ—नत्थि तस्स आराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१४३)

३३. ए दस दोष नैं सभा मझार, ओ तो निरवद्य परूपै धार।
३४. ते पिण विना आलोयां विराधक, आलोयां हुवै आराधक।

३३,३४. आहाकम्मं णं 'अणवज्जे' त्ति बहुजणमज्झे पण्ण-वइत्ता भवति, से णं तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंते कालं करेइ—नत्थि तस्स आराहणा। से णं तस्स ठाणस्स आलोइय-पडिक्कंते कालं करेइ—अत्थि तस्स आराहणा। (श० ५/१४५)

**सोरठा**

३५. आधाकर्मी आद, पूर्वे आख्या ते प्रतै।
आचार्यादिक साध, कहै विशेषे परषदि॥
३६. ते माटे तहतीक, आचार्य उवज्झाय प्रति।
सुध फल थकी सधीक, कहियै ते देखाड़तो॥

३५:३६ आधाकर्मादींश्च पदार्थानाचार्यादयः सभायां प्रायः प्रज्ञापयन्तीत्याचार्यादीन् फलतो दर्शयन्नाह—
(वृ० प० २३१)

३७. *आचार्य उवज्झाया भगवान, स्व विषय अर्थ सूत्र दान।

३७. आयरिय-उवज्झाए णं भंते! सविसयंसि
'स्वविषये' अर्थदानसूत्रदानलक्षणे (वृ० प० २३२)

३८. गण निज शिष्य वर्ग प्रति सार, खेद रहित करतो अंगीकार।

३८. गणं अगिलाए संगिण्हमाणे,
'गणं' ति शिष्य वर्गं 'अगिलाए' त्ति अखेदेन संगृह्णन्
(वृ० प० २३२)

३९. अखेदपणै देतो आधार, रागद्वेष रहित तिण वार।

३९. अगिलाए उवगिण्हमाणे
'उपगृह्णन्' उपष्टम्भयन्। (वृ० प० २३२)

४०. एहवा आचार्य कति भवे सीझै, जाव सर्व दुख अंत करीजै?

४०. कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

४१. जिन कहै केइ तिणहिज भव सीझै, ए तो चरम-शरीरी कहीजै।
४२. केइ बीजो नर भव करि सीझै, तिण नैं एकाऽवतारी कहीजै।
४३. तीजो नर नों भव न उलंघावै, तिके पंच भवे शिव पावै।

४१. गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति,
४२. अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति,
४३. तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमति।
(श० ५/१४७)

**सोरठा**

४४. द्वितीय तृतीय भव देख, नर भव तणी अपेक्षया।
बिच सुर भव सुविशेख, ते इहां लेखविया नहीं॥
४५. चारित्रवंत सुसंत, सिध-गति कै सुर-पद लहै।
तिण कारण ए हुंत, द्वितीय तृतीय भव मनु वृत्तौ॥
४६. पूर्वे भाख्यो एह, पर-अनुग्रह करिवै सुफल।
हिव पर-उपघातेह, विरुओ फल कहियै तसुं॥

४४. द्वितीयः तृतीयश्च भवो मनुष्यभवो देवभवान्तरितो दृश्यः। (वृ० प० २३२)

४५. चारित्रवतोऽनन्तरो देवभव एव भवति, न च तत्र सिद्धिरस्तीति। (वृ० प० २३२)

४६. परानुग्रहस्यानन्तरफलमुक्तं, अथ परोपघातस्य तदाह— (वृ० प० २३२)

* लय : पुनवंतो जीव पाछिल भव मांहि



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. *अन्य प्रति प्रभु ! अलीक जे आखै, मुनि नैं कुसीलियो भाखै।

४७. जे णं भंते ! परं अलिएणं
अलीकेन भूतनिह्नवरूपेण पालितब्रह्मचर्यसाधु-विषयेऽपि नानेन ब्रह्मचर्यमनुपालितमित्यादिरूपेण,। (वृ० प० २३२)

४८. असब्भूएणं अछता अवगुण आखै, जिम अचोर नैं चोर दाखै।

४८. असब्भूएणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाति,
अभूतोद्भावनरूपेण अचौरेऽपि चौरोऽयमित्यादिना, (वृ० प० २३२)

४९. किसा प्रकार ना कर्म तसुं होय ? हिवै जिन उत्तर दे सोय।
५०. जे पर प्रति अलीक नैं अछतो संधै, तथाप्रकार कर्म तसुं बंधै।

४९. तस्स णं कहप्पगारा कम्मा कज्जंति ?
५०. गोयमा ! जे णं परं अलिएणं, असंतएणं अब्भक्खाणेणं अब्भक्खाति, तस्स णं तहप्पगारा चेव कम्मा कज्जंति।

५१. जे मनुष्य आदि गतिमें उपजंतो, तिहां आल नां फलभोगवंतो।
५२. पछै कर्म नैं निर्जरै ताय, कोइ करै जिसा फल पाय।

५१, जत्थेव णं अभिसमागच्छति तत्थेव णं पडिसंवेदेति
५२. तओ से पच्छा वेदेति। (श० ५/१४८)
ततः पश्चाद् वेदयति---निर्जरयतीत्यर्थः (वृ० प० २३२)

५३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! विशेष, पंचम शतक नों छठो उद्देश।
५४. आठ असीमीं ए ढाल उदारं, तिण में वारता विविध प्रकारं।
५५. भिक्षु भारीमालऋषिराय पसाय, कांइ 'जय-जश' हरष सवाय।

५३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ५/१४९)

**पंचमशते षष्ठोद्देकार्थः ॥५।६॥**

## ढाल : ८९

### दूहा

१. छठा उदेशा अंत में, पुद्गलकर्म पिछाण।
तास निर्जरा नैं कही, चलणरूप ते जाण॥
२. ते माटै हिव सातमैं, पुद्गल चलण विचार।
वीर प्रतै पूछै सुविधि, श्री गोयम सुखकार॥

१,२. षष्ठोद्देशकान्त्यसूत्रे कर्मपुद्गलनिर्जरोक्ता, निर्जरा च चलनमिति सप्तमे पुद्गलचलनमधिकृत्येदमाहु--- (वृ० प० २३२)

*जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नों,
जयवन्तो जी श्री जिन-शासन जाण, जयवंता जी गोतम गुण खान।
जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नों॥ (ध्रुपदं)

३. परमाणु-पुद्गल हे प्रभु ! ओ तो कंपै हो, वलि विशेष कंपाय।
यावत् ते ते भाव नैं परिणमै छै हो, भाखो जी जिनराय !

३. परमाणुपोग्गले णं भंते ! एयति वेयति जाव (सं० पा०) तं तं भावं परिणमति ?

*लय : पुनवंतो जीव पाछिल भव
*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. वीर कहै सुण गोयमा ! कदाचित कंपै हो वलि विशेष कंपाय ।
यावत ते ते भाव नैं, परिणमै छे हो सुण गोतम ! वाय ।।
५. कदाचित परमाणुओ, नहिं कंपै हो ए स्थिर कहिवाय ।
यावत ते ते भाव नैं, नहिं परिणमै हो स्थिर नीं अपेक्षाय ।।
६. खंध प्रभु ! दुप्रदेशियो, ए तो कंपै हो यावत् परिणमंत ?
जिन कहै कंपै कदाचित, जाव परिणमै हो धुर भंग ए हुंत ।।

७. कदाचित् ते कंपै नहीं, जाव न परिणमै हो ए दूजो भंग ।
कदा देश इक कंपतो, देश न कंपै हो तीजो भांगो ए चंग ।।
८. खंध प्रभु ! तीन प्रदेशियो, एतो कंपै हो यावत् परिणमंत ?
जिन कहै कंपै कदा त्रिहुं, जाव परिणमै हो पहिलो भंगो ए हुंत ।।
९. कदा त्रिहुं कंपै नहीं, जाव न परिणमै हो ए दूजो भंग ।
कदा देश इक कंपतो, देश न कंपै हो तीजो भांगो ए चंग ।।

४. गोयमा ! सिय एयति वेयति जाव तं तं भावं परि-
णमति,
५. सिय नो एयति जाव नो तं तं भावं परिणमति ।
(श० ५/१५०)
६. दुप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयति जाव तं तं भावं
परिणमति ?
गोयमा ! सिय एयति जाव तं तं भावं परिणमति ।
७. सिय नो एयति जाव नो तं तं भावं परिणमति ।
सिय देसे एयति, देसे नो एयति । (श० ५/१५१)
८,९. तिप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयति ?
गोयमा ! सिय एयति, सिय नो एयति । सिय देसे
एयति, नो देसे एयति ।

## सोरठा

१०. एक देश कंपंत, एक देश कंपै नहीं ।
तथाविध परिणमंत, न्याय तृतीय भंगा तणों ।।
११. एक आकाश प्रदेश, बे प्रदेश तेह में रह्या ।
ते बिहुं नैं सुविशेष, एक देश वंछ्यो इहां ।।

१२. *कदा देश इक कंपतो, नहिं कंपै हो बहुदेशा गम्म ।
कदा देश बहु कंपता, नहिं कंपै हो इक देश पंचम्म ।।
१३. खंध प्रभु ! च्यार प्रदेशियो, एतो कंपै हो यावत् परिणमंत ?
जिन कहै कंपै कदा चिहुं, जाव परिणमैं हो पहिलो भांगो ए हुंत ।।
१४. कदा चिहुं कंपै नहीं, जाव न परिणमैं हो ए दूजो भंग ।
कदा देश इक कंपतो, देश न कंपै हो तीजो भांगो ए चंग ।।

१२. सिय देसे एयति, नो देसा एयंति । सिय देसा एयंति,
नो देसे एयति । (श० ५/१५२)
१३. चउप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयति ?
गोयमा ! सिय एयति,
१४. सिय नो एयति । सिय देसे एयति, नो देसे एयति ।

## सोरठा

१५. दोय आकाश प्रदेश, तेह विषे बे-बे रह्या ।
ते माटै सुविशेष, एक वचन बिहुं देश ए ।।
१६. *कदा देश इक कंपतो, नहिं कंपै हो बहुदेशा गम्म ।
कदा देश बहु कंपता, नहिं कंपै हो इक देश पंचम्म ।।
१७. कदा देश बहु कंपता, नहिं कंपै हो बहुदेशा षष्टम्म ।
इमहिज पंच प्रदेशियो, यावत् कहिवो हो अनंतप्रदेशिक गम्म ।।

१६. सिय देसे एयति, नो देसा एयंति । सिय देसा एयंति,
नो देसे एयति ।
१७. सिय देसा एयंति, नो देसा एयंति । जहा चउप्पए-
सिओ तहा पंचपएसिओ, तहा जाव अणंतपएसिओ ।
(श० ५/१५३)

## सोरठा

१८. पुद्गल नों अधिकार, पूर्वे जे आख्यो अछै ।
तेहनुं ईज विचार, कहियै छै हिव आगलै ।।

१८. पुद्गलाधिकारादेवेदं सूत्रवृन्दम्— (वृ० प० २३३)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. *परमाणु-पुद्गल हे प्रभु ! खडग-धारा हो पाछणा नीं धार ।
ते प्रति अवगाहै तिको ? जिन भाखै हो हंता सुविचार ॥

२०. ते परमाणु प्रभु ! तिहां, छेदीजै हो दोय भाग ह्वै जाय ।
भेद पामै—विदराइयै ? जिन भाखै हो अर्थ समर्थ नांय ॥

२१. शस्त्र तिहां आक्रमैं नहीं, परमाणु हो तेहनुं जे भाव ।
तेहथी अन्यथापणो हुवै नहीं, इम यावत् हो असंखप्रदेशी कहाव ॥

२२. खंध प्रभु ! अनंतप्रदेशियो, असि-धारा हो खुर-धारा में आय ।
खडग पाछणा नीं धार ए ? जिन भाखै हो हंता अवगाय ॥

२३. ते तिहां छेद बे भाग ह्वै, भेदीजै हो विदारण भाव पाय ।
छेद भेद कोइक लहै, कोइ न पामै हो ए छै जिन-वाय ॥

**सोरठा**

२४. छेद भेद जे थाय, तथाविध बादर-परिणाम थी ।
छेद भेद नवि पाय, सूक्ष्म परिणामपणां थकी ॥
२५. छेद भेद शस्त्रेह, एवं अग्निकाय मध्य ।
सूत्रे संक्षपेह, ते विस्तारी नें कहूं ॥

२६. *परमाणु-पुद्गल हे प्रभु! अग्निकाय में हो आवै? जिन कहै आय ।
परमाणु तेह बलै तिहां ? जिन भाखै हो अर्थ समर्थ नांय ॥

२७. शस्त्र तिहां आक्रमैं नहीं, इम यावत् हो असंखप्रदेशियो ताय ।
अनंतप्रदेशियो खंध प्रभु ! अग्निकाय में हो आवै अवगाय ?
२८. जिन कहै हंता आवियै, दग्ध ह्वै त्यां हो ? जिनकहै कोइबलंत ।
कोइ इक दग्ध हुवै नहीं, बादर सूक्ष्म हो परिणाम थी हुंत ॥

२९. इहविध पुक्खलसंवर्त्तक महामेघ में हो मध्योमध्य आवंत ।
पिण तिहां भीजै—आलो हुवै? एहवूं कह्यूं हो पूरववत् विरतंत ॥

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१९. परमाणुपोग्गले णं भंते ! असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?
हंता ओगाहेज्जा ।
२०. से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?
गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे,
'छिद्येत' द्विधाभावं यायात्, 'भिद्येत' विदारणभावमात्रं यायात् । (वृ० प० २३३)
२१. नो खलु तत्थ सत्थं कमइ । (श० ५।१५४)
एवं जाव असंखेज्जपएसिओ (श० ५।१५५)
परमाणुत्वादन्यथा परमाणुत्वमेव न स्यादिति (वृ० प० २३३)
२२. अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?
हंता ओगाहेज्जा ।
२३. से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?
गोयमा ! अत्थेगइए छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा, अत्थेगइए नो छिज्जेज्ज वा नो भिज्जेज्ज वा । (श० ५।१५६)
२४. 'अत्थेगइए छिज्जेज्ज' त्ति तथाविधबादरपरिणामत्वात् 'अत्थेगइए नो छिज्जेज्ज' त्ति सूक्ष्मपरिणामत्वात् । (वृ० प० २३३)
२६. परमाणुपोग्गले णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?
हंता वीइवएज्जा । से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।
२७,२८. नो खलु तत्थ सत्थं कमइ (सं० पा०)
एवं जाव असंखेज्जपएसिओ । (श० ५।१५७,१५८)
अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?
हंता वीइवएज्जा । से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए झियाएज्जा, अत्थेगइए नो झियाएज्जा ।
२९. से णं भंते ! पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?
हंता वीइवएज्जा ।
से णं भंते ! तत्थ उल्ले सिया ?
गोयमा ! अत्थेगइए उल्ले सिया, अत्थेगइए नो उल्ले सिया ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. इम गंगा महानदी तणैं, प्रवाह मांहै हो उतावलो आय।
पिण तिहां स्खलना पामियै, एहवूं कह्यूं हो पूर्वली परं ताय॥

३१. पाणी तणैं आवर्त्त में, वलि उदग नां हो बिंदुआं में आय।
ते विणसै—विनाश पामै तिहां, इम कहिवूं हो पूर्वली परं ताय॥

३२. स्यूं परमाणु अर्द्ध सहित प्रभु! मध्य सहित छै हो कै प्रदेश सहीत।
अथवा ते अर्द्ध रहीत छै, मध्य रहित छै हो कै प्रदेश रहीत?

३३. जिन कहै अर्द्ध रहीत छै, मध्य रहित छै हो वलि प्रदेश रहीत।
पिण ते अर्द्ध सहित नहीं, मध्य सहित नहिं हो नहीं प्रदेश सहीत॥

३४. †ए अर्द्ध रहित परमाणुओ, छेद्यो न जावै ते भणी।
एकला माटै अप्रदेशिक, खंध ते अलगो गिणी॥

३५. *दुप्रदेशियो खंध प्रभु! अर्द्ध सहित छै हो मध्य सहित सप्रदेश।
अथवा अर्द्ध रहित छै, मध्य रहित छै हो अप्रदेशी कहेश?

३६. जिन कहै अर्द्ध सहित छै, मध्य रहित छै हो सप्रदेशी ताहि।
पिण ते अर्द्ध रहित नहीं, मध्य सहित नहीं हो अप्रदेशी नांहि॥

३७. †अर्द्ध सहित बे प्रदेश माटै, मध्य रहित बिच को नहीं।
दुप्रदेशिया खंध माटै, सप्रदेश कहियै सही॥

३८. नहिं अर्द्ध रहित अर्थात् इतलै, अर्द्ध सहित विशेष है।
नहिं मध्य सहित अमध्य छै, अप्रदेश नहिं सप्रदेश है॥

३९. *पूछा तीन प्रदेशिया खंध नी,
जिन कहै अर्द्ध न हो मध्य सहित सप्रदेश।
पिण ते अर्द्ध सहित नहीं,
मध्य रहित नहिं हो नहिं वलि अप्रदेश॥

४०. †त्रिप्रदेश माटै अर्द्ध नांही, दोढ़ दोढ़ हुवै नहीं।
मध्य सहित प्रदेश बिच इक, सप्रदेश खंध ए सही॥

४१. अर्द्ध सहित नहिं बीचलो प्रदेश छेदीजै नहीं।
नहिं अमध्य अर्थात् समध्य, अप्रदेश नहिं सप्रदेश ही॥

४२. जिम कह्यो दुप्रदेशियो खंध, सम प्रदेश तिम जाणवा।
विषम ते त्रिप्रदेशिया जिम, न्याय हिवड़े आणवा॥

† लय : पूज मोटा भांजे
*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

३०. से णं भंते! गंगाए महानईए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा?
हंता हव्वमागच्छेज्जा।
से णं भंते! तत्थ विणिहायमावज्जेज्जा?
गोयमा! अत्थेगइए विणिहायमावज्जेज्जा, अत्थेगइए नो विणिहायमावज्जेज्जा।

३१. से णं भंते! उदगावत्तं वा उदगबिंदुं वा ओगाहेज्जा?
हंता ओगाहेज्जा। से णं भंते! तत्थ परियावज्जेज्जा?
गोयमा! अत्थेगइए परियावज्जेज्जा, अत्थेगइए नो परियावज्जेज्जा। (श० ५।१५९)

३२. परमाणुपोग्गले णं भंते! किं सअड्ढे समज्झे सपएसे? उदाहु अणड्ढे अमज्झे अपएसे?

३३. गोयमा! अणड्ढे अमज्झे अपएसे, नो सअड्ढे नो समज्झे नो सपएसे। (श० ५।१६०)

३५. दुप्पएसिए णं भंते! खंधे किं सअड्ढे समज्झे सपएसे?
उदाहु अणड्ढे अमज्झे अपएसे?

३६. गोयमा! सअड्ढे अमज्झे सपएसे, नो अणड्ढे नो समज्झे नो अपएसे। (श० ५।१६१)

३९. तिप्पएसिए णं भंते! खंधे पुच्छा।
गोयमा! अणड्ढे समज्झे सपएसे, नो सअड्ढे नो अमज्झे नो अपएसे। (श० ५।१६२)

४२. जहा दुप्पएसिओ तहा जे समा ते भाणियव्वा, जे विसमा ते जहा तिप्पएसिओ तहा भाणियव्वा।
(श० ५/१६३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. बे च्यार षट अठ प्रमुख बेकी, सम कहीजै जेहनैं।
तीन पंच सत प्रमुख एकी, विषम कहीजै तेहनैं।।

४४. *संखेज-प्रदेशियो खंध प्रभु! अर्द्ध सहित छै हो पूछा हिव जिन वाय।
कदाचित् अर्द्ध सहित छै, मध्य रहित छ हो सप्रदेशी ताय।।

४५. कदाचित् संख-प्रदेशियो, अर्द्ध रहित छै हो मध्य सहित कहिवाय।
सप्रदेश कहियै तसु, आगल निसुणो हो ए बिहु नों न्याय।।

४६. †बे भेद संख-प्रदेशिया नां, सम-प्रदेशिक एक है।
दूसरो जे भेद ते, विषम-प्रदेश विशेख है।।

४७. जे अर्द्ध सहित मध्य रहित छै, सप्रदेश ते सम खंध ही।
जे अर्द्ध रहित मध्य सहित छै, सप्रदेश तेह विषम वही।।

४८. *जिम संख-प्रदेशियो खंध कह्यो, असंखप्रदेशी हो तिमहिज कहिवाय।
तिमहिज अनंतप्रदेशियो, विमल विचारो हो सम विषम नों न्याय।।

४९. प्रभु! परमाणु अन्य परमाणु नैं, देसेणं हो देसं फुसइ तेह।
स्यूं पोता नैं एक देशे करी, बीजा नों हो इक देश फर्सेह।।

५०. देसेणं देसे फुसइ, पोता नैं हो इक देशे करि ताय।
बीजा नां बहु देशां प्रतै, फर्सै छै हो बीजे भंग ए वाय।।

५१. कै देसेणं सव्वं फुसइ, ते पोता नैं हो एक देशे करि जाण।
बीजा परमाणु सर्व नैं, फर्सै छै हो तीजै भंग पिछाण।।

५२. देसेहिं देसं फुसइ, ते पोता नैं हो बहु देशे करि जोय।
बीजा नां इक देश नैं, फर्से छै हो भंग चउथो होय।।

५३. देसेहिं देसे फुसइ, ते पोता नैं हो बहु देशे करि देख।
बीजा नां बहु देश नैं, फर्सै छै हो भंग पंचम पेख।।

५४. देसेहिं सव्वं फुसइ, ते पोता नैं हो बहु देशे करि ताय।
बीजा परमाणु सर्व नैं, फर्सै छै हो भंग छट्ठो कहाय।।

५५. सव्वेणं देसं फुसइ, ते पोता नैं हो सर्व करिनैं तिवार।
बीजा नां एक देश नैं फर्सै छै हो भंग सप्तम सार।।

५६. सव्वेणं देसे फुसइ, ते पोता नैं हो सर्व करिनैं ताम।
बीजा नां बहु देश नैं फर्सै छै हो भंग आठमों आम।।

५७. सव्वेणं सव्वं फुसइ, ते पोता नैं हो सर्व करिनैं भाल।
बीजा परमाणु सर्व नैं फर्सै छै हो भंग नवमों न्हाल।।

**परमाणु-पुद्गल स्पर्शना सम्बन्धी यंत्र :—**

| | |
|---|---|
| १—१ | १ |
| २—१ | २ |
| ३—१ | ३ |
| ४—२ | १ |
| ५—२ | २ |
| ६—२ | ३ |
| ७—३ | १ |
| ८—३ | २ |
| ९—३ | ३ |

४४. संखेज्जपएसिए णं भंते! खंधे किं सअड्ढे? पुच्छा।
गोयमा! सिअ सअड्ढे अमज्झे सपएसे।

४५. सिय अणड्ढे समज्झे सपएसे।

४७. यः समप्रदेशिकः स सार्द्धोऽमध्यः इतरस्तु विपरीत इति। (वृ० प० २३३)

४८. जहा संखेज्जपएसिओ तहा असंखेज्जपएसिओ वि अणंतपएसिओ वि। (श० ५/१६४)

४९. परमाणुपोग्गले णं भंते! परमाणुपोग्गलं फुसमाणे किं देसेणं देसं फुसइ।

५०. देसेणं देसे फुसइ।

५१. देसेणं सव्वं फुसइ।

५२. देसेहिं देसं फुसइ।

५३. देसेहिं देसे फुसइ।

५४. देसेहिं सव्वं फुसइ।

५५. सव्वेणं देसं फुसइ।

५६. सव्वेणं देसे फुसइ।

५७. सव्वेणं सव्वं फुसइ?

* लय : वीर सुणो मोरी वीनती
† लय : पूज मोटा भांजै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. जिन कहै जे परमाणुओ, परमाणु नें हो अठ भंग फर्सै नांय ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, ते सर्व करि हो सर्व प्रति फर्साय ।।

५९. इम परमाणु छै तिको, दुप्रदेशी हो खंध प्रति फर्साय ।
सातमें नवमें भंगे करि, शेष भंगे हो नहि फर्सै ताय ।।

६०. दोय आकाश प्रदेश में, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद ताय ।
सव्वेणं देसं फुसइ, सर्व परमाणु हो देश प्रतै फर्साय ।।

६१. एक आकाश-प्रदेश में, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद ताय ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, सर्व परमाणु हो सर्व प्रतै फर्साय ।।

६२. परमाणु-पुद्गल छै तिको, त्रिप्रदेशिक हो खंध प्रतै फर्सेह ।
छेहले त्रिण भांगे करी, धुर षट् भंगे हो नहिं फर्स जेह ।।

६३. त्रिण आकाश प्रदेश में, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद ताय ।
सव्वेणं देसं फुसइ, सर्व परमाणु हो देश प्रतै फर्साय ।।

६४. दोय आकाश प्रदेश में, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो सुविशेष ।
बे देश छै एक प्रदेश में, एक प्रदेशे हो रह्यो छै इक देश ।।

६५. एक प्रदेशे बे देश छै, त्यांनें फर्सै हो परमाणुओ तास ।
सव्वेण देशे फुसइ, सर्व परमाणु हो वहु देश नुं फास ।।

६६. एक आकाश प्रदेश में, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो हुवै जद तेथ ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, सर्व परमाणु हो सर्व प्रतै फर्सेत ।।

६७. जिण रीते परमाणुओ, फर्साव्यो हो त्रिप्रदेशी संघात ।
एवं इम फर्सावियै, यावत् कहियै हो अनंतप्रदेशिक साथ ।।

६८. हे प्रभु ! खंध द्विप्रदेशियो, परमाणु नें हो फर्सतो किम होय ।
तीजे नवमें भांगे फर्सणा, शेष भांगे हो फर्सै नहिं कोय ।।

६९. दोय आकाश-प्रदेश में, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद तास ।
देसेणं सव्वं फुसइ, द्विप्रदेशी हो देश करी सर्व फास ।।

७०. एक आकाश प्रदेश नां, द्विप्रदेशिक हो रह्यो ह्वै जद तास ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, द्विप्रदेशिक हो सर्व करी सर्व फास ।।

७१. पुद्गल जे दुप्रदेशियो, वलि अनेरूं हो द्विप्रदेशिक नें जाण ।
पहिले तीजे सातमें, वलि नवमें हो भंग करि फर्साण ।।

७२. दोनूं खंध दुप्रदेशिया, रह्या छै हो बे-बे गगन प्रदेश ।
देसेणं देसे फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्सेस ।।

७३. दोय आकाश प्रदेश में, रह्यो छै हो द्विप्रदेशिक एक ।
इक गगन-प्रदेशे बीजो रह्यो, देसेणं हो सव्वं फुसइ देख ।।

७४. एक आकाश-प्रदश में, रह्यो छै हो दुप्रदेशियो एक ।
बे गगन-प्रदेशे बीजो रह्यो, सव्वेणं हो देसं फुसइ देख ।।

५८. गोयमा ! नो देसेणं देसं फुसइ, नो देसेणं देसे फुसइ, नो देसेणं सव्वं फुसइ, सव्वेणं सव्वं फुसइ । (श० ५/१६५)

५९. परमाणुपोग्गले दुप्पएसियं फुसमाणे सत्तम-णवमेहिं फुसइ ।

६०. यदा द्विप्रदेशिकः प्रदेशद्वयावस्थितो भवति तदा तस्य परमाणुः सर्वेण देशं स्पृशति, परमाणोस्तद्देशस्यैव विषयत्वात् ।

६१. यदा तु द्विप्रदेशिकः परिणामसौक्ष्म्यादेकप्रदेशस्थो भवति तदा तं परमाणुः सर्वेण सर्वं स्पृशतीत्युच्यते ।

६२. परमाणुपोग्गले तिप्पएसियं फुसमाणे निपच्छिमएहिं तिहिं फुसइ ।

६३. यदा त्रिप्रदेशिकः प्रदेशत्रयस्थितो भवति तदा तस्य परमाणुः सर्वेण देशं स्पृशति परमाणोस्तद्देशस्यैव विषयत्वात् । (वृ० प० २३४)

६४,६५. यदा तु तस्यैकत्र प्रदेशे द्वौ प्रदेशौ अन्यत्रैकोऽवस्थितः स्यात्तदा एकप्रदेशस्थितपरमाणुद्वयस्य परमाणोः स्पर्शविषयत्वेन सर्वेण देशौ स्पृशतीत्युच्यते ।

६६. यदा त्वेकप्रदेशावगाढोऽसौ तदा सर्वेण सर्वं स्पृशतीति । (वृ० प० २३४)

६७. जहा परमाणुपोग्गले तिप्पएसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो जाव अणंतपएसिओ । (श० ५/१६६)

६८. दुप्पएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे किं देसेणं देसं फुसइ ? पुच्छा । ततिय-नवमेहिं फुसइ ।

६९. यदा द्विप्रदेशिकः द्विप्रदेशस्थस्तदा परमाणुं देशेन सर्वं स्पृशतीति । (वृ० प० २३४)

७०. यदात्वेकप्रदेशावगाढोऽसौ तदा सर्वेण सर्वमिति । (वृ० प० २३४)

७१. दुप्पएसिओ दुप्पएसियं फुसमाणे पढम-ततिय-सत्तम-नवमेहिं फुसइ ।

७२. यदा द्विप्रदेशिकौ प्रत्येकं द्विप्रदेशावगाढौ तदा देशेन देशमिति । (वृ० प० २३४)

७३. यदा त्वेक एकत्रान्यस्तु द्वयोस्तदा देशेन सर्वमिति । (वृ० प० २३४)

७४. तथा सर्वेण देशमिति सप्तमः । (वृ० प० २३४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५. इक-इक आकाश-प्रदेश में, द्विप्रदेशिक हो रह्या छै बिहुं तास ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य सर्व ही फास ।।
७६. द्विप्रदेशिक खंध तिको, त्रिप्रदेशिक हो फर्सतो चीन ।
प्रथम चरण त्रिण-त्रिण भंगा फर्सै छै हो न फर्से मध्य तीन ।।

७७. बे प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहंत ।
देसेणं देसं फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्सत ।।
७८. बे प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, बे प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहेस ।
एक प्रदेशे बे प्रदेश छै, एक प्रदेश हो रह्यो छै इक देश ।।
७९. एक प्रदेशे बे प्रदेश छै, त्यांनै फर्सै हो द्विप्रदेशी नों देश ।
देसेणं देसे फुसइ, इक देशे करि हो बहु देश फर्सेस ।।
८०. बे प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहंत ।
देसेणं सव्वं फुसइ, निज देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सत ।।
८१. एक प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहंत ।
सव्वेणं देसं फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य देश फर्सत ।।
८२. इक प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, बे प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहेस ।
एक प्रदेशे बे देश छै, एक प्रदेशे हो रह्यो छै इक देश ।।
८३. एक प्रदेशे बे प्रदेश छै, त्यांनैं फर्सै हो द्विप्रदेशी विशेष ।
सव्वेणं देसे फुसइ, निज सर्वे करि हो फर्सै बहु देश ।।
८४. इक प्रदेशे रह्यो दुप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो त्रिप्रदेशी रहंत ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य सर्व फर्सत ।।
८५. पहिलो दूजो नैं तीसरो, सप्तम अष्टम हो नवमों पहिछाण ।
फर्सै षट भंगे करी, मध्य त्रिण भंगे हो नहिं फर्सै जाण ।।
८६. जिम द्विप्रदेशिक खंध ते, फर्साव्यो हो त्रिप्रदेशो नै ताम ।
एवं इम फर्सायवो, यावत् कहिवो हो अनंतप्रदेशी नें आम ।।
८७. खंध प्रभु ! त्रिप्रदेशियो, परमाणु नैं हो कितै भंग फर्सत ।
जिन कहै तीन भंगे करी, तीजे छट्ठे हो नवमें करि हुंत ।।
८८. तीन आकाश प्रदेश में, रह्यो छते हो त्रिप्रदेशिक जेह ।
देसेणं सव्वं फुसइ, निज देशे करि हो सर्व प्रतै फर्सेह ।।
८९. दोय आकाश प्रदेश में, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो हुवै सुविशेष ।
एक प्रदेशे बे प्रदेश छै, एक प्रदेशे हो रह्यो छे इक देश ।।
९०. एक प्रदेशे बे देश छै, तिको फर्सै हो परमाणु प्रति तास ।
देसेहिं सव्वं फुसइ, बहु देशे करि हो सर्व परमाणु फास ।।
९१. एक आकाश प्रदेश में, त्रिप्रदेशिक हो रह्यो हुवै जद तेथ ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, निज सर्वे करि हो सर्व परमाणु फर्सेत ।।
९२. त्रिप्रदेशिक खंध तिको, फर्सतो हो द्विप्रदेशो नैं जोय ।
पहिले तीजे चौथे वलि छट्ठे, सप्तम नवमें हो भंगे करि होय ।।
९३. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, बे प्रदेशे हो द्विप्रदेशो रहंत ।
देसेणं देस फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्सत ।।

७५. नवमस्तु प्रतीत एवेति । (वृ० प० २३४)

७६. दुप्पएसिओ तिप्पएसियं फुसमाणे आदिल्लएहिं य, पच्छिल्लएहिं य तिहिं फुसइ, मज्झिमएहिं तिहिं विपडिसेहेयव्वं ।

८६. दुप्पएसिओ जहा तिप्पएसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो जाव अणंतपएसियं । (श० ५/१६७)

८७. तिप्पएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे पुच्छा । ततिय-छट्ठ-नवमेहिं फुसइ ।

९२. तिपएसिओ दुपएसियं फुसमाणे पढमएणं, ततिएणं, चउत्थ-छट्ठ-सत्तम-नवमेहिं फुसइ ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९४. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो द्विप्रदेशी रहंत ।
देसेणं सव्वं फुसइ, निज देशे करि हो सर्व प्रतै फर्संत ।।

९५. बे प्रदेशे त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो रह्या छै दोय देश ।
इक प्रदेशे इक देश छै, दोय प्रदेशे हो द्विप्रदेशिक रहेस ।।

९६. एक प्रदेशे बे देश छै, तिकै फर्सँ हो द्विप्रदेशी नुं देश ।
देसेहिं देसं फुसइ, बहु देशे करि हो अन्य इक देश फर्संस ।।

९७. बे प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो रह्या छै दोय देश ।
इक प्रदेशे एक देश छै, द्विप्रदेशिक हो एक प्रदेश रहेस ।।

९८. एक प्रदेशे बे देश छै, तिकै फर्सँ हो द्विप्रदेशिक खंध ।
देसेहिं सव्वं फुसइ, बहु देशे करि हो सर्व प्रतै फर्संद ।।

९९. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, दोय प्रदेशे हो द्विप्रदेशियो जाण ।
सव्वेणं देसं फुसइ, निज सर्वे करि हो एक देश फर्साण ।।

१००. एक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो द्विप्रदेशी रहंत ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, निज सर्वे करि हो सर्व प्रतै फर्संत ।।

१०१. तीन प्रदेशियो खंध तिको, वलि अनेरो हो त्रिप्रदेशिक खंध ।
तेह प्रतै फर्संतो छतो, सर्व स्थानके हो नव भंगे फर्संद ।।

१०१. तिपएसिओ तिपएसियं फुसमाणे सव्वेसु वि ठाणेसु फुसइ ।

१०२. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो वलि दूजो पिण रहंत ।
देसेणं देसं फुसइ, निज देशे करि हो अन्य देश फर्संत ।।

१०३. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, दोय प्रदेशे हो दूजो खंध त्रिप्रदेश ।
एक प्रदेशे बे देश छै, एक प्रदेशे हो इक देश है शेष ।।

१०४. एक प्रदेशे बे देश छै, तिण नैं फर्सँ हो त्रिप्रदेशी नों देश ।
देसेणं देसे फुसइ, इक देशे करि हो बहु देश फर्संस ।।

१०५. त्रिण प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।
देसेणं सव्वं फुसइ, इक देशे करि हो सर्वं प्रतै फर्संसि ।।

१०६. बे प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो दोय देश रहेसि ।
इक प्रदेश इक देश छै, तीन प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।।

१०७. एक प्रदेशे बे देश है, तिको फर्सँ हो त्रिप्रदेशी नों देश ।
देसेहिं देसं फुसइ, बहु देशे करि हो इक देश फर्संस ।।

१०८. बे-बे प्रदेश विषे रह्या, त्रिप्रदेशी हो दोय खंध विशेष ।
इक-इक प्रदेशे बे देश छै, इक-इक प्रदेशे हो देश छै एक एक ।।

१०९. एक प्रदेशे बे देश छ, तिके फर्सँ हो अन्य नां बहु देश ।
देसेहिं देसे फुसइ, बहु देशे करि हो बहु देश फर्संस ।।

११०. बे प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो रह्या छै दोय देश ।
इक प्रदेशे इक देश छै, एक प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेश ।।

१११. इक प्रदेशे बे देश छै, तिके फर्सँ हो त्रिप्रदेशी खंध ।
देसेहिं सव्वं फुसइ, बहु देशे करि हो सर्वं प्रतै फर्संद ।।

११२. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, तीन प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।
सव्वेणं देसं फुसइ, निज सर्वे करि हो अन्य देश फर्संसि ।।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११३. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, दोय प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।
एक प्रदेशे बे देश छै, एक प्रदेशे हो इक देश रहेसि ।।
११४. एक प्रदेशे बे देश छै, तिण नैं फर्सै हो त्रिप्रदेशी खंध ।
सव्वेणं देसे फुसइ, निज सर्व करि हो बहु देश फर्सद ।।
११५. इक प्रदेशे रह्यो त्रिप्रदेशियो, एक प्रदेशे हो अन्य खंध त्रिप्रदेशि ।
सव्वेणं सव्वं फुसइ, खंध सर्व करि हो सर्व प्रते फर्सेसि ।।
११६. जिम त्रिप्रदेशी खंध ते, फर्साव्यो हो त्रिप्रदेशी संघात ।
इमहिज ते त्रिप्रदेशियो, जाव जोड़वो हो अनंतप्रदेशी साथ ।।
११७. जेम कह्यु तीन प्रदेशियो, ओ तो फर्सै हो परमाणु प्रति जेह ।
वलि फर्सै द्विप्रदेशिक प्रतै, जाव फर्सै हो अनंतप्रदेशी प्रतेह ।।
११८. तिम च्यार प्रदेशिक आदि दे, अनंतप्रदेशिक हो खंध तेह विख्यात ।
फर्सै परमाणुआं प्रते, जावत् फर्सै हो अनंतप्रदेशिक जात ।।
११९. देश अंक सत्तावन तणो,
आ तो आखी हो नव्यासीमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी,
'जय-जश' संपति हो सुख हरष विशाल ।।

११६. जहा तिपएसिओ तिपएसियं फुसाविओ एवं तिप्पएसिओ जाव अणंतपएसिएणं संजोएयव्वो ।
११७,११८. जहा तिपएसिओ एवं जाव अणंतपएसिओ भाणियव्वो । (श० ५/१६८)

## ढाल : ९०

### दूहा

१. पुद्गल नां अधिकार थी, ते पुद्गल नां ताय ।
द्रव्य क्षेत्र वलि भाव प्रति, काल थकी कहिवाय ।।
२. प्रभु ! परमाणू काल थी, कितो काल रहै ताय ?
इह विध द्रव्य प्रति काल थी, प्रश्न कियो सुखदाय ।।

*श्री जिन वागरै, अमृत-वाण उदारो रे,
गोयम पूछता, सरस प्रश्न सुखकारो रे । (ध्रुपदं)

३. श्री जिन भाखै जघन्य था रे, एक समय सुविशेषि ।
उत्कष्ट काल असंख ही रे, इम जाव अनन्तप्रदेशि रे ।।
४. वृत्तिकार इम आखियो, असंख काल उपरंत ।
एकरूप पुद्गल तणो, रहिवूं स्थिति न हुंत ।।
[जिन गुणसागरू, वयण सुधा सुवदीतो रे,
अधिक ओजागरू, गोयम प्रश्न पुनीतो रे ।]
५. प्रभु ! एक प्रदेश विषे रह्यो, पुद्गल जे कंपमान ।
ते स्थान तथा अन्य स्थानके, कितो काल रहै जान ?

१. पुद्गलाधिकारादेव पुद्गलानां द्रव्यक्षेत्रभावान् कालतश्चिन्तयति । (वृ० प० २३४)
२. परमाणुपोग्गले णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?
३. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । एवं जाव अणंतपएसिओ । (श० ५।१६९)
४. असंख्येयकालात्परः पुद्गलानामेकरूपेण स्थित्यभावात् । (वृ० प० २३५)
५. एगपएसोगाढे णं भंते ! पोग्गले सेए तम्मि वा ठाणे वा, अण्णम्मि वा ठाणे कालओ केवच्चिरं होइ ?

*लय : श्रेणिक घर आयां पछै रे कांय ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. श्री जिन भाखै जघन्य थी, समय एक चल माग।
उत्कृष्ट आवलिका तणै, असंख्यातमैं भाग॥

६. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं।

७. इम यावत् आकाश नों, असंखेज्ज प्रदेश।
अवगाह्यो पुद्गल तिको, सकंप इतो रहेस॥

७. एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे। (श० ५।१७०)

८. प्रभु ! इक आकाश-प्रदेश में, पुद्गल कंप रहीत।
अचलपणें रहै काल थी, कितो काल संगीत?

८. एगपएसोगाढे णं भंते ! पोग्गले निरेए कालओ केवच्चिरं होइ ?

९. जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट काल असंखेज।
इम जाव असंख-प्रदेश नैं, अवगाह्योज निरेज[1]॥

९. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे। (श० ५।१७१)

१०. इक गुण कालो वण्णओ, पुद्गल हे भगवान?
कितो काल रहे काल थी? हिव उत्तर जिन वान॥

१०. एगगुणकालए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवच्चिरं होइ ?

११. जघन्य थकी इक समय छै, उत्कृष्टो इम न्हाल।
काल असंख्यातो कह्यो, इम जाव अनंतगुण काल॥

११. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। एवं जाव अणंतगुणकालए।

१२. इम वर्ण गंध रस फर्श छै, जाव अनंतगुण लुक्ष।
सूक्ष्म बादर परिणतो, पुद्गल इमज प्रत्यक्ष॥

१२. एवं वण्ण-गंध-रस-फास जाव अणंतगुणलुक्खे। एवं सुहुमपरिणए पोग्गले, एवं बादरपरिणए पोग्गले। (श० ५।१७२)

१३. शब्द-परिणत पुद्गल प्रभु ! काल थकी पहिछाण।
शब्दपणैं जे वर्त्ततो, कितो काल रहै जान?

१३. सद्दपरिणए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवच्चिरं होइ ?

१४. जिन कहै समय इक जघन्य थो, हिवै उत्कृष्ट सुमाग।
आवलिका छै तेहनों, असंख्यातमैं भाग॥

१४. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं। (श० ५।१७३)

१५. शब्दपणैं नहिं परिणम्यां, अशब्द-परिणत जेह।
जिम इक गुण कालो कह्यो, तिमहिज कहिवूं एह॥

१५. असद्दपरिणए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। (श० ५।१७४)

१६. प्रभु ! परमाणु-पुद्गल तणों, कितो अंतरो जोय?
खंध मांहै ते रहि करी, वलि परमाणू होय॥

१६. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

१७. जिन कहै समय इक जघन्य थी, हिवै उत्कृष्टो जोय।
काल असंख्यातो कह्यो, पछै परमाणू होय॥

१७. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। (श० ५।१७५)

१८. प्रभु ! दुप्रदेशियो खंध तणो, कितो अंतरो न्हाल?
जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट अनंतो काल॥

१८. दुप्पएसियस्स णं भंते ! खंधस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं।

१९. दुप्रदेशिया खंध तिको, अन्य खंध में मिल सोय।
तथा परमाणुपणें थइ, द्विप्रदेशिक वलि होय॥

२०. इम अनंत काल नों आंतरो, दुप्रदेशिक नों प्रबंध।
एवं जावत् आखियो, अनंत-प्रदेशिक खंध॥

२०. एवं जाव अणंतपएसिओ। (श० ५।१७६)

२१. इम त्रिप्रदेशिक खंध वलो, अनंतप्रदेशो पर्यंत॥
स्थिति उत्कृष्ट काल असंख नीं, अंतर-काल अनंत॥

२२. प्रभु ! इक प्रदेश अवगाहियो, सकंप पुद्गल सोय।
काल थकी तसु आंतरो, कितो काल नों होय?

२२. एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स सेयस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

---

१. निष्कम्प।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

२३. सकंप पुद्गल ताय, ते फीटो[1] निष्कंप ह्वै ।
वलि सकंपज थाय, इक प्रदेश अवगाढ जे ।।

२४. *जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट काल असंखेज ।
इम जाव असंख प्रदेश नैं, अवगाह्योज सएज[2] ।।

२४. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे ।
(श० ५।१७७)

२५. प्रभु ! एक प्रदेश अवगाहियो, अकंप पुद्गल सोय ।
काल थकी तसुं आंतरो, किता काल नों होय ?

२५. एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स निरेयस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

**सोरठा**

२६. अकंप पुद्गल ताय, ते फीटी सकंप थई ।
वलि अकंपज थाय, इक प्रदेश अवगाढ जे ।।

२७. *जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्टो इम माग ।
कहियै आवलिका तणैं, असंख्यातमैं भाग ।।
२८. इम जाव असंख-प्रदेश नैं, अवगाह्योज निरेज ।
तसु जघन्योत्कृष्ट अंतरो, पूरववत् कहेज ।।
२९. काल अकंप तणो जितो, अकंप अंतर तेह ।
काल अकंप तणो जितो, सकंप अंतर जेह ।।
३०. इक गुण काला प्रमुख जे, वर्ण गंध रस फास ।
सूक्ष्म परिणत पोग्गला, बादर परिणत तास ।।
३१. तसुं संचिट्ठणकाल ते, जितो पूर्व कह्यो न्हाल ।
अंतर पिण तसुं तेतलो, अंतर स्थिति तुल्य काल ।।
३२. "जिम इक गुण कालो आदि दे, कितो काल रहै न्हाल ?
एक समय छै जघन्य थी, उत्कृष्ट असंख काल ।।
३३. तिम इक गुण कालो आदि दे, तसु अंतर पिण न्हाल ।
एक समय छै जघन्य थी, उत्कृष्ट असंख काल ।।
३४. इम वर्ण गंध रस फर्श जे, सूक्ष्म बादर परिणत ।
काल रहै छै जेतलुं, तितरो अंतर लहत ।।

२७. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।
२८. एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे ।

३०. वण्ण-गंध-रस-फास-सुहुमपरिणय-बायरपरिणयाणं ।

३१. एतेसि जं चेव संचिट्ठणा तं चेव अंतरं पि भाणियव्वं ।
(श० ५/१७८)

**सोरठा**

३५. इक गुण कालत्व आदि, तेहना अंतर नैं विषे ।
द्विगुण काल प्रमुखादि, जाव अनंतगुण प्रति लहै ।।
३६. इक इक गुण रै मांहि, असंख-असंख अद्धा रह्या ।
अनंतपणां थी ताहि, अंतरकाल अनंत ह्वै ।।

१. परिवर्तित होकर—सकम्पता छोड़कर

***लय : श्रेणिक घर आयां पछै रे**

२. सकम्प



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. इम काल अनंतो सोय, अंतर तेहनो ह्वै नहीं ।
असंख काल इज होय, श्री जिनवचन प्रमाण थी" ।।
(ज० स०)

३८. *प्रभु ! शब्द-परिणत पुद्गल तणो, अंतर कितलु कहेज ?
जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट काल असंखेज ।।

३९. अशब्द-परिणत जे प्रभु ! पुद्गल नों पहिछाण ।
काल थकी अंतर कितुं ? हिव भाखै जगभाण ।।

४०. जघन्य थकी इक समय नों, हिवै उत्कृष्ट सुमाग ।
कहियै आवलिका तणो असंख्यातमों भाग ।।

४१. हे प्रभु ! पुद्गल द्रव्य नों, स्थान-भेद ते विचित्त ।
परमाणु द्विप्रदेशादिदे, तेहनी स्थिति लहित्त ।।

वा०—पुद्गल द्रव्य नो जे स्थान ते भेद, एतलै परमाणु, द्विप्रदेशिक त्रिप्रदेशिक जाव अनंतप्रदेशिक खंध ए पुद्गल द्रव्य नां अनंता भेद छै। तेहनैं पुद्गल द्रव्य नां स्थान कहीजै। तेह स्थान नो आयु ते स्थिति कहियै। एतलै पुद्गल द्रव्य नां स्थानक नां आयु नैं द्रव्यस्थानायु कहियै।

४२. क्षेत्र आकाश तणां जिके, स्थान भेद बहु ताय ।
पुद्गल क्षेत्र अवगाहिया, तेहनी स्थिती कहाय ।।

४३. अवगाहन पुद्गल तणी, तास स्थान बहु जाण ।
विविध प्रकारे ते अछै, तेहनीं स्थितो पिछाण ।।

४४. भाव कृष्ण वर्णादि जे, स्थान भेद बहु जोय ।
अनेक प्रकार करी अछै, तास स्थिती अवलोय ।।

## सोरठा

४५. क्षेत्र-स्थान-स्थिति मांय, वलि अवगाहन-स्थान में ।
कवण फेर कहिवाय ? कहूं वृत्ति अवलोक नैं ।।

४६. जिता आकाश-प्रदेश, पुद्गल द्रव्य अवगाहिया ।
तेहिज प्रमाण कहेस, क्षेत्र आकाश प्रदेश नैं ।।

४७. वांछित क्षेत्र थी जोय, अन्य ठिकाणैं पिण हुवै ।
अवगाहन अवलोय, पुद्गल द्रव्य तणी अछै ।।

४८. क्षेत्र आकाश प्रदेश, अवगाहन पुद्गल तणो ।
तिण कारण सुविशेष, जुदा क्षेत्र अवगाहना ।।

४९. द्रव्य क्षेत्र अरु काल, बलि भाव ए चिहुं तणां ।
स्थान तणी स्थिति न्हाल, अल्पबहुत्व तेहनीं हिवै ।।

५०. *जिन कहै थोडा सर्व थी, क्षेत्र स्थान स्थिति जोय ।
क्षेत्र अरूपिपणें करी, पुद्गल रूपी होय ।।

*लय : श्रेणिक घर आयां पछै रे

३८. सद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । (श० ५/१७९)

३९. असद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

४०. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं । (श० ५/१८०)

४१. एयस्स णं भंते ! दव्वट्ठाणाउयस्स,
द्रव्यं—पुद्गलद्रव्यं तस्य स्थानं—भेदः परमाणु द्विप्रदेशिकादि तस्यायुः—स्थितिः । (वृ० प० २३६)

४२. खेत्तट्ठाणाउयस्स,
क्षेत्रस्य—आकाशस्य स्थानं—भेदः पुद्गलावगाह-कृतस्तस्यायुः—स्थितिः । (वृ० प० २३६)

४३. ओगाहणट्ठाणाउयस्स,

४४. भावट्ठाणाउयस्स
भावस्तु कालत्वादिः । (वृ० प० २३६)

४५. ननु क्षेत्रस्यावगाहनायाश्च को भेदः ?
(वृ० प० २३६)

४६,४७. क्षेत्रमवगाढमेव, अवगाहना तु विवक्षितक्षेत्रा-दन्यत्रापि पुद्गलानां तत्परिमाणावगाहित्वमिति ।
(वृ० प० २३६)

४९. कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

५०,५१. गोयमा ! सव्वत्थोवे खेत्तट्ठाणाउए,
क्षेत्रस्यामूर्त्तत्वेन क्षेत्रेण सह पुद्गलानां विशिष्टबन्ध-प्रत्ययस्य स्नेहादेरभावान्नैकत्र ते चिरं तिष्ठन्ति ।
(वृ० प० २३६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. क्षेत्र साथ पुद्गल तणो, प्रत्यय बंध विशिष्ट।
स्नेहादिक नां अभाव तैं, एकत्र चिर नहि तिष्ठ।।

५२. पुद्गल इक क्षेत्रज विषे, घणां काल रहै नांय।
तिण कारण थोड़ी कही, क्षेत्र-स्थान-स्थिति ताय।।

५३. अवगाहन-स्थान-स्थिति तेहथी, असंखगुणा कहिवाय।
द्रव्य-स्थान-स्थिति तेहथी, असंखगुणा अधिकाय।।

५४. भाव-स्थान-स्थिति तेहथी, असंखगुणा अवलोय।
हिव वृत्ति थी वारता, न्याय कहूं ते जोय।।

५३. ओगाहणट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे, दव्वट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे।

५४. भावट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे। (श० ५/१८१)

## सोरठा

५५. पुद्गल क्षेत्र संघात, विशिष्ट बंध प्रत्यय नहीं।
चिर इक खित्त न रहात, क्षेत्र रह्या इम अल्प अद्धा।।

५६. अवगाहन अधिकाय, अन्य क्षेत्र पिण ते रह्यु।
चिर काले रहिवाय, पुद्गल नीं अवगाहना।।

५७. तिण कारण इम ताय, क्षेत्र विषे रह्या काल थी।
अवगाहन अधिकाय, अन्य क्षेत्रे पिण ते रहै।।

५८. अवगाहन नों नाश, तो क्षेत्र-स्थिति पिण प्रगट नहिं।
अवगाहन-स्थिति थी तास, इम क्षेत्र-स्थिति अधिक नहिं।।

५९. खेत्र काल जे न्हाल, अगमन अवगाहन संबद्ध।
पिण अवगाहन काल, खेत्र अद्धा संबद्ध नहिं।।

५५. खेत्तामुत्तत्ताओ तेण समं बंधपच्चयाभावा।
तो पोग्गलाण थोवो खेत्तावट्ठाणकालो उ।।
(वृ० प० २३६)

६०. अवगाहन नीं न्हाल, अगमन क्रिया नैं विषे।
नियत क्षेत्र जे काल, वांछित अवगाहन छते।।

६१. अवगाहना निहाल, अक्षेत्र मात्र अछै तिका।
नियत क्षेत्र नुं काल, तास अभावे पिण हुवै।।

६२. गमन क्रिया में जाण, अवगाहन तिहां पिण अछै।
तिण सूं अधिक पिछाण, क्षेत्र काल थी असंखगुण।।

६०. अवगाहनायामगमनक्रियायां च नियता क्षेत्राद्धा—विवक्षितावगाहनासद्भावे। (वृ० प० २३६)

६१. अवगाहनाद्धा तु न क्षेत्रमात्रे नियता, क्षेत्राद्धाया अभावेऽपि तस्या भावादिति। (वृ० प० २३६)

६२. जम्हा तत्थऽण्णत्थ य सच्चिय ओगाहणा भवे खेत्ते।
तम्हा खेत्तद्धाओऽवगाहणद्धा असंखगुणा।।
(वृ० प० २३६)

६३. संकोचन करि जेह, अथवा विकोचन करी।
अवगाहन निवृत्तेह, तो पिण द्रव्य न निवर्त्तै।।

६४. पूर्व रह्यो द्रव्य जन्न, ते तो चिर काले रहै।
पिण पूर्व अवगाहन्न, निवृत्ति—नाश थयो तसु।।

६३,६४. संकोचेन विकोचेन चोपरतायामप्यवगाहनायां यावन्ति द्रव्याणि पूर्वमासंस्तावतामेव चिरमपि तेषामवस्थानं संभवति, अनेनावगाहनानिवृत्तावपि द्रव्यं न निवर्त्तत इत्युक्तम्। (वृ० प० २३६)

६५. पुद्गल नां संघात, तिण करि अथवा भेद करि।
द्रव्य निवर्त्यै थात, अवगाहन नी पिण निवृत्ति।।

६६. पुद्गल संक्षिप्त थाय, तदा स्तोक अवगाहना।
पिण पूर्वली ताय, नहिं छै ते अवगाहना।।

६७. तिहां जे द्रव्य नुं नाश, द्रव्य अन्यथा ह्वै छते।
पूर्व द्रव्य विणास, नाश पूर्व अवगाहन नुं।।

६५. अथ द्रव्यनिवृत्तिविशेषेऽवगाहना निवर्त्तत एवेत्युच्यते—संघातेन पुद्गलानां भेदेन वा। (वृ० प० २३६)

६६. तेषामेव यः सङ्क्षिप्तः—स्तोकावगाहनः स्कन्धो न तु प्राक्तनावगाहनः। (वृ० प० २३६)

६७. तत्र यो द्रव्योपरमो द्रव्यान्यथात्वं तत्र सति। (वृ० प० २३६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. अवगाहन नुं काल, द्रव्य विषे संबद्ध अछै।
ते द्रव्य किसो निहाल? चित्त लगाई सांभलो॥

६८. अवगाहनाद्धा द्रव्येऽवबद्धा—नियतत्वेन सम्बद्धा, कथम्? (वृ० प० २३७)

६९. संकोचन विकोच, बिहुं रहित जे द्रव्य छते।
अवगाहना अमोच, नियतपणैं करि तसुं संबद्ध॥

६९. सङ्कोचाद्विकोचाच्च सङ्कोचविकोचादि परिहृत्येत्यर्थः, अवगाहना हि द्रव्ये सङ्कोचविकोचयोरभावे सति भवति तत्सद्भावे च न भवतीत्येवं द्रव्येऽवगाहनाऽनियतत्वेन संबद्धेत्युच्यते। (वृ० प० २३७)

७०. द्रव्य नीं जे अवगाहन्न, संकोच विकोच द्रव्य नुं।
तो द्रव्य नाश म जन्न, पुव्व अवगाहन नाश ह्वै॥

७१. द्रव्य संकोच लहेज, तथा विकोचन ह्वै छते।
अवगाहना विषेज, नियतपणैं करि संबद्ध नहीं॥

७१. न पुनर्द्रव्यं सङ्कोचविकोचमात्रे सत्यप्यवगाहनायां नियतत्वेन संबद्धं। (वृ० प० २३७)

७२. संकोच विकोच जाण, तिण करि अवगाहन तदा।
निवृत्त थये पिछाण, द्रव्य तणी निवृति नथी॥

७२. सङ्कोचविकोचाभ्यामवगाहनानिवृत्तावपि द्रव्यं न निवर्त्तते। (वृ० प० २३७)

७३. इम अवगाहन मांय, नियतपणुं करि द्रव्य नुं।
असंबद्ध कहिवाय, कुशाग्रबुद्धि करि देखिये॥

७३. इत्यवगाहनायां तन्नियतत्वेनासंबद्धमित्युच्यते। (वृ० प० २३७)

७४. तिह कारण कहिवाय, अवगाहन रा काल थी।
असंखगुणा अधिकाय, द्रव्य स्थान स्थिति नैं कह्युं॥

७५. भंग द्रव्य नों थाय, पिण तेहनां वर्णादिके।
छै ते गुण पर्याय, घणां काल लग जे रहै॥

७६. संघातन नैं भेद, तिण करि द्रव्य मिटचो तिको।
छै पजवा अविछेद, जिम घृष्टपटे शुक्लादि गुण॥

७६. संघातादिना द्रव्योपरमेऽपि पर्यवाः सन्ति, यथा घृष्टपटे शुक्लादिगुणाः। (वृ० प० २३७)

७७. सहु गुण मिटचें ज जान, नहिं द्रव्य नहिं अवगाहना।
इम पजवा चिर स्थान, द्रव्य नैं अचिर कह्युं अछै॥

७७. सकलगुणोपरमे तु न तद्द्रव्यं न चावगाहनाऽनुवर्त्तते, अनेन पर्यवाणां चिरं स्थानं द्रव्यस्य त्वचिरमित्युक्तम्, (वृ० प० २३७)

७८. संघातन अरु भेद, ए बेहुं करि जे बंध-संबंध जे।
तदनुवर्त्तिनी वेद, नित्यईज छै द्रव्य अद्धा॥

७८. सङ्घातभेदलक्षणाभ्यां धर्माभ्यां यो बन्धः—सम्बन्धस्तदनुवर्त्तिनी—तदनुसारिणी। (वृ० प० २३७)

७९. पिण नहिं गुण नों काल, संघात भेद अद्धा संबद्ध।
संघातादी न्हाल, तो पिण गुण केडै रहै॥

७९. न पुनर्गुणकालः संघातभेदमात्रकालसंबद्धः, सङ्घातादिभावेऽपि गुणानामनुवर्त्तनादिति। (वृ० प० २३७)

८०. खेत्र अनै अवगाण, द्रव्य अनै वलि भाव नां।
स्थानक नीं स्थिति जाण, अल्प बहुत्व इम तेह तणी॥

८१. सर्व थकी अल्प खेत, शेष असंखगुणां कह्या॥
पूर्वे आखी एथ, तसुं संग्रह कर ए कह्युं।

८०,८१. खेत्तोगाहणदव्वे, भावट्ठाणाउयं च अप्प-बहुं।
खेत्ते सव्वत्थोवे, सेसा ठाणा असंखेज्जगुणा॥१॥
(श० ५/१८१ संगहणी-गाहा)

८२. तिण कारण कहिवाय, द्रव्य तणां जे काल थी।
असंखगुणो अधिकाय, भाव स्थान स्थिति नों कह्यो॥

८३. *देश अंक सतावन तणो, ए नेऊमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल॥

*लय : श्रेणिक घर आयां पछै रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ६१

### दूहा

१. पूर्वे आऊखो कह्यु, आयुवंत छै जेह ।
आरंभादि-सहीत छै, डंडक चउवीसेह ।।
२. हे भदंत ! भव-अंत ! प्रभु ! भयांत ! हे भगवान !
आरंभ-सहित स्यूं नारकी, परिग्रह-सहित पिछाण ?
३. अथवा आरंभ-रहित छै, परिग्रह-रहित जगीस ?
इम गोयम पूछे छते, जिन भाखै सुण शीस !

*जय जयकारी वाण जिनेंद्र नी, दीपक देव दिनंदो रे ।
शीतल चंद सरीखा स्वाम जी, जय जश करण जिनंदो रे ।।
(ध्रुपदं)

४. नेरइया आरंभ-परिग्रह-सहित छै, आरंभ-रहित न थायो रे ।
परिग्रह-रहित नहीं छै नारकी, प्रभु ! किण अर्थे ए बायो रे ?

५. जिन कहै नारकी पृथ्वीकाय नैं, आरंभ—पीड पमायो ।
यावत् पीड़ करै तसकाय नैं, हिव निसुणो तसु न्यायो ।।

### सोरठा

६. अव्रत आश्री एह, अथवा मन कर नैं हणै ।
किणहिक काय नैं तेह, पीड़ पमावै वलि हणै ।।

७. *शरीर परिग्रहवंत छै नारकी, तन नीं मूर्छा तासो ।
कर्म परिग्रहवंत छै नेरइया, ग्रहण करी कर्म रासो ।।
८. सचित्त अचित्त वलि मिश्र द्रव्ये करी, परिग्रह-सहित पिछाणो ।
तिण अर्थे करि आरंभ-सहित छै, परिग्रह-सहित सुजाणो ।।

९. प्रभु ! असुरकुमार आरंभ-सहित छै ? पूछा एह वदीतो ।
जिन कहै आरंभ-परिग्रह-सहित छै, नहिं आरंभ-परिग्रह-रहीतो ।।

१०. किण अर्थे ? तब जिन कहै असुर ते, पृथ्वी पीड़ उपावै ।
यावत् त्रस नों पिण आरंभ करै, शरीर परिग्रह थावै ।।

११. कर्म परिग्रहवंत ग्रहण किया, भवन परिग्रहवंतो ।
देव देवी मनुष्य नैं मनुष्यणी, त्यां सूं ममत्व करंतो ।।

१. अनन्तरमायुरुक्तम्, अथायुष्मत आरम्भादिना चतुर्विंशतिदण्डकेन प्ररूपयन्नाह— (वृ० प० २३७)
२. नेरइया णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा ?

३. उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा ?

४. गोयमा ! नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, णो अणारंभा अपरिग्गहा । (श० ५/१८२)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चई—नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा ?
५. गोयमा ! नेरइया णं पुढविकायं समारंभंति, जाव (सं० पा०) तसकायं समारंभंति ।

७. सरीरा परिग्गहिया भवंति, कम्मा परिग्गहिया भवंति ।
८. सचित्ताचित्त-मीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा ।
(श० ५/१८३)

९. असुरकुमारा णं भंते ! किं सारंभा ? पुच्छा ।
गोयमा ! असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा । (श० ५/१८४)
१०. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! असुरकुमारा णं पुढविकायं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति, सरीरा परिग्गहिया भवंति ।
११. कम्मा परिग्गहिया भवंति, भवणा परिग्गहिया भवंति, देवा देवीओ मणुस्सा मणुस्सीओ

*लय : आरंभ करतो जीव संके नहीं ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. तिर्यंचयोनिया वलि तिर्यंचणी, ए पिण परिग्रह मांह्यो।
आसण ते तो छै बेसण तणो, सेज्या शयन कहायो॥
१३. भंड माटी नां भाजन नें कह्या, कांसी-भाजन मत्तो।
उपकरण कुड़छा कडाहा लोह नां, वृत्तिकार इम कहतो॥

१४. सचित्त-अचित्त नें मिश्र द्रव्ये करी, परिग्रहवंत विचारो।
तिण अर्थे आरंभ-सहित असुर कह्या, इम यावत् थणियकुमारो॥

१५. एकेंद्री जिम नरक तणी परै, अव्रत आश्री कहीजे।
बेइंद्री प्रभु! आरंभ-सहित छै, परिग्रह-सहित वदीज?

१६. तिणहिज रीते पाठ भणीजिये, नारक जेम कहावै।
जाव शरीर परिग्रहवंत छै, तन नीं मूर्छा भावै॥
१७. बाहिर भंड मत्त उपकरण ते, उपकरण सरीखा कहायो।
तनु रक्षा अर्थे बेंद्री करै घर ते परिग्रह मांह्यो[1]॥

१८. जिणविध बेइंद्री नें आखियो, इम जाव चउरिंद्रो उदंतो।
तिर्यंच पंचेंद्री नीं पूछा कियां, जाव कर्म परिग्रहवंतो॥

१९. टंक कहीजै छेद्या गिरि भणी, कूट शिखर कहिवायो।
शेल कहीजे मुंड पर्वत भणी, ए पिण परिग्रह मांह्यो॥

२०. शिखरवंत गिरि नें शिखरी कह्यो, कांयक नम्या गिरि देशो।
पाठ पभारा तणो ए अर्थ छै, परिग्रह मांहि कहेसो॥

२१. जल थल बिल नें गुफा कही वलि, गिर कोर्‌या घर लेणा।
पर्वत-शिखर थकी पाणी झरै, तेहनें उज्झर केणा॥

---

१. यह जोड़ जिस पाठ के आधार पर है उसके आगे अंगसुत्ताणि भाग २ में पाठ का कुछ अंश और है—'सचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति'। जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श में यह पाठ नहीं था। अंगसुत्ताणि के पाठान्तर में भी यह सूचना दी गई है कि एक अन्य आदर्श में यह पाठ नहीं मिलता है।

१२. तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ परिग्गहिया भवंति, आसण-सयण-

१३. भंड-मत्तोवगरणा परिग्गहिया भवंति।
इह भाण्डानि—मृन्मयभाजनानि, मात्राणि—कांस्यभाजनानि, उपकरणानि—लौहीकडुच्छुकादीनि,
(वृ० प० २३८)

१४. सचित्ताचित्त-मीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा।
(श० ५/१८५)
एवं जाव थणियकुमारा।

१५. एगिंदिया जहा नेरइया। (श० ५/१८६)
एकेन्द्रियाणां परिग्रहोऽप्रत्याख्यानादवसेयः।
(वृ० प० २३८)
बेइंदिया णं भंते! किं सारंभा सपरिग्गहा?

१६. तं चेव बेइंदिया णं पुढविकायं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति, सरीरा परिग्गहिया भवंति।

१७. बाहिरा भंड-मत्तोवगरणा परिग्गहिया भवंति।
(श० ५/१८७)
उपकारसाधर्म्याद्द्वीन्द्रियाणां शरीररक्षार्थं तत्कृतगृहकादीन्यवसेयानि। (वृ० प० २३८)

१८. एवं जाव चउरिंदिया। (श० ५/१८८)
पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! किं सारंभा सपरिग्गहा? उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा?
तं चेव जाव कम्मा परिग्गहिया भवंति,

१९. टंका कूडा सेला
'टंक' त्ति छिन्नटङ्काः, 'कुड' त्ति कूटानि शिखराणि ...'सेल' त्ति मुण्डपर्वतः।
(वृ० प० २३८)

२०. सिहरी पब्भारा परिग्गहिया भवंति,
'सिहर' त्ति शिखरिणः—शिखरवन्तो गिरयः, 'पब्भार' त्ति ईषदवनता गिरिदेशाः।
(वृ० प० २३८)

२१. जल-थल-बिल-गुह-लेणा परिग्गहिया भवंति।
'लेण' त्ति उत्कीर्णपर्वतगृहाः, 'उज्झर' त्ति अवझरः—पर्वततटादुदकस्याधःपतनं।
(वृ० प० २३८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. णिज्झर नीझरणो ते जल श्रवै, चिल्लल चिक्खल समीलो।
मिश्रोदक स्थान आख्यो वृत्ति में, पल्लल प्रह्लादनशीलो।।

२२. निज्झर-चिल्लल-पल्लल-
'निज्झर' त्ति निर्झर—उदकस्य श्रवणं, 'चिल्लल' त्ति चिक्खलमिश्रोदको जलस्थानविशेषः 'पल्लल' त्ति प्रह्लादनशीलः। (वृ० प० २३८)

२३. केदारवान आकार क्यार्‍यां तणैं, तटवान वा देशो।
अन्य आचार्य क्यार्‍यां इज कहै, ए वप्पिणा अर्थ विशेषो।।

२३. वप्पिणा परिग्गहिया भवंति,
'वप्पिण' त्ति केदारवान् तटवान् वा देशः केदार एवेत्यन्ये। (वृ० प० २३८)

२४. अगड पाठ नों अर्थ कूओ कह्यू, वलि तलाब द्रह जाणी।
नदी अनैं चउखूणी बावड़ी, ए उदक सहित पिछाणी।।

२४. अगड-तडाग-दह-नईओ वावी-
'अगड' त्ति कूपः 'वावि' त्ति वापी चतुरस्रो जलाशयविशेषः। (वृ० प० २३८)

२५. वृत्त वाटली पुष्करणी कही, अथवा कमल सहीतो।
दीहिया पाठ नों अर्थ खंडोखलो[1], परिग्रहवंत प्रतीतो।।

२५. पुक्खरिणी-दीहिया
'पुक्खरिणि' त्ति पुष्करिणी वृत्तः स एव पुष्करवान् वा, 'दीहिय' त्ति सारिण्यः। (वृ० प० २३८)

२६. वक्र नालि नीं वावी गुंजालिका, जल वक्र नालि निसरंतो।
अणखणियो सर आश्रय जल तणुं, वलि ते सर नीं पंतो।।

२६. गुंजालिया सरा सरपंतियाओ,
'गुंजालिय' त्ति वक्रसारिण्यः, 'सर' त्ति सरांसि—स्वयंसंभूतजलाशयविशेषाः। (वृ० प० २३८)

२७. इक सर सेती अन्य सर दूसरो, तेहथी अन्य सर तीजो।
मांहोमांहि पाणी आवतो, ए सर-सर-पंक्ति कहीजो।।

२७. सरसरपंतियाओ
यासु सरःपंक्तिषु एकस्मात्सरसोऽन्यस्मिन्नन्यस्मादन्यत्र एवं संचारकपाटकेनोदकं संचरति ताः सरःसरःपंक्तयः। (वृ० प० २३८)

२८. बिल नीं पंक्ति श्रेण तेणे करी, सर्व प्रकारे सोयो।
तिर्यंच पंचेन्द्री तेहनें ग्रह्या, ते परिग्रह में होयो।।

२८. बिलपंतियाओ परिग्गहियाओ भवंति।

२९. द्राखादिक नां मंडप नें विषे, स्त्री नर रमत आरामो।
पुष्पादि तरु सहित उद्यान ते, परिग्रहवंत तमामो।।

२९. आरामुज्जाण-
आरमन्ति येषु माधवीलतादिषु दम्पत्यादीनि ते आरामाः, 'उद्यानानि' पुष्पादिमद्वृक्षसंकुलानि उत्सवादौ बहुजनभोग्यानि। (वृ० प० २३८)

३०. कानन तरु-सामान्य सहीत ते, नगर नजीक आख्यातो।
वन ते नगर थकी अलगो कह्यो, वन-खंड तरु इक जातो।।

३०. काणणा वणा वणसंडा
काननानि सामान्यवृक्षसंयुक्तानि नगरासन्नानि, वनानि नगरविप्रकृष्टानि, वनषण्डाः—एकजातीयवृक्षसमूहात्मकाः। (वृ० प० २३८)

३१. तरु नीं पंक्ति वनराई कही, देवल सभा पो थूभो।
ऊपर चोड़ी हेठे सांकड़ी, खाई परिग्रह लूभो।।

३१. वणराईओ परिग्गहियाओ भवंति, देवउल-सभ-पव-थूभ-खाइय
'वनराजयो'—वृक्षपंक्तयः 'खातिकाः' उपरिविस्तीर्णाधः सङ्कटखातरूपाः, (वृ० प० २३८)

३२. हेठे ऊपर सम परिखा कही, ते पिण परिग्रहवंतो।
वलि प्रागार कह्यो छै गढ भणी, बुरज अटालग हुंतो।।

३२. परिखाओ परिग्गहियाओ भवंति, पागार-अट्टालग
परिखाः अधः उपरि च समखातरूपाः, 'अट्टालग' त्ति प्राकारोपर्याश्रयविशेषाः, (वृ० प० २३८)

३३. गढ घर बिच जे गजादि गमन नों, मारग चरिय कहंतो।
दार कहीजै जे खिड़की भणी, गोपुर दरवज्जा हुंतो।।

३३. चरिय-दार-गोपुरा परिग्गहिया भवंति,
'चरिका' गृहप्राकारान्तरो हस्त्यादिप्रचारमार्गः, द्वारं खडक्किका, 'गोपुरं' नगरप्रतोली, (वृ० प० २३८)

१. बावड़ी विशेष।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. रायभवन प्रासाद कहीजियै, वलि अति उच्च प्रासादो ।
घर जे कहियै गृह सामान्य ए, तथा जन सामान्य नो लाधो ।

३५. सरण कहीजै तृणमय घर तसुं, लेण उपाश्रय जोयो ।
आपण नाम जे हाट तणो अछै, ए परिग्रहवंतज होयो ।।

३६. सिंघोडा नैं आकारे स्थान ते, त्रिक त्रिण पंथ मिलंतो ।
चउक्क कहीजै पंथ मिले चिहुं, चच्चर मिलै बहु पंथो ।।

३७. चउमुह देवकुलादि चतुर्मुख, राजमार्ग महापंथो ।
वलि सामान्य मार्ग नैं पथ कह्यु, तिण करि परिग्रहवंतो ।।

३८. सकट गाडला रथ वलि जाण ते, जुग गोल देश में प्रसीधो ।
अंबावाडी तेह गिल्ले कही, थिल्लि पलाणज सीधो ।।

३९. कूट आकारे आच्छादित हुवै, शिबिका कहियै तासो ।
वलि संदमाणी कही छै पालखी, ते परिग्रहवंत विमासो ।।

४०. लोही फलका पचावण नीं तवो, लोहकडाहा जोयो ।
कुडछी भोजन परूसण नीं कही, ते परिग्रहवंत होयो ।।

४१. भवनपती नां भवन परिग्रह, वले देव नैं देवी ।
मनुष्य मनुष्यणी तिर्यंच तिर्यंचणी, आसन शयन सुवेवी ।।

४२. थंभ भंड वलि सचित्त अचित्त कह्या, मिश्र द्रव्य करि जेहो ।
परिग्रहवंत हुवै तिरि पंचेंद्री, तिण अर्थे कह्यूं एहो ।।

४३. जिम तिर्यंच कह्या छै तिण विधे, भणवा मनुष्य पिछाणो ।
व्यंतर जोतिषि वैमानिक वलि, भवनपती तिम जाणो ।।

**सोरठा**

४४. कह्या नरकादि सधीक, ते छद्मस्थपणैं करी ।
हेतू व्यवहारीक, ते माटै हेतू हिवै ।।

४५. *हेतू पंच जिनेश्वर आखिया, इहां वर्त्तै हेतू मांह्यो ।
पुरुष तिको पिण हेतू ईज छै, अन्य उपयोग न ताह्यो ।।

४६. क्रिया भेद थी वलि हेतू तणां, आख्या पंच प्रकारो ।
जाणण देखण प्रमुख क्रिया कही, ए भेद क्रिया नां विचारो ।।

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं

३४. पासाद-घर-
प्रासादा देवानां राज्ञां च भवनानि, अथवा उत्सेध-बहुलाः—प्रासादाः, 'घर' त्ति गृहाणि सामान्यजनानां सामान्यानि वा । (वृ० प० २३८)

३५. सरण-लेण-आवणा परिग्गहिया भवंति,
'शरणानि' तृणमयावसरिकादीनि 'आपणा' हट्टाः, (वृ० प० २३८)

३६. सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-

३७. चउम्मुह-महापह-पहा परिग्गहिया भवंति, ।
चतुर्मुखं—चतुर्मुखदेवकुलकादि 'महापह' त्ति राजमार्गः, (वृ० श० २३८)

३८. सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-

३९. सीय-संदमाणियाओ परिग्गहियाओ भवंति,

४०. लोही-लोहकडाह-कडुच्छया परिग्गहिया भवंति,
'लोहि' मण्डकादिपचनिका, 'लोहकडाहि' त्ति कवेल्ली, 'कडुच्छुय' त्ति परिवेषणाद्यर्थो भाजनविशेषः । (वृ० प० २३८)

४१. भवणा परिग्गहिया भवंति, देवा देवीओ मणुस्सा । मणुस्सीओ तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ परिग्गहिया भवंति, आसण-सयण-
'भवण' त्ति भवनपतिनिवासः । (वृ० प० २३८)

४२. खंभ-भंड-सचित्ताचित्त-मीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति । से तेणट्ठेणं । (श० ५/१८९)

४३. जहा तिरिक्खजोणिया तहा मणुस्सा वि भाणियव्वा । वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा भवणवासी तहा नेयव्वा । (श० ५/१९०)

४४. एते च नारकादयश्छद्मस्थत्वेन हेतुव्यवहारकत्वाद्धेतव उच्यन्ते इति तद्भेदान्निरूपयन्नाह—
(वृ० प० २३८)

४५. पंच हेऊ पण्णत्ता,
इह हेतुषु वर्तमानः पुरुषो हेतुरेव तदुपयोगानन्यत्वात्, (वृ० प० २३९)

४६. पञ्चविधत्वं चास्य क्रियाभेदादित्यत आह—



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. हेतू प्रति जाणें तसु न्याय ए, साध्यज अविनाभूतो।
ते साध्यज निश्चय अर्थ हेतू प्रतै, जाणै ए धुर सूतो।।

**सोरठा**

४८. एह विशेष थकीज, जाणै ज्ञान विशेष है।
सम्यक्पणैं लहीज, सम्यक्दृष्टिपणां थकी।।

४९. एह पंचविध पेख, सम्यग्दृष्टी जाणवा।
ते माटै सुविशेख, पांचू विध सम्यक्पणैं।।

५०. मिथ्यादृष्टी तास, धुर बे सूत्र कह्या पछी।
आगल कहिस्यै जास, एक भेद ए आखियो।।

५१. *इमज हेतू प्रति देखे वलि, सामान्य थी कहिवायो।
दर्शन नों उपयोग सामान्य छै, ए दूजो भेद बतायो।

५२. इमहिज हेतू प्रति जे बुज्झती, सम्यक् शुद्ध श्रद्धंतो।
बोध शब्द शुद्ध श्रद्धा तणो, पर्यायपणां थी हुंतो।।

५३. तूर्यं भेद इम हेतू प्रति लहै, साध्य सिद्ध सुविचारो।
बिहुं व्यापरण थकी सम्यक्पणैं, पामै अर्थ उदारो।।

५४. हेतू अध्यवसानादिक अछै, ते कारण कहिवायो।
तेहनां योग्य थकी मरण नैं, हेतू कहियै ताह्यो।।

५५. इण कारण थी हेतुमान ते, छद्मस्थ-मरण मरंतो।
इहां मरण केवली अनाणी नों नहीं, ए समदृष्टि मरण मरंतो।।

**सोरठा**

५६. छद्मस्थ हेतू युक्त, पुरुष जेह प्रवर्त्ततो।
छद्मस्थ मरै इत्युक्त, पिण नहिं छै ए केवली।।

५७. हेतू में वर्त्तमान, केवलज्ञानी नहिं मरै।
तिण कारण पहिछान, छद्मस्थ मरण कह्यो इहां।।

५८. अहेतु केवलज्ञान, ते माटै जे केवली।
अहेतुक पहिछान, तिण सूं हेतू ते नहीं।।

५९. नहिं ए मरण अज्ञान, ए समदृष्टिपणां थको।
मरण अज्ञान पिछाण, कहिस्यै आगल तेहनैं।।

६०. तिणसूं मरणज एह, केवलज्ञानी नों नहीं।
अनाण पिण न कहेह, ए पंचम हेतू कह्यो।।

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं

४७. हेउं जाणइ,
'हेउं जाणइ' त्ति हेतुं साध्याविनाभूतं साध्यनिश्चयार्थं जानाति— (वृ० प० २३९)

४८. विशेषतः सम्यगवगच्छति सम्यग्दृष्टित्वात्, (वृ० प० २३९)

४९. अयं पञ्चविधोऽपि सम्यग्दृष्टिर्मन्तव्यः (वृ० प० २३९)

५०. मिथ्यादृष्टेः सूत्रद्वयात्परतो वक्ष्यमाणत्वादित्येकः, (वृ० प० २३९)

५१. हेउं पासइ,
एवं हेतुं पश्यति सामान्यत एवावबोधादिति द्वितीयः, (वृ० प० २३९)

५२. हेउं बुज्झइ,
एवं 'बुध्यते' सम्यक् श्रद्धत्त इति बोधेः सम्यक्श्रद्धानपर्यायत्वादिति। (वृ० प० २३९)

५३. हेउं अभिसमागच्छइ,
तथा हेतुं 'अभिसमागच्छति' साध्यसिद्धौ व्यापारणतः सम्यक् प्राप्नोतीति चतुर्थः। (वृ० प० २३९)

५४. हेउं छउमत्थमरणं मरइ। (श० ५/१९१)
हेतुः—अध्यवसानादिर्मरणकारणं तद्योगान्मरणमपि हेतुः, (वृ० प० २३९)

५५. अतस्तं हेतुमदित्यर्थः छदमस्थमरणं, न केवलिमरणं, (वृ० प० २३९)

५८. तस्याहेतुकत्वात्, (वृ० प० २३९)

५९. नाप्यज्ञानमरणमेतस्य सम्यग्ज्ञानित्वात् अज्ञानमरणस्य च वक्ष्यमाणत्वात् (वृ० प० २३९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. प्रथम आलावे एह. हेतू पुरुष भणी कह्या ।
आगल चिह्न कहेह, ते पिण ए समदृष्टि नां ।।

६२. *हेतू कारण पंच परूपिया, हेतू चिह्न करि जाणैं ।
धूम्र चिह्न करि जाणै अग्नि नैं, जिम ए तत्त्व पिछाणैं ।।

६३. हेतू कारण करि देखै वलि, हेतू करि सरधायो ।
हेतू चिह्न करीनैं ते वलि, भव-निस्तरण सुपायो ।।

६४. अध्यवसानादि प्रमुख हेतू करी. छद्मस्थ-मरण मरंतो ।
ए समदृष्टि हेतू न्याय थो, जाणैं देखै सरधंतो ।।

६२-६४. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउणा जाणइ जाव हेउणा छउमत्थमरणं मरइ । (श० ५/१६२)

## सोरठा

६५. समदृष्टी नां एह, बे आलावा आखिया ।
मिथ्यादृष्टी जेह, बे आलावा तास हिव ।।

६६. *हेतू पंच जिनेश्वर भाखिया, हेतू चिह्न न जानैं ।
समदृष्टी जाणैं हेतू चिह्न नैं, तेहवा ए न पिछानैं ।।

६७. हेतू चिह्न प्रति देखै नहीं, इमहिज नहिं सरधायो ।
भव-निस्तरण कारण पामैं नहीं, समदृष्टी जिम ताह्यो ।।

६८. अध्यवसानादि हेतू युक्त ते, अज्ञान-मरण मरंतो ।
ए मिथ्याती शुद्ध श्रद्धा तणां, चिह्न प्रतै न जानंतो ।।

६६-६८. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउं ण जाणइ जाव हेउं अण्णाणमरणं मरइ । (श० ५/१६३)
तत्र 'हेतुं' लिङ्गं न जानाति, नञः कुत्सार्थत्वाद-सम्यगवैति मिथ्यादृष्टित्वात्, एवं न पश्यति, एवं न बुध्यते, एवं नाभिसमागच्छति तथा 'हेतुम्' अध्यव-सानादिहेतुयुक्तमज्ञानमरणं म्रियते ।
(वृ० प० २३६)

६९. हेतू कारण पंच परूपिया, अनुमानादिक जोयो ।
तिण करि भाव यथातथ छै तिकै, ए जाणै नहिं कोयो ।।

७०. अनुमानादिक जे हेतू करी, यथातथ नहिं देखै ।
इम हेतू करि भाव यथातथ, श्रद्धै नहीं विशेखै ।।

७१. इम अनुमानादिक हेतू करि, भव-निस्तरण न पामै ।
अध्यवसानादि जे हेतू करि मरै मरण अज्ञान अकामै ।।

६९-७१. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउणा ण जाणइ जाव हेउणा अण्णाणमरणं मरइ । (श० ५/१६४)

७२. विपरीत जाणै विपरीत देखतो, विपरीत श्रद्धै पामै ।
बिहुं आलावे करीनैं छै इहां, मरै मरण अज्ञान अकामै ।।

## सोरठा

७३. पूर्वे बे आलाव, आख्या मिथ्याती तणां ।
हिवै केवलो भाव, बे आलावा तेहनां ।।

७४. हेतू विपक्षभूत, अहेतू ते केवली ।
प्रत्यक्षज्ञानी सूत, कह्या अहेतू ते भणी ।।

७५. *पंच अहेतू प्रभु परूपिया, अहेतू प्रति जानंतो ।
धूम्रादिक ए हेतू मांहरैं, इहविध नहि मानंतो ।।

७६. अहेतूभूत ते प्रति जाणतो, अहेतूज कहीजै ।
इमहिज देखै श्रद्धै पामियै, केवलो-मरण लहीजै ।।

७५,७६. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउं जाणइ जाव अहेउं केवलिमरणं मरइ । (श० ५/१६५)

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. पंच अहेतू प्रभु परूपिया, अहेतू करि जाणै।
जाव अहेतू करिनें केवली-मरण चरम गुणठाणै।।

७८. पंचम 'ठाणा' वृत्ति थकी इहां, अर्थ दोय आलावा नों आख्यो।
हिवै भगवती वृत्ति टबै कह्यु, आगल ते अभिलाख्यो।।

७९. प्रथम आलावा नों अर्थ कियो इसो, अहेतुभाव करि जाणै।
अनुमान विना धूम्रादिक जाणता, तिण सूं तेह अहेतु प्रमाणं।।

## दूहा

८०. सर्व वस्तु हेतू विना, जाणै केवलनाण।
तिण सूं सगली वस्तु ते, तास अहेतू जाण।।

८१. *इमहिज अहेतु प्रति देखै सही, जाव अहेतू तेहो।
केवलीमरण मरै हेतू विना, नोपक्रमी गुणगेहो।।

८२. पंच अहेतू प्रभू परूपिया, तिणहिज विध सुविशेखै।
णवरं जाणै अहेतू करी, अहेतू करि देखै।।

८३. श्रद्धै पामै अहेतू करी, केवली-मरण मरंतो।
उपक्रम रहितपणें ते केवली-मरण मरै गुणवंतो।।

८४. "बिहुं आलावा रो अर्थ टीका मझे, कीधो छै इण रीतो।
बडा टबा में अर्थ कियो इसो, ते सांभलज्यो धर प्रीतो।।

८५. प्रथम आलावा नों अर्थ कियो इसो, अहेतुभाव करि जाणें।
सर्वज्ञ भाव करि जाणै तिके, पिण अनुमानै नहिं माणें।।

८६. प्रत्यक्ष ज्ञानपणां थी केवली, अहेतू पाठ नों ताह्यो।
कारण अर्थ इहां करिवूं नहीं, अहेतू केवली कहायो।।

८७. ते केवलज्ञानी अहेतू थका, केवलज्ञान करि जोयो।
तेह विशेष करी जाणै अछै, ज्ञान विशेषज होयो।।

८८. ते केवलज्ञानी अहेतू थका, केवल दर्शण करि जोयो।
तेह सामान्य करि देखे अछै, दर्शण सामान्य होयो।।

८९. ते केवलज्ञानी अहेतू थका, क्षायक-सम्यक्त्व शुद्धो।
तिण करि श्रद्धै सगला भाव नें, मोह रहित अविरुद्धो।।

९०. हेतू जे अनुमानादिक तणी, वांछा रहित विचारो।
केवलज्ञानी क्रिया आदरै, ए चोथो अहेतू सारो।

९१. वलि हेतू नीं वांछा रहित ते, केवली मरण मरंता।
प्रथम आलावा नों बडा टबा मझे, इह विध अर्थ करंता।।

९२. द्वितीय आलावा नों अर्थ हिवै कहूं, अहेतू केवली अतीवो।
हेतू रहितपणें सुविशेष थी, ते जाणै जीव अजीवो।।

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं

---

७७. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउणा जाणइ जाव अहेउणा केवलिमरणं मरइ। (ठा० ५/१९९)

७८. (ठाणं वृ० प० २९५)

७९. अहेतुं—न हेतुभावेन सर्वज्ञत्वेनानुमानानपेक्षत्वाद्धूमादिकं जानाति स्वस्यानानुमानोत्थापकतयेत्यर्थः। (वृ० प० २३९)

८१. एवं पश्यतीत्यादि, तथा 'अहेतुं केवलिमरणं मरइ' त्ति 'अहेतुं' निर्हेतुकं अनुपक्रमत्वात् केवलिमरणं म्रियते। (वृ० प० २३९)

८२. पंचेत्यादि तथैव नवरम् 'अहेतुना' हेत्वभावेन केवलित्वाज्जानाति योऽसावहेतुरेव, एवं पश्यतीत्यादयोऽपि। (वृ० प० २३९)

८३. 'अहेतुना' उपक्रमाभावेन केवलिमरणं म्रियते। (वृ० प० २३९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. वलि हेतू रहितपणैं ते केवली, सामान्यपणै करि देखै ।
हेतू रहितपणै ते केवली, प्रमाण करि सुविशेखै ।।

९४. हेतू रहितपणै क्रिया करै, जिन हेतू रहित मरंता ।
द्वितीय आलावा नों बडा टबा मफे, इहविध अर्थ करंता" ।।

[ज० स०]

दूहा

९५. केवली अहेतू कह्या, वले अहेतू सार ।
अतिसयज्ञानी अवधिधर, ते आश्री अधिकार ।।

९६. *पंच अहेतू प्रभू परूपिया, अहेतु प्रति नहिं जाणैं ।
धूम्रादिक छै जे हेतु प्रतै, अहेतुभाव करि न माणैं ।।

९७. न जाणै आख्यूं ते सर्व प्रकार थी, पिण देश थकी जाणंतो ।
अनुमान विना पिण जाणै देश थी, ए अतिशयज्ञानी अत्यंतो ।।

९८. इमहिज धूम्रादिक हेतु प्रति, अहेतुभाव करि ज्यांही ।
सर्व प्रकारे ते देखै नहीं, इमहिज श्रद्धै नांही ।।

९९. इमहिज सर्व प्रकार पामै नहीं, अहेतू करि ताह्यो ।
निरुपक्रम छद्मस्थ-मरण मरै, ए पंचम हेतु कहायो ।।

१००. पंच अहेतू प्रभू परूपिया, अहेतू करि एहो ।
सर्व प्रकारे ते जाणै नहीं, जाणै अधूरूं तेहो ।।

१०१. इमज अहेतू करिनैं सर्वथा, देखै श्रद्धै नांह्यो ।
सर्व प्रकारै पिण पामै नहीं, छद्मस्थ-मरण कहायो ।।

१०२. एह अकेवली ते भणो इम कह्यु, छद्मस्थ-मरण मरंतो ।
मरण अज्ञान मरै इम नहिं कह्यो, अवधि ज्ञानादिकवंतो ।।

१०३. ए अठ सूत्र कह्या संक्षेप थी, वलि जाणै बहुश्रुत न्यायो ।
भावार्थ तसु भेद अछै घणां, तिण सूं खांच न करणी कायो ।।

१०४. सेवं भंते ! सत्तावन अंक ए, एकाणूमो ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद थी, 'जय-जश' मंगलमालो ।।

९६-९९. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउं न जाणइ जाव अहेउं छउमत्थमरणं मरइ । (श० ५/१९७)

१००,१०१. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउणा न जाणइ जाव अहेउणा छउमत्थमरणं मरइ । (श० ५/१९८)

१०२. छद्मस्थमरणमकेवलित्वात् न त्वज्ञानमरणमवध्यादिज्ञानवत्त्वेन ज्ञानित्वात्तस्येति । (वृ० प० २३९)

१०३. गमनिकामात्रमेवेदमष्टानामप्येषां सूत्राणां, भावार्थं तु बहुश्रुता विदन्तीति । (वृ० प० २३९)

१०४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५/१९९)

**पंचमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।५।७।।**

---

*लय : आरंभ करतो जीव संकै नहीं



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ९२

### दूहा

१. पुद्गल स्थिति थकी कह्या, सप्तम प्रवर उदेश ।
अष्टम वलि तेहीज छै, प्रदेश थी सुविशेष ।।
२. तिण काले नें तिण समय, यावत परषद जेह ।
वीर तणी वाणी सुणी, गई आपणैं गेह ।।
३. तिण काले नें तिण समय, तपसी श्रमण जगीस ।
भगवंत श्री महावीर नों, अंतेवासी शीस ।।
४. नारद-पुत्र नामै मुनि, प्रकृति भद्र पुनीत ।
यावत आतम भावता, विचरै ध्यान सहीत ।।
५. तिण काले नें तिण समय, श्रमण तपी जगदीश ।
भगवंत श्री महावीर नों, अंतेवासी शीस ।।
६. निर्ग्रंथी-सुत नाम तसुं, भद्र स्वभावे भाल ।
यावत विचरै चरण तप, महामुनी गुणमाल ।।

७. *हिवै तिण अवसर ते, निग्रंथी-पुत्र नाम ।
जिहां नारद-पुत्र मुनि, तिहां आया छै ताम ।।
८. हिवै नारद-पुत्र मुनि, तेह प्रते तिणवार ।
इह विध कर कहितो, पूछै प्रश्न प्रकार ।।
९. सहु पुद्गल तुझ मते, हे आर्य ! अर्द्ध-सहीत ।
कै मध्य-सहित छै, प्रदेश-सहित कथीत ।।
१०. तथा अर्द्ध-सहित छै, मध्य-रहित कहिवाय ।
प्रदेश-रहित छै ? ए षट प्रश्न पूछाय ।।
११. अहो आर्य ! इम कहो, नारद-पुत्र मुनिराय ।
निर्ग्रंथी-पुत्र प्रतैं, बोलै एहवी वाय ।।
१२. सहु पुद्गल मुझ मते, हे आर्य ! अर्द्ध-सहीत ।
मध्य-सहित छै, प्रदेश-सहित वदीत ।।
१३. पिण अर्द्ध-रहित नहीं, मध्य-रहित पिण नांय ।
प्रदेश-रहित नहीं, उत्तर इम देवाय ।।
१४. तब निर्ग्रंथी-पुत्र मुनि, नारद-पुत्र प्रतै वाय ।
इह विध वलि कहितो, सांभल तूं मुनिराय !
१५. सहु पुद्गल तुझ मते, हे आर्य ! अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित छै, प्रदेश-सहित वदीत ।।
१६. पिण अर्द्ध-रहित नहीं, मध्य-रहित पिण नांहि ।
प्रदेश-रहित नहीं, इम तूं कहै छै ताहि ।।

---

१. सप्तमे उद्देशके पुद्गलाः स्थितितो निरूपिताः, अष्टमे तु त एव प्रदेशतो निरूप्यन्ते, (वृ० प० २४०)
२. तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव परिसा पडिगया । (श० ५।२००)
३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी
४. नारयपुत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विहरति ।
५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी
६. नियंठिपुत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विहरति ।
७. तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे जेणामेव नारयपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ,
८. उवागच्छित्ता नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी—
९. सव्वपोग्गला ते अज्जो ! किं सअड्ढा समज्झा सपएसा ?
१०. उदाहु अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?
११. अज्जो ! त्ति नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी—
१२. सव्वपोग्गला मे अज्जो ! सअड्ढा समज्झा सपएसा,
१३. नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा । (श० ५।२०१)
१४. तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी—
१५. जइ णं ते अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा, समज्झा सपएसा,
१६. नो अणड्ढा, अमज्झा अपएसा,

---

*लय : नमूं अनंत चौबीसी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. तो परमाणु प्रमुख, द्रव्य आश्री अवलोय ।
स्यूं सगला पुद्गल, अर्द्ध-सहित ए होय ?

१७. कि—दव्वादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा
'दव्वादेसेणं' ति·········परमाणुत्वाद्याश्रित्येति ।
(वृ० प० २४१)

१८. वलि सगला पुद्गल, मध्य-सहित स्यूं थाय ?
प्रदेश-सहित छै, पुद्गल द्रव्य थी ताय ।।

१८. समज्झा सपएसा,

१९. कै अर्द्ध-रहित नहीं, मध्य-रहित पिण नांहि ।
प्रदेश-रहित नहीं, पुद्गल द्रव्य थी ताहि ?

१९. नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२०. इक प्रदेश प्रमुख, अवगाही रह्या जेह ।
ए खेत्र आश्रयी, पुद्गल सगला तेह ।।

२०. खेत्तादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला
'खेत्तादेसेणं' ति एकप्रदेशावगाढत्वादिनेत्यर्थः
(वृ० प० २४१)

२१. स्यूं अर्द्ध-सहित छै, मध्य-सहित छै सोइ ।
प्रदेश-सहित छै, तिमहिज रहित तीनोंइ ?

२१. सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२२. एकादि समय स्थिति, काल आश्री अवलोय ।
सगलाई पुद्गल, अर्द्ध-सहित स्यूं होय ?

२२. कालादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा,
'कालादेसेणं' ति एकादिसमयस्थितिकत्वेन
(वृ० प० २४१)

२३. कै मध्य-सहित छै, कै प्रदेश-सहीत ।
कै अर्द्ध-रहित नहिं, नहिं मध्य-प्रदेश-रहीत ?

२३. समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२४. इक गुण कालादिक, भाव आश्री अवलोय ।
सगलाई पुद्गल, अर्द्ध-सहित स्यूं होय ।।

२४. भावादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा
'भावादेसेणं' ति एकगुणकालकत्वादिना
(वृ० प० २४१)

२५. कै मध्य-सहित छै, कै प्रदेश-सहीत ।
कै अर्द्ध-रहित नहिं, नहिं मध्य-प्रदेश-रहीत ?

२५. समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?

२६. तब नारद-पुत्र मुनि, निर्ग्रंथी-पुत्र सार ।
ते प्रति इम बोल्यो, सांभल आर्य ! उदार ।।

२६. तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

२७. द्रव्य थी पिण मुझ मते, सहु पुद्गल ए रीत ।
कांइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

२७. दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

२८. पिण अर्द्ध-रहित नहीं, मध्य-रहित नहीं तेम ।
प्रदेश-रहित नहीं, खेत्र थकी पिण एम ।।

२८. नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा,
खेत्तादेसेण वि,

२९. इमहिज काल थी, भाव थकी पिण तेम ।
तब निर्ग्रंथी-सुत, कहै नारद-पुत्र नें एम ।।

२९. कालादेसेण वि, भावादेसेण वि । (श० ५।२०२)
तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

३०. जो आर्य ! द्रव्य थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
कांइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

३०. जइ णं अज्जो ! दव्वादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

३१. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

३१. नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा,

३२. परमाणु-पुद्गल, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहित कथीत ।।

३२. एवं ते परमाणुपोग्गले वि सअड्ढे समज्झे सपएसे,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहीं, तुझ मते इम होय ।।

३३. नो अणड्ढे अमज्झे अपएसे ।

३४. जो आर्य ! खेत्र थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
कांइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

३४. जइ णं अज्जो ! खेत्तादेसेण वि सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

३५. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

३६. इक प्रदेश ओगाह्या, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहित कथीत ।।

३६. एवं ते एगपएसोगाढे वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ।

३७. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहीं, तुझ मते इम होय ।।

३८. जो आर्य ! काल थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
कांइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

३८. जइ णं अज्जो ! कालादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

३९. पिण-अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

४०. इक समय स्थिति द्रव्य, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वले मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहित कथीत ।।

४०. एवं ते एगसमयट्ठितीए वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ।

४१. पिण अर्द्ध-रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहीं, तुझ मते इम होय ।।

४२. जो आर्य ! भाव थी, पुद्गल सर्व वदीत ।
कांइ अर्द्ध-सहित छै, मध्य-प्रदेश-सहीत ।।

४२. जइ णं अज्जो ! भावादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा,

४३. पिण अर्द्ध रहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहिं, तो तुझ मते इम होय ।।

४४. इक गुण कालो पिण, ते पिण अर्द्ध-सहीत ।
वलि मध्य-सहित ते, प्रदेश-सहीत कथीत ।।

४४. एवं ते एगगुणकालए वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ।

४५. पिण अर्द्धरहित नहिं, मध्य-रहित नहिं कोय ।
प्रदेश-रहित नहीं, तुझ मते इम होय ।।

४६. अथ ते इम न हुवै, जो तूं कहिसी इण रीत ।
द्रव्य थी सहु पुद्गल छै अर्द्धादि-सहीत ।।

४६. अह ते एवं न भवति तो जं वयसि 'दव्वादेसेणं वि सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा, अमज्झा अपएसा,

४७. इम खेत्र थकी पिण, काल थकी पिण एम ।
इम भाव थकी पिण, ते मिथ्या वच तेम ।।

४७. एवं खेत्तादेसेण वि, कालादेसेण वि, भावादेसेण वि' तं णं मिच्छा । (श० ५।२०३)

४८. तब नारद-पुत्र मुनि, निर्ग्रंथी-सुत सार ।
ते प्रति इम बोल्यो, सरलपणे सुखकार ।।

४८. तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी -

४९. हे देवानुप्रिया ! इम निश्चे करिनैं ताहि ।
ए अर्थ न जाणूं, अम्हे देखूं पिण नांहि ।।

४९. नो खलु एवं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो-पासामो ।

५०. अहो देवानुप्रिया ! जो तुझ कहितां सोय ।
तनु-खेद न होवै तो वांछूं इम जोय ।।

५०. जइ णं देवाणुप्पिया नो गिलायंति परिकहित्तए, तं इच्छामि णं

५१. देवानुप्रिया पे, पूर्वे आख्या भावो ।
सुणी हृदय विषे ते, जाणवा समर्थ थावो ।।

५१. देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाणित्तए । (श० ५।२०४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. तब निर्ग्रंथी-सुत, नारद-पुत्र अणगार ।
ते प्रति इम बोल्यो, वारू वचन विचार ।।
५३. अहो आर्य ! सांभल, द्रव्य थकी पहिछाण ।
सगलाई पुद्गल, म्हारे मते इम जाण ।।
५४. प्रदेश-सहित पिण, वलि प्रदेश-रहीत ।
बिहुं कह्या अनंता, पुद्गल द्रव्य वदीत ।।
५५. इम खेत्र थकी पिण, काल थकी सुवदीत ।
इम भाव थकी पिण, प्रदेश सहित रहीत ।।

५६. *जे द्विप्रदेशिक खंध प्रमुख, प्रदेश-सहीत पिछाणियै ।
प्रदेश-रहित परमाणु ते पिण, द्रव्य अनंता जाणियै ।।
५७. आकाश नां ते बे प्रदेशज, प्रमुख ऊपर जे रह्या ।
प्रदेश-सहितज खेत्र थी ए, अनंता पुद्गल कह्या ।।
५८. आकाश नों परदेश जे इक, तेह अवगाही रह्या ।
प्रदेश-रहित ए खेत्र थी, अनंता पुद्गल कह्या ।।
५९. बे समय प्रमुखज स्थिति नां जे, सप्रदेशी जाणियै ।
इक समय स्थिति नां अप्रदेशी, काल थी पहिछाणियै ।।
६०. गुण दोय आदि कृष्णादि कहियै, सप्रदेशी न्याव थी ।
जे एक गुण कालादि वर्णे, अप्रदेशी भाव थी ।।
६१. हिवै द्रव्य जे अप्रदेशिक, खेत्र काल रु भाव थी ।
अप्रदेशादिकपणां प्रति, निरूपण ओछाव थी ।।

६२. †जे द्रव्य थकी छै, अप्रदेशी सुविशेषि ।
ते खेत्र थकी पिण, निश्चेई अप्रदेशि ।।
६३. ते काल थकी पिण, हुवै कदा सप्रदेशि ।
वलि हुवै किंवारै, अप्रदेशि सुविशेषि ।।
६४. ते भाव थकी पिण, हुवै कदा सप्रदेशि ।
वलि हुवै किंवारे, अप्रदेशि सुविशेषि ।।

६५. *जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल नैं कह्यु ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि निश्चै, एक परदेशे रह्यु ।।
६६. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल नैं कह्यु ।
ते काल थी सप्रदेशि, बे समयादि स्थितिकपणुं लह्यु ।।
६७. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल नैं कह्यु ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणुं लह्यु ।।
६८. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल प्रति लहै ।
ते भाव थी सप्रदेशि इम, बे आदि गुण कृष्णादि है ।।

*लय : पूज मोटा भांजै टोटा
†लय : नमूं अनन्त चौबीसी

५२. तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी—
५३. दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वे पोग्गला
५४. सपएसा वि, अप्पएसा वि—अणंता ।
५५. खेत्तादेसेण वि एवं चेव कालादेसेण वि भावादेसेण वि एवं चेव । (सं० पा०)

६२. जे दव्वओ अपएसे से खेत्तओ नियमा अपएसे,
६३. कालओ सिय सपएसे सिय अपएसे,
६४. भावओ सिय सपएसे सिय अपएसे ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६९. जे द्रव्य थी अप्रदेशि ए, परमाणु-पुद्गल प्रति लहै ।
ते भाव थी अप्रदेशि इम गुण, एक कृष्णादिक रहै ।।

७०. *जे खेत्र थकी छै, अप्रदेशि सुविशेषि ।
ते द्रव्य थकी सिय, सप्रदेशि अप्रदेशि ।।
७१. भजनाज काल थी, भाव थी भजना होय ।
जिम खेत्र थकी तिम, काल भाव थी जोय ।।

७०. जे खेत्तओ अपएसे से दव्वओ सिय सपएसे सिय अपएसे,
७१. कालओ भयणाए, भावओ भयणाए ।
जहा खेत्तओ एवं कालओ, भावओ ।

७२. †जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।
ते द्रव्य थी सिय सप्रदेशी, खंध द्रव्य भणी कह्यु ।।
७३. जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।
ते द्रव्य थी सिय अप्रदेशी, एह परमाणू कह्यु ।।
७४. जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणुं लह्यु ।।
७५. जे खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।
ते काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणुं लह्यु ।।
७६. जे क्षेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।
ते भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक लह्यु ।।
७७. जे क्षेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।
ते भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादिक लह्यु ।।

७८. *जिम खेत्र थकी जे, आख्यो छै विरतंत ।
इम काल थकी छै, भाव थकी पिण हुंत ।।

७९. †जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें रह्यु ।
ते द्रव्य थी सिय सप्रदेशि, द्रव्य खंध भणी कह्यु ।।
८०. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें रह्यु ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि छै, परमाणु-पुद्गल नें कह्यु ।।
८१. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें रह्यु ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि इम, बे आदि परदेशे कह्यु ।।
८२. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें कह्यु ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्यु ।।
८३. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें रह्यु ।
ते भाव थी सप्रदेशि बे गुण कृष्ण नीलादिक कह्यु ।।
८४. जे काल थी अप्रदेशि छै, इक समय स्थितिकपणें रह्यु ।
ते भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी कह्यु ।।
८५. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी रह्यु ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि छै इम, खंध द्रव्य भणी कह्यु ।।

---

*लय : नमूं अनन्त चोबीसी

†लय : पूज मोटा भांजे......



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी रह्या ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि छै, परमाणु-पुद्गल नैं कह्या ।।
८७. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी कह्या ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि इम, बे आदि परदेशे रह्या ।।
८८. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादी कह्या ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्या ।।
८९. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादिक रह्या ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणुं लह्या ।
९०. जे भाव थी अप्रदेशि इक गुण कृष्ण नीलादिक रह्या ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणुं लह्या ।।

९१. *जे द्रव्य थकी छै, सप्रदेशि सुविशेषि ।
ए खेत्र थकी सिय सप्रदेशि अप्रदेशि ।।
९२. इम काल थकी पिण, भाव थकी पिण एम ।
हिव जूजुओ निर्णय, सांभलजो धर प्रेम ।।

९१. जे दव्वओ सपएसे से खेत्तओ सिय सपएसे सिय अपएसे ।
९२. एवं कालओ, भावओ वि ।

९३. †जे द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नैं कह्या ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि इम, बे आदि परदेशे रह्या ।।
९४. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नैं कह्या ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्या ।।
९५. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नैं कह्या ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणुं लह्या ।।
९६. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नैं कह्या ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणुं लह्या ।।
९७. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नैं कह्या ।
ते भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।।
९८. जे द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नैं कह्या ।
भाव थी अप्रदेशि इम गुण एक कृष्णादिक रह्या ।।

९९. *जे खेत्र थकी छै, सप्रदेशि सुविशेषि ।
ते द्रव्य थी कहियै, निश्चेई सप्रदेशि ।।
१००. वलि काल थी भजना, भाव थि भजना होय ।
जिम द्रव्य थकी तिम, काल भाव थी जोय ।।

९९. जे खेत्तओ सपएसे से दव्वओ नियमा सपएसे,
१००. कालओ भयणाए, भावओ भयणाए ।
जहा दव्वओ तहा कालओ, भावओ वि ।
(श० ५।२०५)

१०१. †जे खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि निश्चै, खंध अवगाही कह्या ।।
१०२. द्रव्य अप्रदेशिक प्रमाणु, इक आकाश विषे रहै ।
ते भणी खेत्र थि सप्रदेशे, खंध नुं रहिवूं लहै ।।

*लय : नमूं अनन्त चौबीसी
†लय : पूज मोटा भांजै......



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०३. जे खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें कह्या ।।
१०४. जे खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणें कह्या ।।
१०५. जे खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।
ते भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।।
१०६. जे खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।
ते भाव थी अप्रदेशि इम, गुण एक कृष्णादिक कह्या ।।
१०७. जे काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें रह्या ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नें कह्या ।।
१०८. जे काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें रह्या ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि इम परमाणु-पुद्गल नें कह्या ।।
१०९. जे काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें कह्या ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।।
११०. जे काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें कह्या ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्या ।।
१११. जे काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें रह्या ।
ते भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।।
११२. जे काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें रह्या ।
ते भाव थी अप्रदेशि इम गुण एक कृष्णादिक कह्या ।।
११३. जे भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते द्रव्य थी सप्रदेशि खंध, दुपदेसियादिक नें कह्या ।।
११४. जे भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते द्रव्य थी अप्रदेशि इम, परमाणु-पुद्गल नें कह्या ।।
११५. जे भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।
ते खेत्र थी सप्रदेशि बे आकाश परदेशे रह्या ।।
११६. जे भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक कह्या ।
ते खेत्र थी अप्रदेशि इक आकाश परदेशे रह्या ।।
११७. जे भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते काल थी सप्रदेशि बे समयादि स्थितिकपणें लह्या ।।
११८. जे भाव थी सप्रदेशि बे गुण आदि कृष्णादिक रह्या ।
ते काल थी अप्रदेशि इम, इक समय स्थितिकपणें लह्या ।।

## दूहा

११९. अथ एहनुं द्रव्य प्रमुख थी, सप्रदेश नुं तेह ।
वलि ते अप्रदेशी तणो, अल्पबहुत्व कहेह ।।

११९. अथैषामेव द्रव्यादितः सप्रदेशाप्रदेशानामल्पबहुत्व-
विभागमाह— (वृ०प० २४१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२०. *एहनों हे भगवंत ! द्रव्य थकी सुविशेष ।
खेत्र काल भाव थी, सप्रदेश अप्रदेश ।।

१२१. कुण कुण थी थोड़ा, वलि बहुत्व बखाण ।
वलि तुल्य बरोबर, विशेषाधिक पहिछाण ।।

१२२. हे नारद-पुत्र ! पुद्गल तेह अशेषा ।
सर्व थी थोड़ा है, भाव थकी अप्रदेशा ।।

१२३. †द्रव्य विषे बे आदि गुण थी, अनंत गुण कृष्णादि बहु ।
एक गुण कृष्णादि थोड़ा, ते माटे ए अल्पहु ।।

१२४. *तेह थकी काल थी, अप्रदेशी पहिछाण ।
असंखेज्ज गुणा छै, तास न्याय इम जाण ।।

१२५. †परिणाम बाहुल एम वृत्तौ, तास अर्थ वखाणियै ।
जे समय वर्ण गंध रस फरस, संघात भेद पिछाणियै ।।

१२६. सूक्ष्म बादरपणूं आदि, परिणाम अन्यज पामतुं ।
ते समय काल थी अप्रदेशि, कह्यु समय इक स्थिति हतुं ।।

१२७. जे अन्य परिणामे परिणमै, तेह समय विषे सही ।
काल थी अप्रदेशि कहियै, ते माटे ए अधिक ही ।।

**यतनी**

१२८. इम भाव वर्णादि परिणाम, पूर्वं कह्या ते रूपे ताम ।
द्रव्य परमाणु आदिक मांहि, काल थी अप्रदेशि है ताहि ।।

१२९. खेत्र आश्री एक प्रदेश, आदि देइ अवगाढ विशेष ।
अन्य स्थान गमन आश्री जन्न, काल थी अप्रदेशि निप्पन्न ।।

१३०. संकोच विकोच अवगाण, ते आश्रयी पहिछाण ।
काल थी अप्रदेशि होय, तसु एक समय स्थिति जोय ।।

१३१. तथा सूक्ष्म बादर जोय, वलि अस्थिर स्थिर अवलोय ।
ते आश्री पिण सुविशेष, हुवै काल थकी अप्रदेश ।।

१३२. वलि सेज निरेज है ताम, वलि शब्दादिक परिणाम ।
इत्यादिक आश्री सुविशेष, नीपना काल थी अप्रदेश ।।

१३३. भाव थी अप्रदेशि थी तेह, असंखेज गुणा छै एह ।
रह्या द्रव्य प्रमुख विषे सोय, परिणाम-बहुल अवलोय ।।

*लय : नमूं अनन्त चौबीसी

†लय : पूज मोटा भांजे……

१२०. एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं दव्वादेसेणं, खेत्तादेसेणं, कालादेसेणं, भावादेसेणं सपएसाणं अपएसाण य ।

१२१. कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

१२२. नारयपुत्ता ! सव्वत्थोवा पोग्गला भावादेसेणं अपएसा,

१२४. कालादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा,

१२५-१२७. यो हि यस्मिन् समये यद्वर्णगन्धरसस्पर्शसङ्घातभेदसूक्ष्मत्वबादरत्वादिपरिणामान्तरमापन्नः स तस्मिन् समये तदपेक्षया कालतोऽप्रदेश उच्यते, तत्र चैकसमयस्थितिरित्यग्ये, परिणामाश्च बहव इति प्रतिपरिणामं कालाप्रदेशसंभवात्तद्बहुत्वमिति । (वृ० प० २४३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—भाव थकी जे अप्रदेशी एक गुण कृष्णपणादिक हुवै ते काल थकी बे प्रकार पिण—सप्रदेशी अनैं अप्रदेशी, तथा भाव करकै दोय गुण प्रमुख अनंत गुण पर्यंत छै तिके पिण काल थी द्विविध हुवै—सप्रदेशी नैं अप्रदेशी। एक गुण कालो, दोय गुण कालादिक जे गुण तेहनां स्थानक नैं विषे ते मध्ये एक-एक गुण नां स्थानक नैं विषे काल थकी अप्रदेशी नीं एक-एक राशि हुई। ते भणी अनंतपणां थकी गुण नां स्थानक नीं राशि अनंतीईज काल थकी अप्रदेशी राशि हुई। हिवै प्रेरक बोल्यो—इम ए जो एकिका गुण नैं स्थानके काल थकी अप्रदेशी राशि तो अनंतगुणा कहियै, असंखगुणा केम ? अत्रोत्तरं—गुरु कहै—एहनों ए अभिप्राय छै—यद्यपि अनंत गुण कालपणादिक नीं अनंती राशि छै तो पिण एक गुण कृष्णपणादिक नैं अनंतमें भागईज ते वर्त्तै छै। ते भणी काल थकी अप्रदेशी कूं अनंत गुणपणैं पिण भाव थकी अप्रदेशी थकी ए काल थी अप्रदेशी असंख्यात गुणोईज हुवै।

वा०—भावतो येऽप्रदेशा एकगुणकालत्वादयो भवन्ति ते कालतो द्विविधा अपि भवन्ति—सप्रदेशा अप्रदेशाश्चेत्यर्थः, तथा भावेन द्विगुणादयोऽप्यनन्त-गुणान्ताः 'एव' मिति द्विविधा अपि भवन्ति, ततश्च एकगुणकालाद् द्विगुणकालादिषु गुणस्थान-केषु मध्ये एकैकस्मिन् गुणस्थानके कालाप्रदेशा-नामेकैको राशिर्भवति, ततश्चानन्तत्वाद् गुणस्था-नकराशीनामनन्ता एव कालाप्रदेशराशयो भवन्ति। अथ प्रेरकः—एवमिति—यदि प्रतिगुणस्थानकं कालाप्रदेशराशयोऽभिधीयन्त इति, अत्रोत्तरम्—अयमभिप्रायः—यद्यप्यनन्तगुणकालत्वादीनामनन्ता राशयस्तथाऽप्येकगुणकालत्वादीनामनन्तभाग एव ते वर्तन्त इति न तद्द्वारेण कालाप्रदेशानामनन्त-गुणत्वं अपि त्वसंख्यातगुणत्वमेवेति॥

(वृ० प० २४३)

१३४. *तेह थकी द्रव्य थी, अप्रदेशि अवलोय।
असंखेज्जगुणा छै, ते परमाणू जोय॥

१३४. दव्वादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा,

## यतनी

१३५. अनंत प्रदेशी खंध द्रव्य ताय, तेहथी अनंत गुणा अधिकाय।
परमाणु-पुद्गल जाण, ए सूत्र तणो छै वाण॥
१३६. तिण कारण ए अवलोय, काल थी अप्रदेशि थी जोय।
द्रव्य थी अप्रदेशि ताय, असंखेज्ज गुणा अधिकाय॥

१३७. *द्रव्य थी अप्रदेशि थी, खेत्र थकी अप्रदेश।
असंखेज्जगुणा छै, रह्या एक आकाश-प्रदेश॥

१३७. खेत्तादेसेणं अपएसा असंखेज्जगुणा,

१३८. तेहथी खेत्र थकी जे, सप्रदेशी सुविशेष।
असंखेज्जगुणा छै, रह्या अनेक आकाश-प्रदेश॥

१३८. खेत्तादेसेणं चेव सपएसा असंखेज्जगुणा,

१३९. तेहथी द्रव्य थकी जे, सप्रदेशी सुविचार।
विसेसाहिया आख्या, ए खंध द्रव्य प्रकार॥

१३९. दव्वादेसेणं सपएसा विसेसाहिया,

१४०. तेहथी काल थकी जे, सप्रदेशी अवलोय।
विशेषाधिक आख्या, अनेक समय स्थिति जोय॥

१४०. कालादेसेणं सपएसा विसेसाहिया,

१४१. तेहथी भाव थकी जे, सप्रदेशि जे लाधि।
विसेसाधिकपणैं छै, अनेक गुण वर्णादि॥

१४१. भावादेसेणं सपएसा विसेसाहिया।

(श० ५।२०६)

१४२. नारदपुत्र तिवारै, निर्ग्रंथी-पुत्र प्रति सार।
वंदै वच स्तुति, नमस्कार सुखकार॥

१४२. तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता,

१४३. ए अर्थ प्रतै मुनि, प्रवर रीत धर प्यार।
अति विनय करीनैं, खमावै बारूंबार॥

१४३. एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेति,

*लय : नमूं अनन्त चोबीसी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४. वर संजम तप करि, यावत विचरै विशेष ।
ए पंचम शतक नां, अष्टमुद्देशा नों देश ।।

१४५. ए ढाल बाणूंमी, भिक्षु भारीमाल ऋषिराय ।
'जय-जश' सुख-संपति, वर वृद्धि हरष सवाय ।।

१४४. खामेत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (श० ५।२०७)

ढाल : ९३

## दूहा

१. पूर्वे पुद्गल द्रव्य कह्या, ते पुद्गल नैं ताय ।
जीव ग्रहै तिह कारणैं, जीव विचार कहाय ।।

२. हे भदंत ! इह विध कही, भगवंत गोतम सार ।
प्रभु वंदी नैं जाव इम, प्रश्न करै धर प्यार ।।

*धिन प्रभु वीरजी, धिन गुणहीर जी ।
धिन ज्यांरा शीष जी, गोयम गणईश जी, नमूं निशि-दीसजी ।।
(ध्रुपदं)

३. जीव बहु प्रभु ! वधै राशि थी, कै राशि थी जीव घटाय बे ।
के जेतला छै तेतलाज रहै छै ? ए अवट्ठिया कहिवाय बे ।।

४. जिन कहै जीव वधै न राशि थी, राशि थकी न घटाय ।
जेतला छै तेतलाज रहै छै, इण में सिद्ध संसारी बिहुं आय ।।

५. हे प्रभु ! नेरइया वधै राशि थी ? राशि थी नेरइया घटाय ।
जेतला छै तेतलाज रहै छै ? ए अवट्ठिया छै ताय ?

६. जिन कहै नेरइया वधै राशि थी, ओछा पिण राशि थी होय ।
अवट्ठिया पिण रहै नेरइया, इम जाव वैमानिक जोय ।।

७. सिद्धां रो प्रश्न कियां जिन भाख्यो, सिद्ध वधै न घटाय ।
विरह पड़ै जब रहै अवट्ठिया, छै जितराईज पाय ।।

८. हे प्रभु ! बहु वचने ए जीवा, रहै अवट्ठिया किता काल ?
जिन कहै अवट्ठिया सर्वकाल मैं, छै जितरा रहै न्हाल ।।

९. नेरइया केतलो काल वधै प्रभु ! जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो ए आवलिका नों, असंख्यातमो भाग ।।

१०. काल एतलो घटै नेरइया, जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो ए आवलिका नों, असंख्यातमो भाग ।।

*लय : धिन प्रभु राम जी······

१. अनन्तरं पुद्गला निरूपितास्ते च जीवोपग्राहिण इति जीवांश्चिन्तयन्नाह— (वृ० प० २४४)

२. भंतेत्ति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

३. जीवा णं भंते ! किं वड्ढंति ? हायंति ? अवट्ठिया ?

४. गोयमा ! जीवा नो वड्ढंति, नो हायंति, अवट्ठिया। (श० ५।२०८)

५. नेरइया णं भंते ! किं वड्ढंति ?हायंति ?अवट्ठिया ?

६. गोयमा ! नेरइया वड्ढंति वि, हायंति वि, अवट्ठिया वि। (श० ५।२०९)
जहा नेरइया एवं जाव वेमाणिया। (श० ५।२१०)

७. सिद्धाणं भंते ! पुच्छा।
गोयमा ! सिद्धा वड्ढंति, नो हायंति, अवट्ठिया वि। (श० ५।२११)

८. जीवा णं भंते ! केवतियं कालं अवट्ठिया ?
गोयमा ! सव्वद्धं। (श० ५।२१२)

९. नेरइया णं भंते ! केवतियं कालं वड्ढंति ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं। (श० ५।२१३)

१०. एवं हायंति वि। (श० ५/२१४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. प्रभु ! नेरइया केतलो काल अवट्ठिया ? तब भाखे जगदीस ।
जघन्य थकी तो एक समय छै, उत्कृष्ट मुहूर्त्त चउवीस ।।

११. नेरइया णं भंते ! केवतियं कालं अवट्ठिया ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउवीसं मुहुत्ता । (श० ५/२१५)

**यतनी**

१२. समकाले सातूं नरक मझार, ऊपजवा नीकलवा नों विचार ।
बिहुं नों साथै विरह जिवार, पड़ियो उत्कृष्ट मुहूर्त्त बार ।।
१३. जद द्वादश मुहूर्त्त तांई, कोइ ऊपजियो पिण नांही ।
वलि नीकलियो नहि कोय, बिहुं विरह साथै जद होय ।।

१२,१३. सप्तस्वपि पृथिवीषु द्वादशमुहूर्त्तान् यावन्न कोऽप्युत्पद्यते उद्वर्त्तते वा, उत्कृष्टतो विरहकालस्यैवंरूपत्वात्, (वृ० प० २४५)

१४. पछै द्वादश मुहूर्त्त तांई, ऊपना जे समय नरक मांही ।
तिण समय तेता निकलंत, इम चउवीस मुहुर्त्त हुंत ।।
१५. इम चउवीस मुहुर्त्त जोय, वृद्धि नें वलि हानि न होय ।
तिण सूं अवट्ठिया काल ताहि, न वधै घटै गिणती मांहि ।।

१४,१५. अन्येषु पुनर्द्वादशमुहूर्त्तेषु यावन्त उत्पद्यन्ते तावन्त एवोद्वर्त्तन्त इत्येवं चतुर्विशतिमुहूर्त्तान् यावन्नारकाणामेकपरिमाणत्वादवस्थितत्वं वृद्धिहान्योरभाव इत्यर्थः, (वृ० प० २४५)

१६. *इम सातूं नरक नें जूजुइ कहिवो, वधै घटै ते काल ।
अवट्ठिया जघन्य एक समय छै, उत्कृष्ट में णवरं न्हाल ।।
१७. रत्नप्रभा विरह चोवीस मुहूर्त्त, पछै चोबीस मुहूर्त्त जगीस ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया मुहूर्त्त अड़तालीस ।।
१८. सूत्र पन्नवणा छट्ठा पद में, विरहकाल कह्यो ताम ।
तेह थकी दुगुणो काल कहियै, अवट्ठिया नों आम ।।

१६. एवं सत्तसु वि पुढवीसु 'वड्ढंति, हायंति' भाणियव्वं, नवरं अवट्ठिएसु इमं नाणत्तं,
१७. रयणप्पभाए पुढवीए अडयालीसं मुहुत्ता,

१८. एवं रत्नप्रभादिषु यो यत्रोत्पादोद्वर्त्तनाविरह-कालश्चतुर्विशतिमुहूर्त्तादिको व्युत्क्रान्तिपदेऽभिहितः स तत्र तेषु तत्तुल्यस्य समसंख्यानामुत्पादोद्वर्त्तनाकालस्य मीलनाद् द्विगुणितः सन्नवस्थितकालोऽष्टचत्वारिंशन्मुहूर्त्तादिकः सूत्रोक्तो भवति ।

१९. विरह सक्कर नों सप्त अहोनिश, पछै सप्त अहोनिश ख्यात ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवट्ठिया चउद दिनरात ।।

१९. सक्करप्पभाए चोद्दस राइंदिया, (वृ० प० २४५)

२०. वालुप्रभा नों पनरै दिवस विरह छै, पछै पनर दिवस लग तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया इक मास ।।

२०. बालुयप्पभाए मासं,

२१. पंकप्रभा विरह एक मास नों, पछै एक मास वलि तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया इक मास ।।

२१. पंकप्पभाए दो मासा,

२२. धूमप्रभा में विरह दोय मास नों, पछै दोय मास वलि तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकले, इम अवट्ठिया चउमास ।।

२२. धूमप्पभाए चत्तारि मासा,

२३. तमप्रभा में विरह च्यार मास नों च्यार मास वलि तास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया अठ मास ।।

२३. तमाए अट्ठ मासा,

२४. नरक सातमीं में विरह मास षट्, पछै वली षट्मास ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, इम अवट्ठिया इक वास ।।

२४. तमतमाए बारस मासा । (श० ५।२१६)

२५. असुरकुमार आदि भवनपति दस, वधै घटै नरक जेम ।
अवट्ठिया जघन्य एक समय छै, उत्कृष्ट सुणो धर प्रेम ।।
२६. दस भवनपति विरह चोबीस मुहूर्त्त, वलि मुहूर्त्त चउवीस ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवट्ठिया मुहूर्त्त अड़तालीस ।।

२५,२६. असुरकुमारा वि वड्ढंति, हायंति जहा नेरइया । अवट्ठिया जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता । (श० ५/२१७)
एवं दसविहा वि । (श० ५।२१८)

*लय : विन प्रभु रामजी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. एकेंद्री वधै घटै अवट्ठिया त्रिहुं, जघन्य समय इक भाग।
उत्कृष्टो ए आवलिका नों, असंख्यातमो भाग।।

२७. एगिंदिया वड्ढंति वि, हायंति वि, अवट्ठिया वि। एएहिं तिहि वि जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं। (श० ५।२१९)

**सोरठा**

२८. नहिं विरह एकेंद्री मांय, वधै घटै वलि अवट्ठिया।
ए तीनूं कहिवाय, निसुणो न्यायज तेहनों।।

२९. एकेंद्री रै मांहि, घणां ऊपजै जे समय।
अल्प नीकलै ताहि, वृद्धि कहीजै ते समय।।

२९. 'एगिंदिया वड्ढंति वि त्ति' तेषु विरहाभावेऽपि बहुतराणामुत्पादादल्पतराणां चोद्वर्त्तनात्, (वृ० प० २४५)

३०. तथा एकेंद्री मांहि, अल्प ऊपजै जे समय।
घणां नीकलै ताहि, घटै हाणि कहिजै तदा।।

३०. 'हायंति वि' त्ति बहुतराणामुद्वर्त्तनादल्पतराणां चोत्पादात्। (वृ० प० २४५)

३१. तथा एकेंद्री मांय, सरिखा उपजै नीकलै।
ते समये कहिवाय, वृद्धि हाणि नहिं, अवट्ठिया।।

३१. 'अवट्ठिया वि' त्ति तुल्यानामुत्पादादुद्वर्त्तनाच्चेति। (वृ० प० २४५)

३२. *बेइन्द्री वधै घटै इमहिज कहिवा, अवट्ठिया इम होय।
जघन्य समय इक नै उत्कृष्टो अंतरमुहूर्त्त दोय।।

३२. बेइंदिया 'वड्ढंति, हायंति' तहेव, अवट्ठिया जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो अंतोमुहुत्ता। (श० ५।२२०)

३३. †एक अंतरमुहूर्त्त विरह, अंतरमुहूर्त्त दूसरै।
ऊपजै जेताज निकलै, अवट्ठिया दुगुणंतरै।।

३३. एकमन्तर्मुहूर्त्तं विरहकालो द्वितीयं तु समानानामुत्पादोद्वर्त्तनकाल इति। (वृ० प० २४५)

३४. *इमहिज जाव चउरिंद्री कहिवा, शेष रह्या ते न्हाल।
वधै घटै ते तिमहिज भणवा, हिवै अवट्ठिया नो काल।।

३४. एवं जाव चउरिंदिया। (श० ५।२२१)
अवसेसा सव्वे 'वड्ढंति, हायंति तहेव, अवट्ठियाणं नाणत्तं इमं,

३५. विरह संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्री, इक अंतरमुहूर्त्त होय।
तेहथी दुगुणो काल अवट्ठिया नो, अंतरमुहूर्त्त दोय।।

३५. संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो अंतोमुहुत्ता;

३६. गर्भेज तिर्यंच में विरह काल थी, मुहूर्त्त बार जगीस।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, कह्या मुहूर्त्त चउबीस।।

३६. गब्भवक्कंतियाणं चउव्वीसं मुहुत्ता,

३७. विरह समूर्च्छिम मनुष्य मांहै जे, कह्या मुहूर्त्त चउबीस।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, मुहूर्त्त अड़तालीस।।

३७. संमुच्छिममणुस्साणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता,

३८. बार मुहूर्त्त विरह गर्भेज मनुष्ये, वलि मुहूर्त्त बार जगीस।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै अवट्ठिया मुहूर्त्त चउबीस।।

३८. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चउवीसं मुहुत्ता,

३९. व्यंतर जोतिषि सुधर्म ईशाणे, विरह मुहूर्त्त चउवीस।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, मुहूर्त्त अड़तालीस।।

३९. वाणमंतर-जोतिसिय-सोहम्मीसाणेसु अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता,

४०. तृतीय कल्प विरह नव अहोनिश, ऊपर मुहूर्त्त बीस।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, निशि अठारै मुहूर्त्त चालीस।।

४०. सणंकुमारे अट्ठारस राइंदियाइं चत्तालीसं य मुहुत्ता।

४१. माहिंद्र द्वादश दिन दस मुहूर्त्त, विरह कह्यो जगदीश।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, दिन चउबीस मुहूर्त्त बीस।।

४१. माहिंदे चउवीसं राइंदियाइं वीस य मुहुत्ता।

---

*लय : धिन प्रभु रामजी

† लय : पूज मोटा भांजे······



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. ब्रह्म पंचम देवलोक विरह छै, दिवस साढा बावीस ।
दुगुणो काल है अवट्ठिया नों, अहोनिशि पैंतालीस ।।
४३. लंतके विरह पैंतालीस अहनिशि, दिवस वलि पैंताल ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, नेउ दिन अवट्ठिया न्हाल ।।
४४. महाशुक्र असी दिवस विरह छै, असी अहोनिश वाट ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, अवस्थिति दिन एक सौ साठ ।।
४५. अष्टम कल्पे विरह दिवस सौ, दिवस वलो सौ तित्थ ।
जिण समय ऊपजै जिता नीकलै, दोय सौ दिन अवस्थित्त ।।
४६. नवमें दशमें विरह मास संख्याता, तेहथी दुगुणा मास ।
अवट्ठिया नों काल कह्यो छै, मास संख्याता तास ।।
४७. आरण अच्चू विरह वर्ष संख्याता, तेहथी दुगुणा वास ।
अवट्ठिया नों काल कह्यो छै, संख्याता वर्ष नी राश ।।
४८. इमहिज नव ग्रीवेयक मांहै, पिण वृत्ति मांहै कह्यो एम ।
त्रिक त्रिहूं नों जूजुओ लेखो, सांभलजो धर प्रेम ।।
४९. हेठली त्रिक वर्ष संख्याता सौ, मध्यमे संख्य हजार ।
ऊपरली त्रिक वर्ष संख्यात लक्ष, विरहकाल सुविचार ।।
५०. विरह अद्धा थी कालज दुगुणो, अवट्ठिया नों जान ।
विरह जेतलुं काल पछै पिण, उत्पत्ति चवन समान ।।
५१. विरह अनुत्तर च्यार विषे छै, वर्ष असंख हजार ।
तेहथी दुगुणो काल कहीजै, अवट्ठिया नुं विचार ।।
५२. विरह काल सर्वार्थसिद्ध में, पल्य नों संख्यातमों भाग ।
तेहथी दुगुणो काल कहीजै, अवट्ठिया नुं माग ।।
५३. वधै घटै इक समय जघन्य थी, उत्कर्षे करि ताय ।
आवलिका नों असंख्यातमों भाग कह्यो जिनराय ।।
५४. अवट्ठिया नुं काल जे पूर्वे, पभण्यूं तेम पिछाण ।
आंख्यूं ए सगलो सूत्रे करि, श्री जिन वचन प्रमाण ।।
५५. काल केतलुं सिद्ध वधै प्रभु ! जिन भाखै शिव वाट ।
जघन्य थकी तो एक समय लग, उत्कर्ष समया आठ ।।

५६. काल केतलुं अवट्ठिया नुं ? भाखै जिन गुणरास ।
जघन्य थकी तो एक समय छै, उत्कृष्टो षट मास ।।

५७. †उत्कृष्टो विरहो मास षट नो, अवट्ठिया इतरो सही ।
पछै वाधै नां घटै इम, अवस्थित दुगुणो नहीं ।।

**सोरठा**

५८. हिव जीवादिक जेह, तेहनैं इज अन्य भंग करि ।
गोयम प्रश्न करेह, चित्त लगाई सांभलो ।।

---

† लय : पूज मोटा भांजै

४२. बंभलोए पंचचत्तालीसं राइंदियाइं,

४३. लंतए नउइं राइंदियाइं,

४४. महासुक्के सट्ठि राइंदियसयं,

४५. सहस्सारे दो राइंदियसयाइं,

४६. आणयपाणयाणं संखेज्जा मासा,

४७. आरणच्चुयाणं संखेज्जाइं वासाइं,

४८. एवं गेवेज्जदेवाणं ।

४९. इह यद्यपि ग्रैवेयकाधस्तनत्रये संख्यातानि वर्षाणां शतानि मध्यमे सहस्राणि उपरिमे लक्षाणि विरह उच्यते । (वृ० प० २४५)

५१. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं असंखेज्जाइं वाससहस्साइं ।

५२. सव्वट्ठसिद्धे पलिओवमस्स संखेज्जइभागो ।

५३. एवं भाणियव्वं –'वड्ढंति, हायंति' जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

५४. 'अवट्ठियाणं जं भणियं' । (श० ५।२२२)

५५. सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढंति ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया । (श० ५।२२३)

५६. केवइयं कालं अवट्ठिया ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा । (श० ५।२२४)

५८. जीवादीनेव भंग्यन्तरेणाह— (वृ० प० २४५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. *बहु वच जीव स्यूं सोवचया प्रभु ! वृद्धि-सहित कहिवाय ?
पूर्व विषे अनेरा वलि ऊपजै, तिण सूं उपचय-सहित कह्या ताय ।।

६०. सावचया ए हानि-सहित छै, पूर्वे छै जे मांय ।
किणहिक नां नीकलवा थी ए, अपचय-सहित कहाय ।।

६१. सोवचय-सावचया तीजो, युगपत् ए वृद्धि हानि ।
ऊपजवूं नीकलवूं साथै, एक समय बिहुं जानि ।।

६२. निरुवचय-निरवचया चउथो, वृद्धि हानि बिहुं नांहि ।
ऊपजवो नीकलवो न हुवै, जेह काल रे मांहि ।।

६३. जिन कहै जीव सोवचया नांही, सावचया नहिं थाय ।
सोवचय-सावचया पिण नहीं, पद इक चउथो पाय ।।

५९. जीवा णं भंते ! किं सोवचया ?
'सोपचयाः' सवृद्धयः प्राक्तनेष्वन्येषामुत्पादात्
(वृ० प० २४५)

६०. सावचया ?
प्राक्तनेभ्यः केषाञ्चिदुद्वर्त्तनात् (वृ० प० २४५)

६१. सोवचया-सावचया ?
उत्पादोद्वर्त्तनाभ्यां वृद्धिहान्योर्युगपद्भावात् ।
(वृ० प० २४५)

६२. निरुवचय-निरवचया ?
निरुपचयनिरपचयाः उत्पादोद्वर्त्तनयोरभावेन वृद्धि-हान्योरभावात् । (वृ० प० २४५)

६३. गोयमा ! जीवा नो सोवचया, नो सावचया, नो सोवचय-सावचया, निरुवचय-निरवचया ।

## यतनी

६४. वृत्तिकार कहिवाय, इहां उपचय वृद्धि कहाय ।
वलि अपचय हानि निहाल, तीजे पद बिहुं समकाल ।।

६५. चउथै पद नहीं वृद्धि हानि, ते अवस्थिति पहिछानि ।
ए पद च्यारूंइ भाख्या, प्रश्न सर्व जीवां ऊपर आख्या ।।

६६. वड्ढंति हायंति अवट्ठिया, पूर्वे तीन पाठ ए किया ।
बिहुं सूत्रे कवण है फेर ? तसु उत्तर इह विधि हेर ।।

६७. पूर्वे तीन पाठ कह्या ताहि, वधै घटै अवट्ठिया मांहि ।
तिहां संख्या रूप ग्रहण कीधो, गिणत प्रमाण नें मुख्य दीधो ।।

६८. द्वितीय सूत्र प्रमाण न वांछ्यूं, उत्पत्ति नीकलवा मात्र इछ्यूं ।
थोडा घणां तणी वांछा नांही, तिण सूं न्यारो पाठ कह्यो यांही ।।

६९. सोवचया-सावचया ताहि, ए तीजा भांगा रै मांहि ।
वधै घटै अवट्ठिया आवंत, तिण रो जूजुओ कहूं वृत्तंत ।।

७०. एक समय घणां उपजंत, तिणहिज समय थोड़ा निकलंत ।
ए तीजा भांगा रै मांय, वड्ढंति वधै ते इम आय ।।

७१. एक समय थोड़ा उपजंत, तिणहिज समय घणां निकलंत ।
ए तीजा भांगा रै मांय, हायंति घटै ते इम आय ।।

७२. एक समय जेता उपजंत, तिणहिज समय तेता निकलंत ।
ए तीजा भांगा रै मांय, अवट्ठिया पाठ पिण आय ।।

७३. इण न्याय थकी कहिवाय, पूर्वे तीन पाठ कह्या ताय ।
इहां च्यार पाठ पहिछाण, बिहुं सूत्र जूजुआ जाण ।।

७४. *एगिंदिया तीजै पद कहिवा, सोवचया-सावचया भाल ।
समकाले ऊपजै नें निकलै, तिण सूं तीजै पद न्हाल ।।

६४. ननूपचयो वृद्धिरपचयस्तु हानिः, युगपद्द्वयाभाव-रूपश्चावस्थितत्वं, (वृ० प० २४५)

६६. एवं च शब्दभेदव्यतिरेकेण कोऽनयोः सूत्रयोर्भेदः ?
(वृ० प० २४५)

६७. पूर्वं परिणाम (माण) मात्रमभिप्रेतम् ।
(वृ० प० २४६)

६८. इह तु तदनपेक्षमुत्पादोद्वर्त्तनामात्रं ।
(वृ० प० २४६)

६९. ततश्चेह तृतीयभङ्गके पूर्वोक्तवृद्धयादिविकल्पानां त्रयमपि स्यात्, (वृ० प० २४६)

७०-७२. तथाहि—बहुतरोत्पादे वृद्धिर्बहुतरोद्वर्त्तने च हानिः, समोत्पादोद्वर्त्तनयोश्चावस्थितत्वमित्येवं भेद इति । (वृ० प० २४६)

७४. एगिंदिया ततियपदे
सोपचयसापचया इत्यर्थः, युगपदुत्पादोद्वर्त्तनाभ्यां वृद्धिहानिभावात् । (वृ० प० २४६)

---

* लय : खिन प्रभु रामजी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**यतनी**

७५. "प्रथम पद सोवचया कहाय, ऊपजै पिण निकलै नांय।
ते एकेन्द्री में नहिं पाय, निरन्तर नीकलै तिण न्याय॥
७६. दूजो पद सावचया कहाय, नीकलै पिण ऊपजै नांय।
ए पिण एकेन्द्री में नहिं पाय, निरन्तर ऊपजै तिण न्याय॥
७७. चउथै पद ऊपजवो न होय, वलि नीकलै पिण नहिं कोय।
ए पिण एकेन्द्री में न पावंत, निरन्तर ऊपजै निकलंत॥
७८. ए तीनूं इ पद नहिं होय, पद एक तीजो अवलोय।
ऊपजै नीकलै समकाल, सोवचय-सावचया न्हाल"॥
(ज० स०)

७९. शेष उगणीस दंडक देख, पद च्यारूंइ छै सुविशेख।
ऊपजवा नीकलवा नुं जगीस, विरह कह्युं दंडक उगणीस॥

७९. सेसा जीवा चउहि वि पदेहि भाणियव्वा। (श० ५।२२५)

८०. "कदै नीकलवा नुं विरह होय, तिण वेला ऊपजियो कोय।
जब सोवचया पद पाय, ऊपनो पिण नीकल्यो नांय॥
८१. कदै ऊपजवा नुं विरह होय, तिण वेला नीकलियो कोय।
जब सावचया पद पाय, नीकल्यो पिण ऊपनो नांय॥
८२. ऊपजवा नीकलवा नुं जोय, कदे विरह दोनूं नहिं होय।
सोवचय-सावचया न्हाल, ऊपनो नीकल्यो समकाल॥
८३. ऊपजवा नीकलवा नुं जोय, कदै विरह दोनूंइ होय।
निरुवचय-निरवचया ताहि, उत्पत्ति नीकलवूं बिहुं नांहि॥
८४. इहां उगणीस दंडक मांय, पद च्यारूंइ इणविध पाय।
यां में विरहकाल कह्यो ताय, तिण अनुसारे आख्यो ए न्याय"॥
(ज० स०)

८५. *हे प्रभु! सिद्ध सोवचया पूछा? तब भाखै जिनराय।
सिद्ध सोवचया वृद्धि-सहित छै, उपजै पिण निकलै नांय॥
८६. सावचया दूजो पद नहिं छै, चवन अभाव निहाल।
सोवचय-सावचया पिण नहिं, उत्पत्ति चवन नहीं समकाल॥
८७. निरुवचय-निरवचया पिण छै, नहीं वृद्धि नहिं हानि।
मुक्ति नुं विरह हुवै तिण वेला, चउथो पद ए जानि॥
८८. प्रथम चरम पद पावै सिद्धां में, दूजो तीजो नहिं होय।
पहिलो तो मुक्ति जावै जिण वेला, छेहलो विरह में जोय॥
८९. जीवा प्रभु! निरुवचय-निरवचया, केतलो काल रहंत?
जिन भाखै सदाकाल रहै ए, वृद्धि हानि नहिं हुंत॥

९०. नेरइया प्रभु! काल किता रहै, सोवचया वृद्धि माग?
जघन्य समय इक नैं उत्कृष्टो, आवलिका नों असंख भाग॥

८५. सिद्धा णं भंते! पुच्छा।
गोयमा! सिद्धा सोवचया,
८६. नो सावचया, नो सोवचय-सावचया,
८७. निरुवचय-निरवचया। (श० ५।२२६)

८९. जीवा णं भंते! केवतियं कालं निरुवचय-निरवचया?
गोयमा! सव्वद्धं। (श० ५।२२७)
९०. नेरइया णं भंते! केवतियं कालं सोवचया?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं। (श० ५।२२८)

---

* लय : धिन प्रभु रामजी।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९१. †आवलिका नां असंख भाग लग, समय-समय विष यदा ।
नरक जावै वृद्धि थावै, नीकलै नहिं छै तदा ।।

९२. *सावचया पिण इमहिज कहियैं, आवलिका नैं ताहि ।
असंख्यातमा भाग लगं निकलै, पिण कोइ उपजे नाहि ।।

९२. केवतियं कालं सावचया ?
एवं चेव । (श० ५।२२६)

९३. सोवचय-सावचया इमहिज आवलिका नैं न्हाल ।
असंख्यातमा भाग लगै, उपजै निकले समकाल ।।

९३. केवतियं कालं सोवचय-सावचया ?
एवं चेव । (श० ५।२३०)

९४. निरुवचय-निरवचया नों पूछा, जघन्य समय इक थाय ।
उत्कृष्टो रहै द्वादश मुहूर्त्त, न ऊपजे नीकले नांय ।।

९४. केवतियं कालं निरुवचय-निरवचया ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

**सोरठा**

९५. उत्पत्ति-विरह निहाल, वलि नीकलवा नुं विरह ।
दोनूंई समकाल, उत्कृष्टपणै हुवै यदा ।।

९६. *एकेंद्री सर्व सोवचय-सावचया, सदाकाल ते न्हाल ।
समय-समय उपजै नीकले छै, वृद्धि हानि समकाल ।।

९६. एगिंदिया सव्वे सोवचय-सावचया सव्वद्धं ।

९७. शेष दंडक विषे धुर पद तीनूं, जघन्य समय इक भाग ।
उत्कृष्टो जे आवलिका नैं असंख्यातमैं भाग ।।

९७. सेसा सव्वे सोवचया वि, सावचया वि, सोवचय-सावचया वि, जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।

**यतनी**

९८. पद त्रिहुं नरक में पाय, तिणरो पूर्वे आख्यो न्याय ।
तेहिज न्याय इहां पहिछाण, बुद्धिवंत ए लेसी जाण ।।

९९. *शेष दंडक विषे चौथे पद इम, जघन्य समय इक जाण ।
उत्कृष्ट पन्नवण छठा पद में, कह्यु विरहकाल ते प्रमाण ।।

९९. अवट्ठिएहिं वक्कंतिकालो भाणियव्वो ।
(श० ५।२३१)

१०० ऊपजवा नैं नीकलवा नों, कदै बिहुं विरह हुवै साथ ।
निरुवचय-निरवचया ते काले, ते कहूं पन्नवणा थी बात ।।

१०१. जघन्य थकी तो सगले ठामे, समय एक सुविचार ।
उत्कृष्ट विरह जूओ-जूओ छै, सांभलजो विस्तार ।।

१०२. समचै नरक में ऊपजवा नुं, निकलवा नुं निहाल ।
बार मुहूर्त्त कदे बिहुं हुवै साथै, ए निरुवचय-निरवचया काल ।।

१०२. निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं ···?
निरयगती णं भंते केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए······? (पण्णवणा ६।१,६)

१०३. रत्नप्रभा में चउवीस मुहूर्त्त, सकर सप्त निशि तास ।
वालुप्रभा में पनरै अहनिशि, पंकप्रभा इक मास ।।

१०३. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते ?···
(प० ६।१०-१३)

१०४. धूमप्रभा में दोय मास नों, तमप्रभा मास च्यार ।
तमतमा षट् मास उत्कृष्टो, उभय विरह अधिकार ।।

१०४. धूमप्पभापुढविनेरइया णं भंते ! ···
(प० ६।१४-१६)

†लय : पूज मोटा भांजे
*लय : धिन प्रभु रामजो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०५. भवनपति में चउवीस मुहूर्त्त, अंतरमुहूर्त्त विकलिंदि ।
संमूच्छिम-तिर्यंच-पंचेंद्री, इक अंतरमुहूर्त्त कहिंदि ।।

१०५. असुरकुमारा णं भंते ! ···
(प० ६।१७,१८,२०,२१)

१०६. गर्भज-तिर्यंच बारै मुहूर्त्त, मनुष्य-समुच्छिम धार ।
उत्कृष्ट विरह चउवीस मुहूर्त्त नों, गर्भज-मनुष्य में बार ।।

१०६. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! ···
(प० ६।२२-२४)

१०७. व्यंतर जोतिषी पहिलै दूजे, मुहूर्त्त चउवीस चउवीस ।
सनतकुमारे नव अहोरात्रि, मुहूर्त्त वीस जगीस ।।

१०७. वाणमंतराणं पुच्छा··· (प० ६।२५-२८)

१०८. माहिंद्रे द्वादश दिन दश मुहूर्त्त, ब्रह्म साढा बावीस ।
लंतक पैंताली निशि महाशुक्र, असी रात्रि नुं जगीस ।।

१०८. माहिंददेवाणं पुच्छा··· (प० ६।३०-३३)

१०९. अष्टम[1] सौ निशि आणत पाणत, मास संख्याता दृष्ट ।
आरण अच्चु वर्ष संख्याता, उभय विरह उत्कृष्ट ।।

१०९. सहस्सारदेवाणं पुच्छा (प० ६।३४-३८)

११०. हेठिम त्रिक वर्ष संख्याता सौ, मझम संख्याता हजार ।
उवरिम संख्याता लाख वर्ष नों, उभय विरह सुविचार ।।

११०. हेट्ठिमगेवेज्जाणं पुच्छा··· (प० ६।३९-४१)

१११. च्यार अनुत्तर पल्य तणो जे, असंख्यातमो भाग ।
सर्वार्थसिद्ध पल्य तणो ए, भाग संख्यातमो लाग ।।

१११. विजयवेजयंतजयंतापराजियदेवाणं पुच्छा···
(प० ६।४२,४३)

११२. ए ऊपजवा नैं नीकलवा नुं विरह पड़ै समकाल ।
तिण वेला ए चउथा पद नुं, उत्कृष्ट काल निहाल ।।

११३. सिद्ध प्रभु ! किता काल सोवचया ? जघन्य समय इक जोय ।
उत्कृष्ट अष्ट समय लग आख्यो, अंतर-रहित ए होय ।।

११३. सिद्धाणं भंते ! केवतियं कालं सोवचया ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया । (श० ५।२३२)

११४. काल किता निरुवचय-निरवचया, जघन्य समय इक सोय ।
उत्कृष्टो षट्मास काल ए, विरह-समय अवलोय ।।

११४. केवतियं कालं निरुवचय-निरवचया ?
जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छ मासा ।
(श० ५।२३३)

११५. सेवं भंते ! अंक अठावन, ए त्राणूंगी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल ।।

११५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५।२३४)

**पंचमशते अष्टमोद्देशकार्थः ।।५।८।।**

## ढाल : ९४

### दूहा

१. अर्थ-जात गोतमगणी, राजगृहे धर खंत ।
बहुलपणैं करि पूछिया, बहुल तिहां विचरंत ।।
२. स्वरूप राजगृहादि नुं, निर्णय तत्पर तत्र ।
विस्तार नवम उद्देशके, कहियै छै हिव अत्र ।।

१,२. इदं किलार्थजातं गौतमो राजगृहे प्रायः पृष्टवान् बहुशो भगवतस्तत्र विहारादिति राजगृहादिस्वरूप-निर्णयपरसूत्रप्रपञ्चं नवमोद्देशकमाह—
(वृ० प० २४६)

[1] सहस्रार स्वर्ग



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. तिण काले नैं तिण समय, जाव वदै इम ताम ।
वीर प्रतै वंदी करी, विनय करी अभिराम ।।

*कृपानिधि जयजश करण जिनेन्द्र !
जी हो अंतर-तिमर मिटायवा, प्रभु ! प्रगट्यो जाण दिनेन्द्र ।
(ध्रुपदं)

४. जी हो ए नगर राजगृह नाम ते, प्रभु ! किणनैं कहियै ताम ।
जी हो स्यूं कहियै पृथ्वी भणी, कांइ नगर राजगृह नाम ?
५. जी हो नगर राजगृह अप प्रतै, जाव वनस्पति लग आम ।
जी हो जेम पंचमा शतक में, कह्या सप्तमुद्देशे नाम ।।

६. जी हो पंचेन्द्री तिर्यंच नैं, कह्या परिग्रह मांहे जेह ।
जी हो टंक कूट शिखरी गिरी, इत्यादिक सहु पाठ कहेह ।।

७. जी हो जाव सचित्त अरु अचित्त नैं, वलि मिश्र द्रव्य नैं ताय ।
जी हो नगर राजगृह एहवूं, कांइ कहियै इम पूछाय ।।
८. जी हो श्री जिन कहै पृथ्वी प्रतै, कहियै नगर राजगृह नाम ।
जी हो जाव सचित्त अचित्त मिश्र नों, समुदाय राजगृह ताम ।।

९. जी हो पृथव्यादिक समुदाय छै, कांइ नगर राजगृह गांय ।
जी हो तेह विना राजगृह इसी, कांइ शब्द प्रवृत्ति न थाय ।।
१०. जी हो किण अर्थे ? तब जिन कहै, पृथ्वी जीव अजीव स्वभाव ।
जी हो राजगृह एहवूं प्रसिद्धपणें, कांइ नगर नुं नाम कहाव ।।
११. जी हो जाव सचित्त अरु अचित्त छै, वलि मिश्र द्रव्य समुदाय ।
जी हो जीव अजीव दोनूं अछै, तिण नैं नगर राजगृह कहाय ।।
१२. जी हो तिण अर्थे करि गोयमा ! जाव नगर राजगृह कहंत ।
जी हो पुद्गल नां अधिकार थी, वलि पुद्गल नुं विरतंत ।।
१३. जी हो हे भगवंत ! निश्चै करो, दिन उद्योत निशि अंधकार ?
जी हो जिन कहै हंता गोयमा ! प्रभु ! किण अर्थे ए प्रकार ।।

१४. जी हो जिन कहै दिन शुभ पुद्गला, शुभ पुद्गल परिणत होत ।
जी हो वलि रवि-किरण मिलाप थी, तिण सूं दिवस विषे उद्योत ।।

१५. जी हो रात्रि अशुभ पुद्गल हुइं, अशुभ पुद्गल नों परिणाम ।
जी हो रवि-किरणादि अभाव थी, कांइ तिण अर्थे ए ताम ।।

*लय : चातुर नर पोषो पात्र विशेख

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी—

४. किमिदं भंते ! नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ? किं पुढवी नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?
५. किं आऊ नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ जाव वणस्सई ? जहा एयणुद्देसए पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया तहा भाणियव्वा । (पा० टि०)
'जहा एयणुद्देसए' त्ति एजनोद्देशकोऽस्यैव पञ्चमशतस्य सप्तमः, (सू० १८६)
(वृ० प० २४६)

६. तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वक्तव्यता 'टङ्का कूडा सेला सिहरी' त्यादिका योक्ता सा इह भणितव्येति ।
(वृ० प० २४६)
७. जाव सचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइं नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?
८. गोयमा ! पुढवी वि नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ जाव सचित्ताचित्तमीसयाइं दव्वाइं नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ । (श० ५।२३५)
९. पृथिव्यादिसमुदायो राजगृहं, न पृथिव्यादिसमुदायादृते राजगृहशब्दप्रवृत्तिः, (वृ० प० २४६)
१०. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! पुढवी जीवा इ य, अजीवा इ य नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ,
११. जाव सचित्ताचित्त-मीसयाइं दव्वाइं जीवा इ य, अजीवा इ य नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ,
१२. से तेणट्ठेणं तं चेव । (श० ५।२३६)
पुद्गलाधिकारादिदमाह— (वृ० प० २४६)
१३. से नूणं भंते ! दिया उज्जोए ? राइं अंधयारे ?
हंता गोयमा ! दिया उज्जोए, राइं अंधयारे ।
से केणट्ठेणं ? (श० ५।२३७)
१४. गोयमा ! दिया सुभा पोग्गला सुभे पोग्गलपरिणामे
शुभः पुद्गलपरिणामः स चार्ककरसम्पर्कात्,
(वृ० प० २४७)

१५. राइं असुभा पोग्गला असुभे पोग्गलपरिणामे । से तेणट्ठेणं । (श० ५।२३८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. जी हो स्यूं प्रभु ! नेरइया नैं अछै, कांइ उद्योत कै अंधकार ?
जी हो जिन भाखै नेरइया तणें नहिं उद्योत, छै अंधयार ।।

१७. जी हो किण अर्थे ? जद जिन कहै, कांइ नेरइया नैं तिण ठाम ।
जी हो पुद्गल अशुभ अछै घणां, कांइ अशुभ पुद्गल परिणाम ।।

१८. जी हो खेत्र तणांज स्वभाव थी, रवि-किरणादि शुभ निमित्तभूत ।
जी हो वस्तु-प्रकाशक त्यां नहीं, कांइ तिण अर्थे इम सूत ।।

१९. जी हो हे प्रभु ! असुरकुमार नैं, कांइ उद्योत कै अंधकार ?
जी हो जिन कहै तिहां उद्योत छै, पिण नहिं छै तिहां अंधयार ।।

२०. जी हो किण अर्थे ? तब जिन कहै, कांइ असुरकुमार नैं ताय ।
जी हो शुभ पुद्गल शुभ परिणम्या, तिण अर्थे इम वाय ।।

२१. जी हो इम जाव थणियकुमार नैं, हिवै पृथ्वी अप तेउ वाय ।
जी हो वनस्पति बे० ते० इंदिया, इम नरक जेम कहिवाय ।।

२२. जी हो एहनां खेत्र विषे अछै, रवि-किरणादिक नों संचार ।
जी हो तो पिण चक्षु-रहीत ए, तिण सूं वस्तु न देखै लिगार ।।

२३. जी हो कार्य शुभ पुद्गल तणां, ते अणकरिवे करि धार ।
जी हो पुद्गल अशुभ कह्या तसु, तिण कारण एहनैं अंधार ।।

२४. जी हो हे प्रभु ! चउरिंद्री तणैं, कांइ उद्योत कै अंधकार ?
जी हो जिन कहै एहनैं उद्योत छै, वलि छै एहनैं अंधयार ।।

२५. जी हो किण अर्थे ? तब जिन कहै, कांइ चउरिंद्री नैं ताय ।
जी हो पुद्गल शुभाशुभ परिणमैं, कांइ तिण अर्थे ए वाय ।।

२६. जी हो रवि-किरणादि स्वभाव तैं, अर्थ देखवा जोग्य जे तास ।
जी हो तसुं अवबोध हेतू थकी, शुभ पुद्गल कहिय उजास ।।

२७. जी हो रवि-किरणादि अभाव तैं, अर्थ अवबोध हेतु न होय ।
जी हो अशुभ पुद्गल कहियै तसु, इम रै चक्षु इंद्रिय अवलोय ।।

२८. जी हो इमहिज जाव मनुष्य लगै, व्यंतर जोतिषि वैमानीक ।
जी हो असुरकुमार तणी परै, तम नहीं उद्योत सधीक ।।

## सोरठा

२९. पुद्गल द्रव्य पिछाण, पूर्वे चिंतवणा तसु ।
काल द्रव्य नीं जाण, चिंतवणा तेहनीं हिवै ।।

१६. नेरइयाणं भंते ! किं उज्जोए ? अंधयारे ?
गोयमा ! नेरइयाणं नो उज्जोए, अंधयारे ।
(श० ५।२३९)

१७. से केणट्ठेणं ?
गोयमा ! नेरइयाणं असुभा पोग्गला असुभे पोग्गल-परिणामे ।

१८. तत्क्षेत्रस्य पुद्गलशुभतानिमित्तभूतरविकरादिप्रकाशकवस्तुवर्जितत्वात्, (वृ० प० २४७)
से तेणट्ठेणं । (श० ५।२४०)

१९. असुरकुमाराणं भंते ! किं उज्जोए ? अंधयारे ?
गोयमा ! असुरकुमाराणं उज्जोए, नो अंधयारे ।
(श० ५।२४१)

२०. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! असुरकुमाराणं सुभा पोग्गला सुभे पोग्गल-परिणामे । से तेणट्ठेणं ।

२१. जाव थणियकुमाराणं । (श० ५।२४२)
पुढविक्काइया जाव तेइंदिया 'जहा नेरइया' ।
(श० ५।२४३)

२२,२३. एषामेतत्क्षेत्रे सत्यपि रविकरादिसंपर्के एषां चक्षुरिन्द्रियाभावेन दृश्यवस्तुनो दर्शनाभावाच्छुभपुद्गलकार्याकरणेनाशुभाः पुद्गला उच्यन्ते ततश्चैषामन्धकारमेवेति । (वृ० प० २४७)

२४. चउरिंदियाणं भंते ! किं उज्जोए ? अंधयारे ?
गोयमा ! उज्जोए वि अंधयारे वि ।
(श० ५।२४४)

२५. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! चउरिंदियाणं सुभासुभा य पोग्गला सुभासुभे य पोग्गलपरिणामे । से तेणट्ठेणं ।
(श० ५।२४५)

२६. एषां हि चक्षुःसद्भावे रविकरादिसद्भावे दृश्यार्थावबोधहेतुत्वाच्छुभाः पुद्गलाः, (वृ० प० २४७)

२७. रविकराद्यभावे त्वर्थावबोधाजनकत्वादशुभा इति ।
(वृ० प० २४७)

२८. एवं जाव मणुस्साणं । (श० ५।२४६)
वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा असुरकुमारा ।
(श० ५।२४७)

२९. पुद्गला द्रव्यमिति तच्चिन्ताऽनन्तरं कालद्रव्यचिन्तासूत्रम्— (वृ० प० २४७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. *जी हो हे प्रभुजो ! नारक तणें, नरक विषे रह्या नें सोय ।
जी हो जेणे करीनें जाणिये, एहवी प्रज्ञा तेहनें होय ।।
३१. जी हो समय आवलिका पिण वलि, जाव अवसर्पिणी छै एह ।
जी हो उत्सर्पिणी पिण एह छै, एहवूं नरक विषे जाणेह ?
३२. जी हो जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, कांइ किण अर्थे भगवान ?
जी हो जिन कहै समयादिक तणो, इण मनुष्यखेत्र में मान ।।

३३. जी हो इण मनुष्यखेत्र नें विषे वलि, समयादिक तणोंज प्रमाण[1] ।
जी हो आदित्य गति करि जाणियै, समयादिक नें पहिछाण ।।
३४. जी हो मनुष्यखेत्र नें विषेज छै, कांइ समयादिक नों ज्ञान ।
जी हो नारकादिक नें विषे नहीं, तिण सूं इहांइज मान प्रमान ।।

३५. †प्रकृष्ट मान प्रमाण सूक्षम, मुहूर्त्त मान कहीजियै ।
तसु अपेक्षा लवज सूक्षम, तेह प्रमाण लहीजियै ।।
३६. लव मान कहियै तसु अपेक्षा, थोव प्रमाण पिछाणियै ।
थोव मान तेहनीं अपेक्षा, प्रमाण पाणू जाणियै ।।

३७. *जी हो नरक तणी पर जाणवा, कांइ जाव पंचेंद्री तिर्यंच ।
जी हो मनुष्य तणी पूछा हिवै, तसुं सांभलज्यो सुभ संच ।।
३८. जी हो छै भगवंत ! जे मनुष्य नें, कांइ इहां रह्या नें ताम ।
जी हो जेणे करीनें जाणियै, एहवी प्रज्ञा बुद्धि अभिराम ।।
३९. जी हो समय आवलिका पिण वलि, जाव अवसर्प्पिणी छै एह ।
जी हो उत्सर्प्पिणी पिण एह छै, एहवूं मनुष्य विषे जाणेह ?
४०. जी हो जिन कहै अर्थ समर्थ अछै, कांइ किण अर्थे भगवान ।
जी हो जिन कहै समयादिक तणो, इण मनुष्य खेत्र में मान ।।
४१. जी हो इण मनुष्यखेत्र नें विषे वलि, समयादिक तणो प्रमाण ।
जी हो आदित्य गति करि जाणियै, समयादिक नें पहिछाण ।।
४२. जी हो मनुष्यखेत्र नें विषेज छै, कांइ समयादिक नों ज्ञान ।
जी हो तिण अर्थे करि इम कह्युं, कांइ इहां इज मान प्रमान ।।
४३. जी हो वाणव्यंतर नें जोतिषि, वलि वेमानिक नें ताम ।
जी हो कहियै नरक तणी परे, कांइ सहु विरतंत तमाम ।।
४४. जी हो समयखेत्र बाहिर रह्या, कांइ सर्व तणें अवलोय ।
जी हो समयादिक पूर्वे कह्या, तेहनें जाणें नहिं ते कोय ।।

३०. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं तत्थगयाणं एवं पण्णायए, तं जहा—

३१. समया इ वा, आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ?

३२. णो तिणट्ठे समट्ठे । (श० ५।२४८)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नेरइयाणं तत्थगयाणं नो एवं पण्णायए, तं जहा—समया इ वा, आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ?
गोयमा ! इहं तेसिं माणं,

३३. इहं तेसिं पमाणं, (श० ५।२४९)
आदित्यगतिसमभिव्यंग्यत्वात्तस्य, (वृ० प० २४७)

३४. आदित्यगतेश्च मनुष्यक्षेत्र एव भावात् नरकादौ त्वभावादिति, (वृ० प० २४७)

३५,३६. प्रमाणं—प्रकृष्टं मानं सूक्ष्ममानमित्यर्थः, तत्र मुहूर्तस्तावन्मानं तदपेक्षया लवः सूक्ष्मत्वात् प्रमाणं तदपेक्षया स्तोकः प्रमाणं लवस्तु मानमित्येवं नेयं यावत् समय इति, (वृ० प० २४७)

३७. एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं ।
(श० ५।२५०)

३८. अत्थि णं भंते ! मणुस्साणं इहगयाणं एवं पण्णायते,

३९. समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा ?

४०. हंता अत्थि । (श० ५।२५१)
से केणट्ठेणं ? गोयमा ! इहं तेसिं माणं,

४१,४२. इहं तेसिं पमाणं, इहं चेव तेसिं एवं पण्णायते, तं जहा—समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा । से तेणट्ठेणं । (श० ५।२५२)

४३. वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं ।
(श० ५।२५३)

४४. इह च समयक्षेत्राद्‌बहिर्वर्त्तिनां सर्वेषामपि समयाद्यज्ञानमवसेयम्, (वृ० प० २४७)

*लय : चतुर नर पोषो पात्र विसेख

1. अंगसुत्ताणि में 'इह तेसिं पमाणं' के बाद उपसंहारात्मक रूप में पूरा पाठ है । पर उस पाठ की जोड़ न होने के कारण उसे यहां उद्धृत नहीं किया गया ।

†लय : पूज मोटा भांजे……



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. जी हो समयखेत्र रै बाहिरे, नहिं समयादि काल विचार ।
जी हो काल तणैं अभावे करो, कांइ नहिं छै ते व्यवहार ।।

४६. जो हो वृत्तिकार इहां इम कह्य ु, कांइ पंचेंद्रिय तिर्यंच ।
जी हो भवनपति व्यंतर जोतिषि, केइ मनुष्यखेत्र छै संच ।।

४७. जी हो तो पिण ते तो अल्प छै, वलि बहुलपणें करि तेह ।
जी हो समयादिक जे काल नां, कांइ अव्यवहारी जेह ।।

४८. जी हो तेह तणीज अपेक्षया, कांइ मनुष्यखेत्र रै बार ।
जी हो तिर्यंचादिक छै घणां, तिके नहिं जाणें तिहवार ।।

४९. जी हो रवि गति करिनें जाणवो, तिको लेखवियो इहां जोय ।
जी हो अवध्यादिक करि जाणियै, जिको गिण्यो नहीं छै कोय ।।

५०. जी हो देश गुणसठमां अंक नों, कांइ च्यार नेऊमी ढाल ।
जी हो भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, कांइ 'जय-जश' हरष विशाल ।।

४५. तत्र समयादिकालस्याभावेन तद्व्यवहाराभावात्,
(वृ० प० २४७)

४६. तथा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्काश्च यद्यपि केचित् मनुष्यलोके सन्ति ।
(वृ० प० २४७)

४७,४८. तथापि तेऽल्पाः प्रायस्तदव्यवहारिणश्च इतरे तु बहव इति तदपेक्षया ते न जानन्तीत्युच्यत इति ।
(वृ० प० २४७)

## ढाल ९५

### दूहा

१. काल-निरूपण नों कह्यो, ए अधिकार पिछाण ।
निशि दिन काल विशेष हिव, तास निरूपण जाण ।।

२. तिण कालै नैं तिण समय, पार्श्व-अपत्य संतान ।
शिष्य प्रशिष्यादिक प्रवर, स्थविर तपोवृद्ध जान ।।

३. पार्श्व स्थविर भगवंत ते, वीर प्रभू पै आय ।
नहिं अति दूर न ढूकड़ा, बोलै इहविध वाय ।।

*पार्श्व स्थविर पूछा करै ।(ध्रुपदं)

४. हे भगवंत ! निश्चै करी, असंखेज्ज लोक मांह्यो जी ।
प्रदेश असंख्याता एहनां, तिण सूं असंख्य लोक कहिवायो जी ।।

५. चवदै रज्जु खेत्र लोक है, ते आधारभूत विषे जेहो ।
दिन रात्रि अनंता ऊपनां, ऊपजै नैं ऊपजस्यै तेहो ?

६. विनाश पाम्या अनंता दिन निशा, कै विनाश पामै दिनरातो ।
विनाश पामस्यै कै वलि, काल त्रिहूं आख्यातो ?

१. कालनिरूपणाधिकाराद्रात्रिन्दिवलक्षणविशेषकालनिरूपणार्थमिदमाह— (वृ० प० २४७)

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो

३. जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते ठिच्चा एवं वायसी—

४. से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए
असंख्यातेऽसंख्यातप्रदेशात्मकत्वात्—
(वृ० प० २४८)

५. अणंता राइंदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ?
लोके—चतुर्दशरज्ज्वात्मके क्षेत्रलोके आधारभूते
(वृ० प० २४८)

६. विगच्छिसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ?

*लय : धर्म दलाली चित करै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. तथा परित्ता नियत परिमाण ते, दिवस अनैं वलि रातो ।
ऊपनां ऊपजै ऊपजस्यै वलि, ए अनंता नहिं आख्यातो ।।

८. तथा नियत परिमाण अहो निशा, गये काल पाम्या छै विनाशो ।
हिवड़ां विनाश पामै अछै, वलि विनाश पामस्यै तासो ?

९. जिन कहै हंता हे अज्जो ! लोक असंखप्रदेशो ।
तिण में अनंत रात्रि दिन ऊपना, पूछ्यो तिम कहिवूं अशेषो ।।

### सोरठा

१०. इहां छै ए अभिप्राय, लोक असंखप्रदेश में ।
दिन रात्रि अनंत किम माय ? अल्प आधार आधेय बहु ।।

११. *लोक असंख प्रदेश में, वर्त्तै अनंता जीवा ।
तथाविध स्वरूपपणां थको, गुण-भाजन अनंत अतीवा ।।

१२. जिम इक स्थानक नैं विषे, प्रभा सहस्र दीवा नीं पडंतो ।
तिम समयादिक इक काल में, अनंता ऊपजै विणसंतो ।।

### सोरठा

१३. इहां छै ए अभिप्राय, अनंत जो दिन निशि हुवै ।
तो किम परित्त कहाय, आपस मांहि विरोध इम ।।

१४. *अनंत काय साधरण नैं विषे, समयादि काल वर्त्तंतो ।
तिण सूं अनंत समयादिक ते कह्या, इक समयादि अनंत गिणंतो ।।

१५. प्रत्येकशरीरी नैं विषे, समयादि काल वर्त्तंतो ।
प्रत्येक समयादि तसु कह्या, जीव दीठ एक-एक हुंतो ।।

१६. अनंतकाय साधारण नैं विषे, वर्त्तै रात्रि दिन एको ।
तिण सूं एक अहो रात्रि तेहनैं अनंत कह्या सुविशेखो ।।

१७. प्रत्येकशरीरी नैं विषे, वर्त्तै अहो रात्रि एको ।
तिण सूं एक अहो रात्रि तेहनैं प्रत्येक कह्या सुविशेखो ।।

१८. साधारण जीव आसरी, काल अनंतो लेवो ।
प्रत्येकशरीरी आसरी, काल प्रत्येकज केवो ।।

१९. इण न्याय दिन रात्रि अनंत छै, तथा परित्त दिन रातो ।
ए तीनूंइ काल विषे हुवै, इम भाखै जगनाथो ।।

२०. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यूं, लोक असंखप्रदेशे न्हालो ।
दिन रात्रि अनंता प्रत्येक ते, ऊपजवूं विणसवूं त्रिहुं कालो ?

२१. जिन कहै इम निश्चय करी, अहो आर्य ! तुम्हारा जाणो ।
पार्श्वनाथ पुरुषां मझे, आदेयकारी पिछाणो ।।

---

*लय : धर्म दलाली चित करै……

७. परित्ता राइंदिया उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जंति वा, उप्प-ज्जिस्संति वा ?
परीतानि—नियतपरिमाणानि नानन्तानि,

८. विगच्छिसु वा, विगच्छंति वा, विगच्छिस्संति वा ?

९. हंता अज्जो ! असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया तं चेव । (श० ५।२५४)

१०. पृच्छतामयमभिप्रायः—यदि नामासंख्यातो लोकस्तदा तत्रानन्तानि तानि कथं भवितुमर्हन्ति ? अल्पत्वादाधारस्य महत्त्वाच्चाधेयस्येति, (वृ० प० २४८)

११. असंख्यातप्रदेशेऽपि लोकेऽनन्ता जीवा वर्त्तन्ते तथाविधस्वरूपत्वाद् (वृ० प० २४८)

१२. एकत्राश्रये सहस्रादिसंख्यप्रदीपप्रभा इव, ते चैकत्रैव समयादिके कालेऽनन्ता उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च, (वृ० प० २४८)

१३. इहायमभिप्रायः यद्यनन्तानि तानि तदा कथं परीतानि ? इति विरोधः, (वृ० प० २४८)

१४. स च समयादिकालस्तेषु साधारणशरीरावस्थायामनन्तेषु (वृ० प० २४८)

१५. प्रत्येकशरीरावस्थायां च परीतेषु प्रत्येकं वर्त्तते, (वृ० प० २४८)

१९. एवं चासंख्येयेऽपि लोके रात्रिन्दिवान्यनन्तानि परीतानि च कालत्रयेऽपि युज्यन्त इति । (वृ० प० २४८)

२०. से केणट्ठेणं जाव विगच्छिस्संति वा ?

२१. से नूणं भे अज्जो ! पासेणं अरहया पुरिसादाणिएणं
पुरुषाणां मध्ये आदानीयः—आदेयः पुरुषादानीयः (वृ० प० २४८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. ते पार्श्वनाथ अरिहंत जे, सास्वतो स्थिर लोक आख्यातो ।
वले आदि-रहित अंत-रहित छै, प्रदेशे परिमित असंख्यातो ॥

२३. परिवुडे वींटचो अलोके करी, हेठै सात राज चोड़ो न्हालो ।
बिचै सांकड़ो ते एक राज छै, ऊपर है पंच राज विशालो ॥

### सोरठा

२४. एहिज तीनूं लोग, हेठै मध्य अरु ऊपरै ।
सुणज्यो धर उपयोग, कहियै छै उपमा थको ॥

२५. *हेठलुं लोक कहै हिवै, ऊपर सांकड़ो जाणो ।
तल विस्तार चोड़ो अछै, बिहुं करि पलिअंक संठाणो ॥

२६. मध्य लोक छै एहवो, वर प्रधान विचारो ।
वज्र शरीर आकार छै, मध्य सांकड़ो तास प्रकारो ॥

२७. ऊपरलो लोक एहवो, ऊर्द्ध मृदंग आकारो ।
सराव संपुट आकार छै, ऊपर तल क्षीण मध्य विस्तारो ॥

२८. ते सास्वतो लोक कह्यो अछै, काल आश्री अनादि अनंतो ।
प्रदेश करि परिमित अछै, अलोके करि वींटचो कहंतो ॥

२९. हेठै विस्तीर्ण लोक छै, मध्य संक्षिप्त बखाणो ।
ऊपर विशाल ए लोक छै, पंचम कल्प आश्री ए जाणो ॥

३०. हेठै पलिअंक संठाण छै, मध्य वज्र आकारो ।
ऊपर ऊर्द्ध मृदंग नैं आकारे लोक विचारो ॥

३१. एहवा लोक विषेज अनंत छै, साधारण अपेक्षायो ।
एक शरीर में जीवड़ा, अनंत कहीजै ताह्यो ॥

३२. अनंत पर्याय समूह छै, प्रदेश पिंड असंख्यातो ।
तिण सूं जीव घणां ए पाठ छे, उपजी-उपजी मर जातो ॥

३३. प्रत्येकशरीर अपेक्षया, परित्ता जीव घणां कहायो ।
अनंत पर्याय असंख प्रदेश के, उपज-उपज मर जायो ॥

---

*लय : धर्म दलाली चित करै

२२. सासए लोए बुइए—अणादीए अणवदग्गे परित्ते
अनवदग्रः—अनन्तः 'परित्ते' ति परिमितः प्रदेशतः
(वृ० प० २४८)

२३. परिवुडे हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले,
'परिवुडे' त्ति अलोकेन परिवृतः 'हेट्ठा विच्छिन्ने' त्ति सप्तरज्जुविस्तृतत्वात् 'मज्झे संखित्ते' त्ति एकरज्जुविस्तारत्वात् 'उप्पिं विसाले' त्ति ब्रह्मलोकदेशस्य पञ्चरज्जुविस्तारत्वात्, (वृ० प० २४९)

२४. एतदेवोपमानतः प्राह— (वृ० प० २४९)

२५ अहे पलियंकसंठिए
उपरि संकीर्णत्वाधोविस्तृतत्वाभ्यां
(वृ० प० २४९)

२६. मज्झे वरवइरविग्गहिए
वरवज्रवद्विग्रहः—शरीरमाकारो मध्यक्षामत्वेन यस्य सः । (वृ० प० २४९)

२७. उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए ।
ऊर्ध्वो न तु तिरश्चीनो यो मृदङ्गस्तस्याकारेण संस्थितो यः स तथा, मल्लक-संपुटाकार इत्यर्थः, ।
(वृ० प० २४९)

२८. तेसिं च णं सासयंसि लोगंसि अणादियंसि अणवदग्गंसि परित्तंसि परिवुडंसि ।

२९. हेट्ठा विच्छिण्णंसि, मज्झे संखित्तंसि, उप्पिं विसालंसि,

३०. अहे पलियंकसंठियंसि, मज्झे वरवइरविग्गहियंसि, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि

३१,३२. अणंता जीवघणा उप्पज्जित्ता उप्पज्जित्ता निलीयंति,
'अनन्ताः' परिमाणतः सूक्ष्मादिसाधारणशरीराणां विवक्षितत्वात्, सन्तत्यपेक्षया वाऽनन्ताः जीवसन्ततीनामपर्यवसानत्वात्, जीवाश्च ते घनाश्चानन्तपर्यायसमूहरूपत्वादसंख्येयप्रदेशपिण्डरूपत्वाच्च जीवघनाः,
(वृ० प० २४९)

३३. परित्ता जीवघणा उप्पज्जित्ता-उप्पज्जित्ता निलीयंति ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. अनंत परित्त जीव संबंध थी, काल विशेष प्रबोधो।
तिण सूं अनंत परित्त दिन रात्रि छै, इम मांहोमांहि अविरोधो॥

३५. हिवै लोक स्वरूप कहै अछै, से भूत सद्भूत कहायो।
उपण्णे विगए परिणए, उत्पन्न विगत परिणत पिण थायो॥

**सोरठा**

३६. जे लोक विषे पहिछान, जीव घणां उपजी मरे।
ते सद्भूत विद्यमान, उत्पत्ति धर्मज जोग थी॥
३७. उत्पाद विनशनशील, परिणत अन्य पर्याय करि।
पाम्यो लोक समील, ए पर्याय अपेक्षया॥
३८. लोक संबंधी भाव, द्रव्य अपेक्षा नाश नहिं।
तसु पर्याय कहाव, उत्पाद-विनशनशील है॥
३९. द्रव्य जीव नों ताहि, वलि द्रव्य परमाणू तणो।
उत्पाद विनशन नांहि, पर्याय विणसै ऊपजै॥
४०. अथ ए कवण प्रकार, एवंविध ए लोक नों।
निश्चय करियै सार, आगल तेह कहीजियै॥

४१. *अजीव पुद्गल आदि दे, अस्तित्व धारक जेहो।
तेहनें ऊपजवै करि, वलि विणसवे करि तेहो॥
४२. पर्याय अन्य परिणमवै करी, लोक्कइ—निश्चे कोजे।
पलोक्कइ—प्रकर्षे करी, तेहिज निश्चै करीजै॥

**सोरठा**

४३. ए भूतादिक धर्म, इहविध प्रकर्षे करी।
निश्चै कीजै मर्म, प्रलोक्यते कहियै तसु॥
४४. एहिज यथार्थं नाम, तेहिज देखाड़ता छता।
स्थविरां नैं तिण ठाम, पूछै छै हिव वीर प्रभु॥

४५. *पुद्गलादिक प्रमाणे करि, लोकिय विलोकिय तासो।
लोक कहीजे तेहनें, लोक शब्द वाच्य सुविमासो॥
४६. इम पूछ्यं स्थविर इम उच्चरै, हंता हां भगवंतो!
हे आर्य! तिण अर्थे कह्यो, असंख लोके तं चेव कहंतो॥
४७. पास-अपत्य-स्थविर ते वेला थकी श्रमण भगवंत श्री महावीरो।
त्यांनें प्रत्यक्षपणें जाणै तदा, सर्वज्ञानो सर्वदरिसि धीरो॥

४८. ते स्थविर भगवंत तिण अवसरे, श्रमण भगवंत श्री महावीरो।
त्यांनें नमस्कार वंदना करी, इम बोलै गुणहीरो॥
४९. हे प्रभुजी! तुझ आगलै, च्यार याम थकी पंच यामो।
पडिकमणा सहित धर्म प्रतै, वंछां आदरो विचरवूं तामो॥

*लय : धर्म दलाली चित करै······

३४. यतोऽनन्तपरीत्तजीवसम्बन्धात्कालविशेषा अप्यनन्ताः परीत्ताश्च व्यपदिश्यन्तेऽतो विरोधः परिहृतो भवतीति। (वृ० प० २४९)

३५,३६. अथ लोकमेव स्वरूपत आह— (वृ० प० २४९)

से भूए उप्पण्णे विगए परिणए,
स लोको भूतः—सद्भूतो भवनधर्मयोगात्। (वृ० प० २४९)

३७,३८. परिणतः—पर्यायान्तराणि आपन्नो न तु निरन्वयनाशेन नष्टः। (वृ० प० २४९)

४०. अथ कथमयमेवंविधो निश्चीयते? (वृ० प० २४९)

४१,४२. अजीवैः पुद्गलादिभिः सत्तां बिभ्रद्भिरुत्पद्यमानैर्विगच्छद्भिः परिणमद्भिश्च लोकानन्यभूतैः 'लोक्यते' निश्चीयते 'प्रलोक्यते' प्रकर्षेण निश्चीयते, (वृ० प० २४९)

४३,४४. भूतादिधर्मकोऽयमिति, अत एव यथार्थनामाऽसाविति दर्शयन्नाह— (वृ० प० २४९)

४५. अजीवेहिं लोक्कइ पलोक्कइ, जे लोक्कइ से लोए?

४६. हंता भगवं! से तेणट्ठेणं अज्जो! एवं वुच्चइ—असंखेज्जे लोए अणंता राइंदिया तं चेव।

४७. तप्पभिइं च णं ते पासावच्चेज्जा थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं पच्चभिजाणंति सव्वण्णू सव्वदरिसी। (श० ५।२५५)

४८. तए णं ते थेरा भगवंतो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

४९. इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. अहासुहं देवानुप्रिया ! मा प्रतिबंध करेहो ।
पार्श्व-अपत्य-स्थविर तदा, ज्ञानवंत गुणगेहो ।।

५१. जाव चरम उस्सास निस्सास ते, सिद्धा जाव सर्व दुखक्षीणा ।
केतला इक देवलोक में, ऊपनां तत्व-प्रवीणा ।।

**सोरठा**

५२. पूर्वे आख्यो एह, देवलोक में ऊपनां ।
तेहथी हिवै कहेह, परूपणा सुरलोक नीं ।।

५३. *देवलोक प्रभु ! कतिविधा, जिन कहै च्यार प्रकारो ।
भवनवासी वाणव्यंतरा, जोतिषि वैमानिक सुविचारो ।।

५४. भेद भवणवासी दसविधा, व्यंतर आठ प्रकारो ।
चविधा छै जोतिषि, द्विविधा वैमानिक सारो ।।

**दूहा**

५५. स्यूं ए नगर राजगृह, अंधकार उज्जोय ?
समय पार्श्वशिष्य नीं पृच्छा, रात्रि-दिवस सुरलोय ।।

५६. *सेवं भंते ! सेवं भंते ! प्रभु ! पंचम शतक मझारो ।
नवमा उद्देशा नुं अर्थ ए, प्रवर कह्यु धर प्यारो ।।

**पंचमशते नवमोद्देशकार्थः ।।५।।९।।**

**सोरठा**

५७. नवम उदेशक अंत, वर सुरलोक चतुर्विधा ।
देव विशेष दीपंत, चंद्र तणुं दशमेंज छै ।।

५८. *तिण कालै नें तिण समय, नगरी चम्पा नामो ।
प्रथम उदेशो जिम कह्युं, तिम ए पिण अभिरामो ।।

५९. णवरं एतो विशेष छै, भणवूं चंद्र नुं भावो ।
दसम उदेशक दाखियो, पंचम शतक कहावो ।।

६०. पंच नेऊमी परवरी, ढाल रसाल उदारो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' संपति सारो ।।

**पंचमशते दशमोद्देशकार्थः ।।५।१०।।**

*लय : धर्म दलाली चित करे……

५०. अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ।
(श० ५।२५६)
तए णं ते पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति

५१. जाव चरिमेहिं उस्सास-निस्सासेहिं सिद्धा बुद्धा मुक्का परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा। अत्थेगतिया देवलोएसु उववण्णा । (श० ५।२५७)

५२. अनन्तरं 'देवलोएसु उववन्ना' इत्युक्तमतो देवलोकप्ररूपणसूत्रम्— (वृ० प० २४६)

५३. कइविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तं जहा—
भवणवासी 'वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणियभेदेणं' ।

५४. भवणवासी दसविहा, वाणमंतरा अट्ठविहा, जोतिसिया पंचविहा, वेमाणिया दुविहा ।

५५. किमिदं रायगिहं ति य, उज्जोए अंधयार-समए य ।
पासंतिवासिपुच्छा, रातिदिय देवलोगा य ।।
(श० ५।२५८ संगहणी-गाहा)

५६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ५।२५९)

५७. अनन्तरोद्देशकान्ते देवा उक्ता इति देवविशेषभूतं चन्द्रं समुद्दिश्य दशमोद्देशकमाह—

५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नगरी, जहा पढमिल्लो उद्देसओ तहा नेयव्वो एसो वि,

५९. नवरं—चंदिमा भाणियव्वा । (श० ५।२६०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**गीतक छंद**

१. कह्यु वृत्तिकारे शिल्पकारक, पुरुष को कुशि कर लियै ।
रोहणगिरी नां देश भेदी, सन्मणीज प्रकासियै ।।
२. तिम बुद्ध जन उपदेश करि म्हैं, प्रवर पंचम शत तणां ।
रत्न प्रते भेदी अर्थ बहु जे, कृत-प्रकाश सुहामणां ।।
३. तिमहीज भिक्षू दीर्घमालज,[1] नृपति-इंदु प्रसाद थी ।
पंचम शतक नीं जोड़ रचना, रची अति आह्लाद थी ।।
४. जिन-वयण-रयण अमूल्य है, व्यभिचारि-रहितपणें जिके ।
जिन-आण सिर ऊपर ठवी, समदृष्टि अंगीकृत तिके ।।

१,२. श्री रोहणाद्रेरिव पञ्चमस्य,
शतस्य देवानिव साधुशब्दान् ।
विभिद्य कुश्येव बुधोपदिष्ट्या,
प्रकाशिताः सन्मणिवन्मयाऽर्थाः ।। (वृ० प० २४९)

## ढाल ९६

**सोरठा**

१. पंचम शतक प्रकाश, आख्यो अति आनंद स्यूं ।
वर छट्ठो सुविलास, हिव अवसर आयो तसु ।।
२. उद्देशक दश आद, महावेदन महानिर्जरा ।
आहार तणो विधि वाद, पन्नवण[2] भणी भलावियो ।।

३. महाआश्रव छै तास, बहु पुद्गल नुं उपचय ।
सप्रदेशि सुविमास, अप्रदेशि स्यूं जीव छै ।।

४. तमस्काय अधिकार, नरक उपजवा योग्य ते ।
सालि आदि सुविचार, धान्य योनि स्थिति सातमे ।।
५. पृथ्वी रत्नप्रभादि, कर्मबंध नवमें कह्यु ।
अन्यतीर्थिक संवादि, षष्ठ शते उद्देश दश ।।

*देव जिनेन्द्र दयाल तणां शिष गोयम गणधर गिरवा रे ।
परम प्रीत वर प्रश्न पूछंता, निज-पर-भवदधि तिरवा रे ।
उत्तर स्वाम अमल चित अतिहित, बिहुं शिव-सुन्दर वरवा रे ।
(ध्रुपदं)

६. हे प्रभु ! जे महावेदन पीड़ा, ते महानिर्जरवंतो रे ।
जे महानिर्जर ते महावेदन ? प्रश्न प्रथम ए तंतो रे ।।
७. तथा महावेदन अल्पवेदन मांहि, तेहिज श्रेय पिछाणी ।
जेह प्रशस्त निर्जरा प्रभुजी ? जिन कहै हंता जाणी ।।

१. व्याख्यातं विचित्रार्थं पञ्चमं शतं, अथावसरायातं तथाविधमेव षष्ठमारभ्यते, (वृ० प० २५०)
२-५. वेदण आहार महस्सवे य सपदेस तमुए भविए ।
साली पुढवी कम्म अण्णउत्थि दस छट्ठगम्मि सए ।।
(श० ६।संगहणी-गाहा)

३. 'महस्सवे य' त्ति महाश्रवस्य पुद्गला बध्यन्ते…
'सपएस' त्ति सप्रदेशो जीवोऽप्रदेशो वा
(वृ० प० २५०)
४. भव्यो—नारकत्वादिनोत्पादस्य योग्य…'सालि' त्ति शाल्यादि-धान्यवक्तव्यताऽऽश्रितः (वृ० प० २५०)
५. 'पुढवि' त्ति रत्नप्रभादिपृथिवी वक्तव्यता…'कम्म' त्ति कर्मबन्धाभिधायकः (वृ० प० २५०)

६. से नूणं भंते ! जे महावेदणे से महानिज्जरे ? जे महानिज्जरे से महावेदणे ?
७. महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स य से सेए जे पसत्थ-निज्जराए ?
हंता गोयमा ! जे महावेदणे एवं चेव । (सं० पा०)
(श० ६।१)

१. द्वितीय आचार्य श्री भारीमालजी
२. पण्णवणा पद २८
*लय : लाल हजारी को जामो विराजे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. प्रथम प्रश्न नां उत्तर में प्रभु ! महा उपसर्ग काले जाण्यं ।
द्वितिय-उपसर्ग अनैं विण उपसर्ग, ए बिहुं काले पिछाण्यं ॥

## सोरठा

९. जे महावेदनवंत, ते महानिर्जरवंत इम ।
भाख्यो श्री भगवंत, हिव गोयम स्वामी तदा ॥
१०. ते उत्तर रै मांहि, एह वारता किणविधे ।
इम आशंका ताहि, करता छलाज प्रश्न हिव ॥

११. *छठी सातमी नरक विषे तिम, छै महावेदनवंता ?
जिन कहै हंता इमहिज जाणो, वलि गोयम पूछंता ॥
१२. ते प्रभु ! श्रमण निग्रंथ थकी महानिर्जरावंत अत्यंतो ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, वलि कहै गोयम संतो ॥
१३. ते किण अर्थे ? प्रभु ! इम कहियै, जे महावेदनवंतो ।
ते महानिर्जर जाव प्रशस्त निर्जरा इम पभणंतो ॥
१४. ताम दृष्टांत देइनैं कहै जिन, वस्त्र दोय पिछाणी ।
वस्त्र रंग्यो इक कर्दम रागे, चीकणै कर्दम जाणी ॥
१५. रंग्यो वस्त्र इक खंजण रागे, दीप-कालिमा सरखो ।
गाडा नों वांग तास रंगे रंग्यो, रंग्यो ते खरड़चो परखो ॥
१६. ए बिहुं वस्त्र मांहे पट केहवो, अति दुखे धोवा जोगो ।
कलंक जावा जोग अति दुख करि तसु, कृष्णपणुं अपजोगो ॥

१७. कठिन परिकर्म—चमक उपावणी भांज बेठावणी ताहचो ।
कवण वस्त्र सुखे धोवा योग्य वलि मेल कलंक सुखे जायो ॥

१८. सुखे परिकर्म करवा जोगज, ए बिहुं वस्त्र मांह्यो ।
कर्दम खंजण करिनैं खरड़चो ? इम पूछै जिनरायो ॥
१९. गोतम ताम कहे हे भगवंत ! जे कर्दम खरड़ायो ।
अति दुख धोवा जोग तिको पट, अति दुख करि मल जायो ॥
२०. कष्ट करी परिकर्म करिवा जोग चमक उपावणो ताह्यो ।
एणे विशेषण करिनैं ते पट, अति दुख करि सुध थायो ॥

२१. इण दृष्टांते करि हे गोतम ! नरक पूर्व भव मांह्यो ।
पाप कर्म प्रति गाढा बांध्या, अशुभ परिणाम सूं ताह्यो ॥
२२. गाढीकयाइं—पाप कर्म दृढ आत्मप्रदेशे सांध्या ।
सूई-समूह नैं सणसूत्रे करि, गाढपणैं जिम बांध्या ॥

---

*लय : लाल हजारी को जामो विराजै

८. इह च प्रथमप्रश्नस्योत्तरे महोपसर्गकाले भगवान् महावीरो ज्ञातं, द्वितीयस्यापि स एवोपसर्गानुपसर्गावस्थायामिति । (वृ० प० २५१)

९,१०. यो महावेदनः स महानिर्जर इति यदुक्तं तत्र व्यभिचारं शङ्कमान आह — (वृ० प० २५१)

११. छट्ठ-सत्तमासु णं भंते ! पुढवीसु नेरइया महावेदणा ?
हंता महावेदणा । (श० ६।२)
१२. तेणं भंते ! समणेहिंतो निग्गंथेहिंतो महानिज्जरतरा ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।३)
१३. से केणं खाइ अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जे महावेदणे जाव पसत्थनिज्जराए (सं० पा०)
१४. गोयमा ! से जहानामए दुवे वत्था सिया—एगे वत्थे कद्दमरागरत्ते,
१५. एगे वत्थे खंजणरागरत्ते ।

१६. एएसि णं गोयमा ! दोण्हं वत्थाणं कयरे वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव,
'दुद्धोयतराए' त्ति दुष्करतरधावनप्रक्रियं '''दुर्वाम्यतरकं' दुस्त्याज्यतरकलङ्कम् (वृ० प० २५१)
१७. दुपरिकम्मतराए चेव; कयरे वा वत्थे सुद्धोयतराए चेव, सुवामतराए चेव,
'दुप्परिकम्मतराए' त्ति कष्टकर्त्तव्यतेजोजननभङ्गकरणादिप्रक्रियम् । (वृ० प० २५१)
१८. सुपरिकम्मतराए चेव; जे वा से वत्थे कद्दमरागरत्ते ?
जे वा से वत्थे खंजणरागरत्ते ?
१९. भगवं ! तत्थ णं जे से कद्दमरागरत्ते से णं वत्थे दुद्धोयतराए चेव, दुवामतराए चेव,
२०. दुप्परिकम्मतराए चेव,
कष्टकर्त्तव्यतेजोजननभङ्गकरणादिप्रक्रियं, अनेन च विशेषणत्रयेणापि दुर्विशोध्यम् (वृ० प० २५१)
२१. एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं,
२२. 'गाढीकयाइं' ति आत्मप्रदेशैः सह गाढबद्धानि सनसूत्रगाढबद्धसूचीकलापवत् । (वृ० प० २५१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. चिक्कणीकयाइं--कर्म सूक्ष्म खंध, सरसपणें माहो-मांह्यो ।
गाढ संबंध चीकणा कीधा, माटी नां पिंड जिम ताह्यो ।।

२४. सिलिट्ठीकयाइं--ते निधत्त कीधा, सूत्रे करीनें बंधाणो ।
अग्नि तप्त जिम लोह-शलाका, तास समूह पिछाणो ।।

२५. खिलीभूताइं एह निकाचित, भोगवियांज मुकायो ।
अन्य उपाय सूं एह खपायवा अशक्य कह्या वृत्ति मांह्यो ।।

२६. अतिसय गाढपणें ते वेदन वेदता नारकी भावै ।
नहिं महानिर्जर नहिं महापर्यवसान तिको निर्वावै ।

## दूहा

२७. आख्यूं जे महावेदना, ते महानिर्जर होय ।
विशिष्ट जीव अपेक्षया, तिण कारण ए जोय ।।

२८. यद्यपि जे महानिर्जरा, वेदन पिण महा तास ।
तदपि बहुलपणें करी, ए पिण वचन विमास ।।

२९. श्रमण अजोगी नें वलि, महानिर्जरा थाय ।
तेहनें महावेदन तणी, भजना इम वृत्ति मांय ।।

३०. *दूजो दृष्टांत वलि जिन भाखै, अहिरण नें विषे आमो ।
अयघण करीनें लोहार जिहां, लोह कूटै ते अहिरण नामो ।।

३१. कोइ पुरुष एहवी अहिरण नें, लोहघण करि कूटंतो ।
मोटे मोटे शब्द करीनें, अति परिश्रम करंतो ।।

३२. लोहघण नें पड़िवै करि ऊपनीं, जे ध्वनि शब्द पिछाणी ।
अथवा पुरुष हुंकार रूपे करि, शब्द मोटे मोटे जाणी ।।

३३. मोटे मोटे घोष करीनें, तेह शब्द नें पूठै ।
नाद होवै ते घोष कहीजै, इम अहिरण नें कूटै ।।

३४. मोटे मोटे परंपराघात करि, एह निरंतर थातो ।
घात ताडणा प्रतै कहीजै, ऊपर ऊपर घातो ।।

३५. इहविध अहिरण नें नर कूटै, पिण अहिरण नों त्यांही ।
बादर स्थूल असार पोग्गल नें, दूर करी सकै नांही ।।

३६. इण दृष्टांत करी हे गोतम ! नेरइया जे पापकर्मो ।
गाढीकयाइं जाव कर्म नुं, छेहड़ो न आणै पर्मो ।।

*लय : लाल हजारी को जामो विराजे ···

२३. चिक्कणीकयाइं,
'चिक्कणीकयाइं' त्ति सूक्ष्मकर्मस्कन्धानां सरसतया परस्परं गाढसंबंधकरणतो दुर्भेदीकृतानि तथाविध-मृत्पिंडवत्, (वृ० प० २५१)

२४. सिलिट्ठीकयाइं,
निधत्तानि सूत्रबद्धाग्नितप्तलोहशलाकाकलापवत्, (वृ० प० २५१)

२५. खिलीभूताइं भवंति ।
अनुभूतिव्यतिरिक्तोपायान्तरेण क्षपयितुमशक्यानि निकाचितानीत्यर्थः । (वृ० प० २५१)

२६. संपगाढं पि य णं ते वेदणं वेदेमाणा नो महा-निज्जरा, नो महापज्जवसाणा भवंति ।

२७. तदेवं यो महावेदनः स महानिर्जर इति विशिष्ट-जीवापेक्षमवगन्तव्यम् । (वृ० प० २५१)

२८. यदपि यो महानिर्जरः स महावेदन इत्युक्तं तदपि प्रायिकं । (वृ० प० २५१)

२९. यतो भवस्थयोगी महानिर्जरो महावेदनस्तु भजन-येति । (वृ० प० २५१)

३०. अधिकरणी यत्र लोहकारा अयोघनेन लोहानि कुट्टयन्ति । (वृ० प० २५१)

३१. से जहा वा केइ पुरिसे अहिगरणिं आउडेमाण महया-महया सद्देणं,

३२. अयोघनघातप्रभवेण ध्वनिना पुरुषहुङ्कृतिरूपेण वा । (वृ० प० २५१)

३३. महया-महया घोसेणं,
'घोसेणं' ति तस्यैवानुनादेन (वृ० प० २५१)

३४. महया-महया परंपराघाएणं
परम्परा—निरन्तरता तत्प्रधानो घातः—ताडनं परम्परा-घातस्तेन उपर्युपरिघातेनेत्यर्थः, (वृ० प० २५१)

३५. नो संचाएइ तीसे अहिगरणीए केइ अहाबायरे पोग्गले परिसाडित्तए,

३६. एवामेव गोयमा ! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं जाव नो (सं० पा०) महापज्जवसाणा भवंति ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. वस्त्र दूजा नों उत्तर दे गोयम, हे भगवंत ! शोभायो ।
खंजण करिनैं ते पट खरड्यो, सुख करि ते धोवायो ॥
३८. सुख करि मैल कलंक तसु जावै, वलि सुख करि कहिवायो ।
परिकर्म करिवा योग्य तास विषे, तेज उपावणो ताह्यो ॥
३९. इण दृष्टांत करी हे गोतम ! श्रमण निर्ग्रंथ नैं ताह्यो ।
यथाबादर अति हि स्थूल कर्म खंध, अधिक असार कह्यो ॥

४०. सिढिलीकयाइं कर्म विपाक अछै तसु, जे मंद कोधा ।
वलि निट्ठियाइं कयाइं जे, बलहीन किया सीधा ॥

४१. विप्परिणामियाइं—स्थितिघात अनें रसघातादि करनें ॥
कर्म-विध्वंस हुवै इम शीघ्रज, अतिहि शुद्ध मुनिवर नैं ।

४२. जेतली तेतली वेदन नैं पिण, समचित मुनि वेदंता ।
महानिर्जरा कर्म तणो अंत, निर्वाण फल पावंता ॥
४३. दूजो दृष्टांत वलि जिन भाखै, पुरुष कोई पहिछाणी ।
सूका तृणां नों पूलो अग्नि में, घालै -प्रक्षेपे जाणी ॥
४४. हे गोतम ! सूको तृण-पूलो, न्हाख्यो थको अग्नि मांह्यो ।
शीघ्र भस्म ह्वै ? तब कहै गोयम, हां प्रभु ! भस्मज थायो ॥

४५. इण दृष्टांत करी हे गोतम ! श्रमण निर्ग्रंथ नैं ताह्यो ।
यथाबादर अति स्थूल कर्म खंध, अधिक असार कह्यो ॥
४६. जाव महापज्जवसाणा भवंति, जाव शब्द में जाण ।
सिढिलीकयाइं प्रमुख पाठ है, महानिर्जरा पहिछाणं ॥
४७. तीजो दृष्टांत कहै वलि स्वामी, कोइ पुरुष कहिवायो ।
अग्नि-तप्त अयघम्यो कवेलू, जल-बिंदू जाव ताह्यो ?
४८. हंता, हां प्रभु ! विध्वंस पामै, इहविध गोयम जाणो ।
श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथ नैं जावत, ह्वै महापर्यवसाणो ॥

४९. तिण अर्थे करि जे महावेदन, ते महानिर्जर जाणी ।
जावत श्रेय प्रशस्त निर्जरा, तसु ए न्याय पिछाणी ॥

५०. इगसठ अंक नुं देश कह्यु ए, सरस छन्नूमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ॥

३७. भगवं ! तत्थ जे से खंजणरागरत्ते, से णं वत्थे
सुद्धोयतराए चेव,
३८. सुवामतराए चेव, सुपरिकम्मतराए चेव,

३९. एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं
कम्माइं स्थूलतरस्कन्धान्यसाराणीत्यर्थः
(वृ० प० २५१)

४०. सिढिलीकयाइं, निट्ठियाइं कयाइं,
श्लथीकृतानि मन्दविपाकीकृतानि 'निट्ठियाइं कयाइं'
ति निस्सत्ताकानि विहितानि । (वृ० प० २५१)

४१. विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति ।
विपरिणामं नीतानि स्थितिघातरसघातादिभिः,
(वृ० प० २५१)

४२. जावतियं तावतियं पि णं वेदणं वेदेमाणा महा-
निज्जरा, महापज्जवसाणा भवंति ।

४३. से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि
पक्खिवेज्जा,

४४. से नूणं गोयमा ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि
पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जति ? हंता
मसमसाविज्जति ।

४५. एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं
कम्माइं

४६. जाव (सं० पा०) महापज्जवसाणा भवंति ।

४७. से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि
उदगबिंदु जाव (सं० पा०)

४८. हंता विद्धंसमागच्छइ ।
एवामेव गोयमा ! समणाणं निग्गंथाणं जाव (सं०
पा०) महापज्जवसाणा भवंति

४९. से तेणट्ठेणं जे महावेदणे से महानिज्जरे, जे महा-
निज्जरे से महावेदणे, महावेदणस्स य अप्पवेदणस्स
य सेए जे पसत्थनिज्जराए । (श० ६/४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ९७

### दूहा

१. आखी पूर्वे वेदना, तिका करण थी होय ।
ते माटे कहियै हिवै, करण सूत्र अवलोय ॥
२. हे भदंत ! कतिविध करण ? जिन कहै च्यार प्रकार ।
मनोकरण व्यापार तसु, वचन-करण व्यापार ।
३. काय-करण व्यापार तसु, कर्म-करण सुविचार ॥
तुर्य करण नों अर्थ हिव, आख्यो वृत्ति मझार ॥
४. कर्म विषय जे करण ते, जोव वीर्य कहिवाय ।
बंधन संक्रम आदि दे, निमित्तभूत वृत्ति मांय ॥
५. धर्मसीह इहां इम कह्यु, कर्म संजोगे ताय ।
कर्म बंधाइ ते भणी, कर्म करण कहिवाय ॥
६. यद्यपि तीनूं जोग थी, उपशांत क्षीण सयोग ।
बंधै सातावेदनी, इरियावहि प्रयोग ॥
७. किता करण प्रभु ! नरक में ? जिन कहै एहिज च्यार ।
इम पंचेंद्री सर्व नें, चउविध करण प्रकार ॥
८. पंचेंद्रिय सगला कह्या, दंडक आश्री धार ।
ते सन्नी आश्री अछै, असन्नी में नहिं च्यार ॥
९. एकेन्द्रिय नें करण बे, काय, कर्म ए मर्म ।
विगलेंद्रिय नें तीन है, वचन काय नें कर्म ॥

*अहो गोयमगणि गुणनिला रे, जोवो प्रश्न प्रभु नें पूछ्या भला रे। (ध्रुपदं)

१० स्युं प्रभु ! नारको करण थी रे, असातावेदन वेदंता रे ?
कं अकरण थी दुख वेदना रे, वेदै कष्ट सहंता रे ?
११. श्री जिन भाखं नारकी, करण थकी पहिछाणी ।
वेदै असाता वेदनी, पिण अकरण थी नहिं जाणी ॥
१२. किण अर्थे ? तब जिन कहै, नारकी नें चिहुं करणो ।
मन वच काया करण छै, कर्म करण उच्चरणो ॥
१३. अशुभ ए चिहुं करण करी, करण थी वेदै असातं ।
अकरण थो वेदै नहीं, तिण अर्थे आख्यातं ॥
१४. हे प्रभु ! असुरकुमार नें, करण थकी स्यूं जोयो ।
सातावेदनी वेदता, कै अकरण थी होयो ?

---

* लय : राज पामियो रे करकंडू कंचनपुर तणो रे·····

१. अनन्तरं वेदना उक्ता, सा च करणतो भवतीति करणसूत्रम्— (वृ० प० २५१)
२. कतिविहे णं भंते ! करणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे, वइकरणे,
३. कायकरणे कम्मकरणे । (श० ६/५)
४. कर्मविषयं करणं—जीववीर्यं बन्धनसंक्रमादिनिमित्तभूतं कर्मकरणं । (वृ० प० २५२)
७. नेरइयाणं भंते ! कतिविहे करणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे । (श० ६/६)
एवं पंचिदियाणं सव्वेसि चउव्विहे करणे पण्णत्ते ।
९. एगिंदियाणं दुविहे—कायकरणे य, कम्मकरणे य । विगलिंदियाणं तिविहे—वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे । (श० ६/७)
१०. नेरइयाणं भंते ! किं करणओ असायं वेदणं वेदेंति ? अकरणओ असायं वेदणं वेदेंति ?
११. गोयमा ! नेरइया णं करणओ असायं वेदणं वेदेंति, नो अकरणओ असायं वेदणं वेदेंति । (श० ६/८)
१२ से केणट्ठेणं ? गोयमा ! नेरइयाणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे ।
१३. इच्चेएणं चउव्विहेणं असुभेणं करणेणं नेरइया करणओ अस्सायं वेदणं वेदेंति, नो अकरणओ । से तेणट्ठेणं । (श० ६/९)
१४. असुरकुमारा णं किं करणओ ? अकरणओ ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. श्री जिन भाखै करण थी, पिण अकरण थी नांही।
किण अर्थे ? तब जिन कहै, च्यार करण त्यां मांही॥

१५. गोयमा ! करणओ, नो अकरणओ। (श० ६/१०)
से केणट्ठेणं ? गोयमा ! असुरकुमाराणं चउव्विहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—

१६. मन वच काय कर्म चिउं, शुभ करणे करि सातं।
असुभ करण थी वेदता, अकरण थी न आख्यातं॥

१६. मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, कम्मकरणे। इच्चेएणं सुभेणं करणेणं असुरकुमारा करणओ सातं वेदणं वेदेंति, नो अकरणओ। (श० ६/११)

१७. इम जाव थणियकुमार नें, पृथ्वी नीं इमहिज पृछा।
णवरं एतलो विशेष छै, सांभलज्यो धर इच्छा॥

१७. एवं जाव थणियकुमारा। (श० ६/१२)
पुढवीकाइयाणं एवामेव पुच्छा नवरं।

१८. ए शुभ अशुभ करणे करी, करण थकी पृथ्वीकायो।
वेदै वेदन वेमात्रा करी, अकरण थी न वेदायो॥

१८. इच्चेएणं सुभासुभेणं करणेणं पुढविकाइया करणओ वेमायाए वेदणं वेदेंति, नो अकरणओ। (श० ६/१३)

१९. कदाचित साता प्रतै, कदाचित वेदे असातं।
विविध मात्रा करी वेदता, ते वेमात्रा आख्यातं॥

१९. 'वेमायाए' त्ति विविधमात्रया कदाचित्सातां कदाचिदसातामित्यर्थः। (वृ० प० २५२)

२०. सर्व ऊदारिक नां धणी, करण शुभाशुभ जाणी।
तिण करि वेदन वेदता, वेमात्राइं माणी॥

२०. ओरालियसरीरा सव्वे सुभासुभेणं वेमायाए।

२१. सगलाई जे देवता, शुभ करणे करि सोयो।
साता वेदन वेदता, बहुलपणै अवलोयो॥

२१. देवा सुभेणं सायं। (श० ६/१४)

२२. हे प्रभुजी ! बहु जीव ते, स्यूं महावेदनवंतो।
महानिर्जरा तेहनें ? ए धुर भंग कहंतो॥

२२. जीवा णं भंते ! किं महावेदणा महानिज्जरा ?

२३. महावेदनावंत जे अल्प निर्जरा तासो ?
अल्पवेदनावंत जे महानिर्जरा जासो ?

२३. महावेदणा अप्पनिज्जरा ? अप्पवेदणा महानिज्जरा ?

२४. अल्पवेदनावंत जे, अल्प निर्जरा थायो ?
ए चिउं भंगे पूछियां, उत्तर दे जिनरायो॥

२४. अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ?

२५. कितलाइक जे जीव छै, महावेदनावंतो।
महानिर्जरा पिण तसु, प्रथम भंग ए कथंतो॥

२५. गोयमा ! अत्थेगतिया जीवा महावेदणा महानिज्जरा,

२६. जीव कितायक जाणियै, महावेदनावंतो।
अल्प थोड़ी तसु निर्जरा, भंग दूजे इम हुंतो॥

२६. अत्थेगतिया जीवा महावेदणा अप्पनिज्जरा,

२७. तंत भंगो हिव तीसरो, कितलाइक जे जीवा।
अल्पवेदनावंत छै, महानिर्जर सुअतीवा॥

२७. अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा महानिज्जरा,

२८. जीव किता वलि जाणियै, अल्पवेदनावंतो।
अल्प—थोड़ी तसु निर्जरा, चउथो भंग सोहंतो॥

२८. अत्थेगतिया जीवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा।
(श० ६।१५)

२९. किण अर्थे ? तब जिन कहै, पडिमा अभिग्रहधारी।
ते मुनि नैं महावेदना, महानिर्जरा सारी॥

२९. से केणट्ठेणं ?
गोयमा ! पडिमापडिवन्नए अणगारे महावेदणे महानिज्जरे।

३०. छठी सातमी रा नेरइया, महावदनावंतो।
अल्प—थोड़ी तसु निर्जरा, भंग दूजो ए हुंतो॥

३०. छट्ठ-सत्तमासु पुढवीसु नेरइया महावेदणा अप्पनिज्जरा।

३१. सैलेसी मुनि मोटका, चउदशमें गुणठाणे।
अल्पवेदनावंत ने, महानिर्जरा माणे॥

३१. सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे अप्पवेदणे महानिज्जरे।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

३२. "चउदशमें गुणठाण, अल्प वेदना तसु कही ।
बहुलपणें करि जाण, एहवूं न्याय जणाय छै ।।

३३. मुनि गजसुकुमालादि, दीसै तसुं बहु वेदना ।
ते कारण ए साधि, भजना इहां जणाय छै ।।

३४. अथवा दूजो न्याय, कर्म निर्जरा अति घणो ।
ते देखतां ताय, अल्प वेदना संभवै" ।। (ज० स०)

३५. *पंच अनुत्तर नां सुरा, अल्प-वेदनावंतो ।
अल्प निर्जरा तेहनैं, सेवं भंते ! सेवं भंतो ! ।।

३६. †महावेदना अधिकार पट बे, कर्दम-खंजण खरड़ीइं ।
दृष्टांत अरिहण पूल तृण नों, तप्त लोह कवेलीइं ।।

३७. फुन करण चिउं महावेदना भंग, सेवं भंते ! जाणीइं ।
ए शतक छट्ठै प्रथमुद्देशक, अर्थ एह पिछाणीइं ।।

३५. अणुत्तरोववाइया देवा अप्पवेदणा अप्पनिज्जरा ।
(श० ६।१६)

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ६।१७)

३६,३७. महावेदणे य वत्थे, कद्दम-खंजणकए य अहिगरणी ।
तणहत्थे य कवल्ले, करण-महावेदणा जीवा ।।
(श० ६ संगहणी गाहा)

षष्ठशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।६।१।।

दूहा

३८. जीव वेदनासहित ते, धुर उद्देश विशेष ।
आहारक ते पिण हुवै, हिव ते आहार उद्देश ।।

३९. राजगृह जाव गोयम कहै, आहार उद्देशो जाणी ।
पन्नवण पद अठवीस में, सर्व इहां पहिछाणी ।।

४०. सेवं भंते ! अंक बासठ तणुं, ढाल सत्ताणूमी साची ।
भिक्षु भारिमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' संपति जाची ।।

३८. अनन्तरोद्देशके य एते सवेदना जीवा उक्तास्ते आहारका अपि भवन्तीत्याहारोद्देशकः ।
(वृ० प० २५२)

३९. रायगिहं नगरं जाव एवं वयासी—आहारुद्देसओ जो पण्णवणाए (पद २८) सो सव्वो निरवसेसो नेयव्वो ।
(श० ६।१८)

४०. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ६।१९)

षष्ठशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।६।२।।

* लय : राज पामियो रे करकंडू कंचनपुर तणा रे
† लय : पूज मोटा भांजै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : ९८

### दूहा

१. द्वितिय उद्देशे पुद्गला, आहार थकी चिंतित ।
इहां ते बंधादिक बहु, कहियै अर्थ विचित्त ।।
२. तृतीय उद्देशक आदि में, संग्रह अर्थ तमाम ।
बिहुं गाथाइं करि कह्या, बीस द्वार नां नाम ।।
३. महाकर्म छै तेहनैं, कर्म बंध बहु थाव ।
पट नें पुद्गल उपचय, स्यूं प्रयोग स्वभाव ?
४. पट नें पुद्गल उपचय, आदि सहित सुविचार ।
आठ कर्म नीं स्थिति कहो, चउथा द्वार मभार ।।
५. कर्म आठ बंधै वलि, वेद त्रिहुं नं संध ।
संजत समदृष्टी तणैं, सन्नी भव्य नें बंध ।।
६. चिउ दर्शण पर्याप्त नें, भासक परित्त कहाय ।
ज्ञान जोग उपयोगवंत, स्यूं अठकर्म बंधाय ?
७. आहारक सूक्षम चरम में, अष्ट कर्म स्यूं बंध ?
अल्पबहुत्व ए सहु तणी, द्वार बीस ए संध ।।
८. संक्षेपे करि ए कह्या, बीस द्वार नां नाम ।
जुआ-जुआ विस्तार करि, हिव कहियै छै ताम ।।

९. *मेरा स्वामी बे, महाकर्म छै तास. महाक्रिया छै जेहनैं ।
मेरा स्वामी बे महा आश्रव छै जास, महावेदन छै जेहनैं ।।
१०. †स्थिती आदि अपेक्षया, महाकर्म जेहनें जाणियं ।
फुन कायिकादिक क्रिया मोटी, तेहनैं पहिचाणियं ।।
११. मिथ्यात प्रमुखज जबर आश्रव, कर्म बंध नो हेतु जसु ।
महावेदना महापीड़ा, वृत्तिकार कह्यु इसुं ।।
१२. *एहवा जीव नै ताय, सहु दिशि थी पुद्गल लह्या ।
बज्झंति तसु थाय, चिज्जंति उवचिज्जंति कह्या ।।

### सोरठा

१३. सर्व थकी सुविशेष, ते सघली दिश नैं विषे ।
सघला जीव प्रदेश, वज्झंति संकलन थी ।।
१४. वज्झंति संलग्न, चिज्जंति नो अर्थ इम ।
संचित करै अभग्न, आतम अघ-बन्धन थकी ।।
१५. उवचिज्जंति ताहि, ते निषेक रचना थकी ।
प्रथम अर्थ वृत्ति मांहि, द्वितिय अर्थ कहियै हिवे ।।

---

१,२. अनन्तरोद्देशके पुद्गला आहारतश्चिन्तिता, इह तु बन्धादित इत्येवं सम्बन्धस्य तृतीयोद्देशकस्यादावर्थ-संग्रहगाथाद्वयम्— (वृ० प० २५२)

३-७. बहुकम्म वत्थपोग्गल-पयोगसा-वीससा य सादीए ।
कम्मट्ठिति त्थि संजय सम्मदिट्ठी य सन्नी य ।।
भविए दंसणपज्जत्त भासय परित्ते नाण जोगे य ।
उवओगाहारग-सुहुम-चरिमबंधे य अप्पबहुं ।।
(श० ६, उ० ३ संगहणी गाहा १,२)

९. से नूणं भंते ! महाकम्मस्स, महाकिरियस्स, महासवस्स, महावेदणस्स

१०. महाकर्मणः स्थित्याद्यपेक्षया 'महाक्रियस्य' अलघुकायिक्यादिक्रियस्य । (वृ० प० २५३)

११. बृहन्मिथ्यात्वादिकर्मबन्धहेतुकस्य 'महावेदनस्य' महापीडस्य । (वृ० प० २५३)

१२. सव्वओ पोग्गला बज्झंति, सव्वओ पोग्गला चिज्जंति, सव्वओ पोग्गला उवचिज्जंति ।

१३. 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु सर्वान् वा जीवप्रदेशानाश्रित्य बध्यन्ते आसङ्कलनतः । (वृ० प० २५३)

१४ चीयन्ते—बन्धनतः । (वृ० प० २५३)

१५. उपचीयन्ते—निषेकरचनतः । (वृ० प० २५३)

---

* लय : स्वामी भाखै बे

† लय : पूज मोटा भांजे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. तथा वज्झंति बंध, चिज्जंति ते निधत्त थी ।
उवचिज्जंति संध, निकाचित थी इम कह्य ॥

१७. *सदा निरंतर सोय, पुद्गल संकलन थी बंध करै ।
सदा निरंतर जोय, पुद्गल चय उपचय धरै ॥

१८. सदा निरंतर तास, बाह्य-आतम -तनु तेहनों ।
दुष्ट रूपपणें जास, शरीर परिणमैं जेहनों ॥

१९. भूंडा वर्णपणैं देख, वलि दुर्गन्धपणु लहै ।
भूंडा रसपणैं पेख, भूंडा फर्शपणैं रहै ॥

२०. अनिष्ट अणवंछनेतु, अकांत अणसुंदरपणें ।
अप्रिय अप्रेम हेतु, अशुभ अमंगलपणैं घणें ॥

२१. अमणुन्न ते अमनोज्ञ, मन स्यूं पिण सुन्दर जाणें नहीं ।
अमणामत्ताए आरोग्य, मनसा सुमिरण हेत हो ॥

२२. अणिच्छियत्ताए जास, पामवा नीं वांछा नहिं करै ।
अभिज्झियत्ताए तास, ते ऊपर लोभ न अंश धरै ॥

२३. अहत्ताए अवलोय, परिणमैं तेह जघन्यपणैं ।
नो उड्ढत्ताए होय, मुख्यपणैं तसु नहिं गिणै ॥

२४. दुःखपणें वार वार परिणमैं बहु कर्म नों धणी ।
सुख नहि पामैं सार ? जिन कहै हंता तिम भणी ॥

२५. किण अर्थे जगनाथ ! जिन कहै दृष्टांत देय नैं ।
वस्त्र एक विख्यात, भोगवियो नहि तेहनैं ॥

२६. अथवा भोगव्यो तास, धोयो ते वस्त्र पखालियो ।
तथा तंतुगत जास, तंत्र थी तुरत उतारियो ॥

२७. अनुक्रमैं वस्त्र तेह, भोगवतांज कहाइयै ।
सर्व थकी पट जेह, पुद्गल मेल भराइयै ॥

१६. अथवा बध्यन्ते—बन्धनतः, चीयन्ते—निधत्ततः, उपचीयन्ते—निकाचनतः । (वृ० प० २५३)

१७. सया समियं पोग्गला बज्झंति, सया समियं पोग्गला चिज्जंति, सया समियं पोग्गला उवचिज्जंति

१८. सया समियं च णं तस्स आया दुरूवत्ताए
यस्य जीवस्य पुद्गला बध्यन्ते तस्यात्मा बाह्यात्मा शरीरमित्यर्थः (वृ० प० २५३)

१९. दुवण्णत्ताए दुगंधत्ताए दुरसत्ताए दुफासत्ताए,

२०. अणिट्ठत्ताए अकंतत्ताए अप्पियत्ताए असुभत्ताए,
'अणिट्ठत्ताए' त्ति इच्छाया अविषयतया, 'अकंतत्ताए' त्ति असुन्दरतया, 'अप्पियत्ताए' त्ति अप्रेमहेतुतया 'असुभत्ताए' त्ति अमङ्गल्यतयेत्यर्थः । (वृ प० २५३)

२१. अमणुण्णत्ताए अमणामत्ताए
'अमणुन्नत्ताए' त्ति न मनसा—भावतो ज्ञायते सुन्दरोऽयमित्यमनोज्ञस्तद्भावस्तत्ता तया, 'अमणामत्ताए' त्ति न मनसा अम्यते—गम्यते संस्मरणतोऽमनोऽम्यस्तद्भावस्तत्ता तया । (वृ० प० २५३)

२२. अणिच्छियत्ताए अभिज्झियत्ताए
अनीप्सिततया प्राप्तुमनभिवाञ्छितत्वेन 'अभिज्झियत्ताए' त्ति भिध्या—लोभः सा संजाता यत्र सो भिध्यितो न भिध्यितोऽभिध्यितस्तद्भावस्तत्ता तया । (वृ० प० २५३)

२३. अहत्ताए—नो उड्ढत्ताए,
'अहत्ताए' त्ति जघन्यतया, नो 'उड्ढत्ताए' त्ति न मुख्यतया, (वृ० प० २५३,२५४)

२४. दुक्खत्ताए—नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?
हंता गोयमा ! महाकम्मस्स तं चेव ।
(श० ६/२०)

२५. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स अहयस्स वा,
'अहयस्स वा' त्ति अपरिभुक्तस्य । (वृ० प० २५४)

२६. धोयस्स वा, तंतुग्गयस्स वा
'धोयस्स व' त्ति परिभुज्याऽपि प्रक्षालितस्य, तंतुगयस्स व' त्ति तन्त्रात्—तुरीवेमादेरपनीतमात्रस्य, । (वृ० प० २५४)

२७. आणुपुव्वीए परिभुज्जमाणस्स सव्वओ पोग्गला बज्झंति,

* लय : स्वामी भाखै वे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. सर्व थकी वलि जोय, पुद्‌गल मैल तणा चिणैं।
जावत परिणमैं सोय, वस्त्र तेह अशुभपणैं॥

२८. सव्वओ पोग्गला चिज्जंति जाव परिणमंति।

### सोरठा

२९. वज्झंति इत्यादि, पद-त्रय थकी यथोत्तरं।
पट-पुद्‌गल संवादि, कहि संबंध-प्रकर्षता॥

२९. 'बज्झंती' त्यादिना पदत्रयेणेह वस्त्रस्य पुद्‌गलानां च यथोत्तरं सम्बन्धप्रकर्ष उक्तः। (वृ० प० २५४)

३०. *जाव शब्द में जाण, पाठ पूर्व सहु लीजियै।
परिणमैं जिहां लग आण, तिण अर्थेज कहीजियै॥

३०. से तेणट्ठेणं। (श० ६/२१)

३१. अल्प कर्म छै तास, अल्प क्रिया छै जेहनैं।
अल्प आश्रव छै जास, अल्प वेदन छै तेहनैं॥

३१. से नूणं भंते ! अप्पकम्मस्स, अप्पकिरियस्स, अप्पासवस्स, अप्पवेदणस्स

३२. एहवा जीव नैं ताय, सर्व थकी पुद्‌गल वही।
भिज्जंति भेद पाय, पूर्व संबंध तज सही॥

३२. सव्वओ पोग्गला भिज्जंति,
''भिज्जंति' त्ति प्राक्तनसम्बन्धविशेषत्यागात्,
(वृ० प० २५४)

३३. पुद्‌गल सर्व थी तेह, छिज्जंति छेदपणुं लहै।
सर्व थकी वलि जेह, विद्धंसंति ते थोड़ा रहै॥

३३. सव्वओ पोग्गला छिज्जंति, सव्वओ पोग्गला विद्धंसंति,
'विद्धंसति' त्ति ततोऽधः पातात्। (वृ० प० २५४)

३४. पुद्‌गल सर्व थो जाण, परिविद्धंसंति कहीजियै।
समस्तपणं पिछाण, विध्वंसपणुं लहीजियै॥

३४. सव्वओ पोग्गला परिविद्धंसति,
'परिविद्धंसंति' त्ति निःशेषतया पातात्।
(वृ० प० २५४)

३५. सदा निरंतर पेख, पुद्‌गल भेद सुदेखियै।
छेद विध्वंस विशेख, समस्त विध्वंस विशेखियै॥

३५. सया समियं पोग्गला भिज्जंति, सया समियं पोग्गला छिज्जंति, सया समियं पोग्गला विद्धंसंति, सया समियं पोग्गला परिविद्धंसंति,

३६. सदा निरंतर तास, बाह्य-आतम—तनुं तेहनों।
भला रूपपणै जास, शरीर परिणमैं जेहनों॥

३६. सया समियं च णं तस्स आया सुरूवत्ताए

३७. प्रशस्त सर्व कहंत, यावत सुखपणैं सही।
बार बार परिणमंत, पिण दुखपणै परिणमैं नहीं॥

३७. पसत्थं नेयव्वं जाव सुहत्ताए (सं० पा०)—नो दुक्खत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ?

३८. हंता गोयम ! जान, जाव परिणमैं सुखपणैं।
किण अर्थे भगवान ! हिव जिन उत्तर इम भणैं॥

३८. हंता गोयमा ! जाव परिणमंति। (श० ६/२२)
से केणट्ठेणं ?

३९. यथानाम दृष्टांत, जल्लियस्स मलयुक्त वस्त्र नैं।
पंकियस्स ते कहंत, आर्द्र मल बहु जिह तणैं॥

३९. गोयमा ! से जहानामए वत्थस्स जल्लियस्स वा, पंकियस्स वा,
'जल्लियस्स' त्ति मलयुक्तस्य, 'पंकियस्स' त्ति आर्द्रमलोपेतस्य, (वृ० प० २५४)

४०. मइल्लियस्स मल कठिन्न, रइलियस्स रज-युक्त नैं।
अनुक्रम पट नैं जन्न, शुद्ध करतां उपक्रम घनैं॥

४०. मइल्लियस्स वा, रइल्लियस्स वा आणुपुव्वीए परिकम्मिज्जमाणस्स
'मइल्लियस्स' त्ति कठिनमलयुक्तस्य, 'रइल्लियस्स' त्ति रजोयुक्तस्य। 'परिकम्मिज्जमाणस्स' त्ति क्रियमाणशोधनार्थोपक्रमस्य। (वृ० प० २५४)

४१. निर्मल उदक सूं ताम, ते पट धोवंतां वही।
सर्व थकी अभिराम, पुद्‌गल भेद पामै सही॥

४१. सुद्धेणं वारिणा धोव्वेमाणस्स सव्वओ पोग्गला भिज्जंति

* लय : स्वामी म्हारा बे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. यावत परिणमैं जाण, वस्त्र तिकोहिज शुभपणें।
तिण अर्थे पहिछाण, प्रथम द्वार इह विध भणें।।
४३. देश त्रेसठ अंक आय, ढाल अठाणूमीं कही।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय, 'जय-जश' सुख संपति लही।।

४२. जाव परिणमंति। से तेणट्ठेणं। (श० ६/२३)

## ढाल : ९९

### दूहा

१. पट नें प्रभु! पुद्गल तणो उपचय—वृद्धि कहाय।
प्रयोग पुरुष व्यापार करि, तथा स्वभावे थाय।।

१. वत्थस्स णं भंते! पोग्गलोवचए किं पयोगसा? वीससा?
'प्रयोगेण' पुरुषव्यापारेण विस्रसया स्वभावेनेति। (वृ० प० २५४)

२. जिन कहै पुरुष व्यापार करि, पट-पुद्गल वृद्धि पाय।
स्वभाव करि पिण छै वलि, हिव गोतम पूछाय।।

२. गोयमा! पयोगसा वि, वीससा वि। (श० ६/२४)

३. जिह विध प्रभुजी! पट तणै, पुद्गल-उपचय जोय।
पुरुष व्यापार प्रयोग करि, स्वभाव करि पिण होय।।

३. जहा णं भंते! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए पयोगसा वि, वीससा वि,

४. तिह विध प्रभुजी! जीव रै, कर्मोपचय वृद्धि कहाय।
त्रिहुं प्रयोग करके हुवै, कै स्वभाव कर थाय?

४. तहा णं जीवाणं कम्मोवचए किं पयोगसा? वीससा?

५. जिन कहै जीव व्यापार करि, कर्मबंध अवलोय।
स्वभाव करि कर्मां तणो, बंध नहीं छै कोय।।

५. गोयमा! पयोगसा, नो वीससा। (श० ६/२५)

६. स्वभाव थी जो बंध हुवै, तो सिद्ध चउदम ठाण।
तेहनैं पिण कर्मां तणो, बंध प्रसंग पिछाण।।

७. किण अर्थे? तब जिन कहै, जीव तणैं सुविचार।
त्रिविध प्रयोग परूपिया, मन वच काय व्यापार।।

७. से केणट्ठेणं? गोयमा! जीवाणं तिविहे पयोगे पण्णत्ते, तं जहा—मणप्पयोगे, वइप्पयोगे, कायप्पयोगे।

८. ए त्रिहुं व्यापारे करी, बहु जीवां रै जोय।
कर्म वृद्धि प्रयोग करि, स्वभाव थी नहिं होय।।

८. इच्चेएणं तिविहेणं पयोगेणं जीवाणं कम्मोवचए पयोगसा नो वीससा।

९. इम सहु पंचेंद्री तणैं, त्रिहुं प्रयोग कर्म-बंध।
पंचेंद्रिय दंडक मझै, सन्नी आश्री संध।।

९. एवं सव्वेसिं पंचिंदियाणं तिविहे पयोगे भाणियव्वे।

१०. इक प्रयोग करि कर्म वृद्धि, एकेंद्रिय नें होय।
काय वच दोय प्रयोग करि, विकलेंद्रिय नें जोय।।

१०. पुढवीकाइयाणं एगविहेणं पयोगेणं एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। विगलिंदियाणं दुविहे पयोगे पण्णत्ते, तं जहा—वइपयोगे, कायपयोगे य।

११. तिण अर्थे यावत कह्यो, स्वभाव थी नहि होय।
इम जे प्रयोग जेहनैं, जाव वैमानिक जोय।।

११. से तेणट्ठेणं जाव नो (सं० पा०) वीससा। एवं जस्स जो पयोगो जाव वेमाणियाणं। (श० ६/२६)

१२. "जोग अपेक्षा इहां कह्या, मन वच काय संवादि।
कर्म बंध हेतू वलि, न कह्या मिथ्यात्वादि।।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. आश्रव पांचू जिन कह्या, पंचम ठाणे पेख।
वलि समवायंग नै विषे, मिथ्यात्वादि अशेख।।
१४. जीव तणो व्यापार ए, जोग विना अवदात।
मिथ्यात्वादिक नैं विषे, छै तसु इहां न आत।।

१५. जीव क्रिया नां भेद बे, ठाणंग दूजै ठाण।
धुर सम्यक्त्व क्रिया कही, क्रिया मिथ्यात्व पिछाण।।

**सोरठा**

१६. सम्यक्त्व तत्वश्रद्धान, ते जीव व्यापारपणां थकी।
क्रिया कहीजै जान, सम्यक्त्व किरिया ते भणी।।
१७. मिथ्या अतत्व श्रद्धान, ते पिण जीव व्यापार छै।
मिथ्यात्व किरिया जान, प्रथम उद्देशक वृत्ति में।।
१८. ए कह्यो जीव व्यापार, पिण जोगरूप ए छै नथी।
त्रिहुं जोगां थी न्यार, तेहनों कथन नथी इहां।।
१९. अव्रत नैं प्रमाद, वलि कषाय आश्रव थकी।
कर्मबंध संवाद, ए पिण जीव परिणाम छै।।
२०. जीव परिणाम व्यापार, ए च्यारूं आश्रव तिके।
त्रिहुं जोगां थी न्यार, तास कथन न कियो इहां।।
२१. आख्या तीन प्रयोग, मन वचन काया तणा।
ए छै आश्रव जोग, तेहनों कथन इहां कियो।।"
[ज० स०]

*प्रभु ! वीनतड़ी अवधार जी, वर प्रश्न गोयम हद कीधोजी।
कांइ दे। देवेन्द्र दयालजो, उत्तर देवै सीधोजी।।ध्रुपदम्।।

२२. वस्त्र नैं पुद्गल तणो, उपचय---वृद्धि थायोजो।
आदि-सहित अंत-सहीत छै ? ए धुर भंग पुछायोजी।।
२३. आदि-सहित अंत-रहित छै ? कै अनादि अंत-सहीतो।
कै अनादि अंत-रहित छै ? ए चिहुं भंग प्रतीतो।।
२४. ताम कहै जिन पट तणैं, पुद्गल उपचय थायो।
आदि-सहित अंत-सहित छे, धोयां उतरै ते न्यायो।।
२५. सादि रु अंत-रहित नहीं, नहीं अनादि सअंतो।
आदि-रहित अंत-रहित ही, ए पिण भंग न हुंतो।।
२६. जिम प्रभुजी ! वस्त्र तणैं, पुद्गल उपचय थायो।
सादि रु अंत-सहित छै, त्रिहुं भंगे न कहायो।।

२७. तिमहिज बहु जीवां तणैं, कर्म नुं उपचय होयो।
चिउं भंगे पूछा करी, हिव जिन उत्तर जोयो।।

*लय : कुशल देश सुहामणो

१३. पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा---मिच्छत्तं, अविरती, पमादो, कसाया, जोगा। (ठाणं ५/१०९)
पंच आसवदारा पण्णत्ता तं जहा—मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा। (समवाओ ५।४)
१५. जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मत्त-किरिया चेव, मिच्छत्तकिरिया चेव। (ठाणं २।३)

१६. सम्यक्त्वं—तत्त्वश्रद्धानं तदेव जीवव्यापारात् क्रिया सम्यक्त्वक्रिया (ठाणं वृ० प० ३७)
१७. एवं मिथ्यात्वक्रियाऽपि, नवरं मिथ्यात्वम् —अतत्त्व-श्रद्धानं तदपि जीवव्यापार एवेति (ठाणं वृ० प० ३७)

२२. वत्थस्स णं भंते ! पोग्गलोवचए किं सादीए सपज्ज-वसिए ?
२३. सादीए अपज्जवसिए ? अणादीए सपज्जवसिए ? अणादीए अपज्जवसिए ?
२४. गोयमा ! वत्थस्स णं पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज-वसिए,
२५. नो सादीए अपज्जवसिए, नो अणादीए सपज्जवसिए नो अणादीए अपज्जवसिए। (श० ६।२७)
२६. जहा णं भंते ! वत्थस्स पोग्गलोवचए सादीए सपज्ज-वसिए, नो सादीए अपज्जवसिए, नो अणादीए सपज्जवसिए, नो अणादीए अपज्जवसिए,
२७. तहा णं जीवाणं कम्मोवचए पुच्छा।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. केतलाएक जीवां तणें, कर्म नों उपचय थायो।
आदि-सहित अंत-सहित ते, ए धुर भंगो पायो॥
२९. केतलाएक जीवां तणें, अनादि अंत-सहीतो।
केतलाएक जीवां तणें, अनादि अंत-रहीतो॥
३०. निश्चै न ह्वै जीवां तणें, कर्म नों उपचय ताह्यो।
सादि रु अंत-रहित ते, ए दूजो भंग न थायो॥
३१. किण अर्थे? तब जिन कहै, इरियावहि सुवदीतो।
उपचय तेह कर्म तणो, सादि रु अंत-सहीतो॥

२८. गोयमा! अत्थेगतियाणं जीवाणं कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए,
२९. अत्थेगतियाणं अणादीए सपज्जवसिए, अत्थेगतियाणं अणादीए अपज्जवसिए,
३०. नो चेव णं जीवाणं कम्मोवचए सादीए अपज्जवसिए। (श० ६।२८)
३१. से केणट्ठेणं? गोयमा! इरियावहियबंधयस्स कम्मोवचए सादीए सपज्जवसिए,

## सोरठा

३२. इरियावहि नो बंध, इग्यारम बारम तेरमैं।
त्रिहुं गुणठाणे संध, आदि-सहित अंत-सहित ते॥
३३. इरियावहि संवादि, पूर्वे कदही नहिं बंध्यो।
तेह बंधवै सादि, अंत गुणठाणें चवदमैं॥

३२,३३. ईर्यापथो—गमनमार्गस्तत्र भवमैर्यापथिकं केवलयोगप्रयोगप्रत्ययं कर्मेत्यर्थः तद्बन्धकस्योपशान्तमोहस्य क्षीणमोहस्य सयोगिकेवलिनश्चेत्यर्थः, ऐर्यापथिककर्मणो हि अबद्धपूर्वस्य बन्धनात् सादित्वं, अयोग्यवस्थायां श्रेणिप्रतिपाते वाऽबन्धनात् सपर्यवसितत्वं। (वृ० प० २५५)

३४. *कर्मोपचय भवसिद्धिया[1] नै, अनादि अंत-सहीतो।
मोक्षगामी जे जीव छै, ते आश्रयी सुप्रतीतो॥
३५. अभवसिद्धिया नैं अछै, कर्म नुं उपचय भारी।
अनादि अंत-रहित ते, तिण अर्थे सुविचारी॥
३६. पट नैं स्यूं कहियै प्रभु! सादि रु अंतसहीतो?
चउभंगे पूछा करी, जिन उत्तर सुवदीतो॥
३७. वस्त्र आदि-सहित छै, अंत-सहित पट होयो।
तीनूं भांगा थाकता[2], ते पावे नहि कोयो॥
३८. प्रभु! आदि-सहित जिम पट अछै, अंत-सहित पिण जेहो।
शेष त्रिहुं भंगा तिके, तास निषेध करेहो॥

३४. भवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए सपज्जवसिए,
३५. अभवसिद्धियस्स कम्मोवचए अणादीए अपज्जवसिए। से तेणट्ठेणं। (श० ६।२९)
३६. वत्थे णं भंते! किं सादीए सपज्जवसिए—चउभंगो?
३७. गोयमा! वत्थे सादीए सपज्जवसिए, अवसेसा 'तिण्णि वि' पडिसेहेयव्वा। (श० ६।३०)
३८. जहा णं भंते! वत्थे सादीए सपज्जवसिए, नो सादीए अपज्जवसिए, नो अणादीए सपज्जवसिए, नो अणादीए अपज्जवसिए,

३९. तिम जीवा स्यूं सादिया-अंत-सहित कहाया।
चउभंगे पूछा कियां, तब भाखै जिनराया॥
४०. जीव कितायक सादिया-अंत-सहितज होई।
च्यारूंई भंगा जिके, भणवा जिन वच जोई॥
४१. किण अर्थे? तब जिन कहै, नरक तिरि मनु देवा।
ए गति आगति आश्रयी, सादि-सअंत कहेवा॥

३९. तहा णं जीवा किं सादीया सपज्जवसिया? चउभंगो — पुच्छा।
४०. गोयमा! अत्थेगतिया सादीया सपज्जवसिया—चत्तारि वि भाणियव्वा। (श० ६।३१)
४१. से केणट्ठेणं? गोयमा! नेरतिय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा गतिरागतिं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया।

## सोरठा

४२. नरकादिक रै मांय, सादि गमन आश्री अछै।
वलि आगमन कराय, ते आश्रयी सअंत छै॥

४२. नारकादिगतौ गमनमाश्रित्य सादयः—आगमनमाश्रित्य सपर्यवसिताः। (वृ० प० २५५)

---

*लय : कुशलदेश सुहामणो

१. भव्य २. अवशेष



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. सिद्धा गति आश्री तसु, आदि-सहित कहिवायो।
अंत-रहित कह्या वलि, अल्पकाल पेक्षायो॥

**सोरठा**

४४. "उत्तराध्येन मझार षटतीसम अध्ययन में।
पैंसठमी सुविचार गाथा में अधिकार ए॥
४५. वांछित इक सिद्धापेक्षाय, आदि-सहित अंत-रहित छै।
सहु सिद्ध आश्री ताय, आदि-रहित अंत-रहित ए"॥
(ज० स०)

४६. *भव्यपणां नीं लब्धि आश्रयी, भवसिद्धिया नैं ताह्यो।
अनादि अंत-सहित छै, ए मुक्तिगामी कहिवायो॥

४७. अभवसिद्धिया जीवड़ा, संसार आश्री जाणी।
अनादि अंत-रहित छै, तिण अर्थे इम वाणी॥
४८. कर्म प्रकृति प्रभु! केतली? आठ कहै जिनरायो।
ज्ञानावरणी आदि दे, यावत वलि अंतरायो॥

४९. ज्ञानावरणी कर्म नीं, बंध-स्थिति केतलो कालो?
श्री जिन भाखै जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त निहालो॥
५०. उत्कृष्टी ए तीस छै, सागर कोड़ाकोड़ो।
तीन सहस्र वर्षां तणो, काल अबाधा जोड़ो॥

**दूहा**

५१. कर्म उदय बाधा कह्यु, कर्म उदय नहिं आय।
तेह अबाधा नुं अरथ, बंध उदय बिच ताय॥
५२. "उत्कृष्टी स्थिति नों बंध्यो, ज्ञानावरणो जेह।
तीन सहस्र वर्षां लगै, उदय न आवै तेह॥
५३. तिण सूं कर्म नां बंध नुं, अनैं उदय नों काल।
बीच अबाधा काल ए, तीन सहस्र वर्ष न्हाल"॥
(ज० स०)

५४. तेह अबाधा ऊण जे, कर्म-स्थिति छै जेह।
कर्म-निषेक हुवै तसु, उदय आयां थी एह॥

५५. कर्म दलिक नैं भोगवा, तसु रचना सुविशेख।
कर्म निषेकज नाम तसु, प्रवर न्याय संपेख॥
५६. प्रथम समय बहु भोगवै, द्वितिय समय वलि जाण।
तेहथी थोड़ु भोगवै, तीजै अल्प पिछाण॥

*लय : कुशलदेश सुहामणो

४३. सिद्धा गति पडुच्च सादिया अपज्जवसिया,

४५. एगत्तेण साईया, अपज्जवसिया वि य।
पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसिया वि य॥
(उत्तर० ३६।६५)

४६. भवसिद्धिया लद्धि पडुच्च अणादीया सपज्जवसिया,
'भवसिद्धिया लद्धि' मित्यादि, भवसिद्धिकानां भव्यत्वलब्धिः सिद्धत्वेऽपैनीति कृत्वाऽनादिसपर्यवसिता चेति। (वृ० प० २५५)

४७. अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणादीया अपज्जवसिया। से तेणट्ठेणं। (श० ६।३२)

४८. कति णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ?
गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
नाणावरणिज्जं दरिसणावरणिज्जं जाव (सं० पा०) अंतराइयं। (श० ६।३३)

४९. नाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स केवतियं कालं बंधट्ठिती पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

५०. उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, तिण्णि य वाससहस्साइं अबाहा,

५१. बाधा—कर्मण उदयः न बाधा अबाधा—कर्मणो बन्धस्योदयस्य चान्तरं। (वृ० प० २५५)

५४. अबाहूणिया कम्मट्ठिती—कम्मनिसेओ।
अबाधया—उक्तलक्षणया ऊनिका अबाधोनिका कर्मस्थितिः कर्मावस्थानकाल उक्तलक्षणः कर्मनिषेको भवति। (वृ० प० २५५)

५५. तत्र कर्मनिषेको नाम कर्मदलिकस्यानुभवनार्थं रचनाविशेषः। (वृ० प० २५५)

५६. तत्र च प्रथमसमये बहुकं निषिञ्चति द्वितीयसमये विशेषहीनं तृतीयसमये विशेषहीनम्,
(वृ० प० २५५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. इह विध भोगवतां छतां, चरम समय अवधार ।
अतिही अल्पज भोगवै, ए निषेक सुविचार ।।

५८. *दर्शणावरणी दूसरो, इणहिज विध अवलोयो ।
जघन्य स्थिति वेदनी तणी, कहियै समया दोयो ।।

५९. ग्यारम बारम तेरमें, गुणठाणें ए बंधो ।
भेद सातावेदनी तणो, इरियावहि जिनचंदो ।।

६०. स्थिति समय बे जेहनी, पढम समय बंध पत्तो ।
बीजे समये भोगवै, केवल जोग निमित्तो ।।

६१. सकषाई रै सातावेदनी, बंधै ए संपरायो ।
द्वादश मुहूर्त्त जघन्य थी, तेवीसमां[1] पद मांह्यो ।।

६२. उत्कृष्ट स्थिति वेदनी तणी, ज्ञानावरणी तिम जाणो ।
जघन्य स्थिति मोहणी तणी, अंतर्मुहूर्त्त पिछाणो ।।

६३. उत्कृष्ट स्थिति मोहणी तणी, सित्तर सागर कोड़ाकोड़ो ।।
सात सहस्र वर्षां तणो, काल अबाधा जोड़ो ।।

६४. जघन्य स्थिति आउखा तणी, अंतर्मुहूर्त्त आखी ।
उत्कृष्टी वलि तेहनीं, सागर तेतीस भाखी ।।

६५. पूर्व कोड़ तणो वलि, अधिक तीजो भाग जोयो ।
कर्म-स्थिति एहनें विषे, कर्म-निषेकज होयो ।।

६६. नाम गोत्र नीं स्थिति कही, जघन्य मुहूर्त्त अठ जोड़ो ।
उत्कृष्टी स्थिति तेहनीं, बीस सागर कोड़ाकोड़ो ।

६७. दोय सहस्र वर्षां तणो, काल अबाधा आख्यो ।
अबाधा ऊणी स्थिति विषे, कर्म-निषेकज भाख्यो ।।

६८. स्थिति कर्म अंतराय नीं, ज्ञानावरणी जेमो ।
तुर्य द्वार ए आखियो, सुध सरध्यां सुख खेमो ।।

६९. कर्म ज्ञानावरणी प्रभु ! स्त्री पुं नपुंसक बांधै ।
तथा अवेदी रै बंधै ? हिव जिन उत्तर सांधै ।।

७०. त्रिहुं वेदी बांधै सही, अवेदी रै कहाइं ।
कदाचित बांधै अछै, कदाचि नहीं बंधाइं ।।

## दूहा

७१. "दशमां गुणठाणा लगै, ज्ञानावरणी बंध ।
आगल ते बंधै नहीं, भजना कर इम संध ।।

*लय : कुशल देश सुहामणो

1. प० प० २३।६३ ।

५७. एवं यावदुत्कृष्टस्थितिकं कर्मदलिकं तावद्विशेषहीनं निषिञ्चति । (वृ० प० २५५)

५८. एवं दरिसणावरणिज्जं पि । (सं० पा०)
वेदणिज्जं जहण्णेणं दो समया,

६०,६१. केवलयोगप्रत्ययबन्धापेक्षया वेदनीयं द्विसमयस्थितिकं भवति, एकत्र बध्यते द्वितीये वेद्यते, यच्चोच्यते 'वेयणियस्स जहन्ना बारस·······तत्सकषायस्थितिबन्धमाश्रित्येति वेदितव्यम् ।
(वृ० प० २५७)

६२. उक्कोसेणं जहा नाणावरणिज्जं । (सं० पा०)
मोहणिज्जं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं ।

६३. उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ, सत्त य वाससहस्साणि अबाहा,

६४. आउगं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाणि

६५. पुव्वकोडितिभागमब्भहियाणि कम्मट्ठिती—कम्मनिसेओ ।

६६. नामगोयाणं जहण्णेणं अट्ठमुहुत्ता, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ ।

६७. दोण्णि य वाससहस्साणि अबाहा, अबाहूणिया कम्मट्ठिती—कम्मनिसेओ ।

६८. अंतराइयं जहा नाणावरणिज्जं । (सं० पा०)
(श० ६।३४)

६९. नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं इत्थी बंधइ ? पुरिसो बंधइ ? नपुंसओ बंधइ ? नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसओ बंधइ ?

७०. गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, नपुंसओ वि बंधइ । नो इत्थी नो पुरिसो नो नपुंसओ सिय बंधइ सिय नो बंधइ ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. नवमें गुण आयू बिना, सप्त कर्म बंधाय।
दशमें बंध कर्म षट, आयु मोह विण ताय''।।
(ज० स०)

७३. *इम आयू वरजी करी, सात कर्म कहियायो।
आयू त्रिहुं वेदो तिके, भजनाइं बंधायो।।

७३. एवं आउगवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ।
(श० ६।३५)

आउगं णं भंते! कम्मं किं इत्थी बंधइ? पुरिसो बंधइ? नपुंसओ बंधइ? नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसओ बंधइ?

गोयमा! इत्थी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ। पुरिसो सिय बंधइ, सिय नो बंधइ। नपुंसओ सिय बंधइ सिय नो बंधइ। नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसओ न बंधइ। (श० ६।३६)

**यतनी**

७४. ''आयु बंध काले बंधाय, अन्य काले न बांधै ताय।
तिण सूं भजना त्रिहुं वेद मांहि, अवेदी रे आयु बंध नांहि।।

७५. आयु प्रारंभ्यो छट्ठे जेह, सातमें पिण बांधै तेह।
अवेदी नवमां थी कहाय, तिण सूं अवेदी रै न बंधाय''।।
(ज० स०)

७६. देश त्रेसठमा अंक नों, निन्नाणूमीं ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो।।

## ढाल : १००

**दूहा**

१. ज्ञानावरणी कर्म प्रभु! स्यूं संजति बांधंत?
असंजती बांधै अछै? संजतासंजती हुंत?

१. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं संजए बंधइ? अस्संजए बंधइ? संजयासंजए बंधइ?

२. नोसंजति नोअसंजति, संजतासंजति नांय।
एहवा सिद्ध बांधै अछै? हिव जिन भाखै वाय।।

२. नोसंजए नोअसंजए नोसंजयासंजए बंधइ?

३. संजति रै बंधै कदा, कदाचि नहि बंधाय।
चिहुं चारित्रिया रै बंधे, यथाख्यात में नांय।।

३. गोयमा! संजए सिय बंधइ, सिय नो बंधइ।
'संयतः' आद्यसंयमचतुष्टयवृत्तिर्ज्ञानावरणं बध्नाति, यथाख्यातसंयतस्तूपशान्तमोहादिर्न बध्नाति। (वृ० प० २५६)

४. असंजती गुणठाण चिहुं, ते पिण बांधै एह।
संजतासंजति पंचमें, गुणठाणे बांधेह।।

४. अस्संजए बंधइ, संजयासंजए वि बंधइ।
असंयतो मिथ्यादृष्ट्यादिः संयतासंयतस्तु देशविरतः। (वृ० प० २५६)

५. नोसंजति नोअसंजति, संजतासंजत नांहि।
तेहनैं पिण बंधै नहीं, सिद्ध कहीजै ताहि।।

५. नोसंजए नोअस्संजए नो संजयासंजए न बंधइ।
निषिद्धसंयमादिभावस्तु सिद्धः। (वृ० प० २५६)

---

***लय : कुशल देश सुहामणो**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. इम आयू वरजो करी, सात कर्म पहिछाण।
आयू नीं पूछा कियां, उत्तर इह विध जाण।।
७. संजति असंजति वलि, संजतासंजति न्हाल।
बंध काले बांधै त्रिहुं, नहि बांधै अन्य काल।।
८. ते माटै भजना कही, धुरला त्रिहुं नैं ताय।
ऊपरलो त्रिहुं रहित सिद्ध, तसु आयू न बंधाय।।

*कर जोड़ी गोयम कहै। (ध्रुपदम्)

९. ज्ञानवरणी स्यूं प्रभु! समदृष्टि बांधंतो जो?
मिथ्यादृष्टि बांधतो, समामिच्छदिट्ठी हुंतो जो?

१०. जिन कहै समदृष्टी तिको, कदाचित बांधंतो।
कदाचित बांधै नहीं, तास न्याय इम हुंतो।।
(वीर कहै सुण गोयमा!)

## सोरठा

११. राग-सहित समदृष्ट, तेहनैं ए बंधै अछै।
बीतराग मुनि इष्ट, तेह तणैं बंधै नथी।।

१२. *मिथ्यादृष्टि सम्मामिथ्या, ए बेहुं रै बंधायो।
इम आयू वरजी करी, सात कर्म कहिवायो।
१३. हिवै आउखो कर्म ते, समदृष्टि रै ताह्यो।
वलि मिथ्यादृष्टि तणैं, भजनाइं बंधायो।।

## यतनी

१४. आठमां थी आयु न बंधाय, और समदृष्टि रै ताय।
बंध काले आउखो बांधै, अन्य काले आयु नहि सांधै।।
१५. इम मिथ्यादृष्टि रै ताय, बंध काले आउखो बंधाय।
अन्य काल विषे न बंधाय, तिण सूं भजना कही जिनराय।।

१६. *मिश्रदृष्टि बांधै नहीं, आयुबंध अध्यवसायो।
ते स्थानक नां अभाव थी, तास अबंध कहायो।।

१७. ज्ञानवरणी स्यूं सन्नी, कै असन्नी बांधंतो?
'सन्नी असन्नी बिहु नहीं',[1] ते बांधै भगवंतो?
१८. जिन कहै सन्नी बांधै कदा, कदाचित नहि बांधंतो।
अबंध ग्यारमैं बारमैं, अन्य तणैं बंध हुंतो।।

*लय : कर जोड़ी आगल रही
1 नोसन्नी नोअसन्नी

६. एवं आउगवज्जाओ सत्त वि।

७,८. आउगे हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए, उवरिल्ले न बंधइ। (श० ६।३७)
संयतोऽसंयतः संयतासंयतश्चायुर्बन्धकाले बध्नाति अन्यदा तु नेति भजनयेत्युक्तं, संयतादिषूपरितनः सिद्धः स चायुर्न बध्नाति। (वृ० प० २५६)

९. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं सम्मदिट्ठी बंधइ? मिच्छदिट्ठी बंधइ? सम्मामिच्छदिट्ठी बंधइ?
१०. गोयमा! सम्मदिट्ठी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ।

११. सम्यग्दृष्टिः वीतरागस्तदितरश्च स्यात्तत्र वीतरागो ज्ञानावरणं न बध्नाति एकविधबन्धकत्वात् इतरश्च बध्नातीति स्यादित्युक्तं, (वृ० प० २५६)
१२. मिच्छदिट्ठी बंधइ, सम्मामिच्छदिट्ठी बंधइ। एवं आउगवज्जाओ सत्त वि।
१३ आउगे हेट्ठिल्ला दो भयणाए,

१४. इतरस्तु आयुर्बन्धकाले तद् बध्नाति अन्यदा तु न बध्नाति। (वृ० प० २५६)
१५. एवं मिथ्यादृष्टिरपि। (वृ० प० २५६)

१६. सम्मामिच्छदिट्ठी न बंधइ। (श० ६।३८)
मिश्रदृष्टिस्त्वायुर्न बध्नात्येव तद्बन्धाध्यवसायस्थानाभावादिति। (वृ० प० २५६)
१७. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं सण्णी बंधइ? असण्णी बंधइ? नोसण्णी नोअसण्णी बंधइ?
१८. गोयमा! सण्णी सिय बंधइ, सिय नो बंधइ।
स च यदि वीतरागस्तदा ज्ञानावरणं न बध्नाति यदि पुनरितरस्तदा बध्नाति। (वृ० प० २५६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. असन्नी ए बांधै सही, सन्नी असन्नी नांही।
ते तो ए बांधै नहीं, केवली सिद्ध ते मांही॥

१९. असण्णी बंधइ। नोसण्णी नोअसण्णी न बंधइ।
'नोसन्नीनोअसन्नि' त्ति केवली सिद्धश्च न बध्नाति।
(वृ० प० २५६)

२०. वेदनी आयू वरज नैं, इम छ कर्म कहिवायो।
वेदनी सन्नी बांधै अछै, असन्नी पिण बांधै ताह्यो॥

२०. एवं वेदणिज्जाउगवज्जाओ छ कम्मपगडीओ। वेद-
णिज्जं हेट्ठिल्ला दो बंधंति।
सञ्ज्ञी असञ्ज्ञी च वेदनीयं बध्नीतः,
(वृ० प० २५६)

२१. सन्नी असन्नी बिहुं नहीं, ए भजनाइं बांधै।
तेरम गुणठाणे बंधै, सिद्ध अजोगी न सांधै॥

२१. उवरिल्ले भयणाए।
नोसञ्ज्ञीनोअसञ्ज्ञी, स च सयोगायोगकेवली सिद्धश्च, तत्र यदि सयोगकेवली तदा वेदनीयं बध्नाति, यदि पुनरयोगिकेवली सिद्धो वा तदा न बध्नाति। (वृ० प० २५६)

२२. आउखो सन्नी असन्निया, भजनाइं बंधायो।
सन्नी असन्नी बिहुं नहीं, तास अबंध कहायो॥

२२. आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए, उवरिल्ले न बंधइ।
(श० ६।३९)

## दूहा

२३. "ज्ञानावरणी क्षयोपशमे, भाव मन जसु होय।
सन्नी कहियै तेहनैं, बारम गुण लग जोय॥
२४. ज्ञानवरणी कर्म नों, तेरम क्षायक थाय।
केवलज्ञानी ते भणी, सन्नी कहियै नांय"॥
(ज० स०)

२५. *ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! भवसिद्धिक जे बांधै?
कै बांधै अभवसिद्धियो, नोभव नोअभव सांधै?

२५. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं भवसिद्धिए बंधइ? अभवसिद्धिए बंधइ? नोभवसिद्धिए नोअभव-सिद्धिए बंधइ?

२६. जिण भाखै भवसिद्धियो, भजनाइं करि बांधै।
वीतराग बांधै नहीं, सरागी भव[1] सांधै॥

२६. गोयमा! भवसिद्धिए भयणाए,
भवसिद्धिको यो वीतरागः स न बध्नाति ज्ञानावरणं तदन्यस्तु भव्यो बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

२७. अभवसिद्धिक बांधै अछै, भव्य-अभव्य बिहुं नांही।
तेहनैं पिण बंधै नहीं, सिद्ध कह्या इण मांही॥

२७. अभवसिद्धिए बंधइ। नोभवसिद्धिए नोअभवसिद्धिए न बंधइ।
'नोभवसिद्धिएनोअभवसिद्धिए' त्ति सिद्धः,
(वृ० प० २५६)

२८. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म कहिवायो।
आयु भव्य अभव्य बिहुं भजनाइं बंधायो॥
२९. भव्य अभव्य दोनूं नहीं, तेहनैं सिद्ध कहीजै।
सिद्ध आयु बांधै नहीं, सुख अविचल सलहीजै॥

२८. एवं आउगवज्जाओ सत्त वि। आउगं हेट्ठिला दो भयणाए।
२९. उवरिल्ले न बंधइ। (श० ६।४०)
'उवरिल्ले न बंधइ' त्ति सिद्धो न बध्नातीत्यर्थः
(वृ० प० २५६)

३०. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! चक्षु-दर्शनी बांधै?
अचक्षु-अवधिदर्शनो, केवलदर्शनी सांधै?

३०. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं चक्खुदंसणी बंधइ? अचक्खुदंसणी बंधइ? ओहिदंसणी बंधइ? केवलदंसणी बंधइ?

*लय: कर जोड़ी आगल रही
1. भवसिद्धिक



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. जिन कहै धुर त्रिहुं दर्शनी, भजनाइं बंधायो।
ग्यारम बारम नहिं बंधै, बंध सरागी रै थायो॥

३१. गोयमा ! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए,
चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनिनो यदि छद्मस्थवीतरागास्तदा न ज्ञानावरणं बध्नन्ति, वेदनीयस्यैव बन्धकत्वात्तेषां, सरागास्तु बध्नन्ति। (वृ० प० २५६)

३२. वारू केवलदर्शनी, तेहनैं ए न बंधायो।
इम वेदनी वर्जी करी, सात कर्म कहिवायो॥

३२. उवरिल्ले न बंधइ।
एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि।

३३. वेदनी धुर त्रिहुं दर्शनी, बांधै छै अवलोयो।
भजनाइं केवलदर्शनी, तास न्याय इम होयो॥

३३. वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला तिण्णि बंधंति, केवलदंसणी भयणाए। (श० ६।४१)

## सोरठा

३४. कर्म वेदनी जोय, तेरम गुणठाणै बंधै।
चवदम गुण सिद्ध सोय, तास वेदनी नहिं बंधै॥

३४. केवलदर्शनी सयोगिकेवली बध्नाति अयोगिकेवली सिद्धश्च वेदनीयं न बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

३५. *ज्ञानावरणी पर्याप्तो, कै अपर्याप्तो बांधै?
पज्जत अपज्जत बिहुं नहीं, ते बांधेयूं सांधै?

३५. नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं पज्जत्तए बंधइ? अपज्जत्तए बंधइ? नोपज्जत्तए नोअपज्जत्तए बंधइ?

३६. जिन भाखै पर्याप्तो, भजनाइं करि सांधै।
कदाचित बांधै अछै, कदाचित नहिं बांधै।

३६. गोयमा ! पज्जत्तए भयणाए,

## यतनी

३७. पर्याप्त वीतरागी होय, वले सरागी पिण अवलोय।
ज्ञानावरणी सरागो बंधाय, वीतरागी रै ए बंध नांय॥

३७. पर्याप्तको वीतरागः सरागश्च स्यात्तत्र वीतरागो ज्ञानावरणं न बध्नाति सरागस्तु बध्नाति। (वृ० प० २५६)

३८. *अपर्याप्त बांधै सही, ज्ञानावरणी ताह्यो।
पज्जत अपज्जत बिहुं नहिं, ते सिद्ध रै न बंधायो॥

३८. अपज्जत्तए बंधइ। नोपज्जत्तए नोअपज्जत्तए न बंधइ।

३९. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म नुं विरतंतो।
आयू पज्जत अपज्जत नैं, भजनाइं बंध हुंतो॥

३९. एवं आउगवज्जाओ सत्त वि। आउगं हेट्ठिल्ला दो भयणाए,

## यतनी

४०. आयु कर्म पर्याप्तो जाण, वले अपर्याप्तो पिछाण।
बिहुं बंध काले बांधंत, अन्य काले बंध न हुंत॥

४०. पर्याप्तकापर्याप्तकावायुस्तद्बन्धकाले बध्नीतोऽन्यदा नेति भजना। (वृ० प० २५६)

४१. *पज्जत अपज्जत बिहुं नहीं, ते तो सिद्ध शोभाया।
ते आउखो बांधै नहीं, जामण मरण मिटाया॥

४१. उवरिल्ले न बंधइ। (श० ६।४२)

४२. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु ! भाषक बांधै सोई।
अभाषक बांधै अछै? जिन कहै भजना दोई।

४२. नाणावरणिज्जं णं भंते ! कम्मं किं भासए बंधइ? अभासए बंधइ?
गोयमा ! दो वि भयणाए।

## यतनी

४३. भाषा-लब्धिवंत पहिछान, तेहनैं भाषक कहियै जान।
तेहथी अन्य जीव जे होय, तिणनैं कहियै अभाषक सोय॥

४३. भाषको—भाषालब्धिमांस्तदन्यस्त्वभाषकः, (वृ० प० २५६, २५७)

*लय : कर जोड़ी आगल रहो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. भाषक सरागी नें वीतरागी, ज्ञानावरणी कर्म जे सागी।
वीतरागी रै नंहि बंधाय, सरागी रै ते बंध कहाय।।

४४. तत्र भाषको वीतरागो ज्ञानावरणीयं न बध्नाति सरागस्तु बध्नाति। (वृ० प० २५७)

४५. अभाषक एकेंद्रिय होय, वलि विग्रहगतिया सोय।
वले सिद्ध अजोगी जोय, केवल समुद्घाते पिण होय।।

४६. ज्ञानावरणी एकेंद्रिय बांधै, वलि विग्रहगतिया सांधै।
अन्य अभाषक रै न बंधाय, तिण सूं भजना कही जिनराय।।

४५,४६. अभाषकस्त्वयोगी सिद्धश्च न बध्नाति पृथिव्यादयो विग्रहगत्यापन्नाश्च बध्नन्तीति। (वृ० प० २५७)

४७. *एवं वेदनी वर्ज नें, सात कर्म कहिवाइं।
भाषक बांधै वेदनी, अभाषक भजनाइं।।

४७. एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि। वेदणिज्जं भासए बंधइ, अभासए भयणाए। (श० ६।४३)

## यतनी

४८. तेरमैं गुणठाणें ताय, समुद्घाती अभासक थाय।
सातावेदनी बंधक ताम, तिण रो इरियावहि छै नाम।।

४९. वलि अभाषक एकेंद्रिय ताय, तिण रै वेदनी नुं बंध थाय।
वलि विग्रहगतिया रै बंधाय, अयोगी सिद्ध बांधै नांय।।

४९. अभाषकस्त्वयोगी सिद्धश्च न बध्नाति पृथिव्यादिकस्तु बध्नातीति भजना (वृ० प० २५७)

५०. *ज्ञानावरणी परित्त स्यूं, कै अपरित्त बांधंतो?
परित्त अपरित्त बिहुं नहीं, तेहनें ए बंध हुंतो?

५०. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं परित्ते बंधइ? अपरित्ते बंधइ? नोपरित्ते नोअपरित्ते बंधइ?

## सोरठा

५१. "अठारमां पद मांय, जीवाभिगम[1] विषे वलि।
आख्यो तिम कहिवाय, लक्षण परित्त अपरित्त नों।।

५२. परित्तपणै भगवान? रहै परित्त अद्धा कितो?
जिन कहै द्विविध जान, काय-परित्त संसार फुन।।

५२. परित्ते णं भंते! परित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ? गोयमा! परित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—काय-परित्ते य संसार-परित्ते य। (प० १८।१०६)
कायपरित्ते णं भंते! कालओ केवचिरं होइ?

५३. काय-परित्त पहिछान, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी।
काल असंख्या जान, ए उत्कृष्ट थकी रहै।।

५३. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुढविकालो—असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ। (प० १८।१०७)

५४. परित्त-संसार उदंत, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी।
उत्कृष्ट काल अनंत, जाव देसूण पुग्गल अवड्ढ।।

५४. संसारपरित्ते णं भंते! संसारपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। (प० १८।१०८)

५५. अपरित्त दोय प्रकार, प्रथम काय-अपरित्त कह्यो।
वलि अपरित्त-संसार, एहनूं भमवूं बहु अद्धा।।

५५. अपरित्ते णं भंते! अपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?
गोयमा! अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—काय-अपरित्ते य संसार-अपरित्ते य। (प० १८।१०९)

---

***लय : कर जोड़ी आगल रही**

१. जीवाभिगमे पडिवत्ती ९।७६-८१



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. जीवाभिगम वृत्त, साधारण कायाऽपरित्त।
वलि संसाराऽपरित्त, कृष्णपक्षि इहविध कह्यो॥

५६. कायापरीत्तः साधारणः संसारापरीत्तः कृष्णपाक्षिकः। (जी० वृ० प० ४४६)

५७. जे संसार-परित्त, उत्कृष्टो देसूण जे।
पुद्गल अवड्ढ कथित्त, एह शुक्लपाक्षिक अछै॥

५८. तिण लेखै सुविचार, जे अपरित्त-संसार ते।
कृष्णपक्षि अवधार, वृत्ति विषे तसु न्याय इम॥

५७,५८. उत्कर्षेण अनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतो देशोनमपार्द्धं पुद्गलपरावर्तं यावत्, तत ऊर्ध्वं नियमतः सिद्धिगमनाद्, अन्यथा संसारपरीतत्त्वायोगात्। (जी० वृ० प० ४४६)

५९. कह्यो काय-अपरित्त, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी।
उत्कृष्टो उचरित्त, काल वनस्पति नों तसु॥

५९. काय अपरित्ते णं भंते! ………
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकालो। (प० १८।११०)

६०. जे अपरित्त-संसार, दोय प्रकारे पाठ में।
आदि-रहित अवधार, अंत-रहित अभव्य ए॥

६०. संसारअपरित्ते णं भंते! ………
गोयमा! संसारअपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए,

६१. अथवा आदि-रहीत, अंत-सहित भव्य जीव जे।
लहिस्यै मुक्ति पुनीत, ए बिहुं भेदज सूत्र में"॥
(ज० स०)

६१. अणादीए वा सपज्जवसिए। (प० १८।१११)

६२. *श्री जिन भाखै गोयमा! ज्ञानावरणी कर्मो।
परित्त बांधै भजना करी, तेहनों छै ए मर्मो॥

६२. गोयमा! परित्ते भयणाए,

**यतनी**

६३. परित्त सरागी नैं वीतरागी, ज्ञानावरणी कर्म जे सागी।
सरागी रै बंध थाय, वीतरागी रै नहिं बंधाय॥

६३. 'परीत्तः' प्रत्येकशरीरोऽल्पसंसारो वा स च वीतरागोऽपि स्यात् न चासौ ज्ञानावरणीयं बध्नाति, सरागपरीत्तस्तु बध्नातीति भजना। (वृ० प० २५७)

६४. *अपरित्त रै बंधै अछै, ज्ञानावरणी ताह्यो।
नोपरित्त नोअपरित्त छै, तेहनैं तो न बंधायो॥

६४. अपरित्ते बंधइ। नोपरित्ते नोअपरित्ते न बंधइ।

६५. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म कहिवायो।
आयु परित्त अपरित्त पिण, भजनाइं बंध थायो॥

६५. एवं आउगवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ। आउयं परित्ते वि अपरित्ते वि भयणाए,

**यतनी**

६६. परित्त अपरित्त दोनूं इ न्हाल, आयु बांधै छै बंध काल।
पिण सर्व काले न बंधाय, तिण सूं भजना कही जिनराय॥

६६. प्रत्येकशरीरादिः आयुर्बन्धकाल एवायुर्बध्नातीति न तु सर्वदा ततो भजना। (वृ० प० २५७)

६७. *नोपरित्त नोअपरित्त ते, आउखो न बांधंतो।
सदा काल सुख सासता, ए छै सिद्ध भगवंतो॥

६७. नोपरित्ते नोअपरित्ते न बंधइ। (श० ६।४४)

६८. ज्ञानावरणी कर्म स्यूं मतिज्ञानी बांधंतो?
श्रुत अवधि मनपर्यवा, केवलज्ञानी महंतो?

६८. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं आभिणिबोहियनाणी बंधइ? सुयनाणी बंधइ? ओहिनाणी बंधइ? मणपज्जवनाणी बंधइ? केवलनाणी बंधइ?

६९. जिन कहै धुर ज्ञानी चिउं, ज्ञानावरणी ताह्यो।
भजनाइं बांधै अछै, केवलधर न बंधायो॥

६९. गोयमा! हेट्ठिल्ला चत्तारि भयणाए। केवलनाणी न बंधइ।

*लय : कर जोड़ी आगल रही



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### यतनो

७०. चिउं ज्ञानी सरागी वीतरागी, सरागी रै बंधै छै सागी।
वीतरागी पिण छद्मस्थ ताय, त्यांरै ज्ञानावरणी न बंधाय॥

७०. आभिनिबोधिकज्ञानिप्रभृतयश्चत्वारो ज्ञानिनो ज्ञानावरणं वीतरागावस्थायां न बध्नन्तीति सरागावस्थायां तु बध्नन्तीति भजना। (वृ० प० २५७)

७१. *कर्म वेदनी वर्ज नैं, सात कर्म इम जोयो।
वेदनी धुर ज्ञानी चिहुं, बांधै छै अवलोयो॥

७१. एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्त वि। वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला चत्तारि बंधंति,

७२. केवलज्ञानी वेदनी, बांधै छै भजनाई।
तेरम गुणठाणे बंधै, चवदम नहि बंधाई॥

७२. केवलनाणी भयणाए। (श० ६।४५)
सयोगिकेवलिनां वेदनीयस्य बन्धनादयोगिनां सिद्धानां चावन्धनाद्भजनेति। (वृ० प० २५७)

७३. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! त्रिहुं अज्ञानी बांधंतो?
जिन कहै अज्ञानी त्रिहुं, बांधै तेह अत्यंतो॥

७४. इम आयू वरजी करी, सात कर्म कहिवायो।
आऊखो भजना करी, बंध काले बंध न्यायो॥

७३, ७४. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं मइअण्णाणी बंधइ? सुयअण्णाणी बंधइ? विभंगणाणी बंधइ?
गोयमा! आउगवज्जाओ सत्तवि बंधंति, आउगं भयणाए। श० ६।४६)

७५. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! मन जोगी बांधंतो।
वचन काय जोगी वलि, अजोगी बंध हुंतो?

७५. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं मणजोगी बंधइ? वइजोगी बंधइ? कायजोगी बंधइ? अजोगी बंधइ?

७६. जिन भाखै जोगी त्रिहुं, बांधै छै भजनाई।
कदाचित बांधै अछै, कदाचित न बंधाई॥

७६,७७. गोयमा! हेट्ठिल्ला तिण्णि भयणाए,
मनोवाक्काययोगिनो ये उपशान्तमोहक्षीणमोहसयोगिकेवलिनस्ते ज्ञानावरणं न बध्नन्ति तदन्ये तु वध्नन्तीति भजना। (वृ० प० २५७)

### यतनो

७७. त्रिहुं जोगी गुणठाणां तेर, ज्ञानावरणी तणो बंध हेर।
दसमां गुण[1] तांइ बंधाय आगै तो नहिं बंधै ताय॥

७८. *अजोगी बांधै नहीं, ज्ञानावरणी जिवारो।
इम वेदनी वर्जी करी, कहिवो न्याय विचारो॥

७८. अजोगी न बंधइ। एवं वेदणिज्जवज्जाओ सत्तवि।

७९. त्रिहुं जोगी कर्म वेदनी, बांधै छै अवलोयो।
अजोगी बांधै नहीं, द्वार पनरमों होयो॥

७९. वेदणिज्जं हेट्ठिल्ला बंधंति, अजोगी न बंधइ।
(श० ६।४७)

८०. *सागरोवउत्ते प्रभु! ज्ञानावरणी बंधाई।
कै अणगारोपयुक्त नैं? जिन कहै अठ भजनाई॥

८०. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं सागारोवउत्ते बंधइ?
अणागारोवउत्ते बंधइ?
गोयमा! अट्ठसु वि भयणाए। (श० ६।४८)

### यतनो

८१. अजोगी रै पिण उपयोग दोय, सागार अणागार सुजोय।
त्यांरै आठूं कर्म न बंधाय, हिवै सजोगी रो सुणो न्याय॥

८२. सजोगी रै सुविचार, आठूं कर्म प्रकृति अवधार।
आठ सात छः एक बंधाइ, बिहुं उपयोगे इम भजनाइं॥

८३. *ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! आहारक बंधाई?
अणाहारक बांधै अछै? जिन कहै बिहुं भजनाइं॥

८३. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं आहारए बंधइ?
अणाहारए बंधइ?
गोयमा! दो वि भयणाए।

---

***लय : कर जोड़ी आगल रही**

१. गुणस्थान।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### यतनी

८४. आहारक सरागी वीतरागी, ज्ञानावरणी कर्म जे सागी।
वीतरागी रै ते न बंधाय, सरागी रै बंधै छै ताय॥

८४. आहारको वीतरागोऽपि भवति न चासौ ज्ञानावरणं बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

८५. केवली विग्रहगतिया सोय, अणाहारक त्यांमे पिण होय।
केवली रै ए नहिं बंधाय, विग्रहगतिया रै बंध थाय॥

८५. तथाऽनाहारकः केवली विग्रहगत्यापन्नश्च स्यात्तत्र केवली न बध्नाति इतरस्तु बध्नातीति। (वृ० प० २५६)

८६. *वेदनी आयू वर्ज नैं, छः कर्म कहिवाइं।
आहारक बांधै वेदनी, अणाहारक भजनाइं॥

८६. एवं वेदणिज्जाउगवज्जाणं छण्हं। वेदणिज्जं आहारए बंधइ, अणाहारए भयणाए।

### यतनी

८७. विग्रहगति अणाहारक थाइं, केवल समुद्घाते बंधाइं।
अजोगी सिद्ध अबंध कहाइं, इम वेदनी छै भजनाइं॥

८७. अनाहारको विग्रहगत्यापन्नः समुद्घातगतकेवली च बध्नाति, अयोगी सिद्धश्च न बध्नातीति भजना। (वृ० प० २५६)

८८. *आउखो आहारीक रै, बंधै छै भजनाइं।
छै बंधकाले न सर्वदा, अणाहारक न बंधाइ॥

८८. आउए आहारए भयणाए, अणाहारए न बंधइ। (श० ६।४९)
आयुर्बन्धकाल एवायुषो बन्धनात् अन्यदात्वबन्धकत्वाद् भजनेति। (वृ० प० २५६)

८९. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! सूक्षम बादर बंधायो।
नोसूक्षम-बादर नहीं, तेहनैं बंध कहिवायो?

८९. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं सुहुमे बंधइ। बादरे बंधइ? नोसुहुमे नोबादरे बंधइ?

९०. जिन कहै बंध सूक्षम तणैं, बादर रै भजनाइं।
वीतराग बांधै नहीं, सरागे बंध थाइं॥

९०. गोयमा! सुहुमे बंधइ, बादरे भयणाए।
बीतरागबादराणां ज्ञानावरणस्याबन्धकत्वात् सरागबादराणां च बन्धकत्वाद्भजनेति। (वृ० प० २५६)

९१. नोसूक्षम-बादर नहीं, सिद्ध अनंत सुख पाया।
तेहनैं तो बंधै नहीं, जामण मरण मिटाया॥

९१. नोसुहुमे नोबादरे न बंधइ।

९२. इम आयू वर्जी करी, सात कर्म कहिवाइं।
सूक्षम बादर आऊखो, बांधै छै भजनाइं॥

९२. एवं आउगवज्जाओ सत्त वि। आउगं सुहुमे बादरे भयणाए।

### यतनी

९३. सूक्षम बादर दोनूंई न्हाल, आऊखो बांधै बंध काल।
सदा काल आयु न बंधाय, तिण सूं भजना कही जिनराय॥

९३. बन्धकाले बन्धनादन्यदा त्वबन्धनाद् भजनेति। (वृ० प० २५६)

९४. *नोसूक्षम-बादर नहीं, आयू नहिं बांधंतो।
अनंत गुणां सुख सुर थकी, सहु दुख नों कियो अंतो॥

९४. नोसुहुमे नोबादरे न बंधइ। (श० ६।५०)

९५. ज्ञानावरणी स्यूं प्रभु! चरम अचरम बंधाइं?
जिन कहै आठूंइ कर्म नैं, बांधै छै भजनाइं॥

९५. नाणावरणिज्जं णं भंते! कम्मं किं चरिमे बंधइ? अचरिमे बंधइ?
गोयमा! अट्ठवि भयणाए। (श० ६।५१)

### यतनी

९६. इहां वृत्तिकार कहिवाय, जेहनैं होसी चरम भव ताय।
तेहनैं चरम कहीजै जाण, ए मुक्तिगामी पहिछाण॥

९६. इह यस्य चरमो भवो भविष्यतीति स चरमः, (वृ० प० २५६)

---

*लय : कर जोड़ी आगल रही



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. भव चरम कदे नहिं होय, तेहनैं अचरम कहीजै सोय ।
अभव्य संसारी अचरम एह, कदे मुक्ति न जावै तेह ।।

९७. यस्य तु नासौ भविष्यति सोऽचरमः
(वृ० प० २५६)

९८. अथवा अचरम सिद्ध कहाय, चरम भव नां अभाव थी ताय ।
नहीं चरम ते अचरम जाण, ए तो सिद्ध अचरम पिछाण ।।

९८. सिद्धश्चाचरमः, चरमभवाभावात्,
(वृ० प० २५६)

९९. चरम सजोगी अजोगी होय, सजोगी रै यथायोग्य जोय ।
आठ सात छः एक नों बंध, बुद्धिवंत मिलावै संध ।।
१००. अजोगी रै कर्म न बंधाय, तिण कारण इम कहिवाय ।
चरम भजनाइं आठूं कर्म बांधै छै तेहनुं ए मर्म ।।

९९,१००. तत्र चरमो यथायोगमष्टापि बध्नाति अयोगित्वे तु नेत्येवं भजना । (वृ० प० २५६)

१०१. अचरम अठ बांधै संसारी, सिद्ध अचरम अबंध विचारी ।
तिण सूं अचरम रै कहिवाइं, अष्ट कर्म बंध भजनाइं ।।

१०१. अचरमस्तु संसारी अष्टापि बध्नाति, सिद्धस्तु नेत्येवमत्रापि भजनेति । (वृ० प० २५६)

१०२. *त्रिहुं वेदी अवेदी प्रभु! यां जीवां रै कहिवायो ।
कुण-कुण अल्पबहुत्व छै, तुल्य विशेष अधिकायो ?

१०२. एएसि णं भंते ! जीवाणं इत्थीवेदगाणं, पुरिसवेदगाणं, नपुंसगवेदगाणं, अवेदगाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

१०३. जिन कहै सर्व थोड़ा अछै, पुरिसवेदगा जीवा ।
इत्थिवेदगा जीवड़ा, संखगुणाज कहीवा ।।

१०३. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा, इत्थिवेदगा संखेज्जगुणा,

## यतनी

१०४. सुर नर तिर्यंच पुरुष थी, इम स्त्री अधिकी अनुक्रम थी ।
बत्ती सत्तावी त्रिगुणी तद्रूप, अधिक बत्ती सत्तावी त्रिरूप ।।

१०४. यतो देवनरतिर्यक्पुरुषेभ्यः तत्स्त्रियः क्रमेण द्वात्रिंशत्सप्तविंशतित्रिगुणा द्वात्रिंशत्सप्तविंशतित्रिरूपाधिकाश्च भवन्तीति । (वृ० प० २५६)

१०५. *अवेदगा अनंतगुणा, नवमां थी सिद्ध जाणी ।
नपुंसवेदि अनंतगुणा, साधारण पहिछाणी ।।

१०५. अवेदगा अणंतगुणा नपुंसगवेदगा अणंतगुणा ।
अनिवृत्तिबादरसम्परायादयः सिद्धाश्च
(वृ० प० २५६)

१०६. आख्या संजति आदि दे, चरम अंत सुविचारो ।
अल्पबहुत्व चवदै द्वार नीं, पन्नवणा[1] सूत्रानुसारो ।।

१०६. एएसिं सव्वेसिं पदाणं अप्पबहुगाइं उच्चारियव्वाइं

१०७. सर्व थोड़ा जीव अचरमा, इहां अचरम अवलोयो ।
अभव्य तेह मुक्ति मभैं जावा जोग्य न होयो ।।

१०७. जाव सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा
अत्राचरमाऽभव्याः (वृ० प० २५६)

१०८. तेहथी चरम अनंतगुणां, भव्य चरम भव लहिसी ।
मुक्ति जासी कर्म क्षय करी, आतमीक सुख रहिसी ।।

१०८. चरिमा अणंतगुणा । (श० ६।५२)
चरमाश्च ये भव्याश्चरमं भवं प्राप्स्यन्ति—सेत्स्यन्तीत्यर्थः । (वृ० प० २५६)

१०९. अचरम अभव्य तेहथी, अनंतगुणां भव्य चरमो ।
मुक्ति जावा जोग्य एह छै, ते लहिसी सुख परमो ।।

१०९. ते चाचरमेभ्योऽनन्तगुणाः । (वृ० प० २५६)

११०. वृत्तिकार कह्यो अभव्य थी, सिद्ध अनंतगुणां सोयो ।
जेता सिद्ध तेता चरम छै, मुक्ति जासी कर्म खोयो ।।

११०. यस्मादभव्येभ्यः सिद्धा अनन्तगुणा भणिताः, यावन्तश्च सिद्धास्तावन्त एव चरमाः ।
(वृ० प० २५६)

*लय : कर जोड़ी आगल रही

१. पण्णवण पद ३



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१११. गये काल सिद्धा जिता, आगमिये पिण कालो।
जीव तेतला सीझसै, वृत्ति मझै अर्थ न्हालो॥

१११. यस्माद्यावन्तः सिद्धा अतीताद्धायां तावन्त एव सेत्स्यन्त्यनागताद्धायामिति। (वृ० प० २५६)

११२. सेवं भंते! अंक त्रेसठ नुं, आखी सौमीं ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' गण गुणमालो॥

११२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ६।५३)

षष्ठशते तृतीयोद्देशकार्थः ॥६।३॥

## ढाल : १०१

### दूहा

१. तृतीय उदेशक नैं विषे, जीव-निरूपण जोय।
तुर्य उदेशे तेहिज हिव, भंगंतर करि होय॥

१. अनन्तरोद्देशके जीवो निरूपितोऽथ चतुर्थोद्देशकेऽपि तमेव भंग्यन्तरेण निरूपयन्नाह—
(वृ० प० २५६)

२. इक वचनै करि जीव प्रभु! काल थकी कहिवाय।
सप्रदेश स्यूं ए अछै, अप्रदेश स्यूं थाय?

२. जीवे णं भंते! कालादेसेणं किं सपदेसे? अपदेसे?

३. जिन भाखै नियमा करी सप्रदेश इक जीव।
सप्रदेश अप्रदेश नुं, लक्षण हिवै कहीव॥

३. गोयमा! नियमा सपदेसे। (श० ६।५४)

४. जे स्थिति एक समय तणी, कह्यु तास अप्रदेश।
बे त्रिण आदि समय स्थिति, सप्रदेश छै एस॥

४. यो ह्येकसमयस्थितिः सोऽप्रदेशः, द्व्यादिसमयस्थितिस्तु सप्रदेशः। (वृ० प० २६१)

५. "इक वच जीव भणी कह्यु, सप्रदेश सविभाग।
अनादिपणैं करि जीव कूं, अनंत समय स्थिति माग॥

५. अनादित्वेन जीवस्यानन्तसमयस्थितिकत्वात् सप्रदेशता। (वृ० प० २६१)

६. अप्रदेश इक समय स्थिति, तास विभाग न हुंत।
बे त्रिण आदि समय स्थिति, तास विभाग पड़ंत॥

७. एक समय नीं क्रिया तणो, विभाग न पड़ै कोय।
द्वयादिक समय तणो क्रिया, तेहनों विभाग होय॥

८. ते माटै सप्रदेश जे, विभाग सहितज होय।
विभाग रहित हुवै अछै, अप्रदेश अवलोय॥

९. प्रथम समय में वर्त्तता, अप्रदेश ते भाव।
अन्य समय में वर्त्तता, सप्रदेश ए न्याव॥

९. जो जस्स पढमसमए वट्टति भावस्स सो उ अपदेसो।
अण्णम्मि वट्टमाणो कालाएसेण सपएसो॥
(वृ० प० २६१)

१०. तिण सूं इक वच जीव ते, सप्रदेश आख्यात।
काल अनादिपणैं करी, अनंत समय स्थित जात"॥
(ज० स०)

११. एक नारकी नैं प्रभु! काल थकी पहिछाण।
सप्रदेश अप्रदेश स्यूं, कहियै हे जगभाण!

११. नेरइए णं भंते! कालादेसेणं किं सपदेसे? अपदेसे?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. जिन भाखै इक नारकी, कदाचित सप्रदेश ।
कदाचित अप्रदेश ते, हिव तसु न्याय कहेस ॥
१३. प्रथम समय नों ऊपनों, ते नारक अप्रदेश ।
द्व्यादिक समय नों ऊपनों, सप्रदेश सुविशेष ॥
१४. इम यावत इक सिद्ध नैं, कदाचित सप्रदेश ।
कदाचित अप्रदेश है, पूर्व न्याय अविशेष ॥
१५. हिव बहु वचनै करि कहै, जीव नारकी आद ।
श्रोता चित दे सांभलो, विविध भंग विधि वाद ॥

१६. *बहु वच जीवा स्यूं प्रभु! काल थकी सुविशेषा ।
सप्रदेशा कहियै तसु, कै कहियै अप्रदेशा ?
१७. जिन भाखै सुण गोयमा! निश्चै करि सप्रदेशा ।
अनादिपणैं करि जीवड़ा, अनंत समय स्थिति एसा ॥
१८. नेरइया काल थी स्यूं प्रभु! सप्रदेशा अप्रदेशा ।
जिन भाखै सुण गोयमा! इहां त्रिहुं भंगा कहेसा ॥
१९. सगलाई नारकी हुवै, सप्रदेशा पहिछाण ।
अथवा सप्रदेशा घणां, अप्रदेश इक जाण ?
२०. अथवा सप्रदेशा बहु, अप्रदेशा बहु होय ।
ए तीनूं भांगां तणो, न्याय कहूं हिव सोय ॥

२१. †उत्पात नैं जे विरह काले, असंख्याता नेरिया ।
जेह पूर्वे ऊपना ते, सप्रदेशा सहु लिया ॥
२२. तथा पूर्वे घणां नारक, ऊपना तेहनैं बिचै ।
नवो नारक एक उपजै, प्रथम समय तेहनुं लखै ॥
२३. ते भणी इक अप्रदेशज, बहु समय नां ऊपना ।
शेष ते बहु सप्रदेशा, भंग द्वितीय समुप्पना ॥
२४. तथा पूर्वे घणां नारक, ऊपना तेहनैं बिखै ।
नवा नारक उपजै बहु, प्रथम समय तेहनुं लखै ॥
२५. ते भणी बहु अप्रदेशज, बहु समय नां ऊपना ।
शेष ते बहु सप्रदेशा, भंग तृतीय समुप्पना ॥

२६. *एवं नरक तणी परै, जाव थणियकुमारा ।
भांगा तीन विचारवा, वर न्याय उदारा ॥
२७. पृथवीकाइया हे प्रभु! काल थकी सुविशेषा ।
स्यूं सप्रदेशा कहीजियै, कै कहियै अप्रदेशा ?
२८. जिन भाखै पृथ्वीकाइया, सप्रदेशा पिण होय ।
अप्रदेशा पिण छै घणां, बिहुं बहु वचने जोय ॥

१२. गोयमा ! सिय सपदेसे, सिय अपदेसे । (श० ६।५५)

१३. नारकस्तु यः प्रथमसमयोत्पन्नः सोऽप्रदेशः द्व्यादिसमयोत्पन्नः पुनः सप्रदेशः । (वृ० प० २६१)
१४. एवं जाव सिद्धे । (श० ६।५६)

१६. जीवा णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसा ? अपदेसा ?

१७. गोयमा ! नियमा सपदेसा । (श० ६।५७)

१८. नेरइया णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसा ? अपदेसा ? गोयमा !
१९. सव्वे वि ताव होज्जा सपदेसा, अहवा सपदेसा य अपदेसे य ।
२०. अहवा सपदेसा य अपदेसा य । (श० ६।५८)

२१. उपपातविरहकालेऽसंख्यातानां पूर्वोत्पन्नानां भावात् सर्वेऽपि सप्रदेशा भवेयुः । (वृ० प० २६१)
२२,२३. पूर्वोत्पन्नेषु मध्ये यदैकोऽप्यन्यो नारक उत्पद्यते तदा तस्य प्रथमसमयोत्पन्नत्वेनाप्रदेशकत्वात् शेषाणां च द्व्यादिसमयोत्पन्नत्वेन सप्रदेशत्वाद् उच्यते—'सप्पएसा य अप्पएसे य' त्ति, (वृ० प० २६१)
२४,२५. एवं यदा बहव उत्पद्यमाना भवन्ति ते तदोच्यन्ते—'सप्पएसा य अप्पएसा य' त्ति, (वृ० प० २६१)

२६. एवं जाव थणियकुमारा । (श० ६/५९)

२७. पुढविकाइया णं भंते ! किं सपदेसा ? अपदेसा ?

२८. गोयमा ! सपदेसा वि अपदेसा वि । (श० ६/६०)

*लय : प्रभवो मन मांहै चिंतवै
†लय : पूज मोटा भांजै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**यतनी**

२९. एहनें विरह-काल नहिं हुंत, समय-समय घणां उपजंत।
तिण सूं सप्रदेशा बहु सोय, अप्रदेश पिण बहु होय।।

३०. *इम जाव वणस्सइकाइया, बेंद्रियादिक शेष।
जेम नेरइया तिम सहु, जावत सिद्धा संपेष।।

३०. एवं जाव वणप्फइकाइया। (श० ६।६१)
सेसा जहा नेरइया तहा जाव सिद्धा। (श० ६।६२)

**यतनी**

३१. जिम नारकी नें तीन भंगा, तिम एकेंद्री वर्जी प्रसंगा।
दंडक उगणीस नें सिद्ध इच्छा, भंग त्रिण-त्रिण बहु वच पृच्छा।।

३१. यथा नारका अभिलापत्रयेणोक्तास्तथा शेषा द्वीन्द्रियादयः सिद्धावसाना वाच्याः, (वृ० प० २६२)

३२. *द्वितीय द्वार आहार कहिवै, आहारक बहु वचमंत।
जीव एकेंद्रिय वर्जनें, भांगा तीन भणंत।।

३२. आहारगाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

वा० ए पाठ नां अर्थ नीं पूर्वे गाथा कही। तिहां आहारगा बहु वचन नों विस्तार कह्यो। आगै पिण अणाहारगा बहु वचन छै, अनैं नारकादिक २४ दंडक एक वचन, बहु वचन पहिला कह्या ते माटै वृत्तिकार आहारक अनाहारक नों एक वचन जीवादिक कहै छै।

वा० एवमाहारकानाहारकशब्दविशेपितावेतावेकत्वपृथक्त्वदण्डकावध्येयौ, (वृ० प० २६१)

**यतनी**

३३. वृत्तिकार कही इम वाय, शब्द आहार अणाहारक ताय।
इक बहु वच दंडक दोय, कहिवो अनुक्रम इहविध जोय।।

३३. अध्ययनक्रमश्चायम्— (वृ० प० २६१)

**दूहा**

३४. इक वच आहारक जीव ते, सप्रदेश अप्रदेश?
जिन कहै सिय सप्रदेश छै, सिय अप्रदेश कहेस।।

३४. 'आहारए णं भंते! जीवे कालाएसेणं किं सपएसे? गोयमा! सिय सपएसे सिय अपएसे'
(वृ० प० २६१)

३५. इत्यादिक निज बुद्धि करि, कहिवूं सर्व विचार।
नरकादिक दंडक विषे, एक वचन अवधार।।

३५. इत्यादि स्वधिया वाच्याः, (वृ० प० २६१)

३६. तास न्याय—विग्रह विषे तथा समुद्घातेह।
प्रथम अनाहारक थइ, वलि ह्वै आहारक जेह।।

३६. तत्र यदा विग्रहे केवलिसमुद्घाते वाऽनाहारको भूत्वा पुनराहारकत्वं प्रतिपद्यते (वृ० प० २६१)

३७. तदा प्रथम समया विषे, अप्रदेश ते होय।
द्वितीयादिक समया विषे, सप्रदेश अवलोय।।

३७. तदा तत्प्रथमसमयेऽप्रदेशो द्वितीयादिषु तु सप्रदेशः
(वृ० प० २६१)

३८. तिण कारण एहवूं कह्यूं, कदाचित सप्रदेश।
कदाचित अप्रदेश ह्वै, इण न्याये सुविशेष।।

३८. इत्यत उच्यते—'सिय सप्पएसे सिय अप्पएसे' त्ति,
(वृ० प० २६१)

३९. एवं इक वच सर्व ही, सादि भाव रै मांय।
सिय सप्रदेश अनैं वलि, सिय अप्रदेश कहाय।।

३९. एवमेकत्वे सर्वेष्वपि सादिभावेषु, (वृ० प० २६१)

४०. अनादिभाव विषे वलि, छै नियमा सप्रदेश।
इह विध आख्यूं वृत्ति में, इक वच आहार कहेस।।

४०. अनादिभावेषु तु 'नियमा सप्पएसे' त्ति।
(वृ० प० २६१)

---

*लय : प्रभवो मन मांहै चितवै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**वा०** इहां अनादि भाव में नियमा सप्रदेशी कह्यो, ते आहारक में अनादि भाव न संभवै, सादि भावपणुं हुइं। ते भणी आहारक जीवादिक में 'सिय सपदेसे सिय अपदेसे' इम कहिवूं।

४१. बहु वचने आहारक तणूं, सूत्र पूर्व आख्यात।
आहारगा जीव एकेंद्रिय वर्जी त्रिण भंग ख्यात॥

### सोरठा

४२. एहनों पिण वृत्ति मांहि, आख्यो छै इण रीत सूं।
प्रगट पाठ कर ताहि, कह्यो न्याय वलि इह विधे॥

### दूहा

४३. आहारकपणें करि, बहु जीव अवस्थित पाय।
तास भाव थी बहु तणें, सप्रदेशपणुं थाय॥
४४. अथवा बहु जीवां तणें, विग्रह पछ विशेष।
प्रथम समय आहारकपणें, बहु आहारक अप्रदेश॥
४५. तिण सूं बहु वच आहारगा, सप्रदेशा पिण संच।
वलि अप्रदेशा पिण कह्या, इम पृथिव्यादि पंच।
४६. एकेंद्रिय वर्जी करी, दंडक वलि उगणीस।
कहिवा विकल्प तीन कर, ते इह रीत जगीस॥
४७. एहिज सूत्रे आखियो, आहारक बहु वचनेह।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नें, त्रिक भंग पावेह॥

४८. इहां न कहिवूं सिद्ध पद, तेह सिद्ध नें सोय।
अनाहारक नां भाव थी, आहारक ते नहिं होय॥
४९. अनाहारक ते इह विधे, इक वच बहु वचनेह।
दंडक बे कहिवा तसु, हिव तसु न्याय कहेह॥
५०. अनाहारक विग्रह गमन, वलि केवल समुद्घात।
तथा अजोगी चवदमैं, अथवा सिद्ध विख्यात॥
५१. तेह अनाहारकपणै, प्रथम समय अप्रदेश।
द्वितियादिक समया विषे, सप्रदेश सुविशेष॥
५२. तिण सूं इक वच जीव ते, अनाहारक सुविशेष।
कदाचित अप्रदेश छै, कदाचित सप्रदेश॥
५३. बहु वच दंडक नें विषे, कहियै एह विशेख।
अणाहारगा जीवड़ा, इत्यादिक संपेख॥

५४. *अनाहारका छै तिकै, जीव एकेंद्रिय अंग।
वर्जी उगणीस दंडके, भणवा षट भंग॥

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

**वा०** आहारया णं भंते! जीवा कालाएसेणं किं सप्पएसा अप्पएसा? गोयमा! 'सप्पएसा वि अप्पएसा वि' त्ति (वृ० प० २६१)

४३. तत्र बहूनामाहारकत्वेनावस्थितानां भावात् सप्रदेशत्वम्, (वृ० प० २६१)

४४,४५. तथा बहूनां विग्रहगतेरनन्तरं प्रथमसमये आहारकत्वसम्भवादप्रदेशत्वमप्याहारकाणां लभ्यत इति सप्रदेशा अपि अप्रदेशा अपीत्युक्तं, एवं पृथिव्यादयोऽप्यध्येयाः, (वृ० प० २६१)

४६. नारकादयः पुनर्विकल्पत्रयेण वाच्याः, (वृ० प० २६१)

४७. आहारगाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।
जीवपदमेकेन्द्रियपदपञ्चकं च वर्जयित्वा त्रिकरूपो भङ्गः त्रिकभङ्गो—भङ्गत्रयं वाच्यमित्यर्थः। (वृ० प० २६१)

४८. सिद्धपदं त्विह न वाच्यं तेषामनाहारकत्वात्, (वृ० प० २६१)

४९. अनाहारकदण्डकद्वयमप्येवमनुसरणीयं, (वृ० प० २६१)

५०. तत्रानाहारको विग्रहगत्यापन्नः समुद्घातगतकेवली अयोगी सिद्धो वा स्यात्, (वृ० प० २६१,२६२)

५१. स चानाहारकत्वप्रथमसमयेऽप्रदेशः द्वितीयादिषु तु सप्रदेशः (वृ० प० २६२)

५२. तेन स्यात् सप्रदेश इत्याद्युच्यते। (वृ० प० २६२)

५३. पृथक्त्वदण्डके विशेषमाह—'अणाहारगा णं' मित्यादि। (वृ० प० २६२)

५४. अणाहारगाणं जीवेगिंदियवज्जा छ भंगा एवं भाणियव्वा—



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**दूहा**

५५. जीव एकेंद्रिय बिहुं पदे, सप्रदेश बहु होय ।
अप्रदेश पिण बहु हुवै, इम इक भंगो जोय ॥

५६. ए बहु विग्रहगति रह्या, प्रथम समय अप्रदेश ।
सप्रदेश अन्य समय में, लाभै बहु सुविशेष ॥

५७. ते माटै बहु वच कह्या, अनाहारका ताय ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नैं, षट भंगा कहिवाय ॥

५८. उगणीस दंडक नैं विषे, अल्प ऊपजै आय ।
इक बे आदि अनाहारका, त्यां षट भंगा पाय ॥

५९. ते माटै सूत्रे कह्या, अनाहारका मांय ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नैं, षट भंगा कहिवाय ॥

६०. बे भंग बहु वचनांत छै, इकसंजोगिक होय ।
वलि च्यार भांगा तिके, द्विकसंयोगिका जोय ॥

६१. *सप्रदेशा बहु वचन थी, ए धुर भंगो होय ।
अन्य समय वर्तै बहु, प्रथम समय नहिं कोय ॥

६२. अप्रदेशा बहु वचन थी, दूजो भांगो जोय ।
प्रथम समय नां लाधे घणां, अन्य समय नां न होय ॥

६३. सपदेसे अपदेसे तथा, तीजो भांगो देख ।
प्रथम समय इक जीव छै, अन्य समय वर्त्ते एक ॥

६४. सपदेसे अपदेसा तथा, चउथो भांगो कहीव ।
अन्य समय इक वर्त्ततो, प्रथम समय बहु जीव ॥

६५. सपदेसा अपदेसे तथा, पंचम भंगो जोय ।
अन्य समय वर्त्तै घणां, प्रथम समय इक होय ॥

६६. सपदेसा अपदेशा तथा, छट्ठो भांगो संपेख ।
अन्य समय बहु वर्त्तता, प्रथम समय बहु देख ॥

६७. इम उगणीसज दंडके, अल्प ऊपजै ते मांय ।
हुवै इक बे आदि अनाहारका, तिण सूं षट भंग पाय ॥

६८. केवल एक वचन तणां, भंग दोय नहिं होय ।
बहु वच नां अधिकार थी, वृत्ति विषे इम जोय ॥

**वा०** जिम पहिले भांगे सप्रदेशी घणां अनैं दूजे भांगे अप्रदेशी घणां, ए बे भांगा कह्या । तिम तीजे भांगे सप्रदेशी एक अनैं चोथे भांगे अप्रदेशी एक, ए भांगा अनाहारक एकसंजोगिक एक वचनांत किम न हुइ ? अनाहारक बहु जीव नां अधिकारपणां थकी । एटलै अनाहारक एक जीव नो अधिकार नथी, तिण सूं एक वचनांत भांगो कह्यो नथी ।

६९. सिद्धां में तीन भांगा अछै, तीनूं भांगां रै मांय ।
बहु वचने कर सूत्र में, भांगा तीन कहाय ॥

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

५५. जीवपदे एकेन्द्रियपदे च 'सपएसा य अप्पएसा ये' त्येवंरूप एक एव भङ्गकः । (वृ० प० २६२)

५६. बहूनां विग्रहगत्यापन्नानां सप्रदेशानामप्रदेशानां च लाभात् । (वृ० प० २६२)

५८. नारकादीनां द्वीन्द्रियादीनां च स्तोकतराणामुत्पादः, तत्र चैकद्व्यादीनामनाहारकाणां भावात् षड्भङ्गिका-सम्भवः । (वृ० प० २६२)

६०. तत्र द्वौ बहुवचनान्तौ अन्ये तु चत्वार एकवचनबहु-वचनसंयोगात् । (वृ० प० २६२)

६१. सपदेसा वा ।

६२. अपदेसा वा ।

६३. अहवा सपदेसे य अपदेसे य ।

६४. अहवा सपदेसे य अपदेसा य ।

६५. अहवा सपदेसा य अपदेसे य ।

६६. अहवा सपदेसा य अपदेसा य ।

६८. केवलैकवचनभङ्गकाविह न स्तः, पृथक्त्वस्याधिकृत-त्वादिति । (वृ० प० २६२)

६९. सिद्धेहिं तियभंगो ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**यतनी**

७०. सगला सिद्ध ह्वै सप्रदेशा, बहु काल नां छै सुविशेषा।
सिद्धां में ऊपजवा नों पिछाण, विरहकाल हुवै जद जाण ।।

७१. अथवा सप्रदेशा बहु सिद्धा, अप्रदेशा एक गुण ऋद्धा।
अथवा सप्रदेशा बहु जोय, अप्रदेशा पिण बहु होय ।।

७२. बहु वच अणाहारगा मांय, सिद्ध पद में भांगा त्रिण पाय।
ए आहारक नें अणाहार, आख्यो ए बीजो द्वार ।।

७३. *भवसिद्धिया अभवसिद्धिया, औधिक जेम कहाय।
पाठ मांहे तो एतोज छै, वृत्तिकार हिव वाय ।।

**यतनी**

७४. जहा ओहिया नुं अर्थ ताय, औधिक दंडक जिम कहिवाय।
इक बहु वच दंडक दोय, तिमहिज कहिवा अवलोय ।।

७५. तिहां भव्य अभव्य विचार, जीव एक वचन अधिकार।
निश्चै करीनैं छै सप्रदेश, आदि-रहितपणैं सुविशेष ।।

७६. भव्य अभव्य नारकादि मांय, इक वचन आश्री इम वाय।
कदाचित अछै सप्रदेश, कदा अप्रदेस सुकहेस ।।

७७. हिवै भव्य अभव्य बहु जीवा, निश्चै सप्रदेशाज कहीवा।
नारकादि बहु वचन प्रसंग, एकेंद्रिय विना त्रिण भंग ।।

७८. भव्य अभव्य एकेंद्रिया जीवा, बहु वच आश्री एम कहीवा।
घणां सप्रदेशा अप्रदेशा, एकईज भंग सुलहेसा ।।

७९. सिद्ध पद इहां कहिवुं नांहि, भव्य अभव्य नहिं सिद्धां मांहि।
हिवै भव्य अभव्य बिहुं नांही तिणरो संक्षेप सूत्र मांही ।।

८०. *नोभव्य-नोअभव्य-सिद्धिया, जीव अनै सिद्ध मांय।
बहु वचने कर सूत्र में, भांगा तीन कहिवाय ।।

**यतनी**

८१. वृत्ति मांहि कह्यो इम वाय, नोभव्य नोअभव्य ताय।
एक वचन बहु वच भणवा, जीवपद नैं सिद्धपद थुणवा ।।

८२. प्रभु! नोभव्य नोअभव्य जीव, इक वचन थकीज अतीव।
स्यूं सप्रदेश अप्रदेश ? हिव उत्तर आगै कहेस ।।

८३. सिय सप्रदेश पछिछाण, सिय अप्रदेश वलि जाण।
इम बहु वच पूछा में जोवा, उत्तर तीन भांगा कहीवा ।।

८४. नोभव्य नोअभव्य सिद्ध पृच्छा, इक वचन बहु वच इच्छा।
उत्तर पूर्ववत जाण, ए तीजो द्वार पिछाण ।।

***लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै**

७३. भवसिद्धिया अभवसिद्धिया जहा ओहिया।

७४. 'ओहिय' त्ति, अयमर्थः—औधिकदण्डकवदेषां प्रत्येकं दण्डकद्वयं, (वृ० प० २६२)

७५. तत्र च भव्योऽभव्यो वा जीवो नियमात्सप्रदेशः। (वृ० प० २६२)

७६. नारकादिस्तु सप्रदेशोऽप्रदेशो वा, (वृ० प० २६२)

७७. बहवस्तु जीवाः सप्रदेशा एव, नारकाद्यास्तु त्रिभङ्ग-वन्तः, । (वृ० प० २६२)

७८. एकेन्द्रियाः पुनः सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येकभङ्ग एवेति । (वृ० प० २६२)

७९. सिद्धपदं तु न वाच्यं, सिद्धानां भव्याभव्यविशेषणानुपपत्तेरिति । (वृ० प० २६२)

८०. नोभवसिद्धिय-नोअभवसिद्धिय-जीव-सिद्धेहिं तियभंगो ।

८१. 'नोभवसिद्धिय नोअभवसिद्धिय' त्ति एतद्विशेषणं जीवादिदण्डकद्वयमध्येयं, । (वृ० प० २६२)

८२. 'नोभवसिद्धिए नोअभवसिद्धिए णं भंते! जीवे सप्पएसे अप्पएसे' ? (वृ० प० २६२)

८३. इह च पृथक्त्वदण्डके पूर्वोक्तं भङ्गकत्रयमनुसर्त्तव्यम् । (वृ० प० २६२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**दूहा**

८५. बे दंडक सन्नी विषे, इक वच बहु वच जोग ।
द्वितिय दंडक जीवादि में, भंगक त्रिण इम होय ॥

८६. *सन्नी बहु वच काल थी, जीवादिक त्रिण भंग ।
सूत्र मांहे तो इतोज छै, वृत्तौ एम प्रसंग ॥

**यतनी**

८७. चिर काल नां ऊपनां भेला, ऊपजवा नुं विरह तिण वेला ।
बहु वचन सन्नी सुविशेषा, प्रथम भंग सहु सप्रदेशा ॥

८८. विरह काल पछै इक जीव, ऊपनों प्रथम समय कहीव ।
ते सप्रदेशा-अप्रदेश, ए द्वितीय भंग सुविशेष ॥

८९. विरह काल पछै बहु जीवा, ऊपनां बहु समय कहीवा ।
ते सप्रदेशा-अप्रदेशा, ए तृतीय भंग सुविशेषा ॥

९०. इम सन्नी रा दंडक मांय, सहु पद में भांगा त्रिहुं पाय ।
सिद्ध एकेंद्री विकलेंद्री जोय, एहनें विषे सन्नी नहिं होय ॥

९१. *बहु वचन असन्नी मध्ये, एकेंद्रिय वर्जी नें ।
भांगा तीन कहीजियै, पूर्व न्याय ग्रही नें ॥

**यतनी**

९२. वृत्ति मांहि कही इम वाय, एकेंद्रिय भंग इक पाय ।
बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, घणां ऊपजै छै सुविशेषा ॥

९३. *नेरइया देव मनुष्य मझै, षट भंगा पाय ।
वृत्तिकार तिहां आखियो, सुणज्यो चित ल्याय ॥

**यतनी**

९४. नारकादि व्यंतर लग गिणिया, सन्नी नें पिण असन्नी भणिया ।
असन्नी थी ऊपजै तिहां आय, अतीत भावपणें करि ताय ॥

९५. असन्नी नरकादिक रै मांय, ऊपना ते एकादि पाय ।
वर्त्तमान ऊपजता सोय, ते पिण एक आदि अवलोय ॥

९६. तिण कारण छै षट भंगा, पूर्वे कह्या तेह प्रसंगा ।
जोतिषि वैमानिक सिद्धा, यांनें असण्णीपणें नहि लीधा ॥

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै

८५. संज्ञिषु यौ दण्डकौ तयोर्द्वितीयदण्डके जीवादिपदेषु भङ्गत्रयं भवतीत्यत आह— (वृ० प० २६२)

८६. सण्णीहिं जीवादिओ तियभंगो ।

८७. तत्र सञ्ज्ञिनो जीवाः कालतः सप्रदेशा भवन्ति चिरोत्पन्नानपेक्ष्य उत्पादविरहानन्तरम् । (वृ० प० २६२)

८८. चैकस्योत्पत्तौ तत्प्राथम्ये सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेति स्यात्, (वृ० प० २६२)

८९. बहूनामुत्पत्तिप्राथम्ये तु सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेति स्यात्, तदेवंभङ्गकत्रयमिति, (वृ० प० २६२)

९०. एवं सर्वपदेषु, केवलमेतयोर्दण्डकयोरेकेन्द्रियविकलेन्द्रिय-सिद्धपदानि न वाच्यानि, तेषु संज्ञिविशेषणस्यासंभवादिति, (वृ० प० २६२)

९१. असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो ।
असञ्ज्ञिषु—असञ्ज्ञिविषये द्वितीयदण्डके पृथिव्यादिपदानि वर्जयित्वा भङ्गकत्रयं प्राग् दर्शितमेव वाच्यम् (वृ० प० २६२)

९२. पृथिव्यादिपदेषु हि सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव, सदा बहूनामुत्पत्त्या तेषामप्रदेशबहुत्वस्यापि सम्भवात् । (वृ० प० २६२)

९३. नेरइयदेवमणुएहिं छब्भंगो ।

९४. नैरयिकादीनां च व्यन्तरान्तानां संज्ञिनामप्यसंज्ञित्वमसंज्ञिभ्य उत्पादाद्भूतभावतयाऽवसेयम्, (वृ० प० २६२)

९५,९६. तथा नैरयिकादिष्वसंज्ञित्वस्य कादाचित्कत्वेनैकत्वबहुत्वसम्भवात् षड् भंगा भवन्ति, ते च दर्शिता एव, ज्योतिष्कवैमानिकसिद्धास्तु न वाच्यास्तेषामसंज्ञित्वस्यासम्भवात् । (वृ० प० २६२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. *नोसन्नी नोअसन्नी मझे, बहु वचन रै मांय।
जीव मनुष्य सिद्धां विषे, तीन भांगा पाय॥

९७. नोसण्णि-नोअसण्णि-जीव-मणुय-सिद्धेहिं तियभंगो।
तेषु बहूनामवस्थितानां नाभादुत्पद्यमानानां चैका-दीनां सम्भवादिति, एतयोश्च दण्डकयोर्जीवमनुज-सिद्धपदान्येव भवन्ति, (वृ० प० २६२)

**यतनी**

९८. यांमे सदाकाल बहु हुंत, वलि उत्पत्ति विरह पड़ंत।
पछै ऊपजै इक बे आद, तिण सूं तीन भांगा इहां लाध॥

९९. नारकादिक पद रै मांही, नोसन्नी नोअसन्नी नांही।
ए आख्यो है चउथो द्वार, हिवै पंचमों लेस विचार॥

९९. नारकादिपदानां नोसंज्ञीनोअसंज्ञीतिविशेषणस्याघट-नादिति। (वृ० प० २६२)

१००. *सलेसी जीव विषे वलि, सलेसी नरकादि।
एक वचन बहु वचन में, औघिक जेम संवादि॥

१००. सलेसा जहा ओहिया।
सलेश्यदण्डकद्वये औघिकदण्डकवज्जीवनारकादयो वाच्याः। (वृ० प० २६२)

**यतनी**

१०१. सलेसीपणां विषे जीव, आदि-रहितपणेंज अतीव।
औघिक जेम कह्यु ताय, एक सिद्ध पद न कहाय॥

१०१. सलेश्यतायां जीवत्ववदनादित्वेन विशेषानुत्पाद-कत्वात् केवलं सिद्धपदं नाधीयते, सिद्धानामलेश्य-त्वादिति। (वृ० प० २६३)

१०२. *कृष्ण नील कापोतिया, जीव नारकादि देख।
इक बहु वच आहारीक नां, जीवादिक जिम पेख॥

१०२. कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा जहा आहा-रओ।

१०३. णवरं एतो विशेष छै, ज्यांमें पावै ए लेस।
त्यां मांहे कहिवी विचार नें, वारू न्याय विशेष॥

१०३. नवरं—जस्स अत्थि एयाओ।

**यतनी**

१०४. जोतिषि वेमानिक मांय, द्रव्य लेस्या ए त्रिहुं न पाय।
तिण कारण त्यां नवि गिणवी, ज्यांमें पावै त्यांमें इज भणवी॥

१०४. एताश्च ज्योतिष्कवैमानिकानां न भवन्ति। (वृ० प० २६२)

१०५. *तेजु लेस्या नें जीवादिके, बहु वच त्रिण भंग जाण।
पृथ्वी अप वनस्पति मझे, षट भंगा पहिछाण॥

१०५. तेउलेस्साए जीवादिओ तियभंगो, नवरं—पुढविक्का-इएसु आउवणप्फतीसु छब्भंगा।

**यतनी**

१०६. पृथ्वी अप वनस्पति मांय, सुर एकादि ऊपना आय।
वलि वर्त्तमान पिण काल, एकादिक उपजता न्हाल॥

१०६. यत एतेषु तेजोलेश्या एकादयो देवाः पूर्वोत्पन्ना उत्पद्यमानाश्च लभ्यन्त इति। (वृ० प० २६२, २६३)

१०७. तिण सूं सप्रदेशा नों जोय, वलि अप्रदेशा नों सोय।
इक वच बहु वचन प्रसंग, तिण कारण है षट भंग॥

१०७. सप्रदेशानामप्रदेशानां चैकत्वबहुत्वसम्भव इति। (वृ० प० २६३)

१०८. इहां नरक तेउ वाउ काय, विकलेंद्रिय नैं सिद्ध ताय।
यांमें तेजू लेश्या नहिं पाय, तिण सूं ए पद नांहि गिणाय॥

१०८. इह नारकतेजोवायुविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यानि, तेजोलेश्याया अभावादिति। (वृ० प० २६३)

१०९. *पद्म लेस शुक्ल लेस में, बहु वच जीवादि मांय।
भांगा तीन कहीजियै, वारू मेली न्याय॥

१०९. पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साए जीवादिओ तियभंगो

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## यतनी

११०. तिर्यंच पंचेंद्री ताहि, वलि मनुष्य वैमानिक मांहि।
पद्म शुक्ल यांमे ईज होय, अन्य में नहिं पावै कोय।।

१११. *अलेसी इक बहु वचन थी, जीव मनुष्य सिद्ध मांहि।
अन्य विषे अलेसीपणो, नहीं पामैं ताहि।।

११२. जीव पदे वलि सिद्ध पदे, बहु वच त्रिण भंगा।
अलेसी मनुष्य विषे हुवै, षट भंग प्रसंगा।।

## यतनी

११३. अलेसीपणे नर जाण, गया काल नां लाभै पिछाण।
वर्त्तमान पामता जोय, एक आदि मनुष्य में होय।।

११४. तिण सूं सप्रदेश नों जाण, अप्रदेश नों वलि पहिछाण।
इक वच बहु वचन प्रसंग, तिण कारण है षट भंग।।

## दूहा

११५. समदृष्टी इक बहु वचन वर समदृष्टि लहेस।
प्रथम समय अप्रदेश है, द्वितीयादि सप्रदेश।।

११६. *बहु वचने समदृष्टि नें, जीवादिक त्रिण भंग।
विकलेंद्रिय षट भंग छै, सास्वादन नुं प्रसंग।।

## यतनी

११७. सास्वादन विकलेंद्रिय मांय, पूर्व ऊपना एकादि पाय।
वलि ऊपजता वर्तमान, एक आदि लाभै ते जान।।

११८. इण कारण ते सुविशेष, सप्रदेश अनैं अप्रदेश।
तिण रो इक बहु वचन प्रसंग, तसुं संभव थी षट भंग।।

११९. एकेंद्रिय पद नहिं भणवा, समदृष्टि अभावज थुणवा।
बहु वचन मिथ्यादृष्टि चीन, एकेंद्रिय वर्जी भंग तीन।।

१२०. पूर्व काल नां मिथ्या प्रपन्ना, बहुला लाधै विसन्ना।
वलि सम्यक्त्व-भ्रष्ट विवादी, मिथ्या पडिवजता एकादी।।

१२१. तिण कारण है त्रिण भंग, तीनूं में बहु वचन प्रसंग।
एकेंद्री इक भंग लहेसा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा।।

१२२. पूर्व ऊपनां एकेंद्री मांय, बहु मिथ्यादृष्टीज कहाय।
उपजता थका पिण बहु होय, तिण सूं एक भांगो अवलोय।।

---

११०. इह च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यवैमानिकपदान्येव वाच्यानि, अन्येष्वनयोरभावादिति। (वृ० प० २६३)

१११. अलेश्यदण्डकयोर्जीवमनुष्यसिद्धपदान्येवोच्यन्ते, अन्येषामलेश्यत्वस्यासम्भवात्। (वृ० प० २६३)

११२. अलेसेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो। मणुएसु छब्भंगा।

११३,११४. अलेश्यतां प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां मनुष्याणां सम्भवेन सप्रदेशत्वेऽप्रदेशत्वे चैकत्वबहुत्वसम्भवादिति। (वृ० प० २६३)

११५. सम्यग्दृष्टिदण्डकयोः सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तिप्रथमसमयेऽप्रदेशत्वं द्वितीयादिषु तु सप्रदेशत्वम्। (वृ० प० २६३)

११६. सम्मद्दिट्ठीहिं जीवादिओ तियभंगो। विगलिंदिएसु छब्भंगा।

११७,११८. तथैव विकलेन्द्रियेषु तु षड्, यतस्तेषु सासादनसम्यग्दृष्टय एकादयः पूर्वोत्पन्ना उत्पद्यमानाश्च लभ्यन्तेऽतः सप्रदेशत्वाप्रदेशत्वयोरेकत्वबहुत्वसम्भव इति। (वृ० प० २६३)

११९. इहैकेन्द्रियपदानि न वाच्यानि, तेषु सम्यग्दर्शनाभावादिति। (वृ० प० २६३)
मिच्छदिट्ठीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो।

१२०. मिथ्यात्वं प्रतिपन्ना बहवः सम्यक्त्वभ्रंशे तत्प्रतिपद्यमानाश्चैकादयः सम्भवन्तीतिकृत्वा। (वृ० प० २६३)

१२१. एकेन्द्रियपदेषु पुनः सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव। (वृ० प० २६३)

१२२. तेष्ववस्थितानामुत्पद्यमानानां च बहूनामेव भावादिति। (वृ० प० २६३)

---

*लय । प्रभवो मन मांहे चितवै



Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

१२३. इहां सिद्ध न भणवा कोय, मिथ्यात्व अभाव थी सोय।
एहवो कह्यो वृत्ति रै मांय, हिवै मिश्रदृष्टी कहिवाय।।

१२३. इह च सिद्धा न वाच्याः, तेषां मिथ्यात्वाभावादिति। (वृ० प० २६३)

१२४. *समामिथ्यादृष्टी विषे, बहु वच सुविचार।
भांगा षट भणीजियै, इम न्याय उचार।।

१२४. सम्मामिच्छदिट्ठीहिं छब्भंगा।

**यतनी**

१२५. बहु वच मिश्र दृष्टि भावंता, पडिवज्या वलि पडिवज्जंता।
एकादिक बिहुं मांहि लाभंत, तिण कारण षट भंगा हुंत।।

१२५. सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वं प्रतिपन्नकाः प्रतिपद्यमानाश्चैकादयोऽपि लभ्यन्त इत्यतस्तेषु षड् भङ्गा भवन्तीति। (वृ० प० २६३)

१२६. एकेंद्री विकलेंद्रिय एह, वलि सिद्ध पद नवि उचरेह।
यामें मिश्रदृष्टि नों अभाव, तिण कारण ए न कहाव।।

१२६. इह चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियसिद्धपदानि न वाच्यान्यसम्भवादिति। (वृ० प० २६३)

१२७. *संजत शब्द विशेष में, जीवादिक पद मांय।
भांगा तीन भणीजियै, निसुणो तसु न्याय।।

१२७. संजएहिं जीवादिओ तियभंगो।

**यतनी**

१२८. पूर्व संजम पडिवज्या जाण, बहु लाभै मुनि गुणखाण।
चारित्र पडिवजता वर्त्तमान, एक आदि नों संभव जान।।

१२८. संयमं प्रतिपन्नानां बहूनां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां भावात्। (वृ० प० २६३)

१२९. तिण सूं तीन भांगा कहिवाय, जीव पद नें मनुष्य पद पाय।
अन्य विषे संजम नों अभाव, इम आख्यो वृत्ति में न्याव।।

१२९. इह च जीवपदमनुष्यपदे एव वाच्ये, अन्यत्र संयतत्वाभावादिति। (वृ० प० २६३)

१३०. *बहु वच असंजती विषे, एकेंद्रिय वर्जी नें।
भांगा तीन भणीजियै, दिल न्याय धरी नें।।

१३०. अस्संजएहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो।

**यतनी**

१३१. असंजतपणुं पहिछाण, पूर्वे पडिवजिया बहु जाण।
वलि संजम-भाव विराधि, असंजम पडिवजता एकादि।।

१३२. तिण कारण छै त्रिहुं भंग, तीनूं में बहु वचन प्रसंग।
एकेंद्री इक भंग लहेसा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा।।

१३१,१३२. इहासंयतत्वं प्रतिपन्नानां बहूनां संयतत्वादिप्रतिपातेन तत्प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां भावाद् भङ्गकत्रयं, एकेन्द्रियाणां तु पूर्वोक्तयुक्त्या सप्रदेशाश्चैक एव भङ्ग इति। (वृ० प० २६३)

१३३. इहां सिद्ध पद भणवो नांहि, तास असंभव थी ताहि।
जीवादिक वैमानिक अंत, इहां पिणबीस दंडक हुंत।।

१३३. इह सिद्धपदं नाध्येयमसम्भवादिति। (वृ० प० २६३)

१३४. संजतासंजत नें विषे, बहु वचन विचार।
जीवादिक पद नें विषे, भांगा तीन उचार।।

१३४. संजयासंजएहिं तियभंगो जीवादिओ।

१३५. देश-व्रत रह्या बहु जाण, वलि असंजम थी पहिछाण।
तथा संजम भाव विराधि, देश-व्रत ग्रहिता एकादि।।

१३६. तिण कारण छै त्रिहुं भंग, तीनूं में बहु वचन प्रसंग।
जीव पंचेंद्रिय तिर्यंच, मनुष्य पद्द इज कहिवो सुसंच।।

१३५,१३६. इह देशविरतिं प्रतिपन्नानां बहूनां संयमादसंयमाद् वा निवृत्य तां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां भावाद्भङ्गकत्रयसम्भवः, इह जीवपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यपदान्येवाध्येयानि। (वृ० प० २६३)

*लय : प्रभवो मन मांहे चितवे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३७. नोसंजत नोअसंजत, संजतासंजत नांय ।
बहु वच जीव सिद्धां विषे, त्रिण भंगा पाय ।।

१३८. *बहु वच सकषाई विषे, जीवादिक त्रिण भंग ।
एकेंद्रिय अभंग छै, सूत्रे एम सुचंग ।।

**यतनी**

१३९. सकषाई सदा बहु पेख, सप्रदेशा भंग इति एक ।
तथा उपशम श्रेणि थी पड़तो, सकषायपणुं पड़िवजतो ।।

१४०. एक जीव पिण लाधै विशेष, जद सप्रदेशा अप्रदेश ।
द्वितीय भंग कहिवाय, हिव तीजा नों निसुणो न्याय ।।

१४१. उपशमश्रेणी थकी बहु पड़ता, सकषायपणों पड़िवजता ।
जद सप्रदेशा-अप्रदेशा, ए तृतीय भंग सुविशेषा ।।

१४२. नारकादिक मांहे पाय, तीन भांगा प्रसिद्ध कहाय ।
वलि एकेंद्रिय रै मांहि, अभंग ते भांगा नांहि ।।

१४३. बहु सकषाई सदा पाय, ऊपजता पिण बहु थाय ।
घणां सप्रदेशा-अप्रदेशा, एक विकल्प वृत्ति कहेसा ।।

१४४. एकेंद्रिय में अभंग सूत्र मांय, त्रिण षट भंग नीं अपेक्षाय ।
त्रिण षट मांहिलूं भंग एक, तिण सूं वृत्ति विषे एक पेख ।।

१४५. इहां सिद्ध पद नें नहिं कहिवो, अकषाईपणें तसुं रहिवो ।
दंडक चोवीसां मांहे कषाय, सिद्धां मांहे ते नहिं पाय ।।

१४६. *क्रोधकषाई नें विषे, बहु वच पहिछाण ।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नें, भांगा तीन जाण ।।

**यतनी**

१४७. वृत्ति में कह्यो क्रोधकषाई, बहु वच जीव एकेंद्री मांही ।
बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, शेष में त्रिण भंग कहेसा ।।

१४८. समचै सकषाई जीव मांहि, पूर्वे त्रिण भांगा कह्या ताहि ।
क्रोधकषाई में त्रिण भंग, किम न लाधै तेह प्रसंग ?

१४९. तेहनों उत्तर इह विध जाण, मान माया लोभ पहिछाण ।
ए तीनूं भावे न वर्त्तता, क्रोध भावे घणां पामता ।।

१५०. अनंतकाय नीं राशि मझार, तिहां जीव अनंता धार ।
क्रोध भावे सदा बहु होय, पिण एकादिक नहिं सोय ।।

१५१. तिण सूं क्रोधकषाई विशेषा, सव्व जीवा सप्रदेशा-अप्रदेशा ।
पिण तीन भांगा नहिं पाय, बुद्धिवंत विचारै न्याय ।।

---

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

१३७. नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजय - जीव - सिद्धेहिं तियभंगो ।

१३८. सकसाईहिं जीवादिओ तियभंगो । एगिंदिएसु अभंगकं ।

१३९, १४०. सकषायाणां सदाऽवस्थितत्वात्ते सप्रदेशा इत्येको भङ्गः तथोपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानत्वे सकषायत्वं प्रतिपद्यमाना एकादयो लभ्यन्ते ततश्च सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्च । (वृ० प० २६३)

१४१. तथा सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्यपरभङ्गकद्वयमिति । (वृ० प० २६३)

१४२. नारकादिषु तु प्रतीतमेव भङ्गकत्रयम्, 'एगिंदिएसु अभंगयं' ति अभङ्गकं—भङ्गकानामभावोऽभङ्गकम् । (वृ० प० २६३)

१४३. सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव विकल्प इत्यर्थः, बहूनामवस्थितानामुत्पद्यमानानां च तेषु लाभादिति । (वृ० प० २६३)

१४५. इह च सिद्धपदं नाध्येयमकषायित्वात् । (वृ० प० २६३)

१४६. कोहकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।

१४७. क्रोधकषायिद्वितीयदण्डके जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गः शेषेषु त्रयः । (वृ० प० २६३)

१४८. ननु सकषायिजीवपदवत्कथमिह भङ्गत्रयं न लभ्यते ? (वृ० प० २६३)

१४९. उच्यते, इह मानमायालोभेभ्यो निवृत्ताः क्रोधं प्रतिपद्यमाना बहव एव लभ्यन्ते । (वृ० प० २६३)

१५०. प्रत्येकं तद्राशीनामनन्तत्वात्, न त्वेकादयः । (वृ० प० २६३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. समचै सकषाई जीवां मांय, तीन भांगा कह्या तसुं न्याय ।
सकषाईपणैं सदा ताहि, बहु जीव रह्या जग मांहि ।।
१५३. पछै उपशमश्रेणि थी पड़तो, सकषायपणों पडिवजतो ।
एक जीव तथा बहु जीवा, प्रथम समय लाधै ते अतीवा ।।
१५४. तिण सूं सकषाई जीव मांहि, तीन भांगा पूर्वे कह्या ताहि ।
क्रोधकषाई सदा विशेषा, तिणसूं सप्रदेशा अप्रदेशा ।।

१५५. *बहु वच क्रोध कषाय में, देव पदे कहिवाय ।
तेर दंडक सुर नैं विषे, षट भंगा तसु न्याय ।।

**यतनी**

१५६. देव वर्त्तता क्रोध रै भावै, अल्पपणैं एकादिक थावै ।
तिण सूं कहियै इक वचनेह, वलि बहु वचने पिण तेह ।।
१५७. सप्रदेशपणु अवलोय, वलि अप्रदेशपणु जोय ।
बिहुं ना संभव थीज प्रसंग, तिण कारण है षट भंग ।।

१५८. *मानकषाई नैं विषे, वलि मायकषाई ।
जीव एकेंद्रिय वर्जे नैं, त्रिण भंगा थाई ।।
१५९. बहु वच नारक सुर विषे, मान माया कषाई ।
भांगा षट लहियै अछै, तास न्याय कहिवाई ।

**यतनी**

१६०. नारकी देवता में जेह, मान माय भावे वर्त्तै तेह ।
तिके अल्पहिज कहिवाय, षट भांगा पूर्वले न्याय ।।

१६१. *बहु वच लोभ कषाई में, वर्जी जीव एगिंदिया ।
तीन भांगा पावै अछै, षट भंग नेरइया ।।

**यतनी**

१६२. वृत्ति मांहि कही इम वाय, एह सूत्र क्रोधवत पाय ।
नारकी नैं विषे षट भंग, तेहनों इम न्याय प्रसंग ।।
१६३. नारकी नैं लोभोदयवंत, अल्पपणां थकीज उदंत ।
पूर्वोक्त भांगा षट होय, नारक लोभकषाई जोय ।।
१६४. सुर नारक में अल्प जोय, मान माय वर्त्तता होय ।
पूर्वोक्त न्याय थी पेख, षट भांगा हुवै इण लेख ।।
१६५. क्रोध मान माया सुर मांय, तसु षट भांगा कहिवाय ।
मान माया लोभ नारकेह, तसुं पिण षट भंग कहेह ।।

१६६. देवतां में लोभ बहु होय, तिण सूं लोभ भाव बहु जोय ।
नरक में बहु क्रोधज पावै, तिण सूं वर्त्तै बहु क्रोध भावै ।।

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

१५३. यथोपशमश्रेणीत प्रच्यवमानाः सकषायित्वं प्रतिपत्तार इति । (वृ० प० २६४)

१५५. देवेहिं छब्भंगा ।
देवपदेषु त्रयोदशस्वपि षड्भङ्गाः ।
(वृ० प० २६४)

१५६, १५७. तेषु क्रोधोदयवतामल्पत्वेनैकत्वे बहुत्वे च सप्रदेशाप्रदेशत्वयोः सम्भवादिति ।(वृ० प० २६४)

१५८. माणकसाई-मायाकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो ।
१५९. नेरइय-देवेहिं छब्भंगा ।
मानकषायिमायाकषायिद्वितीयदण्डके 'नेरइयदेवेहिं छब्भंग' त्ति (वृ० प० २६४)

१६०. नारकाणां देवानां च मध्येऽल्पा एव मानमायोदयवन्तो भवन्तीति पूर्वोक्तन्यायात् षड् भङ्गा भवन्तीति । (वृ० प० २६४)
१६१. लोभकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो । नेरइएसु छब्भंगा

१६२ एतस्य क्रोधसूत्रवद्भावना 'नेरइएहिं छब्भंग' त्ति
(वृ० प० २६४)
१६३. नारकाणां लोभोदयवतामल्पत्वात् पूर्वोक्ताः षड्भंगा भवन्तीति । (वृ० प० २६४)

१६५. कोहे माणे माया बोद्धव्वा सुरगणेहिं छब्भंगा ।
माणे माया लोभे नेरइएहिं पि छब्भंगा ।।
(वृ० प० २६४)
१६६. देवा लोभप्रचुरा, नारकाः क्रोधप्रचुरा इति ।
(वृ० प० २६४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६७. *बहु वच अकषाई विषे, जीव मनुष्य सिद्ध न्हाल ।
भांगा तीन पावै अछै, घणां केवली त्रिकाल ।।
१६८. औधिक समचै ज्ञान में, मतिज्ञान श्रुतज्ञान ।
बहु वचने जीवादिके, त्रिण भांगा जान ।।

**यतनी**

१६९. समचै ज्ञानी सदा बहु होय, इम मति श्रुत ज्ञानी जोय ।
बहु समय तणां सुविशेख, सप्रदेशा भांगो इक देख ।।

१७०. अज्ञान थकी कोइ ज्ञान पड़िवजतो थको इक जान ।
एक समय थयो सुविशेख, ते सप्रदेशा अप्रदेश एक ।।
१७१. अज्ञान थकी केइ ज्ञान पड़िवजता थका बहु जान ।
इक समय थया सुविशेषा, ते सप्रदेशा-अप्रदेशा ।।

१७२. *विकलेंद्रिय षट भंग है, ज्ञान मति श्रुत लाध ।
पूर्व पड़िवज्या लाभै एकादिक, पड़िवजता पिण एकाद ।।
१७३. अवधि मनपर्यव ज्ञान में, वलि केवलज्ञान ।
जीवादिक त्रिण भंग छै, ज्यांमें लाभै ते जान ।।

**यतनी**

१७४. मति श्रुत ज्ञान रै मांय, एकेंद्रिय सिद्ध न कहाय ।
अवधि विषे एकेंद्री न पाय, विकलेंद्रिय सिद्ध न थाय ।।

१७५. मनपर्यव जीव मनु जाण, केवल जीव मनुष्य सिद्ध माण ।
इम यथायोग्य कहिवाय, बुद्धिवंत मिलावै न्याय ।।

१७६. वाचनांतरे वृत्ति रै मांहि, विण्णेयं जस्स जं अत्थि ताहि ।
जेह मांहे बोल जे पाय, ते कहिवूं विचारी न्याय ।।

१७७. *औधिक समचै अज्ञान में, वलि मति श्रुत अज्ञान ।
एकेंद्रिय वरजी करी, तीन भांगा जान ।।

**यतनी**

१७८. समचै अज्ञाणी मति श्रुत अज्ञानी, सदा अवस्थित बहु जानी ।
कहियै तास सप्रदेशा, इक भांगो एम लहेसा ।।

१७९. वलि एक जीव ते मांय, ज्ञान मूकी अज्ञानी थाय ।
तिण रो प्रथम समय सुविशेख, ए सप्रदेशा-अप्रदेश एक ।।

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

१६७. अकसाई-जीव-मणुएहिं, सिद्धेहिं तियभंगो ।

१६८. ओहियनाणे, आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे जीवादिओ तियभंगो ।

१६९. तत्रौघिकज्ञानमतिश्रुतज्ञानिनां सदाऽवस्थिततत्वेन सप्रदेशानां भावाद्, सप्रदेशा इत्येकः ।
(वृ० प० २६४)

१७०, १७१. मिथ्याज्ञानान्मत्यादिज्ञानमात्रं""""प्रतिपद्यमानानामेकादीनां लाभात्सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्च तथा सप्रदेशाश्च अप्रदेशाश्चेति द्वावित्येवं त्रयमिति ।
(वृ० प० २६४)

१७२. विगलिंदिएहिं छब्भंगा ।

१७३. ओहिनाणे मणपज्जवनाणे केवलनाणे जीवादिओ तियभंगो ।

१७४. इह च यथायोगं पृथिव्यादयः सिद्धाश्च न वाच्याः असंभवादिति, एवमवध्यादिष्वपि भङ्गत्रयभावना, केवलमवधिदण्डकयोरेकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः सिद्धाश्च न वाच्याः, (वृ० प० २६४)

१७५. मनःपर्यायदण्डकयोस्तु जीवा मनुष्याश्च वाच्याः, केवलदण्डकयोस्तु जीवमनुष्यसिद्धा वाच्याः,
(वृ० प० २६४)

१७६. अतएव वाचनान्तरे दृश्यते 'विण्णेयं जस्स जं अत्थि' त्ति । (वृ० प० २६४)

१७७. ओहिए अण्णाणे, मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभंगो ।

१७८. सामान्येऽज्ञाने मत्यज्ञानादिभिरविशेषिते मत्यज्ञाने श्रुताज्ञाने च जीवादिषु त्रिभङ्गी भवति, एते हि सदाऽवस्थितत्वात्सप्रदेशा इत्येकः । (वृ० प० २६४)

१७९. यदा तु तदन्ये ज्ञानं विमुच्य मत्यज्ञानादितया परिणमन्ति तदैकादिसम्भवेन सप्रदेशाश्चाप्रदेशश्चेत्यादिभङ्गद्वयम् । (वृ० प० २६४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८०. तथा अन्य बहु जीव ताय, ज्ञान मूकी अज्ञानी थाय।
त्यांरो प्रथम समय सुविशेषा, ए सप्रदेशा-अप्रदेशा॥
१८१. पृथिव्यादिक एकेंद्री मांय, तिहां एक भांगो कहिवाय।
बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, न्याय पूर्व उक्त कहेसा॥

१८१. पृथिव्यादिषु तु सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव इति।
(वृ० प० २६४)

१८२. *विभंग अज्ञानी विषे, जीवादिक त्रिण भंग।
न्याय पूर्व जे आखियो, कहिवो ते सुचंग॥

१८२. विभंगनाणे जीवादिओ तियभंगो।

१८३. सजोगी जीवादिक मझे, इक बहु वच मांय।
जिम औधिक जीवादिक भणी, आख्या तिम कहिवाय॥

१८३ सजोगी जहा ओहिओ,

**यतनी**

१८४. इक वचन सजोगी जीव, नियमा सप्रदेशी अतीव।
नारकादि सिय सप्रदेश, सिय अप्रदेश सुकहेस॥
१८५. बहु वचन सजोगी जीवा, सप्रदेशाज होवै सदीवा।
एकेन्द्री वर्जी नारकादि, कहियै तीन भांगा सुसाधि॥
१८६. एकेन्द्री इक भंग विशेषा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा।
इम औधिक जिम कहिवाय, इक सिद्ध पद कहिवो नांय॥

१८४. सयोगी जीवो नियमात्सप्रदेशो नारकादिस्तु सप्रदेशोऽप्रदेशो वा। (वृ० प० २६४)
१८५. बहवस्तु जीवाः सप्रदेशा एव, नारकाद्यास्तु त्रिभङ्गवन्तः। (वृ० प० २६४)
१८६. एकेन्द्रियाः पुनस्तृतीयभङ्गा इति, इह सिद्धपदं नाध्येयं। (वृ० प० २६४)

१८७. *मन वच काय जोगी मझे, जीवादिक त्रिण भंग।
णवरं काय जोगी विषे, एगिंदिया में अभंग॥

१८७. मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी जीवादिओ तियभंगो, नवरं—कायजोगी एगिंदिया, तेसु अभंगयं।

**यतनी**

१८८. मनजोग त्रिहुं जोगवंत, ते तो सन्नी मांहे इज हुंत।
वचनजोग एकेन्द्री में नांहि, पावै उगणीस दंडक मांहि॥
१८९. कायजोग दंडक चउबीस, हिवै निर्णय भंग कहीस।
मन जोग जीवादिक मांय, त्रिहुं भांगा नों इम न्याय॥
१९०. बहु मन जोगे आदि जाण, अवस्थितपणैं पहिछाण।
जद सप्रदेशा इज होय, इम प्रथम भंग अवलोय॥
१९१. छांडी अमनोजोगीपणुं पेख, मनजोगीपणे थयुं एक।
तिण रो प्रथम समय सुविशेष, इम सप्रदेशा-अप्रदेश॥
१९२. छांडी अमनोजोगीपणुं ताय, मनोजोगीपणैं बहु थाय।
तिण रो प्रथम समय सुविशेषा, इम सप्रदेशा-अप्रदेशा॥
१९३. इम वचन काय जोगी जाण, णवरं इतो विशेष पिछाण।
काय-जोगी एकेन्द्री विशेषा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा॥

१८८. मनोयोगिनो योगत्रयवन्तः सञ्ज्ञिन इत्यर्थः, वाग्योगिन एकेन्द्रियवर्जाः; (वृ० प० २६४)
१८९. काययोगिनस्तु सर्वेऽप्येकेन्द्रियादयः, एतेषु च जीवादिषु त्रिविधो भङ्गः। (वृ० प० २६४)
१९०. मनोयोगादीनामवस्थितत्वे प्रथमः।
(वृ० प० २६४)
१९१,१९२. अमनोयोगित्वादित्यागाच्च मनोयोगित्वाद्युत्पादेनाप्रदेशत्वलाभेऽन्यद्भङ्गकद्वयमिति।
(वृ० प० २६४)

१९३. नवरं काययोगिनो ये एकेन्द्रियास्तेष्वभङ्गकं, सप्रदेशा अप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गक इत्यर्थः।
(वृ० प० २६४)

१९४. तीनूं जोग दंडक रै मांय, जीवादिक पद में जे पाय।
यथासंभव ते कहिवाय, पिण सिद्ध पद भणवो नांय॥

१९४. एतेषु च योगत्रयदण्डकेषु, जीवादिपदानि यथासम्भवमध्येयानि सिद्धपदं च न वाच्यमिति।
(वृ० प० २६४)

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९५. अजोगी अलेसी जिम भणवा, एक वचन बहु वच गुणवा।
द्वितीय दंडक बहु वच मांय, अजोगी विषे इम कहिवाय॥
१९६. जीव नें सिद्ध पद सुचीन, यांमें भांगा कहीजै तीन।
मनुष्य विषे छ भांगा होय, वृत्ति विषे इम जोय॥

१९७. *बहु वचने साकार नैं, अणागारोवउत्ता।
जीव एकेन्द्रिय वर्ज नै, भांगा तीनज उत्ता॥

**यतनी**

१९८. बिहुं उपयोग मांहे सुचीन, नारकादिक में भंग तीन।
जीव एकेन्द्री एक लहेसा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा॥

१९९. एक उपयोग थी जे ताय, बीजा उपयोग नैं विषे आय।
तिहां प्रथम समय सप्रदेश, द्वितीयादि समय अप्रदेश॥
२००. वलि सिद्धां तणैं कहिवाय, एक समय उपयोगी थाय।
किम सप्रदेश अप्रदेश, तिहां वृत्ति में न्याय कहेस॥
२०१. उपयोग सागार नैं अनागार, पामवापणुं छै बार बार -
सप्रदेश कहियै विशेष, एक बार पाम्या अप्रदेश॥

२०२. बार बार पाम्या छै सागार, एहवा बहु सिद्ध आश्री विचार।
एक बार सागार न कोय, सप्रदेशा इक भंग होय॥
२०३. त्यां सिद्धां विषे नवो एक, सिद्ध थयो संसार थी पेख।
एक बार सागार लहेस, जद सप्रदेशा-अप्रदेश॥
२०४. तथा तेह सिद्धां विषे सोय, नवा सिद्ध थया बहु जोय।
एक बार साकार लभेसा, जद सप्रदेशा-अप्रदेशा॥
२०५. बार बार पाम्या अणागार, एहवा बहु सिद्ध आश्री विचार।
अनाकार न इक पिण पेख, सहु सप्रदेशा भंग एक॥
२०६. त्यां सिद्धां विषे नवो एक, सिद्ध थयो संसारी थी पेख।
बार इक अणागार लहेस, जद सप्रदेशा-अप्रदेश॥
२०७. तथा तेह सिद्धां विषे सोय, नवा सिद्ध थया बहु जोय।
बार इक अणागार लभेसा, जद सप्रदेशा-अप्रदेशा॥

२०८. *सवेदगा जीवादिक पदे, सकषाई जेम।
भांगा तीन भणीजियै, एकेन्द्री इक तेम॥

**यतनी**

२०९. जीव सवेदी बहु जग मांहि, बहु काल तणां छै ताहि।
प्रथम समय नवेदी न पाय, जद सप्रदेशा बहु थाय॥

---

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै

१९५, १९६. अजोगी जहा अलेस्सा।
दण्डकद्वयेऽप्यलेश्यसमवक्तव्यत्वात्तेषां, ततो द्वितीय-दण्डकेऽयोगिषु जीवसिद्धपदयोर्भङ्गकत्रयं मनुष्येषु च षड्भङ्गीति। (वृ० प० २६४)

१९७. सागारोवउत्त-अणागारोवउत्तेहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

१९८ साकारोपयुक्तेष्वनाकारोपयुक्तेषु च नारकादिषु त्रयो भङ्गाः, जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव। (वृ० प० २६५)
१९९. तत्र चान्यतरोपयोगादन्यतरगमने प्रथमेतरसमययोः सप्रदेशत्वमप्रदेशत्वे भावनीये, (वृ० प० २६५)
२००. सिद्धानां त्वेकसमयोपयोगित्वेऽपि। (वृ० प० २६५)
२०१. साकारस्येतरस्य चोपयोगस्यासकृत्प्राप्त्या सप्रदेशत्वं सकृत्प्राप्त्या चाप्रदेशत्वमवसेयम्। (वृ० प० २६५)
२०२. एवं चासकृदवाप्तसाकारोपयोगान् बहूनाश्रित्य सप्रदेशा इत्येको भङ्गः, (वृ० प० २६५)
२०३. तानेव सकृदवाप्तसाकारोपयोगं चैकमाश्रित्य द्वितीयः, (वृ० प० २६५)
२०४. तथा तानेव सकृदवाप्तसाकारोपयोगांश्च बहूनधिकृत्य तृतीयः, (वृ० प० २६५)
२०५. अनाकारोपयोगे त्वसकृत्प्राप्तानाकारोपयोगानाश्रित्य प्रथमः, (वृ० प० २६५)
२०६. तानेव सकृत्प्राप्तानाकारोपयोगं चैकमाश्रित्य द्वितीयः, (वृ० प० २६५)
२०७. उभयेषामप्यनेकत्वे तृतीय इति। (वृ० प० २६५)

२०८. सवेदगा जहा सकसाई।
सवेदानामपि जीवादिपदेषु भङ्गकत्रयभावात्, एकेन्द्रियेषु चैकभङ्गसद्भावात्। (वृ० प० २६५)

२०९-२११. इह च वेदप्रतिपन्नान् बहून् श्रेणिभ्रंशे च वेदं प्रतिपद्यमानकादीनपेक्ष्य भङ्गकत्रयं भावनीयम्, (वृ० प० २६५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१०. घणां सवेदी मांहे एक, श्रेणि थी पड़तो संपेख।
तिण रो प्रथम समय सुविशेष, जद सप्रदेशा-अप्रदेश ।।
२११. वले घणां सवेदी में सोय, श्रेणि थी पड़ता बहु होय।
तिण रो प्रथम समय सुविशेषा, बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा ।।

२१२. *स्त्री पुं नपुंसक वेदगा, जीवादिक त्रिण भंग।
णवरं नपुंसक नें विषे, एकेन्द्री में अभंग ।।

२१२. इत्थिवेदग-पुरिसवेदग-नपुंसगवेदगेसु जीवादिओ तियभंगो, नवरं—नपुंसगवेदे एगिंदिएसु अभंगयं।

**यतनी**

२१३. वेद थकी बीजा वेद मांहि, संक्रमता छतां जे ताहि।
जद प्रथम समय अप्रदेश, द्वितीयादि समय सप्रदेश ।।
२१४. तीन भांगा पूर्ववत कहिवा, नपुंसक एकेन्द्री इक लहिवा।
बहु सप्रदेशा-अप्रदेशा, पूर्वली परे युक्ति कहेसा ।।

२१३. इह वेदाद्वेदान्तरसंक्रान्तौ प्रथमे समयेऽप्रदेशत्वमितरेषु च सप्रदेशत्वमवगम्य। (वृ० प० २६५)
२१४. भङ्गकत्रयं पूर्ववद्योज्यं नपुंसकवेददण्डकयोस्त्वेकेन्द्रियेष्वेको भङ्गः सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येवंरूपः प्रागुक्तयुक्तेरेवेति, (वृ० प० २६५)

२१५. स्त्री पुरुष दंडक मनु देवा, तिर्यंच पंचेन्द्रिय लेवा।
नपुंसक सुर वर्जी भणवा, पद सिद्ध सर्व में न थुणवा ।।

२१५. स्त्रीदण्डकपुरुषदण्डकेषु देवपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यपदान्येव, नपुंसकदण्डकयोस्तु देववर्जानि वाच्यानि, सिद्धपदं च सर्वेष्वपि न वाच्यमिति। (वृ० प० २६५)

२१६. *अवेदी जिम अकषाइया, जीव मनुष्य पद सिद्ध।
भांगा तीन भणीजियै, अकषाई ज्यूं ऋद्ध ।।

२१६. अवेदगा जहा अकसाई।
जीवमनुष्यसिद्धपदेषु भङ्गकत्रयमकषायिवद्वाच्यम्। (वृ० प० २६५)

२१७. सशरीरी औधिक जिम अछै, एक बहु वच मांय।
सप्रदेशपणों ईज छै, अनादिपणां थी थाय ।।

२१७. ससरीरी जहा ओहिओ।
औघिकदण्डकवत्सशरीरिदण्डकयोर्जीवपदे सप्रदेशतैव वाच्याऽनादित्वात्सशरीरत्वस्य, (वृ० प० २६५)

२१८. नारकादि बहु वचन में, भंग त्रिण सुविशेषा।
तीजो भांगो एकेन्द्री मझे, सप्रदेशा-अप्रदेशा ।।
२१९. औदारीक अरु वैक्रिय तनुवाला में ताय।
जीव एकेन्द्रिय वर्ज नें, तीन भांगा पाय ।।

२१८. नारकादिषु तु बहुत्वे भङ्गकत्रयमेकेन्द्रियेषु तृतीयभङ्ग इति। (वृ० प० २६५)
२१९. ओरालिय-वेउव्वियसरीराणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

**यतनी**

२२०. औदारिकादि वालां में ताहि, बहु वच जीव एकेंद्री मांहि।
इक तीजो भांगो पावंत, बहु ऊपना बहु उपजंत ।।

२२०. औदारिकादिशरीरिसत्त्वेषु जीवपदे एकेन्द्रियपदेषु च बहुत्वे तृतीयभङ्ग एव, बहूनां प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चानुक्षणं लाभात्, (वृ० प० २६५)

२२१. शेष विषे भांगा त्रिण होय, तेह विषे बहु रह्या सोय।
इम पूर्वला बहु हुंत, सर्व सप्रदेशा पावंत ।।
२२२. तथा औदारिक छांडी नें, वलि वैक्रिय त्याग करीनें।
औदारिक मांहे आवंतां, तथा वैक्रियपणुं पावंतां ।।
२२३. प्रथम समय एक बहु होय, तिण सूं तीन भांगा अवलोय।
इक बहु वच औदारीक, नारका सुर नांहि कथीक ।।

२२१. शेषेषु भङ्गकत्रयं बहूनां तेषु प्रतिपन्नानां (वृ० प० २६५)
२२२, २२३. तथौदारिकवैक्रियत्यागेनौदारिकं वैक्रियं च प्रतिपद्यमानानामेकादीनां लाभात्, इहौदारिकदण्डकयोर्नारका देवाश्च न वाच्याः। (वृ० प० २६५)

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२४. वलि वैक्रिय इक बहु वाय, वाऊ वर्जी थावर में नांय।
विकलेंन्द्रिय में पिण जोय, वैक्रिय तनु नहिं होय।।
२२५. जे वैक्रिय वायु मांय, एक तीजो भांगो कहिवाय।
समय-समय वायु असंख्यात, तनु वैक्रिय करण आख्यात।।

२२६. तथा मनुष्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच, वैक्रिय लब्धिवंत सुसंच।
थोड़ा हुवै ते पिण त्यां मांय, तीन भांगा कह्या जिनराय।।
२२७. ते वचन सामर्थ्य थी जान, बहु वैक्रिय रह्यं पिछान।
तथा पड़िवज्जमान एकादि, तिण सूं तीन भांगा इहां लाधि।।

२२८. *आहारक इक बहु वचन थी, जीव मनुष्य षट भंग।
ते तनु अल्पपणां थकी, शेष दंडक न प्रसंग।।

२२९. तेजस शरीर तणां धणी, वलि कार्मणवाला।
औघिक जेम कहीजियै, ए जिन वचन विशाला।।

२२४. वैक्रियदण्डकयोस्तु पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिविकलेन्द्रिया न वाच्याः। (वृ० प० २६५)
२२५. यश्च वैक्रियदण्डके एकेन्द्रियपदे तृतीयभङ्गोऽभिधीयते स वायूनामसंख्यातानां प्रतिसमयं वैक्रियकरणमाश्रित्य, (वृ० प० २६५)
२२६. २२७. यद्यपि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च वैक्रियलब्धिमन्तोऽल्पे तथाऽपि भङ्गकत्रयवचनसामर्थ्याद् बहूनां वैक्रियावस्थानसम्भवः, तथैकादीनां तत्प्रतिपद्यमानता चावसेया। (वृ० प० २६५)
२२८. आहारगसरीरे जीव-मणुएसु छब्भंगा,
आहारकशरीरिणामल्पत्वात्, शेषजीवानां तु तन्न संभवतीति। (वृ० प० २६५)
२२९. तेयग-कम्मगाइं जहा ओहिया।

**यतनी**

२३०. तिहां बहु वचने जे जीवा, होवै सप्रदेशाज अतीवा।
तेजसादिक नों संजोग, अनादिपणां थी प्रयोग।।

२३१. नारकादिक में त्रिण भंग, तीजो भंग एकेंद्री प्रसंग।
सशरीरादिक दंडकेह, पद सिद्ध तणो न कहेह।।

२३२. *अशरीरी जीव सिद्धां विषे, त्रिण भांगा पाय।
चोबीस दंडक नें विषे, अशरीरी नहिं थाय।।

२३३. आहार शरीर नें इंद्रिय, पर्याप्ति आणप्राण।
जीव एकेंद्रिय वर्जं नें, तीन भांगा जाण।।

२३०. तत्र च जीवाः सप्रदेशा एव वाच्याः, अनादित्वात्तैजसादिसंयोगस्य, (वृ० प० २६५)
२३१. नारकादयस्तु त्रिभङ्गाः, एकेन्द्रियास्तु तृतीयभङ्गाः, एतेषु च शरीरादिदण्डकेषु सिद्धपदं नाध्येयमिति, (वृ० प० २६५)
२३२. असरीरेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो।
अन्यत्राशरीरत्वस्याभावादिति। (वृ० प० २६५)
२३३. आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए, इंदियपज्जत्तीए, आणापाणपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो,

**यतनी**

२३४. इहां जीव-पदे कहिवाय, वलि एकेंद्री पद मांय।
आहार आदि पर्याप्ति च्यार, तिण सहित बहु अवधार।।

२३५. आहारादिक अपर्याप्ति जाण, तिके तजवै करि पहिछाण।
आहार पर्याप्ति प्रमुखेह, तिण कर पर्याप्तिभाव पामेह।।
२३६. पिण लाभै बहु सुविशेषा, तिण सूं सप्रदेशा अप्रदेशा।
तिण सूं भंग तीजो कहिवाय, शेष में तीन भांगा थाय।।

२३४. इह च जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च बहूनामाहारादिपर्याप्तीः प्रतिपन्नानां (वृ० प० २६५)
२३५, २३६. तदपर्याप्तित्यागेनाहारपर्याप्त्यादिभिः पर्याप्तिभावं गच्छतां च बहूनामेव लाभात्सप्रदेशाश्चाप्रदेशाश्चेत्येक एव भङ्गः, शेषेषु तु त्रयो भंगा इति। (वृ० प० २६५)

*लय : प्रभवो मन मांहे चिन्तवै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३७. *भाषा मन पर्याप्ति में, सन्नी जिम कहिवाय।
सर्व पदे भंग तीन छै, दंडक पंचेंद्री पाय।।

२३७. भासा-मणपज्जत्तीए जहा सण्णी।
सर्वपदेषु भङ्गकत्रयमित्यर्थः, पञ्चेन्द्रियपदान्येव चेह वाच्यानि,

(वृ० प० २६५)

**यतनी**

२३८. भाषा मन पर्याप्ति एक, किणहि कारण थी सुविशेख।
बहुश्रुत कही छै ताय, इम वृत्ति विषै छै वाय।।

२३८. इह भाषामनसोः पर्याप्तिर्भाषामनःपर्याप्तिः, भाषा-मनःपर्याप्त्योस्तु बहुश्रुताभिमतेन केनापि कारणे-नैकत्वं विवक्षितं,

(वृ० प० २६५)

२३९. *आहार अपर्याप्ति विषे, अनाहारका जेम।
निर्णय वृत्ति विषे कह्यो, सुणज्यो धर प्रेम।।

२३९. आहार-अपज्जत्तीए जहा अणाहारगा,

**यतनी**

२४०. जीव एकेंद्री इक भंग एसा, बहु सप्रदेशा अप्रदेशा।
निरंतर विग्रहगति बहु पाय, शेष में षट भंगा कहाय।।

२४०. इह जीवपदे पृथिव्यादिपदेषु च सप्रदेशाश्चाप्रदेशा-श्चेत्येक एव भङ्गकोऽनवरतं विग्रहगतिमतामाहार-पर्याप्तिमतां बहूनां लाभात्, शेषेषु च षड्भङ्गाः पूर्वोक्ता एवाहारपर्याप्तिमतामल्पत्वात्,

(वृ० प० २६६)

२४१. *शरीर इन्द्री आणपाण ए, अपर्याप्ति त्रिहुं जाण।
जीव एकेंद्रिय वर्ज नैं, भंग तीन पहिछाण।।

२४१. सरीर-अपज्जत्तीए, इंदिय-अपज्जत्तीए, आणापाण-अपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो,

(वृ० प० २६६)

२४२. नारक देव मनुष्य विषे, षट भांगा होय।
न्याय कहूं हिव वृत्ति थी, सुणज्यो सहु कोय।।

२४२. नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा,

**यतनी**

२४३. जीव एकेंद्री में भंग एक, सप्रदेशा अप्रदेशा देख।
अन्य विषे भंग त्रिण पाय, तिण रो न्याय सुणो चित ल्याय।।
२४४. शरीरादि अपर्याप्ति तीन, काल थी सप्रदेशा सुचीन।
सदा काल लाभै छै ताय, अप्रदेशा कदाचित थाय।।
२४५. तिके एक आदि पिण पाय, तिण सूं तीन भांगा कहिवाय।
बले नारकी सुर नर मांहि, षट भांगा कहीजै ताहि।।

२४३. इह जीवेष्वेकेन्द्रियेषु चैक एव भङ्गोऽन्यत्र तु त्रयं,

(वृ० प० २६६)

२४४, २४५. शरीराद्यपर्याप्तिकानां कालतः सप्रदेशानां सदैव लाभात् अप्रदेशानां च कदाचिदेकादीनां च लाभात्, नारकदेवमनुष्येषु च षडेवेति,

(वृ० प० २६६)

२४६. *भाषा मन अपर्याप्ति विषे, जीवादिक त्रिण भंग।
नारक सुर अरु मनुष्य में, षट भंग प्रसंग।।

२४६. भासामणअपज्जत्तीए जीवादिओ तियभंगो, नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा।

(श० ६।६३)

**यतनी**

२४७. भाषा मन पर्याप्ति अबंध, तेह अपर्याप्ति नीं संध।
पंचेंद्रिय जाति प्रसंग, तिण सूं जीवादिक त्रिण भंग।।

२४७. भाषामनःपर्याप्त्याऽपर्याप्तकास्ते येषां जातितो भाषामनोयोग्यत्वे सति तदसिद्धिः, ते च पंचेन्द्रिया एव,

(वृ० प० २६६)

---

*लय : प्रभवो मन मांहे चिंतवै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४८. जो ए भाषा मन पर्याप्ति, कहै अभाव मात्र करि नाप्ति ।
जद तो एकेंद्री पिण तिहां आय, जीव पदे तीजो भंग थाय ।।

२४८. यदि पुनर्भाषामनसोऽभावमात्रेण तदपर्याप्तका अभविष्यंस्तदैकेन्द्रिया अपि तेऽभविष्यंस्ततश्च जीव-पदे तृतीय एव भङ्गःस्यात्,
(वृ० प० २६६)

२४९. इहां कह्या जीवादि त्रि भंग, तिण सूं एकेंद्री नो न प्रसंग ।
जीव पंचेंद्री तिर्यंच मांहि, तीन भांगा कहीजै ताहि ।।
२५०. तेणे भाषा मन पर्याय, अणबांधवै अपर्याप्ति थाय ।
पंचेंद्री तिर्यंच रै मांय, अपर्याप्ति बहुला पाय ।।
२५१. प्रतिपद्यमान ते मांय, इक आदि नुं संभव थाय ।
तिण कारण है त्रिण भंग, पूर्ववत न्याय सुचंग ।।
२५२. नरक देव मनुष्य षट भंग, मनो-अपर्याप्त नैं प्रसंग ।।
तिहां सप्रदेशा पिण एकादि, अप्रदेशा एकादि लाधि ।।
२५३. तिण कारण षट भंग थाय, इहां सिद्ध कहिवो नांय ।
हिव चवदेइ द्वार नीं ताय, गाथा संग्रहणी कहिवाय ।।

२४९-२५१. 'जीवाइओ तियभंगो' त्ति, तत्र जीवेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु च बहूनां तदपर्याप्ति प्रतिपन्नानां प्रतिपद्यमानानां चैकादीनां लाभात् पूर्वोक्तमेव भङ्गत्रयं,
(वृ० प० २६६)

२५२, २५३. 'नेरइयदेवमणुएसु छब्भंगं' त्ति नैरयिकादिषु मनोऽपर्याप्तिकानामल्पतरत्वेन सप्रदेशानामेकादीनां लाभात्त एव षड् भङ्गाः, एषु च पर्याप्त्यपर्याप्ति-दण्डकेषु सिद्धपदं नाध्येयमसम्भवादिति । पूर्वोक्त-द्वाराणां संग्रहगाथा—
(वृ० प० २६६)

२५४. †सपदेश आहारग भव्य सन्नी लेस दृष्टी संयति ।
कषाय ज्ञान बलि जोग नै उपयोग वेद तनु-पज्जति ।।
२५५. *ढाल एक सौ एकमी, अंक चोसठ देश ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरख विशेष ।।

२५४. सपदेसाहारग-भविय-सण्णि-लेसा-दिट्ठि-संजयकसाए ।
नाणे जोगुवओगे, वेदे य सरीर-पज्जत्ती ।।
(श० ६।६३ संगहणीगाहा)

## ढाल : १०२

### दूहा

१. जीव तणां अधिकार थी, जीव तणोज विचार ।
पूछै गोयम वीर नैं, वारू प्रश्न उदार ।।

१. जीवाधिकारादेवाह—
(वृ० प० २६६)

※हो प्रभुजी ! परम अनुग्रह कीजै ।
देव जिनेंद्र दयाल दया करि, जन-संशय मेटीजै ।।
हो प्रभुजी ! कृपा अनुग्रह कीजै । (ध्रुपदं)

२. जीवा स्यूं प्रभु ! पचखाणी छै ? सर्व विरतवंत जाणी ।
अपचखाणी तेह अविरति, कै पचखाणा-पचखाणी ?

२. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?
'पच्चक्खाणि' त्ति सर्वविरताः, 'अपच्चक्खाणि' त्ति अविरताः । (वृ० प० २६७)

†लय : पूज मोटा भांजै
*लय : प्रभवो मन मांहे चितवै
※लय : सेवो रे साध सयाणा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. जिन कहै जीवा पचखाणी पिण, वलि छै अपचखाणी ।
पचखाणा-पचखाणी पिण छै, बोल तीनूंइ जाणी ।
(रे गोयम ! सांभलजै चित ल्याय ।
चवदेइ गुणस्थान तीनूं में, निर्मल कहीजै न्याय) ॥

३. गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि ।

(श० ६।६४)

४. सर्व जीवां नीं पूछा इहविध, उत्तर दे जिनराय ।
नेरइया अपचखाणी अविरती, चिउं गुणठाणां पाय ॥

४. सव्वजीवाणं एवं पुच्छा ।
गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी,

५. जाव चोइंदिया अपचखाणी, पचखाणी नहिं होय ।
पचखाणा-पचखाणी पिण नहीं, बोल न पावै दोय ॥

५. जाव चउरिंदिया (सेसा दो पडिसेहेयव्वा) ।

६. तिर्यंच-पंचेंद्री नोपचखाणी, अपचखाणी जाण ।
पचखाणा-पचखाणी पिण छै, पावै पंच गुणठाण ॥

६. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि ।

७. मनु पचखाणी अपचखाणी, पचखाणा-पचखाणी ।
व्यंतर ज्योतिषि वेमानिक ते, नरक जेम पहिछाणी ॥

७. मणूसा तिण्णि वि । सेसा जहा नेरइया ।

(श० ६।६५)

## सोरठा

८. पचखाणी तो होय, प्रत्याख्यान जाण्ये छते ।
ते माटै अवलोय, ज्ञान-सूत्र कहियै हिवै ॥

८. प्रत्याख्यानं च तज्ज्ञाने सति स्यादिति ज्ञानसूत्रम्—

(वृ० प० २६७)

९. *जीव प्रभु ! पचखाण जाणै स्यूं अपचखाण नैं जाणै ?
पचखाणापचखाण नैं जाणै ? हिव जिन उत्तर आणै ॥

९. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं जाणंति ? अपच्चक्खाणं जाणंति ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणंति ?

१०. पंचेंद्रिया तीनूं प्रति जाणै, पंचेंद्री दंडक मांय ।
सन्नी विशिष्ट विज्ञान अपेक्षा, जाणै ते जीव कहाय ॥

१०. गोयमा ! जे पंचिंदिया ते तिण्णि वि जाणंति,
""पञ्चेन्द्रियाः, समनस्कत्वात् सम्यग्दृष्टित्वे सति ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानादित्रयं जानन्तीति,

(वृ० प० २६७)

११. शेष तीनूंइ प्रति नहिं जाणै, त्यां में विशिष्ट जाणपणो नांही ।
थावर विकलेंद्री असन्नी मनुष्य तिरि, मन नहीं ते मांही ॥

११. अवसेसा पच्चक्खाणं न जाणंति, अपच्चक्खाणं न जाणंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं न जाणंति ।

(श० ६।६६)

एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाः प्रत्याख्यानादित्रयं न जानन्त्यमनस्कत्वादिति ।

(वृ० प० २६७)

## सोरठा

१२. कीधो ह्वै पचखाण, अणकीधो होवै नहीं ।
ते माटै पहिछाण, करण-सूत्र कहियै हिवै ॥

१२. कृतं च प्रत्याख्यानं भवतीति तत्करणसूत्रम्—

(वृ० प० २६७)

१३. *जीवा प्रभु ! पचखाण करै स्यूं, अपचखाण करै छै ?
पचखाणापचखाण करै छै ? हिव जिन उत्तर दै छै ॥

१३. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं कुव्वंति ? अपच्चक्खाणं कुव्वंति ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणं कुव्वंति ?

१४. जिम औधिक-सूत्रे नरकादिक आख्या तिमहिज जाणो ।
करिवा नों अधिकारज कहिवो, प्रवर न्याय पहिछाणो ॥

१४. जहा ओहिओ तहा कुव्वणा ।

(श० ६।६७)

*लय : सेवो रे साध सयाणा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

१५. नारक सुरवर जेह, एकेंद्री विकलेंद्रिय ।
अपचखाणी एह, अपचखाण करैंज ते ।।

१६. तिरि पंचेंद्री जाण, न करै ए पचखाण नैं ।
पचखाणापचखाण, अपचखाण करै वलि ।।

१७. समचै जीव संपेख, वले मनुष्य तीनुं करै ।
औघिक न्याय अवेख, कह्यु तास विस्तार करि ।।

१८. पूर्वे कह्या पचखाण, ते आयू बंधण तणां ।
हेतू पिण ह्वै जाण, आयु-सूत्र कहियै हिवै ।।

१९. *जीव प्रभु ! पचखाण-करै स्यूं आयु बांधै निपजावै ?
अपचखाण करि आयु बांधै, पचखाणापचखाण स्यूं थावै ?

२०. जिन कहै जीवा पचखाण करिकै, अपचखाण करि सोय ।
वलि पचखाणापचखाण करिकै, आयु-बंध अवलोय ।।

२१. वैमानिक देवता नो आउखो, पचखाणी पिण बांधै ।
अपचखाणवंत पिण बांधै, वलि पचखाणापचखाणी सांधै ।।

२२. शेष तेवीस दंडक नों आउखो, अपचखाणी बांधै ।
पचखाणी नैं पचखाणापचखाणी नरकादिक आयु न सांधै ।।

### सोरठा

२३. साधु श्रावक पहिछाण, वैमानिक विण अवर नों ।
आयु न बांधै जाण, तिण कारण ए वारता ।।

२४. *पचखाणी जिह दंडक पावै, पचखाण जाणै करेह ।
पचखाणे करि आयु बांधै, चिहुं सप्रदेश उद्देशेह ।।

२५. सेवं भंते ! अंक चोसठ नुं, ए एकसौ बीजी ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे 'जयजश' मंगलमाल ।।

षष्ठशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।६।४।।

---

१८. प्रत्याख्यानमायुर्बन्धहेतुरपि भवतीत्यायुःसूत्रम्—
(वृ० प० २६७)

१९. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ? अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ?

२०, २१. गोयमा ! जीवा य, वेमाणिया य पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया, तिण्णि वि ।
जीवपदे जीवा प्रत्याख्यानादित्रयनिबद्धायुष्का वाच्याः, वैमानिकपदे च वैमानिका अप्येवं, प्रत्याख्यानादित्रयवतां तेषूत्पादात् । (वृ० प० २६७)

२२. अवसेसा अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया ।
(श० ६।६८)

२४. पच्चक्खाणं जाणइ, कुव्वइ तिण्णेव, आउनिव्वत्ती ।
सपएसुद्देसम्मि य, एमेए दण्डगा चउरो ।।
(श० ६।६८ संगहणी-गाहा)

२५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।
(श० ६।६९)

---

*लय : सेवो रे साध सयाणा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १०३

### दूहा

१. जीव सप्रदेशा कह्या, तुर्य उद्देशा मांहि।
सप्रदेश ए तेहिज हिव, तमस्कायादि ताहि ॥

२. तमस्काय ए किण भणी कहियै हे भगवान !
स्यूं पृथ्वी तमुकाय छै, अप तमुकाय पिछान ?

३. तमिस्र पुद्‌गल नीं तिका, काय राशि छै तास।
तमस्काय ते खंध इहां, वांछ्यो कोइक जास ॥

४. ते पृथ्वी-रज-खंध हुइं, तेहवो ए दीसंत।
तथा उदक-रज-खंध ए, जल-रज सदृश हुंत ॥

५. जिन भाखै पृथ्वी तिका, तमस्काय न कहाय।
तमस्काय ए अप अछै, एहवूं कहियै ताय ॥

६. किण अर्थे ? जिन कहै पृथ्वी शुभ पुद्‌गल केइ एक।
देश खेत्र सुप्रकाशता, मणि प्रमुख संपेख ॥

७. केइयक पृथ्वीकाइया, देश खेत्र नैं सोय।
प्रकाशकारी नहिं तिके, तिण अर्थे इम होय ॥

८. अप्रकाशक छै सर्व नैं, अपकाय पहिछाण।
तमस्काय अप्रकाशक, तिण अर्थे अप जाण ॥

९. किहां थकी प्रभु ! नीकली, तमस्काय ए ताय।
वली किहां जइ नैं रही ? जिन कहै सांभल वाय ॥

*सुण गोयमा रे ! तमस्काय नीं वारता रे लाल। (ध्रुपदं)

१०. जंबू द्वीप नैं बाहिरे रे लाल,
तिरिच्छा असंख्याता जाण। सुण गोयमा रे !
द्वीप समुद्र उलंघ नैं रे लाल,
तिहां अरुणवर द्वीप पिछाण ॥ सुण गोयमा रे !

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

१. अनन्तरोद्देशके सप्रदेशा जीवा उक्ताः, अथ सप्रदेशमेव तमस्कायादिकं प्रतिपादयितुं पञ्चमोद्देशकमाह—
(वृ० प० २६७)

२. किमियं भंते ! तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति ? किं पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति ? आऊ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति ?

३. तमसां—तमिस्रपुद्‌गलानां कायो—राशिस्तमस्कायः स च नियत एवेह स्कन्धः कश्चिद् विवक्षितः,
(वृ० प० २६८)

४. स च तादृशः पृथ्वीरजःस्कन्धो वा स्यादुदकरजःस्कन्धो वा।
(वृ० प० २६८)

५. गोयमा ! नो पुढवी तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति।
आऊ तमुक्काए त्ति पव्वुच्चति। (श० ६।७०)

६. से केणट्ठेणं ? गोयमा ! पुढविकाए णं अत्थेगइए सुभे देसं पकासेइ,
कश्चिच्छुभो—भास्वरः, यः किंविधः ? इत्याह—देशं विवक्षितक्षेत्रस्य प्रकाशयति भास्वरत्वान्मण्यादिवत्। (वृ० प० २६८)

७. अत्थेगइए देसं नो पकासेइ। से तेणट्ठेणं।
(श० ६।७१)
अस्त्येककः पृथवीकायो देशं पृथवीकायान्तरं प्रकाश्यमपि न प्रकाशयत्यभास्वरत्वात्·······
(वृ० प० २६८)

८. अप्कायस्तस्य सर्वस्याप्यप्रकाशत्वात्, ततश्च तमस्कायस्य सर्वथैवाप्रकाशकत्वादप्कायपरिणामतैव।
(वृ० प० २६८)

९. तमुक्काए णं भंते ! कहिं समुट्ठिए ? कहिं संनिट्ठिए ?

१०. ११. गोयमा ! जंबुद्दीवस्स दीवस्स बहिया तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीईवइत्ता, अरुणवरस्स दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ अरुणोदयं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साणि ओगाहित्ता



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. तिण अरुणवर द्वीप नें बारली, वेदिका ना छेहड़ा थी विचार।
अरुणोदय समुद्र में, जोजन बयालीस हजार।।
१२. तिहां ऊपरला जल अंत थी, एक प्रदेश नीं श्रेण।
तमस्काय ऊठी तिहां, उदयपणुं पाम्यो तेण।।

**सोरठा**

१३. एक प्रदेश मझार, अपकाय तिहां किम रहै।
प्रदेश शब्दे धार, सम भींत आकारे क्षेत्र जे।।

१४. असंख्यात प्रदेश, अवगाहै छै जीवड़ो।
तिण कारण सुविशेष, एक आकाश प्रदेश नहिं।।

१५. जिम जिन वचन सुजोय, एक प्रदेशे खेत्र में।
विचरै मुनि अवलोय, तिम इहां एक प्रदेश छै।।

१६. *सतरै सौ इकवीस जोजन तणी, एक प्रदेश नी श्रेण।
ऊंची जइनै तठा पछै, तिरछी विस्तारेण।।
१७. सोधर्म नैं ईशाण नैं, तीजो सनतकुमार।
माहेंद्र ए चिहुं कल्प नैं, वींटी नैं तिणवार।।
१८. ऊंचो पिण यावत जई, ब्रह्मकल्प में जाण।
तीजा प्रतर नैं विषे, पहुंती रिष्ट विमाण।।
१९. तमस्काय तिहां जइ रही, वलि गोयम पूछंत।
हे प्रभुजी ! तमस्काय नों, स्यूं संस्थान कहंत ?
(जिनराजजी ! हो कृपा करि हियै आखियै रे लाल)
२०. जिन भाखै तमस्काय नों, हेठे मल्लगमूल संठाण।
मल्लग तेह सरावलो, तास मूल पहिछाण।।

२१. ऊपर ए संठाण छै, कुर्कट पंखी पेख।
तास पिंजर नैं आकार छै, ए जिन वचन विशेख।।
२२. हे प्रभुजी ! तमस्काय नो, केतलूं छै विस्तार ?
केतली परिधि कहीजिये ? ए बिहुं प्रश्न उदार।।
२३. जिन भाखै द्विविध कही, संख्यातो विस्तार।
असंख्यात विस्तरपणैं, वर जिन वयण उदार।।

**सोरठा**

२४. आदि थकी आरंभ, ऊंचो जोजन एतलुं।
संख्याता लग लंभ, संख्यातो विस्तार त्यां।।

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

१२. उवरिल्लाओ जलंताओ एगपएसियाए सेढीए—एत्थ णं तमुक्काए समुट्ठिए।

१३. एक एव च न द्व्यादय उत्तराधर्यं प्रति प्रदेशो यस्यां सा तथा तया, समभित्तिनयेत्यर्थः। न च वाच्यमेकप्रदेशप्रमाणयेति,

(वृ० प० २६८)

१४. असंख्यातप्रदेशावगाहस्वभावत्वेन जीवानां तस्यां जीवावगाहाभावप्रसङ्गात्,

(वृ० प० २६८, २६९)

१६. सत्तरस-एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा तिरियं पवित्थरमाणे-पवित्थरमाणे

१७. सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंदे चत्तारि विकप्पे आवरित्ता णं

१८. उड्ढं पि य णं जाव बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाण-पत्थडं संपत्ते—

१९. एत्थ णं तमुक्काए संनिट्ठिए। (श० ६।७२)
तमुक्काए णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?

२०. गोयमा ! अहे मल्लगमूलसंठिए;
अधस्तान्मल्लकमूलसंस्थितः—शरावबुध्नसंस्थानः,

(वृ० प० २६९)

२१. उप्पिं कुक्कुडग-पंजरगसंठिए पण्णत्ते।

(श० ६।७३)

२२. तमुक्काए णं भंते ! केवतियं विक्खंभेणं, केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?

२३. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—संखेज्जवित्थडे य, असंखेज्जवित्थडे य।

२४., २५. आदित आरभ्योर्ध्वं संख्येययोजनानि यावत्ततोऽसंख्यातयोजन-विस्तृत उपरि तस्य विस्तारगामित्वेनोक्तत्वात्। (वृ० प० २६९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. तठा पछैज प्रपन्न, ऊपर जे तमुकाय छै।
असंख्यात जोजन्न, विस्तरपणें अछै तिका।

२६. *तिहा संखेज्ज विस्तरपणें, ते संख्याता जोजन हजार।
विक्खंभ पहुलपणें एतलूं, परिधि असंख जोजन सहस्र हजार।।

२६. तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे, से णं संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयण-सहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

**सोरठा**

२७. जोजन ते संख्यात, विस्तरपणेंज तास पिण।
परिधि कही जगनाथ, असंखेज जोजन सहस्र।।
२८. तमस्काय नें जाण, असंख्यातमा द्वीप ते।
अति बृहत प्रमाण, तिण सूं परिधि असंख छै।।
२९. तमस मांहिलो जेह, अथवा बिभाग बारलो।
इहां न वांछयो तेह, असंखपणो बिहुं नो अछै।।

२७,२८. संख्यातयोजनविस्तृतत्वेऽपि तमस्कायस्या-संख्याततमद्वीपपरिक्षेपतो बृहत्तरत्वात्परिक्षेपस्या-संख्यातयोजनसहस्रप्रमाणत्वम्। (वृ० प० २६९)

२९. आन्तरबहिः परिक्षेपविभागस्तु नोक्तः। उभय-स्याप्यसंख्याततया तुल्यत्वादिति। (वृ० प० २६९)

३०. *तिहां असंख विस्तारपणें तिका, ते असंख्याता जोजन हजार।
विक्खंभ पहुलपणै एतलूं, परिधि असंख जोजन सहस्र धार।।

३०. तत्थ णं जे से असंखेज्जवित्थडे, से णं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयण-सहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। (श० ६।७४)

३१. हे प्रभुजी! तमस्काय ते, केतली मोटी कहाय?
जिन कहै ए जंबूद्वीप छै, सर्व द्वीप समुद्र रै मांय।।

३१. तमुक्काए णं भंते! केमहालए पण्णत्ते?
गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए

३२. जाव परिधि त्रिगुणी तसु, जाझी अधिक कहाव[1]।
सुर इक महाऋद्धि नों धणी, जावत महाअनुभाव।

३२. जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते।
देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभावे
(वृ० प० २६८)

३३. जाव इणामेव एहवूं, शब्द कही दोय वार।
जाव शब्द इणामेव नें, तात्पर्यार्थ विचार।।
३४. सुर नीं महाऋद्धि आदि नुं, एह विशेषण ताय।
गमन समर्थपणां तणो, प्रकर्ष ए अभिप्राय।।

३३. इणामेव-इणामेवत्ति कट्टु
इह यावच्छब्द ऐदम्पर्यार्थः, (वृ० प० २६९)

३४. यतो देवस्य महर्द्धयादिविशेषणानि गमनसामर्थ्य-प्रकर्षप्रतिपादनाभिप्रायेणैव प्रतिपादितानि।
(वृ० प० २६९)

३५. इणामेव इणामेव इम कही, इतलो मुझ जावूंज।
अति शीघ्रपणें कर-व्यापार नीं, चिबठी मांही प्रजूंझ।।

३५. 'इणामेवत्ति कट्टु' इदं गमनमेवम्—अतिशीघ्रत्वा-वेदक-चप्पुटिकारूपहस्तव्यापारोपदर्शनपरम्।
(वृ० प० २६९)

३६. इम कहिनें ते देवता, केवलकल्प जंबूद्वीप ताय।
तीन चिबठी में इकवीस वार ते, दोलो फिरी झट आय।।

३६. केवलकप्पं जंबूदीवं दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छिज्जा,

**सोरठा**

३७. अर्थ केवल नुं जान, केवलज्ञान कहीजियै।
कल्प परिपूर्ण मान, टीकाकार कह्यो इसो।।

३७. 'केवलकप्पं' ति केवलज्ञानकल्पं परिपूर्णमित्यर्थः,
(वृ० प० २६९)

---

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

१. यह जोड़ वृत्तिकार द्वारा स्वीकृत संक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है इस-लिए इस गाथा के सामने उसी पाठ को उद्धृत किया गया है। अंगसुत्ताणि में इसके स्थान पर विस्तृत पाठ है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. वृद्ध व्याख्या पहिछाण, केवल संपूरण अछै।
कल्प स्वकार्य जाण, करण समर्थ कह्यो इसो।।

३९. *ते सुर एहवी गति करि, उत्कृष्ट त्वरित सुचाल।
जावत गति सुर नी करी, जातो थको सुविशाल।।

४०. जावत इक दिन बे दिने, तीन दिवस लग ताय।
छ मास लग उत्कृष्ट थी, तमस्काय में जाय।।

४१. पार पामै कोइ तमु तणो, संख जोजन ए जाण।
न लहै पार कोइक तणो, ते जोजन असंख प्रमाण।।

४२. एतली मोटी तमु कही, गोयम पूछै तिवार।
छै प्रभुजी! तमुकाय में, घर तथा हाट आकार?

४३. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, वलि गोयम पूछेस।
छै प्रभुजी! तमुकाय में, ग्राम जाव सन्निवेश?

४४. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, वलि शिष्य पूछै जान।
छै प्रभुजी! तमस्काय में, बादल मेघ प्रधान।।

४५. संसेयंति पाठ नों, अर्थ इसो अवधार।
मेघ थकी जे ऊपना, पुद्गल स्नेह विचार।।

४६. समुच्छंति ए पाठ नों, अर्थ वली सुविचार।
घन पुद्गल मिलवा थकी, ऊपना तसु आकार।।

४७. अर्थ वासं वासंति तणो, तत्आकारज होय।
वर्षा मेह वर्षे अछै, जिन कहै हंता जोय।।

४८. ते प्रभु! स्यूं करै देवता, वैमानिक थी हुंत।
असुर नाग वर्षा करै? जिन कहै तीनूं करंत।।

४९. छै प्रभुजी! तमुकाय में, बादर घन गर्जार?
वलि बादर छै बीजली? जिन कहै हंता तिवार।।

**सोरठा**

५०. बादर तेऊकाय, आगल तास निषेध छै।
देव-जनित कहिवाय, भास्वर पुद्गल छै तिके।।

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल

३८. वृद्धव्याख्या तु—केवलः—संपूर्णः कल्पत इति कल्पः—स्वकार्यकरणसमर्थः। (वृ० प० २६९)

३९. से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे-वीईवयमाणे

४०. जाव एकाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे वीईवएज्जा,

४१. अत्थेगतियं तमुक्कायं वीईवएज्जा, अत्थेगतियं तमुक्कायं नो वीईवएज्जा।
संख्यातयोजनमानं व्यतिव्रजेदितरं तु नेति। (वृ० प० २६९)

४२. एमहालए णं गोयमा! तमुक्काए पण्णत्ते। (श० ६।७५)
अत्थि णं भंते! तमुक्काए गेहा इ वा? गेहावण इ वा?

४३. णो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ६।७६)
अत्थि णं भंते! तमुक्काए गामा इ वा? जाव सण्णिवेसा इ वा?

४४. णो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ६।७७)
अत्थि णं भंते! तमुक्काए ओराला बलाहया

४५. संसेयंति?
संस्विद्यन्ते तज्जनकपुद्गलस्नेहसम्पत्त्या, (वृ० प० २६९)

४६. सम्मुच्छंति?
संमूर्च्छन्ति तत्पुद्गलमीलनात्तदाकारतयोत्पत्तेः। (वृ० प० २६९)

४७. वासं वासंति?
हंता अत्थि। (श० ६।७८)

४८. तं भंते! किं देवो पकरेति? असुरो पकरेति? नागो पकरेति?
गोयमा! देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति। (श० ६।७९)

४९. अत्थि णं भंते! तमुक्काए बादरे थणियसद्दे? बादरे विज्जुयारे? हंता अत्थि। (श० ६।८०)

५०. इह न बादरतेजस्कायिका मन्तव्याः, इहैव तेषां निषेत्स्यमाणत्वात्, किन्तु देवप्रभावजनिता भास्वराः पुद्गलास्त इति। (वृ० प० २६९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. *ते प्रभु ! स्यूं करै देवता, असुर नाग पकरंत ?
जिन भाखै तीनूं करै, वलि गोयम पूछंत ॥

५१. तं भंते ! किं देवो पकरेति ? असुरो पकरेति ?
नागो पकरेति ? तिण्णि वि पकरेंति ।
(श० ६।८१)

५२. छै प्रभुजी ! तमुकाय में, बादर पृथ्वीकाय ?
बादर अग्नीकाय छै ? जिन भाखै तिहां नांय ॥

५२. अत्थि णं भंते ! तमुक्काए बादरे पुढविकाए ? बादरे अगणिकाए ?
णो तिणट्ठे समट्ठे

५३. नण्णत्थ इतरो विशेष छै, विग्रहगति नां थाय ।
आठ पृथ्वी गिरि-विमाने पृथ्वी काय छै,
मनुष्यक्षेत्रे तेउकाय ॥

५३. नण्णत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं । (श० ६।८२)
पृथिवी हि बादरा रत्नप्रभाद्यास्वष्टासु पृथिवीषु गिरिविमानेषु, तेजस्तु मनुजक्षेत्र एवेति ।
(वृ० प० २६६)

५४. छै प्रभुजी ! तमुकाय में, चंद्र सूर्य ग्रह जोय ।
नक्षत्र ताराकूप ते ? जिन भाखै नहिं होय ॥

५४. अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवा ?
णो तिणट्ठे समट्ठे,

५५. पासै छै तमुकाय नें, चंद्रादिक सुकहेज ।
छै प्रभुजी ! तमुकाय में रवि-शशि-कांति सुतेज ?

५५. पलियस्सओ पुण अत्थि । (श० ६।८३)
परिपार्श्वतः पुनः सन्ति तमस्कायस्य चन्द्रादय इत्यर्थः । (वृ० प० २६६)
अत्थि णं भंते ! तमुक्काए चंदाभा ति वा ?
सूराभा ति वा ?

५६. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, कादूसणिया तेह ।
प्रभा थई छै सांवली, आतम दूषित जेह ॥

५६. णो तिणट्ठे समट्ठे, कादूसणिया पुण सा ।
(श० ६।८४)

**सोरठा**

५७. तमु पासै संपेख, चंद्रादिक सद्भाव थी ।
तास प्रभा पिण देख, तमु विषे छै सांवली ॥

५७. ननु तत्पार्श्वतश्चन्द्रादीनां सद्भावात्तत्प्रभाऽपि तत्राऽस्ति ? (वृ० प० २६६)

५८. कं—आतम प्रति देख, तमस्काय ते दूषवै ।
तमपरिणाम कर पेख, परिणमवा थी कादूषणा ॥

५८. कम्—आत्मानं दूषयति तमस्कायपरिणामेन परिणमनात् कदूषणा सैव कदूषणिका, (वृ० प० २६६)

५९. इण कारण थी एह, छती प्रभा चंद्रादि नीं ।
तमस्काय में जेह, अछती कहियै इह विधे ॥

५९. अतः सत्यप्यसावसतीति । (वृ० प० २६६)

६०. *हे प्रभुजी ! तमस्काय नों, केहवो वर्ण कहाय ?
जिन भाखै कृष्ण वर्ण छै, कृष्ण कांति छै ताय ।

६०. तमुक्काए णं भंते ! केरिसए वण्णएणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! काले कालोभासे

६१. गंभीर ऊंडो अति घणो, अतिही डरावणो जेह ।
रोम ऊभा थावा तणो, हेतु कहियै जेह ॥

६१. गंभीरे लोमहरिसजणणे

६२. भीम भयंकर तेह छै, उत्कंप हेतु कहेह ।
त्रासे कंपै देखनैं, परम कृष्ण वर्णेह ॥

६२. भीमे उत्तासणए परमकिण्हे वण्णेणं पण्णत्ते ,

६३. सुर पिण कोइक देखनैं, पहिला क्षोभ पामंत ।
अथ प्रवेश करी पछै, शीघ्र त्वरित झट जंत ॥

६३. देवे वि णं अत्थेगतिए जे णं तप्पढमयाए पासित्ता णं खुभाएज्जा, अहेणं अभिसमागच्छेज्जा तओ पच्छा सीहं-सीहं तुरियं-तुरियं खिप्पामेव वीतीवएज्जा । (श० ६।८५)

---

*लय : जाणपणो जग दोहिलो रे लाल



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. हे प्रभुजी ! तमस्काय नां, कह्या केतला नाम ?
जिन भाखै तेरे नाम छै, गुण-निष्पन्न ते ताम ।।

६५. तम अंधकारपणां थकी, तमस्काय तमराश ।
अंधकार नाम तीसरो, ए पिण तम विमास ।।

६६. महाअंधकार महातमपणो, लोकांधकार विचार ।
लोक विषे तथाविध इसो, अन्य नहीं अंधकार ।।

६७. लोकतमस छट्ठो कह्यो, लोक विषे तम होत ।
देव-अंधकार सातमों, तिहां नहिं सुर नें उद्योत ।।

६८. देवतमस आठमों कह्यो, देवअरण्य ए देख ।
बलवंत सुर नां भय थकी, न्हासी जाय संपेख ।।

६९. देवव्यूह दशमों कह्यो, चक्रादि-व्यूह जिम ताम ।
देवता नैं पिण भेदणो, अति दुर्लभ छै आम ।।

७०. देवपरिघ इग्यारमों, सुर नें भय उपजंत ।
गमनविघात हेतू थकी, देव-परिघ सुकथंत ।।

७१. देवप्रतिक्षोभ बारमों, क्षोभ नों हेतु विचार ।
अरुणोदक ए तेरमों, ते उदधिजल नों विकार ।।

७२. हे प्रभु ! स्यूं तमस्काय छै, पृथ्वी अप परिणाम ?
जीव पुद्‌गल परिणाम छै ? हिव जिन भाखै ताम ।।

७३. पृथ्वी-परिणाम ए नहीं, अप-परिणाम तमाम ।
जीव नुं पिण परिणाम छै, पुद्‌गल नुं परिणाम ।।

७४. सहु प्राण भूत जीव सत्व ते, तमस्काय में जान !
छहुं कायपणैं ऊपनां, पूर्वकाल भगवान ?

७५. जिन कहै हंता गोयमा ! वार अनेक विचार ।
अथवा अनंत वार ऊपनां, काल अतीत मझार ।।

७६. पिण बादर-पृथ्वीपणैं, बादर-अग्निपणैं एह ।
निश्चै करि नहिं ऊपनों, तसु स्थानक नहिं तेह ।।

६४. तमुक्कायस्स णं भंते ! कति नामधेज्जा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तेरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

६५. तमे इ वा, तमुक्काए इ वा, अंधकारे इ वा,
तमः अन्धकाररूपत्वात् इत्येतत्, तमस्काय इति वाऽन्धकारराशिरूपत्वात्, अन्धकारमिति वा तमोरूपत्वात्, (वृ० प० २७०)

६६. महंधकारे इ वा, लोगंधकारे इ वा,
महान्धकारमिति वा महातमोरूपत्वात् लोकान्धकारमिति वा लोकमध्ये तथाविधस्यान्यस्यान्धकारस्याभावात् । (वृ० प० २७०)

६७. लोगतमिसे इ वा, देवंधकारे इ वा,
देवानामपि तत्रोद्योताभावेनान्धकारात्मकत्वात् । (वृ० प० २७०)

६८. देवतमिसे इ वा, देवरण्णे इ वा,
बलवद्देवभयान्नश्यतां देवानां तथाविधारण्यमिव शरणभूतत्वात्, (वृ० प० २७०)

६९. देववूहे इ वा
देवव्यूह इति वा देवानां दुर्भेदत्वाद् व्यूह इव—चक्रादिव्यूह इव देवव्यूहः । (वृ० प० २७०)

७०. देवफलिहे इ वा,
देवानां भयोत्पादकत्वेन गमनविघातहेतुत्वात्, (वृ० प० २७०)

७१. देवपडिक्खोभे इ वा, अरुणोदए इ वा समुद्दे । (श० ६।८६)
देवप्रतिक्षोभ इति वा तत्क्षोभहेतुत्वात्, अरुणोदक इति वा समुद्रः, अरुणोदकसमुद्रजलविकारत्वादिति । (वृ० प० २७०)

७२. तमुक्काए णं भंते ! किं पुढविपरिणामे ? आउपरिणामे ? जीव परिणामे ? पोग्गलपरिणामे ?

७३. गोयमा ! नो पुढविपरिणामे, आउपरिणामे वि, जीवपरिणामे वि, पोग्गलपरिणामे वि । (श० ६।८७)

७४. तमुक्काए णं भंते ! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा?

७५. हंता गोयमा ! असति अदुवा अणंतक्खुत्तो,

७६. नो चेव णं बादरपुढविकाइयत्ताए, बादरअगणिकाइयत्ताए वा । (श० ६।८८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

७७. अपकाय में जाण, बादर वायू वणस्सई ।
बलि त्रसकाय पिछाण, तसुं उत्पत्ति संभव थकी ।।

७८. 'बृहत टबे इम वाय, शंका त्रस उत्पत्ति तणी ।
वृत्ति पिण भांजी नांय, जिन भाखै तेहीज सत्य ।।

७९. अरुणोदय नी संध, तमस तणीं तूटी नथी ।
त्रस इण न्याय प्रबंध, ते पिण जाणै केवली ।।

८०. बादर पृथ्वीकाय, वलि बादर तेऊ तणों ।
स्व स्थानक छै नांय, तिण सूं ते नहि ऊपजै' ।।(ज० स०)

८१. *देश अंक पैंसठ तणुं, इक सौ तीजी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल ।।

७७. बादरवायुवनस्पतयस्त्रसाश्च तत्रोत्पद्यन्तेऽप्काये तदुत्पत्तिसम्भवात् । (वृ० प० २७०)

## ढाल : १०४

### दूहा

१. तमस्काय सरिखी अछै, वर्ण कृष्ण पहिछाण ।
तेह कृष्णराजी तणुं, वर्णन सुणो सुजाण ?

२. किती कृष्णराजी प्रभु ! जिन कहै अष्ट सुजोय ।
किहां कृष्णराजी प्रभु ! आठूंइ अवलोय ?

३. जिन कहै सनतकुमार नैं, वलि माहेंद्र विचार ।
तसु ऊपर तमुकाय छै, ब्रह्म तणें तल धार ।।

४. पंचम कल्प विषे अछै, रिष्ट विमाने जोय ।
तास पाथड़ा नैं विषे, कृष्णराजि अवलोय ।।

५. प्रेक्षा-स्थान विषे अछै, आखाटक अभिधान ।
आसन विशेष छै प्रवर, तेह तणैं संस्थान ।।

६. समचउरंस संठाण छै, सहु खुणेज सरीस ।
आठ कृष्णराजी इसी, वर्णन तास कहीस ।।

†वाण प्रभु नीं ताजी ए, रूड़ी आठ कही कृष्णराजी ए । (ध्रुपदं)

७. पूर्व दिशि में दोय परूपी, दोय पश्चिम दिशि कानी ए ।
दक्षिण दिशि में दोय दीपंती, दोय उत्तर दिशि जानी ए ।।

*लय : जाणपणों जग दोहिलो रे लाल

†लय : बलियां सूं केम लागंता ए

१. तमस्कायसादृश्यात्कृष्णराजिप्रकरणम्— (वृ० प० २७०)

२. कइ णं भंते ! कण्हरातीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठकण्हरातीओ पण्णत्ताओ ।(श० ६।८९)
कहि णं भंते ! एयाओ अट्ठ कण्हरातीओ पण्णत्ताओ ?

३. गोयमा ! उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं, हव्विं बंभलोए कप्पे ।
'हव्विं' ति समम् । (वृ० प० २७१)

४. 'रिट्ठे विमाणपत्थडे'

५. एत्थ णं अक्खाडग-
इह आखाटकः—प्रेक्षास्थाने आसनविशेषलक्षणस्तत्संस्थिताः, (वृ० प० २७१)

६. समचउरंस-संठाणसंठियाओ अट्ठ कण्हरातीओ पण्णत्ताओ,

७. तं जहा—पुरत्थिमे णं दो, पच्चत्थिमे णं दो, दाहिणे णं दो, उत्तरे णं दो ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. पूर्व दिश नीं अभ्यंतरा जे, कृष्णराजी छै जेहो।
दक्षिण बारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी जिन-वच एहो॥
९. दक्षिण दिश नी अभ्यंतरा जे, कृष्णराजी कहिवाई।
पश्चिम बारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी वाण सुहाई॥
१०. पश्चिम दिश नीं अभ्यंतरा जे, कृष्णराजी जे जाची।
उत्तर बारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी छै अति आछी॥
११. उत्तर दिश नीं अभ्यंतरा जे, कृष्णराजी जे काली।
पूर्व बारली कृष्णराजी प्रति, फर्शी एह विशाली॥
१२. दोय पूर्व पश्चिम नीं बारली, कृष्णराजी षट खूणां।
दोय उत्तर दक्षिण नीं बारली, त्रिखूणी नहिं ऊणां॥

१३. दोय पूर्व पश्चिम नीं मांहिली, कृष्णराजी चउरंसा।
दोय उत्तर दक्षिण नीं मांहिली, चउखूणी सुप्रसंसा॥

८. पुरत्थिमब्भंतरा कण्हराती दाहिण-बाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा,
९. दाहिणब्भंतरा कण्हराती पच्चत्थिम-बाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा,
१०. पच्चत्थिमब्भंतरा कण्हराती उत्तर-बाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा,
११. उत्तरब्भंतरा कण्हराती पुरत्थिम-बाहिरं कण्हरातिं पुट्ठा।
१२. दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ बाहिराओ कण्हरातीओ छलंसाओ, दो उत्तर-दाहिणाओ बाहिराओ कण्हरातीओ तंसाओ,
१३. दो पुरत्थिम-पच्चत्थिमाओ अब्भंतराओ कण्हरातीओ चउरंसाओ, दो उत्तर-दाहिणाओ अब्भंतराओ कण्हरातीओ चउरंसाओ। (श० ६/९०)

### सोरठा

१४ पूर्व अपर छह अंस, तंस उत्तर दक्षिण बज्झ।
अभ्यंतर चउरंस, सर्व कृष्णराजी कही॥

१४. पुव्वावरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा।
अब्भंतर चउरंसा, सव्वा वि य कण्हरातीओ॥
(श० ६।९० संगहणी-गाहा)

१५. *कृष्णराजी प्रभु! केतली लांबी, किती विक्खंभ विस्तारो?
परिधिपणें करि केतली प्रभुजी! हिव जिन उत्तर सारो॥
१६. जिन कहै जोजन सहस्र असंख्या, लांबपणें सुविचारो।
संख्याता सहस्र जोजन विक्खंभ छै, परिधि जोजन असंख हजारो॥

१५. कण्हरातीओ णं भंते! केवतियं आयामेणं? केवतियं विक्खंभेणं? केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ?
१६. गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामेणं, संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ताओ।
(श० ६।९१)

१७. कृष्णराजी प्रभु! केतली मोटी? जिन कहै जंबू एही।
जाव इक पक्ष लग सुर जावै, पूर्व गति करि तेही॥

१८. पार लहै कोइ कृष्णराजी नुं, कोइ नों पार न पावै।
एहवी मोटी कृष्णराजी छै, सुण गोतम हरसावै॥

१९. कृष्णराजी नें विषे छै प्रभुजी! घर नें आकारे अगारो।
घर नें आकारे हाट तिहां छै? जिन कहै नहीं लिगारो॥
२०. कृष्णराजी नें विषे छै प्रभुजी! ग्राम तथा सुविशेषो?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, वलि गोयम पूछेसो॥

२१. कृष्णराजी नें विषे हे प्रभुजी! मेघ उदार प्रधानो।
संसेयंति समुच्छंति पूर्ववत, वलि घन वरसै जानो॥

१७. कण्हरातीओ णं भंते! केमहालियाओ पण्णत्ताओ?
गोयमा! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे जाव (सं० पा०) अद्धमासं वीईवएज्जा।
१८. अत्थेगइए कण्हरातिं वीईवएज्जा। अत्थेगइए कण्हरातिं णो वीईवएज्जा, एमहालियाओ णं गोयमा! कण्हरातीओ पण्णत्ताओ। (श० ६।९२)
१९. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु गेहा इ वा? गेहावणा इ वा? णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।९३)
२०. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु गामा इ वा? जाव सण्णिवेसा इ वा?
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।९४)
२१. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु ओराला बलाहया संसेयंति? सम्मुच्छंति? वासं वासंति?

*लय: बलियां स्यूं केम लागंता ए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. श्री जिन भाखै हंता अत्थि, कृष्णराजी रै मांह्यो।
संसेयंति आदि त्रिहुं छै, मेह तिहां वरसायो॥

२२. हंता अत्थि। (श० ६।९५)

२३. ते प्रभु! स्यूं करै देव वैमानिक, असुर नाग थी हुंतो?
जिन भाखै करै देव विमानिक, असुर नाग न करंतो॥

२३. तं भंते! किं देवो पकरेति? असुरो पकरेति? नागो पकरेंति?
गोयमा! देवो पकरेति, नो असुरो, नो नागो पकरेति। (श० ६।९६)

**सोरठा**

२४. ब्रह्म-कल्प रै मांय, कृष्णराजी आखी अछै।
असुर नाग नहिं जाय, तिण कारण वर्ज्या इहां॥

२४. असुरनागकुमाराणां तत्र गमनासम्भवादिति। (वृ० प० २७१)

२५. *कृष्णराजी नैं विषे छै प्रभुजी! बादर घन गर्जारो?
बादल नैं आख्यो तिम कहिवो, सगलोई विस्तारो।

२५. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु बादरे थणियसद्दे? बादरे विज्जुयारे? जहा ओराला तहा (सं० पा०) (श० ६।९७, ९८)

२६. कृष्णराजी नैं विषे हे भगवंत? छै बादर-अपकायो?
बादर-अग्निकाय अछै वलि, बादर-वणस्सई ताह्यो?

२६. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु बादरे आउकाए? बादरे अगणिकाए? बादरे वणप्फइकाए?

२७. जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, णण्णत्थ एतलो विशेखो।
विग्रहगतिसमापन्न अछै त्यां, वर जिन वचनै लेखो॥

२७. णो तिणट्ठे समट्ठे, नण्णत्थविग्गहगतिसमावन्नएणं। (श० ६।९९)

२८. कृष्णराजी नैं विषे छै भगवंत! चंद्र सूरादिक तारा?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, प्रभु-वच अधिक उदारा॥

२८. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवा?
णो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१००)

२९. कृष्णराजी नैं विषे छै प्रभुजी! चंद्र सूर्य नी क्रांति?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, तिण में म जाणो भ्रांति॥

२९. अत्थि णं भंते! कण्हरातीसु चंदाभा ति वा? सूराभा ति वा?
णो तिणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१०१)

३०. कृष्णराजी प्रभु! वर्ण करी नैं, केहवी परूपी ताह्यो?
जिन कहै काली जाव उतावलो सुरवर पिण झट जायो॥

३०. कण्हरातीओ णं भंते! केरिसियाओ वण्णेणं पण्णत्ताओ?
गोयमा! कालाओ जाव (सं० पा०) खिप्पामेव वीतीवएज्जा। (श० ६।१०२)

३१. नाम किता प्रभु! कृष्णराजी नां? जिन भाखै अठ नामो।
कृष्णराजी ते काला पुद्गल, तेहनीं रेखा तामो॥

३१. कण्हराती णं भंते! कति नामधेज्जा पण्णत्ता?
गोयमा! अट्ठ नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—कण्हराती इ वा,

३२. मेघराजी ते काला मेघ नीं, रेखा तुल्य कहायो।
मघा ते अंधकार करी नैं, छठी नरक तुल्य थायो॥

३२. मेहराती इ वा, मघा इ वा,
मेघराजीति वा कालमेघरेखातुल्यत्वात्, मघेति वा तमिस्रतया षष्ठनारकपृथिवीतुल्यत्वात्, (वृ० प० २७१)

३३. माघवती तम करि सातमीं सम, वाय-परिघ वलि नामो।
वाय आंधी तेह तुल्य तमिश्रज, परिघ दुर्लंघ्यज तामो॥

३३. माघवई इ वा, वायफलिहा इ वा,
माघवतीति वा तमिस्रतयैव सप्तमनरकपृथिवीतुल्यत्वात्, 'वायफलिहे इ व' त्ति वातोऽत्र वात्या तद्वद्-वातमिश्रत्वात्, परिघश्च दुर्लंघ्यत्वात् सा वात-परिघः, (वृ० प० २७१)

*लय : बलियां स्यूं केम लागंता ए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. वायपरिक्खोभ नाम छठो ए, वाय ते आंधी अशोभो।
तेह तुल्य छै तमिश्रपणां थकी, क्षोभ हेतु थी परिक्षोभो॥

३५. देव-फलिह ए नाम सातमों, देवता नें पिण जाणी।
परिघ आगल जिम ए दुर्लंध्य छै, कृष्ण वर्ण पहिछाणी॥

३६. देव-पलिक्खोभ नाम आठमों, देवता नें पिण जोयो।
परिक्षोभ नां हेतुपणां थी, कृष्ण वर्ण अवलोयो॥

३७. हे भगवंत जी! कृष्णराजी स्यूं, पृथ्वी अप परिणामो?
जीव तणों परिणाम कहीजै, पुद्गल परिणत तामो?

३८. जिन भाखै परिणाम पृथ्वी नों, अप-परिणाम न तामो।
जीव तणों परिणाम अछै ए, पुद्गल नों परिणामो॥

३९. कृष्णराजी नें विषे प्रभु! सगला, प्राण भूत जीव सत्ता।
अतीत काले ऊपनां पूर्वे? श्री जिन भाखै हंता॥

४०. अनेक वार तथा वार अनंती, सर्व ऊपनां त्यां मांही।
बादर अप तेउ वनस्पतिपणें, निश्चै ऊपनां नांहि॥

४१. ए आठूंइं कृष्णराजी विषे, आकाशांतर अठ मांह्यो।
आठ लोकांतिक देव तणां वर, वारु विमान कहायो॥

४२. अर्च्चि नें वलि अर्च्चिमाली, वैरोचन वलि वारू।
प्रभंकर चंद्राभ पंचमो, छठो सूराभ उदारू॥

४३. शुक्राभ सुप्रतिष्ठाभ आठमों, कृष्णराजी रै मध्य भागो।
रिष्ट विमानज एहज नवमों, पेखत हर्ष अथागो॥

४४. किहां प्रभु! अर्चि-विमाण परूप्यो? जिन कहै कूण ईशाणो।
किहां विमाण प्रभु! अर्चिमालो छै, जिन कहै पूरव जाणो॥

४५. इम परिपाटी करनै जाणवूं, किहां प्रभु! यावत रिष्टो?
श्री जिन भाखै सांभल गोयम! बहुमध्य भागे दृष्टो॥

## सोरठा

४६. बिहुं नों अंतर मध्य, अठ अवकाशांतर विषे।
अष्ट विमाण सुसिद्ध, अठ लोकांतिक सुर तणां॥

४७. भ्यंतर उत्तर धार, वाह्य अछै पूरव तणी।
बीच इशाण मझार, अर्च्चि विमान अछै तिहां॥

---

३४. वायपलिक्खोभा इ वा,
वातोऽत्रापि वात्या तद्वद्वातमिश्रत्वात् परिक्षोभश्च परिक्षोभहेतुत्वात् सा वातपरिक्षोभ इति।
(वृ० प० २७१)

३५. देवफलिहा इ वा,
क्षोभयति देवानां परिघेव—अर्गलेव दुर्लंघ्यत्वाद्देव-परिघ इति। (वृ० प० २७१)

३६. देवपलिक्खोभा इ वा। (श० ६।१०३)
देवानां परिक्षोभहेतुत्वादिति। (वृ० प० २७१)

३७. कण्हरातीओ णं भंते! किं पुढवीपरिणामाओ? आउपरिणामाओ? जीवपरिणामाओ? पोग्गलपरिणामाओ?

३८. गोयमा! पुढवीपरिणामाओ, नो आउपरिणामाओ, जीवपरिणामाओ वि, पोग्गलपरिणामाओ वि।
(श० ६।१०४)

३९. कण्हरातीसु णं भंते! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा? हंता गोयमा!

४०. असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो; नो चेव णं बादरआउ-काइयत्ताए, बादरअगणिकाइयत्ताए, बादरवणप्फइ-काइयत्ताए वा। (श० ६।१०५)

४१. एएसि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु ओवासंतरेसु अट्ठ लोगंतिगविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—

४२. अच्ची, अच्चिमाली, वइरोयणे, पभंकरे, चंदाभे, सूराभे,

४३. सुक्काभे, सुपइट्ठाभे, मज्झे रिट्ठाभे। (श० ६।१०६)

४४. कहि णं भंते! अच्चि-विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! उत्तर-पुरत्थिमे णं। (श० ६।१०७)
कहि णं भंते! अच्चिमाली विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! पुरत्थिमे णं।

४५. एवं परिवाडीए नेयव्वं जाव— (श० ६।१०८)
कहि णं भंते! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! बहुमज्झदेसभाए। (श० ६।१०९)

४६. द्वयोरन्तरमवकाशान्तरम् (वृ० प० २७२)

४७. तत्राभ्यन्तरोत्तरपूर्वयोरेकम्। (वृ० प० २७२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. पूरब दिशि में दोय, कृष्णराजी छै तास विच।
अर्च्चीमाली जोय, विमान अति रलियामणो॥

४८. पूर्वयोर्द्वितीयम्। (वृ० प० २७२)

४९. पूर्वाभ्यंतर पेख, दक्षिण बाहिर तास विच।
अग्निकूण सुविशेख, वेरोचन तीजो कह्यो॥

४९. अभ्यन्तरपूर्वदक्षिणयोस्तृतीयम्। (वृ० प० २७२)

५०. दक्षिण दिश मे दोय, कृष्णराजी छे तास विच।
प्रभंकर अवलोय, तुर्य विमान सुहामणो॥

५०. दक्षिणयोश्चतुर्थम्। (वृ० प० २७२)

५१. भ्यंतर दक्षिण लाभ, बाहिर पश्चिम तास विच।
नैऋत में चंद्राभ, वर विमान ए पंचमो॥

५१. अभ्यन्तरदक्षिणपश्चिमयोः पञ्चमम्। (वृ० प० २७२)

५२. पश्चिम दिश में दोय, कृष्णराजी है तास विच।
वर सूराभज सोय, विमान ए छट्ठो कह्यो॥

५२. पश्चिमयोः षष्ठम्। (वृ० प० २७२)

५३. भ्यंतर पश्चिम आभ, बाहिर उत्तर तास विच।
वायव्य कूण शुक्राभ, विमान ए सप्तम कह्यो॥

५३. अभ्यन्तरपश्चिमोत्तरयोः सप्तमम्। (वृ० प० २७२)

५४. उत्तर दिश में दोय, कृष्णराजी है तास विच।
सुप्रतिष्ठाभ अवलोय, अष्टम विमानज आखियो॥

५४. उत्तरयोरष्टमम्। (वृ० प० २७२)

५५. *इम परिपाटी अनुक्रम करिकै, अष्ट विमाण सुमागो।
रिष्ट विमान किहां ? तब जिन कहै, बहुमध्य देशज भागो॥

५५. एवं परिवाडीए नेयव्वं जाव— (श० ६।१०८)
कहि णं भंते! रिट्ठे विमाणे पण्णत्ते?
गोयमा! बहुमज्झदेसभाए। (श० ६।१०९)

## सोरठा

५६. अरिष्टाभ अवलोय, घणुं देश मध्य भाग ए।
नवमों विमान सोय, ब्रह्म तृतीय प्रतर विषे॥

५६. यत् कृष्णराजीनां मध्यभागवर्ति रिष्टं विमानं नवममुक्तं तद्विमानप्रस्तावादवसेयम्। (वृ० प० २७२)

५७. *ए अष्ट लोकांतिक पवर विमाने, अष्ट प्रकार नां देवा।
लोकांतिया वसै छै ब्रह्मलोके, ते कहियै सुर भेवा॥

५७. एएसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविहा लोगंतिया देवा परिवसंति, तं जहा—

५८. सारस्वत आदित्या वह्नी, वरुण गर्दतोय वारू।
तुसिया अव्याबाधा अग्गिच्चा, रिष्टा देव उदारू॥

५८. सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य॥
(श० ६।११० संगहणी-गाहा)

५९. सारस्वत नामैं जे देवा, हे प्रभु! किहां वसंता?
श्री जिन भाखै अर्चि विमाने, वसै छै सुख विलसंता॥

५९. कहि णं भंते! सारस्सया देवा परिवसंति?
गोयमा! अच्चिम्मि विमाणे परिवसंति।
(श० ६।१११)

६०. किहां वसै प्रभु! देव आदित्या? तब भाखै जिनरायो।
अर्चिमाली विमाने वसंता, इम अनुक्रम कहिवायो॥

६०. कहि णं भंते! आइच्चा देवा परिवसंति?
गोयमा! अच्चिमालिम्मि विमाणे। एवं नेयव्वं जहाणुपुव्वीए

६१. जाव किहां वसै रिष्ट देवा ते? जिन कहै रिष्ट विमानो।
सुर संख्या परिवार कहै हिव, सांभलज्यो धर कानो॥

६१. जाव— (श० ६।११२)
कहि णं भंते! रिट्ठा देवा परिवसंति?
गोयमा! रिट्ठम्मि विमाणे। (श० ६।११३)

६२. सारस्वत आदित्य नैं प्रभुजी! केतला कहियै देवा?
किता सैकड़ां सुरवर कहियै, ए परिवारज लेवा?

६२. सारस्सयमाइच्चाणं भंते! देवाणं कति देवा, कति देवसया पण्णत्ता?

* लय : बलिया स्यूं केम लागंता ए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. श्री जिन भाखै सप्त देव छै, वलि सप्त सय सारो।
एह अक्षर अनुसार वृत्ति में, आख्यो तसु परिवारो॥

६३. गोयमा! सत्त देवा, सत्त देवसया परिवारो पण्णत्तो।
परिवार इत्यक्षरानुसारेणावसीयते, (वृ० प० २७२)

**सोरठा**

६४. सप्त देव सुविचार, स्वामीपणें जणाय छै।
अन्य तास परिवार, इतर स्थानके पिण इमज॥

६४. एवमुत्तरत्रापि, (वृ० प० २७२)

६५. *वह्नी—वरुण नें चउदे देवा, परिवार चउद हजारो।
गर्दतोय—तुसिया सप्त देवा, सात सहस्र परिवारो॥

६५. वण्ही—वरुणाणं देवाणं चउद्दस देवा, चउद्दस देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो। गद्दतोय—तुसियाणं देवाणं सत्त देवा, सत्त देवसहस्सा परिवारो पण्णत्तो।

६६. शेष थाकता नें नव देवा, नवसौ सुर परिवारो।
संग्रहणी गाथा नो अर्थज, कहियै छै अधिकारो॥

६६. अवसेसाणं नव देवा, नव देवसया परिवारो पण्णत्तो।
(श० ६।११४)

६७. प्रथम जुगल नें सातसौ सुर, बीजा जुगल नें चउद हजारो।
तीजा जुगल नें सात सहस्र छै, शेष नें नवसय सारो॥

६७. पढम-जुगलम्मि सत्तओ सयाणि, बीयम्मि चउद्दस-सहस्सा।
तइए सत्तसहस्सा, नव चेव सयाणि सेसेसु॥
(श० ६।११४ संगहणी-गाहा)

६८. लोकांतिक नां विमान प्रभुजी! रह्या छै किण आधारो?
श्री जिन भाखै वायु आधारे, अर्द्ध गाथा हिव सारो॥

६८. लोगंतिगविमाणा णं भंते! किं पइट्ठिया पण्णत्ता?
गोयमा! वाउपइट्ठिया पण्णत्ता। एवं नेयव्वं

**सोरठा**

६९. विमान जसु आधार, बाहल्य ऊंचपणेंज तसु।
वलि संठाण विचार, वक्तव्यता ब्रह्मलोक नीं॥
७०. जीवाभिगम मझार, दाखी तिमहिज जाणवी।
जावत हंता धार, असति अदुवा पाठ लग॥

६९,७०. 'विमाणाण पइट्ठाणं, बाहुल्लुच्चत्तमेव संठाणं' बंभलोयवत्तव्वया (जीवा० ३।१०५९, १०६६, १०६८, १०७१) नेयव्वा जाव—
(श० ६।११५)

७१. *विमान नों प्रतिष्ठान आधार जे, हिवड़ां देखाड़्यो सुमन्नो।
विमान नी पृथ्वी जे जाडी, पणवीससौ जोजन्नो॥

७१. तत्र विमानप्रतिष्ठानं दर्शितमेव बाहल्यं तु विमानानां पृथिवीबाहल्यं तच्च पञ्चविंशतिर्योजनशतानि,
(वृ० प० २७२)

७२. सातसौ जोजन ऊंचपणें छै, नाना संठान प्रसंसो।
आवलिका बंध एह नहीं छै, वृत्त त्रंस चउरंसो॥

७२. उच्चत्वं तु सप्तयोजनशतानि, संस्थानं पुनरेषां नानाविधमनावलिकाप्रविष्टत्वात्, आवलिकाप्रविष्टानि हि वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रभेदात् त्रिसंस्थानान्येव भवन्तीति।
(वृ० प० २७२)

७३. ब्रह्मलोके जे विमान नें सुर नी, जीवाभिगम अवदातो।
ते सहु वक्तव्यता इहां भणवी, छेहड़ै ए पाठ आख्यातो॥

७३. ब्रह्मलोके या विमानानां देवानां च जीवाभिगमोक्ता वक्तव्यता सा तेषु 'नेतव्या' अनुसर्त्तव्या।
(वृ० प० २७२)

७४. लोकांतिक नां विमान विषे प्रभु! सर्व जीव पहिछाणी।
पृथ्वीकायपणें ऊपनां पूर्वे, जाव वनस्पतिपणें जाणी॥

७४. लोयंतियविमाणेसु णं भंते! सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता पुढविकाइयत्ताए, आउकाइयत्ताए, तेउकाइयत्ताए, वाउकाइयत्ताए, वणप्फइकाइयत्ताए,

७५. देवपणें पिण ऊपनां प्रभुजी! तब भाखै जिनरायो।
बहु वार तथा वार अनंती, पूर्वे ऊपनां ताह्यो॥

७५. देवत्ताए""""हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतक्खुत्तो,

*लय: बलिया सूं केम लागंता ए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. देविपणैं निश्चै नहिं ऊपनां, लोकांतिक नैं विमानो।
बुद्धिवंत न्याय विचारै वारू, रहिस तणों ए स्थानो॥

७६. नो चेव णं देवित्ताए। (श० ६।११६)

### सोरठा

७७. 'इहां केइ एम कहंत, लोकांतिक सुर मुख्य जे।
सम्यकदृष्टी हुंत, तिण सूं तिहां न ऊपजै॥
७८. पन्नवण अर्थ मझार, समदृष्टी लोकांतिका।
रिष्ट विमाने सार, एकावतारी मुख्य सुर॥
७९. आठ आंतरां मांहि, आठ विमाण तणां सुरा।
एकावतारी ताहि, एकांते नहिं छै तिके॥
८०. लोक शब्द संसार, तेह तणैं अंते हुआ।
चतुर्थ पद अर्थकार, निश्चै जाणै केवली'॥
(ज० स०)

८१. *लोकांतिक नां विमान विषे प्रभु! सुर-स्थिति केती भाखी ?
श्री जिन भाखै सांभल गोयम! आठ सागर नीं आखी॥

८१. 'लोगंतियदेवाणं' भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा! अट्ठसागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।
(श० ६।११७)

८२. लोकांतिक नां विमाण थकी प्रभु! केतलै अंतर जाणी।
लोक तणो अंत छेहड़ो परूप्यो ? हिव जिन भाखै वाणी॥
८३. जोजन सहस्र असंखिज्ज अंतर, लोक अंत कह्यो जाणी।
तठा पछैज अलोक परूप्यो सेवं भंते! सत्य वाणी॥
८४. छठा शतक नुं पंचमुद्देशो, एकसौ चौथी ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो॥

८२. लोगंतियविमाणेहिंतो णं भंते! केवतियं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते ?
८३. गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए लोगंते पण्णत्ते। (श० ६।११८)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ६।११९)

षष्ठशते पंचमोद्देशकार्थः॥६।५॥

## ढाल : १०५

### सोरठा

१. पंचमुद्देशे पेख, विमान प्रमुखज वारता।
षष्ठम तेहिज देख, कहियै छै अधिकार हिव॥

१. व्याख्यातो विमानादिवक्तव्यताऽनुगतः पञ्चमोद्देशकः, अथ षष्ठस्तथाविध एव व्याख्यायते, तत्र—
(वृ० प० २७२)

### दूहा

२. हे प्रभु! पृथ्वी केतली ? जिन कहै पृथ्वी सात।
रत्नप्रभा जावत कही, तले तमतमा घात॥

२. कति णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा।

*लय : बलिया स्यूं केम लागंता ए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. सप्त नरक पृथ्वी तणी, आगल कहिस्यै बात।
सिद्धशिला कहिस्यै नथी, तिण सूं सप्तज ख्यात॥

४. पूर्वे पिण ए पाठ है, सत्त पुढवी आख्यात।
एह पाठ वलि आखवै, पुनरुक्त दोष कहात॥

५. तिहां अपेक्षा अन्य नी, इहां मरण समुद्घात।
वक्तव्यता कहिवा अरथ, पुनरुक्त दोष न थात॥

६. रत्नप्रभादिक सात नां, नरकावासा जाण।
इम तसु आवासा जिता, ते कहिवा पहिछाण॥

७. भवनपती व्यंतर तणां, जोतिषि नां आवास।
वैमानिक ग्रैवेयक लग, कहिवा विमान तास॥

८. पन्नवण[1] दूजा पद थकी, कहिवूं सहु अधिकार।
जावत प्रभुजी! केतला अनुत्तर विमान सार?

९. जिन कहै पंच परूपिया, पवर अणुत्तर पेख।
विजय प्रथम जावत वलि, सर्वार्थसिद्ध देख॥

*जिनजी जयकारी,
गोतमजी पूछ्या प्रश्न उदारी। (ध्रुपदं)

१०. मारणांतिक समुद्घात करी नें, हे भगवंत! जे जीव।
एहिज रत्नप्रभा पृथ्वी में, ऊपजवा जोग अतीव॥

११. तीस लाख नरकावासा विषे ते, एक अनेरो जाण।
नरकावासा में नरकपणें जे, ऊपजवा जोग माण॥

१२. ते जीव नरकावासे रह्यो प्रभुजी! पुद्गल द्रव्य आहारै छै?
अथवा परिणामै—तेह आहार नों खल रस भाव करै छै?

१३. अथवा तिण कर तनु निपजावै? तब भाखै जगतार।
केइक जीव तेहिज समुद्घाते, मरण पामी तिण वार॥

१४ नरकावासा में गयो थको ते, आहार करै छै जेह।
परिणामै—करै खल रस भावज, वलि तनु बांधै तेह॥

१५. केइक तिहां थकी पाछो वली नें, इहां निज तनु आय।
बीजी वार मारणांतिक नामे, समुद्घाते मर ताय॥

१६. एहिज रत्नप्रभा पृथ्वी में, तीस लख नरकावास।
कोइक नरकावासे ऊपजै, नरकपणें ते तास॥

१७. ऊपजी नें पछै आहार करै छै, आहार प्रतै परिणमावै।
शरीर प्रतै बांधै निपजावै, इम जाव सातमी कहावै॥

* लय : दशकंधर राजा रावण रा

१. पण्णवणा पद २।३०-६२।

३. इह पृथिव्यो नरकपृथिव्य ईषत्प्राग्भाराया अनधिक-
रिष्यमाणत्वात्। (वृ० प० २७३)

४,५. इह च पूर्वोक्तमपि यत् पृथिव्याद्युक्तं तत्तदपेक्षमा-
रणान्तिकसमुद्घातवक्तव्यताऽभिधानार्थमिति न पुन-
रुक्तता। (वृ० प० २७३)

६. रयणप्पभाईणं आवासा भाणियव्वा जाव अहेसत्त-
माए।

७. एवं जत्तिया आवासा ते भाणियव्वा।

८. जाव— (श० ६।१२०)
कति णं भंते! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता?

९. गोयमा! पंच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—
विजए, जाव (सं० पा०) सव्वट्ठसिद्धे।
(श० ६।१२१)

१०. जीवे णं भंते! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समो-
हणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए

११. तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि निरया-
वासंसि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए,

१२. से णं भंते! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा? परिणा-
मेज्ज वा?।
'आहारेज्ज वा' पुद्गलानादद्यात् 'परिणामेज्ज व'
त्ति तेषामेव खलरसविभागं कुर्यात्।
(वृ० प० २७३)

१३,१४. सरीरं वा बंधेज्जा?
गोयमा! अत्थेगतिए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा,
परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा;

१५. अत्थेगतिए तओ पडिनियत्तति, ततो पडिनियत्तित्ता
इहमागच्छइ, आगच्छित्ता दोच्चं पि मारणंतियसमु-
ग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता

१६. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससय-
सहस्सेसु अण्णयरंसि निरयावासंसि नेरइयत्ताए उव-
वज्जित्तए,

१७. तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं
वा बंधेज्जा। एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी।
(श० ६।१२२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. जीव प्रभु! मारणांतिक नामे, समुद्घात करि सोय।
चउसठ लक्ष आवास असुर नां, कोइक आवासे जोय।।

१९. ऊपजवा जोग तिहां ऊपजी नैं, तिहां प्रभु ! करै आहार ?
नरक तणी परै ए पिण भणवो, यावत थणियकुमार।।

१८,१९. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समोहणित्ता जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावाससय-सहस्सेसु अण्णयरंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमार-त्ताए उववज्जित्तए, जहा नेरइया तहा भाणियव्वा जाव थणियकुमारा। (श० ६।१२३)

२०. जीव प्रभु! मारणांतिक नामे, समुद्घात करि सोय।
ऊपजवा जोग पृथ्वीकाय में, जीव तिको अवलोय।।

२१. लाख असंख आवास पृथ्वी नां, एक आवासे स्थान।
पृथ्वीकायपणैं तिहां ऊपजै ? जीव तिको भगवान!

२०,२१. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समोहणित्ता जे भविए असंखेज्जेसु पुढविकाइयावास-सयसहस्सेसु अण्णयरंसि पुढवीकाइयावासंसि पुढवी-काइयत्ताए उववज्जित्तए,

२२. मेरू थी पूर्व किती दूर जावै ? ए गमन आश्रयी कथित्त।
केतली दूर जईनै रहै छै ? ए अवस्थान आश्रित्त।।

२२. से णं भंते ! मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं केवइयं गच्छेज्जा ? केवइयं पाउणेज्जा ?
कियद्दूरं गच्छेद् ? गमनमाश्रित्य, ....कियद्दूरं प्राप्नुयात् ? अवस्थानमाश्रित्य,
(वृ० प० २७३, २७४)

२३. जिन कहै लोक नें अंत जावै ते, लोक अंत रहै ताय।
ते प्रभु! तिहां गयो आहारै छै, परिणामैं तनु निपजाय ?

२३. गोयमा ! लोयंतं गच्छेज्जा, लोयंतं पाउणेज्जा।
(श० ६।१२४)
से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा ? परिणा-मेज्ज वा ? सरीरं वा बंधेज्जा ?

२४. जिन कहै तिहां रह्यो थको कोइक, आहार करै छै सोय।
खल-रसपणैं आहार परिणमावै, तनु निपजावै जोय।।

२४. गोयमा ! अत्थेगतिए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा;

२५. कोइक तेह स्थानक थी वली नैं, तिहां निज तनु में आय।
दूजी बार मारणांतिक नामे, समुद्घाते मरै ताय।।

२५. अत्थेगतिए तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता इहमा-गच्छइ, दोच्चं पि मारणंतिय-समुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता,

२६. मेरू पर्वत थी पूर्व दिशि में, आंगुल असंखेज भाग।
अथवा संख्यातमां भाग विषे जे, अथवा वालाग्रे माग।।

२६. मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागमेत्तं वा, संखेज्जइभागमेत्तं वा, वालग्गं वा,

२७. अथवा पृथक वालाग्र विषे जे, इम लीख जूं जव देख।
अंगुल जावत जोजन कोड़ी, तिहां जई सुविशेख।।

२७. वालग्ग-पुहत्तं वा; एवं लिक्ख-जूय-जव-अंगुल जाव जोयणकोडिं वा,

२८. जाव शब्दे वेंहत रयणी कुक्षि, धनुष कोश जोजन्न।
जोजन-सय वलि जोजन-सहस्रज, लक्ष-जोजन इति मन्न।।

२८. इह यावत्करणादिदं दृश्यं—विहत्थिं वा रयणिं वा कुच्छिं वा धणुं वा कोसं वा जोयणं वा जोयणसयं वा जोयणसहस्सं वा जोयणसयसहस्सं वा।
(वृ० प० २७४)

२९. जाव शब्द में ए सहु आख्या, तेह इहां पद जोड़।
कोड़ जोजन नैं अंतर जई नैं, जोजन कोड़ाकोड़।।

२९. जोयणकोडाकोडिं वा

३०. मेरू थी जोजन सहस्र संख्याता, जोजन असंख हजार।
अथवा लोक नैं अंत जई नैं, उत्पत्ति-स्थान ए धार।।

३०. संखेज्जेसु वा असंखेज्जेसु वा जोयणसहस्सेसु, लोगंते वा,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

३१. उतपत्तिस्थानक एथ, आंगुल नों असंख्यातमो ।
भाग मात्रादिक खेत, समुद्घात थी त्यां जई ॥

३२. 'एक प्रदेश नी श्रेणि मूकी नें, असंख लक्ष पृथ्वी वास ।
कोइक वासे पृथ्वीपणें ऊपजी, आहारादिक त्रिहुं तास ॥

### सोरठा

३३. असंख्यात परदेश, अवगाहै आकाश नें ।
जीव स्वभाव विशेष, तिण प्रकार करिकै इहां ॥

३४. एक प्रदेश नीं श्रेण, खंध जीव नुं नां रहै ।
पाठ जीवेणं तेण, रहै अनेक प्रदेश में ॥

३५. 'वर्ज्यो एक प्रदेश, प्रतिपक्ष इक शब्द नुं ।
अनेक कहिय शेष, तेह विषे रहै जीवड़ो ॥

३६. अनेक शब्दे ताहि, प्रदेश असंख लीजियै ।
उणां प्रदेशां मांहि, खंध जीव नों नहिं रहै ॥

३७. दशवैकालिक देख, जीव अनेक पृथ्वी मझै ।
चउथै अध्येन पेख, तेह असंखिज्ज जाणवा ॥

३८. तिम इहां पिण अवलोय, एक शब्द करि वर्जिया ।
अनेक रह्या सुजोय, असंखिज्ज इहां पिण अछै' ॥
(ज० स०)

३९. *जिम पूर्व दिशि मंदर गिरि नों, कह्यो आलावो एह ।
इम दक्षिण पश्चिम उत्तर दिशि, ऊर्द्ध अधो पिण तेह ॥

४०. जिम पृथ्वीकाय नां षट आलावा, तिमहिज आलावा प्रगट ।
एकेंद्री सर्व विषे इम भणवा, इक-इक ना षट-षट ॥

४१. *जीव प्रभु! मारणांतिक नामे, समुद्घाते मरि सोय ।
लक्ष असंख बेइंद्रि आवासे, एक स्थान जावा जोग जोय ॥

४२. बेइंद्रिपणें ऊपजी आहार लेवै ? जिम नारक आख्यात ।
जाव अणुत्तर विमान नां देवा, तेहिज हिव अवदात ॥

४३. जीव प्रभु! मारणांतिक नामे, समुद्घाते मरि सोय ।
जावा जोग मोटा पंच अणुत्तर महाविमान में जोय ॥

* लय : दशकंधर राजा रावण रा

---

३१. उत्पादस्थानानुसारेणांगुलासंख्येयभागमात्रादिके क्षेत्र समुद्घाततो गत्वा । (वृ० प० २७४)

३२. एगपएसियं सेढिं मोत्तूण असंखेज्जेसु पुढविकाइया-वाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि पुढविकाइयावासंसि पुढ-विकाइयत्ताए उववज्जेत्ता, तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ।

३३,३४. यद्यप्यसंख्येयप्रदेशावगाहस्वभावो जीवस्तथाऽपि नैकप्रदेशश्रेणीवर्त्यसंख्यप्रदेशावगाहनेन गच्छति तथा स्वभावत्वात् । (वृ० प० २७४)

३७. पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं । (दसवे० ४।४ गद्यांश)

३९. जहा पुरत्थिमे णं मंदरस्स पव्वयस्स आलावओ भणिओ, एवं दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं, उड्ढे, अहे ।

४०. जहा पुढविकाइया तहा एगिंदियाणं सव्वेसिं एक्के-क्कस्स छ आलावगा भाणियव्वा । (श० ६।१२५)

४१. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता जे भविए असंखेज्जेसु बेइंदियावाससयस-हस्सेसु अण्णयरंसि बेइंदियावासंसि

४२. बेइंदियत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा ? परिणामेज्ज वा ? सरीरं वा बंधेज्जा ?
जहा नेरइया, एवं जाव अणुत्तरोववाइया ।
(श० ६।१२६)

४३. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए, समो-हणित्ता जे भविए पंचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महाविमाणेसु



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. अनेरे कोइक अनुत्तर विमानै, देवपणैं उपजंत ।
ते प्रभु! तिहां रह्यो आहार लेवै ? जाव पूर्ववत हुंत ।।

**सोरठा**

४५. 'कह्यो धर्मसी ताहि, भवनपती विगलिंदिया ।
तिरि पंचेंद्री मांहि, मनुष्य व्यंतर जोतिषि ।।
४६. वैमानिक पहिछाण, जाव अणुत्तर लग कह्या ।
नरक तणी पर जाण, उपजै त्यां आहारादि लै ।।
४७. छद्मस्थ समणी संत, संख्याता चारित्र सहित ।
अणुत्तर विमाण पर्यंत, देवपणें ते ऊपजै ।।
४८. इण न्याय करी अवधार, तिर्यंच श्रावक श्राविका ।
असंखेज्ज सुविचार, सहस्रार लग ऊपजै ।।
४९. अच्युत लग अवलोय, मनुष्य श्रावक श्राविका ।
इह विध कहिवो जोय, पूर्व न्याय करि सर्व ए ।।
५०. मारणांतिक समुद्घात करि पाछो एह तनु मुझे ।
अंतर्मुहूर्त ख्यात, चारित्र-सहित रहै अछै ।।
५१. अनुत्तर विमान मांय, चारित्रवंत तिहां जई ।
फिर पाछो तनु आय, अंतर्मुहूर्त्त रही मरै ।।
५२. समुद्घात धुर कीध, रुचक न ऊठ्या ज्यां लगै ।
प्रदेश अनुत्तर सीध, कहियै नर गति संजमी ।
५३. इणहिज रीत विचार, तिरि पंचेंद्री आदि जे ।
कहिवो न्याय उदार, यथाजोग जाणी करी ।।
५४. केइक जीव आख्यात, रत्नप्रभा महि नीं परै ।
दोय वार विख्यात, मारणांतिक समुद्घात छै ।।
५५, इतलै ए अवदात, ऊपजवूं जेहनैं जिहां ।
मारणांतिक समुद्घात, प्रथम करी ते स्थान जइ ।।
५६. पाछो वलि विख्यात, बीजी वार करै अछै ।
मारणांतिक समुद्धात, एकेक जीव इसा अछै ।।
५७. एकेंद्री रै मांहि, जेहनैं ऊपजवो अछै ।
ते उत्कृष्टो ताहि, लोक अंत जइ नैं वली ।।
५८. पाछो वलि को एक, स्व स्थानक आवै तिको ।
बीजी वारे देख, समुद्घात मरणांत करि ।।
५९. मेरू थी अवलोय, जे पूरव दिशि नैं विषे ।
अंगुल तणोंज जोय, भाग मात्र असंख्यातमो ।।
६०. जाव लोकांत पर्यंत, एक प्रदेश नीं श्रेणि नैं ।
मूकी नैं उपजंत, पछै आहारादिक त्रिहुं करै ।।
६१. सर्व लोक रै मांय, एकेंद्रिय छै ते भणी ।
लोकांतिक उपजाय, यंत्र धर्मसी कृत मझे' ।।
(ज० स०)

४४. अण्णयरंसि अणुत्तरविमाणंसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा ? परिणामेज्ज वा ? सरीरं वा बंधेज्जा ? तं चेव जाव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा। (श० ६।१२७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. *सेवं भंते! सेवं भंते! कही इम, पुढवी उद्देसो सम्मत्तो ।
छठा शतक नों छठो उद्देशो, अंक छासठ नुं सुतत्तो ।।
६३. उगणीसै बीसै सावण विद पंचमी, एकसौ पंचमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' गण गुणमाल ।।

६२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ६।१२८)

षष्ठशते षष्ठोद्देशकार्थः ।।६।६।।

## ढाल : १०६

### दूहा

१. छठे उदेशे जीव नीं, वक्तव्यता अवलोय ।
सप्तम जीव विशेष ते, योनि वारता जोय ।।

१. षष्ठोद्देशके जीववक्तव्यतोक्ता सप्तमे तु जीवविशेषयोनिवक्तव्यतादिरर्थ उच्यते— (वृ० प० २७४)

†कर जोड़ी गोयम कहै । (ध्रुपदं)

२. अथ हिव हे भगवंत जी! साली कलम प्रधानो जी ।
व्रीही सामान्य थकी कह्यो, गेहूं नै जव वलि जाणो जी ।।

२. अह भंते ! सालीणं, वीहीणं, गोधूमाणं, जवाणं,
'सालीणं' ति कलमादीनां 'वीहीणं' ति सामान्यतः । (वृ० प० २७४)

३. जवजव जव नों विशेष छै, ए धान्य कोठे गुप्ति राखै ।
पालो ते वंसादिक तणो, धान्य आधारज आखै ।।

३. जवजवाणं—एएसि णं धन्नाणं कोट्ठाउत्ताणं, पल्लाउत्ताणं,
'जवजवाणं' ति यवविशेषाणाम्........'कोट्ठाउत्ताणं' त्ति कोष्ठे—कुशूले आगुप्तानि....'पल्लाउत्ताणं' ति इह पल्यो—वंशादिमयो धान्याधारविशेषः । (वृ० प० २७४)

४. मंच माला में घालिया, भेद बिहुं में निहालो ।
भींत रहित ते मंच है, घर ऊपर ते मालो ।।

४. मंचाउत्ताणं, मालाउत्ताणं,
मञ्चमालयोर्भेदः—"अकुड्डे होइ मंचो, मालो य घरोवरिं होति ।" (वृ० प० २७४)

५. बारणा नैं ढांकी करी गोबरादिक संघातो ।
द्वार देश नैं लीपियो, ते ओलित्ताणं कहातो ।।

५. ओलित्ताणं
द्वारदेशे पिधानेन सह गोमयादिनाऽवलिप्तानाम् (वृ० प० २७४)

६. सर्व थी गोबरादिक करि लीप्यो ते लित्ताणं ।
तथाविध ढांकणे करी ढांक्यो ते पिहित्ताणं ।।

६. लित्ताणं पिहियाणं
'लित्ताणं' ति सर्वतो गोमयादिनैव लिप्तानां 'पिहियाणं' ति स्थगितानां तथाविधाच्छादनेन । (वृ० प० २७४)

७. माटी प्रमुख सूं मूंदियो, कहियै ते मुद्दित्ताणं ।
रेखादिक लंछन कियां, कहियै ते लंछियाणं ।।

७. मुद्दियाणं लंछियाणं
'मुद्दियाणं' ति मृत्तिकादिमुद्रावतां 'लंछियाणं' ति रेखादिकृतलाञ्छनानां (वृ० प० २७४)

*लय : दशकंधर राजा रावण रा
†लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. काल कितो योनी रहै, अंकुर उत्पत्ती हेतु ?
श्री जिन भाखै जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त लभेतु ।।
(वीर कहै सुण गोयमा!)
९. उत्कृष्ट तीन वर्ष लगै, योनि रहै छै ताह्यो ।
बड़ा टबा में इम कह्यो, त्यां लग सचित कहायो ।।
१०. ते उपरांते योनि ते, वर्णादि हानिज पावै ।
ते उपरांते योनि ते, विध्वंसै क्षय थावै ।।

११. ते उपरांते योनि ते, बीज अबीजज होयो ।
वृत्तिकार इहां इम कह्यो, बाह्यो न ऊगै कोयो ।।
१२. ते उपरांते योनि ते, विच्छेदपणों पामंतो ।
हे श्रमण आयुष्मान्! सांभलो, इम भाखै भगवंतो ।।

८. केवतियं कालं जोणी संचिट्ठइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
'जोणि' त्ति अकुंरोत्पत्तिहेतुः, (वृ० प० २७४)
९. उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं ।

१०. तेण परं जोणी पमिलायइ, तेण परं जोणी पविद्धंसइ,
प्रम्लायति वर्णादिना हीयते, 'पविद्धंसइ' त्ति क्षीयते ।
(वृ० प० २७४)

११. तेण परं बीए अबीए भवति ।
उप्तमपि नांकुरमुत्पादयति । (वृ० प० २७४)
१२. तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते समणाउसो !
(श० ६।१२९)

**सोरठा**

१३. 'बड़ा टबा में वाय, सजीवपणुं टली करी ।
अजीवपणुंज थाय, मिलतो अर्थ अछै तिको ।।
१४. सूको धान अजीव, केइक करै परूपणां ।
पिण इहां आख्यो जीव, अर्थ अनूपम देखलो ।।
१५. दशवैकालिक देख, द्वितीय उदेश पंचम भ्रयण ।
बावीसमीं उवेख, गाथा में इह विध कह्यु ।।
१६. चावल नों पहिछाण, आटो मिश्र उदक वली ।
शस्त्र-अपरिणत जाण, ते काचा लेणां नहीं ।।

१७. वलि कह्यो प्रथम उदेश, चोतीसमीं गाथा मझै ।
पिट्ठ नों अर्थ विशेष, दल्यो आटो तत्काल नों ।।
१८. ते खरड़्या हस्तादि, बहिरावै साधू भणी ।
नहिं कल्पै विधिवादि, धान्य सचित्त इण न्याय है' ।।
(ज० स०)

१६. तहेव चाउलं पिट्ठं वियडं वा तत्तनिव्वुडं ।
तिलपिट्ठपूइपिन्नागं, आमगं परिवज्जए ।।
(द० ५।२।२२)
१७. पिट्ठं—तत्काल पिसा हुआ आटा ।
(दसवेआलियं ५।१ टि० १३४)

१९. *अथ हिव हे भगवंत जी! वृत्त चिणा सुविशेखो ।
मसूर मूंग तिल उड़द नें, निस्फाव वल्ला देखो ।।

२०. कुलथ अनें चंवला कह्या, तुवरि चिणा वलि काला ।
आदि देई ए धान्य नें, घाल्या कोठे विशाला ।।

१९. अह भंते ! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-
'कल' त्ति कलाया वृत्तचनका इत्यन्ये''''निप्फाव' त्ति
वल्लाः । (वृ० प० २७४)
२०. कुलत्थ-आलिसंदग-सतीण-पलिमंथगमाईणं—एएसि णं
धन्नाणं कोट्ठाउत्ताणं''''
'कुलत्थ' त्ति चवलिकाकाराः चिपिटिका भवन्ति,
'आलिसंदग' त्ति चवलकप्रकाराः चवलका एवान्ये,
'सईण' त्ति तुवरी, 'पलिमंथग' त्ति वृत्तचनकाः
कालचनका इत्यन्ये । (वृ० प० २७४)

*लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. सालि आलावे जिम कह्यु, तिम ए पिण कहिवायो।
णवरं पंच वर्ष लगै, शेष तिमज वच ताह्यो॥

२२. अथ हिव हे भगवंत जी! अयसी भांग नों बीजो।
कसूंबो कोद्रव कांगु नैं, वरट्ट धान्य वलि लीजो॥

२३. रालग कांगु विशेष छै, कोदूसग सुविचारो।
कोद्रव तणों विशेष ए, सण सरिसव वलि धारो॥

२४. बीज मूला नां आदि दे, ए पिण तिमहिज जाणी।
णवरं सात वर्ष लगै, शेष तिमज पहिछाणी॥

**सोरठा**

२५. स्थिती कही छै एह, स्थिती तणोंज विशेष हिव।
मुहूर्त्तादिक छै जेह, कहियै स्वरूप तेहनों॥

२६. *इक-इक मुहूर्त्त नां प्रभु! किता ऊसास बखाण्या?
श्री जिन उत्तर दे हिवै, अनुक्रमै इम आण्या॥

२७. असंख्याता समय तणां, समुदाय वृंद सुयोगो।
समिति कहितां तसु मेलवो, समागम तास संजोगो॥

२८. काल मान तिण करि हुवै, ते आवलिका कहियै।
इतरै असंख समय तणी, एक आवलिका लहियै॥

२९. संख्याती आवलिका तणो, एक ऊसास विचारो।
संख्याती आवलिका तणो, एक निस्सास प्रकारो॥

**सोरठा**

३०. हृष्ट-तुष्ट नर जान, जरा करी अपराभव्यो।
पहिलां नैं वर्त्तमान, व्याधि करीनें रहित ते॥

३१. एहवो पुरुष युवान, इक उस्सास-निस्सास तसु।
ए पाणु अभिधान, कह्यो देव तीर्थंकरे॥

३२. *सात पाणु एक थोव छै, सात थोवे लव एको।
सितंतर लव मुहूर्त्त कह्यो, केवलज्ञाने विशेखो॥

---

*लय : श्रेणक मन इचरज थयो हूं बड़भागी

२१. जहा सालीणं तहा एयाणि वि नवरं पंच संवच्छराइं सेसं तं चेव। (सं० पा०)
(श० ६।१३०)

२२. अह भंते! अयसि-कुसुंभग-कोद्दव-कंगु-वरग
'अयसि' त्ति भङ्गी……'वरग' त्ति वरट्टो,
(वृ० प० २७४)

२३. रालग-कोद्दूसग-सण-सरिसव-
'रालग' त्ति कंगुविशेषः, 'कोद्दूसग' त्ति कोद्रवविशेषः।
(वृ० प० २७४)

२४. मूलाबीयमाईणं—एएसि णं धन्नाणं……
एयाणि वि तहेव नवरं सत्त संवच्छराइं, (सं० पा०)
(श० ६।१३१)

२५. अनन्तरं स्थितिरुक्ताऽतः स्थितिरेव विशेषाणां मुहूर्त्तादीनां स्वरूपाभिधानार्थमाह— (वृ० प० २७४)

२६. एगमेगस्स णं भंते! मुहुत्तस्स केवतिया ऊसासद्धा वियाहिया?

२७. गोयमा! असंखेज्जाणं समयाणं समुदय-समिति-समागमेणं
समुदाया—वृन्दानि तेषां याः समितयो—मीलनानि तासां यः समागमः—संयोगः। (वृ० प० २७६)

२८. सा एगा 'आवलिय' त्ति पवुच्चइ,

२९. संखेज्जा आवलिया ऊसासो, संखेज्जा आवलिया निस्सासो—

३०. हट्ठस्स अणवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
'हृष्टस्य' तुष्टस्य, 'अनवकल्पस्य' जरसाऽनभिभूतस्य, 'निरुपक्लिष्टस्य' व्याधिना प्राक् साम्प्रतं चानभिभूतस्य। (वृ० प० २७६)

३१. एगे ऊसास-नीसासे, एस पाणु त्ति वुच्चइ।

३२. सत्त पाणूइं से थोवे, सत्त थोवाइं से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए॥



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. सैंतीसौ तिहोत्तर वलि, उस्सास-निस्सास जानी ।
मुहूर्त्तमान देख्यो तसु, सर्व अनंत वरज्ञानी ॥
३४. ए मुहूर्त्त प्रमाण करी अछै, तीस मुहूर्त्त दिनरातो ।
पनर अहोरत्त पक्ख कह्यु, बे पक्ख मास विख्यातो ॥
३५. बे मासे इक ऋतु कही, तीन ऋतू इक अयनो ।
बे अयने इक वर्ष छै, पंच वर्ष युग वयनो ॥
३६. बीस युगे सौ वर्ष छै, दश सय वर्ष हजारो ।
सौ हजार वर्ष एकठा, ते इक लक्ख अवधारो ॥
३७. चोरासी लक्ख वर्ष हुवै, एक पूर्व नों अंगो ।
चोरासी लाख गुणां कियां, पूर्व एक सुचंगो ॥

३३. तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा ।
एस मुहुत्तो दिट्ठो, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥
३४. एएणं मुहुत्तपमाणेणं तीसमुहुत्ता अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो,
३५. दो मासा उडू, तिण्णि उडू अयणे, दो अयणा संवच्छरे, पंच संवच्छराइं जुगे,
३६. वीसं जुगाइं वाससयं, दस वाससयाइं वाससहस्सं, सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्सं ।
३७. चउरासीइं वाससयसहस्साणि से एगे पुव्वंगे, चउरासीइं पुव्वंगा सयसहस्साइं से एगे पुव्वे ।

**सोरठा**

३८. वर्ष सित्तर लख कोड़, छपन सहस्र कोड़ वलि ।
ए सगला मिलि जोड़, पूर्व संख्या तसु कही ॥
३९. *एक पूर्व छै तेहनैं, चोरासी लक्ख गुणां कीजै ।
एक तुटित नों अंग छै षट अंग पनर बिंदु लीजै ॥
४०. एह तुटित नां अंग नैं, वर्ष चउरासी लक्ख गुणां कीजै ।
तुटित कहीजै तेहनैं, अठ अंक बिंदु बीस लीजै ॥
४१. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक अडड नो अंगो ।
इणनै चोरासी लक्ख गुण्यां, अडड एक सुचंगो ॥
४२. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक अवव नो अंगो ।
तास चोरासी लक्ख गुण्यां, अवव एक सुचंगो ॥
४३. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक हूहूक नों अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, हूहूक एक सुचंगो ॥
४४. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक उत्पल नो अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, उत्पल एक सुचंगो ॥
४५. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक पद्म नो अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, पद्म एक सुचंगो ॥
४६. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक नलिन नो अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, नलिन एक सुचंगो ॥
४७. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, अर्थनिपूरकअंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, अर्थनिपूरक चंगो ॥
४८. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक अयुत नों अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, अयुत एक सुचंगो ॥

३९. एवं तुडियंगे ।
४०. तुडिए ।
४१. अडडंगे, अडडे ।
४२. अववंगे, अववे ।
४३. हूहूयंगे, हूहूए ।
४४. उप्पलंगे, उप्पले ।
४५. पउमंगे, पउमे ।
४६. नलिणंगे, नलिणे ।
४७. अत्थनिउरंगे, अत्थनिउरे ।
४८. अउयंगे, अउए ।

*लय : श्रेणक मन इरचज थयो हूं बड़भागी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक प्रयुत[1] नों अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, प्रयुत एक सुचंगो ॥

४९. पउयंगे, पउए ।

५०. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक नयुत नो अंगो ।
इणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, नयुत एक सुचंगो ॥

५०. नउयंगे, नउए ।

५१. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, एक चूलिका-अंगो ।
तिणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, चूलिका एक सुचंगो ॥

५१. चूलियंगे, चूलिया ।

५२. तिणनैं चोरासी लाख गुणां कियां, सीसपहेलिका-अंगो ।
तिणनैं चोरासी लक्ख गुण्यां, सीसपहेलिका[2] चंगो ॥

५२. सीसपहेलियंगे, सीसपहेलिया ।

५३. गणित-संख्या एता लगै, गणित-विषय पिण एती ।
उत्कृष्ट संख्या दूर छै, एतो गिणत नीं बात कहेती ॥

५३. एताव ताव गणिए, एताव ताव गणियस्स विसए ।

५४. ते उपरांत ओपम कही, कतिविध ते भगवानो ?
जिन कहै ते द्विविध अछै, पल्य सागर उपमानो[3] ॥

५४. तेण परं ओवमिए । (श० ६।१३२)
से किं तं ओवमिए ?
ओवमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पलिओवमे य, सागरोवमे य । (श० ६।१३३)

५५. देश अंक सतसठ तणुं, एकसौ छट्ठी ढालो ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशालो ॥
(जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नों)

## ढाल १०७

### दूहा

१. से अथ किं स्यूं तं तिको, पल्योपम पहिछाण ?
अथ स्यूं ते सागरोपम ? तास उत्तर हिव जाण ॥

१. से किं तं पलिओवमे ? से किं तं सागरोवमे ?

---

१. प्रस्तुत ढाल की ४९वीं और ५०वीं गाथा जिस पाठ के आधार पर बनाई गई है, अंगसुत्ताणि भाग २ श० ६।१३२ में उसका क्रम उलटा है । वहां पहले नउयंगे, नउए और उसके बाद पउयंगे, पउए पाठ है । अनुयोगद्वार में भी यह क्रम इसी प्रकार रखा गया है । यही क्रम उचित प्रतीत होता है, पर कुछ आदर्शों में 'पउयंगे, पउए' पाठ पहले है । इस क्रम को हमने पाठान्तर में रखा है । जयाचार्य को प्राप्त आदर्श में यही क्रम रहा होगा । इसीलिए जोड़ की रचना इस क्रम से की गई है । जोड़ के सामने अंगसुत्ताणि के पाठ को जोड़ के अनुसार ही उलटकर उद्धृत किया गया है ।
२. देखें प० सं० ५ ।
३. इस ढाल की गाथा ३७ से ५४ तक कालमान का जो विवरण है, वही ढाल ७५ गाथा ८ से ३७ तक है । ७५वीं ढाल पांचवें शतक की जोड़ है और यह (१०६) ढाल छठे शतक की जोड़ है । एक आगम में यह प्रसंग द्विरुक्त-सा प्रतीत होता है, पर संदर्भों की भिन्नता के कारण द्विरुक्त होने पर भी यह दोष नहीं है । क्योंकि पांचवें शतक में अयन आदि की चर्चा है और प्रस्तुत ढाल में गणना-काल-पद के अन्तर्गत इसका उल्लेख हुआ है । यही प्रसंग अणुओगदाराइं (सू० ४१७) में भी उल्लिखित है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अति तीखे शस्त्रे करी, छेदवूं तेह पिछाण।
खड्गादिक करिनैं इहां, द्विधा भाव सुजाण।।

३. सूई प्रमुख कर भेदवूं, छिद्र सहित कहिवाय।
छेद भेद प्रारंभवा, करण समर्थ को नांय।।

४. तास नाम परमाणुओ, सिद्धा वदै सुजेह।
ज्ञानसिद्ध ए केवली, पिण सिद्धिगत न भणेह।।

५. बोलण तास असंभव, तिण कारण पहिछाण।
ज्ञानसिद्ध एहनैं कह्या, वर तेरम गुणठाण।।

६. पूर्वे परमाणू कह्युं, प्रमाण नीं ए आदि।
उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका प्रमुख प्रमाण सुवादि।।

७. निश्चय परमाणू तणां, एहिज लक्षण होय।
तो पिण व्यवहारीक ए, परमाणू अवलोय।।

८. प्रमाण नां अधिकार थी, व्यवहारिक नां एह।
इहां लक्षण आख्या अछै, इम वृत्तिकार कहेह।।

९. अथ हिव अन्य प्रमाण नों, लक्षण अर्थ विशेख।
श्रोता चित दे सांभलो, वर जिन वचन सुरेख।

१०. *अनंता व्यवहारिक जाण, परमाणू नो पहिछाण।
समुदाय छै प्रमुख सोय, तसुं समिति मिलण अवलोय।।

११. तेहनो समागम कहिवाय, एकठो थायवो जे ताय।
तेणे करी मात्रा पुंज पेख, ते उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णा एक।।

१२. इतरै अनंत व्यवहारिक परमाणु, भेला कीधा जे पुंज पिछाणुं।
तेहनैं कहियै सुविशेख, उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका एक।।

१३. उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका वेद, प्रमुख प्रमाण नां दस भेद।
यथोत्तर अष्ट गुणां उच्चार, आंगुल पर्यंत कहिवा विचार।।

१४. श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका जाण, वलि ऊर्ध्वरेणू पहिछाण।
ऊंचो नीचो अनै तिरछो तेह, चलनधर्म ऊर्ध्वरेणू एह।।

१५. पूर्वादिक वायु पिछाण, तिण सूं प्रेरी थकी रज जाण।
इम चालै जे रज ताय, त्रसरेणू ते कहिवाय।।

१६. रथ जातां पड़ै रज जेह, रथरेणू कहीजै तेह।
वाल नों अग्र नै वलि लीख, जूं जवमध्य अंगुल सधीक।।

*लय : विना रा भाव सुण गूंजे

२,३. सत्थेण सुतिक्खेण वि, छेत्तुं भेत्तुं व जं किर न सक्का।
छेत्तुमिति खड्गादिना द्विधा कर्त्तुं, 'भेत्तुं' सूच्यादिना सच्छिद्रं कर्त्तुम्। (वृ० प० २७६)

४,५. तं परमाणुं सिद्धा वदंति
'सिद्ध' त्ति ज्ञानसिद्धाः केवलिन इत्यर्थः न तु सिद्धाः—सिद्धिगतास्तेषां वदनस्यासम्भवादिति। (वृ० प० २७६)

६. आदिं पमाणाणं ।।१।।
'आदिं' प्रथमं 'प्रमाणानां' वक्ष्यमाणोत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादीनामिति। (वृ० प० २७६)

७,८. यद्यपि च नैश्चयिकपरमाणोरपीदमेव लक्षणं तथाऽपीह प्रमाणाधिकाराद्व्यावहारिकपरमाणुलक्षणमिदमवसेयम्। (वृ० प० २७६)

९. अथ प्रमाणान्तरलक्षणमाह— (वृ० प० २७६)

१०,११. अणंताणं परमाणुपोग्गलाणं समुदय-समिति-समागमेणं सा एगा उस्सण्ह-सण्हिया इ वा।
'अनन्तानां' व्यावहारिकपरमाणुपुद्गलानां समुदयाः—द्व्यादिसमुदयास्तेषां समितयो—मीलनानि तासां समागमः—परिणामवशादेकीभवनं समुदयसमितिसमागमस्तेन या परिमाणमात्रेति गम्यते। (वृ० प० २७६)

१३. एते च उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकादयोऽङ्गुलान्ता दश प्रमाणभेदा यथोत्तरमष्टगुणाः। (वृ० प० २७७)

१४. सण्हसण्हिया इ वा, उड्ढरेणू इ वा,
'उड्ढरेणु' त्ति ऊर्द्ध्वाधस्तिर्यक्चलनधर्मोपलभ्यो रेणुः ऊर्द्ध्वरेणुः। (वृ० प० २७७)

१५. तसरेणू इ वा,
त्र्यस्यति—पौरस्त्यादिवायुप्रेरितो गच्छति यो रेणुः स त्रसरेणुः। (वृ० प० २७७)

१६. रहरेणू इ वा, वालग्गे इ वा, लिक्खा इ वा, जूया इ वा, जवमज्झे इ वा, अंगुले इ वा।
'रहरेणु' त्ति रथगमनोत्खातो रेणू रथरेणुः। (वृ० प० २७७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. एतो नाम मात्र दस देख, आगल अठगुणां कहियै विशेख ।
अठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका नीं, इक श्लक्ष्णश्लक्ष्णा जानी ।।

१८. आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका नीं, एक ऊर्ध्वरेणू जिन वानी ।
आठ ऊर्ध्वरेणू नीं जोय, एक त्रसरेणू अवलोय ।।

१९. आठ त्रसरेणू नीं ताम, एक रथरेणू हुवै आम ।
आठ रथरेणू नीं उदग्ग, एक देव-उत्तरकुरु वालग्ग ।।

२०. देव-उत्तरकुरु नर देख, त्यारां वालाग्र आठ नुं पेख ।
हरिवर्ष रम्यक नां विशेख, नर नों हुवो वालाग्र एक ।।

२१. हरिवर्ष रम्यक नर जान, त्यांरा वालाग्र आठ नुं मान ।
हेमवंत एरण्य नां लहियै, नर नों इक वालाग्र कहियै ।।

२२. हेमवंत एरण्य नर जोय, त्यांरा वालाग्र आठ नुं होय ।
पूर्व अपर विदेह नां ताय, नर नों इक वालाग्र थाय ।।

२३. पूर्व अपर विदेह नर जेह, त्यांरा वालाग्र आठ नुं तेह ।
एक लीख हुवै छै सोय, आठ लीख नीं जूं इक होय ।।

२४. अठ जूं जवमध्य इक पेख, अठ जवमध्य अंगुल एक ।
इण अंगुल प्रमाणै जाण, षट अंगुल पाओ पिछाण ।।

२५. बारै अंगुल वेंहत आख्यात, अंगुल चउवीस नों एक हाथ ।
अंगुल अड़ताली कुक्षि संपेख, ए धनुष्य तणुं अर्ध देख ।।

२६. छनूं अंगुल नों दंड एक, वलि धनुष यूप संपेख ।
वलि नालिका यष्टि विशेख, अक्ष गाडा नों अवयव देख ।।

२७. वलि मूसल पिण अवलोय, छहुं छनूं अंगुल नां जोय ।
एणैं धनुष प्रमाणैं पेख, दोय सहस्र धनुष गाऊ एक ।।

२८. च्यार गाऊ नों जोजन जाण, एहवै जोजन तणैं प्रमाण ।
एक पालो वाटलो होय, जोजन लांबो चोड़ो अवलोय ।।

२९. एक जोजन ऊंचो ताय, त्रिगुणी जाझी परिधि कहाय ।
एक दिवस तणां बध्या वाल, दोय तीन दिवस नां न्हाल ।।

३०. उत्कृष्टपणैं निशि सात, तेहनां बाध्या वाल विख्यात ।
तेह वालाग्र नीं बहु कोड़, काना लगैं चांपी भरचो जोड़ ।।

**सोरठा**

३१. वालाग्र कोड़ विख्यात, पाठ मांहे इहां आखिया ।
बृहत टबे असंख्यात, न्याय कहूं छूं तेहनों ।।

३२. अनुयोगद्वार मझार, एक एक वालाग्र नां ।
खंड असंख विचार, सूक्ष्म पल्य कही तसु ।।

१७. अट्ठ उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्हसण्हिया ।

१८. अट्ठ सण्हसण्हियाओ सा एगा उड्ढरेणू, अट्ठ उड्ढरेणूओ सा एगा तसरेणू ।

१९. अट्ठ तसरेणूओ सा एगा रहरेणू, अट्ठ रहरेणूओ से एगे देवकुरु-उत्तरकुरुगाणं मणुस्साणं वालग्गे

२०-२३. 'एवं हरिवास-रम्मग-हेमवय-एरन्नवयाणं, पुव्व-विदेहाणं मणुस्साणं अट्ठ वालग्गा सा एगा लिक्खा, अट्ठ लिक्खाओ सा एगा जूया

२४. अट्ठ जूयाओ से एगे जवमज्झे, अट्ठ जवमज्झा से एगे अंगुले । एएणं अंगुलपमाणेणं छ अंगुलाणि पादो,

२५. बारस अंगुलाइं विहत्थी, चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी
'रयणि' त्ति हस्तः । (वृ० प० २७७)

२६. छन्नउतिं अंगुलाणि से एगे दंडे इ वा, धणू इ वा, जूए इ वा नालिया इ वा, अक्खे इ वा
'नालिय' त्ति यष्टिविशेषः 'अक्खे' त्ति शकटावयव-विशेषः । (वृ० प० २७७)

२७. मुसले इ वा । एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं,

२८. चत्तारि गाउयाइं जोयणं । एएणं जोयणप्पमाणेणं जे पल्ले जोयणं आयामविक्खंभेणं,

२९. जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिउणं, सविसेसं परिरएणं—से णं एगाहिय-बेहिय-तेहिय,

३०. उक्कोसं सत्तरत्तप्परूढाणं संमट्ठे संनिचिए भरिए वालग्गकोडीणं ।
'संमृष्टः' आकर्णभृतः । (वृ० प० २७७)

३२. से किं तं सुहुमे उद्धारपलिओवमे ?.........तत्थ णं एगमेगे वालग्गं असंखेज्जाइं खंडाइं कज्जइ ।.....
(अणुओग० सू० ४२४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. *नहीं बलै अग्नि रै मांहि, वायु हरै उडावै नांहि ।
पाणी प्रवाहे सड़िवो न थाय, किणहि सूं विध्वंस न पाय ॥

**सोरठा**

३४. कहै—सड़ै नहिं जेह, प्रचय विशेषपणें करी ।
वलि शुषिर अभावपणेह, वायु नां असंभव थकी ॥

३५. *नहिं होवै दुर्गंध पेख, सौ-सौ वर्ष खंड इक-एक ।
जेतलै काले करि जेह, पालो क्षीण थयो सहु तेह ॥

३६. निरए रजरहित ज्यूं जाण, सूक्ष्म वालाग्र रहित पिछाण ।
धान्य रज रहित कोठागार, तेहनीं परै एह विचार ॥

३७. निम्मले मलरहित ज्यूं रीत, अतिहि सूक्ष्म रजरहीत ।
पूंज्यां विमल थयो कोठागार, तेहनीं परै एह विचार ॥

३८. निट्ठिए नों अर्थ अवलोय, वालाग्र खंड नीठ्या सोय ।
विशिष्ट यत्न पूंज्यो कोठागार, तेहनीं परै ए अवधार ॥

३९. निल्लेवे निर्लेप अत्यंत, सर्व वालाग्र खंध काढंत ।
भींत्यादिक धान्य लेपन होय, तेह कोठागार जिम जोय ॥

४०. अवहडे सहु वालाग्र खंड, लेप अपहरवा थी सुमंड ।
इण कारण थी संपेख, विशुद्धे शुद्ध थयो विशेख ॥

४१. सहु शब्द एकार्थ तेम, इहां वृत्तिकार कह्यु एम ।
कोड़ां वालाग्रे पालो भरंत, व्यवहारिक पल्य कहंत ॥

४२. इक-इक वालाग्र खंड असंख्यात, तिण सूं पालो भरै विख्यात ।
इक-इक खंड सौ-सौ वर्ष गहियै, सूक्ष्म अद्धा पल्य ते कहियै ॥

४३. उद्धार अद्धा क्षेत्र पल्ल, व्यवहारिक सूक्ष्म अदल्ल ।
बहु विस्तार अनुयोगद्वार[1], इहां नाम मात्र अधिकार ॥

४४. एतो कह्यो पल्योपम जोय, दस कोड़ाकोड़ि पल्य सोय ।
एक सागरोपम प्रमाण, एह प्रमाण करि पहिछाण ॥

३३. ते णं वालग्गे नो अग्गी दहेज्जा, नो वातो हरेज्जा, नो कुच्छेज्जा, नो परिविद्धंसेज्जा,

३४. न कुथ्येयुः प्रचयविशेषाच्छुषिराभावाद्वायोरसम्भवाच्च नासारतां गच्छेयुरित्यर्थः । (वृ० प० २७७)

३५. नो पूतित्ताए हव्वमागच्छेज्जा ।
तओ णं वाससए-वाससए गते एगमेगं वालग्गं अवहाय जावतिएणं कालेणं से पल्ले खीणे

३६. निरए
निर्गतरजः कल्पसूक्ष्मतरवालाग्रोऽपकृष्टधान्यरजः कोष्ठागारवत् । (वृ० प० २७७)

३७. निम्मले
विगतमलकल्पसूक्ष्मतरवालाग्रः प्रमार्जनिकाप्रमृष्टकोष्ठागारवत् । (वृ० प० २७७)

३८. निट्ठिए
अपनेयद्रव्यापनयमाश्रित्य निष्ठां गतः विशिष्टप्रयत्नप्रमार्जितकोष्ठागारवत् । (वृ० प० २७७)

३९. निल्लेवे
अत्यन्तसंश्लेषात्तन्मयतां गतः वालाग्रापहारादपनीतभीत्त्यादिगतधान्यलेपकोष्ठागारवत् ।
(वृ० प० २७७)

४०. अवहडे विसुद्धे भवइ ।
निःशेषवालाग्रलेपापहारात् । (वृ० प० २७७)

४१. एकार्थाश्चैते शब्दाः व्यावहारिकं चेदमद्धापल्योपमम् ।
(वृ० प० २७७)

४२. इदमेव यदाऽसंख्येयखण्डीकृतैकैकवालाग्रभृतपल्याद् वर्षशते-वर्षशते खण्डशोऽपोद्धारः क्रियते तदा सूक्ष्ममुच्यते । (वृ० प० २७७)

४३. समये समयेऽपोद्धारे तु द्विधैवोद्धारपल्योपमं भवति, तथा तैरेव वालाग्रैर्ये स्पृष्टाः प्रदेशास्तेषां प्रतिसमयापोद्धारे यः कालस्तद्व्यावहारिकं क्षेत्रपल्योपमं, पुनस्तैरेवासंख्येयखण्डीकृतैः स्पृष्टास्पृष्टानां तथैवापोद्धारे यः कालस्तत्सूक्ष्मं क्षेत्रपल्योपमम् । (वृ० प० २७७)

४४. से त्तं पलिओवमे ।
एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया ।
तं सागरोवमस्स उ, एक्कस्स भवे परिमाणं ॥

*लय : विना रा भाव सुण गूंजे

१. (सू० ४१६-४२४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. च्यार सागर कोड़ाकोड़, काल सुषम-सुषमा जोड़ ।
कोड़ाकोड़ि सागर वलि तीन, काल सुषमा युगल[1] सुचीन ॥

४६. कोड़ाकोड़ि सागर जे दोय, काल सुषमदुषमा होय ।
तृतीय आरो ते हुंत, पहिलां युगल आदि जिन अंत ॥

४७. कोड़ाकोड़ि सागर इक तास, ऊणां संहस बयालीस वास ।
काल दुष्षम-सुषमा विचार, जिन तेबीस चउथै आर ॥

४८. इकवीस संहस जे वास, काल दुष्षमा पंचम जास ।
इकवीस संहस वर्ष जोय, काल दुष्षम-दुषमा होय ॥

४९. अवसर्प्पिणी काल आख्यात, उत्सर्प्पिणी नीं हिव बात ।
इकवीस संहस वर्ष न्हाल, कहियै दुष्षम-दुषमा काल ॥

५०. वलि वर्ष इकवीस हजार, काल दुष्षम दूजो आर ।
इणमें साधु श्रावक नहिं थाय, बीजूं एह पंचम जिसो पाय ॥

५१. कोड़ाकोड़ि सागर इक तास, ऊणां संहस बयालीस वास ।
दूषम-सुषमा तीजो आर, जिन जन्म तेबीस उदार ॥

५२. कोड़ाकोड़ि सागर जे दोय, काल सुषम-दुष्षमा होय ।
चउथो आरो चरम जिन आदि, पछै युगल धर्म सुख साधि ॥

५३. कोड़ाकोड़ि सागर वलि तीन, काल सुषमा युगल सुचीन ।
च्यार सागरोपम कोड़ाकोड़, काल सुषम-सुषमा जोड़ ॥

५४. कोड़ाकोड़ि सागर दस लाधि, अवसर्प्पिणी काल छै आदि ।
कोड़ाकोड़ि सागर दस देख, उत्सर्प्पिणी काल संपेख ॥

५५. कोड़ाकोड़ि सागर वीस सोय, अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी होय ।
बिहुं मिलियां काल चक्र एक, वर ज्ञान नेत्रे करि देख ॥

## दूहा

५६. काल तणां अधिकार थी, काल स्वरूप कहंत ।
गणधारक गोयम गणी, प्रवर प्रश्न पूछंत ॥

५७. *जंबूद्वीप विषे जिनराय ! एह अवसर्प्पिणी काल ताय ।
सुषमा-सुषम आरा में सुसाधि, उत्कृष्ट अर्थ आउखादि ॥

५८. उत्तमार्थ प्राप्त कह्यु तेह, तथा उत्तम काष्ठा प्राप्त एह ।
प्रकृष्ट अवस्था आप्त, तिको उत्तम काष्ठा प्राप्त ॥

५९. भरत नामा खेत्र नों उदार, केहवो आकार भाव प्रकार ?
जिन कहै बहु सम रमणीक, भूमिभाग हुंतो तहतीक ॥

६०. यथानाम दृष्टांत परीखो, मादल मुखपुट तेह सरीखो ।
उत्तरकुरु नीं परै सहु बात, जीवाभिगम सूत्रे आख्यात ॥

---

*लय : विना रा भाव सुण गूंजै

१. यौगलिक काल

४५. एएणं सागरोवमपमाणेणं चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-सुसमा, तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा,

४६. दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-दूसमा,

४७. एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसम-सुसमा,

४८. एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमा, एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसम-दूसमा ।

४९. पुणरवि उस्सप्पिणीए एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसम-दूसमा ।

५०. एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दूसमा ।

५१. एगा सागरोवमकोडाकोडी बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिया कालो दूसम-सुसमा ।

५२. दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-दूसमा ।

५३. तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमा, चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसम-सुसमा ।

५४. दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी, दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी ।

५५. वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी उस्सप्पिणी य । (श० ६।१३४)

५६. कालाधिकारादिदमाह— (वृ० प० २७७)

५७,५८. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए उत्तिमपट्ठत्ताए,
उत्तमात्—तत्कालापेक्षयोत्कृष्टानर्थान्—आयुष्कादीन् प्राप्ता उत्तमार्थप्राप्ता उत्तमकाष्ठां प्राप्ता वा—प्रकृष्टावस्थां गता तस्याम् । (वृ० प० २७७)

५९. भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभाव-पडोयारे होत्था ?
गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था ।

६०. से जहानामए—आलिंगपुक्खरे ति वा, एवं उत्तरकुरु-वत्तव्वया नेयव्वा ।
'आलिंगपुक्खरे' त्ति मुरजमुखपुटं ........ उत्तरकुरु-वक्तव्यता च जीवाभिगमोक्तैव दृश्या
(जीवा० प० ३।५७८-६३१) । (वृ० प० २७७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. जाव वेसै सूवै कीड़ा करिवो, एतला लगै सर्व उचरिवो ।
तेह काल विषे पहिछाण, भरतखेत्र विषे इम जाण ।।

६२. तत्थ-तत्थ तिहां-तिहां ताहि भरत नां खंड-खंड रै मांहि ।
देशे-देशे नों अर्थ विचार, खंड-खंड नां अंश मझार ।।

६३. तहिं-तहिं नों अर्थ कहेज, देश-देश नां अंश विषेज ।
घणां उद्दाल कोद्दालादि, वारू वृक्ष विशेष समाधि ।।

६४. जाव कुस विकुस विशुद्ध रूंख मूल हुंता अविरुद्ध ।
कुस—दर्भ, विकुस—तृण थूल, तेणे करी रहित तरु-मूल ।।

६५. जाव छहविध मनुष्य वसंता, पद्मगंध कमलगंधवंता ।
मृगगंधा कस्तूरी सरीख, तनु-सुगंध वास तहतीक ।।

६६. अममा ममत करीनै रहीत, तेयतली—तेज-रूप सहीत ।
सहा पंचमो नाम पिछाण, समर्था एह अर्थ सुजाण ।।

६७. सणंचारी मंदगतिवंता, उत्सुक भावरहित चालंता ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! ताम, इम बोलै गोतम स्वाम ।।

६८. छठा शतक नों सातमों न्हाल, कही एकसौ सातमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय, 'जय-जश' सुख संपति पाय ।।

षष्ठशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।६।७।।

६१. जाव तत्थ णं बहवे भारया मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति निसीयंति तुयट्टंति हसंति रमंति ललंति ।

६२. तीसे णं समाए भारहे वासे तत्थ तत्थ देसे-देसे
तत्र तत्र भारतस्य खण्डे खण्डे 'देसे देसे' खण्डांशे खण्डांशे । (वृ० प० २७८)

६३. तहिं तहिं बहवे उद्दाला कोद्दाला
'तहिं तहिं' ति देशस्यान्ते देशस्यान्ते उद्दालकादयो वृक्षविशेषाः । (वृ० प० २७८)

६४. जाव कुस-विकुस-विसुद्धरुक्खमूला
कुशा—दर्भाः विकुशा—बल्वजादयः तृणविशेषास्तैर्विशुद्धानि—तदपेतानि वृक्षमूलानि—तदधोभागा येषां ते तथा । (वृ० प० २७८)

६५. जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था, तं जहा—
पम्हगंधा, मियगंधा,
'पम्हगंध' त्ति पद्मसमगन्धयः 'मियगंध' त्ति मृगमदगन्धयः । (वृ० प० २७८)

६६. अममा, तेतली, सहा,
'अमम' त्ति ममकाररहिताः, 'तेयतलि' त्ति तेजश्च तलं च रूपं येषामस्ति ते तेजस्तलिनः, 'सह' त्ति सहिष्णवः समर्थाः । (वृ० प० २७८)

६७. सणिचारी (श० ६।१३५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ६।१३६)
'सणिचारे' त्ति शनैः—मन्दमुत्सुकत्वाभावाच्चरन्तीत्येवंशीलाः शनैश्चारिणः । (वृ० प० २७८)

## ढाल १०८

### दूहा

१. सप्तमुद्देशा नैं विषे, भरत स्वरूप विशेख ।
अष्टमुद्देशे हिव अखूं, पृथ्वी स्वरूप पेख ।।

२. प्रभु ! पृथ्वी केती कही ? जिन कहै पृथ्वी अट्ठ ।
रत्नप्रभा यावत वलि, इसिप्पभारावट्ठ ।।

१. सप्तमोद्देशके भारतस्य स्वरूपमुक्तमष्टमे तु पृथिवीनां तदुच्यते— (वृ० प० २७८)

२. कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव ईसीपब्भारा । (श० ६।१३७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नों रे लाल (ध्रुपदं)

३. ए रत्नप्रभा पृथ्वीतले रे, छै प्रभुजो ! घर जेह रे,
जिनेन्द्र देव !
घर आकारे हाट छै रे लाल, अर्थ समर्थ नहिं एह रे,
सुजाण सीस !

४. ए रत्नप्रभा पृथ्वी तले, छै भगवंतजो ! ग्राम ?
जाव तिहां सन्निवेश छै ? अर्थ समर्थ न आम ।।

५. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, बादल जे महामेह ।
पुद्गल में स्नेह ऊपजै, मिलि वर्षा वर्षेह ?

६. जिन भाखै हंता अत्थि, तीनूंई पकरंत ।
देव वैमानिक पिण करै, असुर नाग थी हुंत ।।

७. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, बादर घन गर्जार ?
जिन भाखै हंता अत्थि, तीनूंइ करै तिवार ।।

८. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, बादर अग्नीकाय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, णण्णत्थ विग्रहगति पाय ।।

**सोरठा**

९. बादर अग्नी जान, मनुष्यक्षेत्र मांहेज ह्वै ।
ते माटै पहिछान, निषेध कीधो एहनों ।।

१०. तो बादर-पृथ्वीकाय, पृथ्व्यादिक स्वस्थान अछै ।
पिण रत्नप्रभा-तल नांय, तेहनों निषेध किम नहिं ?

११. सत्य, किंतु इह स्थान, अभाव जिण-जिण वस्तु नों ।
तिण-तिण नो पहिछान, निषेध सहु नों नहिं कियो ।।

१२. रत्नप्रभा-तल वेद, मनुष्य मात्र अभाव छै ।
न कियो इहां निषेध, तिम बादर-पृथ्वी तणों ।।

१३. जेहनी पूछा कीध, तेहनों इहां निषेध छै ।
विचित्र सूत्रगति सीध, तिणसूं निषेध नवि कियो ।।

१४. उदक बनस्पतिकाय, घनोदध्यादिक भाव कर ।
तेहनों संभव थाय, तिण सूं तास निषेध नहिं ।।

१५. *छै प्रभु ! रत्नप्रभा-तले, चंदिम यावत तार ।
जिन कहै अर्थ तुम्है कह्यो, समर्थ नहिं छै लिगार ।।

*लय : धीज करै सीता सती रे लाल

३. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे गेहा इ वा ?
गेहावणा इ वा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१३८)

४. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए अहे गामा इ वा ?
जाव सण्णिवेसा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१३९)

५. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे ओराला बलाहया संसेयंति ? संमुच्छंति ? वासं वासंति ?

६. हंता अत्थि । तिण्णि वि पकरेंति—देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नागो वि पकरेति ।
(श० ६।१४०)

७. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बादरे थणियसद्दे ?
हंता अत्थि । तिण्णि वि पकरेंति । (श० ६।१४१)

८. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे बादरे अगणिकाए ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगति-समावन्नएणं । (श० ६।१४२)

९. ननु यथा बादराग्नेर्मनुष्यक्षेत्र एव सद्भावान्निषेध इहोच्यते । (वृ० प० २७९)

१०. एवं बादरपृथिवीकायस्यापि निषेधो वाच्यः स्यात् पृथिव्यादिष्वेव स्वस्थानेषु तस्य भावादिति ।
(वृ० प० २७९)

११-१२. सत्यं, किन्तु नेह यद्यत्र नास्ति तत्तत्र सर्वं निषिध्यते मनुष्यादिवद् (वृ० प० २७९)

१३. विचित्रत्वात् सूत्रगतेरतोऽसतोऽपीह पृथिवीकायस्य न निषेध उक्तः । (वृ० प० २७९)

१४. अप्कायवायुवनस्पतीनां त्विह घनोदध्यादिभावेन भावान्निषेधाभावः सुगम एवेति । (वृ० प० २७९)

१५. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे चंदिम जाव तारारूवा (सं० पा०) ।
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. छै प्रभु ! रत्नप्रभा तले, चंद्रादि क्रांति शोभंत ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, वलि गोयम पूछंत ॥

१६. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे चंदाभा ति वा ? सूराभा ति वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

१७. रत्नप्रभा नैं विषे कह्यो, तिम सगलो विस्तार ।
बीजी पृथ्वी नै विषे, कहिवो सर्व प्रकार ॥

१७. एवं दोच्चाए पुढवीए भाणियव्वं,

१८. इम तीजी पृथ्वी तले, णवरं देव करंत ।
असुरकुमार करै वलि, नाग थकी नहिं हुंत ॥

१८. एवं तच्चाए वि भाणियव्वं:, नवरं—देवो वि पकरेति, असुरो वि पकरेति, नो नागो पकरेति ।

### सोरठा

१९. तीजी पृथ्वी हेठ, नागकुमार करै नहीं ।
इण पद करकै नेठ, तास गमन नहिं संभवै ॥

१९. 'ना नाओ' त्ति नागकुमारस्य तृतीयायाः पृथिव्या अधोगमनं नास्तीत्यत एवानुमीयते ।
(वृ० प० २७६)

२०. *इम चउथी पृथ्वी तले, णवरं वैमानिक एह ।
बादल प्रमुख सहू करै, असुर नाग न करेह ॥

२०. चउत्थीए वि एवं, नवरं—देवो एक्को पकरेति, नो असुरो नो नागो ।

### सोरठा

२१. 'चउथी नरक मझार, असुर तिहां जावै नहीं ।
ते माटै सुविचार, गमन वैमानिक नूंज छै ॥
२२. पद्म-पुराण मझार, सीतेंद्र चउथी गयो ।
ते मिलतो सुविचार, एह वचन अवलोकतां' ॥
(ज० स०)

२३. *हेठली सहु पृथ्वी तले, देव मेघादि करंत ।
असुर नाग न करै तिहां, तास गमन नहिं हुंत ॥

२३. एवं हेट्ठिल्लासु सव्वासु देवो पकरेति ।
(श० ६।१४४)
चतुर्थ्यादीनामधोऽसुरकुमारनागकुमारयोर्गमनं नास्तीत्यनुमीयते । (वृ० प० २७६)

२४. छै प्रभु ! सोधर्म ईशाण नैं, नीचै घरादिक जेह ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, वलि गोयम पूछेह ॥

२४. अत्थि णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे गेहा इ वा ? गेहावणा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४५)

२५. महामेह बादल छै प्रभु! हंता कहै जिनराय ।
देव असुर दोनूं करै, नाग थकी न कराय ॥

२५. अत्थि णं भंते ! ओराला बलाहया ?
हंता अत्थि ।
देवो पकरेति, असुरो वि पकरेति, नो नाओ ।

### सोरठा

२६. चमर तणी पर जोय, असुर तिहां जावै अछै ।
नाग न जावै कोय, अशक्त छै ते कारणै ॥
२७. गाज शब्द पिण एम, देव असुर दोनूं करै ।
नाग करै नहिं तेम, सोधर्म नैं ईशान तल ॥

२६. सौधर्मेशानयोस्त्वधोऽसुरो गच्छति चमरवद्, न नागकुमारः अशक्तत्वात् । (वृ० प० २७६)
२७. एवं थणियसद्दे वि । (श० ६।१४६)

२८. *प्रभु ! बादर पृथ्वीकाय छै, बादर अग्नीकाय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, णण्णत्थ विग्रहगति पाय ॥

२८. अत्थि णं भंते ! बादरे पुढवीकाए ? बादरे अगणिकाए ?
णो इणट्ठे समट्ठे, नन्नत्थ विग्गहगतिसमावन्नएणं ।
(श० ६।१४७)

---

*लय : धीज करै सीता सती रे लाल



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

२९. 'कल्प विषे रत्नादि, तेह तणी पूछा नथी ।
प्रश्न कल्प तल वादि, तल पिण अंतर रहित नूं ।।
३०. आगल पिण इम ताहि, कल्प विषे अप आदि है ।
तेहनीं पूछा नांहि, तल पूछा सहु स्थानके ।।
३१. बादर पृथ्वी तेज, सुधर्मा नैं ईशाण तल ।
प्रगट निषेध कहेज, अस्वस्थानपणां थकी ।।
३२. वनस्पती अप वाय, तास निषेध कियो नथी ।
उदधि प्रतिष्ठित ताय, अप[1] वण[2] नां संभव थकी ।।
३३. बादर वाऊकाय, सर्व लोक आकाश नां ।
छिद्र विषे कहिवाय, तिण सूं ते पिण संभवै ।।
३४. मनुष्यक्षेत्र रै मांय, बादर अग्नि स्वभाव छै ।
तिण कारण कहिवाय, दोनूं कल्प तले नथी ।।
३५. बिहुं कल्प तल ताहि, बादर पृथ्वी नों तिहां ।
स्व स्थानक छै नांहि, तिण सूं निषेध तेहनों ।।
३६. तिण कारण पहिछान, बादर बिहूं निषेधिया ।
जाता बीजे स्थान, विग्रहगतिया पामियै' ।।
(ज० स०)

३७. *छै प्रभु ! चंद्रादिक तिहां, अर्थ समर्थ न थाय ।
छै प्रभु ! ग्रामादिक वली, जिन कहै ए पिण नांय ।।

३७. अत्थि णं भंते ! चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारा-रूवा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४८)
अत्थि णं भंते ! गामा इ वा ? जाव सण्णिवेसा इ वा ?
णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ६।१४९)

३८. छै प्रभु ! बिहुं कल्प नें तलै, चंद्रादिक नीं क्रांति ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, तिण में म जाणो भ्रांति ।।
३९. सनतकुमार माहेंद्र नें, इमहिज णवरं विशेख ।
देव एक वर्षादि करै, एवं ब्रह्म पिण देख ।।

३८. अत्थि णं भंते ! चंदाभा ति वा ? सूराभा तिवा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।
३९. एवं सणंकुमार-माहिंदेसु, नवरं—देवो एगो पकरेति ।
एवं बंभलोए वि ।

## सोरठा

४०. तृतीय तुर्य ब्रह्म सोय, घनवाय आधारे अछै ।
तसु तल अप किम होय ? वनस्पति वलि किम हुवै ?
४१. संभव तास जणाय, तमस्काय सद्भाव थी ।
अतिदेश थकी कहिवाय, वृत्ति विषे ए न्याय छै ।।

४०,४१. इहातिदेशतो बादराब्वनस्पतीनां सम्भवोऽनुमीयते स च तमस्कायसद्भावतोऽवसेय इति ।
(वृ० प० २७९)

४२. *ब्रह्म ऊपर जे कल्प छै, तेहनैं तल पिण एम ।
बारमां कल्प लगै करै, देव वर्षादिक तेम ।।
४३. बादर अप अग्नि वणस्सइ, पूछेवो त्रिहुं जाण ।
अण्णं तं चेव पाठ छै, अन्य तिमज पहिछाण ।।

४२, एवं बंभलोगस्स उवरिं सव्वेहिं देवो पकरेति ।
'सव्वेहिं' ति अच्युतं यावदित्यर्थः । (वृ० प० २७९)
४३. पुच्छियव्वो य बादरे आउकाए, बादरे अगणिकाए, बादरे वणस्सइकाए । अण्णं तं चेव ।
(श० ६।१५०)

---

*लय : धीज करै सीता सती रे लाल
१. अप्काय
२. वनस्पतिकाय ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

४४. अण्णं तं चेव वाय, अन्य तिमज ए वच थकी ।
अप अग्नि वणस्सइकाय, निषेध ए तीनूं तणो ॥

४५. छठो सातमो जोय, वलि सहसारज आठमों ।
अप वायू अवलोय, उभय प्रतिष्ठित ए त्रिहुं ॥

४६. ए त्रिहुं तल घनवाय, अंतर-रहित अछै तिको ।
तिण सूं तसु तल ताय, अप नैं वनस्पती नहीं ॥

४७. नवमां थी अवधार, अष्टादश सुरलोक जे ।
आकाश तणें आधार, तसु तल नहिं अप वणस्सइ ॥

४८. तथा ग्रैवेयक आदि, ईसिपब्भारा अंत लग ।
पूर्वे कह्या गृहादि, एहनें पिण कहिवा तिमज ॥

४९. इहां वाचना मांहि, न कह्या तो पिण ते सहु ।
निषेध करिवा ताहि, एह अर्थ छै वृत्ति में ॥

५०. हिव पृथ्वी अप आदि, जे जिहां भाखी ते प्रतै ।
कहिवा अर्थ सुसाधि, संग्रहणी गाथा हिवै ॥

५१. तमस्काय कहिवाय, प्रकरण पूर्व कह्या विषे ।
अनंतरोक्तज ताय, सौधर्मादिक पंचके ॥

५२. अग्नी पृथ्वीकाय, बादर नीं पूछा कियां ।
जिन कहै ए बिहुं नांय, णण्णत्थ विग्रहवंत हुवै ॥

५३. अग्निकाय पहिछाण, रत्नप्रभादिक नैं तले ।
पूछा प्रमुखज जाण, जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ॥

५४. जे बादर अपकाय, तेऊ वनस्पती तणी ।
पूछा कीधां ताय, उत्तर एम जणाय छै ॥

५५. ब्रह्म ऊपरै तेह, कला अछै तेहनैं तले ।
तीनूं ए न कहेह, इण गाथा नैं न्याय कर ॥

५६. तथा बादर अप्काय, तेऊ वनस्पती वली ।
कृष्णराजि रै मांय, ए तीनूं कहियै नहीं ।

४४. 'अन्नं तं चेव' त्ति वचनान्निषेधश्च ।
(वृ० प० २७९)

४८,४९. तथा ग्रैवेयकादीषत्प्राग्भारान्तेषु पूर्वोक्तं सर्वं गेहादिकमधिकृतवाचनायामनुक्तमपि निषेधतोऽध्येयमिति । (वृ० प० २७९)

५०. अथ पृथिव्यादयो ये यत्राध्येतव्यास्तां सूत्रसंग्रहगाथयाऽऽह— (वृ० प० २७९)

५१. तमुकाए कप्पपणए,
'तमुकाए' त्ति तमस्कायप्रकरणे प्रागुक्ते 'कप्पपणए' त्ति अनन्तरोक्तसौधर्मादिदेवलोकपञ्चके ।
(वृ० प० २७९)

५२. अगणी पुढवी य
अत्थि णं भंते ! बादरे पुढविकाए बादरे अगणिकाए ?
नो इणट्ठे समट्ठे, नण्णत्थविग्गहगतिसमावन्नएणं ।
(वृ० प० २७९)

५३. अगणि-पुढवीसु ।

५४-५६. आऊ तेऊ वणस्सई, कप्पुवरिमकण्हराईसु ॥
(संगहणी-गाहा ६।१५०)
अत्थि णं भंते ! बादरे आउकाए बायरे तेउक्काए बायरे वणस्सइकाए ?
णो इणट्ठे समट्ठे । इत्यादिनाऽभिलापेन, केषु ? इत्याह—'कप्पुवरिम' त्ति कल्पपञ्चकोपरितनकल्पसूत्रेषु, तथा 'कण्हराईसु' त्ति प्रागुक्ते कृष्णराजीसूत्र इति । (वृ० प० २७९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. ब्रह्म उपरला जाण, कल्प अछै तेहनैं तले।
अप तेऊ पहिछाण, वनस्पती वर्जी इहां॥
५८. लंतक प्रमुखज तीन, अप वायू आधार छै।
तो किण न्याय सुचीन, वर्जी अप नैं वणस्सई॥
५९. त्रिहुं कल्प तल वाय, अंतर-रहित अछै तिहां।
तसु तल अप इण न्याय, अप वणस्सई निषेध ह्वं॥
६०. नवम कल्प थी सोय, सहु आकाश प्रतिष्ठिता।
ते माटे अवलोय, ए त्रिहुं तणो निषेध है॥
६१. कह्या बादर अप आदि, आयु-बंध छतैज छै।
ते माटे हिव साधि, सूत्र आयु-बंध नो प्रवर॥

६२. *कतिविध प्रभु! आयु-बंध कह्यो? जिन भाखै आयु-बंध।
षट प्रकारे परूपियो, कहियै तेहनीं संध।

**यतनी**

६३. जाति नाम निहत्त सुसंच, जाति एकेंद्रियादिक पंच।
तेहिज नाम कहितां अवलोय, नाम कर्म नीं प्रकृति जोय॥

६४. तसु उत्तर प्रकृति विशेख, अथवा नाम कहितां वृत्ति लेख।
जे जीव तणां परिणाम, तिको जाति नाम छै ताम॥
६५. तेणे संघाते निधत्त निषेक, कर्म पुद्गल नों जे पेख।
समय-समय पहिछाण, अनुभवनार्थे रचना जाण॥
६६. एणे रचनाइं थाप्यो जे आयु, ते जाति नाम निहत्तायु।
ए प्रथम आयु-बंध कहियै, हिवै बीजा नो लेखो लहियै॥
६७. गति नाम निहत्त आयु धार, गति नारकादिक जे च्यार।
तेहिज नाम कर्म नीं देख, कही उत्तर प्रकृति विशेख॥
६८. तेणे संघाते निधत्त कहाइं, अनुभवन कर्म रचनाइं।
एणे प्रकारे थाप्यो जे आयु, ते गतिनाम निहत्तायु॥
६९. स्थिति नाम निहत्तायु जोय, स्थिति ते रहिवूं होय।
किणहि वंछित भव रै मांय, जीव कर्मकर्ता कहिवाय॥
७०. तथा आयु कर्म कर जेह, रहिवूं ते स्थिति कहेह।
तेहिज नाम परिणाम ते धर्म, तिको स्थिति नाम ए मर्म॥
७१. तिण करिकै विशिष्ट निधत्त, अनुभवन नीं रचना उपत्त।
जेह आयु कर्म दल कहायु, ते स्थितिनामनिहत्तायु॥
७२. अथवा स्थिति रूप जे जाण, नाम कहितां कर्म पहिछाण।
ते स्थिति नाम छै ताम, नाम शब्दे कर्म सहु ठाम।
७३. तेणे साथ निषेक, भोगविवा नी रचना संपेख।
इह रीत थाप्यो जे आयु, ते स्थितिनामनिहत्तायु॥

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

५७-६०. इह च ब्रह्मलोकोपरितनस्थानानामधो योऽप्वन-स्पतिनिषेधः स यान्यब्वायुप्रतिष्ठितानि तेषामध आनन्तर्येण वायोरेव भावादाकाशप्रतिष्ठितानामाकाशस्यैव भावादवगन्तव्यः अम्नेस्त्वस्वस्थानादिति।
(वृ० प० २७९)

६१. अनन्तरं बादराप्कायादयोऽभिहितास्ते चायुर्बन्धे सति भवन्तीत्यायुर्बन्धसूत्रम्— (वृ० प० २७९)

६२. कतिविहे णं भंते! आउयबंधे पण्णत्ते?
गोयमा! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—

६३. जातिनामनिहत्ताउए,
जातिः—एकेन्द्रियजात्यादिः पञ्चधा सैव नामेति—नामकर्मणः। (वृ० प० २८०)
६४-६६. उत्तरप्रकृतिविशेषो जीवपरिणामो वा। तेन सह निधत्तं—निषिक्तं यदायुस्तज्जातिनामनिधत्तायुः, निषेकश्च कर्मपुद्गलानां प्रतिसमयमनुभवनार्थं रचनेति। (वृ० प० २८०)

६७,६८. गतिनामनिहत्ताउए,
गतिः—नरकादिका चतुर्धा शेषं तथैव।
(वृ० प० २८०)

६९,७०. ठितिनामनिहत्ताउए,
स्थितिरिति यत्स्थातव्यं क्वचिद् विवक्षितभवे जीवेनायुः कर्मणा वा सैव नाम—परिणामो धर्मः स्थितिनाम। (वृ० प० २८०)
७१. तेन विशिष्टं निधत्तं यदायुर्दलिकरूपं तत् स्थितिनामनिधत्तायुः। (वृ० प० २८०)
७२,७३. नामशब्दः सर्वत्र कर्मार्थो घटत इति स्थितिरूपं नाम—नामकर्म्म स्थितिनाम तेन सह निधत्तं यदायुस्तत्स्थितिनामनिधत्तायुरिति। (वृ० प० २८०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. अवगाहणा नाम ते ताय, शरीर औदारिकादि कहाय।
तेहनुं नाम औदारिक आद, शरीर नाम कर्म ते लाध।।
७५. तेह अवगाहणा नाम जाण, अथवा अवगाहणा रूप पिछाण।
नाम कहितां परिणाम विचार, तेह अवगाहणा नाम धार।।

७६. तेणे संघाते निधत्त जे आयु, ते अवगाहणानामनिधत्तायु।
ए चउथो आयु-बंध जोय, हिवै पांचमो कहियै सोय।।
७७. प्रदेशनामनिहत्तायु, प्रदेश आयु द्रव्य कहायु।
नाम तथाविध परिणत्ति, तेह प्रदेश नाम उप्पत्ति।।

७८. तथा प्रदेशरूपज ताय, नाम कहितां कर्म कहिवाय।
तेणे साथ निधत्त जे आयु, ते प्रदेशनामनिधत्तायु।।

७९. अनुभागनामनिहत्तायु, अनुभाग विपाक जे आयु।
तेहिज नाम परिणाम पिछाण, ते अनुभाग नाम जाण।।

८०. तथा अनुभाग रूप जाण, नाम कहितां कर्म पहिछाण।
तेणे साथ निधत्त जे आयु, ते अनुभागनामनिहत्तायु।।

**सोरठा**

८१. इहां कोइ प्रश्न आख्यात, जात्यादि नाम कर्म करि।
कह्या आयु संघात, किण अर्थे ए वारता?
८२. तसु उत्तर कहिवाय, प्रधानपणों आयू तणो।
देखाड़िवा नें ताय, आयु सहित जात्यादिकः।।
८३. नरकादिक नों जाण, आयु उदय पामे छते।
जात्यादिक पहिछाण, नाम कर्म नों उदय छै।।
८४. नरकादि आयू लाधि, प्रथम समय जे वेदतो।
पंचेंद्रिय जात्यादि, तसु सहचारी उदय छै।।

८५. *इमहिज नारक नें कह्यो, छवविध आयू बंध।
यावत वैमानिक लगै, ए दंडक सर्व संबंध।।

**दूहा**

८६. कर्म विशेष कह्यो हिवै, कर्म-विशेषित जीव।
नरकादिक जे पद तणां, दंडक बार कहीव।।

**सोरठा**

८७. हे प्रभु! स्यूं बहु जीव, जातिनाम निधत्ता अछै?
एहनों अर्थ अतीव, चित्त लगाई सांभलो।।

७४,७५. **ओगाहणानामनिहत्ताउए,**
अवगाहते यस्यां जीवः साऽवगाहना—शरीरं औदारिकादि तस्या नाम—औदारिकादिशरीरनामकर्मेत्यवगाहनानाम अवगाहनारूपो वा नाम—परिणामोऽवगाहनानाम। (वृ० प० २८०)
७६. तेन सह यन्निधत्तमायुस्तदवगाहनानामनिधत्तायुः। (वृ० प० २८०)

७७. पएसनामनिहत्ताउए,
प्रदेशानां—आयुः कर्म्मद्रव्याणां नाम—तथाविधा परिणतिः प्रदेशनाम। (वृ० प० २८०)
७८. प्रदेशरूपं वा नाम—कर्मविशेष इत्यर्थः प्रदेशनाम तेन सह निधत्तमायुस्तत्प्रदेशनामनिधत्तायुरिति। (वृ० प० २८०)

७९. अणुभागनामनिहत्ताउए।
अनुभाग—आयुर्द्रव्याणामेव विपाकस्तल्लक्षण एव नाम—परिणामोऽनुभागनाम। (वृ० प० २८०)
८०. अनुभागरूपं वा नामकर्म अनुभागनाम तेन सह निधत्तं यदायुस्तदनुभागनामनिधत्तायुरिति। (वृ० प० २८०)

८१. अथ किमर्थं जात्यादिनामकर्म्मणाऽऽयुर्विशेष्यते? (वृ० प० २८०)
८२. उच्यते, आयुष्कस्य प्राधान्योपदर्शनार्थम्। (वृ० प० २८०)
८३. यस्मान्नारकाद्यायुरुदये सति जात्यादिनामकर्म्मणामुदयो भवति। (वृ० प० २८०)
८४. नारकायुः प्रथमसमयसंवेदन एव नारका उच्यन्ते तत् सहचारिणां च पञ्चेन्द्रियजात्यादिनामकर्मणामप्युदय इति। (वृ० प० २८०)
८५. दंडओ जाव वेमाणियाणं। (श० ६।१५१)

८६. अथ कर्म्मविशेषाधिकारात्तद्विशेषितानां जीवादिपदानां द्वादश दण्डकानाह— (वृ० प० २८०)

८७. जीवा णं भंते! किं जातिनामनिहत्ता?

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८८. जाति एकेंद्री आदि, नाम अर्थ कहियै करम।
निधत्त निषेक लाधि, अथवा बंध विशिष्ट कृत।।
८९. गतिनामनिधत्ता जाण, जाव अनुभाग नाम निधत्ता ?
जिन कहै छहुं पिछाण, दंडक जाव वेमाणिया।।

८९. गतिनामनिहत्ता ? जाव (सं० पा०) अणुभागनाम निहत्ता ?
गोयमा ! जातिनामनिहत्ता वि जाव अणुभागनाम-निहत्ता वि। दंडओ जाव वेमाणियाणं।
(श० ६।१५२)

९०. *जातिनामनिहत्ताउया, हे प्रभु! छै बहु जीव।
जाव अनुभागनामनिहत्ताउया ? हिव जिन उत्तर कहीव।।
९१. छै जातिनामनिधत्ताउया, जाव छठो पिण जोय।
छै अनुभागनामनिहत्ताउया, दंडक चोवीसे होय।।

९०. जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिहत्ताउया ? जाव अणुभागनामनिहत्ताउया ?
९१. गोयमा ! जातिनामनिहत्ताउया वि जाव अणुभाग-नामनिहत्ताउया वि।
दंडओ जाव वेमाणियाणं। (श० ६।१५३)

## सोरठा

९२. जाति नाम संघात, निधत्त आयू जिण कियो।
तेह भणी आख्यात, जातिनामनिहत्ताउया।।
९३. इम गति स्थिति अन्य आदि, इहविध कहिवा बोल षट।
वलि कहिवा नरकादि, षट षट बोल सहू तणां।।
९४. इण प्रकार करि होय, द्वादश दंडक एहनां।
आख्या ए धुर दोय, संख्या पूरण वलि कहै।।

९२. जातिनाम्ना सह निधत्तमायुर्यैस्ते जातिनामनिधत्ता-युषः, (वृ० प० २८१)
९३. एवमन्यान्यपि पदानि, अयमन्यो दण्डकः।
(वृ० प० २८१)
९४. एवं एए दुवालसदंडगा भाणियव्वा—
अमुना प्रकारेण द्वादश दण्डका भवन्ति, तत्र द्वावाद्यौ दर्शितावपि संख्यापूरणार्थं पुनर्दर्शयति।
(वृ० प० २८१)

९५. दंडक प्रथम पिछाण, जातिनामनिहत्ता कह्यो।
दूजो इहविध जाण, जातिनामनिहत्ताउया ?
९६. हे प्रभु! स्यूं बहु जीव, जातिनामनिउत्ता अछै ?
दंडक तृतीय कहीव, अर्थ सुणो हिव एहनों।।
९७. जातिनाम कर्म जेण, नियुक्त निकाचित बांधियो।
तथा वेदवा तेण, पहुंचाव्यो इम अन्य पिण।।

९५. जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिहत्ता ? जातिनाम निहत्ताउया ?
९६. जीवा णं भंते ! किं जातिनामनिउत्ता ?
९७. तत्र जातिनाम नियुक्तं—नितरां युक्तं—संबद्धं निकाचितं वेदने वा नियुक्तं यैस्ते जातिनामनियुक्ताः।
(वृ० प० २८१)

९८. हे प्रभु! स्यूं बहु जीव, जातिनामनिउत्ताउया ?
दंडक तुर्य कहीव, अर्थ सुणो हिव एहनों।।
९९. जाति नाम कर्म साथ, निकाचित आयू कियो।
अथवा जेह विख्यात, वेदण मांड्यो अन्य इम।।
१००. पंचम दंडक वत्त, जाति गोत्र जे निधत्ता।
इम गति गोत्र निधत्त, इत्यादिक तसु अर्थ हिव।।
१०१. जाति एकेंद्री आदि, तसु योग्य नीच गोत्रादि जे।
ते निधत्त संवादि, जाति गोत्र जे निधत्ता।।

९८. जातिनामनिउत्ताउया ?
९९. तत्र जातिनाम्ना सह नियुक्तं—निकाचितं वेदयितु-मारब्धं वाऽऽयुर्यैस्ते तथा। (वृ० प० २८१)
१००. जीवा णं भंते ! किं जातिगोयनिहत्ता ?
१०१. तत्र जातेः एकेन्द्रियादिकाया यदुचितं गोत्रं—नीचैर्गोत्रादि तज्जातिगोत्रं तन्निधत्तं यैस्ते जातिगोत्र-निधत्ताः (वृ० प० २८१)

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०२. छठो दंडक एह, जातिगोतनिधत्ताउया ।
इत्यादिक षट जेह, तास अर्थ निसुणो हिवै ।।

१०२. जातिगोयनिहत्ताउया ?

१०३. जाति एकेंद्री आद, तसु योग्य गोत्र करिनै सहित ।
निधत्त आयु बाध, जिण कीधो इम अन्य पिण ।।

१०३. तत्र जातिगोत्रेण सह निधत्तमायुर्यैस्ते जातिगोत्र-निधत्तायुषः । (वृ० प० २८१)

१०४. सप्तम दंडक जान, जाति गोत्र जे निउत्ता ।
गतिगोत्रनिउत्ता मान, इत्यादिक तसु अर्थ हिव ।।

१०४. जीवा णं भंते ! किं जातिगोयनिउत्ता ?

१०५. जाति एकेंद्री आदि, तसु योग्य निकाच्यो गोत्र जिण ।
ते जातिगोत्रनिउत्तादि, निउत्ता तेह निकाचित ।।

१०५. तत्र जातिगोत्रं नियुक्तं यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)

१०६. अष्टम दंडक एह, जातिगोत्रनिउत्ताउया ।
इत्यादिक षट जेह, अर्थ तास निसुणो हिवै ।।

१०६. जातिगोयनिउत्ताउया ?

१०७. जाति एकेंद्री आद, गोत्र संघाते जीव जिण ।
आयु निकाच्यो बाध, इम बीजा पिण जाणवा ।।

१०७. तत्र जातिगोत्रेण सह नियुक्तमायुर्यैस्ते तथा एवम-न्यान्यपि । (वृ० प० ८२१)

१०८. नवमों दंडक भाल, जातिनामगोत्रनिधत्ता ।
इम गति प्रमुख निहाल, अर्थ तास निसुणो हिवै ।।

१०८. जीवा णं भंते ! किं जातिनामगोयनिहत्ता ?

१०९. जाति जोग्य जे नाम, अनैं गोत्र करि सहित तिण ।
जे निधत्त कियो ताम, ते जातिनामगोत्रनिधत्ता ।।

१०९. तत्र जातिनाम गोत्रं च निधत्तं यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)

११०. दशमों दंडक देख, जातिनामगोत्रनिधत्ताउया ।
इत्यादिक षट पेख, हिवै अर्थ एहनों कहूं ।।

११०. जातिनामगोयनिहत्ताउया ।

१११. जाति योग्य जे नाम, अनै गोत्र करि सहित तिण ।
जे निधत्त आयु ताम, ते जातिनामगोत्रनिहत्ताउया ।।

१११. तत्र जातिनाम्ना गोत्रेण च सह निधत्तमायुर्यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)

११२. दंडक ग्यारम एह, जातिनामगोत्रनिउत्ता ।
गति प्रमुख इम लेह, तास अर्थ कहियै हिवै ।।

११२. जीवा णं भंते ! किं जातिनामगोयनिउत्ता ?

११३. जाति योग्य जे नाम, अनैं गोत्र करि सहित तिण ।
कियो निकाचित ताम, ते जातिनामगोत्रनिउत्ता ।।

११३. तत्र जातिनाम गोत्रं च नियुक्तं यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)

११४. जो द्वादशम कहीव, तेह तणो विस्तार हिव ।
हे प्रभु ! स्यूं बहु जीव, जातिनामगोत्रनिउत्ताउया ?

११४. जातिनामगोयनिउत्ताउया ?

११५. जाव छठो अनुभागनामगोत्रनिउत्ताउया ?
उत्तर प्रश्न जिम माग, दंडक जाव वेमाणिया ।।

११५ जाव अणुभागनामगोयनिउत्ताउया ?
गोयमा ! जातिनामगोयनिउत्ताउया वि जाव अणु-भागनामगोयनिउत्ताउया वि ।
दंडओ जाव वेमाणियाणं । (श० ६।१५४)

११६. जाति योग्य जे नाम, अनै गोत्र करि सहित तिण ।
आयु निकाच्यो ताम, ते जातिनामगोत्रनिउत्ताउया ।।

११६. तत्र जातिनाम्ना गोत्रेण च सह नियुक्तमायुर्यैस्ते तथा । (वृ० प० २८१)

११७. दंडक बारमों जेह, धुर पद नों ए अर्थ छै ।
इम गति प्रमुख सुलेह, कहिवा सर्व विचार नें ।।

११८. ए जात्यादिक जाण, नाम गोत्र सह आयु फुन ।
भव उपग्रहे पिछाण, प्रधानपणुं कहिवा भणी ।।

११८. इह च जात्यादिनामगोत्रयोरायुषश्च भवोपग्राहे प्राधान्यख्यापनार्थं यथायोगं जीवा विशेषिताः । (वृ० प० २८१)

११९. अन्य वाचना मांय, आदिईज जे आखिया ।
दंडक आठ दिखाय, वृत्तिकार इहविध कह्यो ।।

११९. वाचनान्तरे चाद्या एवाष्टौ दण्डका दृश्यन्त इति । (वृ० प० २८१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२०. पूर्वे ए पहिछाण, जीव स्व धर्म थकी कह्या।
लवणोदधि हिव जाण, कहियैं ते स्व धर्म थी॥

१२१. *हे प्रभु! लवणसमुद्र ते, स्यूं उस्सितोदए होय?
ऊर्ध्व उदक जल-वृद्धि छै, कै सम जल छै सोय?

१२२. खुभिय जल वेल वस थकी, मोटा कलस पाताल।
तेह विषे वायू थकी, जल क्षोभ पामै असराल?

१२३. अखुभिय जल क्षोभ नां लहै? ए चिहुं प्रश्न प्रसिद्ध।
जिन भाखै लवणोदधे, ऊर्ध्व उदक नीं वृद्ध॥

१२४. पत्थडोदए सम जल नहीं, खुभिय जल ए होय।
अक्षोभित जल पिण नहीं, उत्तर ए अवलोय॥

१२५. प्रारंभी ए पाठ थी, जिम जीवाभिगम मझार।
यावत तिण अर्थे करी, द्वीप समुद्र अढी द्वीप बार॥

**सोरठा**

१२६. जाव शब्द में एह, जिम लवणोदधि प्रश्न चिहुं।
तिम चिहुं प्रश्न पूछेह, अढी द्वीप बाहिर उदधि॥

१२७. जिन कहै उदधि सुजोय, अढी द्वीप रै बारलै।
उस्सितोदगा न होय, पत्थडोदगाज समजला॥

१२८. क्षोभित-जला म जाण, छै ते अक्षोभित-जला।
पूर्णा पूर्ण-प्रमाण, जल भर या ऊणां नहीं॥

१२९. वोलट्टमाणा जान, अति भरिवै जल नीकलै।
वोसट्टमाणा मान, प्रचुरपणैं वर्धमान जल॥

१३०. समो भर्‌यो घट जेह, तेहनीं, परि तिष्ठै अछै।
वलि गोतम पूछेह, चित्त लगाई सांभलो॥

१३१. लवणसमुद्रे भंत! बहु महाबादल स्नेह हुवै।
वलि वर्षा वरसंत? जिन भाखै हंता अत्थि॥

१३२. जिम लवणोदधि मेह, तिम बाहिरलै उदधि ह्वै।
अर्थ समर्थ नहिं एह? गोतम कहै किण अर्थ प्रभु!?

१३३. समुद्र जेह पिछाण, अढी द्वीप रै बारला।
पूर्णा पूर्ण-प्रमाण, यावत घट जिम जलभृता॥

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

१२०. पूर्वं जीवाः स्वधर्मतः प्ररूपिताः, अथ लवणसमुद्रं स्वधर्मत एव प्ररूपयन्नाह— (वृ० प० २८१)

१२१. लवणे णं भंते! समुद्दे किं उस्सिओदए? पत्थडोदए?
उच्छ्रितोदकः ऊर्द्ध्ववृद्धिगतजलः,……'पत्थडोदए' त्ति प्रस्तृतोदक समजल इत्यर्थः। (वृ० प० २८१,२८२)

१२२. खुभियजले?
वेलावशाद्, वेला च महापातालकलशगतवायुक्षोभादिति। (वृ० प० २८२)

१२३. अखुभियजले?
गोयमा! लवणे णं समुद्दे उस्सिओदए।

१२४. नो पत्थडोदए, खुभियजले, नो अखुभियजले। (श० ६।१५५)

१२५. इतः सूत्रादारब्धं तद्यथा जीवाभिगमे (प० ३।७८३, ७८४) तथाऽध्येतव्यम्। (वृ० प० २८२)

१२६. जहा णं भंते! लवणसमुद्दे उस्सिओदए, नो पत्थडोदए, खुभियजले, नो अखुभियजले, तहा णं बाहिरगा समुद्दा किं उस्सिओदगा? पत्थडोदगा? खुभियजला? अखुभियजला?

१२७. गोयमा! बाहिरगा समुद्दा नो उस्सिओदगा, पत्थडोदगा;

१२८. नो खुभियजला, अखुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा,

१२९. वोलट्टमाणा, वोसट्टमाणा।

१३०. समभरघडत्ताए चिट्ठंति। (श० ६।१५६)

१३१. अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहया संसेयंति? संमुच्छंति? वासं वासंति?
हंता अत्थि। (श० ६।१५७)

१३२,१३३. जहा णं भंते! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहया……तहा णं बाहिरगेसु वि समुद्देसु वासं वासंति? णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६।१५८)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा जाव समभरघडत्ताए चिट्ठंति?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३४. गोयम! बारले (समुद्र) सोय, उदक-जोणिया जीव बहु।
पुद्गल पिण अवलोय, उदकपणैं उपजै अछै।।

१३४. गोयमा ! बाहिरगेसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उवचयंति।

१३५. तिण अर्थे इम जाण, द्वीप समुद्र जे बारला।
पूर्णा पूर्ण-प्रमाण, वोलट्टमाणा पिण कह्या।।

१३५. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—बाहिरया णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा।

१३६ वोसट्टमाणा पेख, प्रचुरपणैं वर्धमान जल।
सम जल भृत घट देख, तेहनी परि तिष्ठै तिके।।

१३६. वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठति,

१३७ *संठाण थी इकविध कह्या, रथ चक्रवाल आकार।
विधान तेह स्वरूप नों, करिवूं जसु अवधार'।।

१३७. संठाणओ एगविहिविहाणा,
एकेन 'विधिना' प्रकारेण चक्रवाललक्षणेन विधानं—स्वरूपस्य करणं येषां ते एकविधिविधानाः।
(वृ० प० २८२)

१३८. जावत तिरछा लोक में, असंख द्वीपोदधि हुंत।
स्वयंभूरमण छेहड़े कह्यो, अहो श्रमण आउखावंत!

१३८. जाव अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीव-समुद्दा सयंभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो!
(श० ६।१५६)

१३९. हे प्रभु! द्वीप समुद्र नां, किता परूप्या नाम?
जिन कहै शुभ नाम लोक में, स्वस्तिकादिक अभिराम।।

१३९. दीवसमुद्दा णं भंते ! केवतिया नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ? गोयमा ! जावतिया लोए सुभा नामा, स्वस्तिकश्रीवत्सादीनि (वृ० प० २८२)

१४०. रूप अछै शुभ जेतला, शुक्ल पीतादिक जेह।
अथवा जे रूपवंत छै, देवादिक वर्णेह।।

१४०. सुभा रूवा,
शुक्लपीतादीनि देवादीनि वा। (वृ० प० २८२)

१४१. गंध अछै सुभ जेतला, सुगंध नां बहु भेद।
अथवा कपूरादिक कह्या, ए गंधवंत संवेद।।

१४१. सुभा गंधा,
सुरभिगन्धभेदाः गन्धवन्तो वा कर्पूरादयः।
(वृ० प० २८२)

१४२. रस अछै शुभ जेतला, मधुरादिक रस स्वाद।
अथवा रसवंत जाणवा, साकर प्रमुख अह्लाद।।

१४२. सुभा रसा,
मधुरादयः रसवन्तो वा शर्करादयः।
(वृ० प० २८२)

१४३. फर्श अछै शुभ जेतला, मृदु प्रमुख सुविशाल।
अथवा फर्शवंत जाणवा, माखण प्रमुख निहाल।।

१४३. सुभा फासा,
मृदुप्रभृतयः स्पर्शवन्तो वा नवनीतादयः।
(वृ० प० २८२)

१४४. नाम इता द्वीप समुद्र नां, जाणवा इम शुभ नाम।
उद्धार नैं परिणाम ते, सहु जीव ऊपनां ताम।।

१४४. एवतिया णं दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता। एवं नेयव्वा सुभा नामा उद्धारो, परिणामो, सव्वजीवाणं (उप्पाओ) (श० ६।१६०)

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

१. प्रस्तुत ढाल की १३७ वीं गाथा जिस पाठ के आधार पर है, अंगसुत्ताणि भाग २ श० ६।१५९ में उसके आगे यह पाठ है—
'वित्थारओ अणेगविहिविहाणा दुगुणा दुगुणप्पमाणा'
संभव है जयाचार्य को उपलब्ध आदर्श में यह पाठ नहीं था, इसलिए इस पाठ की जोड़ नहीं है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

१४५. उद्धार अर्थ कहेह, द्वीप समुद्र तणां प्रभु ?
उद्धार समय करेह, किता कह्या ? तब जिन कहै ।।
१४६. जिता अढाई जान, उद्धार सागरोपम तणां ।
उद्धार समया मान, द्वीप समुद्रज एतला ।।

१४७. समय-समय इक एक, खंड काढै पल्य मांहि थी ।
खाली थाय विशेख, उद्धार पल्य कही तसु ।।
१४८. पल्य दस कोड़ाकोड़, इक उद्धार सागर हुवै ।
तेह अढाई जोड़, उद्धार सागर नां समय ।।
१४९. ते समय प्रमाण सुजोड़, द्वीप समुद्रज एतला ।
पल्य पचीस कोड़ाकोड़, समय-समय खंड काढियै ।।
१५०. परिणाम ते इम ताम, स्यूं प्रभु! द्वीप समुद्र ते ।
पृथ्वी अप परिणाम, जीव पोग्गल परिणाम छै?

१५१. तब भाखै जिन स्वाम, पृथ्वी अप परिणाम है ।
जीव तणुं परिणाम, पुद्गल नो परिणाम पिण ।।

१५२. सव्व जीवाणं एम, द्वीप समुद्र विषे प्रभु !
सहु प्राणादि तेम, उपना काय छहुंपणें ?

१५३. हंता कहै भगवंत, असकृत—वार अनेक जे ।
अथवा वार अनंत, सगला जीव समूपना ।।
१५४. जीवाभिगम जोय, वर्णन द्वीप समुद्र नों ।
जिहां संपूर्ण होय, तिहां थकी ए आखियो ।।
१५५. *सेवं भंते! अंक अड़सठ तणो, एकसौ आठमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल ।।
षष्ठशते अष्टमोद्देशकार्थः ।।६।८।।

१४५. दीवसमुद्दा णं भंते ! केवइया उद्धारसमएणं पन्नत्ता ? (वृ० प० २८२)
१४६. गोयमा ! जावइया अड्ढाइज्जाणं उद्धारसागरोवमाणं उद्धारसमया एवइया दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पन्नत्ता । (वृ० प० २८२)
१४७. येनैकैकेन समयेन एकैकं वालाग्रमुद्धियतेऽसावुद्धारसमयः । (वृ० प० २८२)

१५०. दीवसमुद्दाणं भंते ! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पोग्गलपरिणामा ? (वृ० प० २८२)

१५१. गोयमा ! पुढविपरिणामावि आउपरिणामावि जीवपरिणामावि पोग्गलपरिणामावीत्यादि । (वृ० प० २८२)

१५२. दीवसमुद्देसु णं भंते ! सव्वेपाणा४ पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववन्नपुव्वा ? (वृ० प० २८२)

१५३. हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो त्ति । (वृ० प० २८२)
१५४. दीवसमुद्दा णं भंते ! किं पुढविपरिणामा........ । (जीवा० प० ३।९७४, ९७५)
१५५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (६।१९१)

## ढाल : १०९

### दूहा

१. जीव पृथव्यादिकपणें, पूर्वे काल सुविशेष ।
द्वीपादिके समुप्पना, आख्यो अष्टमुदेश ।।
२. तेह ऊपनां नै प्रथम, कर्म तणो बंध होय ।
नवम उदेशे आदि ए, कर्म-बंध अवलोय ।।

१. द्वीपादिषु जीवाः पृथिव्यादित्वेनोत्पन्नपूर्वा इत्यष्टमोद्देशके उक्तं, (वृ० प० २८२)
२. नवमे तूत्पादस्य कर्मबन्धपूर्वकत्वादसावेव प्ररूप्यत इत्येवं सम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्— (वृ० प० २८२)

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. ज्ञानावरणी हे प्रभु! कर्म बांधतो जीव।
कर्म-प्रकृति बांधै किती? उत्तर वीर कहीव।।

४. सात कर्म बांधै तथा, अठविध बंध पिछाण।
अथवा बांधै कर्म षट, ए दशमें गुणठाण।।

५. पन्नवणा पद चोवीस में, बंध उद्देशे न्हाल।
इह स्थानक सहु जाणवा, वर जिन वयण विशाल।।

३. जीवे णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं बंधमाणे कतिकम्मप्पगडीओ बंधति ?

४. गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा।
'छव्विहबंधए' त्ति सूक्ष्मसम्परायावस्थायां मोहायुषोरबन्धकत्वात्। (वृ० प० २८२, २८३)

५. बंधुद्देसो पण्णवणाए (पद २४।२-८) नेयव्वो।
(श० ६। १६२)

*जय-जय ज्ञान जिनेंद्र नों।। (ध्रुपदं)

६. सुर प्रभु! महाऋद्धि नो धणी
यावत महा अनुभाग! जिणंद! मोरा हो।
बाहिरला पुद्गल भणी,
अणलीधे ए भाग। जिणंद! मोरा हो।।

७. एक वर्ण कालादिक कह्यो, इक रूप ते आकार।
विकुर्विवा समर्थ अछै? अर्थ समर्थ न लिगार।।

८. सुर प्रभु! पुद्गल बारला, लेई नैं समर्थ होय?
जिन भाखै हंता प्रभू, समर्थ ते अवलोय।।

९. ते प्रभु! स्यूं मनुष्य क्षेत्र नां, पुद्गल ले विकुर्वित।
कै सुर स्थान तणां लिये, कै अन्य स्थान नां लित?

१०. जिन भाखै मनुष्य क्षेत्र नां, पुद्गल ले विकुर्वै नांय।
विकुर्वै स्व स्थान नां ग्रही, अन्य स्थानक नां न ग्रहाय।।

६. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता

७. पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। (श० ६। १६३)
'एगवन्नं' ति कालाद्येकवर्णम्, 'एकरूपम्' एकविधाकारं स्वशरीरादि, (वृ० प० २८३)

८. देवे णं भंते ! बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ? हंता पभू।
(श० ६। १६४)

९. से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति? तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति? अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति ?

१०. गोयमा ? नो इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति, तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति, नो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वति।

**सोरठा**

११. बहुलपणैं जे देव, वर्त्तै छै सुर स्थानके।
तिण सूं एम कहेव, पुद्गल ग्रहै सुर स्थान नां।।

१२. उत्तरवैक्रियरूप, बहुलपणैं ते स्थान करि।
अन्यत्र जाय तद्रूप, ते माटे इहविध कह्यु।।

१३. *इम एणे आलावे करी, जाव एक वर्ण एक रूप।
इक वर्ण रूप अनेक नैं, करै विकुर्वण चूंप।।

१४. अनेक वर्ण रूप इक वलि, अनेक वर्ण नैं रूप अनेक।
बे-बे आलावा च्यारूं तणां, ए कही चउभंगी विशेख।।

११. देवः किल प्रायो देवस्थान एव वर्त्तत इति तत्रगतान्– देवलोकादिगतान्, (वृ० प० २८३)

१२. यतः कृतोत्तरवैक्रियरूप एव प्रायोऽन्यत्र गच्छतीति नो इहगतान् पुद्गलान् पर्यादाय इत्याद्युक्तमिति।
(वृ० प० २८३)

१३. एवं एएणं गमेणं जाव एगवण्णं एगरूवं, एगवण्णं अणेगरूवं,

१४. अणेगवण्णं एगरूवं, अणेगवण्णं अणेगरूवं—चउभंगो।
(श० ६। १६५)

* लय : राधा प्यारी हे, लै नी भखोलो ठंडा नीर नो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. *सुर प्रभु! महाऋद्धि नों धणी, यावत महानुभाग।
बाहिरला पुद्गल भणी, अणलीधे ए भाग।।

१५. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता।

१६. पुद्गल जे काला प्रतै, नीला पुद्गलपणें पेख।
परिणामिवा समर्थ अछै, तथा नीला कृष्णपणें देख?

१६. पभू कालगं पोग्गलं नीलगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ? नीलगं पोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

१७. जिन भाखै सुण गोयमा! एह अर्थ समर्थ न थाय।
बाहिरला पुद्गल ग्रही, सुर समर्थ कहिवाय।।

१७. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे। परियाइत्ता पभू।
(श० ६।१६६)

१८. ते प्रभु! स्यूं नरलोक नां, पुद्गल ग्रहि नैं ताय।
तं चेव णवरं विशेष ए, परिणामिवा कहिवाय।।

१८. से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले (सं० पा) तं चेव नवरं परिणामेति त्ति भाणियव्वं।

**सोरठा**

१९. विकुर्वणा तिहां जाण, परिणामिवा समर्थ इहां।
इतलो विशेष माण, शेष पूर्ववत जाणवा।।

२०. *इम काला पुद्गल प्रतै, लालपणें परिणमाय।
एवं कृष्ण वर्णे करी, जाव शुक्ल प्रति आय।।

वा० जिम पूर्वे कह्यो कालो नीलैपणें परिणमावै अनें नीलो कालैपणें परिणमावै ए एक सूत्र१। तिम कालो लालपणें तथा लाल कालापणें२। कालो पीलापणें पीलो कालापणें३। कृष्ण शुक्लपणें तथा शुक्ल कृष्णपणें४।

२०. एवं कालगपोग्गलं लोहियपोग्गलत्ताए। एवं कालएणं जाव सुक्किलं।

२१. *इम नीले वर्णे करी, जाव शुक्ल प्रति आण।।
इम लोहित वर्णे करी, जाव शुक्ल प्रति आण।।

वा० इम नीलो लालपणें तथा लाल नीलापणें परिणमावै५। नीलो पीलापणें तथा पीलो नीलापणें६। नील शुक्लपणें तथा शुक्ल नीलपणें७। इम लाल पीलापणें तथा पीलो लालपणें८। लाल शुक्लपणें तथा शुक्ल लालपणें९।

इहां जाव शब्द कह्यो ते बीच भांगो तो नथी पिण पोग्गलं ए तीन अक्षर जाव शब्द में संभवै एतलै पीलां पुद्गल शुक्लपणें तथा शुक्ल पीलापणें परिणमावै। इम बे-बे नों एक-एक सूत्र कहिवै वर्ण नां १० सूत्र थया, इम आगल पिण जाणवा।

२१. एवं नीलएणं जाव सुक्किलं। एवं लोहिएणं जाव सुक्किलं।

वा०—कालनीललोहितहारिद्रशुक्ललक्षणानां पंचानां वर्णानां दश द्विकसंयोगसूत्राण्यध्येयानि।
(वृ० प० २८३)

२२ *इम पीलै वर्णे करी, जाव शुक्ल अवभास।
इम ए परपाटी करी, गंध अनें रस फास।।

वा० दुगंध सुगंधपणें परिणमावै तथा सुगंध दुगंधपणें परिणमावै१। तिक्त कटुकपणे परिणमावै तथा कटुक तिक्तपणें परिणमावै१। तिक्त कसायलापणें तथा कसायलो तिक्तपणें२। तिक्त खाटापणें तथा खाटो तिक्तपणें३। तिक्त मीठापणें तथा मीठो तिक्तपणें४। कटुक कसायलापणें तथा कसायलो कटुकपणें५। कटुक खाटापणें तथा खाटो कटुकपणें६। कटुक मीठापणें तथा मीठो कटुकपणें७। कसायलो खाटापणें तथा खाटो कसायलापणें८। कसायलो मीठापणें तथा मीठो कसायलापणें९। खाटो मीठापणें तथा मीठो खाटापणें परिणमावै१०।।

२२. एवं हालिद्दएणं जाव सुक्किलं। एवं एयाए परिवाडीए गंध-रस-फासा।

इह सुरभिदुरभिलक्षणगन्धद्वयस्यैकमेव, तिक्तकटुकषायाम्लमधुररसलक्षणानां पञ्चानां रसानां दश द्विकसंयोगसूत्राण्यध्येयानि। (वृ० प० २८३)

* **लय : राधा प्यारी हे, लै नी भखोलो ठंडा नीर नो**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. *कक्खड़ फर्श पुद्गल प्रतै, मृदुपणै परिणमाय।
मृदु फर्श पुद्गल प्रतै, कक्खड़पणें कहिवाय।।
२४. एवं दो कहिवा अछै, गुरु लघु नां बे सोय।
शीत उष्ण नां दोय छै, स्निग्ध लुक्ख नां दोय।।

२३. कक्खडफासपोग्गलं मउय-फासपोग्गलत्ताए,

२४. एवं दो दो गरुयलहुय-सीयउसिण-णिद्धलुक्ख,

**यतनी**

२५. कक्खड़ फर्श मृदुपणें भाल, मृदु खरधरापणें निहाल।
गुरु लघुपणें परिणमावै, लघु गुरुपणें इम भावै।।
२६. शीत उष्णपणें इम कहियै, उष्ण शीतपणें इम लहियै।
निद्ध लुक्खपणें परिणामै, लूखो निद्धपणें इम पामै।।
२७. *वर्ण गंध रस नैं विषे, फर्श विषे वलि जाण।
सगला स्थानक नैं विषे, कहि परिणामेइ माण।।
२८. बे-बे आलावा सर्व नां, पुद्गल विण लियां ताय।
परिणामिवा समर्थ नहीं, पुद्गल ले परिणमाय[1]।।

२७. वण्णाई सव्वत्थ परिणामेइ।

२८. आलावगा दो दो पोग्गले अपरियाइत्ता, परिया-
इत्ता। (श० ६।१६७)

**यतनी**

२९. पुद्गल लियां बिना सहु एह, नहीं परिणमावै छै तेह।
बारला पुद्गल नैं लेई, परिणमावै एम कहेई।।

**दूहा**

३०. देव तणां अधिकार थी, देव तणोंज विचार।
पूछै गोयम गणहरू, ते सुणज्यो विस्तार।।
३१. *प्रभु! अविशुद्धलेसी देवता, ए विभंग अज्ञानी संगीत।
असमोहए नों अर्थ ए, सुर उपयोग-रहीत।।
३२. अविशुद्धलेसी विभंग सहित जे, देव तथा देवी जोय।
तथा अन्यतर एक जे, ते बिहुं मांहिलो सोय।।
वा० अविशुद्धलेसी विभंग अज्ञानी देव अणउपयोग आत्मा अविशुद्धलेसी देवादिक प्रतै ए तीन पद नां द्वादश विकल्प हुवै।
३३. *ए त्रिहुं प्रति जाणें प्रभु! दर्शण कर देखंत ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, ए धुर भांगो हुंत।।
३४. †सुर विभंगयुत उपयोग विण ते, विभंगवंत सुर सुरी प्रते।
बिहुं मांहिला एक प्रति वलि, न जाणै देखै न ते।।

३०. देवाधिकारादिदमाह— (वृ० प० २८३)

३१. अविसुद्धलेसे णं भंते! देवे असमोहएणं अप्पाणेणं
अविशुद्धलेश्यो—विभङ्गज्ञानो देवः 'असमोहएणं
अप्पाणेणं' ति अनुपयुक्तेनात्मना। (वृ० प० २८४)
३२. अविसुद्धलेसं देवं, देविं, अण्णयरं,
इहाविशुद्धलेश्यः, असमवहतात्मा देवः, अविशुद्धलेश्यं देवादिकं इत्यस्य पदत्रयस्य द्वादशविकल्पा भवन्ति।
(वृ० प० २८४)

३३. जाणइ-पासइ ?
णो तिणट्ठे समट्ठे।

* लय : राधा प्यारी हे, लै नी भखोलो ठंडा नीर नो

१. इस ढाल की गाथा २३, २४, २७ और २८ की जोड़ अंगसुत्ताणि पृ० २६६ के टिप्पण ११ के आधार पर की गई है।

† लय : पूज मोटा भांजै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. *इम विभंग-अनाणी देवता, उपयोग रहित करि तेह, अंतेवासी रे।
अवधि-ज्ञानी देवादिक प्रतै, जाणै देखै नहिं एह, अंतेवासी रे।।

३६. विभंग-अनाणी देवता, उपयोग सहित करि तेह।
विभंग-अनाणी देवादि नैं, जाणैं देखैं नहि जेह।।

### सोरठा

३७. विभंग-अनाणी जेह, ए विभंग-अज्ञानी सुर अछै।
इणविध नहिं जाणेह, उपयोग-सहित पिण मिच्छदिट्ठि।।

३८. *विभंग-अनाणी देवता, उपयोग-सहित करि ताहि।
अवधि-ज्ञानी देवादि नैं, जाणैं देखै ते नांहि।।

### सोरठा

३९. अवधिज्ञान इण मांहि, सुर प्रति इम जाणैं नहीं।
उपयोगी पिण ताहि, मिथ्यादृष्टी ते भणी।।

४०. *विभंग-अनाणी देवता, उपयोग-सहित रहीत।
विभंग-अनाणी देवादि नैं, न जाणैं न देखै ते रीत।।
(वीर कहै सुण गोयमा)।

४१. विभंग-अनाणी देवता, उपयोग-सहित रहीत।
अवधि-ज्ञानी देवादि प्रतै, नहिं जाणैं देखै ते रीत।।

### सोरठा

४२. ए षट विकल्प जाण, मिथ्यादृष्टी नां कह्या।
हिव विकल्प षट माण, कहियै समदृष्टी तणां।।

४३. *अवधिज्ञानी ते देवता, उपयोग-रहित करि ताहि।
विभंग-अनाणी देवादि नैं, जाणैं देखै ते नांहि।।

४४. अवधिज्ञानी ते देवता, उपयोग-रहित करि तेह।
अवधिज्ञानी देवादिक प्रतै, जाणैं देखै नहिं जेह।।

### सोरठा

४५. अठ विकल्प करि दृष्ट, नवि जाणैं देखैं नहीं।
त्यां षट मिथ्या दृष्ट, उपयोग-रहित बे समदिट्ठि।।

४६. *अवधिज्ञानी प्रभु! देवता, उपयोग-सहित पिछाण।
जाणै विभंग-अनाणी सुरादि नैं? जिन कहै हंता जाण।।

४७. इम अवधिज्ञानी जे देवता, आतम उपयोग-सहीत।
अवधिज्ञानी देवादिक प्रतै, जाणै देखै वर रीत।।

* लय : राधा प्यारी हे, लै नी भखोलो ठंडा नीर नो

३५. एवं—अविसुद्धलेसे देवे असमोहएणं अप्पाणणं विसुद्धलेसं देवं।

३६. अविसुद्धलेसे देवे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं।

३८. अविसुद्धलेसे देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं।

४०. अविसुद्धलेसे देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं।

४१. अविसुद्धलेसे देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं।

४३. विसुद्धलेसे देवे असमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं।

४४. विसुद्धलेसे देवे असमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं। (श० ६।१६८)

४५. एतैरष्टभिर्विकल्पैर्न जानाति, तत्र षड्भिर्मिथ्यादृष्टित्वात् द्वाभ्यां त्वनुपयुक्तत्वादिति। (वृ० प० २८४)

४६. विसुद्धलेसे णं भंते! देवे समोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं जाणइ-पासइ? हंता जाणइ-पासइ।

४७. एवं—विसुद्धलेसे देवे समोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं।

४८. अवधिज्ञानी जे देवता, उपयोग-सहित रहीत।
विभंग-अनाणी देवादि नैं, जाणै देखै वर रीत।।

४८. विसुद्धलेसे देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं अविसुद्धलेसं देवं।

४९. अवधिज्ञानी जे देवता, उपयोग-सहित रहीत।
अवधिज्ञानी देवादिक प्रतै, जाणै देखै तसु रीत।।

४९. विसुद्धलेसे देवे समोहयासमोहएणं अप्पाणेणं विसुद्धलेसं देवं। (श० ६।१६९)

### सोरठा

५०. चिहुं भंग सम्यक्त्व रीत, उपयोगी जाणै तथा।
उपयोग-सहित रहीत, ते पिण जाणैं देखियै।।

५०. एभिः पुनश्चतुर्भिर्विकल्पैः सम्यग्दृष्टित्वादुपयुक्तत्वानुपयुक्तत्वाच्च जानाति। (वृ० प० २८४)

५१. उपयोग-अणउपयोग-पक्षे जे उपयोग नुं।
अंश अधिक सुप्रयोग, ज्ञान हेतु छै ते भणो।।

५१. उपयोगानुपयोगपक्षे उपयोगांशस्य सम्यग्ज्ञानहेतुत्वादिति। (वृ० प० २८४)

५२. विकल्प अठ जे आदि, नवि जाणैं देखे नहीं।
ऊपरलै चिहुं साधि, ते जाणैं नैं देखियै[1]।।

५२. एवं हेट्ठिल्लएहिं अट्ठहिं न जाणइ, न पासइ उवरिल्लएहिं चउहिं जाणइ-पासइ।

### दूहा

५३. वाचनांतरे सर्व ही, दीसै छै साख्यात।
विकल्प जे आठूं तणो, जुओ-जुओ अवदात।।

५३. वाचनान्तरे तु सर्वमेवेदं साक्षाद् दृश्यत इति। (वृ० प० २८४)

५४. *सेवं भंते! अंक गुणंतर तणों, एकसौ नवमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगल माल।।

५४. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ६।१७०)

षष्ठशते नवमोद्देशकार्थः ।।६।९।।

## ढाल : ११०

### दूहा

१. नवम उद्देशक नें विषे, अविशुद्ध लेस्यावंत।
ज्ञान अभाव कह्यु तसु, दसमें तेहिज हुंत।।

१. प्रागविशुद्धलेश्यस्य ज्ञानाभाव उक्तः, अथ दशमोद्देशकेऽपि तमेव दर्शयन्निदमाह— (वृ० प० २८४)

†गोयम प्रभुजी सूं वीनवै रे लाल। (ध्रुपदं)

२. अन्यतीर्थी प्रभु! इम कहै रे लाल,
जावत इम परूपंत हो, जिनेंद्र देव!
राजगृह नगर विषे अछै रे लाल,
जीव जेतला हुंत हो, जिनेंद्र देव!

२. अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति जावतिया रायगिहे नयरे जीवा,

---

* लय : राधा प्यारी हे लै नो झलोलो ठंडा नीर नो

† लय : पुन नीपजै सुभ जोग सूं

१. यह जोड़ जिस पाठ के आधार पर की गई है, वह अंगसुत्ताणि के पादटिप्पण ३ पृ. २६७ में है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. एतलाईज जीवां तणां, सुख अथवा दुख ताहि।
यावत बोर-कुलिया जितो, देखवा समर्थ नांहि॥

**सोरठा**

४. यावत जितो पिछाण, बोर-कुलिक मात्रक अपि।
बहु वा अतिबहु जाण, ते तो अलगा हो रह्यो॥

५. *झालर[1] कलाय जे धान्य छै, उड़द मूंग जूं लीख।
तेतलो पिण काढी तनु थकी, देखवा समर्थ न दीख॥

६. ते किम प्रभु! ए इहविधे, इम? पूछ्यै कहै नाथ, रे सुगण शीस!
अणतीर्थी जे इम कहै, जाव मिथ्या इम ख्यात, रे सुगण शीस!

**सोरठा**

७. अन्यतीर्थी नीं वाय, राजगृह नगर विषेज ए।
अन्य स्थान कहै नांय, तिण सूं मिथ्या वचन ते॥

८. *हूं पिण गोतम इम कहूं, जाव परूपूं एम।
सहु लोक विषे सर्व जीव नीं, सुख अथवा दुख तेम॥

९. तं चेव जाव देखाड़िवा, समर्थ नहीं छै ताय।
किण अर्थे प्रभु! इम कह्यो? हिव जिन भाखै न्याय॥

१०. ए जंबूद्वीप नामा द्वीप छै, जाव विशेषाधिक परिधि माग।
देव महाऋद्धि नो धणी, जावत महाअनुभाग॥

११. इक महा विलेपन सहित नैं, गंध डाबो ग्रही ताम।
ते गंध डाबा नां मुख प्रतै, उघाड़ै उघाड़ी आम॥

**यतनो**

१२. जाव इणामेव इणामेव[2], इम कहि चाल्यो ते देव।
केवल कल्प संपूर्ण एह, जंबूद्वीप नामा द्वीप तेह॥

१३. तीन चिबठी वजावै ते मांहि, एक वीस वेला ते ताहि।
चोफेर दोलो फिरि जोय, शीघ्र आवै उतावलो सोय॥

१४. *ते निश्चै करि गोयमा, जंबूद्वीप संपूर्ण ताय।
फर्शै गंध पुद्गल करी? गोतम कहै फर्शाय॥

३. एवइयाणं जीवाणं नो चक्किया केइ सुहं वा दुहं वा जाव कोलट्ठिगमायमवि,

४. आस्तां बहु बहुतरं वा यावत् कुवलास्थिकमात्रमपि, तत्र कुवलास्थिकं—बदरकुलकः। (वृ० प० २८५)

५. निप्फावमायमवि, कलमायमवि, मासमायमवि, मुग्गमायमवि, जूयामायमवि, लिक्खामायमवि अभिनिवट्टेत्ता उवदंसेत्तए। (श० ६।१७१)

६. से कहमेयं भंते! एवं?
गोयमा! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव मिच्छं ते एवमाहंसु,

८,९. अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—सव्वलोए वि य णं सव्वजीवाणं नो चक्किया केइ सुहं वा (सं० पा०) तं चेव जाव उवदंसेत्तए। (श० ६।१७२)

से केणट्ठेणं?

१०. गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते। देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे,

११. एगं महं सविलेवणं गंधसमुग्गगं गहाय तं अवद्दालेति, अवद्दालेत्ता,

१२. जाव इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं।

१३. तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा।

१४. से नूणं गोयमा! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे? हंता फुडे।

---

* लय : पुन नीपजै शुभ जोग स्यूं

१. वल्ल नामक धान्य

२. अंगसुत्ताणि भाग २ श० ६।१७६ में इणामेव पाठ एक बार ही है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. समर्थ छै कोइ गोयमा! पुद्‌गल सुगंध शोभाय।
गुठली तुल्य जाव देखाड़िवा? गोतम कहै समर्थ नांय॥

१५. चक्किया णं गोयमा! केइ तेसिं घाणपोग्गलाणं कोलट्ठिमायमवि जाव (सं० पा०) उवदंसेत्तए। णो तिणट्ठे समट्ठे।

१६. †जिम गंध पुद्‌गल अतिहि सूक्षम अमूर्त्त तुल्य ते अछै।
बोर गुठली मात्र पिण देखाड़िवा समरथ न छै॥

१६. एवं यथा गन्धपुद्‌गलानामतिसूक्ष्मत्वेनामूर्त्तकल्पत्वात् कुवलास्थिकमात्रादिकं न दर्शयितुं शक्यते। (वृ० प० २८५)

१७. *तिण अर्थे करि गोयमा, सर्व जीवां नां ताहि।
गुठली मात्र सुख दुख प्रतै, जाव देखाड़ी सकै नांहि॥

१७. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—नो चक्किया केइ सुहं वा जाव उवदंसेत्तए। (श० ६।१७३)

## दूहा

१८. जीव तणां अधिकार थी, जीव तणोज विचार।
पूछै गोयम गणहरू, आछी रीत उदार॥

१८. जीवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २८५)

१९. *जीव प्रभु! स्यूं जीव छै, केवल जीव कहिवाय?
जीव शब्द दोय वार नों, अर्थ सुणो चित ल्याय॥

१९. जीवे णं भंते! जीवे? जीवे जीवे?

## सोरठा

२०. एक जीव शब्देन, जीवईज ग्रहिवूं अछै।
जीव शब्द द्वितीयेन, ग्रहिवूं छै चेतनपणुं॥

२०. इह एकेन जीवशब्देन जीव एव गृह्यते द्वितीयेन च चैतन्यम्, (वृ० प० २८५)

## यतनी

२१. जिन भाखै जीव सदीव, तिणनै कहीजै नियमा जीव।
बीजो जीव शब्द चैतन्य, ते पिण नियमा जीव सुजन्य॥

२१. गोयमा! जीवे ताव नियमा जीवे, जीवे वि नियमा जीवे। (श० ६।१७४)

## सोरठा

२२. जीव अनें चैतन्य, मांहोमांहि जुदा नहीं।
जीव ते चैतन्य जन्य, चैतन्य ते पिण जीव छै॥

२२. जीवचैतन्ययोः परस्परेणाविनाभूतत्वाज्जीवश्चैतन्यमेव चैतन्यमपि जीव एवेत्येवमर्थमवगन्तव्यं। (वृ० प० २८५)

२३. *हे प्रभु! जीव ते नेरइयो, नेरइयो जीव कहीव?
श्री जिन भाखै नेरइयो, निश्चै करि छै जीव॥
(वीर कहै सुण गोयमा! रे लाल)

२३. जीवे णं भंते! नेरइए! नेरइए जीवे? गोयमा! नेरइए ताव नियमा जीवे,

२४. जीव कदाचित नेरइयो, कदा अनेरइयो होय।
नरके ऊपनां नेरइयो, अन्य गति अनेरइयो जोय॥

२४. जीवे पुण सिय नेरइए, सिय अनेरइए। (श० ६।१७५)

२५. हे प्रभु! जीव ते असुर छै, कै असुरकुमार छै जीव?
जिन कहै असुरकुमार ते, निश्चै जीव कहीव॥

२५. जीवे णं भंते! असुरकुमारे? असुरकुमारे जीवे? गोयमा! असुरकुमारे ताव नियमा जीवे,

२६. जीव कदाचित असुर छै, कदा अणअसुर कहीव।
असुर विषे गयां असुर छै, अणअसुर ते अन्य जीव॥

२६. जीवे पुण सिय असुरकुमारे, सिय नोअसुरकुमारे। (श० ६।१७६)

† लय: पूज मोटा भांजै
* लय: पुन नीपजै सुभ जोग स्यूं



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. एवं दंडक जाणिवा, जाव वैमानिक जोय।
जीव तणां अधिकार थी, जीव प्रश्न वलि होय॥

२७. एवं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं। (श० ६।१७७)

### सोरठा

२८. नारकादि पद मांहि, वली जीवपणां तणो।
अव्यभिचारी थी तांहि, इह कारण थी एह हिव॥

२८. नारकादिषु पदेषु पुनर्जीवत्वमव्यभिचारि जीवेषु तु नारकादित्वं व्यभिचारीत्यत आह— (वृ० प० -२८५)

२९. *जीवै प्राण धरै तिको, जीव अछै भगवंत!
अथवा जीव अछै तिको, जीवै प्राण धरंत?

२९. जीवति भंते! जीवे? जीवे जीवति? जीवति—प्राणान् धारयति यः स जीवः उत यो जीवः स जीवति? (वृ० प० २८५)

३०. जिन कहै आयू नैं बले, जीवै प्राण धरंत।
निश्चै करि ते जीव छै, ए जीव संसारी हुंत॥

३०. गोयमा! जीवति ताव नियमा जीवे, *

### सोरठा

३१. अजीव नैं अवलोय, आयू कर्म अभाव कर।
जीवन अभाव जोय, तिण सूं अजीव ते जीवै नहीं॥

३१. अजीवस्यायुः कर्म्माभावेन जीवनाभावात्। (वृ० प० २८५)

३२. *जीव तिको जीवै कदा, संसारीक पिछाण।
कदाचित जीवै नहीं, सिद्ध धरै नहिं प्राण॥

३२. जीवे पुण सिय जीवति, सिय नो जीवति। (श० ६।१७८)
सिद्धस्य जीवनाभावादिति। (वृ० प० २८५)

३३. जीवै प्राण धरै तिको, नेरइयो छै भगवंत!
कै नेरइयो जीवै अछै? हिव जिन उत्तर तंत॥

३३. जीवति भंते! नेरइए? नेरइए जीवति?

३४. नेरइयो प्रथम निश्चै करी, जीवै प्राण धरेह।
जीवै तिको कदा नेरइयो, कदा अनेरइयो कहेह॥

३४. गोयमा! नेरइए ताव नियमा जीवति, जीवति पुण सिय नेरइए, सिय अनेरइए। (श० ६।१७९)

३५. एवं दंडक जाणवा, जावत वैमानीक।
कहिवो सर्व विचार नैं, वर जिन वच तहतीक॥

३५. एवं दंडओ नेयव्वो जाव वेमाणियाणं। (श० ६।१८०)

३६. भवसिद्धियो प्रभु! नेरइयो, कै नेरइयो भवसिद्धि जाण?
जिन कहै भव्य कदा नेरइयो, कदा अनेरइयो पिछाण॥

३६. भवसिद्धिए णं भंते! नेरइए? नेरइए भवसिद्धिए?
गोयमा! भवसिद्धिए सिय नेरइए, सिय अनेरइए।

३७. नेरइयो पिण कदा भव्य छै, कदा अभव्य अवलोय।
एवं दंडक जाणिवा, जाव वैमानिक जोय॥

३७. नेरइए वि य सिय भवसिद्धिए, सिय अभवसिद्धिए। (श० ६।१८१)
एवं दंडओ जाव वेमाणियाणं। (श० ६।१८२)

### दूहा

३८. जीव तणां अधिकार थी, जीव विषे हिव जेह।
अन्यतीर्थी छै तेहनी, वक्तव्यता जु कहेह॥

३८. जीवाधिकारात्तद्गतमेवान्यतीर्थिकवक्तव्यतमाह— (वृ० प० २८५)

३९. *अन्यतीर्थी प्रभु! इम कहै, जावत इम परूपंत॥
सर्व प्राण भूत जीव सत्व ते, एकांत दुख वेदंत॥

३९. अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव परूवेंति—एवं खलु सव्वे पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति। (श० ६।१८३)

* लय: पुन नीपजै सुभ जोग सूं रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. ते किम प्रभु! ए वारता? तब भाखै जिनराय।
अन्यतीर्थी जे इम कहै, प्रत्यक्ष मूसावाय॥

४०. से कहमेयं भंते ! एवं ?
गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया ज़ाव मिच्छं ते एवमाहंसु,

४१. हूं पिण इम कहुं चिउं पदे, केइ प्राण भूत सत्व जीव।
वेदै एकांत दुख वेदना, कदाचित साता कहीव॥

४१. अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि —अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति, आहच्च सायं।

४२. प्राण भूत जीव सत्व ते, केतला इक सुविचार।
वेदै एकांत साता वेदना, असाता वेदै किवार॥

४२. अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता एगंतसायं वेदणं वेदेंति, आहच्च अस्सायं।

४३. प्राण भूत जीव सत्व ते, केइ वेमात्रा वेदन वेदंत।
साता वेदै किण अवसरे, कदा असाता हुंत॥

४३. अत्थेगइया पाणा भूया जीवा सत्ता वेमायाए वेदणं वेदेंति, आहच्च सायमसायं। (श० ६।१८४)

४४. किण अर्थे? तब जिन कहै, नरक जीव सुविशेख।
वेदै एकांत दुख वेदना, साता कदाचित देख॥

४४. से केणट्ठेणं ?
गोयमा ! नेरइया एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति, आहच्च सायं।

**सोरठा**

४५. जिन जन्मादि कल्याण, अथवा देव प्रयोग कर।
कदाचित साता जाण, पिण न मिटै क्षेत्र वेदना॥

४५. "उववाएण व सायं नेरइओ देवकम्मुणा वावि[1]।" (वृ० प० २८६)

४६. *भवनपति व्यंतर जोतिषि, वैमानिक सुविचार।
वेदै एकांत साता वेदना, असाता वेदै किवार॥

४६. भवणवइ - वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया एगंतसायं वेदणं वेदेंति, आहच्च अस्सायं।

**सोरठा**

४७. वल्लभ तणें विजोग, अथवा प्रहारे करी।
इत्यादीक प्रयोग, कदा असाता वेदना॥

४७. देवा आहननप्रियविप्रयोगादिष्वसातां वेदनां वेदयन्तीति। (वृ० प० २८६)

४८. *पृथ्वीकाय जाव मनुष्य ते, वेमात्रा वेदन वेदंत।
साता वेदै किण अवसरे, कदा असाता हुंत॥

४८. पुढविक्काइया जाव मणुस्सा वेमायाए वेदणं वेदेंति—आहच्च सायमसायं।

४९. तिण अर्थे करि गोयमा!, आख्यूं एहवूं ताय।
जीव तणां अधिकार थी, जीव तणुंज कहाय॥

४९. से तेणट्ठेणं। (श० ६।१८५)
जीवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० २८६)

५०. नेरइया प्रभु! आत्मा करी, जे पुद्गल ग्रही करै आ'र।
स्व तनू क्षेत्र अवगाही रह्या, ते पुद्गल लै तिण वार॥

५०. नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति तं किं आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?

५१. तनु अवगाह अपेक्षया, अंतर-रहित जे खेत।
तिते अनंतर क्षेत्र विषे रह्या, पुद्गल ग्रही आहारेत?

५१. अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?

५२. आतम क्षेत्र अनंतर क्षेत्र थकी, परंपर जे अन्य खेत।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, आहार करै छै तेथ?

५२. परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?

५३. जिन कहै स्व तनु क्षेत्रे रह्या, पुद्गल ग्रही आहार करंत।
अनंतर परंपर क्षेत्र में रह्या पुद्गल नहि आहारंत॥

५३. गोयमा ! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति, नो अणंतरखेत्तोगाढे……नो परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति।

---

* लय : पुन नीपजै सुभ जोग स्यूं रे

१. अपिशब्दात्तीर्थंकरजन्मादिदिनेषु वेदयते। (वृ० प० २८६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. जेम कह्यो छै नारकी, तिम यावत सुजगीस।
वैमानिक लग जाणिवा, दंडक ए चउवीस॥

**सोरठा**

५५. पाठ आयाए जाण, अर्थ तास पुद्गल ग्रही।
नरक जीव पहिछाण, आहार करै इहविध कह्यू॥
५६. आगल जे अभिराम, आयाणे इंद्री करी।
जाणै केवलि ताम, वच-साधर्म्य थी प्रश्न हिव॥

५७. *प्रभु! आयाणे इंद्रिय करी, केवली जाणै देखंत?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, किण अर्थे इम हुंत?

५८. केवली पूर्व दिशि विषे, जाणैं मित वस्तु मान-सहीत।
अमित वस्तु पिण जाणता, जाव दर्शण आवरण-रहीत॥
५९. तिण अर्थे करि केवली, इंद्रिय करि जाणै नांय।
एह उदेशा नीं हिवै, संग्रहणि गाथा कहाय।
६०. सुख दुख जे जीवां तणों, जीवे जीवति भवि हुंत।
एकंत दुख आत्मा करि ग्रही, केवली सेवं भंत!

६१. ए अर्थ कह्यो छठा शतक नों, ए एकसौ दशमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल॥

षष्ठशते दशमोद्देशकार्थः॥६।१०॥

**गीतक-छंद**

१. जिम दंत भंजक नालिकेर प्रतै शिला पर योजनैं।
निज पर भणी भोगवा योग्यज करै मानव सुध मनैं॥
२. तिम शतक षष्ठम नालिकेरज मम मती-रद भंजनं।
विद्वत्-सभामय शुभ शिला संयोजि जन-मन-रंजनं॥
३. अति कठिण अर्थज रूप छै जे भेद प्रति आश्रित्य ही।
निज पर भणी सुगमार्थ म्हैज प्रकाश प्रति कीधूं सही॥
४. इम वृत्तिकारे कह्युं, ए दृष्टांत प्रति देई करी।
ते वृत्ति प्रति अवलोकनैं, ए रची जोड़ज चित धरी॥

५४. जहा नेरइया तहा जाव वेमाणियाणं दंडओ। (श० ६।१८६)

५५. 'अत्तमायाए' त्ति आत्मना आदाय—गृहीत्वेत्यर्थः। (वृ० प० २८६)

५६. 'अत्तमायाए' इत्युक्तमत आदानसाधर्म्यात् 'केवली ण' मित्यादि सूत्रं, तत्र च 'आयाणेहिं' ति इन्द्रियैः। (वृ० प० २८६)

५७. केवली णं भंते! आयाणेहिं जाणइ-पासइ?
गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे? (श० ६।१८७)
से केणट्ठेणं?
५८. गोयमा! केवली णं पुरत्थिमे णं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ जाव निव्वुडे दंसणे केवलिस्स।
५९. से तेणट्ठेणं। (श० ६।१८८)

६०. जीवाण य सुहं दुक्खं, जीवे जीवति तहेव भविया य।
एगंतदुक्खं वेयण-अत्तमायाय केवली॥
(श० ६।संगहणी-गाहा)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ६।१८९)

१-३. प्रतीत्य भेदं किल नालिकेरं,
षष्ठं शतं मन्मतिदन्तभञ्जि।
तथाऽपि विद्वत्सभसच्छिलायां,
नियोज्य नीतं स्वपरोपयोगम्॥ (वृ० प० २८६)

* लय : पुन नीपजै शुभ जोग स्यूं रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १११

### दूहा

१. षष्ठम शतक विषे कह्यो, अर्थ जीवादिक जाण ।
तेहिज सप्तम शतक हिव, गाह संग्रहणी आण ।।

२. आहार अनाहारक तणूं, वर पचखाण विचार ।
वणस्सइ संसारीक फुन, पक्खी योनि प्रकार ।।

३. आयु बली अणगार नो, छद्म असंवृत कथ्य ।
कालोदाई अन्ययूथि, सप्तम दस अवितथ्य ।।

४. तिण काले नैं तिण समय, जावत गोतम स्वाम ।
वीर प्रतै वंदी करी, इम बोल्या सिर नाम ।।

५. *जीव प्रभु! परभव विषे रे हां, जातां छतां अवलोय ।
देव जिनेंद्रजी !
कवण समय नैं विषे तिको रे हां, अणाहारक हुवै सोय ?
देव जिनेंद्रजी !

६. जिन कहै प्रथम समय विषे रे हां, कदा आहारक होय ।
सांभल गोयमा !
कदा अणाहारक हुवै रे हां, न्याय हिये अवलोय ।
सांभल गोयमा !

७. बीजा समय विषे तिको, कदाचित आहारीक ।
कदा अणाहारक हुवै, वर जिन वच तहतीक ।।

८. तीजा समय विषे वलि, कदा आहारक तेह ।
कदा अणाहारक हुवै, श्री जिन वच निसंदेह ।।

९. चोथा समय विषे हुवै, निश्चै करि आहारीक ।
न्याय कहूं हिव एहनों, सांभलज्यो तहतीक ।।

### सोरठा

१०. जीव ऋजुगती जाण, उत्पत्ति-स्थानक जाय तब ।
प्रथम समय इज मान, आहारक होवै सही ।।

१. व्याख्यातं जीवाद्यर्थप्रतिपादनपरं षष्ठं शतं, अथ जीवाद्यर्थप्रतिपादनपरमेव सप्तमशतं व्याख्यायते, तत्र चादावेवोद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथा— (वृ० प० २८७)

२,३. आहार विरति थावर, जीवा पक्खी य आउ अणगारे।
छउमत्थ असंवुड अण्णउत्थि दस सत्तमंमि सए ।।
(श० ७ संगहणी-गाहा)

'आहार' त्ति आहारकानाहारकवक्तव्यतार्थः, 'विरइ' त्ति प्रत्याख्यानार्थः, 'थावर' त्ति वनस्पतिवक्तव्यतार्थः, 'जीव' त्ति संसारिजीवप्रज्ञापनार्थः, 'पक्खी य' त्ति खचरजीवयोनिवक्तव्यतार्थः············'अन्नउत्थिय' त्ति कालोदायिप्रभृतिपरतीर्थिकवक्तव्यतार्थः
(वृ० प० २८७)

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वदासी—

५. जीवे णं भंते ! कं समयमणाहारए भवइ ?
'कं समयं अणाहारए' त्ति परभवं गच्छन् कस्मिन् समयेऽनाहारको भवति ? (वृ० प० २८७)

६. गोयमा ! पढमे समए सिय आहारए, सिय अणाहारए,

७. बितिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए,

८. ततिए समए सिय आहारए, सिय अणाहारए,

९. चउत्थे समए नियमा आहारए ।

१०. यदा जीव ऋजुगत्योत्पादस्थानं गच्छति तदा परभवायुषः प्रथम एव समये आहारको भवति ।
(वृ० प० २८७)

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. इक वक्रे करि पेख, दोय समय करि ऊपजै।
अनाहारक धुर एक, द्वितीय समय आहारक सही॥
१२. बे वक्रे करि सोय, तीन समय करि ऊपजै।
अनाहारक धुर दोय, तृतीय समय आहारक हुवै॥
१३. त्रिण वक्रे करि धार, च्यार समय करि ऊपजै।
प्रथम चरम बे आ' र, समय मज्झिम बे आ' र नहिं॥

वा०—ए च्यार समय करि ऊपजै, तिहां प्रथम समय आहारक कह्यु। ते समय पाछला भव नुं छेलुं समय देशबंध जणाय छै। जिण स्थानक ऊपजै, ते भव नुं ए समय होवै, ते स्यूं सर्व बंध कै देश बंध ? चोथै समय उत्पत्ति क्षेत्रे आहार ले ते सर्व बंध हुवै, पिण ए च्यार समय में प्रथम समय सर्व बंध नहीं। एकेंद्रिय में तीन समय ऊणी क्षुल्लक भव देश बंध नीं स्थिति जघन्य कही। ते भणी च्यार समय में प्रथम समय, ए एकेंद्रिय नां भव नुं न लेखव्यो। ते माटै ए समय पूर्व भव नों देश बंध संभवै। (ज० स०)

१४. वृत्ति मझे इम वाय, अन्य आचार्य इम कहै।
पंच समय उपजाय सूत्रे कथन न इम कह्युं॥

१५. अणाहारक नां जेह, समय तीन केई कहै।
पाठ मझे नहिं तेह, बुद्धिवंत न्याय विचारियै॥
१६. पन्नवण में तहतीक, अठारमा पद नैं विषे।
छद्मस्थ अणाहारीक, स्थिति कही बे समय नीं॥

वा०—तथा शतक छह, सू० त्रेसठ मध्ये कालादेसे अणाहारक सप्रदेश कै अप्रदेश ? तिहां छह भांगा त्रस अणाहारक नैं कह्या। तिहां प्रथम भांगे सगला सप्रदेश अणाहारक कह्या, सप्रदेश ते केहनै कहियै ? एक समय सूधी अप्रदेश। ते उपरांत समय थया हुवै, तेहनै सप्रदेश कहियै। इण न्याय जोतां त्रस नैं दोय समय अणाहारक कह्यो छै।

१७. तिण सूं सूत्रे वाय, आखी तेहिज सत्य छै।
विरुद्ध बहु वृत्ति मांय, ते किण रीते मानियै ?

१८. *दंडक इह विध आखियै, जीव एकेंद्री कथीक।
चोथा समय विषे हुवै, निश्चै ते आहारीक॥

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

११. यदैकेन वक्रेण द्वाभ्यां समयाभ्यामुत्पद्यते तदा प्रथमेऽनाहारको द्वितीये त्वाहारकः। (वृ० प० २८७)
१२. यदा वक्रद्वयेन त्रिभिः समयैरुत्पद्यते तदाऽऽद्ययोरनाहारकस्तृतीये त्वाहारकः। (वृ० प० २८७)
१३. यदा तु वक्रत्रयेण चतुर्भिःसमयैरुत्पद्यते, तदाद्ये समयत्रयेऽनाहारकश्चतुर्थे तु नियमादाहारकः[1]। (वृ० प० २८७)

१४. अन्ये त्वाहुः—वक्रचतुष्टयमपि संभवति, यदा हि विदिशो विदिश्येवोत्पद्यते तत्र समयत्रयं प्राग्वत् चतुर्थे समये तु नाडीतो निर्गत्य समश्रेणिं प्रतिपद्यते पञ्चमेन तूत्पत्तिस्थानं प्राप्नोति, तत्र चाद्ये समयचतुष्टये वक्रचतुष्टयं स्यात्, तत्र चानाहारक इति, इदं च सूत्रे न दर्शितम्। (वृ० प० २८७, २८८)
१६. छउमत्थअणाहारए णं भंते ! छउमत्थए कालओ केवच्चिरं होई ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो समया। (पन्नवणा १८।६८)

१८. एवं दंडओ—जीवा य एगिंदिया य चउत्थे समए, जीवपदे एकेन्द्रियपदेषु च पूर्वोक्तभावनयैव चतुर्थे समये नियमादाहारक इति वाच्यम्। (वृ० प० २८८)

१. चार समय वाली अन्तराल गति में जीव तीन समय तक अनाहारक रहता है। टीकाकार का यह अभिमत जयाचार्य के मंतव्य से भिन्न है। इसका उल्लेख स्वयं जयाचार्य ने इसी ढाल की पन्द्रहवीं गाथा में कर दिया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. शेष उगणीस दंडक विषे, तीजै समय पिछाण।
आहारक निश्चै हुवै, न्याय हिया में आण॥

१९. सेसा ततिए समए। (श० ७।१)
शेषेषु तृतीयसमये नियमादाहारक इति।
(वृ० प० २८८)

२०. जीव प्रभु! किण समय में, सर्व थको अल्प आहार?
जिन कहै ऊपजवा तणों, प्रथम समय सुविचार॥
२१. चरम समय वलि भव तणों, अल्प आहार लै जीव।
यावत वैमानिक लगै, दंडक सर्व कहीव॥

२०. जीवे णं भंते! कं समयं सव्वप्पाहारए भवति?
गोयमा! पढमसमयोववन्नए वा,
२१. चरिमसमयभवत्थे वा, एत्थ णं जीवे सव्वप्पाहारए भवति। दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं।
(श० ७।२)

वा०—इहां गोतम पूछ्यो—किण समय सर्व अल्प आहार? सर्व अल्प ते सर्वथा थोड़ो, जेह थी अन्य थोड़ो आहार नहीं, ते सर्वाल्पाहार, तेहिज सर्वाल्पाहारक। भगवान कहै—प्रथम समयोत्पन्न नैं। ते प्रथम समय नैं विषे आहार ग्रहण करिवा नों हेतु शरीर नां अल्पपणां थकी सर्व अल्प आहारपणो हुवै तथा भव नैं चरम समये हुवै ते आउखा नैं छेहला समय नैं विषे जाणवूं। निवारै प्रदेश नैं संहृतपणैं करी एतलै प्रदेश नैं संकोचवै करी अल्प शरीर नां अवयव नैं विषे रहिवा नां भाव थकी सर्वथी अल्प आहारपणो हुइं।

वा०—कस्मिन् समये सर्वाल्पः—सर्वथा स्तोको न यस्मादन्यः स्तोकतरोऽस्ति स आहारो यस्य स सर्वाल्पाहारः स एव सर्वाल्पाहारकः, 'पढमसमयोववन्नए' त्ति प्रथमसमय उत्पन्नस्य प्रथमो वा समयो यत्र तत् प्रथमसमयं तदुत्पन्नं—उत्पत्तिर्यस्य स तथा, उत्पत्तेः प्रथमसमय इत्यर्थः, तदाहारग्रहणहेतोः शरीरस्याल्पत्वात्सर्वाल्पाहारता भवतीति, 'चरमसमयभवत्थे व' त्ति चरमसमये भवस्य—जीवितस्य तिष्ठति यः स तथा, आयुषश्चरमसमय इत्यर्थः तदानीं प्रदेशानां संहृतत्वेनाल्पेषुशरीरावयवेषु स्थितत्वात्सर्वाल्पाहारतेति। (वृ० प० २८८)

## दूहा

२२. पूर्वे जीव कह्या तिके, विशेष थी कहिवाह।
लोक संठाण थकी हुवै, लोकपरूपण आह॥

२२. अनाहारकत्वं च जीवानां विशेषतो लोकसंस्थानवशाद् भवतीति लोकप्ररूपणसूत्रम्—
(वृ० प० २८८)

२३. *हे भगवन! ए लोक छै, किण संठाण पिछाण?
जिन भाखै सुण गोयमा! सुप्रतिष्ठक संठाण॥
वा०—सुप्रतिष्ठक ते शरयंत्रक, ते वली इहां ऊपरि स्थापित कलसादिक ग्रहिवूं।
२४. ऊंधा सरावला ऊपरै, थाप्यो कलश विशेष।
ए आकारे लोक छै, हिव एहिज अर्थ कहेस॥
२५. हेठे विस्तीरण कह्यो, जाव[1] ऊपर पहिछान।
ऊर्ध्व मृदंग आकार नैं, आख्यो ए संस्थान॥

२३. किं संठिए णं भंते! लोए पण्णत्ते?
गोयमा! सुपइट्ठगसंठिए लोए पण्णत्ते—
वा०—सुप्रतिष्ठकं शरयन्त्रकं तच्चेह उपरिस्थापितकलशादिकं ग्राह्यं, (वृ० प० २८८)
२४. तथाविधेनैव लोकसादृश्योपपत्तेरिति, एतस्यैव भावनार्थमाह— (वृ० प० २८८)
२५. हेट्ठा विच्छिण्णे,

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे
१. इस ढाल की पचीसवीं गाथा में जाव शब्द कहकर संक्षिप्त पाठ की सूचना दी है, पर छब्बीसवीं गाथा में जाव शब्द से गृहीत होने वाला पाठ आ गया है। इसलिए इन गाथाओं के सामने अंगसुत्ताणि भाग २ का पूरा पाठ उद्धृत किया गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

२६. जाव शब्द थी जाण, संक्षिप्त ऊर्द्ध विशाल है।
तल पल्यंक संठाण, मध्य प्रवर वज्र विग्रहिक ।।
२७. आख्यो लोक-स्वरूप, लोक विषे जे केवली।
करै तिको तद्रूप, हिव देखाड़ै तेहनें ।।

२८. *तेह सास्वता लोक में, तल विस्तीरण मांय।
मध्य विषे संक्षिप्त छै, जावत वलि कहिवाय।।
२९. ऊपर ऊर्द्ध मृदंग नें, आकारे संठाण।
तेह विषे जे जीव नैं, बले अजीव पिछाण।।
३०. उत्पन्न ज्ञान दर्शन तणां, धरणहार अरहंत।
केवली जिन जाणै अछै, वलि देखै चित शंत।।
३१. पछै सीझै बूझै सही, जाव करै दुख अंत।
सिद्ध तणां सुख सास्वता, पामै तेह अनंत।।

## दूहा

३२. सिद्ध क्रिया नों अंतकृत, विशेष थी ते आम।
श्रावक नैं किरिया हिवै, देखाड़ै छै ताम।।

३३. *श्रमणोपासक छै तिको, करी सामायक जान।
बैठो साधु रै स्थानके, तेहनैं हे भगवान!
३४. स्यूं इरियावहि क्रिया हुवै, कै ह्वै छै संपराय?
जिन कहै इरियावहि नहीं, संपरायकी थाय।।

३५. किण अर्थे? तब जिन कहै, श्रमणोपासक जान।
सामायक करिनैं रह्यो, साधु रहै ते स्थान।।

३६. तेहनुं जीवज आतमा, अधिकरण कहिवाय।
हल सकटादि कषाय नैं, आश्रयभूतज थाय।।

३७. आतम तसु अधिकरण छै, ते कारण करि ताय।
इरियावहि क्रिया नहीं, संपरायकी थाय।।
३८. तिण अर्थे करि गोयमा! आख्यूं एहवूं ताय।
श्रावक नां अधिकार थी, वलि तेहिज कहिवाय।।

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

२६. मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले, अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए।
२७. अनन्तरं लोकस्वरूपमुक्तं, तत्र च यत्केवली करोति तद्दर्शयन्नाह— (वृ० प० २८८)

२८. तंसि च णं सासयंसि लोगंसि हेट्ठा विच्छिण्णंसि जाव
२९, ३०. उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि उप्पण्णनाण-दंसण-धरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणइ-पासइ, अजीवे वि जाणइ-पासइ।

३१. तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ। (श० ७।३)

३२. 'अंतं करेइ' त्ति, अत्र क्रियोक्ता, अथ तद्विशेषमेव श्रमणोपासकस्य दर्शयन्नाह— (वृ० प० २८८)

३३. समणोवासगस्स णं भंते! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स
३४. तस्स णं भंते! किं रियावहिया किरिया कज्जइ? संपराइया किरिया कज्जइ?
गोयमा! नो रियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ। (श० ७।४)
३५. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—नो रियावहिया किरिया कज्जइ? संपराइया किरिया कज्जइ?
गोयमा! समणोवासयस्स णं सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स
३६. आया अहिगरणी भवइ,
आत्मा—जीवः अधिकरणानि—हलशकटादीनि कषायाश्रयभूतानि यस्य सन्ति सोऽधिकरणी।
(वृ० प० २८९)
३७. आयाहिगरणवत्तियं च णं तस्स नो रियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।
३८. से तेणट्ठेणं। (श० ७।५)
श्रमणोपासकाधिकारादेव (वृ० प० २८९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

३९. 'श्रावक नी पहिछाण, आतम अधिकरणी कह्यो।
ते कारण थी जाण, धर्म नहीं तसु पोखियां।।
४०. कह्यो धर्मसी एम, श्रावक सामायिक मझै।
अव्रत रही छै तेम, अधिकरण अव्रत कही।।
४१. वली सर्वथा जाण, उपगरण वोसिराव्या नथी।
तिण कारण पहिछाण, अधिकरण छै आतमा।।
४२. शत अष्टम पंचमुदेश, श्रावक सामायिक मझे।
भंड हरयां सुविशेख, पारयां गवेषणा करै।।
४३. वोसिराव्युं भंड जेह, ममत्व-भाव पिण तेहनु।
पचख्यो नहिं छै तेह, ते माटै भंड तेहनों।।
४४. वलि सामायिक कीध, तसु स्त्री कोई भोगवै।
स्त्री तेहनीं प्रसीध, आखी छै जिनवर तिहां।।
४५. भावे भावना एम, पुत्रादिक नहिं मांहिरा।
न मिट्यो बंधन प्रेम, तिण कारण तेहनीज छै।।
४६. इहां अव्रत रहि ताय, तिण सूं सामायिक मझे।
तसु आतम अधिकाय, अधिकरणी कहियै सही।।
४७. सोलम-शतक कहीव, प्रथम उदेशे प्रश्न ए।
अधिकरण प्रभु ! जीव, स्यूं अधिकरणी जीव छै ?
४८. जिन भाखै ए जीव, अधिकरणी अधिकरण पिण।
ते किण अर्थ कहीव ? जिन कहै अव्रत आसरी।।
४९. इहां अविरत नैं जोय, अधिकरण आखी अछै।
साधू विण अवलोय, सगलाई दंडक मझे।।
५०. साधू रै पहिछाण, जावजीव अविरत तणां।
सर्व थकी पचखाण, तिण सूं अविरत नहिं रही।।
५१. एहिज उदेशा मांय, आहारक तन निपजावतो।
अधिकरण प्रभु! थाय, कै अधिकरणी जीव छै ?
५२. तब भाखै जिनराय, प्रमाद आश्री अधिकरण।
अधिकरणी पिण थाय, आहारक तनु निपजावतो।।
५३. न कही अविरत ताय, प्रमाद आश्री इहां कही।
ते अशुभ जोग कहिवाय, ते तो पचख्यो छै तिणे।।
५४. पिण तिण वेला जाण, उत्सुकभावज आवियो।
आज्ञा भंग पिछाण, आलोई नैं सुध हुवै।।
५५. ए अशुभ जोग नैं जाण, आख्यो छै प्रमाद इहां।
जावजीव पचखाण, दीक्षा लेतां तिण किया।।
५६. श्रावक करि सामाय, ममत्व-भाव पचख्यो नथी।
वलि अनुमोदन ताय, ते पिण दीसै छै प्रत्यक्ष।।

४२,४३. भगवई ८।२३०-२३२

४४,४५. भगवई ८।२३३-२३५

४६-४८. भगवई १६।८,९

५१-५३. भगवई १६।२३,२४



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. नव भांगे करि जाण, सामायक कीधी कदा।
बाह्यपणें पचखाण, अभ्यंतर पचख्यो नथी॥
५८. इमहिज पोसा ताहि, महिनां में षट-षट करै।
बार मास रै मांहि, बोहितर तो इह विधे॥
५९. वलि संवच्छरी आदि, पोसा ते अठपहरिया।
त्यां दिन तणोज लाधि, व्याज आवै तसु घर मझै॥
६०. लाभ खर्च वलि हाण, द्रव्य सहू नों ते धणी।
नव भांगे पिण जाण, ममत्व-भाव भ्यंतर रह्यु॥
६१. ग्यारमीं पडिमा मांहि, श्रमण सरीखो तसु कह्यो।
पेज्ज बंधण तसु ताहि, ज्ञात तणों छूटो नथी॥
६२. तिण कारण छै तास, न्यातीलां री गोचरी।
दशाश्रुतखंध विमास, तिमहिज सामायिक मझै॥
६३. ते माटै पहिछाण, सामायिक पोसा मझै।
अविरति नां पचखाण, सर्व थकी कीधा नथी॥
६४. आणंद अणसण मांय, आख्यो हूं गृहस्थ अछू।
गृहस्थावास वसाय, अवधि इतरो मुझ ऊपनों॥
६५. आणंद अणसण मांहि, गृहस्थपणों पोतै कह्यं।
तो पड़िमा में ताहि, किम गृहस्थ कहियै नहीं॥
६६. गृहस्थ नैं असणादि, दीधां नैं अनुमोदियां।
दंड चोमासी लाधि, नशीत उदेशे पनरमें॥
६७. तिण सूं पड़िमा मांहि, आहार तणी अविरति अछै।
देणहार नैं ताहि, आज्ञा नहिं अरिहंत नीं॥
६८. तिण कारण कहिवाय, श्रावक नीं जे आतमा।
सामायिक रै मांय, अधिकरण इण न्याय छै'॥
(ज० स०)

६१,६२. अहावरा एक्कारसमा उवासगपडिमा·······केवलं 'से णातए' पेज्जबंधणे अव्वोच्छिन्ने भवति एवं से कप्पति नायवीथिं एत्तए। (दसासुय० ६।१८)

६४. तए णं से आणंदे समणोवासए·······मम वि गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे। (उवासगदसाओ १।७६)

६६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं वा (४) देति, देंतं वा सातिज्जति। (निसीहज्झयणं १५।७६)

६९. *हे भगवन! श्रावक तिको, पहिलांईज पिछाण।
त्रस वधवो पचख्यो तिणे, पृथ्वी नां अपचखाण॥

७०. ते पृथ्वी खणते थके, कोइक त्रस हणाय।
तो प्रभु! श्रावक व्रत तणो, अतिचार-रूप भंग थाय?
७१. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, नहिं निश्चै प्रवर्त्तेह।
त्रस नीं वध करिवा भणी, संकल्पी नैं जेह॥

### सोरठा

७२. त्रस वध करिवो मोय, इम संकल्पी निवर्त्यो।
संकल्प न थयो कोय, तिण सूं व्रत अतिचार नहिं॥

६९. समणोवासगस्स णं भंते! पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवइ, पुढवि-समारंभे अपच्चक्खाए भवइ।
७०. से य पुढविं खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा, से णं भंते! तं वयं अतिचरति?
७१. णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवायाए आउट्टति। (श० ७।६)
'तस्य' त्रसप्राणस्य 'अतिपाताय' वधाय 'आवर्त्तते' प्रवर्त्तते इति न संकल्पवधोऽसौ। (वृ० प० २८९)
७२. संकल्पवधादेव च निवृत्तोऽसौ, न चैष तस्य संपन्न इति नासावतिचरति व्रतं, (वृ० प० २८९)

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७३. *हे भगवन! श्रावक तिको, पहिलांईज पिछाण।
वनस्पती हणवा तणां, कीधा तिण पचखाण॥
७४. ते पृथ्वी खणते थके, इक तरु-मूल छिदाय।
तो प्रभु! श्रावक व्रत तणो, अतिचार-रूप भंग थाय?
७५. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, नहिं निश्चै प्रवर्त्तेह।
वनस्पती हणवा भणी, संकल्पी न करेह॥
७६. श्रमणोपासक हे प्रभु! तथारूप जे योग्य।
श्रमण अनें माहण प्रतैं, बिहुं वच मुनि प्रयोग्य॥
७७. फासु अचित्तज एषणी, असणादिक जे च्यार।
प्रतिलाभतो स्यूं लहै? हिव जिन उत्तर सार॥
७८. तथारूप श्रमण माहण भणी, श्रमणोपासक जेह।
असणादिक प्रतिलाभतो, अधिक भक्ति करि एह॥

७९. श्रमण अनें माहण भणी, पवर समाधि पमाय।
तेहिज समाधि लहै तिको, दाने करि नें ताय॥

८०. श्रमणोपासक हे प्रभु! श्रमण-माहण प्रति जेह।
जाव आहार प्रतिलाभतो, भक्ति भाव करि तेह॥

८१. किं चयइ ते स्यूं दियै? जिन कहै जीवित दान।
असणादिक देतो छतो, जीवित नीं परि जान॥

८२. दुच्चयं चयइ पाठ छै, दुस्त्यज त्याग पिछान।
देवूं छै जे दोहिलो, तेह दियै ए दान॥

८३. दुक्करं करेइ पाठ छै, करतां दुक्कर जाण।
करणी तेह करै तिका, पात्रदान गुणखाण॥
८४. अथवा किं चयइ प्रभु! ते नर स्यूं छांडेह?
जिन कहै दीर्घ स्थिति कर्म नीं, तेहनें तेह तजेह॥

८५. दुच्चयं जे दुष्ट कर्म नों, संचय नेंज तजेह।
दुक्कर अपूर्वकरण थी, ग्रंथी-भेद करेह॥
८६. दुर्लभ अनिवृत्ति-करण नें, लाभे तेह विचार।
बोधि समदृष्टि प्रति अनुभवै, पछै जावै मोक्ष मझार॥

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे

७३. समणोवासगस्स णं भंते! पुव्वामेव वणप्फइसमारंभे पच्चक्खाए।
७४. से य पुढविं खणमाणे अण्णयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा, से णं भंते! तं वयं अतिचरति?
७५. नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु से तस्स अतिवायाए आउट्टति। (श० ७।७)
७६. समणोवासए णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा

७७. फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे किं लब्भइ?
७८. गोयमा! समणोवासए णं तहारूवं समणं वा माहणं वा फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे
७९. तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पाएति, समाहिकारए णं तामेव समाहिं पडिलभइ।
(श० ७।८)
८०. समणोवासए णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे
८१. किं चयति?
गोयमा! जीवियं चयति,
'किं चयइ?' त्ति किं ददातीत्यर्थः 'जीवियं चयइ' त्ति जीवितमिव ददाति, अन्नादिद्रव्यं यच्छन् जीवितस्यैव त्यागं करोतीत्यर्थः। (वृ० प० २८६)
८२. दुच्चयं चयति,
दुस्त्यजमेतत्, त्यागस्य दुष्करत्वात्।
(वृ० प० २८६)
८३. दुक्करं करेति,

८४. अथवा किं त्यजति—किं विरहयति? उच्यते, जीवितमिव जीवितं कर्म्मणो दीर्घां स्थितिं।
(वृ० प० २८६)
८५. 'दुच्चयं' ति दुष्टं कर्म्मद्रव्यसञ्चयं 'दुक्करं' ति दुष्करमपूर्वकरणतो ग्रन्थिभेदं। (वृ० प० २८६)
८६. दुल्लहं लहइ, बोहिं बुज्झइ, तओ पच्छा सिज्झति जाव अंतं करेति। (श० ७।९)
'दुल्लभं लभइ, त्ति अनिवृत्तिकरणं लभते, ततश्च 'बोहिं बुज्झइ' त्ति 'बोधिं' सम्यग्दर्शनं 'बुध्यते' अनुभवति। (वृ० प० २८६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## यतनी

८७. श्रमणोपासक पहिछाण, साधु नीं सेवा मात्र सुजाण ।
एह सूत्र छै ते अपेक्षाय, वृत्तिकार कह्यु इम वाय ॥

८८. साधु नीं सेवा थी पिछाण, फासु-एषणीक नों जाण ।
तथा श्रावक पिण ए होय, ते पिण सर्वज्ञ जाणें सोय ॥

८९. बोधि खायक सम्यक्त पाय, दर्शणमोहणी सर्व खपाय ।
तथा बोधि धर्म चारित तथ्य, ते पिण ज्ञानी वदै ते सत्य ॥

९०. श्रमण माहण नैं सुखकार, प्रतिलाभै च्यारूं आहार ।
श्रमण माहण ते मुनि जान, त्यांरी सेवा करी देवै दान ॥

९१. छेहड़ै पामै ते निर्वाण, कह्यु अकर्मपणु प्रधान ।
हिव अकर्म सूत्र कहाय, तिण रो आगल प्रश्न पूछाय ॥

९२. *अंक इकोत्तर नों देश ए, एकसौ ग्यारमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ॥

८७. इह च श्रमणोपासकः साधूपासनामात्रकारी ग्राह्यः, तदपेक्षयैवास्य सूत्रार्थस्य घटमानत्वात् । (वृ० प० २८९)

९१. अनन्तरमकर्म्मत्वमुक्तमतोऽकर्म्मसूत्रम्— (वृ० प० २८९)

## ढाल : ११२

### दूहा

१. कर्म रहित जे जीव नै, गती—गमन भगवान ।
स्यूं अंगीकृत कीजियै ? जिन कहै हंता जान ॥

२. कर्म रहित छै जेहनैं, गती—गमण भगवंत !
अंगीकृत किम कीजियै ? हिव जिन उत्तर तंत ॥

३. निस्संगपणैं करि नैं प्रथम, अघमल नैं अपहाय ।
नीरागपणैं करि नैं वली, मोह टालवै थाय ॥

४. गति परिणाम करी वली, गति स्वभाव करि सोय ।
तुंबा नीं परि जाणवो, आगै वर्णन होय ॥

५. कर्म बंधन नैं छेदवै, एरंड फल जिम एह ।
इंधन कर्म विमोचवै, धूम्र तणी परि जेह ॥

६. पूर्व प्रयोग करी वलि, सकर्मपणां रै मांय ।
गतिपरिणामपणैं करी, बाण तणी पर थाय ॥

१. अत्थि णं भंते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ?
हंता अत्थि । (श० ७।१०)

२. कहण्णं भंते ! अकम्मस्स गती पण्णायति ?

३. गोयमा ! निस्संगयाए, निरंगणयाए,
'निःसङ्गतया' कर्म्ममलापगमेन 'निरंगणयाए' त्ति नीरागतया मोहापगमेन । (वृ० प० २९०)

४. गतिपरिणामेणं,
'गतिपरिणामेणं ति' गतिस्वभावतयाऽलाबुद्रव्यस्येव । (वृ० प० २९०)

५. बंधणछेदणयाए, निरिंधणयाए,
'बंधणच्छेयणयाए' त्ति कर्म्मबन्धनछेदनेन एरण्डफलस्येव 'निरन्धणताए' त्ति कर्मेन्धनविमोचनेन धूमस्येव । (वृ० प० २९०)

६. पुव्वप्पओगेणं,
सकर्मतायां गतिपरिणामवत्त्वेन बाणस्येवेति । (वृ० प० २९०)

---

* लय : किण किण नारी सिर घड़ो रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. इण प्रकार करिनैं सही, कर्म रहित नैं देख ।
शिव-गति प्रति अभ्युपगमन, हिव विस्तार विशेख ॥

**वा०**—इहां निस्संगपणै करी, नीरागपणै करी, गति-परिणाम करी, बंधण नैं छेदवै करी, निरंधणपणैं करी, पूर्वप्रयोगे करी—ए छह प्रकारे करी अकर्म नै शिवगति अंगीकार कीजियै । इम प्रभु कह्यो । तिवारै गोतम निस्संग, नीराग, गति-परिणाम—ए तीन नुं प्रश्न वली पूछै—

*आ तो थांरी बाण लगै हो प्रभु ! प्यारी,
थांरी सूरत री बलिहारी ।
आ तो थांरी वाण लगै हो प्रभु ! प्यारी । (ध्रुपदं)

८. हे भगवंत ! निस्संगपणै करी, कर्म-मल दूर निवारी ।
निरंगणयाए नीरागपणै करी, मोह कर्म नैं टारी ॥
९. गइ-परिणाम ते गति नैं स्वभावे, तुंबडी नीं परि धारी ।
कर्म रहित नैं हे प्रभु ! शिव-गति किम कीजियै अंगीकारी ?
१० श्री जिन भाखै यथादृष्टांते, कोइक पुरुष तिवारी ।
सूको तूंबडो छिद्र रहित ते, उत्तम अधिक उदारी ॥
(आ तो जिन वाण सदा जयकारी)
११. वायु प्रमुख करिनै न हणाणो, अनुक्रम परिक्रमकारी ।
दर्भ ते मूल सहित डाभे करि, छिन्न मूल कुस धारी ॥
१२. ते डाभ कुसे करि वींटै तुंबो, लेप मट्टी अठ कारी ।
इक-इक लेप दे तड़के सुकावै, इम अठ लेप प्रकारी ॥
१३. सूकां छतां ते तुम्ब प्रतै हिव, उदग अथाग मभारी ।
जेह उदक तिरियो नहिं जावै, पुरुष थी ऊंडो अपारी ॥
१४. तेह उदक में प्रक्षेपै तुंबो, सुण गोतम ! गणधारी ।
जेह तुंबडो अष्ट माटी नैं, लेप करी तिहवारी ॥
१५. गुरुयत्ताए विस्तीर्णपणैं करि, भारियत्ताए भारी ।
गुरुसंभारियत्ताए तणों अर्थ, उभयपणैं अधिकारी ॥
१६. उदक तणां तल प्रति छांडी नैं, अधो धरणि तल धारी ।
भूमि विषे रहै तेह तूंबडो ? इम प्रभु पूछै तिवारी ॥
१७. हां भगवंत ! रहै कहै गोयम, तब बोल्या जगतारी ।
हिव ते तुंब अठ लेप माटी नां, क्षय थये थके तिवारी ॥
१८. पृथ्वी तणां तल प्रति छांडी नैं, उदक ऊपर रहै धारी ।
इम जिन पूछै गोतम बोलै, हां प्रभु ! रहै तिवारी ॥
१९. वीर कहै तब इम निश्चै करि, सुण गोयम! सुखकारी ।
निस्संगपणै निरागपणै करि, गति-परिणाम विचारी ॥

७. अकम्मस्स गती पण्णायति । (श० ७।११)

८. कहण्णं भंते ! निस्संगयाए, निरंगणयाए,

९. गतिपरिणामेणं अकम्मस्स गती पण्णायति ?

१०. से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तुंबं निच्छड्डं

११, १२. निरुवहयं आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे-परिकम्मेमाणे दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढेत्ता अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिपइ, लिपित्ता उण्हे दलयति,
'निरुवहयं' ति वाताद्यनुपहतं 'दब्भेहि य' त्ति दर्भैः समूलैः 'कुसेहि य' त्ति कुशैः—दर्भैरेव छिन्नमूलैः
(वृ० प० २६०)

१३. भूतिं-भूतिं सुक्कं समाणं अत्थाहमतारमपोरिसियंसि

१४. उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा ! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवाणं ।

१५. गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसंभारियत्ताए

१६. सलिलतलमतिवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ ?

१७. हंता भवइ ।
अहे णं से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवाणं परिक्खएणं

१८. धरणितलमतिवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइट्ठाणे भवइ ?
हंता भवइ ।

१९. एवं खलु गोयमा ! निस्संगयाए, निरंगणयाए, गति-परिणामेणं

* लय : आवत मेरी गलियन में गिरधारी

२०. कर्म रहित नैं वर शिव-गति नों, अभ्युपगम अंगीकारी।
अर्थ हिवै बंधन छेदन नों, सांभलज्यो हितकारी॥
२१. किम भगवंत ! बंधन छेदन करि, कर्म रहित नैं सारी।
शिव-गति नों अंगीकार करेवो ! वीर कहै तिणवारी॥
२२. यथादृष्टांत कलायज नामैं, धान तणी फलि धारी।
फली मूंग नैं उड़द तणी वलि, सिंबलि तरु नीं विचारी॥

२३. अथवा एरंड तणो वलि मींजी, तावड़ै दीधी तिवारी।
सूकी थकी फूटी निकली नैं, पड़ै एकंत भूमि मझारी॥
२४. इम निश्चै करिनैं हे गोतम ! बंधन छेदवै सारी।
कर्म रहित नैं वर शिव-गति नों, अभ्युपगम है उदारी॥
२५. जे भगवंत ! निरंधणपणैं करि, कर्म रहित नैं उदारी।
किम अंगीकार करै शिव-गति वर ? हिव जिन वाण उचारी॥
२६. यथादृष्टांते इंधण रहित जे, धूम्र स्वभावे तिवारी।
निर्व्याघातपणैं ऊंची गति, तेह प्रवर्त्तै जिवारी॥

२७. इम निश्चै करि नैं हे गोतम ! कर्म इंधन अपहारी।
कर्म रहित नैं शिव गति सुंदर, कीजियै छै अंगीकारी॥
२८. पूर्वे प्रयोगे करि किम प्रभुजी ! कर्म रहित नैं सारी।
शिव-गति वर अंगीकार कीजियै ? हिव जिन भाखै उदारी॥
२९. यथादृष्टांत धनुष्य थी छूटो, कंड ते बाण तिवारी।
लक्ष-वेध नैं साहमो प्रवर्त्ते, निर्व्याघात गतिकारी॥
३०. इम निश्चै करि नै हे गोतम ! पूर्व प्रयोग विचारी।
कर्म रहित नैं मोक्ष तणी गति, प्रवर्त्तै सुखकारी॥
३१. इम निश्चै करि नैं हे गोतम ! निस्संगपणैं उदारी।
नीरागपणैं जाव पूर्व प्रयोगे, अकर्म नैं गति सारी॥
३२. एकोत्तर नूं देश ढाल ए, एक सौ बारमीं धारी।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति सारी॥

२०. अकम्मस्स गती पण्णायति। (श० ७।१२)

२१. कहण्णं भंते ! बंधणछेदणयाए अकम्मस्स गती पण्णायति ?

२२. गोयमा ! से जहानामए कलसिंबलिया इ वा, मुग्गसिंबलिया इ वा, माससिंबलिया इ वा, सिंबलिसिंबलिया इ वा
'कलसिंबलियाइ वा' कलायाभिधानधान्यफलिका 'सिंबलि' त्ति वृक्षविशेषः। (वृ० प० २९०)

२३. एरंडमिंजिया इ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी फुडित्ता णं एगंतमंतं गच्छइ।

२४. एवं खलु गोयमा ! बंधणछेदणयाए अकम्मस्स गती पण्णायति। (श० ७।१३)

२५. कहण्णं भंते ! निरिंधणयाए अकम्मस्स गती पण्णायति ?

२६. गोयमा ! से जहानामए धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघाएणं गती पवत्तति।
'विस्रसया' स्वभावेन। (वृ० प० २९०)

२७. एवं खलु गोयमा ! निरिंधणयाए अकम्मस्स गती पण्णायति। (श० ७।१४)

२८. कहण्णं भंते ! पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गती पण्णायति ?

२९. गोयमा ! से जहानामए कंडस्स कोदंडविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही निव्वाघाएणं गती पवत्तइ।

३०. एवं खलु गोयमा ! पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गती पण्णायति।

३१. एवं खलु गोयमा ! निस्संगयाए, निरंगणयाए, जाव (सं० पा०) पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गती पण्णायति। (श० ७।१५)

## ढाल ११३

### दूहा

१. कही अकर्मी नीं कथा, तास विपर्यय जेह।
कर्म सहित जे जीव नीं, वक्तव्यताज कहेह॥

१. अकर्म्मणो वक्तव्यतोक्ता, अथाकर्म्मविपर्ययभूतस्य कर्म्मणो वक्तव्यतामाह— (वृ० प० २९०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. दुःख निमित्तज कर्म है, कर्मवंत जे जीव।
तेह दुखी कर्मे करी फर्स्यो बद्ध अतीव?
३. कै अदुखी कर्मे करी फर्स्यो बंध्यो स्वाम?
उभय प्रश्न ए पूछिया, हिव जिन भाखै ताम।।
४. दुखी कर्मवंत कर्म करि फर्स्यो कर्म बंधाय।
अदुखी कर्म रहीत जे, कर्मे फर्स्यो नांय।।
५. अदुखी कर्म रहीत नैं, कर्म फर्श जो थाय।
तो अदुखी जे सिद्ध नैं, कर्म प्रसंग कहाय।।
६. दुखी कर्मवंत नारकी, कर्मे फर्स्यो जेह।
अदुखी नारक अकर्मी, कर्म करी फर्शेह?
७. जिन भाखै जे नारकी, दुखी कर्मवंत जोय।
दुख निमित्त कर्मे करी, फर्स्यो ते अवलोय।।
८. अदुखी अकर्म नारकी, कर्मे फर्स्यो नांय।
अदुखी नारक छै नहीं, प्रश्न रूप कहिवाय।।
९. पूर्वे भोगव्यो नरक पद, तेह जीव नैं जाण।
नारक कहियै एहवूं, किण ही टबै पिछाण।।
१०. नेगम नय मानै अछै, त्रिहूं काल अवदात।
तिण वच करि केई कहै, जाणैं केवली बात।।
११. इम दंडक यावत कह्यो, वैमानिक पर्यंत।
कहिवा दंडक पंच इम, आगल नाम उदंत।।
१२. दुखी कर्मवंत जीव ते, दुख कर्मे करि ताय।
फर्स्यो बांध्यो कर्म नैं, प्रथम आलाव कहाय।।
१३. दुखी कर्मवंत जीव जे, कर्म प्रतैज ग्रहंत।
निधत्त नैं निकाच फुनि, समस्तपणै करंत।।
१४. दुखी कर्मवंत जीव जे, कर्म उदीरै जेह।
दुखी कर्मवंत कर्म नैं, वेदै चउथो एह।।
१५. दुखी कर्मवंत जीव जे, कर्म निरजरै जान।
आलावो ए पंचमो, आख्यो श्री भगवान।।
१६. कर्म बंध अधिकार थी, अघ बंध चिंत सहीत।
ते अणगार तणो हिवै, कहियै सूत्र वदीत।।
१७. *अणगार अहो भगवंत! उपयोग रहित चालंत हो।
जिनवर जयकारी।।
उपयोग रहित पहिछाण, ऊभो रहितो जिह स्थान हो।
जिनवर जयकारी।।
१८. उपयोग रहित वेसंतो, उपयोग रहित सूवंतो।
वस्त्र पात्र कंबल रजुहरण, उपयोग रहित करै ग्रहण।।

*लय : हिवै कहै छै रूप श्री नार

२, ३. दुःखनिमित्तत्वात् दुःखं—कर्म्म तद्वान् जीवो दुःखी। (वृ० प० २९०)
दुक्खी भंते! दुक्खेणं फुडे?
अदुक्खी दुक्खेणं फुडे?
४. गोयमा! दुक्खी दुक्खेणं फुडे, नो अदुक्खी दुक्खेणं फुडे। (श० ७।१६)
५. अदुःखी—अकर्म्मा दुःखेन स्पृष्टः, सिद्धस्यापि तत्प्रसङ्गादिति। (वृ० प० २९१)
६. दुक्खी भंते! नेरइए दुक्खेणं फुडे? अदुक्खी नेरइए दुक्खेणं फुडे?
७. गोयमा! दुक्खी नेरइए दुक्खेणं फुडे।
८. नो अदुक्खी नेरइए दुक्खेणं फुडे। (श० ७।१७)
११. एवं दंडओ जाव वेमाणियाणं। (श० ७।१८)
एवं पंच दंडगा नेयव्वा—
१२. दुक्खी दुक्खेणं फुडे,
१३. दुक्खी दुक्खं परियायइ,
'दुःखी' कर्म्मवान् 'दुःखं' कर्म्म 'पर्याददाति' सामस्त्येनोपादत्ते, निधत्तादि करोतीत्यर्थः। (वृ० प० २९१)
१४. दुक्खी दुक्खं उदीरेइ, दुक्खी दुक्खं वेदेति,
१५. दुक्खी दुक्खं निज्जरेति। (श० ७।१९)
१६. कर्म्मबन्धाधिकारात्कर्म्मबन्धचिन्तान्वितमनगारसूत्रम्— (वृ० प० २९१)
१७. अणगारस्स णं भंते! अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा, चिट्ठमाणस्स वा,
१८. निसीयमाणस्स वा, तुयट्टमाणस्स वा, अणाउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गेण्हमाणस्स वा,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. उपयोग रहित वलि मूकै, इम बार बार ते चूकै ।
इरियावहि तसु थाय, अथवा बंधै संपराय ?
२०. जिन कहै इरियावहि नांय, संपरायकी किरिया बंधाय ।
जब गोतम पूछै न्याय, किण अर्थे इम कहिवाय ?

१९. निक्खिवमाणस्स वा तस्स णं भंते ! किं रियावहिया किरिया कज्जइ ? संपराइया किरिया कज्जइ ?
२०. गोयमा ! नो रियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ । (श० ७।२०)
से केणट्ठेणं ?

२१. जिन कहै क्रोध अरु मान, माया अरु लोभ पिछान हो ।
गोयम गणधारी ।।
जिण रै उदय न होय प्रसिद्धा, उपशांत तथा क्षय कीधा हो ।
गोयम गणधारी ।।
२२. तसु इरियावहि बंधाय, हिव संपराय नो न्याय ।
जसु क्रोध मान अरु माय, वलि लोभ उदय कहिवाय ।।
२३. उपशांत सर्वथा नांही, वलि क्षय पिण न किया त्यांही ।
तसु संपरायकी किरिया, सरागी तणैं उच्चरिया ।।
२४. जिम कह्यो सूत्र में सागी, तिम प्रवर्त्तै वीतरागी ।
ते कदेई न चूकै ताय, तसु इरियावहि बंधाय ।।
२५. विपरीत प्रवर्त्तै ताय, तसु संपरायकी थाय ।
उत्सूत्र प्रवर्त्तै एह, तिण अर्थे एम कहेह ।।

२१. गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति
'वोच्छिन्ने' त्ति अनुदिताः, (वृ० प० २९२)
२२, २३. तस्स णं रियावहिया किरिया कज्जइ, जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ ।
२४. अहासुत्तं रीयमाणस्स रियावहिया किरिया कज्जइ,
२५. उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ । से णं उस्सुत्तमेव रीयती । से तेणट्ठेणं । (श० ७।२१)

**सोरठा**

२६. आख्यो ए अणगार, तेह तणां अधिकार थी ।
तसु भोजन पान विचार, जेह सूत्र कहियै हिवै ।।
२७. *अथ हिवै अहो भगवान ! चारित्र ईंधन पहिछान ।
अंगार कोयला देख, ते सरिखो करै विशेख ।।
२८. जे भोजन विषय सुराग, तेहिज छै अग्नि अथाग ।
जे वर्त्तै अंगार सहीत, तेह सअंगार कहीत ।।
२९. सअंगार पाणी नैं भोजन, तेहनों स्यूं अर्थ कथन ?
ए प्रथम प्रश्न आख्यात, हिव द्वितीय सधूम कहात ।।
३०. चरण रूप इंधण नैं एह, करै धूम सरीखो जेह ।
ए द्वेष सहित करै आहार, तेहनों कुण अर्थ विचार ।।
३१. लोलपणो आणी मन मांय, द्रव्य सूं अन्य द्रव्य मिलाय ।
दुष्ट दोष संयोजन नाम, तसु कवण अर्थ ताम ?
३२. ए त्रिहुं प्रश्न सकज्जा, जिन भाखै निर्ग्रंथ अज्जा ।
फासु एषणीक चिहुं आहार, वहिरी नैं तेह तिवार ।।

२६. अनगाराधिकाराच्च तत्पानकभोजनसूत्राणि— (वृ० प० २९१)
२७. अह भंते ! सइंगालस्स,
'सइंगालस्स' त्ति चारित्रेन्धनमङ्गारमिव यः करोति (वृ० प० २९२)
२८, २९. भोजनविषयरागाग्निः सोऽङ्गार एवोच्यते तेन सह यद् वर्त्तते पानकादि तत् साङ्गारं, (वृ० प० २९२)
३०. सधूमस्स,
चारित्रेन्धनधूमहेतुत्वात् धूमो—द्वेषस्तेन सह यत्पानकादि तत् सधूमम् । (वृ० प० २९२)
३१. संजोयणादोसदुट्ठस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?
संयोजना—द्रव्यस्य गुणविशेषार्थं द्रव्यान्तरेण योजनं सैव दोषस्तेन दुष्टं यत्तत्तथा । (वृ० प० २९२)
३२. गोयमा ! जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता

*लय : हिवै कहै छै रूप थी नार



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. करै मूर्च्छा सहित आहार, दोष अजाणवा थी धार ।
गृद्धपणें आहार नैं करतो, तसु विशेष वांछा धरतो ।।

३४. गढिए ते आहार नें जाणो, स्नेह तंतू करि गूथांणो ।
अज्झोववन्ने पहिछाणी, एकाग्र चित तसु जाणी ।।

३५. करै आहार सराय-सराय, चारित्र नां कोयला थाय ।
अंगार-सहित ए ताय, पाणी-भोजन कहिवाय ।।
३६. निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी सार, निर्दोष ग्रहि चिउं आ'र ।
अप्रीतिपणो अति आणी, क्रोध थकी खेद तनु ठाणी ।।
३७. निरस आ'र करै विसराय, धूंओ ऊठै चारित्र मांय ।
ए सधूम भोजन-पाण, हे गोतम ! इह विध जाण ।।

३८. निर्ग्रंथ-निर्ग्रंथी सार, निर्दोष ग्रही चिउं आ'र ।
गुण-रस उपजावण हेत, अति लोलपणा थी तेथ ।।

३९. अन्य द्रव्य संघात संयोजी, इम असणादिक नों भोजी ।
दुष्ट दोष संयोजन आहार, पाणी भोजन ए धार ।।
४०. अंगार-सहित नों एह, सधूम नों अर्थ कहेह ।
दोष दुष्ट संयोजन पान-भोजन नुं ए अर्थ जान ।।

**गीतक छंद**

४१. अथ हे प्रभू ! अंगार-रहितज, विगत-धूम वखाणियै ।
संयोग नां फुन दोष रहितज, पान-भोजन जाणियै ।।
४२. कुण अर्थ आख्यो ए त्रिहुं नों ? एम गोयम गणहरे ।
वर प्रश्न पूछ्यं छते, श्री जिनराज उत्तर उच्चरे ।।

४३. *जिन कहै संत अरु समणी, वर नीत आतम नें दमणी ।
निर्दोष ग्रही चिहुं आहार, मूर्च्छा रहित थको तिणवार ।।

४४. यावत इम करै आहार, चारित्र नहिं हुवै अंगार ।
अंगार-रहित जल अन्न, हे गोतम ! एह सुजन्न ।।
४५. जे समणी-संत सुतोष, जाव आहार ग्रही निर्दोष ।
महा अप्रीति भाव मन धार, जाव विसराई न करै आहार ।।

४६. तसु चरण में धूंओ न होय, हे गोतम ! इह विध जोय ।
धूम-दोष-रहित ए जाण, आख्यो है भोजन-पाण ।।

*लय : हिवै कहै छै रूप श्री नार

३३. मुच्छिए गिद्धे
'मुच्छिए' त्ति मोहवान् दोषानभिज्ञत्वात् 'गिद्धे' त्ति तद्विशेषाकाङ्क्षावान् । (वृ० प० २९२)
३४. गढ़िए अज्झोववन्ने,
'गढ़िए' त्ति तद्गतस्नेहतन्तुभिः संदर्भितः 'अज्झोववन्ने' त्ति तदेकाग्रतां गतः । (वृ० प० २९२)
३५. आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा ! सइंगाले पाण-भोयणे ।
३६, ३७. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता महया-अप्पत्तियं कोहकिलामं करेमाणे आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा ! सधूमे पाण-भोयणे ।
'कोहकिलामं' ति क्रोधात् क्लमः—शरीरायासः (वृ० प० २९२)
३८. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता गुणुप्पायणहेउं
'गुणुप्पायणहेउं' ति रसविशेषोत्पादनायेत्यर्थः (वृ० प० २९२)
३९. अण्णदव्वेण सद्धिं संजोएत्ता आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा ! संजोयणादोसदुट्ठे पाण-भोयणे ।
४०. एस णं गोयमा ! सइंगालस्स, सधूमस्स, संजोयणा-दोसदुट्ठस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते । (श० ७।२२)

४१, ४२. अह भंते ! वीतिंगालस्स, वीयधूमस्स, संजोयणा-दोसविप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

४३. गोयमा ! जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता अमुच्छिए ।
४४. जाव (सं० पा०) आहारेइ, एस णं गोयमा ! वीतिंगाले पाण-भोयणे ।
४५. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता णो महयाअप्पत्तियं कोहकिलामं करेमाणे आहारमाहारेइ,
४६. एस णं गोयमा ! वीयधूमे पाण-भोयणे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. जे संत-सती सुखकार, निर्दोष ग्रही तिणवार।
जिम लाधो तिम आहारंत, लोलपणो दूर तजंत॥

४८. हे गोतम! एह पुनीतं, संयोजन-दोष-रहीतं।
पाणी-भोजन कहिवाय, इम भाखै श्री जिनराय॥

४९. ए वीतो दोष अंगार, वलि विगत धूम सुविचार।
दोष दुष्ट संयोज रहीतं, अन्न जल नुं अर्थ ए कहीतं॥

५०. एकोत्तर देश निहाल, एकसौ नैं तेरमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय, सुख 'जय-जश' हरष सवाय॥

४७. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता जहा लद्धं तहा आहारमाहारेइ,

४८. एस णं गोयमा! संजोयणादोसविप्पमुक्के पाण-भोयणे।

४९. एस णं गोयमा! वीतिंगालस्स, वीयधूमस्स, संजो-यणादोसविप्पमुक्कस्स पाणभोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।
(श० ७।२३)

'वीइंगालस्स' त्ति वीतो गतोऽङ्गारो—रागो यस्मात्त-द्वीताङ्गारं, (वृ० प० २९२)

## ढाल ११४

### दूहा

१. अथ क्षेत्रातिक्रांत प्रभु! कालातिक्रांत कहंत।
वलि मारग अतिक्रांत नुं, फुन प्रमाण अतिकंत॥

२. ए च्यारूं नां उदक नां, वलि भोजन नां जोय।
अर्थ किसो जे आखियो? ए पूछा अवलोय॥

१,२. अह भंते! खेत्तातिक्कंतस्स, कालातिक्कंतस्स मग्गातिक्कंतस्स, पमाणातिक्कंतस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

३. सूर्य संबंधी खेत्र छै, ताप-खेत्र दिन हुंत।
अतिक्रांत ते अतिक्रम्यो, ए क्षेत्रातिक्रंत॥

३. 'खेत्ताइक्कंतस्स' त्ति क्षेत्रं—सूर्यसम्बन्धि तापक्षेत्रं दिनमित्यर्थः तदतिक्रान्तं यत्तत् क्षेत्रातिक्रान्तम्।
(वृ० प० २९२)

४. तेह दिवस नां पहर त्रिण, अतिक्रम्यो जे काल।
ते कालातिक्रांत छै, वारू अर्थ निहाल॥

४. 'कालाइक्कंतस्स' त्ति कालं—दिवसस्य प्रहरत्रयलक्षण-मतिक्रान्तं कालातिक्रान्तम्। (वृ० प० २९२)

५. मार्ग अर्ध जोजन प्रतै, अतिक्रम्यो जे माग।
ते मार्गातिक्रांत छै, मारग तणो विभाग॥

५. 'मग्गाइक्कंतस्स' त्ति अर्द्धयोजनमतिक्रान्तस्य।
(वृ० प० २९२)

६. कवल बतीस प्रमाण जे, अतिक्रम्यो प्रमाण।
प्रमाणातिक्रांत ते, दाख्यो श्री जगभाण॥

६. 'पमाणाइक्कंतस्स' त्ति द्वात्रिंशत्कवललक्षणमति-क्रान्तस्य। (वृ० प० २९२)

७. ए चिहुं नां पाणी तणो, वलि भोजन नों अर्थ।
किसुं परूप्यो हे प्रभु! हिव जिन कहै तदर्थ॥

८. *जे निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी फासु एषणी रे, असणादिक च्यारूं आहार जिवार रे।
सूर्य विण ऊगै बहिरी करो रे, रवि ऊगां पाछै ते करै आहार रे।
ए क्षेत्रातिक्रांत पाण भोजन कह्यो रे॥

८. गोयमा! जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं अणुग्गए सूरिए पडिग्गाहेत्ता उग्गए सूरिए आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा! खेत्तातिक्कंते पाण-भोयणे।

*लय : श्री जिनवर गणधर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. जे निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी फासु एषणी, असणादिक च्यारूं आहार जिवार।
पोहर पहिला मांहै बहिरी करी, भोगवै चउथा पोहर मझार॥
ए कालातिक्रांत पाण भोजन कह्यो रे॥

१०. जे निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी फासु एषणी, असणादिक च्यारूं आहार जिवार।
योजन अर्द्ध तणी मर्याद थी, उपरंत ले जाइ करै आहार।
ए मार्गातिक्रांत पाण भोजन कह्यो रे॥

११. जे निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी फासु एषणी, बहिरी असणादिक चिहुं जेह।
बत्तीस कुकुड़ी अंड प्रमाण छै, ते मात्र-कवल थी अधिक जीमेह।
ए प्रमाणातिक्रांत पाण भोजन कह्यो रे॥

**सोरठा**

१२. कुकुड़ी अंडक जाण, जे प्रमाण है मान तसु।
ते परिमाण पिछाण, कुकुड़ी अंडग ते कह्यं॥

१३. तथा कुटी जिम जाण, जीव तणां आश्रय थकी।
कुटी शरीर पिछाण, अशुच-बहुल थी कुकुटी॥

१४. कुकुटी तनु कहिवाय, तेहनां अंड तणी परै।
अंडक आहारज थाय, उदर पूरक नां भाव थी॥

१५. कुकुटी अंड तद्रूप, प्रमाण थी मात्रा तसु।
बत्तीसम अंश रूप, अंड प्रमाण मात्रा तिका॥

१६. कुकुड़ी अंडग प्रमाण, कवल बत्तीस ए अर्थ धुर।
उदर प्रमाणे जाण, द्वितिय अर्थ ए जाणवूं॥

१७. प्रथम अर्थ बत्तीस, कवल कह्या जे पुरुष नां।
बहुलपणै ए दीस, कहुं द्वितिय अर्थ नीं वार्त्तिका॥

वा०—जे उदर प्रमाण आहार नीं बात कही, तेहनों ए अभिप्राय—जे पुरुष नों जेतलो आहार ते पुरुष नीं अपेक्षा तिण आहार नों बत्तीसमो भाग कवल। जे चउसठ आदि कवल आहार पिण किण ही स्थाने प्रसिद्ध छै। तेमां पिण एहिज कवल मान नीं अपेक्षाय बत्तीस कवलां थकी प्रमाणोपेतता सिद्ध थाय छै।

चउसठ कवल नुं जेनों आहार अनै ते बत्तीस कवल खावै तो प्रमाणोपेतता केम थाय? केम कै पोता नां भोजन नुं आधुं आहार प्रमाण-प्राप्त भोजन नहीं थइ सकै।

१८. *आठ कुकुड़ी नां अंड प्रमाण जे, ते मात्र कवल नों करै आहार।
अल्प आहारी कहियै तेहनैं, कवल नों लीज्यो न्याय विचार॥
(वीर जिनेश्वर गोतम नैं कहै रे)॥

---

* लय : श्री जिनवर गणधर

९. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पढमाए पोरिसीए पडिग्गाहेत्ता पच्छिमं पोरिसिं उवाइणावेत्ता आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा! कालातिक्कंते पाण-भोयणे।

१०. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं अद्धजोयणमेराए वीइक्कमावेत्ता आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा! मग्गातिक्कंते पाण-भोयणे।

११. जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं बत्तीसाए कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ताणं कवलाणं आहारमाहारेइ, एस णं गोयमा! पमाणातिक्कंते पाण-भोयणे।

१२. कुक्कुट्यण्डकस्य यत् प्रमाणं—मानं तत् परिमाणं—मानं येषां ते तथा (वृ० प० २९२)

१३. अथवा कुकुटीव—कुटीरमिव जीवस्याश्रयत्वात् कुटी—शरीरं कुत्सिता अशुचिप्रायत्वात् कुटी कुकुटी (वृ० प० २९२)

१४. तस्या अण्डकमिवाण्डकं—उदरपूरकत्वादाहारः कुकुट्यण्डकं (वृ० प० २९२)

१५. तस्य प्रमाणतो मात्रा—द्वात्रिंशत्तमांशरूपा येषां ते कुक्कुट्यण्डकप्रमाणमात्रा। (वृ० प० २९२)

१७. प्रथमं व्याख्यानं तु प्रायिकपक्षापेक्षयाऽवगन्तव्यम् (वृ० प० २९२)

वा०—अतस्तेषामयमभिप्रायः—यावान् यस्य पुरुषस्याहारस्तस्याहारस्य द्वात्रिंशत्तमो भागस्तत्पुरुषापेक्षया कवलः, इदमेव कवलमानमाश्रित्य प्रसिद्धकवलचतुःषष्ट्यादिमानाहारस्यापि पुरुषस्य द्वात्रिंशता कवलैः प्रमाणप्राप्ततोपपन्ना स्यात्, न हि स्वभोजनस्यार्द्धभुक्तवतः प्रमाणप्राप्तत्वमुपपद्यते। (वृ० प० २९२)

१८. अट्ठ कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अप्पाहारे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. बारै कुकुड़ी नों अंड प्रमाण जे, ते मात्र कवल नों करै आहार।
अपार्द्ध ऊणोदरि कहियै तेहनैं, आधा सूं ऊणो आहार तिवार॥

वा०—अवड्ढोमोयरियत्ति अवम—ऊणो उदर नुं करवूं अवमोदरिका कहियै। अपकृष्ट किंचित जे ऊण अर्द्ध जे उणोदरी नैं विषे तिका अपार्द्धा। बत्तीस कवल नीं अपेक्षा बारह कवल नैं अपार्द्ध रूपपणां थकी, अर्द्ध ऊणोदरिका में चार कवल ऊणां ते माटै।

२०. सोलै कुकुड़ी नां अंड प्रमाण जे, ते मात्र कवल नो करै आहार।
बे भाग अर्द्ध प्राप्ति तेहनैं कह्यो, अर्द्ध ऊणोदरिका ते सार॥

२१. चउवीस कुकुड़ी नां अंड प्रमाण जे, जाव करतो ऊणोदरी जाण।
जाव शब्द में पाठ कह्या तिके, सूत्र उववाई[1] सूं पहिछाण॥

**सोरठा**

२२. जाव शब्द में ताहि, कहियै प्राप्त उणोदरी।
बीजा अर्द्ध रै मांहि, मध्य भाग प्राप्तज कह्यो॥

२३. कवल बत्तीस प्रसिद्ध, तीन भाग लीधा तिणे।
चोथो भाग न लिद्ध, प्राप्त कहीजै तेहनैं॥

२४. कवल लिये इकतीस, किंचित ऊण उणोदरी।
ए सहु अर्थ जगीस, जाव शब्द में जाणवा॥

२५. *बत्तीस कुकुड़ी नां अंड प्रमाण जे,
ते मात्र कवल नों करतो आहार।
प्रमाण-प्राप्त आहार कहियै तसु,
ए पुरुष मर्याद प्रमाण विचार॥

२६. एहथी इक ग्रास—कवलिय ऊण जे, आहार करै श्रमण निर्ग्रंथ।
तसु अधिक सरसभोजी कहियै नहीं, सूत्रे इम भाख्यो छै भगवंत॥

२७. हे गोतम ! ए क्षेत्रातिक्रांत नां, कालातिक्रांत तणां वलि जाण।
मार्गातिक्रांत प्रमाणातिक्रांत नां, पाण भोजन नां अर्थ पिछाण॥

२८. अथ प्रभु! अग्नि आदि शस्त्रे करी, ऊतर्यो ते शस्त्रातीत कहाय।
कदा अपरिणत ह्वै पहुंकादिक[2] नी परै,
तिण सुं हिव आगल कहियै ताय॥

२९. शस्त्र परिणमियो वर्णादिक फिर्यां,
अचित्त ए प्रासुक कहीजै ताय।
विशुद्ध गवेषण करी गवेषियो, एसिय एषणीक सुखदाय॥

*लय : श्री जिनवर गणधर

१. ओवाइय सू० ३

२. पृथुक, चिवड़ा।

१९. दुवालस कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अवड्ढोमोयरिए,

वा०—'अवड्ढोमोयरिय' त्ति अवमस्य—ऊनस्योदरस्य करणमवमोदरिका, अपकृष्टं—किञ्चिदूनमर्द्धं यस्यां साऽपार्द्धा द्वात्रिंशत्कवलापेक्षया द्वादशानामपार्द्धरूपत्वात्। (वृ० प० २९२, २९३)

२०. सोलस कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे दुभागप्पत्ते,

द्विभागः—अर्द्धं तत्प्राप्तो द्विभागप्राप्त आहारो भवतीति गम्यम् (वृ० प० २९२)

२१. चउव्वीसं कुक्कुडिअंडगपमाणे जाव आहारमाहारेमाणे ओमोदरिए,

२५. बत्तीसं कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे पमाणपत्ते,

२६. एत्तो एक्केण वि घासेणं ऊणगं आहारमाहारेमाणे समणे निग्गंथे नो पकामरसभोईति वत्तव्वं सिया।

२७. एस णं गोयमा ! खेत्तातिक्कंतस्स, कालातिक्कंतस्स, मग्गातिक्कंतस्स, पमाणातिक्कंतस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते। (श० ७।२४)

२८. अह भंते ! सत्थातीतस्स,

शस्त्राद्—अग्न्यादेरतीतं—उत्तीर्णं शस्त्रातीतं, एवंभूतं च तथाविधपृथुकादिवदपरिणतमपि स्यादत आह— (वृ० प० २९३)

२९. सत्थपरिणामियस्स, एसियस्स,

'सत्थपरिणामियस्स' त्ति वर्णादीनामन्यथाकरणेनाचित्तीकृतस्येत्यर्थः, अनेन प्रासुकत्वमुक्तं, 'एसियस्स' त्ति एषणीयस्य गवेषणाविशुद्ध्या वा गवेषितस्य। (वृ० प० २९३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. वेसिय विशेष थकी गवेषियो, अथवा जे विविध प्रकारे ताहि ।
ग्रहण भोगेषण करि विशुद्ध नें, व्येषित अर्थ प्रथम वृत्ति मांहि ।।

३१. अथवा मुनि वेष करीज गवेषियो,
पिण गुण कीर्त्तन करनें लीधो नांहि ।
मुनि नां आकार मात्र थी पामियो,
वैषिक अर्थ द्वितीय वृत्ति मांहि ।।

**सोरठा**

३२. इण वचनें करि जाण, उत्पादन नां दोष फुन ।
तजै मुनी गुणखाण, आगल तेह कहीजियै ।।

३३. *सामुदाणिक ते बहुला घर तणों,
लेवै मुनि पाणी भोजन सार ।
जे इक घर बहु लीधां आरंभ हुवै,
इण विध नहिं लेवै अणगार ।।

३४. शस्त्रातीत नें शस्त्रपरिणम्यो, एसिय वेसिय नै समुदान ।
पाण भोजन नो अर्थ किसो कह्यो ?
ए पांचूं नो पूछ्यो अर्थ प्रधान ।।

३५. श्री जिन भाखै सांभल गोयमा ! निर्ग्रंथ अथवा निर्ग्रंथी सोय ।
केहवो निर्ग्रंथ मुनीश्वर तेहना कहियै विशेषण आगल सोय ।।

३६. शस्त्र खड्गादिक मूसल छांडिया,
ए प्रथम विशेषण मुनि नों जाण ।
पुष्पमाल वण्णक[1] चंदन चर्चण तज्यूं,
ए द्वितीय विशेषण मुनि नो माण ।।

**सोरठा**

३७. मुनि उभय विशेषण ख्यात, हिव शस्त्रातीत प्रमुख तणुं ।
कवण अर्थ जगनाथ ! पूछ्यो ते कहियै अछै ।।

३८. *भोगववा जोग जेह वस्तु विषे, उपनां वा आया जे कीड़ादि ।
ते वस्तु थी पोते इज न्यारा थया, ए ववगय शब्द नुं अर्थ संवादि ।।

३९. असनादिक आहार सचित्त वस्तु अछै,
पुढवि जल अन्न प्रमुख कहिवाय ।
चुय कहितां जंतु आफे चव्या, अथवा जे पर थी चविया ताय ।।

४०. भोगववा जोग अचित्त जे द्रव्य थी, त्रस थावर जीव प्रतै दातार ।
चइय कहितां अन्य पास कढाविया, हिवै चत्तदेहं नो अर्थ विचार ।।

---

* लय : श्री जिनवर गणधर

१. पीठी

३०. वेसियस्स,
विशेषेण विविधैर्वा प्रकारैरेषितं—व्येषितं ग्रहणैषणा-ग्रासैषणाविशोधितं तस्य, (वृ० प० २९३)

३१. अथवा वेषो—मुनिनेपथ्यं स हेतुर्लाभे यस्य तद् वैषिकम्—आकारमात्रदर्शनादवाप्तं न त्वावर्ज्जनया (वृ० प० २९३)

३२. अनेनपुनरुत्पादनादोषापोहमाह— (वृ० प० २९३)

३३. सामुदाणियस्स
ततस्ततो भिक्षारूपस्य । (वृ० प० २९३)

३४. पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

३५. गोयमा ! जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा

३६. निक्खित्तसत्थमुसले ववगयमालावण्णग-विलेवणे
'निक्खित्तसत्थमुसले' त्ति त्यक्तखड्गादिशस्त्रमुशलः 'ववगयमालावन्नगविलेवणे' त्ति व्यपगतपुष्पमाला चन्दनानुलेपनः (वृ० प० २९३)

३८. ववगय-
व्यपगताः—स्वयं पृथग्भूता भोज्यवस्तुसंभवा आगन्तुका वा कृम्यादयः । (वृ० प० २९३)

३९. चुय-
च्युता—मृताः स्वत एव परतो वाऽभ्यवहार्य-वस्त्वात्मकाः पृथिवीकायिकादयः । (वृ० प० २९३)

४०. चइय-
'चइय' त्ति त्याजिता—भोज्यद्रव्यात् पृथक्कारिता दायकेन । (वृ० प० २९३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. भोगविवा जोग अचित्त जे द्रव्य थी, देहं ते जीव सहित तनु तास ।
चत्त दायक स्वयमेव जुदा किया, इहां देही अरु देह अभेद विमास ।।

**सोरठा**

४२. ववगयादि पद च्यार, वृद्ध व्याख्या कर तसुं अरथ ।
आख्युं जेह उदार, तेह अर्थ कहियै हिवै ।।

४३. *वृद्ध व्याख्या तो ववगय ओघ थी, चेतन पर्याय थकी रहीत ।
चुय जीवन-क्रिया थी भ्रष्ट छै, चइय आयु क्षय करी कथीत ।।

४४. संसर्ग थकी जे असणादि विषे, आवी ऊपनां छै जे त्रस जीव ।
आहार थकी जे जंतु नीकल्या, ए चत्तदेहं नुं अर्थ कहीव ।।

४५. पूर्वे स्यूं बात कही ते हिवै कहै, जीवविप्पजढं फासु ताहि ।
दायक मुनि अर्थ आहार कियो नहीं,
फुन दायक अन्य पास करायो नांहि ।।

**सोरठा**

४६. साधु अर्थे आहार, न कियो नहीं करावियो ।
ए उभय विशेषण धार, अणआधाकर्मिक तणां ।।

४७. *प्रारंभ्यो छै पोता नैं कारण,
तेह आहार निपजायो पिण निज काज ।
मुनि नैं अथ ते निपजायो नहीं, ते असंकल्पित लेवै मुनिराज ।।

**सोरठा**

४८. प्रारंभ्यो निज काज, ते पछै निपायो मुनि अरथ ।
संकल्पितक समाज, ते पिण आधाकर्मिकः ।।

४९. प्रारंभ्यो स्व निमित्त, निपजायो पिण निज अरथ ।
एह असंकल्पित्त, अणआधाकर्मी तिको ।।

५०. *गृही कहै नित्य प्रति मुझ घर बहिरियै,
ते नित्यपिंड नहिं लेवै मुनिराय ।
अथवा साहमो आण्यो लेवै नहीं, ए अणाहूयं नो अर्थ कहाय ।।

५१. कृतगड—मोल लियो लेवै नहीं, उद्देशक नहिं लेवै अणगार ।
नव ही जे कोटि करिनैं विशुद्ध छै, कोटि विभाग आगल इम धार ।।

**सोरठा**

५२. बीजादिक जे जीव, हणै हणावै नहिं मुनि ।
अनुमोदै न सदीव, कोटि विभागज तीन ए ।।

* लय : श्री जिनवर गणधर

४१. चत्तदेहं,
'चत्त' त्ति स्वयमेव दायकेन त्यक्ता—भक्ष्यद्रव्यात् पृथक्कृता । 'देहा' अभेदविवक्षया देहिनो यस्मात् स तथा तमाहारं, (वृ० प० २९३)

४३. वृद्धव्याख्या तु व्यपगतः—ओघतश्चेतनापर्यायादपेतः च्युतः—जीववत्क्रियातो भ्रष्टः च्यावितः—स्वत एवायुष्कक्षयेण भ्रंशितः । (वृ० प० २९३)

४४. त्यक्तदेहः—परित्यक्तजीवसंसर्गजनिताहारप्रभवोपचयः, (वृ० प० २९३)

४५,४६. जीवविप्पजढं, अकयं, अकारियं,
'जीवविप्पजढं' ति प्रासुकमित्यर्थः । अकृतं—साध्वर्थमनिर्वर्तितं दायकेन, एवमकारितं दायकेनैव, अनेन विशेषणद्वयेनानाधाकर्म्मिक उपात्तः । (वृ० प० २९३)

४७. असंकप्पियं,
'असङ्कल्पितं' स्वार्थं संस्कुर्वता साध्वर्थतया न सङ्कल्पितं (वृ० प० २९३)

४८. स्वार्थमारब्धस्य साध्वर्थं निष्ठां गतस्याप्याधाकर्म्मिकत्वात् । (वृ० प० २९३)

४९. अनेनाप्यनाधाकर्म्मिक एव गृहीतः । (वृ० प० २९३)

५०. अणाहूयं,
न च विद्यते आहूतं—आह्वानमामन्त्रणं नित्यं मद्गृहे पोषमात्रमन्नं ग्राह्यमित्येवंरूपं कर्म्मकराद्याकारणं वा साध्वर्थं स्थानान्तरादन्नाद्यानयनाय यत्र सोऽनाहूतः—अनित्यपिण्डोऽनभ्याहृतो वेत्यर्थः । (वृ० प० २९३)

५१. अकीयकडं, अणुद्दिट्ठं, नवकोडीपरिसुद्धं,
इह कोटयो विभागास्ताश्चेमाः— (वृ० प० २९४)

५२. बीजादिकं जीवं न हन्ति, न घातयति, घ्नन्तं नानुमन्यते ३, (वृ० प० २९४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. पचवा नां पिण तीन, मोल लेवा नां तीन इम ।
ए नव कोटि कथीन, तिण कर विशुद्ध लै मुनि ।।

५४. *शंकित मक्खित आदि देइ करि, एषणा नां दस दोष रहीत ।
ए दोष लागै ग्रहस्थ साधु थकी, वर्जे ते महामुनि वर नीत ।।

५५. आधाकर्मादि सोलै उद्गम तणां, सोलै उत्पादन धाई आदि ।
एषणा पिंड विशुद्धपणैं करी, सुष्ठु परिशुद्ध पवर संवादि ।।

५६. आख्या अणआख्या इहां संग्रह किया, अंगार धूम दोष थी रहीत ।
संयोजन दोष करी विप्रमुक्त छै, इह वचने कर ग्रास एषणा रीत ।।

वा०—इहां पाठ में दश दोष-विप्रमुक्त कह्यो, तिहां वृत्तिकार शंकित, म्रक्षितादिक कह्या । अनैं पाठ में उद्गम, उत्पादन कह्या । तिहां वृत्तिकार उद्गम ते आधाकर्मादि सोलै प्रकार अनैं उत्पादन ते धाई इत्यादिक सोलै-विध, अनैं दस दोष एषणा नां—इम संक्षेप करिकै ४२ दोष कह्या । अनैं भगवती टबा री, तेहनां पाना १८२२, तेहनैं विषे अर्थ में सोलै उद्गम तणां, सोलै उत्पादन तणां, दस एषणा नां, और पांच मंडला नां—एवं ४७ दोष कह्या, तिण अनुसारे लिखियै छै ।

हिवै आहार नां ४७ दोष लिखियै छै—

तत्र षोडश दोषाः दातारतः समुत्पद्यंते—

**आहाकम्मुद्देसिय पूइकम्मे य मीसजाए य ।**
**ठवणा पाहुडियाए पाओयर कीयपामिच्चे ।।**
**परियट्टिए अभिहडे उब्भिन्ने मालोहडे य ।**
**अच्छिज्जे अणिसिट्ठ अज्झोयरए सोलस पिंडुगम्मे दोसा ।।**

अथ षोडश उद्गमदोषाः—

तत्र साधुनिमित्तं पाचयित्वा दीयते तदाधाकर्मिकं । यः आगमिष्यति तत्-उद्दिश्य निष्पाद्यते तदुद्देशिकं । यदाधाकर्मी-आहार-खरंडित-दर्वी-प्रमुखेण ददाति स पूतिकर्मदोषः । यतिनिमित्तं कुटुंबनिमित्तं च एकत्र पाच्यते पश्चात् साधुभ्यो दीयते स मिश्रजातिदोषः । साधुनिमित्तं संस्थाप्य मुंचति स स्थापनादोषः । साधुनिमित्तं प्राघूर्णकान् पूर्वं पश्चाद् वा भोजयति स प्राभृतिका-दोषः । अंधकारस्थाने उद्योतं कृत्वाऽर्प्ययति स प्रादुष्करणदोषः । विक्रीतं गृहीत्वा साधवे ददाति स क्रीतदोषः । उद्धारकं ग्रहीत्वा साधवे दद्यात् स प्रामित्यदोषः । दातव्यवस्तुनः परावर्त्तं कृत्वा साधवेऽर्प्ययति स परिवर्त्तितदोषः ।

आहारादिकं सन्मुखमानीयाऽर्प्ययति सोभ्याहृतदोषः । यंत्रकमुद्राकपाटादिक-मुद्घाट्याऽर्प्ययति साधवे स उद्भिन्नदोषः । उच्चनीचतिर्यग्विकटभूमितः आहारमुत्तार्य साधवे ददाति स मालापहृतदोषः । स्वयं बलवत्तया अन्यनिर्बलपार्श्वादिवदाल्य साधवेऽर्प्ययति सोऽच्छिद्यदोषः । वस्तुनः स्वामिनौ द्वौ, भावं विना द्विस्वामिकं वस्तु

*लय : श्री जिनवर गणधर

५३. एवं न पचति ३ न क्रीणाति ३ इत्येवंरूपाः,
(वृ० प० २६४)

५४. दसदोसविप्पमुक्कं,
दोषाः—शङ्कितम्रक्षितादयः । (वृ० प० २६४)

५५. उग्गमुप्पायणेसणासुपरिसुद्धं,
उद्गमश्च—आधाकर्म्मादिः षोडशविधः उत्पादना च—धात्रीदूत्यादिका षोडशविधैव उद्गमोत्पादने एतद्विषया या एषणा—पिण्डविशुद्धिस्तयासुष्ठु परिशुद्धो यः स उद्गमोत्पादनैषणासुपरिशुद्धोऽतस्तम्,
(वृ० प० २६४)

५६. वीतिंगालं, वीतधूमं, संजोयणादोसविप्पमुक्कं,
अनेन चोक्तानुक्तसङ्ग्रहः कृतः वीताङ्गारादीनि क्रिया-विशेषणान्यपि भवन्ति, प्रायोऽनेन च ग्रासैषणा-विशुद्धिरुक्ता । (वृ० प० २६४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधवे ददाति सोऽनिसृष्टदोषः। साध्वाऽऽगमनं श्रुत्वा पच्यमानान्नविषयेऽध्यवपूरयत्यन्नं सोऽध्यवपूरकदोषः। एते षोडश दोषा उद्गमदोषा उच्यंते।

अथ षोडश दोषाः साधुतः समुत्पद्यंते, तदाह—

**धाई दूइनिमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।**
**कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस एए॥**
**पुव्विंपच्छासंथव, विज्जामंते य चुण्णजोगे य।**
**उप्पायणाइदोसा, सोलसमे मूलकम्मे य॥**

तत्र धाइत्ति धात्री मातृवत् बालकस्य क्रीडां विधाय आहारं गृह्णाति स धात्रीदोषः। दूतवल्लोकानां संदेशं कथयित्वा आहारं गृह्णाति स दूतिदोषः। नैमित्तिकवन्निमित्तं भाषयित्वा आहारं गृह्णाति स निमित्तदोषः। आत्मनो जातिकुलादिकं ज्ञापयित्वा आहारं गृह्णाति स आजीवदोषः। रंकवत् दीनत्वं भाषयित्वा आहारं गृह्णाति स वनीपकदोषः। वैद्यवत् चिकित्सां विधाय आहारं गृह्णाति स चिकित्सादोषः। क्रोधेन आहारं गृह्णाति स क्रोध-दोषः। अहंकारेण आहारं गृह्णाति स मानदोषः। कपटेन वेषं परावर्त्य आहारं गृह्णाति स मायादोषः। लोभेन बहु आहारं गृह्णाति स लोभदोषः। आहारग्रहणात् पूर्वं पश्चाद्वा दातारं व्याख्याति संस्तौति स पूर्व-पश्चात्-संस्तवदोषः। कार्मणमोहनवशीकरणादिकं कृत्वा आहारं गृह्णाति स विद्या-दोषः। मंत्रतंत्रादिकं कृत्वा आहारं गृह्णाति स मंत्रदोषः। अक्ष्णः चूर्णं दत्वा आहारं गृह्णाति स चूर्णदोषः। सौभाग्यार्थं स्वपदे लेपं कृत्वा आहारं गृह्णाति स योगदोषः। यः आहारार्थं गर्भस्य सातनपातनादिकं करोति स मूलकर्मदोषः। एते षोडश उत्पादन दोषाः। एवं जाता द्वात्रिंशत्।

अथ आहारस्य गवेषणायाः दश दोषानाह—

**संकियमक्खियनिक्खित्तपिहियसाहरियदायगुम्मीसे।**
**अपरिणयलित्तछड्डिय एसणदोसा दस हवंति॥**

संकियत्ति दायकस्य वा साधोः शंका समुत्पद्यते इदं शुद्धं अशुद्धं इति शंकादोषः। सचित्तपृथिव्यादिना खरंडितहस्तेन गृह्णाति स म्रक्षितदोषः। आहारः सचित्तवस्तूपरि मुक्तो भवति स निक्षिप्तदोषः। सचित्तेनाऽऽच्छादितं यद्भवति स पिहितदोषः। येन कटोरिकादिना दातुमिच्छति तस्मिन् सचित्तादिकमस्ति तदन्यत्र क्षिप्त्वा ददाति स संहृतदोषः। अंधादिदायकस्य हस्तेन गृह्णाति स दायकदोषः। अयोग्यं—सचित्तमचित्तमेकत्र भवति तन्मध्ये अचित्तं गृह्णाति स उन्मिश्रदोषः। यद्वस्तुनि संपूर्णशस्त्रपरिणतो न भवति सोऽपरिणतदोषः। हस्तं खरंडयित्वा पश्चात् हस्तं प्रक्षालयति स लिप्तदोषः। अन्नादिकं विकीर्णमानः सन्नानयति स छर्दितदोषः। इमे दश एषणा दोषा उभयतः समुत्पद्यंते। एवं जाता द्विचत्वारिंशत् दोषाः।

अथ संयोजनादि पंच दोषा भोजनसमये साधुभिस्त्याज्यास्तेषां नामान्याह—

**संजोयणापमाणे इंगाल-धूम-कारणे।**
**वसेहिं बहिरंतरे वा रसहेउं दव्वसंजोगा॥**

स्वादहेतवे क्षीरखंडघृतादिकमेकत्रीविधाय पश्चाद् भुंक्ते स संयोजनादोषः।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिमात्रया प्रमाणमुल्लंघ्य आहारं करोति स प्रमाणदोषः दातृपुरुषस्य व्याख्यान-प्रशंसाकरणत्वेन चारित्रस्य अंगारतुल्यं करोति स इंगालदोषः। नीरसाहारनिंदा-करणत्वेन चारित्रस्य धूम्रतुल्यं करोति स धूम्रदोषः। षट्कारणं विना आहारं गृह्णाति स कारणदोषः। षट् कारणान्याह—

**वेयणवेयावच्चे इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।**
**तह पाणवत्तियाए छट्ठे पुण धम्मचिन्ताए ।।** (उ० २६।३२)

**११ दोषों के नाम स्थानांग में—**

(१) आहाकम्मिय
(२) उद्देसिय
(३) मीसजाय
(४) पाओयर (अज्झोयरय)
(५) पूतिय
(६) कीत
(७) पामिच्च
(८) अच्छेज्ज
(९) अणिसट्ठ
(१०) अभिहड (९।६२)
(११) ठवणा

[**नोट**—ठाणं में 'पाओयर' के स्थान पर 'अज्झोयरय' पाठ मिला है और 'स्थापना' दोष का नाम उस प्रसंग में नहीं है। जयाचार्य को उपलब्ध किसी प्रति में ११ दोषों का नाम रहा होगा।]

**१५ दोषों के नाम निशीथ में—**

(१) धाईपिंड
(२) दूतिपिंड
(३) णिमित्तपिंड
(४) आजीवियपिंड
(५) वणीमगपिंड
(६) तिगिच्छापिंड
(७) कोहपिंड
(८) माणपिंड
(९) मायापिंड
(१०) लोभपिंड
(११) विज्जापिंड
(१२) मंतपिंड
(१३) जोगपिंड
(१४) चुण्णपिंड
(१५) पुव्वंपच्छा (१३।६१ से ७५)

[**नोट**—निशीथ में चौदह दोषों के नाम यथावत् हैं। वहां पुव्वंपच्छा के स्थान पर अंतद्धाणपिंड है। संभव है जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में यही नाम होगा।]



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**१ दोष का नाम आचारांग में —**

(१) परियट्ट

**४ दोषों के नाम भगवती में—**

(१) सइंगाल

(२) सधूम

(३) संजोयणा (७।२२)

(४) पाहुडेभोइ

[**नोट**—'पाहुडेभोइ' दोष भगवती की उपलब्ध प्रति में नहीं मिला।]

**१ दोष का नाम प्रश्नव्याकरण में—**

(१) मूलकम्म (२।१२)

**१३ दोषों के नाम दशवैकालिक में—**

(१) उब्भिन्न (५।१।४५,४६)

(२) मालोहड (५।१।६६)

(३) अज्झोयर (५।१।५५)

(४) संकिय (५।१।४४,७७)

(५) मक्खिय (५।१।३३,३४)

(६) निक्खित्त (५।१।५६,६१)

(७) पिहिय (५।१।४५)

(८) साहरिय (५।१।३०)

(९) दायग (५।२।१२)

(१०) मिस्स (५।१।५५)

(११) असत्थपरिणय (५।२।२३)

(१२) लित्त (५।१।२१)

(१३) छड्डिय (५।१।२८)

[**नोट**—जयाचार्य ने छड्डिय दोष का उल्लेख किया है। दशवैकालिक की मुद्रित प्रतियों में ऐसा कोई दोष उल्लिखित नहीं है। इसके स्थान पर परिसाडिय दोष का उल्लेख है। जयाचार्य ने 'छड्डिय' शब्द किस प्रति के आधार पर दिया? यह अन्वेषणीय है।

**२ दोषों के नाम उत्तराध्ययन में—**

(१) कारण (२६।३१)

(२) अप्रमाण (१६।८)

एवं सर्व मिली ४७ दोष थया।

५७. *सुर-सुर चव-चव शब्द करै नहिं,
अति शीघ्र, अति धीरै न करै आहार।
शाक शीतादिक नुं अणछांडवुं, इण विध आहार करै अणगार।।

५७. असुरसुरं, अचवचवं, अदुयं, अविलंबियं, अपरिसाडिं, 'अदुयं' ति अशीघ्रम् 'अविलंबियं' ति नातिमन्थरं 'अपरिसाडिं' ति अनवयवोज्झनम् (वृ० प० २९४)

---

* लय : श्री जिनवर गणधर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. गाडा नुं पेडुं जिम बांगण विना, चालै नहीं तिम विगयादि लेह ।
जिम ओषधि करि लेप करै वर्ण रूंधवा,
तिम स्वाद रहित मुनि आहार करेह ।।

५८. अक्खोवंजण-वणाणुलेवणभूयं,
अक्षोपाञ्जनं च—शकटधूर्म्रक्षणं व्रणानुलेपनं च—क्षतस्यौषधेन विलेपनं अक्षोपाञ्जनव्रणानुलेपने ते इव विवक्षितार्थसिद्धिरशनादिनिरभिष्वङ्गतासाधर्म्याद् यः सोऽक्षोपाञ्जनव्रणानुलेपनभूतः (वृ० प० २९४)

५९. संजम यात्रा चारित्र पालवुं, तेहिज मात्रा कहियै एह ।
घणां आलंबन नों ए अंश छै, तिण अर्थे प्रवृत्ति आहार विषेह ।।

५९. संजमजायामायावत्तियं,
संयमयात्रा—संयमानुपालनं सैव मात्रा—आलम्बनसमूहांशः संयमयात्रामात्रा तदर्थं वृत्तिः—प्रवृत्तिर्यत्राहारे स संयमयात्रामात्रावृत्तिकोऽतस्तम् ।
(वृ० प० २९४)

**सोरठा**

६०. चरण पालण रा सोय, बहु आलंबण तेहनों ।
एक अंश अवलोय, मुनिवर आहार करै जिको ।।

६१. *संजम तेहिज भार कहीजियै, तसु वहिवुं ते चरण पालवुं सार ।
तेहिज अर्थ प्रयोजन छै तसु, ते संजम भार वहण अर्थ धार ।।

६१. संजमभारवहणट्ठयाए
संयम एव भारस्तस्य वहनं—पालनं स एवार्थः संयमभारवहनार्थस्तद्भावस्तत्ता तस्यै, (वृ० प० २९४)

६२. ते संजम भार वहण अर्थ कारणे, पूर्व रीत कही तिम सार ।
बिल विषे जिम पन्नग नीं परै,
निज आतम कर आहार करै अणगार ।।

६२. बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं आहारमाहारेइ,

**सोरठा**

६३. जिम भुजंग बिल मांहि, करै प्रवेशज आत्म प्रति ।
निज पसवाड़ा ताहि, तेह प्रतै अणफर्शतो ।।
६४. इम मुनि पिण सुगुणेण, मुख कंदर पासा प्रतै ।
अफर्शंत आहारेण, अशन प्रवेशै जठर-बिल ।।

६३. यथा किल बिले सर्प्प आत्मानं प्रवेशयति पार्श्वानसंस्पृशन् (वृ० प० २९४)
६४. एवं साधुर्वदनकन्दरपार्श्वानसंस्पृशन्नाहारेण तदसञ्चारणतो जठरबिले आहारं प्रवेशयतीति ।
(वृ० प० २९४)

६५. लोलपणै भावेह, फर्शै नहिं मुख पार्श्व प्रति ।
लोलपणां विण तेह, दोष नहीं छै फर्शवै ।।

६६. *शस्त्रातीत शस्त्रपरिणत बलि, जावत पाण भोजन नुं धार ।
अर्थ परूप्यो गोयम ! एहवुं, सेवं भंते! सेवं भंते! प्रभु वच सार ।।

६६. एस णं गोयमा ! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामियस्स, जाव (सं० पा०) पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते ।
(श० ७।२५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।२६)

६७. सत्तम शतक उद्देशो धुर कह्यु,
आखी इकसौ चिहुंदसमीं ढाल ।
भिक्षु नैं भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' संपति हरख विशाल ।।

सप्तमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।७।१।।

---

* लय : श्री जिनवर गणधर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल ११५

### दूहा

१. प्रथम उदेश विषे कह्या, पचखाणी पहिछाण।
द्वितीय उदेशक नें विषे, कहियै बलि पचखाण।।

*जिनजी जयकारी।। (ध्रुपदं)

१. प्रथमोद्देशके प्रत्याख्यानिनो वक्तव्यतोक्ता द्वितीये तु प्रत्याख्यानं निरूपयन्नाह— (वृ० प० २९४)

२. हे प्रभु ! ते निश्चै करी, सर्व प्राण सर्व भूत रे।
सर्व जीव सर्व सत्व नों, म्हे वध पचख्यो सूत रे।।

३. इम कहितां नें स्वामजी, सुपचखाणज थाय ?
दुपचखाण हुवै सही ? इम पूछ्ये जिन वाय।।

४. सर्व प्राण जावत बली, सर्व सत्व नें सोय।
हणवा नों त्याग कियो अछै, इम कहै तेहनें जोय।।

५. सुपचखाण हुवै कदा, दुपचखाण किवार।
किण अर्थे ? तब जिन कहै, सांभल मुनि सुखकार।।

२. से नूणं भंते ! सव्वपाणेहिं, सव्वभूएहिं, सव्वजीवेहिं, सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायं—

३. इति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति ? दुपच्चक्खायं भवति ?

४. गोयमा ! सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स

५. सिय सुपच्चक्खायं भवति, सिय दुपच्चक्खायं भवति। (श० ७।२७)

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

वा०—सिय सुपच्चक्खायं सिय दुपच्चक्खायं इम प्रभु कह्यो। हिवै पहिलां दुपचखाण नो न्याय प्रभु कहै ते किम ? तेहनो उत्तर—जे यथासंख्य न्याय ते अनुक्रम न्याय। जे पहिलां सुपचखाण नुं वर्णन करिवूं ते तजीनैं यथाआसन्नता न्याय ते नजीकपणां नो न्याय अंगीकार करीनैं जे दुपचखाण शब्द नजीक ते माटै ते नजीक अंगीकरी पहिलां दुपचखाण नुं वर्णन करियै छै।

वा०—'सिय सुपच्चक्खायं सिय दुपच्चक्खायं' इति प्रतिपाद्य यत्प्रथमं दुष्प्रत्याख्यानत्ववर्णनं कृतं तद्यथासंख्यन्यायत्यागेन यथाऽऽसन्नतान्यायमङ्गीकृत्येति द्रष्टव्यम्। (वृ० प० २९५)

६. सर्व प्राण जाव सत्व नें, म्हे पचख्या है सदीव।
एम कहै तिण जीव नें, न जाण्या जीव-अजीव।।

७. एह जीव ए अजीव छै, ए त्रस स्थावर एह।
इण रीते जाण्यां विना, बलि भाखै छै तेह।।

६,७. गोयमा ! जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स णो एवं अभिसमन्नागयं भवति इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा,

८. सर्व प्राण जाव सत्व नें, म्हे पचख्या इम वाय।
वदतां दुपचखाण छै, सुपचखाण न थाय।।

८. तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स नो सुपच्चक्खायं भवति, दुपच्चक्खायं भवति।

### सोरठा

९. वृत्ति टबै ए वाय, जाण्यां विण जे जीवड़ा।
ते पालै नहिं ताय, सुपचखाण न ते भणी।।

१०. जीव न जाणै जेह, जाण्यां विण जे जीव नां।।
त्याग केम पालेह, तिण सूं दुःपचखाण छै।।

९. ज्ञानाभावेन यथावदपरिपालनात् सुप्रत्याख्यानत्वा भावः, (वृ० प० २९५)

११. *इम निश्चै करि गोयमा ! दुपचखाणी छै तेह।
सर्व प्राण जाव सत्व नों, निज पचखाण वदेह।।

११. एवं खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं।

* लय : मामा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. म्है पचखाण कीधा अछै, इम कहितां नै जोय।
सत्य भाषा बोलै नहीं, मृषा बोलै सोय॥
१३. मृषावादी ते खरो, इम निश्चै करि धार।
सर्व प्राण जाव सत्व नों, त्रिविध-त्रिविध वधकार॥
१४. करण करावण अनुमति, ए त्रिहुं करणे जेह।
मन वचन काया करै, त्रिहुं जोगे करि तेह॥

१५. त्रिविध-त्रिविध इम असंजती, अविरति विरति-रहीत।
पाप कर्म पचखाण थी, न हुण्या रूड़ी रीत॥
१६. सकिरिए क्रिया सहीत, काइया प्रमुख विचार।
असंवुडे अणसंवर्‌या, पांचूंइ आश्रव द्वार॥

१७ एकांत कहितां सर्वथा, निश्चै करि ते जान।
दंडै—हणै पर प्राण नै, एगंत दंड पिछान॥

१८. तेहिज एकांत बाल छै, सर्वथा निश्चै जेह।
बाल-विरति नहिं आदरी, अधिक अजाण कहेह॥

**सोरठा**

१९. 'इहां जाण्यां विण जीव, त्याग कियां थी तेहनां।
दुपचखाण कहीव, जाण्यां विण किम पालियै॥
२०. जीव त्रसादिक जेह, जाणी तसु हणवा तणां।
जो पचखाण करेह, पिण समदृष्टी ते नहीं॥
२१. संबर आश्री तास, दुपचखाण कहीजियै।
संबर गुण सुविमास, कर्म रोकण नो तसु नहीं॥
२२. हिंसादिक पहिछाण, त्यागी मिथ्याती तणै।
निर्जरा लेखै जाण, सुध पचखाण कहीजियै॥
२३. सप्तम उत्तरज्झयण, वर गाथा जे बीसमी।
धुर गुणठाणे वयण, कह्यो सुव्वअे स्वामजी॥
२४. देश आराधक जाण, धुर गुणठाणां नों धणी।
अष्टम शतक पिछाण, दशम उदेशे भगवती॥

२५. सूत्र विपाक मझार, सुमुख दान दे मुनि भणी।
कियो परित्त संसार, मनुष्य आउखो बांधियो॥

१२. पच्चक्खायमिति वदमाणे नो सच्चं भासं भासइ, मोसं भासं भासइ।

१३. एवं खलु से मुसावाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं

१४. 'तिविहं' ति त्रिविधं कृतकारितानुमतिभेदभिन्नं योगमाश्रित्य 'तिविहेणं' ति त्रिविधेन मनोवाक्काय-लक्षणेन करणेन (वृ० प० २९५)

१५. असंजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे,

१६. सकिरिए, असंवुडे;
'सकिरिए' त्ति कायिक्यादिक्रियायुक्तः सकर्म्मबन्धनो वाऽत एव 'असंवुडे' त्ति असंवृताश्रवद्वारः।
(वृ० प० २९५)

१७. एगंतदंडे,
एकान्तेन—सर्वथैव परान् दण्डयतीत्येकान्तदण्डः।
(वृ० प० २९५)

१८. एगंतबाले यावि भवति।

२३. वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुव्वया।
(उत्तरज्झयणं ७।२०)

२४. ........तत्थ णं जे से पढमे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं असुयवं—उवरए अविण्णायधम्मे। एस णं गोयमा! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते।
(भगवई श० ८।४५०)

२५. तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं गाहगसुद्धेणं दायकसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए
(विपाक २।१।२३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. गज भव मेघकुमार, परित्त संसार दया थकी।
धुर गुणठाणे धार, नर आयू बांध्यो तिणे॥

२६. तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए, माणुस्साउए निबद्धे
(नायाधम्मकहाओ १।१८२)

२७. असोच्चा अधिकार, प्रथम गुणठाणे जिन कह्यो।
अपोह अर्थ विचार, धर्म ध्यान परिणाम शुभ॥

२७. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं......अण्णया कयावि सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं-विसुज्झमाणीहिं........ईहापोहमग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं अण्णाणे समुप्पज्जइ
(श० ९।३३)

२८. इत्यादिक अवलोय, पहिला गुणठाणां तणी।
निरवद करणी जोय, ते छै आज्ञा मांहिली॥

२९. ते माटै पहिछाण, तेहनां दुपचखाण ते।
संबर आश्री जाण, निर्जरा आश्री छै नहीं॥
(ज० स०)

वा०—'अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे'—इहां अट्टे ते विषय कषाय करी आर्त्यो, लोए—एकेंद्री, बेइंद्री तेइंद्री, चउइंद्री पंचेंद्री नीं जीव राशि, ते लोक।

परिजुण्णे—प्रशस्त ज्ञानादिक भाव विकल, वलि जे एहवो हुवै ते।

दुस्संबोहे—प्रतिबोधिवा अशक्य ब्रह्मदत्त नीं परै, ते।

इहां पिण दुस्संबोहे नों अर्थ ब्रह्मदत्त नीं परै प्रतिबोधिवा अशक्य इम कियो, ते माटै इहां दु शब्द अभाव वाची संभवै। तिम दुपचखाण ते पचखाण नहीं, ए पिण दु शब्द अभाववाची संभवै। ए पचखाण नाम संबर नों छै। ए जीव, ए अजीव जाणैं नहीं ते किम पालै? अनैं प्रथम गुणठाणे जीवादिक ओलखी नैं पचखाण करै, तेहनैं संबर रूप पचखाण तो नथी, निर्जरा रूप पचखाण कहियै। तेहथी कर्म कटै छै, पिण रुकै नहीं।

३०. *सर्व प्राण जाव सत्व नां, म्है कीधा पचखाण।
इण विध कहितां जीव नैं, वलि ते एहवूं जाण॥

३१. ए जीव ए अजीव त्रस स्थावरा, जाण्या रूड़ी रीत।
सर्व प्राण जीव सत्व नैं, पचख्या छै धर प्रीत॥

३२. म्है पचखाण कीधा अछै इम कहितां नैं ताय।
सुपचखाण हुवै अछै, दुपचखाण न थाय॥

३३. इम निश्चै करि गोयमा! सुपचखाणी तेह।
सर्व प्राण जाव सत्व नां, निज पचखाण वदेह॥

३४. म्है पचखाण कीधा अछै, इम कहितां नैं ताहि।
सत्य भाषा बोलै तिका, मृषा कहियै नांहि॥

३५. इम निश्चै करि गोयमा! सत्यवादी अवितत्थ।
सर्व प्राण जाव सत्व नों, त्रिविध-त्रिविध संयत्त॥

३०. जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स एवं अभिसमन्नागयं भवति—

३१,३२. इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा, तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति, नो दुपच्चक्खायं भवति।

३३,३४. एवं खलु से सुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वदमाणे सच्चं भासं भासइ, नो मोसं भासं भासइ।

*लय: थामा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. विरतिवंत अविरति नहीं, पचखाणे करि देख।
पाप कर्म हणिया तिणे, एहवो मुनि सुविशेख।।

३६. एवं खलु से सच्चवादी सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपाव-कम्मे,

३७. अकिरिए किरिया नहीं, आगार आश्री विचार।
संवुडे तिण संबरया, रूंध्या आश्रवद्वार।।

३७. अकिरिए, संवुडे,

३८. एकांत कहितां सर्वथा, निश्चै करि ते जाण।
सर्वविरति ग्रहिवै करी, एकांत पंडित पिछाण।।

३८. एगंतपंडिए यावि भवति।

३९. तिण अर्थे करि गोतमा! इम कहियै छै ताय।
जाव कदाचित ते सही, दुपचखाणज थाय।।

३९. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—जाव (सं पा०) सिय दुपच्चक्खायं भवति। (श० ७।२८)

**सोरठा**

४०. आख्या ए पचखाण, तेह तणां अधिकार थी।
कहियै वली सुजाण, भेद प्रवर पचखाण नां।।

४०. प्रत्याख्यानाधिकारादेव तद्भेदानाह—
(वृ० प० १९५)

४१. *कितले भेदे हे प्रभु! आख्या छै पचखाण?
जिन भाखै पचखाण ते, दोय प्रकारे पिछाण।।

४१. कतिविहे णं भंते! पच्चक्खाणे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—

४२. वर मूलगुण पचखाण जे, चरण कल्पतरु जाण।
मूल तुल्य महाव्रत गुणा, तेह मूलगुण माण।।

**वा०**—मूलगुण पचखाण नों अर्थ—चारित्र कल्पवृक्ष नैं मूल तुल्य जे गुण प्राणातिपातविरमणादिक मूलगुण ते रूप पचखाण—हिंसादिक निवृत्तिः, अथवा मूलगुण विषयक प्रत्याख्यान—अभ्युपगम—अंगीकरण मूलगुणपचखाण।

४२. मूलगुणपच्चक्खाणे य,

**वा०**—चारित्रकल्पवृक्षस्य मूलकल्पा गुणाः—प्राणातिपातविरमणादयो मूलगुणास्तद्रूपं प्रत्याख्यानं—निवृत्तिर्मूलगुणविषयं वा प्रत्याख्यानं—अभ्युपगमो मूलगुणप्रत्याख्यानं (वृ० प० २९६)

४३. उत्तरगुण पचखाण छै, प्रवर मूल पेक्षाय।।
उत्तरभूत गुण छै तिके, तरु शाखा जिम थाय।

४३. उत्तरगुणपच्चक्खाणे य। (श० ७।२९)
मूलगुणापेक्षयोत्तरभूता गुणा वृक्षस्य शाखा इवोत्तरगुणास्तेषु प्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानम्।
(वृ० प० २९६)

४४. प्रभु! मूलगुण पचखाण नां, आख्या कितला प्रकार?
जिन भाखै द्विविध कह्या, सांभलज्यो विस्तार।।

४४. मूलगुणपच्चक्खाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

४५. सर्व मूलगुण शोभता, देश मूलगुण देख।
सर्व मूलगुण नां प्रभु! कितला भेद विशेख?

४५. सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे य, देसमूलगुणपच्चक्खाणे य।
(श० ७।३०)
सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

४६. जिन भाखै पंच विध कह्या, सर्व हिंसा पचखाण।
यावत सर्व थकी वलि, परिग्रह पचख्यो जाण।।

४६. गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं जाव (सं० पा०) सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं (श० ७।३१)

४७. देश मूलगुण नां प्रभु! आख्या कितला भेद?
जिन भाखै पंच विध कह्या, सांभल आण उमेद।।

४७. देसमूलगुणपच्चक्खाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

४८. स्थूल थकी हिंसा तणां, जावजीव पचखाण।
यावत स्थूल थकी वलि, परिग्रह पचख्यो जाण।।

४८. थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं जाव (सं० पा०) थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं (श० ७।३२)

---

*लय: भामा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

४९. सर्व मूलगुण सोय, कह्या सर्वविरती तणां।
देश मूलगुण जोय, देशव्रती नां दाखिया॥

५०. *उत्तरगुण पचखाण नां, हे प्रभु! कितला प्रकार?
जिन भाखै सुण गोयमा! द्विविध आख्या सार॥

५१. सर्व उत्तरगुण शोभता, देश उत्तरगुण देख।
सर्व उत्तरगुण नां प्रभु! कितला भेद विशेख?

५२. जिन भाखै दशविध कह्या, अनागत अतिक्रांत।
कोडीसहियं नियंटियं, सागार अणागार शांत॥

५३. परिमाणकृत निर्विशेष ही, संकेत अद्धाकाल।
सर्व उत्तरगुण ए दशूं, मुनिवर नां ए न्हाल॥

## यतनी

५४. 'अनागत' आगमिये काल, तप पर्युसणादि न्हाल।
घोर व्यावच नीं अंतराय, तसु भय थकी प्रथम कराय॥

५५. तप पहिलां करि सकै नांहि, पछै ते तप करिवूं ताहि।
ते 'अतिक्रांत' पहिछाण, ए कह्यो बीजो पचखाण॥

५६. आदि अंत बे कोटि सरीस, आदि में चउथ भक्त जगीस।
अंत में पिण चउथ भक्त, 'कोडीसहियं' तीजो ए व्यक्त॥

५७. रोगादिक कारणैं पिण जेह, तप नें नहिं छांडै तेह।
नियमा तप जेह कराय, ते 'नियंत्रितं' कहिवाय॥

५८. पंचमो ते 'आगार-सहीत', तप छठो 'आगार-रहीत'।
परिमाण ते दाती नुं जाण, कवल घर भिक्षा द्रव्य परिमाण॥

वा०—केवल आगार रहित नैं पिण अजाणपणां नों आगार अनैं सहसात्कारे मुखे खांडादिक नीं रज आफेइ आवी पड़ै, ते पिण आगार।

५९. सव्वं असणं पाणं पचखाण, सव्वं खज्जं सव्वं पेज्जविहं जाण।
सर्व शब्द करिनैं उच्चरिवुं, 'निरवशेष' आठमूं धरिवुं॥

६०. गांठ प्रमुख छांडुं नांय, त्यां लग असणादिक पचखाय।
संकेत चिन्ह नुं करिवुं, ते 'संकेत' नवमो उच्चरिवुं॥

६१. पोहरसी दोढ़ पोहरसी तास, इम मास यावत षट मास।
काल नुं मान करि पचखेह, 'अद्धा-पचखाण' छै एह[1]॥

४९. तत्र सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानं सर्वविरतानां, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानं तु देशविरतानाम्। (वृ० प० २९६)

५०. उत्तरगुणपच्चक्खाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

५१. सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे य, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे य। (श० ७।३३)

सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

५२,५३. गोयमा! दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—
अणागयमइक्कंतं कोडीसहियं नियंटियं चेव।
सागारमणागारं परिमाणकडं निरवसेसं।
संकेयं चेव अद्धाए पच्चक्खाणं भवे दसहा॥
(श० ७।३४ गाहा)

१. प्रस्तुत ढाल की गाथा ५४ से ६१ तक टीका के आधार पर लिखी हुई है, इस दृष्टि से यहां जोड़ के सामने टीका का पाठ उद्धृत करना जरूरी था। किन्तु इन गाथाओं से आगे वार्तिका में यही बात पुनः स्पष्ट रूप से लिखी गई है। उस टीका का पाठ वार्तिका के सामने रखना अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, इसलिए उक्त पद्यों के सामने टीका का उल्लेख नहीं किया गया है।

*लय : भाभा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—१,२. अणागयमइक्कंतं, ३. कोडीसहियं, ४. नियंटियं चेव ।
५,६. सागारमणागारं ७. परिमाणकडं ८. निरवसेसं ॥
संकेयं चेव १०. अद्धाए, पच्चक्खाणं भवे दसहा ।

[1]अणागयं कहितां अनागत करवा थकी । अनागत—पर्युषणादिक नैं विषे आचार्यादिक नीं वेयावच्च करिवै करी अंतराय नां सद्भाव थकी पर्युषणा पहिलां ईज ते तप नुं करिवुं । आहच—

अनागतकरणादनागतं, पर्युषणादावाचार्यादिवैयावृत्त्यकरणेनान्तरायसद्भावादारत एव तत्तपः करणमित्यर्थः ।

**होही पज्जोसयणा, मम य तया अंतराइयं होज्जा ।**
**गुरुवेयावच्चेणं, तवस्सिगेलण्णयाए वा ॥२॥**

पर्युषणा हुस्यैं अनै मांहरै तिण काले गुरु नी वैयावृत्य नों, तपस्वी नी वैयावृत्य नों अथवा निज शरीर नैं विषे रोगादि करी ग्लानपणै करी अंतराय थास्यै । उक्तं च—

**सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अणागए काले ।**
**एयं पच्चक्खाणं अणागयं होइ नायव्वं ॥३॥**

ते तप-कर्म पर्युषण काले गुरु देस्यै, ते तप कारण थी करी न सकै ते भणी पर्युषण तप करवा नों काल आयां पहिलां करै, ए पचखाण अनागत हुवै जाणवो ।

[1]अइक्कंतं कहितां अतिक्रांत काल, ते तप नों काल उल्लंघ्ये थके करै ते अतिक्रांत पचखाण कहियै । भावना पूर्ववत् । उक्तं च—

एवमतिक्रान्तकरणादतिक्रान्तं भावना तु प्राग्वत्,

**पज्जोसवणाइ तवं जो खलु न करेइ कारणज्जाए ।**
**गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलण्णयाए वा ॥४॥**

पर्युषणा नैं विषे अवश्य करिवुं ते अष्टमादि तप, ते कारण ऊपने छते न करै । कारण हीज देखाड़े छै—गुरु नीं वेयावच्च आदि । आह च—

**सो दाइ तवोकम्मं, पडिवज्जइ तं अइच्छिए काले ।**
**एयं पच्चक्खाणं, अतिक्कंतं होइ नायव्वं ॥५॥**

जे तप कर्म पर्युषण काले गुरु देस्यैं, ते तप-कर्म पर्युषण तप नो काल अतिक्रम्ये थकै करै, एतलै पर्युषण में करवा जोग ते तप पर्युषण थी पछै करै, ए पचखाण अतिक्रांत हुवै इम जाणवो ।

[1]कोडीसहियं कहितां बे पचखाण नीं कोटी ते श्रेणि मिली, चतुर्थभक्तादि करीनैं अनंतरहीज चतुर्थ भक्तादिक नुं करिवुं इत्यर्थः ।
अवाचि च—

कोटीसहितमिति—मीलितप्रत्याख्यानद्वयकोटि चतुर्थादि कृत्वाऽनन्तरमेव चतुर्थादिः करणमित्यर्थः

**पट्ठवणओ उ दिवसो पच्चक्खाणस्स निट्ठवणओ य ।**
**जहियं समेंति दोन्नि उ, तं भन्नइ कोडिसहियं तु ॥६॥**

प्रारंभिक दिवस पचखाण नो वली निष्ठापनक ते तप पूरो हुवै ते दिवस । जे तप नैं विषे मिलि दोय पिण कोटी ते तप प्रतै कहै कोटी-सहित । एतलै तप प्रारंभ्यो तिवारैं प्रथम उपवास करी, पछै छठ भक्तादिक करीनैं छेहड़ै वलि उपवास कियो—ए कोटी-सहित । इम प्रथम छट्ठादिक करी बीच में चोथ, छठ,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमादि करीनैं छेहड़ै छठ करै। इम अष्टमादिक प्रारंभ काले अनैं चरम काले सरीखो करै ते कोडी-सहित।

[६]नियंटितं चेव कहितां नितरां अति ही यंत्र वश कीधी आत्मा ते नियंत्रित। प्रतिज्ञा कीधी ते दिनादिक नैं विषे ग्लानपणादिक अंतराय भाव छते पिण निश्चय थकी करिवूं, इति हृदयं। यदाह—

'नियंटितं चेव' नितरां यन्त्रितं नियन्त्रितं, प्रतिज्ञातदिनादौ ग्लानत्वाद्यन्तरायभावेऽपि नियमात्कर्त्तव्यमिति हृदयं,

**मासे-मासे य तवो, अमुगो अमुगे दिणंमि एवइयो।**

**हट्ठेण गिलाणेण वा, कायव्वो जाव ऊसासो॥७॥**

अमुको तप मास-मास नैं विषे अमुक दिन कै विषे ए तप हृष्ट ते नीरोग छतां तथा रोगादिक ग्लानपणुं पाम्यां छतां जिहां लगै उस्सास त्यां लगै करिवूं।

**एयं पच्चक्खाणं, नियंटियं धीरपुरिसपन्नत्तं।**

**जं गेण्हंतऽणगारा, अणिस्सियप्पा अपडिबद्धा॥८॥**

धीर पुरिसे परूप्यो ए नियंत्रित पचखाण, ते अणगार जेहनी आत्मा ग्रहण करै, ग्रामादिक नी नेश्राय रहित छै।

[७]सागारं कहितां आगार सहित वर्त्तै ते सागार। आ—मर्यादा करी कीजियै ते आगार पचखाण। आगार ते हेतु महत्तरागारेणं इत्यादि। आगार सहित वर्त्तै ते साकार।

'साकार' मिति आक्रियन्त इत्याकाराः—प्रत्याख्यानापवादहेतवो महत्तराकारादयः सहाकारैर्वर्त्तत इति साकारम्,

[८]अविद्यमान आकार ते अनाकार। जे विशिष्ट प्रयोजन ऊपजवा नैं अभाव छते, कांतार दुर्भिक्षादिक नैं विषे तथा सरीरादिक कारण पड़्यां पिण महत्तरादिक आगार राखै नहीं, ते अनाकार इति भावः। केवल अनाकार नैं विषे पिण अजाणपणै अनै सहसात्कारे ए बे आगार तो रहै हीज। काष्ठ अंगुली आदि मुख विषे प्रक्षेपवा थकी भंग नहीं हुवै। इण कारण थकी अजाणपणै अनै सहसात्कार अपेक्षा करिकै सदा आगार हीज।

अविद्यमानाकारमनाकारं—यद् विशिष्टप्रयोजनसम्भवाभावे कान्तारदुर्भिक्षादौ महत्तराद्याकारमनुच्चारयद्भिर्विधीयते तदनाकारमिति भावः केवलमनाकारेऽप्यनाभोगसहसाकारावुच्चारयितव्यावेव, काष्ठाङ्गुल्यादेर्मुखे प्रक्षेपणतो भङ्गो मा भूदिति, अतोऽनाभोगसहसाकारापेक्षया सर्वदा साकारमेवेति,

[९]परिमाणकडं कहितां दात आदि करिकै कीधो परिमाण। अभाणि च—

'परिमाणकृत' मिति दत्त्यादिभिः कृतपरिमाणम्,

**दत्तीहि व कवलेहि व घरेहि भिक्खाहिं अहव दव्वेहिं।**

**जो भत्तपरिच्चायं करेति परिमाणकडमेयं॥९॥**

दाति करिकै, कवल करिकै, घर करिकै, अनै भिक्षा करिकै, परिमाण कीधुं अथवा जे साधु भक्त परित्याग करै परिमाणकृत ए पूर्वे कह्युं ते।

[१०]निरवसेसं कहितां संपूर्ण अशनादिक तजै। भणितं च—

'निरवशेषं' समग्राशनादिविषयं,

**सव्वं असणं सव्वं च पाणगं सव्वखज्जपेज्जविहिं।**

**परिहरइ सव्वभावेणेयं भणियं निरवसेसं॥१०॥**

सर्व अशन अनैं सर्व पाणी, खज्जं कहितां खावा जोग, पेज्जं कहितां पीवा जोग नीं विधि परिहरै सर्व भाव करिनैं, ए निरवसेस पचखाण कह्यो।

[११]साकेयं चेव कहितां केत कहियै चिह्नः, केत—चिह्नः करी सहीत ते सकेत। प्राकृतपणां थकी सकार दीर्घ थयुं, ते माटै साकेयं कह्युं। अथवा संकेत युक्त हुवा थकी संकेत। संकेत ते अंगुष्ठ सहितादि। यदाह—

'साएयं चेव' त्ति केतः—चिन्हं सह केतेन वर्त्तते सकेतं, दीर्घता च प्राकृतत्वात्, सङ्केतयुक्तत्वाद्वा सङ्केतम्—अङ्गुष्ठसहितादि,

**अंगुट्ठमुट्ठिगंठीघरसेऊसासथिबुगजोइक्खे।**

**भणियं सकेयमेयं धीरेहिं अणंतणाणीहिं॥११॥**

अंगुष्ठ, मुट्ठी, गंठी, डोरा, डाभ प्रमुख नीं बींटी, घर, स्वेद, उच्छ्वास, पाणी नो बुदबुदो, जोतिष्क ते दीवादिक वस्तु—धीर पुरुष अनंत ज्ञानी ए संकेत कह्यो,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतलै मुट्ठी बंधी है जितरै आहार का त्याग, मुट्ठी खोल्यां पछै त्याग नहीं । इम अनेरा पिण विचार लेवा । ए संकेत पचखाण ।

[1]"अद्धाए कहितां अद्धा कहियै काल, तेहनों पचखाण ते पौरस्यादि काल नों नियम करिवुं । आह च—

**अद्धापच्चक्खाणं जं तं कालप्पमाणछेएणं ।**

**पुरिमड्ढपोरुसीहिं मुहुत्तमासद्धमासेहिं ॥१२॥**

जे अद्धा पचखाण ते काल परिमाण नों छेद ते विभाग हुवै । पुरिमड्ढ ते दोय प्रहर, पोरसी, मुहूर्त्त, मासखमण, अर्द्धमास करिकै ए अद्धा पचखाण कह्यो ।

ए दशविध सर्व उत्तरगुण पचखाण हुवै ।

'अद्धाए' त्ति अद्धा—कालस्तस्याः प्रत्याख्यानं—पौरुष्यादिकालस्य नियमनम्,

(वृ० प० २९६, २९७)

६२. *देश उत्तरगुण नां प्रभु! आख्या कितला प्रकार?
श्री जिन भाखै सप्तविध, दिश व्रत प्रथम उदार ॥

६३. उपभोग नैं परिभोग नों, करिवूं जे परिमाण ।
दूजो व्रत ए दाखियो, हिव तसु अर्थ सुछाण ॥

६२. देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—दिसिव्वयं,

६३. उवभोगपरिभोगपरिमाणं,

## सोरठा

६४. एक बार जे भोग, अशन पान अनुलेपनं-
आदि देइ सुप्रयोग, ते उपभोग कहीजियै ॥

६५. बारबार जे भोग, भूषण आसन शयन वथ ।
फुन वनितादि संयोग, ते परिभोग कहीजियै ॥

६६. *अनर्थदंड नुं छांडवुं, सामायक सुविमास ।
देशावगासी नैं वली, पवर पोषध उपवास ॥

६७. अविरत नहिं किणही तिथि विषे, तेह अतिथि महाभाग ।
तसु अशनादिक आपवूं, एह अतिथि-संविभाग ॥

६८. अपच्छिम मारणांतिके, संलेखणा सुख साव ।
तेहनुं सेविवूं ते झूसणा, तास अराधन भाव ॥

वा०—'अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाराहणय' त्ति । इहां केवल पश्चिम शब्द अमंगलीक हुवै, इण कारण अकार युक्त पश्चिम शब्द कह्यो । तिणसूं अपश्चिम मरण ते प्राण नुं तजवुं प्राण त्याग लक्षण । यद्यपि प्रतिक्षण आवीची मरण छै तो पिण ते इहां ग्रहण न कर्‌युं, तो स्यूं मरण इहां ग्रहण कर्‌युं? सर्व आयु क्षय लक्षण मरण वंछ्यो । मरणहीज अंत ते मरणांत, तेह मरणांत नैं विषे थइ ते मारणांतिक शरीर, कषायादिक नैं कृश—दुर्बल करै ते संलेखना तपोविशेष लक्षणा, ते अपश्चिम-मारणांतिक-संलेखना, अपश्चिम मारणांतिक संलेखना नु झूषणा—सेविवूं, तेहनी आराधना, ते अखंड काल कहितां भव पर्यंत करवी । तेहनुं भाव ते अपश्चिम मारणांतिक संलेखना झोसणा आराधनता ।

वली इहां दिशि व्रत आदि सप्त देश उत्तर गुणहीज छै । अनैं संलेखणा भजना करिकै देश उत्तर गुण छै । देश उत्तर गुणवंत नैं तिका संलेखणा देश उत्तर गुण

६४. उपभोगः—सकृद्भोगः, स चाशनपानानुलेपनादीनां,

(वृ० प० २९७)

६५. परिभोगस्तु पुनः पुनर्भोगः, स चासनशयनवसनवनितादीनाम् ।

(वृ० प० २९७)

६६. अणत्थदंडवेरमणं, सामाइयं, देसावगासियं, पोसहोववासो,

६७. अतिहिसंविभागो ।

६८. अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाराहणता ।

(श० ७।३५)

पश्चिमैवामङ्गलपरिहारार्थमपश्चिमा मरणं—प्राणत्यागलक्षणम्, इह यद्यपि प्रतिक्षणमावीचीमरणमस्ति तथापि न तद्गृह्यते, किं तर्हि ? विवक्षितसर्वायुष्कक्षयलक्षणं इति, मरणमेवान्तो मरणान्तस्तत्र भवा मारणान्तिकी संलिख्यते—कृशीक्रियतेऽनया शरीरकषायादीति संलेखना—तपोविशेषलक्षणा ततः कर्मधारयाद् अपश्चिममारणान्तिकसंलेखना तस्या जोषणं—सेवनं तस्याराधनम्—अखण्डकालकरणं तद्भावः अपश्चिममारणान्तिकसंलेखनाजोषणाराधनता ।

इह च सप्त दिग्व्रतादयो देशोत्तरगुणा एव, संलेखना तु भजनया, तथाहि—सा देशोत्तरगुणवतो देशोत्तरगुणः, आवश्यके तथाऽभिधानात्, इतरस्य तु सर्वो-

---

*लय : झामा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहियै, आवश्यक विषे तिण प्रकार करिकै कहिवा थकी । अनै सर्व उत्तर गुणवंत साधु नैं साकार अनाकारादिक पचखाणरूपपणां थकी संलेखणा सर्व उत्तर गुण में कहियै । श्रावक रैं सप्त व्रत देश-उत्तर-गुण कह्या । ते संलेखणा बिना कह्या छै तो सप्त देश उत्तरगुण नैं विषे संलेखणा नो पाठ किम दियो ? देश उत्तर गुणधारी नैं पिण ए संलेखणा मरणांते करवी, इण अर्थ नैं जणावा नैं अर्थे इति । ए अर्थ वृत्तिकार कह्यु छै ।

इहां वृत्ति में देश उत्तर गुणधारी रैं संलेखणा देश उत्तरगुण में कही अनैं साधु रैं दश पचखाणरूपपणां थकी संलेखणा सर्व उत्तरगुण में कही । अनैं इणहीज उद्देशे श्रावक रै सर्व उत्तरगुण पचखाण कह्या छै, जो ए संलेखना श्रावक रैं देश उत्तरगुण पचखाण हुवै तो श्रावक रै सर्व उत्तरगुण पचखाण किसा ? ते भणी ए संलेखणा श्रावक रैं देश थकी सर्व उत्तरगुण जणाय छै। वली केवली वदै ते सत्य । अनै दश विध पचखाण मांहिला केयक पचखाण श्रावक रै देश थकी सर्व उत्तरगुण में हुवै, ते पिण ज्ञानी वदै ते सत्य ।

त्तरगुणः साकारानाकारादिप्रत्याख्यानरूपत्वादिति संलेखनामविगणय्य सप्त देशोत्तरगुणा इत्युक्तम्, अस्याश्चैतेषु पाठो देशोत्तरगुणधारिणाऽपीयमन्ते विधातव्येत्यस्यार्थस्यख्यापनार्थं इति ।

(वृ० प० २९७)

## सोरठा

६९. कह्या पूर्वे पचखाण, वली अपचखाणे करी ।
पद जीवादि पिछाण, कहियै छै ते सांभलो ॥

६९. अथोक्तभेदेन प्रत्याख्यानेन तद्‌विपर्ययेण च जीवादिपदानि विशेषयन्नाह— (वृ० प० २९७)

७०. *प्रभु! स्यूं मूल पचखाणी जीवा, उत्तरगुण पचखाणी अतीवा।
कै अपचखाणी कहियै ताय ? जिन भाखै तीनूं इ थाय ॥

७०. जीवा णं भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी ? उत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?
गोयमा ! जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी वि, उत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।३६)

७१. पूछा दंडक चउवीस नीं जाणी, जिन कहै नारक अपचखाणी ।
ते मूलगुण पचखाणी न होय, उत्तरगुण पचखाणी न कोय ॥

७१. नेरइया णं भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी ? पुच्छा। गोयमा ! नेरइया नो मूलगुणपच्चक्खाणी, नो उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ।

(श० ७।३७)

७२. इम जावत चउरिंद्री तांइ, जे तिर्यंच पंचेन्द्री मांहि ।
वलि मनुष्य मांहै पहिछाण, औघिक जीव तणी पर जाण ॥

७२. एवं जाव चउरिंदिया । (श० ७।३८)
पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा जीवा,

## सोरठा

७३. नवरं पं. तिर्यंच, देश थकी जे मूलगुण ।
पचखाणी हुवै संच, सर्व विरति नहिं ते भणी ॥

७३. नवरं पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो देशत एव मूलगुणप्रत्याख्यानिनः, सर्वविरतेस्तेषामभावात् ।

(वृ० प० २९८)

७४. नवरं पाठ विशेख, सूत्र विषे खोल्यो नथी ।
पिण इहां न्याय अवेख, वृत्ति टबा थी आखियो ॥

वा०—इहां तिर्यंच पंचेंद्रिय नैं देश मूलगुण नीं अपेक्षाय मूलगुण पचखाणी कह्या, पिण सर्व मूलगुण पचखाणी ते नहीं । अनैं मनुष्य नैं सर्व मूलगुण अनैं देश मूलगुण ए बिहुं नीं अपेक्षाय मूलगुण पचखाणी कह्या ।

---

*लय : मामा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५. *व्यंतर जोतिषि वैमानीक, कहिवा नारक जिम तहतीक ।
तीनां री अल्पबहुत्व अधिकार, प्रश्न उत्तर हिव कहियै सार ।।

७५. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।
(श० ७।३६)

अथ मूलगुणप्रत्याख्यानादिमतामेवाल्पत्वादि चिन्तयति
(वृ० प० २६८)

७६. जीव प्रभु! मूलगुण पचखाणी, उत्तरगुण पचखाणी जाणी ।
वलि अपचखाण मांहि कहेस, कुण-कुण थी जाव अधिक विशेष ?

७६. एएसि णं भंते ! जीवाणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं, उत्तरगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

७७. जिन कहै थोड़ा सर्व थी जाणी, जीव मूलगुण वर पचखाणी ।
सर्व देश गुण मूल सुहाया, ए दोनूं ही इण में आया ।।

७७. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी,

७८. तेहथी उत्तरगुण पचखाणी, ए असंखगुणा पहिछाणी ।
पं० तिर्यंच उत्तर गुणवान, मूल थी असंखगुणा ए जान ।।

७८. उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा,

७९. तेह थकी जे अपचखाणी, आख्या अनंतगुणा जिन जाणी ।
वणस्सइ आदि जीव जे जोय, धुर चिहुं गुणठाणां नां होय ।।

७९. अपच्चक्खाणी अणंतगुणा । (श० ७।४०)

वा०—देश थकी अथवा सर्व थकी जे मूल गुणवंत ते सर्व थी थोड़ा, तेह थकी देश उत्तरगुणवंत अनैं सर्व थकी उत्तरगुणवंत असंख्यातगुणा । इहां सर्व विरति नैं विषै जे उत्तरगुणवंत ते अवश्य मूल गुणवंत हुवै अनैं जे मूल गुणवंत ते उत्तरगुणवंत स्यात् हुवै स्यात् नहिं पिण हुवै । इहां उत्तरगुण रहित मूलगुणवंत ग्रहिवा, ते उत्तरगुण पचखाणी थी थोड़ाहीज हुवै । बहुतर यती दश प्रत्याख्यान युक्त लाभै, तिण कारण निकेवल मूलगुण पचखाणी थोड़ा अनैं तेहथी पिण सर्व उत्तरगुण पचखाणी संख्यात-गुणाहीज लाभै, पिण असंख्यात गुणा नथी । सर्व पिण साधु संख्याता छै तिणे कारणे । अनैं देशविरति नैं विषै मूल गुण थकी जुदा पिण उत्तरगुणवंत लाभै ते किम ? पंच अणुव्रत अंगीकार नहीं कीधा अनैं मधु मांसादिक विचित्र प्रकार नां अभिग्रह किया ते उत्तरगुण पचखाणी घणां लाभै । इण कारण देशविरति नां उत्तरगुण पचखाणी नैं आश्रयी मूलगुण थी उत्तरगुण पचखाणी असंख्यात गुणा कह्या, इम वृत्ति मांहै कह्यो ।

वा०—देशतः सर्वतो वा ये मूलगुणवन्तस्ते स्तोकाः, देशसर्वाभ्यामुत्तरगुणवतामसंख्येयगुणत्वात्, इह च सर्वविरतेषु ये उत्तरगुणवन्तस्तेऽवश्यं मूलगुणवन्तः, मूलगुणवन्तस्तु स्यादुत्तरगुणवन्तः स्यात्तद्विकलाः, य एव च तद्विकलास्त एवेह मूलगुणवन्तो ग्राह्याः, ते चेतरेभ्यः स्तोका एव, बहुतरयतीनां दशविधप्रत्याख्यानयुक्तत्वात्, तेऽपि च मूलगुणेभ्यः संख्यातगुणा एव नासंख्यातगुणाः, सर्वयतीनामपि संख्यातत्वात्, देशविरतेषु पुनर्मूलगुणवद्भ्यो भिन्ना अप्युत्तरगुणिनो लभ्यन्ते, ते च मधुमांसादिविचित्राभिग्रहवशाद् बहुतरा भवन्तीति कृत्वा देशविरतोत्तरगुणवतोऽधिकृत्योत्तरगुणवतां मूलगुणवद्भ्योऽसंख्यातगुणत्वं भवति । अत एवाह —'उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुण' त्ति ।
(वृ० प० २६८, २६९)

८०. ए प्रभु! तिरि पंचेंद्री मांहि, पूछा कीधी गोतम ताहि ।
मूल उत्तरगुण अपचखाणी, कुण-कुण थी अल्पादिक माणी ।।

८०. एएसि णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

८१. जिन कहै तिरि पंचेंद्री जाणी, सर्व थोड़ा मूलगुण पचखाणी ।
असंखगुणा उत्तरगुण त्यागी, अपचखाणी असंख गुण सागी ।।

८१. गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा । (श० ७।४१)

८२. ए प्रभु! मनुष्य विषे पहिछाणी, पवर मूलगुण जे पचखाणी ?
पूछा कीधां कहै जिनराय, अल्पबहुत्व सुणज्यो चित ल्याय ।।

८२. एएसि णं भंते ! मणुस्साणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं पुच्छा ।

८३. मनुष्य सर्व थी थोड़ा पिछाणी, सखर मूलगुण वर पचखाणी ।
संखगुणा उत्तरगुण त्यागी, अपचखाणी असंखगुणा सागी ।।

८३. गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी संखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा । (श० ७।४२)

---

*लय : भाभा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**वा०**—मनुष्य नैं विषे अपचखाणी असंख्यातगुणा कह्या ते छमूर्च्छिम मनुष्य नीं अपेक्षाय, गर्भज नैं संख्यातपणां थकी ।

८४. हे भगवंत! जीव स्यूं जाणी, सर्व मूलगुण वर पचखाणी ?
कै देश मूलगुण पचखाणी छै, कै अपचखाणी इम त्रिहुं पृच्छै ।।

८५. जिन कहै गोयम ! जीवा जाणी, सर्व मूलगुण वर पचखाणी ।
देश मूलगुण वर पचखाणी, अपचखाणी पिण पहिछाणी ।।

८६. नारक पूछ्यां जिन कहै त्यांही, सर्व मूलगुण त्यागी नांही ।
देश मूलगुण पिण नहिं कहियै, अपचखाणी नारक लहियै ।।

८७. एवं जाव चउरिंद्रिया ताम, पं. तिर्यंच पूछ्यां कहै स्वाम ।
पंचेंद्रिय तिर्यंच पिछाणी, सर्व मूलगुण नहिं पचखाणी ।।

८८. देश मूलगुण पचखाणी छै. ए पंचम गुणठाण सही छै ।
अपचखाणी पिण तिरि कहियै, ए धुर चिहुं गुणस्थानक लहियै ।।

८९. मणुसा जीव तणी पर जाणी, सर्व देश फुन अपचखाणी ।
व्यंतर जोतिषि वैमानीक, नारकी जिम कहियै तहतीक ।।

## यतनी

९०. प्रभु ! एह जीवा पहिछाणी, सर्व मूलगुण पचखाणी ।
देश मूलगुण पचखाणी, वलि अपचखाणी जाणी ।।

९१. यांमें कुण-कुण थी सुविचार, अल्प हुवै अथवा बहु धार ।
तथा तुल्य वा अधिक विशेष, तसु उत्तर भाखै जिनेश ।।

९२. सर्व मूलगुण पचखाणी, जीव सर्व थी थोड़ा जाणी ।
देश मूलगुण पचखाणी, असंख्यातगुणा पहिछाणी ।।

९३. वलि तेहथी अपचखाणी, हुवै अनंतगुणा ए ठाणी ।
समचै जीव नीं ए अवधार, कही अल्पबहुत्व जगतार ।।

९४. इम अल्पबहुत्व त्रिहुं जाण, जिम प्रथम दंडक तिम माण ।
नवरं कहितां एतलो विशेष, तिणरो आगल भेद कहेस ।।

९५. सर्व थोड़ा पंचेंद्रिय तिर्यंच, देश मूलगुण पचखाणी संच ।
तेहथी असंखगुणा अधिकाय, ए तो अपचखाणी ताय ।।

## सोरठा

९६. तिर्यंच श्रावक तास, देश मूलगुणईज हुवै ।
सर्व मूलगुण राश, साधु बिना हुवै नहीं ।।

**वा०**—मनुष्यसूत्रे 'अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणे' ति यदुक्तं तत्संमूर्च्छिममनुष्यग्रहणेनावसेयमितरेषां संख्यातत्वादिति । (वृ० प० २९९)

८४. जीवा णं भंते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी ? देसमूलगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

८५. गोयमा ! जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी वि, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।४३)

८६. नेरइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नेरइया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, नो देशमूलगुणपच्चक्ख णी, अपच्चक्खाणी । (श० ७।४४)

८७. एवं जाव चउरिंदिया । (श० ७।४५)
पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी,

८८. देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।४६)

८९. मणुस्साणं भंते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी ? देसमूलगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?
गोयमा ! मणुस्सा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी वि, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । (श० ७।४७)
वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा नेरइया । (श० ७।४८)

९०. एएसि णं भंते ! जीवाणं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणीणं, देसमूलगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य

९१. कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

९२. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा,

९३. अपच्चक्खाणी अणंतगुणा । (श० ७।४९)

९४. एवं अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमिल्ले दंडए, नवरं—

९५. सव्वत्थोवा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा । [सं० पा०] (श० ७।५०,५१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां एक अल्पबहुत्व जीव नों, दूजो अल्पबहुत्व पंचेंद्री तिर्यंच नों, तीजो अल्पबहुत्व मनुष्य नों, ए तीनूं अल्पबहुत्व जिम मूलगुण पचखाणी, उत्तरगुण पचखाणी, अपचखाणी प्रथम दंडक नैं विषे कह्या, तिम इहां पिण सर्वमूलगुण पचखाणी, देश मूलगुण पचखाणी अनैं अपचखाणी ए तीनूं नीं कहिवी।

णवरं पंचेंद्रिय तिर्यंच नैं विषे सर्व मूलगुण पचखाणी नथी, ते भणी देश मूलगुण पचखाणी अनैं अपचखाणी ए बेहुं बोल नीं अल्पबहुत्व छै। अनैं समचै जीव अनैं मनुष्य ए बे दंडके सर्व मूलगुण पचखाणी, देश मूलगुण पचखाणी, अपचखाणी ए त्रिहुं बोल नीं अल्पबहुत्व प्रथम दंडक नीं परै जाणवी।

वा०—तत्रैकं जीवानामिदमेव, द्वितीयं पञ्चेन्द्रियतिरश्चां, तृतीयं तु मनुष्याणाम्, एतानि च यथा निर्विशेषणगुणादिप्रतिबद्धे दण्डके उक्तानि एवमिह त्रीण्यपि वाच्यानि, (वृ० प० २९९)

### यतनी

९७. बहु जीव हे प्रभु ! स्यूं जाणी, सर्व उत्तरगुण पचखाणी।
देश उत्तरगुण पचखाणी, कै अपचखाणी माणी ?

९७. जीवा णं भंते ! किं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ?

९८. जिन भाखै तीनूंइ तेम, पंचेंद्रिय तिरि नै मनु एम।
शेष अपच्चक्खाणी एक, जाव वैमानिक लग पेख ।।

९८. गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि। पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एवं चेव। सेसा अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया। (श० ७।५२)

९९. हे प्रभुजी ! ए जीवा जाणी, सर्व उत्तरगुण पचखाणी।
अल्पबहुत्व तीनूं पिण तेह, प्रथम दंडक जेम कहेह ।।

१००. जाव मनुष्य तणी कहिवाय, इम कह्यो सूत्तर रै मांय।
जीव पं. तिरि मनुष्य नीं एम, अल्पबहुत्व प्रथम दंडक जेम ।।

९९. एएसि णं भंते ! जीवाणं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणीणं अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमे दंडए

१००. जाव मणुस्साणं। (श० ७।५३)

वा०—इम इहां तीनूं पिण कहिवी। नवरं इत्यादि पंचेंद्रिय तिर्यंच पिण सर्व उत्तरगुण पचखाणी हुवै, इम जाणवूं। देशविरति नैं देश थकी सर्व उत्तरगुणपचखाण नैं अभिमतपणां थकी।

वा०—इह च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानिनो भवन्तीत्यवसेयं, देशविरतानां देशतः सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानस्याभिमतत्वादिति। (वृ० प० २९९)

१०१. *बोंहितर नों देश ए, एकसौ पनरमीं ढालो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गण गुणमालो ।।

## ढाल : ११६

### सोरठा

१. मूल उत्तर पचखाण, वलि अपचखाणी छै तिके।
संयत प्रमुख सुजाण, हिवै संजयादिक कहै ।।

१. मूलगुणप्रत्याख्यानिप्रभृतयश्च संयतादयो भवन्तीति संयतादिसूत्रम्— (वृ० प० २९९)

*लय : भामा ठग लागो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*वीर प्रभु नें गोयम पूछै ।।ध्रुपदं।।

२. जीव प्रभुजी ! स्यूं संजया छै ? कै असंजया छै जीवा ?
कै संजतासंजत जीव अछै ए ? जिन कहै तीनूं पिण कहीवा ।।

३. इम जिम पन्नवणा बत्तीसमैं पद, तिमहिज भणवूं तेहो ।
जाव वैमानिक लग सहु कहिवूं, जिन वचनामृत जेहो ।।

४. अल्पबहुत्व पिण तिमहिज त्रिहुं नीं, ए तीजा पद मांही ।
ते पिण केहवी छै इण रीतै, सांभलज्यो चित ल्याई ।।

वा०—समचै जीव पंचेंद्रिय तिर्यंच और मनुष्य ए त्रिहुं नैं विषे संजतादिक नीं अल्पबहुत्व कहै छै । तिहां सर्व थोड़ा संजती जीव । संजतासंजती असंखेज्ज गुणा । अनै असंजती अनंत गुणा । पंचेंद्रिय तिर्यच में सर्व थोड़ा संजतासंजती । असंजती असंखेज्ज गुणा । मनुष्यों में सर्व थोड़ा संजती, संजतासंजती संखेज्ज गुणा । असंजती असंख्यातगुणा संमूच्छिम आश्रयी ।

५. नो-संजति नो-असंजति वली, नो-संजतासंजती इच्छा ।
ए चोथा बोल नीं पूछा इहां न करी, पन्नवण चिउं नीं पृच्छा ।।

**सोरठा**

६. आख्या संयत आद, ते पचखाणादिकपणैं ।
तिण कारण विधिवाद, पचखाणादिक सूत्र हिव ।।

७. *जीव प्रभू ! स्यूं पचखाणी छै, कै कह्या अपचखाणी ।
पचखाणापचखाणी जीव छै, ? जिन कहै तीनूंइ जाणी ।।
(वीर प्रभु कहै गोतम शिष्य नें)

८. मनुष्य विषे ए तीनूंइ पावै, पंचेंद्री तिर्यंच में जाणी ।
आदि संयत विन दोय कहीजै[1], शेष सर्व अपचखाणी ।।

९. अल्पबहुत्व तीनं नीं पूछी, जीव तणैं अधिकारो ।
जिन कहै सर्व थी थोड़ा जीव छै पचखाणी अणगारो ।।

१०. पचखाणापचखाणी श्रावक, असंख्यातगुणा होयो ।
अपचखाणी च्यार गुणठाणां, अनंतगुणा अवलोयो ।।

*लय : थिर थिर चेतन संजम पथे

१. तिर्यंचपञ्चेन्द्री में प्रत्याख्यानी नहीं होते । क्योंकि वे संयती नहीं हो सकते । इसलिए वे प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी—ये दो ही होते हैं ।

२. जीवा णं भंते ! किं संजया ? असंजया ? संजया-संजया ?
गोयमा ! जीवा संजया वि, असंजया वि, संजया-संजया वि ।

३. एवं जहेव पण्णवणाए (३२।१) तहेव भाणियव्वं जाव वेमाणिया ।

४. अप्पाबहुगं तहेव तिण्ह वि भाणियव्वं ।
(श० ७।५४)

वा०—जीवानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च, तत्र सर्वस्तोकाः संयता जीवाः, संयतासंयता असंख्येयगुणाः, असंयतास्त्वनन्तगुणाः, पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चस्तु सर्वस्तोकाः संयतासंयताः, असंयता असंख्येयगुणाः, मनुष्यास्तु सर्वस्तोकाः संयताः, संयता-संयताः संख्येयगुणाः, असंयता असंख्येयगुणा इति ।
(वृ० प० २९९)

५. जीवा णं भंते ! किं संजया ? असंजया ? संजता-संजता ? णोसंजत-णोअसंजत-णोसंजयासंजया ?
गोयमा ! जीवा संजया वि असंजया वि संजया-संजया वि णोसंजयणोअसंजयणोसंजतासंजया वि
(पन्नवणा ३२।१)

६. संयतादयश्च प्रत्याख्यान्यादित्वे सति भवन्तीति प्रत्या-ख्यान्यादिसूत्रम्— (वृ० प० २९९)

७. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी ? अपच्चक्खाणी ? पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?
गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि । (श० ७।५५)

८. एवं मणुस्साण वि । पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आदिल्लविरहिया । सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया । (श० ७।५६)

९. एएसि णं भंते ! जीवाणं पच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खा-णीणं, पच्चक्खाणापच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी,

१०. पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. पंचेंद्रि तिर्यंच सर्व थी थोड़ा पचखाणापचखाणी ।
अपचखाणी असंखगुणा छै, न्याय हिया में आणी ।।
१२. मनुष्य सर्व थी थोड़ा पचखाणी, पचखाणापचखाणी ।
श्रावक एह संखेज्जगुणा छै, अपचखाणी असंखगुणा जाणी ।।

### सोरठा

१३. छठा शतक मझार, चउथा उद्देशा मझै ।
श्री जिनवर जयकार, पचखाणी आदि परूपिया ।।
१४. वली परूपण तेह, स्यूं कारण है तेहनों ।
तसु उत्तर छै एह, चित्त लगाई सांभलो ।।
१५. अल्पबहुत्व करि रहीत, सूत्र निकेवल त्यां कह्यो ।
इहां अल्पबहुत्व सहीत, वलि अन्य सम्बन्ध करी अख्यो ।।

### दूहा

१६. जीव तणां अधिकार थी, जीव सास्वता जाण ।
कै छै जीव असास्वता ? हिवै प्रश्न ए आण ।।
१७. *हे भगवंत ! स्यूं सास्वता जीवा, कै असास्वता सुविचारो ?
जिन कहै जीवा कदाच सास्वता, असास्वता छै किवारो ।।
१८. किण अर्थे तब श्री जिन भाखै, द्रव्यार्थपणें सुजाणी ।
सास्वता जीव छै त्रिहुं काल में, ए द्रव्य जीव पहिछाणी ।।
१९. भावअर्थपणें जीव असास्वता, नारकादि पर्यायो ।
तिण अर्थे कह्या कदा सास्वता, कदा असास्वता ताह्यो[1] ।।
२०. हे प्रभु ! नेरइया सास्वता छै स्यूं कै असास्वता कहिवायो ?
जेम जीव तिम नेरइया पिण, इम जाव वैमानिक ताह्यो ।।

११. पंचिदियतिरिक्खजोणिया सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा ।
१२. मणुस्सा सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्च-क्खाणी संखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा ।
(श० ७।५७)

१३, १४. ननु षष्ठशते चतुर्थोद्देशके (६।६४,६५) प्रत्या-ख्यान्यादयः प्ररूपिता इति किं पुनस्तत्प्ररूपणेन ?
(वृ० प० २९९)

१५. सत्यमेतत् किन्त्वल्पबहुत्वचिन्तारहितास्तत्र प्ररूपिता इह तु तद्युक्ताः सम्बन्धान्तरद्वारायाताश्चेति ।
(वृ० प० २९९)

१६. जीवाधिकारात्तच्छाश्वतत्वसूत्राणि—
(वृ० प० २९९)

१७. जीवा णं भंते ! किं सासया ? असासया ?
गोयमा ! जीवा सिय सासया, सिय असासया ।
(श० ७।५८)

१८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवा सिय सासया ? सिय असासया ? गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया,
'दव्वट्ठयाए' त्ति जीवद्रव्यत्वेनेत्यर्थः । (वृ० प० २९९)

१९. भावट्ठयाए असासया । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवा सिय सासया, सिय असासया ।
(श० ७।५९)
'भावट्ठयाए' त्ति नारकादिपर्यायत्वेनेत्यर्थः ।
(वृ० प० २९९)

२०. नेरइया णं भंते ! किं सासया ? असासया ?
एवं जहा जीवा तहा नेरइया वि । एवं जाव वेमाणिया ।

---

***लय : थिर थिर चेतन संजम पथे**

1. भगवती सूत्र के इसी सन्दर्भ को स्पष्ट करते हुए आचार्य भिक्षु ने कालवादी की चौपई ढाल ३ में कुछ पद्य लिखे हैं, वे इस प्रकार हैं—
दरबे सासतो नैं भावे असासतो, जीव नैं कह्यो जिनराय हो ।
ते सूतर भगोती रै शतक सातमैं दूजा उदेसा मांय हो ।।२७।।
दरबे सासतो जीव नैं यूं कह्यो, जीव रो अजीव न थाय हो ।
भावे जीव नै कह्यो छै असासतो, ते तो परजाय पलटे जाय हो ।।२८।।
नारकी देवता रो मिनख तिरजंच हुवै, मिनख तिरजंच रो देवता थाय हो ।
इत्यादिक जीव रा भाव अनेक ही, ते और रो और हुय जाय हो ।।३७।।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. इण अर्थे जाव[1] कदा सास्वता, कदा असास्वता जाणी ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! इम कहै गौतम वाणी ।।

२१. सिय सासया, सिय असासया । (श० ७।६०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति (श० ७।६१)

२२. सातमा शतक नों बीजो उदेशो, एक सौ सोलमीं ढालो ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ।।

सप्तमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।७।२।।

## ढाल : ११७

### दूहा

१. जीव तणां अधिकार थी, प्रतिबद्ध ईज पिछाण ।
तृतीय उद्देशक पुनः, ते सूत्र वणस्सइ जाण ।।

१. जीवाधिकारप्रतिबद्ध एव तृतीयोद्देशकस्तत्सूत्रम्—
(वृ० प० २९९)

*देव जिनेन्द्र दयाल गोयम नीं, जग मांहि जुगती जोड़ी जी ।।ध्रुपदं।।

२. वनस्पतिकाय हे भगवंतजी, काल किसै सुविचारो जी ।
सर्व थकी अल्प आहार करे छै, सर्व थकी महा आहारो जी ?

२. वणस्सइक्काइया णं भंते ! कं कालं सव्वप्पाहारगा वा ? सव्वमहाहारगा वा भवंति ?

३. श्री जिन भाखै श्रावण भाद्रवे, पाउस ऋतू मझारो ।
आसोज काती वर्षा ऋतु में, सर्व थकी महा आहारो ।।

३. गोयमा ! पाउस-वरिसारत्तेसु णं एत्थ णं वणस्सइ-काइया सव्वमहाहारगा भवंति ।
प्रावृट् श्रावणादिर्वर्षारात्रोऽश्वयुजादिः ।
(वृ० प० ३००)

४. तिवार पछै मृगसिर नें पोस में, शरद ऋतु अल्प आहारो ?
तिवार पछै माह फागुण हेमंत, अल्प आहारी सुविचारो ।।

४. तदाणंतरं च णं सरदे, तदाणंतरं च णं हेमंते,
'सरदे' ति शरत् मार्गशीर्षादिस्तत्र ।
(वृ० प० ३००)

५. तिवार पछै जे चैत वैशाखे, वसंत ऋतु अल्प आहारो ।
तदनंतर जे ग्रीष्म ऋतु में, कहियै तास प्रकारो ।।

५. तदाणंतरं च णं वसंते, तदाणंतरं च णं गिम्हे ।

६. जेठ आसाढ ग्रीष्म ऋतु मांहै, वणस्सइकाय विचारो ।
सर्व थकी अल्प आहार करै छै, ए जिन वाण उदारो ।।

६. गिम्हासु णं वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवंति ।
(श० ७।६२)

७. जो प्रभु ! ग्रीष्म मांहि वनस्पती, सर्व अल्प आहारवंतो ।
तो प्रभु ! ग्रीष्मे वनस्पति किम, पत्र फूल फल हुंतो ।

७. जइ णं भंते ! गिम्हासु वणस्सइकाइया सव्वप्पा-हारगा भवंति, कम्हा णं भंते ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया, पुप्फिया, फलिया,

८. हरित नील वर्णे करिनें जे, देदीप्यमान दीपंता ।
वन लक्ष्मी करि घणुं-घणुं ते, शोभायमान रहंता ?

८. हरियगरेरिज्जमाणा, सिरीए अतीव-अतीव उवसोभे-माणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति ?
हरितकाश्च ते नीलका रेरिज्जमानाश्च—देदीप्यमाना हरितकरेरिज्यमानाः । (वृ० प० ३००)

९. जिन भाखै ग्रीष्म ऋतु मांहै, बहु उष्णयोनिया जीवा ।
वलि पुद्गल पिण वनस्पतिपणै, वक्कमंति कहितां उपजै अतीवा ।।

९. गोयमा ! गिम्हासु णं बहवे उसिणजोणिया जीवा य, पोग्गला य वणस्सइकाइयत्ताए वक्कमंति,

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ सू० ७।६० में यह 'जाव' उपलब्ध नहीं है ।
*लय : शांतिनाथ मेरे मन वसिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. विउक्कमंति कहितां विणसै छै, ए बिहुं पद नों अर्थ जाणी।
तेह विपर्ययपणै कहै छै, सांभलज्यो चित ठाणी॥
११. चयंति कहितां तेह चवै छै, उववज्जंति कहिता उपजियै।
ए चिहुं पद नों अर्थ द्वितीय शतक पंचमुद्देशे[1] तिम कहियै॥
१२. इम निश्चै ग्रीष्म ऋतु नें विषे, वनस्पती बहु जीवा।
पानवंत अरु पुष्पवंत ए, जावत तिष्ठै अतीवा॥

१३. मूल प्रभु! मूल जीव संघाते, फर्श्या छै अधिकायो।
कंद संघाते कंद जीव ते, फर्श्या छै ए ताह्यो॥
१४. जाव बीज ते बीज जीव थी, फर्श्या एम पिछाणी।
गोतमजी इण विध प्रश्न पूछ्ये? जिन कहै हंता जाणी॥

**सोरठा**

१५. कंद जमी रै मांहि, गांठ रूप मध्य भाग जे।
ते कंद थी नीकली ताहि, चिहुं दिशि जटाज मूल ते॥
१६. तिण सूं मूलज जीव, पृथ्वी करी प्रतिबद्ध छै।
मही-रस अधिक अतीव, तेह प्रतै ए आहरै॥

१७. कंद जीव छै तेह, मूल करी प्रतिबद्ध छै।
मूल तणो रस जेह, तेह प्रतै ए आहरै॥

१८. *जो प्रभु! मूल फर्श्यो मूल साथै, जाव बीज फर्श्यो बीज साथो।
तो किम वणस्सइ आहार करै छै, केम परिणमै नाथो?

**सोरठा**

१९. मूल भूमि रै मांहि, बीज भूमि स्यूं दूर छै।
आहार सहु नें ताहि, वलि सहु नें किया परिणमै॥

२०. *जिन कहै मूल ते मूल जीव थी, फर्श्या एह अत्यंतो।
पृथ्वी जीव संघात बंध्या छै, तिण सूं आहार करै परिणमंतो॥
२१. कंद जीव कंद साथ फर्श्या छै, मूल जीव थी बंधाणो।
तिण सूं आहार करै नें परिणमैं, इम खंधादिक जाणो॥

२२. इम जाव बीज ते बीज जीव थी, फर्श्या थकाज अत्यंतो।
फल जीव प्रतिबद्ध रस पाम्यां, तिण सूं आहार करै परिणमंतो॥

*लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया

१. अंगसुत्ताणि (भाग २) ७।६३ में विउक्कमंति पाठ पाठान्तर में लिया गया है, मूल में तीन ही पद रखे गए हैं। दूसरे शतक (२।११३) में चारों पद उल्लिखित हैं।

१०, ११. भगवई श० २।११३

११. चयंति, उववज्जंति।

१२. एवं खलु गोयमा! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया, पुप्फिया, फलिया, हरियगरेरिज्जमाणा, सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति। (श० ७।६३)
१३. से नूणं भंते! मूला मूलजीवफुडा, कंदा कंदजीवफुडा,

१४. जाव (सं० पा०) बीया बीयजीवफुडा (श० ७।६४)

१६. मूलानि मूलजीवस्पृष्टानि केवलं पृथिवीजीवप्रतिबद्धानि……'तस्मात्' तद् प्रतिबन्धाद्धेतोः पृथिवीरसं मूलजीवा आहारयन्ति। (वृ० प० ३००)
१७. कन्दाः कन्दजीवस्पृष्टाः केवलं मूलजीवप्रतिबद्धाः 'तस्मात्' तत्प्रतिबन्धात् मूलजीवोपात्तं पृथिवीरसमाहारयन्ति। (वृ० प० ३००)
१८. जइ णं भंते! मूला मूलजीवफुडा जाव बीया बीयजीवफुडा, कम्हा णं भंते! वणस्सइकाइया आहारेंति? कम्हा परिणामेंति?

२०. गोयमा! मूला मूलजीवफुडा पुढवीजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति।
२१. कंदा कंदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा, तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति।
एवं स्कन्धादिष्वपि वाच्यम् (वृ० प० ३००)
२२. एवं जाव बीया बीयजीवफुडा फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति। (श० ७।६५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. अथ प्रभु! आलू मूलो नैं आदो, हिरिलि सिरिलि ताह्यो।
सिस्सिरिलि किट्ठिका नैं छिरिया, अनंतकाय कहिवायो ?
२४. क्षीरविरालिया कृष्णकंद वलि, वज्रकंद सूरणकंदो।
खेलूड नैं अद्मुत्था[1] पिंडहलिद्दा लोहि णीहू मंदो।।
२५. थीहू विभगा[2] बे भाग सरीखा, अश्वकर्णी सींहकर्णी।
सिउंढी मुसंढी सहु लोकरूढ़ि गम्य अनंतकाय ए वर्णी।।

२६. अन्य वलि जे एह सरीखी, अनंत जीव सहु मांह्यो।
विविह सत्त्व वर्णादि भेद थी, बहु प्रकार कहिवायो।।

२७. विविह सत्ता किहांइक दीसै, वि कहितां विचित्र कहीजै।
विध कहितां भेद छै जेहनां, ते सत्ता जीवा लहीजै।।

२८. हे प्रभु! ए सहु अनंतकाय छै? प्रश्न गोयम इम मत्ता।
जिन कहै हंता आलू मूल ए, जाव अनंत जीव विविध सत्ता।।

**दोहा**

२९. जीव तणां अधिकार थी, जीव नारकी आद।
लेस्या करि तसु प्रश्न हिव, पूछै धर अहलाद।।

३०. *कृष्णलेस्यावंत नारक हे प्रभु! अल्पकर्मी किणवारै ?
नील लेश्यावंत महाकर्मी छै? जिन कहै हंता जिवारै।।

३१. किण अर्थे तब श्री जिन भाखै, स्थिति पडुच्च कहीजै।
तिण अर्थे जाव महा-कर्मवंत, न्याय हिवै इम लीजै।।

**सोरठा**

३२. नरक सातमी मांय, कृष्णलेस्यावंत नेरइयो।
निज स्थिति घणी खपाय, अल्प रही वर्ते तिहां।।
३३. नरक पंचमी मांहि, नीललेसी जे नेरइयो।
सतर सागर स्थिति ताहि, ते तत्काल समुप्पनो[3]।।

२३. अह भंते! आलुए, मूलए, सिंगबेरे, हिरिलि, सिरिलि, सिस्सिरिलि, किट्ठिया, छिरिया,
२४. छीरविरालिया, कण्हकंदे, वज्जकंदे, सूरणकंदे, खेलूडे, भद्दमोत्था, पिंडहलिद्दा, लोही, णीहू,
२५. थीहू, थिभगा, अस्सकण्णी, सीहकण्णी, सिउंढी, मुसंढी,
एते चानन्तकायभेदा लोकरूढिगम्याः,
(वृ० प० ३००)
२६. जेयावण्णे तहप्पगारा सव्वे ते अणंतजीवा विविहसत्ता ?
विविधा—बहुप्रकारा वर्णादिभेदात्
(वृ० प० ३००)
२७. 'विविहसत्त (चित्ताविहि)' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्र विचित्रा विधयो—भेदा येषां ते तथा ते सत्त्वा येषु ते तथा। (वृ० प० ३००)
२८. हंता गोयमा! आलुए मूलए, जाव अणंतजीवा विविहसत्ता। (श० ७।६६)

२९. जीवाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ३००)

३०. सिय भंते! कण्हलेसे नेरइए अप्पकम्मतराए? नीललेसे नेरइए महाकम्मतराए? हंता सिय।
(श० ७।६७)
३१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—कण्हलेसे नेरइए अप्पकम्मतराए? नीललेसे नेरइए महाकम्मतराए? गोयमा! ठिति पडुच्च। से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव महाकम्मतराए। (श० ७।६८)
३२. सप्तमपृथिवीनारकः कृष्णलेश्यस्तस्य च स्वस्थितौ बहुक्षपितायां तच्छेषे वर्त्तमाने। (वृ० प० ३०१)
३३. पञ्चमपृथिव्यां सप्तदशसागरोपमस्थितिर्नारको नीललेश्यः समुत्पन्नः, (वृ० प० ३०१)

*लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया

१. इसके स्थान पर अंगसुत्ताणि भाग २ में 'भद्दमोत्था' पाठ है। 'अद्दमोत्था' को वहां पाठान्तर माना गया है।
२. इसके स्थान पर अंगसुत्ताणि भाग २ में 'थिभगा' पाठ है। 'विभगा' को वहां पाठान्तर माना गया है।
३. प्रस्तुत आगम की वृत्ति में नील लेश्या वाले नैरयिक की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागर की उल्लिखित है। जयाचार्य ने उसका अनुवाद मात्र किया है,
→



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. ते नील तणी अपेक्षाय, कृष्णलेसी अल्प कर्म छै।
इम स्थिति आश्री ताय, सूत्र आगल पिण जाणियै॥

३४. तमपेक्ष्य स कृष्णलेश्योऽल्पकर्मा व्यपदिश्यते, एवमुत्तर-
सूत्राण्यपि भावनीयानि। (वृ० प० ३०१)

३५. *नील लेस्यावंत नारक प्रभुजी! अल्प कर्म किण वारै।
कापोत नारक महाकर्मी छै? जिन कहै हंता जिवारै॥

३५. सिय भंते! नीललेसे नेरइए अप्पकम्मतराए?
काउलेसे नेरइए महाकम्मतराए? हंता सिय।
(श० ७।६९)

३६. किण अर्थे? तब श्री जिन भाखै, स्थिति आश्री कहिवायो।
तिण अर्थे नील अल्पकर्मवंत, कापोत महाकर्म थायो॥

३६. से केणट्ठेणं भंते! ······गोयमा! ठिति पडुच्च।
से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव महाकम्मतराए।
(श० ७।७०)

३७. असुरकुमार पिण इमहिज भणवा, णवरं तेजू अधिकाइ।
एवं जाव वैमानिक कहिवा, लेस पावै ते थाइ॥

३७. एवं असुरकुमारे वि, नवरं—तेउलेसा अब्भहिया।
एवं जाव वेमाणिया जस्स जइ लेस्साओ तस्स तत्तिया
भाणियव्वाओ।

३८. जोतिषि नो दंडक नहिं भणवो, लेस्या इक तिण मांही।
लेस संयोग नहीं तिण माटै, जोतिषि भणवो नांही॥

३८. जोइसियस्स न भण्णइ
एकस्या एव तेजोलेश्यायास्तस्य सद्भावात् संयोगो
नास्तीति। (वृ० प० ३०१)

३९. जाव कदा पद्मलेसी वैमानिक, अल्पकर्मी किण वारै।
महाकर्मी शुक्ललेसी वैमानिक? जिन कहै हंता जिवारै॥

३९. जाव— (श० ७।७१)
सिय भंते! पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए?
सुक्कलेस्से वेमाणिए महाकम्मतराए?
हंता सिय। (श० ७।७२)

४०. किण अर्थे प्रभुजी! इम कहियै, शेष नरक जिम जाणी।
जावत महाकर्मवंत कहीजै, न्याय पूर्ववत छाणी॥

४०. से केणट्ठेणं? सेसं जहा नेरइयस्स (सं० पा०)
जाव महाकम्मतराए। (श० ७।७३)

**सोरठा**

४१. कह्या सलेसी जोय, वेदनवंत हुवै तिके।
हिवै वेदना सोय, ते आगल कहियै अछै॥

४१. सलेश्या जीवाश्च वेदनावन्तो भवन्तीति वेदना-
सूत्राणि— (वृ० प० ३०१)

***लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया**

पर इस विषय में अपना कोई मत प्रदर्शित नहीं किया। इसकी समीक्षा में कोई वार्तिका या टिप्पण भी नहीं लिखा। उत्तराध्ययन (३४।३५) के संदर्भ में यह अभिमत संगत नहीं है। वहां नीललेश्या वाले नैरयिक की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर बताई गई है। यह तथ्य आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्मित तीन सोरठों में निरूपित है। वे सोरठे इस प्रकार हैं—

**वृत्ति विषे इम वाय, नीललेसी जे नेरइयो।**
**सतर सागर स्थिति ताय, उपजै नरक पंचमी विषे॥**
**उत्तराध्ययन मझार, चउतीसम अध्ययन में।**
**नील लेश्या स्थिति सार, दश सागर जाझी कही॥**
**तिणसूं ए अप्रमाण, नीललेसी जे नेरियो।**
**सतर सागर स्थिति माण, उपजै नहिं पंचमि नरक॥**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. *ते निश्चै प्रभु ! जिका वेदना, तिका निर्जरा कहियै।
जिका निर्जरा तिका वेदना ? जिन कहै इम नहिं लहियै ।।

४३. किण अर्थे प्रभु ! जिका वेदना, तिका निर्जरा नांही।
जिका निर्जरा नहिं ते वेदना ? हिव जिन भाखै त्यांही ।।

४४. उदय कर्म हुवै ते वेदना, निर्जरा कर्म अभावो।
एहवा स्वरूप थकी तिण अर्थे, जुदा बिहुं इण न्यावो ।।

४५. नारकी नैं प्रभु ! जिका वेदना, तिका निर्जरा जोयो।
जिका निर्जरा तिका वेदना ? जिन कहै इम नहिं होयो ।।

४६. किण अर्थे ? तब जिन कहै नरकें, कर्म उदय वेदन छै।
कर्म अभाव निर्जरा कहियै, तिण अर्थे ए वचन छै ।।

४७. एवं जाव वैमानिक कहिवा, समचै एह बताया।
काल त्रिहुं आश्री हिव आगल, प्रश्न उत्तर सुखदाया ।।

४८. ते निश्चै प्रभु ! गया काल में, वेद्यो ते निर्जर्‌यो कहियै।
निर्जरियो कर्म वेद्यो कहियै ? जिन कहै इम न उच्चरियै ।।

४९. किण अर्थे ? तब श्री जिन भाखै, जे वेद्यो ते कर्मो।
निर्जर्‌यो ते नोकर्म कहीजै, तिण कारण ए मर्मो ।।

५०. नारकी जे गये काले वेद्यो, ते निर्जरियो कहियै।
पूरववत दंडक चउवीसे, इमज प्रश्नोत्तर लहियै।

५१. जे निश्चै प्रभु ! हिवड़ां वेदै छै, ते निर्जरै इम कहियै।
ते हिवड़ां निर्जरै ते वेदै ? जिन कहै इम नहिं थइयै ।।

५२. किण अर्थे ? तब श्री जिन भाखै, वेदै ते कर्म पिछानो।
निर्जरै ते नोकर्म कहीजै, तिण अर्थे ए जानो ।।

५३. एवं नारकी जाव वैमानिक, आख्यो ए वर्त्तमानो।
काल अनागत नां हिव कहियै, सुणो सुरत दे कानो ।।

---

*** लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया**

४२. से नूणं भंते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ७।७४)

४३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जा वेदणा न सा निज्जरा ? जा निज्जरा न सा वेदणा ?

४४. गोयमा ! कम्मं वेदणा, नोकम्मं निज्जरा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जा वेदणा न सा निज्जरा, जा निज्जरा न सा वेदणा। (श० ७।७५)
कम्मवेयण' त्ति उदयं प्राप्तं कर्म्म वेदना……'नोकम्मं निज्जरे' ति कर्म्माभावो निर्जरा तस्या एवं स्वरूपत्वादिति। (वृ० प० ३०२)

४५. नेरइया णं भंते ! जा वेदणा सा निज्जरा ? जा निज्जरा सा वेदणा ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ७।७६)

४६. से केणट्ठेणं भंते !……
गोयमा ! नेरइयाणं कम्मं वेदणा, नोकम्मं निज्जरा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव (सं० पा०) न सा वेदणा। (श० ७।७७)

४७. एवं जाव वेमाणियाणं। (श० ७।७८)

४८. से नूणं भंते ! जं वेदेंसु तं निज्जरेंसु ? जं निज्जरेंसु तं वेदेंसु ? णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ७।७९)

४९. से केणट्ठेणं भंते ! ……
गोयमा ! कम्मं वेदेंसु, नोकम्मं निज्जरेंसु। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव नो तं वेदेंसु। (श० ७।८०)

५०. एवं नेरइया वि, एवं जाव वेमाणिया ।।
(श० ७।८१)

५१. से नूणं भंते ! जं वेदेंति तं निज्जरेंति ? जं निज्जरेंति तं वेदेंति ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ७।८२)

५२. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जाव नो तं वेदेंति ?
गोयमा ! कम्मं वेदेंति, नोकम्मं निज्जरेंति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव नो तं वेदेंति। (श० ७।८३)

५३. एवं नेरइया वि जाव वेमाणिया। (श० ७।८४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. निश्चै जे प्रभु ! कर्म वेदस्ये, ते निर्जरस्ये कहियै ।
जे निर्जरस्ये तेज वेदस्ये ? जिन कहै इम न सद्दहियै ॥

५५. किण अर्थे ? तब श्री जिन भाखै, वेदस्ये ते कर्म सारो ।
निर्जरस्ये नोकर्म भणी इज, तिण अर्थे इम धारो ॥

५६. एवं नारकी जाव वैमानिक, काल त्रिहुं रै मांही ।
वेदना नैं निर्जरा नहिं कहियै, निर्जरा वेदना नांही ॥

## यतनी

५७. प्रभु ! वेदना समय छै जेह, ते निर्जरा समय कहेह ।
जे निर्जरा समयो होय, ते वेदना समयो जोय ?

५८. तब भाखै श्री जिनराय, अर्थ समर्थ ए न कहाय ।
किण अर्थे ए प्रभु ! वाय ? हिव श्री जिन दाखै न्याय ॥

५९. जे समय वेदै छै ज्यांही, ते समय निर्जरै नांही ।
जे समय निर्जरै जेह, ते समय वेदै नहिं तेह ॥

६०. वेदै समय अनेरा मांय, अन्य समय निर्जरा थाय ।
वेदना नो समय अन्य होय, निर्जरा नो समय अन्य जोय ॥

६१. तिण अर्थे कह्यो ए मर्म, जे समय वेदै जे कर्म ।
ते समय निर्जरै न ताय, निर्जरै ते समय न वेदाय ॥

६२. नारकी नैं हे भगवान ! जे समय वेदै कर्म जान ।
तेहिज समय विषे कहिवाय, निर्जरा ते कर्म नीं थाय ?

६३. जे समय निर्जरा जेह, ते समय वेदना तेह ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नांय, किण अर्थे ? तब श्री जिन वाय ॥

६४. नारकी जे समय वेदंत, ते समय नहीं निर्जरंत ।
जे समय निर्जरै जेही, ते समय वेदै नहिं तेही ॥

६५. अन्य समय विषे वेदंत, अन्य समय विषे निर्जरंत ।
वेदना नों समय अन्य जोय, निर्जरा नों समय अन्य होय ॥

६६. तिण अर्थे जे समय विचार, वेदना निर्जरा नों न्यार ।
इम जाव वैमानिक तांई, अर्थ समझ लेवो मन मांही ॥

## सोरठा

६७. वेदनवंत विमास, किणहि प्रकार करी प्रभु ।
कह्या सास्वता तास, सूत्र हिवै सास्वत तणुं ॥

५४. से नूणं भंते ! जं वेदिस्संति तं निज्जरिस्संति ? जं निज्जरिस्संति तं वेदिस्संति ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।८५)

५५. से केणट्ठेणं जाव नो तं वेदिस्संति ?
गोयमा ! कम्मं वेदिस्संति, नोकम्मं निज्जरिस्संति ।
से तेणट्ठेणं जाव नो तं निज्जरिस्संति ।
(श० ७।८६)

५६. एवं नेरइया वि जाव वेमाणिया । (श० ७।८७)

५७. से नूणं भंते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए ? जे निज्जरासमए से वेदणासमये ?

५८. णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।८८)
से केणट्ठेणं भंते !.......

५९. गोयमा ! जं समयं वेदेंति नो तं समयं निज्जरेंति, जं समयं निज्जरेंति नो तं समयं वेदेंति ।

६०. अण्णम्मि समए वेदेंति, अण्णम्मि समए निज्जरेंति ।
अण्णे से वेदणासमए, अण्णे से निज्जरासमए ।

६१. से तेणट्ठेणं जाव न से वेदणासमए, न से निज्जरासमए । (श० ७।८९)

६२. नेरइया णं भंते ! जे वेदणासमए से निज्जरासमए ?

६३ जे निज्जरासमए से वेदणासमए ?
गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । (श० ७।९०)
से केणट्ठेणं भंते !.......

६४. गोयमा ! नेरइया णं जं समयं वेदेंति नो तं समयं निज्जरेंति, जं समयं निज्जरेंति नो तं समयं वेदेंति—

६५. अण्णम्मि समए वेदेंति, अण्णम्मि समए निज्जरेंति ।
अण्णे से वेदणासमए, अण्णे से निज्जरासमए ।

६६. से तेणट्ठेणं जाव न से वेदणासमए । (श० ७।९१)
एवं जाव वेमाणियाणं । (श० ७।९२)

६७. पूर्वकृतकर्मणश्च वेदना तद्वत्ता च कथञ्चिच्छाश्वतत्वे सति युज्यत इति तच्छाश्वतत्वसूत्राणि ।
(वृ० प० ३०२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. *स्यूं प्रभु ! नारकी कह्या सास्वता, असास्वता कहिवायो ?
श्री जिन भाखै कदाच सास्वता, कदा असास्वता थायो ।।

६९. किण अर्थे ? प्रभु ! सिय सास्वता, सिय असास्वता थायो ?
जिन कहै इहां नय दोय परूपी, सांभलजे चित ल्यायो ।।

७०. अव्यवच्छित्ति-प्रधान नये करि, द्रव्य विच्छेद न पायो ।
एतलै जे द्रव्य आश्री नेरइया, सास्वता छै इण न्यायो ।।

७१. विच्छेद-प्रधान जे नय अर्थे करि, पर्याय आश्री ताह्यो ।
नारक जीव असास्वता कहियै, तिण अर्थे ए वायो ।।

७२. एवं जाव वेमाणिया कहिवा, जाव कदा असास्वत जाणो ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! गोयम वचन प्रमाणो ।।

७३. सातमा शतक नों तीजो उद्देशो, एक सौ सतरमीं ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरख विशालो ।।

सप्तमशते तृतीयोद्देशकार्थः ।।७।३।।

६८. नेरइया णं भंते ! किं सासया ? असासया ?
गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।
(श० ७।६३)

६९. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नेरइया सिय सासया ? सिय असासया ?

७०. गोयमा ! अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए सासया ।
अव्यवच्छित्तिप्रधानो नयोऽव्यवच्छित्तिनयस्तस्यार्थो—द्रव्यमव्यवच्छित्तिनयार्थस्तद्भावस्तत्ता तयाऽव्यवच्छित्तिनयार्थतया—द्रव्यमाश्रित्य शाश्वता इत्यर्थः ।
(वृ० प० ३०२)

७१. वोच्छित्तिनयट्ठयाए असासया । से तेणट्ठेणं जाव सिय सासया, सिय असासया । (श० ७।६४)
व्यवच्छित्तिप्रधानो यो नयस्तस्य योऽर्थः—पर्यायलक्षणस्तस्य यो भावः सा व्यवच्छित्तिनयार्थता तया २—पर्यायानाश्रित्य अशाश्वता नारका इति ।
(वृ० प० ३०२)

७२. एवं जाव वेमाणिया जाव सिय असासया ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।६५,६६)

## ढाल : ११८

### दूहा

१. तृतीय उदेशक नें विषे, संसारी जे जीव ।
सास्वत आदि स्वरूप थी, आख्या अधिक अतीव ।।

२. तुर्य उदेश विषे हिवै, तेहिज प्रति सुविचार ।
भेद थकी कहियै अछै, प्रश्न उत्तर सुखकार ।।

३. राजगृह यावत इम कहै, प्रभु ! संसारी जीव ।
कतिविध ? जिन कहै षटविधा, ते षट काय कहीव ।।

१. तृतीयोद्देशके संसारिणः शाश्वतादिस्वरूपतो निरूपिताः । (वृ० प० ३०२)

२. चतुर्थोद्देशके तु तानेव भेदतो निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३०२)

३. रायगिहे नयरे जाव एवं वयासी—कतिविहा णं भंते! संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! छव्विहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया ।

---

* लय : शान्तिनाथ मेरे मन वसिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. इम जिम जीवाभिगम में, जाव जिहां लगे जोय ।
सम्मत्त-किरिया प्रति करै, मिच्छत्त-किरिया सोय ।।

४. एवं जहा जीवाभिगमे जाव एगे जीवे एगेणं समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा—सम्मत्तकिरियं वा, मिच्छत्तकिरियं वा । (श० ७।६७)

५. षटविध जीव छ काय ते, बादर पृथ्वी जेह ।
षट प्रकार नीं ते अछै, वलि स्थिति तास कहेह ।।

५. जीवा छव्विह पुढवी जीवाण ठिती भवट्ठिती काए । (वृ० प० ३०२)

वा०—बादर पृथ्वी छह प्रकार नीं छै—श्लक्ष्णा, शुद्धा, वालुका, मनःशिला, शर्करा और खर पृथ्वी । ए पृथ्वी नां छह भेद कह्या ते जीव नीं स्थिति—

वा०—षड्विधा बादरपृथ्वी श्लक्ष्णा, शुद्धा, वालुका, मनःशिला, शर्करा, खरपृथिवीभेदात्, तथैषामेव पृथिवीभेदजीवानां स्थिति : (वृ० प० ३०२)

६. जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तणी, उत्कृष्टी अवलोय ।
वर्ष बावीस हजार नीं, पृथ्वी नीं स्थिति जोय ।।

६. अन्तर्मुहूर्त्तादिका यथायोगं द्वाविंशतिवर्षसहस्रान्ता वाच्या । (वृ० प० ३०३)

७. भव-स्थिती नरकादि नीं, तसुं सामान्य कहंत ।
अन्तर्मुहूर्त्त आदि दे, तेतीस सागर अन्त ।।

७. तथा नारकादिषु भवस्थितिर्वाच्या, सा च सामान्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तादिका त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमान्ता । (वृ० प० ३०३)

८. कायस्थिति इणविध कही, जीवकाय में जीव ।
सदा काल रहियै अछै, इत्यादिक सुकहीव ।।

८. तथा कायस्थितिर्वाच्या, सा च जीवस्य जीवकाये सर्वाद्धमित्येवमादिका । (वृ० प० ३०३)

९. निर्लेपन ते इह विधे, पृथ्वीकाय रै मांय ।
वर्त्तमान काले जिता, जीव ऊपजै आय ।।

१०. समय-समय अपहार करि, असंख्यात अवधार ।
अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी, तिण करिनैं अपहार ।।

९,१०. तथा निर्लेपना वाच्या, सा चैवं—प्रत्युत्पन्नपृथिवीकायिकाः समयापहारेण जघन्यपदेऽसंख्याभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्रियन्ते । (वृ० प० ३०३)

११. इम उत्कृष्ट पदे अपि, जघन्य पद थी जाण ।
उत्कृष्ट पद असंखेज्ज गुण, इत्यादिक पहिछाण ।।

११. एवमुत्कृष्टपदेऽपि, किन्तु जघन्यपदादुत्कृष्टपदमसंख्येयगुणमित्यादि । (वृ० प० ३०३)

१२. अणगार नी वक्तव्यता ते इम—अविसुध-लेस ।
वेदनादि समुद्घात करि, असमवहत सुविशेष ।।

१३. अविसुधलेसी सुर सुरी, वलि तीजो अणगार ।
देखै यां तीनूं भणी ? अर्थ समर्थ न धार ।।

१२,१३. अनगारवक्तव्यता वाच्या, सा चेयम्—अविशुद्धलेश्योऽनगारोऽसमवहतेनात्मनाऽविशुद्धलेश्यं देवं देवीमनगारं जानाति ? नायमर्थ (समर्थः) इत्यादि । (वृ० प० ३०३)

१४. सम्मत्त मिच्छत्त बे क्रिया, अन्ययूथिक कहै ताय ।
एके समये करै अछै, जिन कहै मिथ्या वाय ।।

१४. अन्ययूथिका एवमाख्यान्ति—एको जीव एकेन समयेन द्वे क्रिये प्रकरोति सम्यक्त्वक्रियां मिथ्यात्वक्रियां चेति, मिथ्या चैतद्विरोधादिति । (वृ० प० ३०३)

१५. सेवं भंते ! वार बे, सप्तम शते विचार ।
तुर्य उदेशे अर्थ ए, हिव पंचम अधिकार ।।

१५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।६८)

सप्तमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।७।४।।

१६. संसारी नां भेद ए, तुर्य उदेशे वेद ।
तसु विशेष हिव पंचमे, योनी-संग्रह भेद ।।

१६. चतुर्थे संसारिणो भेदत उक्ताः पञ्चमे तु तद्विशेषाणामेव योनिसंग्रहं भेदत आह— (वृ० प० ३०३)

१७. राजगृह जावत इम कहै, हे प्रभु ! खेचर जीव ।
पंचेंद्री तिर्यंच नी, कतिविध योनि कहीव ?

१७. रायगिहे जाव एवं वयासी—खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! कतिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. जिन भाखै त्रिविध अछै, योनी-संग्रह ताय ।
अंडज पोतज संमूर्च्छिम, जीवाभिगम भलाय ।।

१८. गोयमा ! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—
अंडया पोयया, संमुच्छिमा । एवं जहा जीवाभिगमे

१९. जाव अनुत्तर देव नां, केता बड़ा विमान ?
उदय अस्त रवि गगन नो खेत्र नव गुणो मान ।।

१९. जाव
ते णं भंते ! विमाणा के महालया पन्नत्ता ?
गोयमा ! जावइयं च ण सूरिए उदेइ जावइयं च णं सूरिए अत्थमेइ यावताऽन्तरेणेत्यर्थः एवंरूवाइं नव उवासंतराइं । (वृ० प० ३०३)

२०. आठ लाख पचास सहस्र, सप्त सया चालीस ।
योजन किंचित अधिक वली, इतलो खेत्र कहीस ।।

२१. एहवो जे इक पांवड़ो, कोइक देव भरेह ।
महापराक्रम नो धणी, एहवी चाल चलेह ।।

२१. अत्थेगइयस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया से णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे (वृ० प० ३०३)

२२. एक दोय त्रिण दिन लगै, जाव छह मास पिछाण ।
तो पिण पार लहै नहीं, एहवा बड़ा विमाण ।।

२२. जाव एगाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे वीईव-एज्जा । (वृ० प० ३०३)
नो चेव णं ते विमाणे वीतीवएज्जा, एमहालया णं गोयमा ! ते विमाणा पण्णत्ता । (श० ७।९९)

२३. वाचनांतरे पुनः वलि, इम दीसै छै ताह ।
एहवो आख्यो वृत्ति में, जे संग्रहणी गाह ।।

२३. वाचनान्तरे त्विदं दृश्यते—
जोणिसंगहलेसा दिट्ठी णाणे य जोगउवओगे ।
उववायठिइसमुग्घायचवणजाईकुलविहीओ ।।
(वृ० प० ३०३)

२४. योनी-संग्रह ते इहां, प्रगट देखाड्यो ईज ।
लेश्या आदिक नैं हिवै, कहियै अर्थ थकीज ।।

२४. तत्र योनिसंग्रहो दर्शित एव, लेश्यादीनि त्वर्थतो दर्श्यन्ते । (वृ० प० ३०३)

२५. खेचर पं०तिर्यंच में, लेश्या छः दृष्टि तीन ।
ज्ञान तीन, अज्ञान त्रिण, वलि त्रिण जोग कथीन ।।

२५. एषां लेश्याः षड् दृष्टयस्तिस्रः ज्ञानानि त्रीणि आद्यानि भजनया अज्ञानानि तु त्रीणि भजनयैव योगास्त्रयः (वृ० प० ३०३)

२६. बे उपयोग सागार जे, अणागार कहिवाय ।
ऊपजवो सामान्य थी, चिहुं गति थकीज आय ।।

२६. उपयोगी द्वौ उपपातः सामान्यतश्चतसृभ्योऽपि गतिभ्यः
(वृ० प० ३०३)

२७. स्थिति अंतर्मुहूर्त्त जघन्न, उत्कृष्ट पल्ल नुं संच ।
असंख्यातमो भाग है, समुद्घात है पंच ।।

२७. स्थितिरन्तर्मुहूर्त्तादिका पल्योपमासंख्येयभागपर्यवसाना समुद्घाताः केवल्याहारकवर्ज्जाः पञ्च ।
(वृ० प० ३०३)

२८. गति च्यारूं में जाय ते, द्वादश लख कुल कोड़ ।
कही वार्त्तिका वृत्ति थी, वाचनांतरे जोड़ ।।

२८. तथा च्युत्वा ते गतिचतुष्टयेऽपि यान्ति तथैषां जातौ द्वादश कुलकोटीलक्षा भवन्तीति । (वृ० प० ३०३)

२९. आयुषवंत अहो श्रमण, सेवं भंते ! स्वाम ।
सप्तम शतके पांचमो, कह्यो उद्देशो ताम ।।

२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।१००)

सप्तमशते पंचमोद्देशकार्थः ।।७।५।।

३०. पंचमुदेश विषे कह्या, योनी-संग्रह आदि ।
आयुवंत नैं ते हुवै, छठै आयुष्कादि ।।

३०. अनन्तरं योनिसंग्रहादिरर्थ उक्तः, स चायुष्मतां भवतीत्यायुष्कादिनिरूपणार्थः षष्ठः ।
(वृ० प० ३०४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*परम प्रभु जिन जयकारी।
जिन जयकारी शासण सिणगारी, वाण सुधा अति प्यारी हो।। (ध्रुपदं)

३१. राजगृह नगर जावत गोतमजी बोल्या इह विध वाय हो।
जीव प्रभु! जे नरक रै मांहै, ऊपजवा योग्य ताय हो।।

३१. रायगिहे जाव एवं वयासी—जीवे णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए।

३२. ते प्रभु! इहां रह्यो पहिला भव में, नरकायु बंध करंत।
ऊपजतो छतो नरकायु बांधै, ऊपनां पछै बांधंत?

३२. से णं भंते! किं इहगए नेरइयाउयं पकरेइ? उववज्जमाणे नेरइयाउयं पकरेइ? उववन्ने नेरइयाउयं पकरेइ?

३३. जिन कहै इहां रह्यो पहिला भव में, नरकायु बंध करंत।
ऊपजतो नरकायु न बांधै, ऊपनां पछै न बांधंत।।

३३. गोयमा! इहगए नेरइयाउयं पकरेइ, नो उववज्जमाणे नेरइयाउयं पकरेइ, नो उववन्ने नेरइयाउयं पकरेइ।

गोयम शिष्य महागुणधारी।
महा गुणधारी शासण सिणगारी, परम विनीत उदारी हो।।

३४. एवं असुरकुमार पिण कहिवा, एवं जाव विमानीक।
जीव प्रभु! जे नरक रै मांहै, ऊपजवा जोग तहतीक।।

३४. एवं असुरकुमारेसु वि, एवं जाव वेमाणिएसु। (श० ७।१०१)

जीवे णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए,

३५. ते प्रभु! इहां रह्यो पहिला भव में, नरक नो आयु वेदंत।
कै ऊपजतो नरकायु वेदै, कै ऊपनां पछै वेदंत?

३५. से णं भंते! किं इहगए नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ? उववज्जमाणे नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ? उववन्ने नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ?

३६. जिन कहै इहां रह्यो पहिला भव में, नरकायु नहि भोगवंत।
ऊपजतो छतो नरकायु वेदै, ऊपनां पछै वेदंत।।

३६. गोयमा! नो इहगए नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ, उववज्जमाणे नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ, उववन्ने वि नेरइयाउयं पडिसंवेदेइ।

३७. एवं जाव वैमानिक कहिवा, वलि गोयम पूछाय।
जीव प्रभु! जे नरक रै मांहे, ऊपजवा योग्य ताय।।

३७. एवं जाव वेमाणिएसु। (श० ७।१०२)

जीवे णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए,

३८. ते प्रभु! इहां रह्यो पहिला भव में, महा वेदनावंत।
कै ऊपजतो महावेदनवंत छै, कै ऊपनां पछै हुंत?

३८. से णं भंते! किं इहगए महावेदणे? उववज्जमाणे महावेदणे? उववन्ने महावेदणे?

३९. जिन कहै इहां रह्यो पहिला भव में, रोगादि कारणे जोय।
महावेदनावंत कोइक छै, अल्पवेदनवंत कोय।।

३९. गोयमा! इहगए सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे,

४०. नरक विषे ऊपजतो छतो पिण, जीव कोइ एक जोय।
महा वेदनावंत हुवै छै, अल्पवेदनवंत कोय।।

४०. उववज्जमाणे सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे,

४१. अथ हिव नरक विषे ऊपनां पछै, एकांत सर्वथा ताय।
दुख रूप वेदन प्रति वेदै, साता किवारै थाय।।

४१. अहे णं उववन्ने भवइ तओ पच्छा एगंतदुक्खं वेदणं वेदेंति, आहच्च सायं। (श० ७।१०३)
सर्वथा दुःखरूपां वेदनीयकर्म्मानुभूतिम्
(वृ० प० ३०५)

**सोरठा**

४२. परमाधामी आदि, असंयोग अद्धा विषे।
तीर्थंकर जन्मादि, कदाचित साता हुवै।।

४२. कदाचित् सुखरूपां नरकपालादीनामसंयोगकाले।
(वृ० प० ३०५)

४३. *हे प्रभु! असुरकुमार विषे इज, तास पूछा जिन वाय।
जिन कहै कदा इहां रह्यो महावेदन, अल्प वेदन कदा थाय।।

४३. जीवे णं भंते! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, पुच्छा।
गोयमा! इहगए सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे,

---

*लय : परम गुरु ऊभा थे रहिज्यो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. ऊपजतो छतो कदा महावेदन, अल्प वेदन कदा थाय ।
ऊपनां पछै एकांत सुख वेदना, कदा असाता थाय ।।

**सोरठा**

४५. देवी प्रमुख वियोग, कदा असाता वेदना ।
तथा प्रहार प्रयोग, जावत थणियकुमार इम ।।

४६. *जीव प्रभु ! पृथ्वी विषे ऊपजै, तास पूछा जिन वाय ।
इहां रह्यो महावेदन कदाचित, अल्प वेदन कदा थाय ।।

४७. ऊपजतो थको पिण इम कहिवो, ऊपनां पछै अवलोय ।
बेमात्रा करि वेदना वेदै, इम जाव मनुष्य में जोय ।।

४८. व्यंतर जोतिषि वैमानिक में, ऊपजवा जोग ताय ।
प्रश्न उत्तर जेम असुर में ऊपजै तिम कहिवाय ।।

४९. जीव जाणतो थको प्रभु ! स्यूं आयु बांधै—निपजाय ।
कै अणजाणतो आउखो बांधै ? हिव भाखै जिनराय ।।

५०. जाणतो थको आयु नहिं बांधै, अजाणतो आयु बंधाय ।
नारकी नैं पिण इहविध कहिवो, इम जाव वैमानिक पाय ।।

५१. कर्कस रोद्र दुखे करि वेदै, कर्म इसा दुखदाय ।
हे प्रभु ! जीव करै छै उपार्जै ? हंता ए जिन वाय ।।

**सोरठा**

५२. खंधक नां जे शीस, पील्या घाणी नैं विषे ।
तेहनीं परै जगीस, कहियै कर्कस वेदनी ।।

५३. *किम प्रभु ! कर्कस वेदनी बांधै ? तब भाखै जिन वाय ।
पाप अठारै करि नैं जीवा, कर्कस वेदनी उपाय ।।

५४. नरक प्रभु ! बांधै कर्कस वेदनी ? जिन कहै इमज कहाय ।
एवं जाव वैमानिक नैं, पाप सेव्यां बंधाय ।।

५५. हे प्रभु ! जीव अकर्कस वेदनी, कर्म करै ते बंधाय ?
पुन्य अत्यन्त अकर्कस कहियै, जिन कहै हंता वाय ।।

*लय : परम गुरु ऊभा थे रहिजो

४४. उववज्जमाणे सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे, अहे णं उववन्ने भवइ तओ पच्छा एगंतसातं वेदणं वेदेति, आहच्च असायं ।

४५. 'आहच्च असायं' ति प्रहाराद्युपनिपातात्, (वृ० प० ३०५)
एवं जाव थणियकुमारेसु । (श० ७।१०४)

४६. जीवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, पुच्छा ।
गोयमा ! इहगए सिय महावेदणे सिय अप्पवेदणे ।

४७. एवं उववज्जमाणे वि, अहे णं उववन्ने भवइ तओ पच्छा वेमायाए वेदणं वेदेति । एवं जाव मणुस्सेसु ।

४८. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु जहा असुरकुमारेसु । (श० ७।१०५)

४९. जीवा णं भंते ! किं आभोगनिव्वत्तियाउया ? अणाभोगनिव्वत्तियाउया ?

५०. गोयमा ! नो आभोगनिव्वत्तियाउया, अणाभोगनिव्वत्तियाउया ।
एवं नेरइया वि, एवं जाव वेमाणिया । (श० ७।१०६)

५१. अत्थि णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
हंता अत्थि । (श० ७।१०७)
कर्कशैः—रौद्रदुःखैर्वेद्यते यानि तानि कर्कशवेदनीयानि (वृ० प० ३०५)

५२. स्कन्दकाचार्यसाधूनामिवेति (वृ० प० ३०५)

५३. कहण्णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
गोयमा ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं—एवं खलु गोयमा ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति । (श० ७।१०८)

५४. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? एवं चेव । एवं जाव वेमाणियाणं । (श० ७।१०९)

५५ अत्थि णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
हंता अत्थि । (श० ७।११०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

५६. भरत प्रमुख पहिछाण, चक्री नी परि जाणिवा ।
जबर पुन्य महिमाण, ते अकर्कस वेदनी ।।

५७. *हे प्रभु ! जीव अकर्कस वेदनी, ते कर्म केम बंधाय ?
जिन कहै प्राणातिपात सूं निवर्त्तै, ए त्याग आश्री कहिवाय ।।

५८. एवं जाव परिग्रह थी निवर्त्तै, क्रोध तजै क्षमताय ।
जाव मिच्छादंसणसल्ल थी निवर्त्तै, अकर्कस वेदनी बंधाय ।।

५९. नेरइया नैं अकर्कस वेदनी, ते प्रभु ! कर्म बंधाय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही, संजम नहिं तिण मांय ।।

६०. एवं जाव वेमाणिया कहिवा, णवरं मनुष्य रै मांय ।
बंध अकर्कस जीव तणी परि, संजम इण में पाय ।।

६१. †प्राणातिपात नो वेरमण ते, वृत्ति में संजम कह्यो ।
ते भणी इक मनुष्य में इज, बंध अकर्कस लह्यो ।।

६२. नारकादिक मांहि संजम, नहीं छै तिण कारणै ।
कर्म अकर्कस न बंधै, वृत्तिए वर धारणै ।।

६३. *जीव प्रभु ! साता वेदनी बांधै ? हंता कहै जिनराय ।
हे भगवंत ! जीव साता वेदनी, कर्म ते केम बंधाय ?

६४. जिन कहै प्राण भूत जीव सत्व नी, अनुकंपा करि ताय ।
प्राण भूत बहु जीव सत्व नैं, दुख अणदेवै थाय ।।

६५. असोयणयाए दीनपणुं ते, अणकरिवै अधिकाय ।
अजूरणयाए तनु क्षयकारी, सोग नहीं उपजाय ।।

६६. अतिप्पणयाए आंसू लालादिक, सोग कारण न उपाय ।।
अपिट्टणयाए लाठी प्रमुख सूं, ताड़णा न करै ताय ।।

६७. अपरियावणयाए शरीर नैं, परितापना न उपाय ।
तेणे करी जीव साता वेदनी, कर्म निश्चैइ बंधाय ।।

*लय : परम गुरु ऊभा थे रहिजो

†लय : पूज मोटा भांजै तोटा

५६. सुखेन वेद्यन्ते यानि तान्यकर्कशवेदनीयानि भरतादीनामिव, (वृ० प० ३०५)

५७. कहण्णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं

५८. जाव परिग्गहवेरमणेणं, कोहविवेगेणं जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगेणं—एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति । (श० ७।१११)

५९. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

६०. एवं जाव वेमाणियाणं, नवरं—मणुस्साणं जहा जीवाणं । (श० ७।११२)

६१. 'पाणाइवायवेरमणेणं' ति संयमेनेत्यर्थः ।
(वृ० प० ३०५)

६२. नारकादीनां तु संयमाभावात्तदभावोऽवसेयः ।
(वृ० प० ३०५)

६३. अत्थि णं भंते ! जीवाणं सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
हंता अत्थि । (श० ७।११३)
कहण्णं भंते ! जीवाणं सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

६४. गोयमा ! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए

६५. असोयणयाए अजूरणयाए
'असोयणयाए' त्ति दैन्यानुत्पादनेन 'अजूरणयाए' त्ति शरीरापचयकारिशोकानुत्पादनेन ।
(वृ० प० ३०५)

६६. अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए
'अतिप्पणयाए' त्ति अश्रुलालादिक्षरणकारणशोकानुत्पादनेन 'अपिट्टणयाए' त्ति यष्ट्यादिताडनपरिहारेण । (वृ० प० ३०५)

६७. अपरियावणयाए—एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ।
'अपरियावणयाए' त्ति शरीरपरितापानुत्पादनेन ।
(वृ० प० ३०५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. एवं नारकी जाव वेमाणिया, बुद्धिवंत जाणै न्याय ।
दुख न दियां बंधै साता वेदनी, पिण सुख दियां कह्यो नांय ॥

६८. एवं नेरइयाण वि, एवं जाव वेमाणियाणं ।
(श० ७।११४)

६९. जीव प्रभु ! बांधै असाता वेदनी ? हूंता कहै जिनराय ।
हे प्रभु ! जीव असाता वेदनी कर्म ते केम बंधाय ?

६९. अत्थि णं भंते ! जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?
हंता अत्थि । (श० ७।११५)
कहण्णं भंते ! जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

७०. जिन भाखै पर नैं दुख देवै, पर नैं दीन करै ताय ।
पर नैं झूरावै तनु क्षयकारी, तास सोग उपजाय ॥

७०. गोयमा परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए,

७१. आंसू लालादिक पर नैं करावै, सोग कारण उपजाय ।
लाठी प्रमुख सूं पर नैं ताड़ै, पर परिताप उपाय ॥

७१. परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरियावणयाए,

७२. घणां प्राण भूत जीव सत्व नैं, दुक्ख सोग उपजाय ।
जाव परितापना पर नैं उपावै, इम असाता वेदनी बंधाय ॥

७२. बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए, सोयणयाए, जूरणयाए, तिप्पणयाए, पिट्टणयाए, परियावणयाए—एवं खलु गोयमा ! जीवाणं असातावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ।

७३. एवं नारकी जाव वैमानिक, दुख दियां असाता बंधाय ।
दुख न दीधां बंधै साता वेदनी, बुद्धिवंत जाणै न्याय ॥

७३. एवं नेरइयाण वि, एवं जाव वेमाणियाणं ।
(श० ७।११६)

**सोरठा**

७४. 'दुख नहि दीधां तास, दाखी साता वेदनी ।
जोवो हिये विमास, पिण सुख दीधां नहिं कह्यो ॥

७५. असंजती रो जाण, मरणो नें वलि जीवणो ।
राग द्वेष पहिछाण, धर्म नहीं ते वंछियां ॥

७६. दशवैकालिक मांय, गृहस्थ नीं व्यावच कियां ।
अणाचार कहिवाय तो गृहि-व्यावच में धर्म नहिं ॥

७६. गिहिणो वेयावडियं (दसवेआलियं ३।६)

७७. साता पूछै सोय, अणाचार छै सोलमों ।
साता करेज कोय, धर्म किहां थी तेहमें ॥

७७. ........संपुच्छणा........ (दसवेआलियं ३।३)

७८. साधु नैं अणाचार, श्रावक नैं थापै धरम ।
वचन वदै अविचार, मिथ्यादृष्टी जीवड़ा ॥

७९. नशीत पनरमा मांय, गृहस्थ नैं चिहुं आ'र दे ।
अनुमोदै मुनिराय, चोमासी दंड तेहनैं ॥

७९. निसीहज्झयणं १५।७६

८०. नशीत बारमै वाण, अनुकंपा त्रस नीं करी ।
बांधै छोड़ै जाण, अनुमोद्यां दंड मुनि भणी ॥

८०. जे भिक्खू कोलुणपडियाए अण्णयरिं तसपाणजातिं....
निसीहज्झयणं १२।१,२

८१. इकवीसमें सूगडांग, वध म वध ए जीव नैं ।
इम न कहै मुनि चंग, मरण जीवतव्य वांछनै ॥

८१. ........वज्झा पाणा अवज्झत्ति, इति वायं ण णीसिरे
सूयगडो २।५।३०

८२. तिण कारण ए संध, सुख उपजायां पर भणी ।
साता वेदनी बंध, एहवूं जिन आख्यो नहीं' ॥
(ज० स०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. *अंक छिहंतर देश कह्यो ए, एक सौ अठारमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशाल॥

## ढाल : ११६

### दूहा

१. परितापना उपजायवै, दुख पीड़ा अवलोय।
ते दुख नां प्रस्ताव थी, दुस्समदुसमा जोय॥

*गोयम पूछै वीर नैं रे।
ए तो वीर प्रभु वडवीर, हरण पर पीड़ नैं रे। (ध्रुपदं)

२. जंबूद्वीप में हे प्रभु ! रे, भरत मध्य सुविचार।
इण अवसर्प्पिणी काल में रे, दुस्समदुसमा आर॥

३. उत्तम जे उत्कृष्ट ही, काष्ठ अवस्था धार।
भरत तणो केहवो हुसी, आकार भाव प्रकार ?

### सोरठा

४. उत्तम काष्ठज प्राप्त, उत्तम ते उत्कृष्ट दुख।
काष्ठ अवस्था आप्त, ते उत्तम अवस्था नैं विषे॥

५. अथवा उत्तम कष्ट, परम कष्ट पाम्या विषे।
भरत क्षेत्र नो दृष्ट, केहवो भाव आकार प्रभु ?

*प्रभु कहै सांभलो रे।
दुस्समदुसमा काल नो करड़ो मामलो रे॥ (ध्रुपदं)

६. जिन कहै काल इसो हुसी, दुखार्त्त लोक कुसूत।
हाहाकार करिस्यै बहु, काल तिको हाहाभूत॥

७. गाय प्रमुख दुख पीड़िया, भां भां शब्द करीस।
तिण कारण ए काल नैं, भांभांभूत सरीस॥

८. अथवा भंभा भेरि ते, अंतर्शून्य जिम काल।
जन-क्षय थी शून्य छै तिको, ते भंभाभूत निहाल॥

१. दुःखप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० ३०५)

२. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए दुस्सम-दुस्समाए समाए

३. उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आगार-भावपडोयारे भविस्सइ ?

४. 'उत्तमकट्ठपत्ताए' त्ति परमकाष्ठाप्राप्तायाम्, उत्तमावस्थायां गतायामित्यर्थः, ((वृ० प० ३०५)

५. परमकष्टप्राप्तायां वा। (वृ० प० ३०५)

६. गोयमा ! कालो भविस्सइ हाहाभूए,
हाहा इत्येतस्य शब्दस्य दुःखार्त्तलोकेन करणं हाहोच्यते तद्भूतः—प्राप्तो यः कालः स हाहाभूतः।
(वृ० प० ३०५)

७. भंभब्भूए,
भां भां इत्यस्य शब्दस्य दुःखार्त्तगवादिभिः करणं भंभोच्यते तद्भूतो यः स भंभाभूतः।
(वृ० प० ३०६)

८. भंभा वा भेरी सा चान्तःशून्या ततो भम्भेव यः कालो जनक्षयाच्छून्यः स भंभाभूत उच्यते।
(वृ० प० ३०६)

---

*लय : परम गुरु ऊभा थे रहिजो
*लय : करेलणा नीं (कीड़ी चाली सासरै रे)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. बहु पंखी दुख पीड़िया, तसु आरति असराल ।
कोलाहल करिस्यै घणो, कोलाहलभूत काल ।।

१०. काल तणांज प्रभाव थी, फर्श अत्यन्त कठोर ।
एहवी धूल सहीत जे, मलिन वायु अति घोर ।।

११. दुस्सह चित व्याकुल करै, वले भयंकर ताय ।
करै तृणादिक एकठा, एहवा वाजस्यै वाय ।।

१२. वार-वार तिण काल में, दश दिश धूंयर देख ।
वलि दिशि होस्यै केहवी ? सांभलज्यो सुविशेष ।।

१३. रज सहित हुस्यै सगली दिशा, धूल मलिनतम तास ।
तेहनैं पटल वृंदे करी, दूर गयो छै प्रकाश ।।

१४. समय नें लुक्खपणैं करी, रजनीकर पिण भूर ।
शीत अपथ्य अति मूकस्यै, अधिको तपस्यै सूर ।।

१५. अन्य चिह्न वलि एहवा, अरसमेहा रस-रहीत ।
वार वार बहु वर्षस्यै, ते जल अधिक अप्रीत ।।

१६. विरुद्ध रस छै जेहनों, विरसमेहा अधिकेह ।
खारमेहा साजी खार सा, बहुला वर्षस्यै मेह ।।

१७. खत्तमेहा ते करीष सम, रस जल सहित पिछान ।
खट्टमेहा दीसै किहां, खाटा जल जिम जान ।।

१८. अग्निमेहा अग्नि सारिखो, दाहकारी जल जेह ।
विज्जुमेहा वीजली, जल वर्जित वर्षेह ।।

१९. विषमेहा जन-मरण नों, हेतू जल छै जेह ।
गड़ादि निपातवंत जे, अशनिमेह कहेह ।।

२०. अथवा गिरि प्रमुख भणी, विदारवा नें जेह ।
समर्थ उदकपणैं करी, ते अशनि वज्रमेह ।।

९. कोलाहलभूए ।
कोलाहल इहार्त्तशकुनिसमूहध्वनिस्तं भूतः—प्राप्तः कोलाहलभूतः । (वृ० प० ३०६)

१०. समाणुभावेण य णं खर-फरुस-धूलिमइला
कालविशेषसामर्थ्येन·······'खरफरुसधूलिमइल' त्ति खरपरुषाः—अत्यन्तकठोराः धूल्या च मलिना ये वातास्ते तथा । (वृ० प० ३०६)

११. दुव्विसहा वाउला भयंकरा वाया संवट्टगा य वाहिंति ।
'संवट्टय' त्ति तृणकाष्ठादीनां संवर्त्तकाः (वृ० प० ३०६)

१२. इह अभिक्खं धूमाहिंति य दिसा
'धूमाहिंति य दिसं' त्ति धूमायिष्यन्ते—धूममुद्वमिष्यन्ति दिशः, पुनः किंभूतास्ताः ? (वृ० प० ३०६)

१३. समंता रउस्सला रेणुकलुस-तमपडल-निरालोगा ।

१४. समयलुक्खयाए य णं अहियं चंदा सीयं मोच्छंति ।
अहिय सूरिया तवइस्संति ।
'अहियं' त्ति अधिकं 'अहितं वा' अपथ्यं (वृ० प० ३०६)

१५. अदुत्तरं च णं अभिक्खणं बहवे अरसमेहा

१६. विरसमेहा खारमेहा
'विरसमेह' त्ति विरुद्धरसा मेघाः, एतदेवाभिव्यज्यते—'खारमेह' त्ति सर्जादिक्षारसमानरसजलोपेतमेघाः । (वृ० प० ३०६)

१७. खत्तमेहा
'खत्तमेह' त्ति करीषसमानरसजलोपेतमेघाः, 'खट्टमेह' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्राम्लजला इत्यर्थः । (वृ० प० ३०६)

१८. अग्गिमेहा विज्जुमेहा
'अग्गिमेह' त्ति अग्निवद्दाहकारिजला इत्यर्थः 'विज्जुमेह' त्ति विद्युत्प्रधाना एव जलवर्जिता इत्यर्थः (वृ० प० ३०६)

१९. विसमेहा असणिमेहा—
'विसमेह' त्ति जनमरणहेतुजला इत्यर्थः 'असणिमेह' त्ति करकादिनिपातवन्तः । (वृ० प० ३०६)

२०. पर्वतादिदारणसमर्थजलत्वेन वा वज्रमेघाः । (वृ० प० ३०६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. अपिवणिज्जोदगा कह्या, पीवा जोग जल नांहि ।
वार वार बहु वर्षस्यै, दुस्समदुसमा मांहि ।।

२२. अजवणिज्जोदए किहां, पाठ इसो दीसेह ।
न यापना प्रयोजन उदक जे, एहवो वर्षस्यै मेह ।।

२३. व्याधि कुष्ठादिक नैं कह्यो, स्थिर बहुकाल निहाल ।
रोग सूलादिक नैं कह्यो, मरण लहै ततकाल ।।

२४. तेहथी उपनी वेदना, तास ऊदीरणहार ।
एहवो जल परिणाम छै, मन अणगमतो अपार ।।

२५. प्रचण्ड जे पवने हण्या, वेग सहित जल धार ।
तेहनों पड़वो छै घणो, जिण वर्षा रै मझार ।।

२६. एहवै मेह वर्षवै करी, भरतखेत्र रै मांय ।
ग्राम आगर नैं नगर ते, सर्व विलय हुय जाय ।।

२७. खेड़ कवड़ मंडप वलि, द्रोणमुख पहिछाण ।
पाटण आश्रम नैं विषे, मनुष्य तणो घमसाण ।।

२८. चउपद शब्दे महिषियां, आदि देई जे ताय ।
गो शब्दे करि गाय छै, एलक अज्ज कहाय ।।

२९. खेचर पंखी-समूह प्रति, ग्राम अरण्य प्रचार ।
तेहनैं विषे निरत अछै, वलि त्रस विविध प्रकार ।।

३०. ते त्रस बेइंद्री प्रमुख, तेहनां घणां प्रकार ।
रूंखआंबादिक वलि गुच्छा बेंगण प्रमुख विचार ।।

३१. गुल्म तिका नवमालिका, आदि देई कहिवाय ।
लता अशोकादिक तणी, विध्वंस होस्यै ताय ।।

३२. वेल चीभड़ा प्रमुख नीं, तृणा वीरणा आदि ।
पर्व सेलड़ी प्रमुख ते, हरित तिके द्रोबादि ।।

३३. ओषधि शालि प्रमुख कही, प्रवाल पल्लव जेह ।
अंकुरा ते धान्य नां, सूचक बीज नां एह ।।

३४. आदि शब्द थी जे कमल, केल प्रमुख वलि पेख ।
तृण वलि बादर वणस्सइ, हुस्यै विध्वंस विशेख ।।

३५. पर्वत गिरि डूंगर त्रिहुं, रूढ़ा एकार्थ एह ।
तो पिण इहां विशेष छै, तेहनो अर्थ सुणेह ।।

२१. अपिवणिज्जोदगा,
'अप्पिवणिज्जोदग' त्ति अपातव्यजलाः (वृ० प० ३०६)

२२. 'अजवणिज्जोदए' त्ति क्वचिद् दृश्यते तत्रायापनीयं—न यापनाप्रयोजनमुदकं येषां ते अयापनीयोदकाः । (वृ० प० ३०६ )

२३,२४. वाहिरोगवेदणोदीरणा-परिणामसलिला, अमणुण्ण-पाणियगा
व्याधयः—स्थिराः कुष्ठादयो रोगाः—सद्योघातिनः शूलादयस्तज्जन्याया वेदनाया योदीरणा सैव परिणामो यस्य सलिलस्य तत्तथा । (वृ० प० ३०६)

२५. चंडानिलपहयतिक्खधारा-निवायपउरं
चण्डानिलेन प्रहतानां तीक्ष्णानां—वेगवतीनां धाराणां यो निपातः स प्रचुरो यत्र वर्षे (वृ० प० ३०६)

२६. वासं वासिहिति, जेणं भारहे वासे गामागर-नगर-

२७. खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासमगयं जणवयं,

२८. चउप्पयगवेलए,
इह चतुष्पदशब्देन महिष्यादयो गृह्यन्ते, गोशब्देन गावः एलकशब्देन तु उरभ्राः । (वृ० प० ३०६)

२९. खहयरे य पक्खिसंघे, गामारण्ण-पयारनिरए तसे य पाणे,

३०. बहुप्पगारे रुक्ख-गुच्छ-
'तसे पाणे बहुप्पयारे' त्ति द्वीन्द्रियादीनित्यर्थः, तत्र वृक्षाः—चूतादयः गुच्छाः—वृन्ताकीप्रभृतयः ।
(वृ० प० ३०६)

३१. गुम्म-लय-
गुल्मा—नवमालिकाप्रभृतयः लता—अशोकलतादयः
(वृ० प० ३०६)

३२. वल्लि-तण-पव्वग-हरित-
वल्ल्यो—वालुङ्कीप्रभृतयः तृणानि—वीरणादीनि पर्वगा—इक्षुप्रभृतयः हरितानि—दूर्वादीनि ।
(वृ० प० ३०६)

३३. ओसहि-पवालंकुरमादीए य
औषध्यः—शाल्यादयः प्रवालाः—पल्लवाङ्कुराः, अंकुराः—शाल्यादिबीजसूचयः । (वृ० प० ३०६)

३४. आदिशब्दात् कदल्यादिवलयानि पद्मादयश्च जलजविशेषा ग्राह्याः । (वृ० प० ३०६)
तण-वणस्सइकाइए विद्धंसेहिंति,

३५. पव्वय-गिरिडोंगरुत्थल-
यद्यपि पर्वतादयोऽन्यत्रैकार्थतया रूढास्तथापीह विशेषो दृश्यः, (वृ० प० ३०६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. पर्व दिवस ओच्छव तणो, हुवै जिहां विस्तार ।
ते क्रीड़ा पर्वत कह्या, वेभारादिक सार ।।
३७. गिरि ते शब्द करै जिहां, जे जन निवासभूत ।
चित्रकूट गोपालगिरि, आदि देइ वर सूत ।।
३८. डूंगर वृंद सिला तणो, उत्थल स्थल उन्नतेह ।
धूल उच्चय रूप एह स्थल, किहां उत् शब्द न एह ।।

३९. धूल आदि वर्जित जमी, तेहनें भट कहिवाय ।
आदि शब्द थी शिखर वलि, प्रासादादिक ताय ।।

४०. वैताढ गिरी वर्जी करी, पर्वत प्रमुख धार ।
सगलाई क्षय थायस्यै, दुस्समदुसमा आर ।।
४१. सलिल बिल ते भूमि थी, नीझरणा निकलंत ।
गर्त्ता कहितां खाड है, दुर्ग खाइ गढ हुंत ।।

४२. विषम भूमि-प्रतिष्ठ जे, नीची ऊंची जेह ।
गंगा सिंधू वर्ज नें, करस्यै सम भूमि तेह ।।

४३. हे भगवंत ! ते काल में, भरतखेत्र में धार ।
भूमि तणो केहवो हुसी, आकार भाव प्रकार ?
४४. जिन कहै भूमि इसी हुस्यै, लाल अंगार समान ।
मुरमुर कणिया अग्नि नां, छार सरीखी जान ।।
४५. तप्त कवेलू सारिखी, ताप करी अवलोय ।
अग्नि सरीखी ते जमी, महा दुखदायी होय ।।

४६. धूल घणी वेलू घणी, पंक कर्दम बहु पेख ।
पतलो कर्दम पणग जे, ते पिण बहुल विशेख ।।
४७. कर्दम चलण प्रमाण जे, चलिणी कहियै ताय ।
ते चलिणी पिण छै घणी, छट्ठा आरा मांय ।।
४८. पृथ्वी विषे बहु जीव नें, दुखे चालवो होय ।
छट्ठे आरे एहवी, पृथ्वी होस्यै सोय ।।

४९. हे भगवंत ! तिण काल में, भरतक्षेत्र में धार ।
मनुष्य तणो केहवो हुस्यै, आकार भाव प्रकार ?
५०. जिन कहै नर एहवा हुस्यै, दुष्ट रूप करि तास ।
वर्ण गंध रस पिण बुरो, वलि भूंडो तनु फास ।।

३६. पर्वतननात्—उत्सवविस्तारणात् पर्वता:—क्रीड़ापर्वता उज्जयन्तवैभारादय: (वृ० प० ३०६)
३७. गृणन्ति—शब्दायन्ते जननिवासभूतत्वेनेति गिरय:—गोपालगिरिचित्रकूटप्रभृतय: । (वृ० प० ३०६,३०७)
३८. डुङ्गानां—शिलावृन्दानां·······'उच्छ (त्थ) ल त्ति उत्—उन्नतानि स्थलानि धूल्युच्छ्रयरूपाण्युच्छ(त्थ) लानि, क्वचिदुच्छब्दो न दृश्यते । (वृ० प० ३०७)
३९. भट्ठिमादीए
पांश्वादिवर्जिता भूमय:·······आदिशब्दात् प्रासाद-शिखरादिपरिग्रह: । (वृ० प० ३०७)
४०. वेयड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति,

४१. सलिलबिल-गड्ड-दुग्ग
सलिलबिलानि च—भूमिनिर्झरा, गर्त्ताश्च—श्वभ्राणि दुर्गाणि च—खातवलयप्राकारादिदुर्गमाणि । (वृ० प० ३०७)
४२. विसमनिण्णुन्नयाइं च गंगा-सिंधुवज्जाइं समीकरेहिंति । (श० ७।११७)
विषमाणि च—विषमभूमिप्रतिष्ठितानि । (वृ० प० ३०७)
४३. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आगारभाव-पडोयारे भविस्सति ?
४४. गोयमा ! भूमी भविस्सति इंगालब्भूया मुम्मुरब्भूया छारियभूया
४५. तत्तकवेल्लयब्भूया तत्तसमजोतिभूया
तप्तेन—तापेन समा:—तुल्या: ज्योतिषा—वह्निना भूता—जाता या सा तथा । (वृ० प० ३०७)
४६. धूलिबहुला रेणुबहुला पंकबहुला पणगबहुला
पङ्क:—कर्दम:, पनक:—प्रबल: कर्दमविशेष: । (वृ० प० ३०७)
४७. चलणिबहुला
चलनप्रमाण: कर्दमश्चलनीत्युच्यते । (वृ० प० ३०७)
४८. बहूणं धरणिगोयराणं सत्ताणं दुन्निक्कमा यावि भविस्सति । (श० ७।११८)
'दुन्निक्कम' त्ति दु:खेन नितरां क्रम:—क्रमणं यस्यां सा दुर्निक्रमा । (वृ० प० ३०७)
४९. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं केरिसए आगारभाव-पडोयारे भविस्सइ ?
५०. गोयमा ! मणुया भविस्संति दुरूवा दुवण्णा दुग्गंधा दुरसा दुफासा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. अनिष्ट अकांत जाव ते, मन अणगमता होय ।
हीन दीन स्वर जाव ते, अणगमता स्वर सोय ।।

५२. अणआदरवा जोग वच, जन्म थकी पिण जाण ।
निर्लज्जा लज्जा रहित, कूड कपट नीं खान ।।

५३. कलह अनैं वध बंध विषे, रक्त वैर में जान ।
मर्यादा अतिक्रमण में, होस्यै अतिहि प्रधान ।।

५४. पर स्त्री गमन प्रमुख जे, करिवा जोग न न्हाल ।
तेह अकार्य करण में, होस्यै नित उजमाल ।।

५५. मात पितादिक जे बड़ा, तेह विषे जे रीत ।
नियोग अवश्य जे विनय छै, तिण करिनैं जे रहीत ।।

५६. रूप असंपूरण विकल, वध्याज नख सिर केस ।
वध्या केश दाढी तणां, बडा रोम तनु शेष ।।

५७. काला फर्श कठोर अति, वर्ण अनुज्वल एस ।
वीखरिया केश सिर तणां, पीला धवला केस ।।

५८. घणी नसां करिनैं बंध्यो, दुखे देखवा योग्य ।
एहवो रूप छै जेहनों, जोतां दुखम प्रयोग्य ।।

५९. संकोचाणो जेहनों, लीलरियै करि जोय ।
वींट्या छै अंग जेहनां, वृद्ध तणी परि होय ।।

६०. जरा करी परिणत स्थविर, ते नर जेहवा एह ।
विरल भग्न पड़िवे करी, थइ दंत-श्रेणी तेह ।।

६१. उद्भट जे विकराल अति, घट मुख जिम मुख तास ।
तुच्छ दशनच्छद—होठ छै, नयण विषम जे विमास ।।

६२. नान्हा मोटा नेत्र छै, चक्षू नान्ही एक ।
एक मोटी चक्षू अछै, विषम नयण इम देख ।।

६३. मूंहढे वांकी नासिका, वंक वक्र मुख जास ।
पाठंतरेण वंग ते, लंछण सहित विमास ।।

६४. वलि लीलरियां तिण करी, बीहामणोज आकार ।
देखंतां भय ऊपजै, एहवो मुख नों प्रकार ।।

६५. व्याप्त पाम खसड़े करी, तीखा नख करि ताय ।
खाज खणेवै व्रण अतिहि, एहवो तनु दुखदाय ।।

५१. अणिट्ठा अकंता जाव (सं० पा०) अमणामा हीणस्सरा दीणस्सरा अणिट्ठस्सरा जाव (सं० पा०) अमणामस्सरा

५२. अणादेज्जवयणपच्चायाया, निल्लज्जा, कूड-कवड-

५३. कलह-वह-बंध-वेरनिरया, मज्जायातिक्कमप्पहाणा,

५४. अकज्जनिच्चुज्जता,

५५. गुरुनियोग-विणयरहिया य,
गुरुषु—मात्रादिषु नियोगेन—अवश्यंतया यो विनयस्तेन रहिता ये ते। (वृ० प० ३०८)

५६. विकलरूवा, परूढनह-केस-मंसु-रोमा,
'विकलरूव' त्ति असम्पूर्णरूपाः। (वृ० प० ३०८)

५७. काला, खर-फरुस-भामवण्णा, फुट्टसिरा, कविलपलियकेसा,
खरपरुषाः—स्पर्शतोऽतीव कठोराः, ध्यामवर्णा—अनुज्ज्वलवर्णाः''''फुट्टसिर' त्ति विकीर्णशिरोजा इत्यर्थः, 'कविलपलियकेस' त्ति कपिलाः पलिताश्च—शुक्लाः केशा येषां ते। (वृ० प० ३०८)

५८. बहुण्हारुसंपिणद्ध-दुद्दंसणिज्जरूवा,

५९. संकुडितवलीतरंगपरिवेढियंगमंगा,

६०. जरापरिणतव्व थेरगनरा, पविरलपरिसडियदंतसेढी,
'पविरलपरिसडियदंतसेढी' प्रविरला दन्तविरलत्वेन परिशटिता च दन्तानां केषाञ्चित्पतितत्वेन भग्नत्वेन वा दन्तश्रेणि र्येषां ते, (वृ० प० ३०८)

६१. उब्भडघडामुहाविसमणयणा,
उद्भटं—विकरालं घटकमुखमिव मुखं तुच्छदशनच्छदत्वाद्येषां ते (वृ० प० ३०८)

६३,६४. वंकनासा, वंक-वलीविगय-भेसणमुहा,
वङ्कं—वक्रं पाठान्तरेण व्यङ्गं—सलाञ्छनं वलिभिर्विकृतं च बीभत्सं भेषणं—भयजनकं मुखं येषां ते। (वृ० प० ३०८)

६५. कच्छु-कसराभिभूया, खरतिक्खनखकंडूइय-विक्खयतणू,
'कच्छूकसराभिभूया' कच्छूः—पामा तया कशरैश्च—खशरैरभिभूता—व्याप्ता ये ते''''खरतिक्ख''''' त्ति खरतीक्ष्णनखानां कण्डूयितेन विकृता—कृतव्रणा तनुः—शरीरं येषां ते, (वृ० प० ३०८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. नान्हा कोढ विशेष करि, तन नीं त्वचा कठोर ।
ते पिण फूटी काबरी, एहवी चामड़ी घोर ।।

६६. दद्दु-किडिभ-सिब्भ-फुडियफरुसच्छवी, चित्तलंगा,
दद्रुकिडिमसिध्मानि क्षुद्रकुष्ठविशेषाः·····'चित्तलंग' त्ति कर्बुरावयवाः (वृ० प० ३०८)

६७. वक्र बुरी गति ऊंट सी, टोल गती तसु धार ।
पाठांतर टोला गति, भूंडो तसु आकार ।।

६७. टोलगति-
टोलगतयः—उष्ट्रादिसमप्रचाराः पाठान्तरेण टोलाकृतयः—अप्रशस्ताकाराः (वृ० प० ३०८)

६८. विषम दीर्घ अथवा लघु, संधि-बंधन विकराल ।
ऊंचा नीचा अस्थि नां, जुआ-जुआ अंतराल ।।

६८. विसमसंधिबंधण-उक्कुडुअट्ठिगविभत्त-
विषमाणि ह्रस्वदीर्घत्वादिना सन्धिरूपाणि बन्धनानि येषां ते विषमसन्धिबन्धनाः उत्कुटुकानि—यथास्थानमनिविष्टानि अस्थिकानि—कीकसानि विभक्तानीव च (वृ० प० ३०८)

६९. दुर्बल ते बल रहित छै, बुरो संघयण पिछाण ।
हीन प्रमाण करी वलि, बुरो आकार संठाण ।।

६९. दुब्बला कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया,
दुर्बला—बलहीनाः कुसंहननाः—सेवार्त्तसंहननाः कुप्रमाणाः—प्रमाणहीनाः कुसंस्थिताः—दुःसंस्थानाः । (वृ० प० ३०८)

७०. भूंडो रूप कुरूप ते, भूंडो स्थानक वास ।
भूंडो आसण जेहनो, विरूई सेज्या तास ।।

७०. कुरूवा, कुट्ठाणासण-कुसेज्ज-

७१. भूंडो भोजन वलि असुचि, नहीं ब्रह्मचर्य स्नान ।
बहु व्याधी रोगे करी, पीड़त अंग पिछान ।।

७१. कुभोइणो, असुइणो अणेगवाहिपरिपीलियंगमंगा,
'असुइणो' त्ति अशुचयः स्नानब्रह्मचर्यादिवर्जितत्वात् । (वृ० प० ३०८)

७२. स्खलत गती डिग-डिग पड़ै, आकुल-व्याकुल चाल ।
अनेक व्याधिपणै करी, तसु एहवी गति न्हाल ।।

७२. खलंत-विब्भलगती,
अनेकव्याधिरोगपीडितत्वात् (वृ० प० ३०८)

७३. वलि ओच्छाह-रहीत ते, सत्वे परिवर्जीत ।
चेष्टा करी रहीत छै, नष्ट तेज क्रांति रहीत ।।

७३. निरुच्छाहा, सत्तपरिवज्जिया, विगयचेट्ठनट्ठतेया,

७४. वार-वार शीतोष्ण करि, खरधरू कठोर वाय ।
व्याप्त तिण करी मेल रज, धूले खरड़ी काय ।।

७४. अभिक्खणं सीय-उण्ह-खर-फरुसवायविज्झडियमलिणपंसुरउग्गुंडियंगमंगा,

७५. क्रोध मान बहु जेहनें, माया लोभ सवाय ।
अशुभ विभागी दुख तणां, दुख प्रति भजता ताय ।।

७५. बहुकोह-माण-माया. बहुलोभा, असुह-दुक्खभागी,

७६. बहुलपणैं करि धर्म नीं, संज्ञा श्रद्धा नांहि ।
सम्यक्त करी परिभ्रष्ट ते, सम्यक्त नहीं त्यां मांहि ।।

७६. उस्सण्णं धम्मसण्णसम्मत्तपरिभट्ठा,
'ओसण्णं' ति बाहुल्येन । 'धम्मसण्ण' त्ति धर्मश्रद्धाऽवसन्ना गलिता सम्यक्त्वभ्रष्टा ।
(वृ० प० ३०८,३०९)

७७. उत्कृष्ट तनु इक हाथ नो, परम आउखो धार ।
कदाचित सोलै वरस, वीस वरस किण वार ।।

७७. उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता, सोलस-वीसतिवासपरमाउसो,
रत्नेः हस्तस्य यत्प्रमाणं····इह कदाचित् षोडश वर्षाणि कदाचिच्च विंशतिर्वर्षाणि परमायु येषां ते । (वृ० प० ३०९)

७८. पुत्त नत्तु परिवाल जे, पणयबहुला तेह ।
पुत्र पोता दोहीतरा, परिवारे बहु स्नेह ।।

७८. पुत्तनत्तुपरिवाल-पणयबहुला



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. पाठांतरेण पुत्तणत्तु-पडिपालण-बहुलेह ।
पुत्रादिक नो पालिवो, बहुलपणें करि तेह ।।

७९. पाठान्तरे 'पुत्तनत्तुपरिपालणबहुल' त्ति तत्र च पुत्रादीनां परिपालनं बहुलं—बाहुल्येन येषां ते । (वृ० प० ३०९)

**सोरठा**

८०. अल्प आउखा मांहि, पुत्रादिक बहु तेहनें ।
अल्प काल करि ताहि, जोवन नां सद्भाव थी ।।

८०. अनेनाल्पायुष्कत्वेऽपि बह्वपत्यता तेषामुक्ताऽल्पेनापि कालेन यौवनसद्भावादिति । (वृ० प० ३०९)

८१. *गंगा सिंधु महानदी, वैताढ नीं नेश्राय ।
बोहितर बिल-वासि नां, कुटुंब निगोदा कहाय ।।

८१. गंगा-सिंधूओ महानदीओ, वेयड्ढं च पव्वयं निस्साए बावत्तरिं निओदा
निगोदाः—कुटुम्बानीत्यर्थः । (वृ० प० ३०९)

८२. †गंगा नदि जिहां उत्तर दिशि वैताढ रै,
नीचै प्रवेश करै तिहां बिहुं पासै धरै ।
नव नव बिल छै एम अठारै बिल थया,
इम गंगा दक्षिण वैताढ कनै कह्या ।।

८३. उत्तर दिशि में अठार अठार दक्षिण दिशे,
एवं बिल षट तीस तिहां जंतू वसे ।
इम सिंधू बिहुं पास छतीस पिछाणियै,
बोहितर बिल एम सर्व ही जाणियै ।।

८४. *बीज तणी परि बीज ते, जे आगमियै काल ।
जन समूह होस्यै तसु, हेतू एह निहाल ।।

८५. बीज मात्र परिमाण जसु, अल्पईज अवलोय ।
ते नर बिलवासी हुस्यै, छट्ठे आरे जोय ।।

८४,८५. बीयं बीयमेत्ता बिलवासिणो भविस्संति । (श० ७।११९)
बीजमिव बीजं भविष्यतां जनसमूहानां हेतुत्वात् । (वृ० प० ३०९)

८६. देश छोहंतर, एक सौ एगुणवीसमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

## ढाल : १२०

**दूहा**

१. हे भगवंत ! मनुष्य ते, करिस्यै किसो आहार ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! तास आहार अधिकार ।।

१. ते णं भंते ! मणुया कं आहारं आहारेहिंति ?

---

* लय : करेलणा नीं
† लय : नदी जमुना रे तीर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*रे गोतम दुस्समदुसमा मझार।(ध्रुपदं)

२. तिण काले नें तिण समय जी, गंगा सिंधु विमास।
दोनूं ई मोटी नदी जी, अल्प हुस्यै जल तास॥

३. रथ पथ जे गाडा तणां पेडा दोय विचार।
ते प्रमाण मारग विषे, होस्यै जल विस्तार॥

४. अक्ष-स्रोत-रथ-चक्र नो, धुर-प्रवेश नो छिद्र।
ते प्रमाण वहिस्यै तदा, उदक प्रवाह अनिद्र॥

५. ते जल में बहु माछला, वलि कच्छप अवलोय।
तिण करि नें भरियो हुस्यै, जलबहुलो नहि कोय।

६. तिण अवसर ते नर तिहां, रवि ऊगां थी जोय।
मुहूर्त्त एक लगै तिकै, तिण वेला अवलोय॥

७. रवि आथमण थकी वलि, पहिलां मुहूर्त्त एक।
ते प्रमाण जे काल छै, तेह विषे संपेख॥

८. नीकलस्यै बिल बाहिरे, मच्छ कच्छप नें तिवार।
स्थल नें विषेज स्थापस्यै, करिवा तेहनों आहार॥

९. शीत अनें आतप करी, ते मच्छ कच्छप जीव।
सोझयां ते ले आवस्यै, नवा मांडस्यै अतीव॥

१०. इण रीते कर मानवी, वर्ष इकवीस हजार।
आजीवका करता छता, तेह विचरस्यै तिवार॥

११. हे प्रभु ! व्रत रहित तिके, उत्तर गुण करि रहीत।
कुल मर्यादा रहित ते, नहि पचखाण सूं प्रीत॥
(रे प्रभुजी ! अवधारो अरदास)

१२. पोसह उपवास रहीत ते, बहुलपणें मंस आहार।
मच्छ आहारी ते वलि, खोद्दाहारा विचार॥

**सोरठा**

१३. धरतो प्रतै विदार, मच्छ खास्यै अथवा वली।
तसु मधु सहत आहार, खोद्दाहारा ते कह्या॥

१४. *वसादि रस मृतक तणो, कुणिम आहारा जाण।
काल करी जास्यै किहां ? ऊपजस्यै किण स्थान ?

१५. जिन कहै बहुलपणें करी, नरक तिर्यंच मझार।
ऊपजस्यै ते मानवी, बहुल अधिक अवधार॥

* लय : धीरप जीव धरै नहीं रे

२. गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं गंगा-सिंधुओ महानदीओ।

३,४. रहपहवित्थराओ अक्खसोयप्पमाणमेत्तं जलं वोज्झिहिति

'रहपह' त्ति रथपथ:—शकटचक्रद्वयप्रमितो मार्ग:।
'अक्खसोयप्पमाणमेत्तं' ति अक्षश्रोत:—चक्रधुर:-प्रवेशरन्ध्रं तदेव प्रमाणमक्षश्रोत: प्रमाणं तेन मात्रा—परिमाणमवगाहतो यस्य तत्। (वृ० प० ३०९)

५. से वि य णं जले बहुमच्छकच्छभाइण्णे, णो चेव णं आउबहुले भविस्सति।

६. तए णं ते मणुया सूरुग्गमणमुहुत्तंसि य

७. सूरत्थमणमुहुत्तंसि य

८. बिलेहिंतो निद्धाहिंति, निद्धाइत्ता मच्छ-कच्छभे थलाइं गाहेहिंति,

'गाहेहिंति' त्ति····स्थलेसु स्थापयिष्यन्तीत्यर्थ:।
(वृ० प० ३०९)

९. गाहेत्ता सीतातवतत्तएहिं मच्छकच्छएहिं

१०. एक्कवीसं वाससहस्साइं वित्तिं कप्पेमाणा विहरिस्संति। (श० ७।१२०)

११,१२. ते णं भंते ! मणुया निस्सीला निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा, उस्सण्णं मंसाहारा मच्छाहारा खोद्दाहारा

'निस्सील' त्ति महाव्रताणुव्रतविकला: 'निग्गुण' त्ति उत्तरगुणविकला: 'निम्मेर' त्ति अविद्यमानकुलादि-मर्यादा: 'ओसन्नं' ति प्रायो मांसाहारा:
(वृ० प० ३०९)

१३. 'खोद्दाहार' त्ति मधुभोजिन: भूक्षोदेन वाऽऽहारो येषां ते क्षोदाहारा: (वृ० प० ३०९)

१४. कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति ? कहिं उववज्जिहिंति ?

कुणप:—शवस्तद्रसोऽपि वसादि: कुणपस्तदाहारा:
(वृ० प० ३०९)

१५. गोयमा ! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति। (श० ७।१२१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. ते प्रभु ! सींह अरु वाघ ते, तरु चढ़ै वग तेह।
चीता रींछ तरच्छ तिके, व्याघ्र विशेष कहेह ॥

१६. ते णं भंते ! सीहा, वग्घा, वगा, दीविया, अच्छा, तरच्छा
'अच्छ' त्ति ऋक्षाः 'तरच्छ' त्ति व्याघ्रविशेषाः।
(वृ० प० ३०६)

१७. वलि अष्टापद जाणियै, अणुव्रत रहित पिछान।
तिमज जाव मरनै तिके, ऊपजस्यै किण स्थान ?

१७. परस्सरा निस्सीला तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?
'परस्सर' त्ति शरभाः। (वृ० प० ३०६)

१८. जिन कहै बहुलपणें करी, नरक तिर्यंच मझार।
मरतां केइ बाकी रह्या, ते चउपद गति धार ॥

१८. गोयमा ! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति। (श० ७।१२२)
क्षीणावशेषाश्चतुष्पदाः केचन भविष्यन्ति
(वृ० प० ३०६)

१६. ते प्रभु ! ढंका कागला, कंक विलक कहिवाय।
मदुगा ते जलवायसा, मयूर निस्सीला ताय ॥

१६. ते णं भंते ! ढंका, कंका, विलका, मद्दुया, सिही निस्सीला
'ढंक' त्ति काकाः 'मद्दुग' त्ति मद्गवो—जलवायसाः
'सिहि' त्ति मयूराः (वृ० प० ३०६)

२०. तिमहिज जाव बहुलपणें, नरक तिर्यंच मझार।
बे वार सेवं भंते ! कहै, श्री गोयम गणधार ॥

२०. तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?
गोयमा ! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति। (श० ७।१२३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ७।१२४)

२१. अंक छींहतर नों अख्यो, इक सौ वीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ॥

सप्तमशते षष्ठोद्देशकार्थः ॥७।६॥

## ढाल १२१

### दूहा

१. छठा उदेशा में कही, नरकादिक उत्पत्ति।
असंवरी नैं ते हुवै, आस्रव वृत्ति प्रवृत्ति ॥

१. अनन्तरोद्देशके नरकादावुत्पत्तिरुक्ता सा चासंवृतानाम्,
(वृ० प० ३०६)

२. तास विपर्जयभूत जे, समर्थ संवरवंत।
वीतराग ते पिण मुनि, तेहनों हिवै उदंत ॥

२. अथैतद्विपर्ययभूतस्य संवृतस्य यद्भवति तत्सप्तमोद्देशके आह— (वृ० प० ३०६)

*जिनेश्वर धिन धिन थांरो ज्ञान। (ध्रुपदं)

३. हे प्रभु ! संवुडो मुनि जी, रूंध्या आश्रव द्वार।
आयुक्त उपयोग सहीत ते जी, चालंतो तिण वार ॥

३. संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स,

४. जाव उपयोग सहित सुयै, वस्त्र पात्र पिछाण।
कंबल नैं पायपुच्छणो, लेवै मूकै जाण ॥

४. जाव (सं० पा०) आउत्तं तुयट्टमाणस्स, आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पादपुंछणं गेण्हमाणस्स वा निक्खिवमाणस्स वा,

---

* लय : क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. स्यूं प्रभु ! ते अणगार नें, इरियावहिया बंधाय ?
कै होवै संपरायकी ? तब भाखै जिनराय ।।

६. संवुडा अणगार नें, जावत तास कहाय ।
इरियावहि किरिया हुवै, संपरायकी नांय ।।

७. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो, संवुडा नें जाव ।
संपरायकी क्रिया नहीं ? हिव जिन भाखै न्याव ।।

८. क्रोध मान माया लोभ ते, विच्छेद गया है जास ।
उपशम अथवा क्षय थया, इरियावहिया तास ।।

९. तहेव जाव इण शतक[1] में, प्रथम उदेशा मांय ।
पाठ तिके कहिवा इहां, जाव शब्द में आय ।।

१०. उत्सूत्र ते सूत्र में कही, ते विधि विण चालंत ।
क्रिया तसु संपरायकी, जिन आणा लोपंत ।।

११. ए संवुडो महामुनि, सूत्रे विधि कही जेम ।
चालै छै तिण रीत सूं, तिण अर्थे कह्यु एम ।।

**सोरठा**

१२. आख्यो संवृत एह, काम-भोग छोडयां हुवै ।
सूत्र-वृंद हिव तेह, काम-भोग कहियै हिवै ।।

१३. *हे प्रभु! रूपी काम छै, नहीं अरूपी काम ?
जिन कहै रूपी काम छै, नहीं अरूपी ताम ।।

**सोरठा**

१४. अभिलाषै ते काम, नहि विशिष्ट तनु स्पर्श करि ।
उपयोगी अभिराम, काम्यन्ते कामा कह्या ।।

१५. शब्द अनें वलि रूप, कहियै काम बिहुं भणी ।
श्रोत्र चक्षु तद्रूप, बिहुं इंद्री नीं विषय ए ।।

१६. *हे प्रभु ! काम सचित्त छै, तथा अचित है ताम ?
जिन कहै काम सचित्त छै, वलि अचित्त पिण काम ।।

**सोरठा**

१७. वृत्तिकार कहिवाय, सचित्त काम मन सहित जे ।
प्राणी छै जग मांय, तास रूप नीं अपेक्षया ।।

१८. अचित्त काम तद्रूप, शब्दज द्रव्य अपेक्षया ।
वलि असण्णि तनु रूप, ते पिण काम अचित्त कह्या ।।

---

१. (श० ७, सू० २१)

* लय : क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान

५. तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ ? संपराइया किरिया कज्जइ ?

६. गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स·······जाव तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ । (श० ७।१२५)

७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—संवुडस्स········ जाव नो संपराइया किरिया कज्जइ ?

८. गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति, तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ ।

९. तहेव जाव [सं० पा०]

१०. उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ ।

११. से णं अहासुत्तमेव रीयइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—संवुडस्स णं अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स जाव नो संपराइया किरिया कज्जइ । (श० ७।१२६)

१२. संवृतश्च कामभोगानाश्रित्य भवतीति कामभोग-प्ररूपणाय । (वृ० प० ३१०)

१३. रूवी भंते ! कामा ? अरूवी कामा ?
गोयमा ! रूवी कामा, नो अरूवी कामा । (श० ७।१२७)

१४,१५ काम्यन्ते—अभिलष्यन्ते एव न तु विशिष्ट-शरीरसंस्पर्शद्वारेणोपयुज्यन्ते ये ते (वृ० प० ३१०)

१६. सचित्ता भंते ! कामा ? अचित्ता कामा ?
गोयमा ! सचित्ता वि कामा, अचित्ता वि कामा । (श० ७।१२८)

१७. सचित्ता अपि कामाः समनस्कप्राणिरूपापेक्षया, (वृ० प० ३१०)

१८. अचित्ता अपि कामा भवंति, शब्दद्रव्यापेक्षयाऽसञ्ज्ञि-जीवशरीररूपापेक्षया चेति । (वृ० प० ३१०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. *जीव प्रभु ! ए काम छै, तथा अजीव है काम ?
जिन कहै जीव पिण काम छै, अजीव पिण छै काम ।।

**सोरठा**

२०. शरीर जीव सहीत, तेहनां रूप अपेक्षया ।
जीव काम इण रीत, अजीव काम हिवै कहूं ।।

२१. अजीव काम कहाय, शब्द तणीज अपेक्षया ।
तथारूप पेक्षाय, चित्र पूतली आदि जे ।।

२२. *प्रभू ! काम छै जीव रै, तथा अजीव रै काम ?
जिन कहै जीव रै काम छै, अजीव रै नहि ताम ।।

**सोरठा**

२३. जीव तणैं हुवै काम, तास काम हेतूपणो ।
अजीव रै नहिं ताम, काम असंभव थी तसु ।।

२४. *काम प्रभू ! कतिविध कह्या ? जिन कहै दोय प्रकार ।
शब्द रूप बिहुं आखिया, दो इंद्री विषय विचार ।।

२५. हे प्रभु ! रूपो भोग छै, तथा अरूपी कहाय ?
जिन कहै रूपी भोग छै, भोग अरूपो नांय ।।

**सोरठा**

२६. गंध फर्श रस भोग, शरीर करि जे भोगवै ।
विशिष्टपणैं प्रयोग, गंधादिक ए त्रिहुं अछै ।।

२७. घाणेंद्री अवलोय, रस इंद्री फर्श इंद्रिय ।
त्रिहुं इंद्री नो जोय, गंध प्रमुख त्रिहुं विषय छै ।।

२८. *सचित्त प्रभु ! ए भोग छै, अचित भोग कहिवाय ?
जिन कहै सचित पिण भोग छै, भोग अचित्त पिण थाय ।।

**सोरठा**

२९. सचित्त भोग इण न्याय, कोइक चित्त सहीत जे ।
जीव शरीर नां ताय, गंधादिक गुण जाणिवा ।।

३०. अचित्त भोग इण न्याय, कोइक चित्त रहीत जे ।
जीव शरीर नां ताय, गंधादिक पुष्पादि ते ।।

३१. *जीव प्रभू ! ए भोग छै, अजीव भोग ए होय ?
जिन कहै जीव पिण भोग छै, अजीव पिण अवलोय ।।

* लय : क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान

१९. जीवा भंते ! कामा ? अजीवा कामा ?
गोयमा ! जीवा वि कामा, अजीवा वि कामा ।
(श० ७।१२९)

२०. जीवा अपि कामा भवन्ति जीवशरीररूपापेक्षया,
(वृ० प० ३१०)

२१. अजीवा अपि कामा भवन्ति शब्दापेक्षया चित्रपुत्रिकादिरूपापेक्षया चेति । (वृ० प० ३१०)

२२. जीवाणं भंते ! कामा ? अजीवाणं कामा ?
गोयमा ! जीवाणं कामा, नो अजीवाणं कामा ।
(श० ७।१३०)

२३. जीवानामेव कामा भवन्ति कामहेतुत्वात्, अजीवानां न कामा भवन्ति तेषां कामासम्भवादिति ।
(वृ० प० ३१०)

२४. कतिविहा णं भंते ! कामा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा कामा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा य, रूवा य । (श० ७।१३१)

२५. रूवी भंते ! भोगा ? अरूवी भोगा ?
गोयमा ! रूवी भोगा, नो अरूवी भोगा ।
(श० ७।१३२)

२६. भुज्यन्ते—शरीरेण उपभुज्यन्ते इति भोगाः—विशिष्टगंधरसस्पर्शद्रव्याणि । (वृ० प० ३१०)

२८. सचित्ता भंते ! भोगा ? अचित्ता भोगा ?
गोयमा ! सचित्ता वि भोगा, अचित्ता वि भोगा ।
(श० ७।१३३)

२९. सचित्ता अपि भोगा भवन्ति गन्धादिप्रधानजीवशरीराणां केषाञ्चित् समनस्कत्वात् ।
(वृ० प० ३१०)

३०. तथाऽचित्ता अपि भोगा भवन्ति केषाञ्चिद्गन्धादिविशिष्टजीवशरीराणाममनस्कत्वात् ।
(वृ० प० ३१०)

३१. जीवा भंते ! भोगा ? अजीवा भोगा ?
गोयमा ! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा ।
(श० ७।१३४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

३२. जीव भोग इम उक्त, जीव सहित तनु नां विशिष्ट ।
गंधादिक गुण युक्त, तेहनां भाव थकी हुवै ।।
३३. अजीव द्रव्य नां जोय, विशिष्ट गंध रस फर्श जे ।
गुण सहीत थी होय, अजीव भोगा ते कह्या ।।

३४. *जीव तणैं प्रभु ! भोग छै, भोग अजीव रै थाय ?
जिन कहै जीव रै भोग छै, अजीव रै न कहाय ।।

**सोरठा**

३५. भोग जीव रै होय, तास भोग हेतूपणैं ।
अजीव रै नहि कोय, भोग असंभव थी तसु ।।

३६. *भोग प्रभू ! कतिविध कह्या ? जिन कहै तीन प्रकार ।
गंध रस फर्श परूपिया, विशिष्ट तनु फर्श द्वार ।।

३७. काम-भोग प्रभु ! कतिविधा ? जिन कहै पंच प्रकार ।
शब्द रूप गंध आखिया, वलि रस फर्श विचार ।।

३८. जीव प्रभू ! कामी अछै, कै भोगी छै अतीव ?
जिन कहै कामी जीव छै, वलि भोगी पिण जीव ।।

३९. किण अर्थे तब जिन कहै, श्रोत्र इंद्री छै ताय ।
चक्षू इंद्री आश्रयी, कामी जीव कहाय ।।
४०. घाणेंद्री रसनेन्द्रिये, वलि फर्श इंद्री जाण ।
ते आश्री भोगी कह्या, तिण अर्थे ए वाण ।।

४१. नरक प्रभू ! कामी अछै, कै भोगी अवधार ?
जीव तणी पर जाणिवा, यावत थणियकुमार ।।
४२. पूछा पृथ्वीकाय नीं, जिन कहै कामी नांय ।
भोगी पृथ्वी जीवड़ा, किण अर्थे ए वाय ?

४३. जिन भाखै फर्शेंद्रिय, ते आश्री कहिवाय ।
तिण अर्थे भोगी पृथ्वी, इम जाव वणस्सइकाय ।।
४४. इम निश्चै बेइंदिया, णवरं इतरो विशेख ।
जीभिंदिया फासिंदिया, तेह आश्रयी पेख ।।

३२. 'जीवा वि भोग' त्ति जीवशरीराणां विशिष्टगन्धादिगुणयुक्तत्वात्, (वृ० प० ३१०,३११)
३३. 'अजीवा वि भोग' त्ति अजीवद्रव्याणां विशिष्टगन्धादिगुणोपेतत्वादिति । (वृ० प० ३११)

३४. जीवाणं भंते ! भोगा ? अजीवाणं भोगा ?
गोयमा ! जीवाणं भोगा, नो अजीवाणं भोगा ।
(श० ७।१३५)

३६. कतिविहा णं भंते ! भोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा भोगा पण्णत्ता, तं जहा—गंधा, रसा, फासा । (श० ७।१३६)
३७. कतिविहा णं भंते ! काम-भोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा काम-भोगा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा । (श० ७।१३७)
३८. जीवा णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
गोयमा ! जीवा कामी वि, भोगी वि ।
(श० ७।१३८)

३९. से केणट्ठेणं भंते ! ........
गोयमा ! सोइंदिय-चक्खिंदियाइं पडुच्च कामी,
४०. घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
(श० ७।१३९)

४१. नेरइया णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
एवं चेव जाव थणियकुमारा । (श० ७।१४०)
४२. पुढविकाइयाणं—पुच्छा ।
गोयमा ! पुढविकाइया नो कामी, भोगी ।
(श० ७।१४१)
से केणट्ठेणं जाव भोगी ?
४३. गोयमा ! फासिंदियं पडुच्च । से तेणट्ठेणं जाव भोगी । एवं जाव वणस्सइकाइया ।
४४. बेइंदिया एवं चेव, नवरं—जिब्भिंदियफासिंदियाइं पडुच्च ।

---

* लय : क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान



Jain Education International  For Private & Personal Use Only  www.jainelibrary.org

४५. इम निश्चै तेइंदिया, णवरं इंद्रिय घाण।
जीभिंदिया फासिंदिया, ते आश्री पहिछाण।।

४६. पूछा चउरिंद्री तणी, जिन कहै कामी होय।
भोगी पिण चउरिंद्रिया, किण अर्थे इम जोय?

४७. जिन कहै चक्षु-इंद्रिय, तेह आश्रयी ताय।
कामी छै चउरिंद्रिया, हिव भोगी नो न्याय।।

४८. घ्राणेंद्रिय जीभिंद्रिय, फर्शेद्री पहिछाण।
ते आश्री भोगी कह्या, तिण अर्थे इम वाण।।

४९. दंडक जे अवशेष छै, रह्या थाकता जेह।
जीव तणी पर जाणिवा, जाव वैमानिक तेह।।

५०. हे प्रभुजी! ए जीवड़ा, काम-भोगी संपेख।
कामी नहि, भोगी नहीं, वलि भोगी जे देख।।

५१. कवण जाव विसेसाहिया? तब भाखै जिनराय।
सर्व थोड़ा छै जीवड़ा, कामी-भोगी कहिवाय।।

५२. कामी-भोगी बिहुं नहीं, अनंतगुणा छै तेह।
भोगी अनंतगुणा कह्या, हिव तसु न्याय सुणेह।।

५३. *सर्व थोड़ा काम-भोगी, चउरिंद्रिया पंचेंद्रिया।
नहीं कामी नहीं भोगी, अनंतगुणा सिध वंछिया।।

५४. एकेंदिया बेइंदिया, तेइंदिया भोगी कह्या।
अनंतगुणा ए सिद्ध सेती, न्याय जिन वच थी लह्या।।

५५. †देश सितंतर अंक नो, सौ इकवीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' मंगल माल।।

४५. तेइंदिया वि एवं चेव, नवरं—घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च। (श० ७।१४२)

४६. चउरिंदियाणं—पुच्छा।
गोयमा! चउरिंदिया कामी वि, भोगी वि। (श० ७।१४३)
से केणट्ठेणं जाव भोगी वि?

४७. गोयमा! चक्खिदियं पडुच्च कामी,

४८. घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी। से तेणट्ठेणं जाव भोगी वि।

४९. अवसेसा जहा जीवा जाव वेमाणिया। (श० ७।१४४)

५०. एएसि णं भंते! जीवाणं कामभोगीणं, नोकामीणं, नोभोगीणं, भोगीण य।

५१. कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा कामभोगी।

५२. नोकामी नोभोगी अणंतगुणा, भोगी अणंतगुणा। (श० ७।१४५)

५३. 'सव्वत्थोवा कामभोगि' त्ति ते हि चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाश्च स्युस्ते च स्तोका एव, 'नो कामी नो भोगि' त्ति सिद्धास्ते च तेभ्योऽनन्तगुणा एव। (वृ० प० ३११)

५४. 'भोगि' त्ति एकद्वित्रीन्द्रियास्ते च तेभ्योऽनन्तगुणा वनस्पतीनामनन्तगुणत्वादिति। (वृ० प० ३११)

---

* लय: पूज मोटा भांजै तोटा

† लय: क्षमावंत जोय भगवंत रो ज्ञान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल १२२

### दूहा

१. भोग तणां अधिकार थी, हिव भोगी कहिवाय।
छउमत्थे इत्यादि हिव, च्यार सूत्र धुर आय॥

१. भोगाधिकारादिदमाह— (वृ० प० ३११)

*जी हो देव जिणेंद्र नें देख, गोयम प्रश्न पूछ्या भला। (ध्रुपदं)

२. जी हो छद्मस्थ नर प्रभु! जान, सुरलोक कोयक नें विषे तिको।
जी हो उपजवा जोग पिछाण, देवपणें उपजे जिको॥

३. ते नर निश्चै भगवान! क्षीण दुर्बल तनु तसु थयो।
वृत्तिकार कहि वान, तप रोगादिक करि भयो॥

२. छउमत्थे णं भंते! मणूसे जे भविए अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए,

३. से नूणं भंते! से खीणभोगी
'खीणभोगि' त्ति भोगो जीवस्य यत्रास्ति तद्भोगि—शरीरं तत्क्षीणं तपोरोगादिभिर्यस्य सःक्षीणभोगी क्षीणतनुर्दुर्बल इति यावत्। (वृ० प० ३११)

### सोरठा

४. 'आख्यो तप रोगादि, तप ते ताव कहीजियै।
पिण तपसा नहीं साधि, वा शब्द न कह्यो ते भणी॥

५. तप ते ताव कहाय, तेहिज रोग छै आदि में।
बहु वच कहिवै ताय, अन्य रोग पिण जाणवा॥

६. तिण रोगे करि जाण, दुर्बल तनु छै जेहनों।
सुर गति योग्य पिछाण, पूछा नो अभिप्राय ए'॥
(ज० स०)

७. *उट्ठाणादिक करि जेह, भोगविवा समर्थ नहीं।
हे भगवंत! अर्थ एह, इमहिज आप कह्यो सही?

७. नो पभू उट्ठाणेणं..........भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए? से नूणं भंते! एयमट्ठं एवं वयह?

८. †इहां प्रश्न नों अभिप्राय एहवो, भोग भोगविवा भणी।
समर्थ नहि रोगादि करिनें, क्षीण देह छै ते तणी॥

९. ते भणी भोगी जे नहीं वलि, तेह भोग-त्यागी नहीं।
भोग त्याग्यां विना निर्जरवंत किम कहियै वही?

८,९. पृच्छतोऽयमभिप्रायः—यद्यसौ न प्रभुस्तदाऽसौ भोगभोजनासमर्थत्वान्न भोगी अत एव न भोगत्यागीत्यतः कथं निर्जरावान्? (वृ० प० ३११)

१०. अथवाज भोग त्याग्यां विना, किम देवलोके जायवो।
ए अभिप्राय सूं प्रश्न पूछ्यो, इम वृत्तिकार जणायवो॥

१०. कथं वा देवलोकगमनपर्यवसानोऽस्तु? (वृ० प० ११)

११. *उत्तर दे जिनराय, एह अर्थ समर्थ नहीं।
ते भोगी त्यागी नांय, सुर गति जोग नहीं सही॥

११. गोयमा! णो तिणट्ठे समट्ठे।

१२. उट्ठाणादिक करि जेह, भोग विस्तीर्ण अति घणुं।
भोगवतो विचरेह, समर्थ छै तनु तेह तणुं॥

१२. पभू णं से उट्ठाणेण वि.......विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए,

---

* लय : जी हो धनो नै सालभद्र दोय

† लय : पूज मोटा भांजे तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. ते भोगी कहिवाय, तेह भोग तजतो छतो।
महानिर्जरा ताय, सुरलोके[1] ते जावतो।।

१३. तम्हा भोगी, भोगे परिच्चयमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ। (श० ७।१४६)

१४. मनुष्य अहो भगवान! अल्प अवधि ज्ञानी थयुं।
नियत खेत्र सुज्ञान, सुर गति जोग तिको कह्युं।।

१४. आहोहिए णं भंते! मणूसे जे भविए अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए.
'आहोहिए णं' ति 'आधोऽवधिकः' नियतक्षे., विषयावधिज्ञानी। (वृ० प० ३११)

१५. कह्यो छद्मस्थ आलाव, ए पिण इमहिज जाणवो।
जाव पर्यवसान भाव, एह लगै सहु आणवो[2]।।

१५. एवं चेव जहा छउमत्थे जाव (सं० पा०) महापज्जवसाणे भवइ।

### सोरठा

१६. अवधिवंत मनु साधि, रोगादिक तनु क्षीण तसु।
उट्ठाण प्रमुखे वादि, भोग भोगविवा नहिं प्रभु?

१६. से नूणं भंते! से खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेणं, ········ भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?

१७. सुर गति योग्यज एह, एम अर्थ कहो छो तुम्हे?
तब भाखै जिन तेह, एह अर्थ समर्थ नहीं।।

१७. से नूणं भंते! एवमट्ठं एवं वयह?
गोयमा! णो तिणट्ठे समट्ठे।

१८. उट्ठाण प्रमुख करेह, भोग भोगविवा छै प्रभु।
ते भोगी भोग तजेह, महानिर्जरा ह्वै तसु।।

१८. पभू णं से उट्ठाणेण वि········भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, तम्हा भोगी, भोगे परिच्चयमाणे महानिज्जरे। (श० ७।१४७)

१९. *परम अवधिज्ञानी पेख, ते प्रभु! तिणहिज भव मही।
मुक्ति जावा योग्य देख, चरमशरीरी ते सही।।

१९. परमाहोहिए णं भंते! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झित्तए जाव अंतं करेत्तए,

### दूहा

२०. परम अवधिज्ञानी प्रवर, चरमशरीरी होय।
तिण सूं तिण भव शिव-गमन योग्य कह्या छै सोय।।

२० परमाधोऽवधिकज्ञानी, अयं च चरमशरीर एव भवतीत्यत आह—'तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झित्तए' इत्यादि। (वृ० प० ३११)

२१. *ते नर हे भगवान! दुर्बल देह रोगादि करी।
छद्मस्थ नर जिम जाण, सर्व पाठ कहिवो फिरो।।

२१. से नूणं भंते! से खीणभोगी सेसं जहा **छउमत्थस्स**। (सं० पा०) (श० ७।१४८)

२२. केवली मनु भगवान, मुक्ति जोग तिण भव मही।
परम अवधि जिम जाण, जाव पर्यवसान ते हुई।।

२२. केवली णं भंते! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं एवं चेव जहा परमाहोहिए जाव (सं० पा०) महापज्जवसाणे भवति। (श० ७।१४९)

---

*** लय : जी हो धनो नै सालभद्र दोय**

१. यहां महापज्जवसाण का अनुवाद सुरलोक किया गया है।

२. यह जोड़ संक्षिप्त पाठ के आधार पर की गई है। इसके बाद की तीन गाथाओं में उस संक्षिप्त पाठ को पूरा कर दिया गया है। संभव है जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में यह पाठ दोनों प्रकार से था। अंगसुत्ताणि भाग २ में भी यही क्रम रखा गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२३. ज्ञानी छद्मस्थादि, वक्तव्यता तेहनी कही।
अज्ञानी पृथिव्यादि, हिवै वार्त्ता तेहनीं॥

२३. अनन्तरं छद्मस्थादिज्ञानवक्तव्यतोक्ता, अथ पृथिव्याद्यज्ञानिवक्तव्यतोच्यते— (वृ० प० ३११)

२४. *हे भगवंत! जे एह, मन रहित जे असन्निया।
पुढवीकाइया जेह, जाव वणस्सइ सहु लिया॥

२४. जे इमे भंते! असण्णिणो पाणा, तं जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया,

२५. छट्ठा त्रस केइ एक, संमुच्छिम अन्य त्रस नहीं।
ए सहु अंध जिम पेख, ज्ञान रहित कह्या सही॥

२५. छट्ठा य एगतिया तसा—एए णं अंधा,
'एगइया तस' त्ति 'एके' केचन न सर्वे संमूर्च्छिमा इत्यर्थः, 'अंध' त्ति अंध इवान्धा—अज्ञानाः
(वृ० प० ३१२)

२६. मूढा—तत्व श्रद्धान ते पिण नहिं छै जेहनें।
ओपम करिनैं जाण, कहियैं छै हिव तेहनें॥

२७. तम प्रविष्ट जिम तेह, अंधकार विषे जाणियै।
प्रवेश छै अधिकेह, ते तम प्रविष्ट जिम माणियै॥

२६,२७. मूढा, तमंपविट्ठा
'मूढ' त्ति मूढाः तत्त्वश्रद्धानं प्रति एत एवोपमयोच्यन्ते। 'तमंपविट्ठ' त्ति तमःप्रविष्टा इव तमःप्रविष्टाः। (वृ० प० ३१२)

२८. तम-पडल मोहजाल, तम-पडल जिम एह छै।
ज्ञानावरण मोह न्हाल, बिहुं जाले ढांक्या अछै॥

२८. तमपडल-मोहजालपडिच्छन्ना,
तमःपटलमिव तमःपटलं—ज्ञानावरणं मोहो—मोहनीयं तदेव जालं मोहजालं ताभ्यां प्रतिच्छन्ना—आच्छादिता ये ते। (वृ० प० ३१२)

२९. अकाम-निकरण जास, मन रहित इच्छा विना।
निकरण कारण तास, भोगवै सुख दुख वेदना॥

३०. असण्णी इम भगवान, मन विन वेदन भोगवै।
कारण तास अज्ञान? जिन कहै हंता अनुभवै॥

२९,३०. अकामनिकरणं वेदणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया? हंता गोयमा! जे इमे असण्णिणो पाणा जाव वेदणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया। (श० ७।१५०)
अकामो—वेदनानुभावेऽनिच्छाऽमनस्कत्वात् स एव निकरणं—कारणं यत्र तदकामनिकरणं अज्ञानप्रत्ययमिति भावस्तद्यथा भवतीत्येवं 'वेदनां' सुखदुःखरूपाम्। (वृ० प० ३१२)

सोरठा.

३१. 'असण्णी में बे ज्ञान, दूजै गुणठाणै हुवै।
वमती सम्यक्त जान, ते इहां लेखविया नहीं॥

३२. कडेमाणे कडे जाण, इहां अभिप्राय जणाय जे।
वली बहुल वच माण, बुधवंत न्याय विचारियै'॥ (ज० स०)

३३. आख्या असन्नी एह, तास विपक्ष सन्नी तणी।
वेदन हिवै कहेह, चित्त लगाई सांभलो॥

३३. अथासञ्ज्ञिविपक्षमाश्रित्याह— (वृ० प० ३१२)

३४. *जीव अछै भगवान! समर्थ पिण सन्नी छता।
अकाम-निकरण जान, वेदन प्रति जे वेदता॥

३४. अत्थि णं भंते! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति?

* लय: जी हो धनो नै सालभद्र दोय



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

३५. जिम रूपादिक ज्ञान, समर्थ पिण सन्नीपण।
इच्छा विण पहिछान, वेदन प्रति वेदै अछै॥

३५. प्रभुरपि संज्ञित्वेन यथावद्रूपादिज्ञाने समर्थोऽपि। (वृ० प० ३१२)

३६. अकाम अर्थज एह, इच्छा विण जे जीवड़ा।
निकरण कारण तेह, अनाभोग थी इम वृत्तौ॥

३६. 'अकामनिकरणं' अनिच्छाप्रत्ययमनाभोगात्। (वृ० प० ३१२)

३७. अन्य आचार्य ताय, आखै छै इण रीत सूं।
अकाम अर्थ कहाय, अनिच्छा पूर्वक जिके॥

३७. अन्ये त्वाहुः—अकामेन—अनिच्छया। (वृ० प० ३१२)

३८. निकरण अर्थ कहाय, क्रिया इष्ट फल शून्य जे।
अकाम-निकरण ताय, केवल वेदै वेदना॥

३८. 'निकरणं' क्रियाया—इष्टार्थप्राप्तिलक्षणाया अभावो यत्र वेदने तत्तथा तद्यथा भवतीत्येवं वेदनां वेदयन्ति। (वृ० प० ३१२)

३९. *जिन कहै हंता तेम, बलि गोयम इम पूछता।
समर्थ पिण प्रभु! केम, अकाम-निकरण वेदता?

३९. हंता अत्थि। (श० ७।१५१)
कहण्णं भंते! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति?

**सोरठा**

४०. सन्नीपणैं करि जेह, समर्थ आख्या तेहनै।
पिण उपाय बिण तेह, देखण नें समरथ नहीं॥

४०. यः प्राणी संज्ञित्वेनोपायसद्भावेन च हेयादीनां हानादौ समर्थोऽपि 'नो पहु' त्ति न समर्थः। (वृ० प० ३१२)

४१. समर्थ पिण इण न्याय, आख्या ते समरथ नहीं।
अणइच्छाइं ताय, अकाम-निकरण वेदना?

४२. *जिन कहै समर्थ जेह, रूप अंधारे दीवा बिना।
देखण समर्थ न तेह, पेखण मन छै जेहनां॥
[जिन कहै गोयम! एह, अकाम-निकरण वेदना]॥

४२. गोयमा! जे णं नो पभू विणा पदीवेणं अंधकारंसि रूवाइं पासित्तए,
एस णं गोयमा! पभू वि अकामनिकरणं वेदणं वेदेंति।[1] (श० ७।१५२)

४३. आगल रूप छै जास, तो पिण चक्षु व्यापरयां बिना।
देखी न सकै तास, अध्यवसाय देखण तणां॥

४३. जे णं नो पभू पुरओ रूवाइं अणिज्झाइत्ता णं पासित्तए,
'अनिद्धर्याय' चक्षुरव्यापार्य (वृ० प० ३१२)

४४. पूठै रूप छै जास, तो पाछै दृष्टि फेरयां बिना।
देखण समर्थ न तास, जोवण मन छै जेहनां॥

४४. जे णं नो पभू मग्गओ रूवाइं अणवयक्खित्ता णं पासित्तए,
'अनवेक्ष्य' पश्चाद्भागमनवलोक्येति (वृ० प० ३१२)

---

* लय : जी हो धनो नैं सालभद्र दोय

१. यह पाठ सैंतालीसवीं गाथा के सामने दिए गए पाठ के बाद आता है और फिर सूत्र पूरा होता है। किन्तु जोड़ में बयालीसवीं गाथा के बाद नया ध्रुपद दिया गया है। उसमें इस पाठ का अनुवाद है। इसलिए १५२ वें सूत्र के अन्तिम अंश को यहां उद्धृत किया गया है। आगे ४७ वीं गाथा तक यही सूत्र चलेगा।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. रूप रह्या बिहुं पास, दृष्टि फेरयां बिण त्यां भणी।
देखण समर्थ न तास, पिण इच्छा देखण तणी॥
४६. ऊर्ध्व रूप छै सोय, अवलोकन कीधां बिना।
जोवा समर्थ न कोय, देखण मन छै जेहनां॥
४७. हेठे रूप छै जेह, अवलोकन कीधां बिना।
देखण समर्थ न तेह, पेखण मन छै जेहनां॥
४८. सन्नी छतो जे ताहि, समर्थ रूप देखण घणां।
जोयां विण समर्थ नांहि, अध्यवसाय देखण तणां॥

## सोरठा

४९. अकाम-निकरण देख, वेदन वेदै इम कह्यु।
तास विपर्जय पेख, प्रकाम-निकरण हिव कहै॥
५०. *समर्थ पिण छै स्वाम! प्रकाम-निकरण वेदना।
वेदै छै ते ताम? जिन कहै हंता छै घना॥
५१. †हिव समर्थ पिण जे प्रकाम-निकरण, वेदनाज कहीजियै।
समर्थ पिण जे रूप देखण, सन्नीपणैं करि लीजियै॥
५२. प्रकाम वांछित अर्थ नैं, अणपामिवै करि जेहनैं।
प्रवर्द्धमान भावे करी, प्रकृष्ट वांछा तेहनैं॥
५३. तेहीज निकरण अछै कारण, तेह वेदना नैं विषे।
समर्थ पिण जे प्रकाम-निकरण, वेदना वेदै इसे॥
५४. अन्य आचार्य इम कहै छै, प्रकाम कहितां जाणियै।
तीव्र अभिलाषा छते वा, अतिहि अर्थ पिछाणियै॥
५५. निकरणं इष्टार्थ साधक, क्रिया नहीं जेहनैं विषे।
समर्थ पिण जे प्रकाम-निकरण वेदना वेदै तिसे॥
५६. *हे प्रभु! किणविध ताम, समर्थ पिण सन्नी छता।
प्रकाम-निकरण नाम, वेदन प्रति किम वेदता?
५७. जिन कहै सन्नी जीव, समुद्र पार जावूं वही।
एहवी वांछा अतीव, पिण पार जावा समर्थ नहीं।
[जिन कहै गोयम! एह, प्रकाम-निकरण वेदना]॥
५८. समुद्र नैं जे पार, रूप देखण समरथ नहीं।
पिण ते रूप उदार, देखण वांछा तीव्र ही॥
५९. वलि देवलोक मझार, जावा नैं समरथ नहीं।
त्यां जावा नीं अपार, अभिलाषा तसु तीव्र ही॥
६०. देवलोक नां रूप, देखण नैं समरथ नहीं।
पिण तसु देखण चूंप, मनसा छै तसु तीव्र ही॥

* : लय : जी हो धनो नै सालभद्र दोय
† : लय : पूज मोटा भांजै तोटा

४५. जे णं नो पभू पासओ रूवाइं अणवलोएत्ता णं पासित्तए,
४६. जे णं नो पभू उड्ढं रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए,
४७. जे णं नो पभू अहे रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए। (श० ७।१५२)
४९. अकामनिकरणं वेदनां वेदयतीत्युक्तम्, अथ तद्विपर्ययमाह— (वृ० प० ३१२)
५०. अत्थि णं भंते! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति? हंता अत्थि। (श० ७।१५३)
५१. प्रभुरपि संज्ञित्वेन रूपदर्शनसमर्थोऽपि। (वृ० प० ३१२)
५२. प्रकामः—ईप्सितार्थाप्राप्तितः प्रवर्द्धमानतया प्रकृष्टोऽभिलाषः (वृ० प० ३१२)
५३. स एव निकरणं—कारणं यत्र वेदने तत्तथा। (वृ० प० ३१२)
५४,५५. अन्ये त्वाहुः—प्रकामे—तीव्राभिलाषे सति प्रकामं वा अत्यर्थं निकरणं—इष्टार्थसाधकक्रियाणामभावो यत्र तत् प्रकामनिकरणं तद्यथा भवतीत्येवं वेदनां वेदयति। (वृ० प० ३१२)
५६. कहण्णं भंते! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति?
५७. गोयमा! जे णं नो पभू समुद्दस्स पारं गमित्तए,
५८. जे णं नो पभू समुद्दस्स पारगयाइं रूवाइं पासित्तए,
५९. जे णं नो पभू देवलोगं गमित्तए,
६०. जे णं नो पभू देवलोगगयाइं रूवाइं पासित्तए,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. हे गोतम ! कह्यु एह, समरथ पिण जे जीवड़ा ।
प्रकाम-निकरण जेह, वेदन वेदै छै खरा ।।
६२. सेवं भंते ! सितंतर साज, ढाल एक सौ बावीसमी ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराज, 'जय-जश' गणवच्छल दमी ।।

सप्तमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।७।७।।

६१. एस णं गोयमा ! पभू वि पकामनिकरणं वेदणं वेदेंति (श० ७।१५४)

६२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।१५५)

## ढाल १२३

### दूहा

१. सप्तमुदेशक अंत में, छद्मस्थ वेदन जाण ।
अष्टमुदेशक आदि हिव, छद्म वारता आण ।।
२. हे प्रभु ! नर छद्मस्थ जे, अतीत काल अनंत ।
सास्वत समय विषे तिको, केवल संजमवंत ।।
३. इम जिम प्रथम-शते[1] कह्यो, चउथ उदेशक मांय ।
तिमहिज भणवो ज्यां लगे, अलमत्थु कहिवाय ।।
४. जीव तणां अधिकार थी, जीव तणो पहिछाण ।
प्रश्न हिवै गोयम करै, ऊजम अधिको आण ।।

१. सप्तमोद्देशकस्यान्ते छाद्मस्थिकं वेदनमुक्तमष्टमे त्वादावेव छद्मस्थवक्तव्यतोच्यते, (वृ० प ३१२)

२. छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं ।

३. एवं जहा पढमसए चउत्थे उद्देसए तहा भाणियव्वं जाव अलमत्थु । (सं० पा०) (श० ७।१५६, १५७)

*जय-जय जिनराज तणी वाणी । (ध्रुपदं)

५. हे प्रभु ! निश्चै ते परिखो, गज कुंथु नो जीव अछै सरिखो ?
जिन भाखै हंता जाणी ।।

६. इम जिम रायप्रश्रेणी मही, जाव नान्ही मोटी काय कही ।
तिण अर्थे जावत सम ठाणी ।।
७. वाचनांतरे सर्व तिको, पाठ साख्यात लिखित दीसै छै जिको ।
वृत्ति मध्ये इहविध माणी ।।

५. से नूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?
हंता गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ।

६. एवं जहा रायपसेणइज्जे (रायप० सू० ७७२) जाव खुड्डियं (सं० पा०) वा महालियं वा से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे । (श० ७।१५८, १५९)

### सोरठा

८. जीव तणो अधिकार, आख्यो छै तेहथी हिवै ।
वली जीव विस्तार, निसुणो चित्त लगाय नैं ।।

८. जीवाधिकारादिदमाह— (वृ० प० ३१३)

९. *नारकी नैं प्रभुजी ! न्हालं, पाप कर्म किया जे गये कालं ।
हिवड़ां करै आगै करिस्यै प्राणी ।।
१०. ते सर्व दुक्ख हेतू कहियै, तिके निर्जरयां सुख हेतू लहियै ?
जिन भाखै हंता इम जाणी ।।

९,१०. नेरइयाणं भंते ! पावे कम्मे जे य कडे, जे य कज्जइ, जे य कज्जिस्सइ सव्वे से दुक्खे, जे निज्जिण्णे से सुहे ? हंता गोयमा !

१. भगवती श० १।२००-२०९
*लय : प्रभु वासुपुज्य भजलै प्राणी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. इम जाव वैमानिक लग कहिवो, नारकादिक नें संज्ञा रहिवो।
तसु संज्ञा सूत्र हिवै आणी ।।

१२. केतली प्रभु ! संज्ञा[1] भाखी, जिन भाखै दश संज्ञा दाखी।
आहार भय मिथुन परिग्रह जाणी ।।

१३. क्रोध मान माया नें लोभ वली, ओघ संज्ञा—दर्शनोपयोग मिली।
ज्ञानोपयोग लोक संज्ञा माणी ।।

१४. नवमी लोक संज्ञा अन्य गणि भाखै, ओघ संज्ञा नै दशमी दाखै।
एहवी वृत्तिकार कहि छै वाणी ।।

१५. फुन अन्य आचारज इम आखै, ओघ संज्ञा सामान्य प्रवृत्ति दाखै।
लोक संज्ञा लोक दृष्टी ठाणी ।।

१६. इम जाव विमानिक नै कहिवी, दश संज्ञा सर्व दंडक लहिवी।
प्रवर प्रभू वच पहिछाणी ।।

११. एवं जाव वेमाणियाणं। (श० ७।१६०)
नारकादयश्च सञ्ज्ञिन इति सञ्ज्ञा आह—
(वृ० प० ३१४)

१२. कति णं भंते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आहार-सण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा,

१३. कोहसण्णा, माणसण्णा, मायासण्णा, लोभसण्णा, लोगसण्णा, ओहसण्णा[1]।
ततश्चौघसञ्ज्ञा दर्शनोपयोगो लोकसञ्ज्ञा तु ज्ञानोपयोग इति। (वृ० प० ३१४)

१४. व्यत्ययं त्वन्ये। (वृ० प० ३१४)

१५. अन्ये पुनरित्थमभिदधति—सामान्यप्रवृत्तिरोघसञ्ज्ञा लोकदृष्टिस्तु लोकसञ्ज्ञा। (वृ० प० ३१४)

१६. एवं जाव वेमाणियाणं। (श० ७।१६१)

१. संसार के बहुसंख्यक प्राणियों में पाई जाने वाली एक विशेष प्रकार की वृत्ति का नाम संज्ञा है। संज्ञा की अनेक परिभाषाएं हो सकती हैं, उनमें से कुछ परिभाषाएं ये हैं—

- जिससे जाना जाता है, संवेदन किया जाता है, वह संज्ञा है।
- मानसिक ज्ञान अथवा समनस्कता का नाम संज्ञा है।
- भौतिक वस्तु की प्राप्ति तथा प्राप्त वस्तु के संरक्षण की व्यक्त अथवा अव्यक्त अभिलाषा का नाम संज्ञा है।
- वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी में आहार आदि की प्राप्ति के लिए जो स्पष्ट या अस्पष्ट व्यग्रता अथवा सक्रियता रहती है, वह संज्ञा है।
- मनोविज्ञान की भाषा में प्राणी जगत् की जो मूल वृत्तियां हैं, उन्हीं को जैन सिद्धान्त संज्ञा के रूप में प्रतिपादित करता है।

ज्ञान, संवेदन, अभिलाषा, चित्त की व्यग्रता या मूल वृत्ति किसी भी शब्द का प्रयोग हो, वह जैन दर्शन में संज्ञा कहलाती है। भगवती ७।१६१ में उसके दस प्रकार बतलाए हैं। दस संज्ञाओं में आठ संज्ञाएं ऐसी हैं, जो अपने नाम से ही अपने स्वरूप का बोध करा देती हैं। शेष दो संज्ञा—लोक संज्ञा और ओघ संज्ञा का स्वरूप उनकी परिभाषा से स्पष्ट होता है।

लोक संज्ञा वैयक्तिक चेतना की प्रतीक है और ओघ संज्ञा सामुदायिक चेतना की। भगवती में सामान्य प्रवृत्ति को ओघ संज्ञा और लोक दृष्टि को लोक संज्ञा कहा गया है। संज्ञा के दस प्रकारों में प्रथम आठ संज्ञाओं को संवेगात्मक और अंतिम दो संज्ञाओं को ज्ञानात्मक माना गया है।

१. जयाचार्य ने वृत्तिकार द्वारा व्याख्यात पाठ के क्रम से जोड़ लिखी है तथा अन्य आचार्यों का मत प्रदर्शित करते हुए पहले लोक संज्ञा और बाद में ओघ संज्ञा होने का निर्देश किया है। अंग सुत्ताणि (भाग २ श० ७।१६१) में वृत्तिकार के 'व्यत्ययं त्वन्ये'—अन्य आचार्यों द्वारा सम्मत पाठ को ही मान्य किया है। इसलिए जोड़ के सामने जो पाठ उद्धृत है, उसमें नौवीं एवं दशवीं संज्ञा के नामों में विपर्यय है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

१७. समदृष्टी रै ज्ञान, अज्ञान मिथ्याती तणैं।
तिम ज्ञानावरण पिछान, क्षय उपशम थी बिहुं तणैं।।

१८. पंचेंद्री नै पेख, दश संज्ञा सुख समझियै।
एगिंदियादि विशेख, जिन वचने करि जाणियै।।

१९. प्राय यथोक्त तद्रूप, क्रिया-निबंधनभूत जे।
कर्मोदयादि रूप, एकेंद्रियादि नैं संज्ञा।।

२०. जीव तणो अधिकार, कहिवा थी वलि जीव नो।
कहियै छै विस्तार, चित्त लगाई सांभलो।।

२१. *नेरइया दशविध न्हाली, विरूइ वेदन महा विकराली।
ए तो भोगवता विचरै जाणी।।

२२. शीत उष्ण नैं क्षुधा आखी, वली तृषा खाज वेदन भाखी।
परवस्यपणो अनंत जाणी।।

२३. ज्वर दाह भय सोग कही, दश वेदन वार अनंत लही।
सुध श्रद्धा विण रुलियो प्राणी।।

**सोरठा**

२४. आखी वेदन एह, तिका कर्म नां वस थकी।
वली क्रिया थी जेह, जीव सहै छै वेदना।।

२५. तिका क्रिया सम थाय, महा तनु अल्प तनु बिहुं तणै।
ते देखाड़ण ताय, गोयम प्रश्न करै हिवै।।

२६. *ते निश्चै करि भगवानं, गज कुंथु बिहुं नैं सम जानं।
अपचखाण क्रिया माणी?

२७. जिन भाखै हंता होयो, किण अर्थे प्रभु! अवलोयो?
जिन कहै अव्रत आश्री ठाणी, तिण अर्थे जावत सम जाणी।।

**सोरठा**

२८. असंजती नैं जोय, अव्रत नी किरिया कही।
हिव संयत नैं होय, आधाकर्मी जे क्रिया।।

२९. *आधाकर्मी प्रभु! जाणी, भोगवतो स्यूं बांधै ताणी।
स्यूं पकरै चय उपचय ठाणी?

३०. इम जिम प्रथम शते आख्यो, नवमे उदेशे जे भाख्यो।
तिम इहां भणवूं पहिछाणी।।

*लय : प्रभु वासुपूज्य भजलै प्राणी!

१८,१९. एताश्च सुखप्रतिपत्तये स्पष्टरूपाः पञ्चेन्द्रियानधिकृत्योक्ताः, एकेन्द्रियादीनां तु प्रायो यथोक्तक्रियानिबन्धनकर्मोदयादिरूपा एवावगन्तव्या इति। (वृ० प० ३१४)

२०. जीवाधिकारात्— (वृ० प० ३१४)

२१. नेरइया दसविहं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति,

२२. तं जहा—सीयं, उसिणं, खुहं, पिवासं, कंडुं, परज्झं 'परज्झ' त्ति पारवश्यम्। (वृ० प० ३१४)

२३. जरं, दाहं, भयं, सोगं। (श० ७।१६२)

२४. प्राग् वेदनोक्ता सा च कर्म्मवशात् तच्च क्रियाविशेषात्। (वृ० प० ३१४)

२५. सा च महतामितरेषां च समैवेति दर्शयितुमाह— (वृ० प० ३१४)

२६. से नूणं भंते! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ?

२७. हंता गोयमा! ........ (श० ७।१६३)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ— ........
गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव (सं० पा०) कज्जइ। (श० ७।१६४)

२८. अनन्तरमविरतिरुक्ता सा च संयतानामप्याधाकर्म्मभोजिनां कथञ्चिदस्तीत्यतः पृच्छति। (वृ० प० ३१५)

२९. अहाकम्मं णं भंते! भुंजमाणे किं बंधइ? किं पकरेइ? किं चिणाइ? किं उवचिणाइ?

३०. एवं जहा पढमे सए नवमे उद्देसए (१।४३६) तहा भाणियव्वं। (सं० पा०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. जाव सासतो पंडित जीवो, ए द्रव्य जीव आश्री कहीवो।
पंडितपणो असासतो चरित्ताणी ॥

३१. जाव सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं।
(श० ७।१६५)

जीवः शाश्वतः पण्डितत्वमशाश्वतं चारित्रस्य भ्रंशा-
दिति। (वृ० प० ३१५)

३२. सेवं भंते! सेवं भंते! शत सप्तमुदेश अष्टमंते।
ढाल एकसौ तेवीसमीं वर वाणी॥

३२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ७।१६६)

३३. भिक्खु भारीमाल नैं ऋषिराया, 'जय-जश' सुख हरष संपति
पाया।
गण-वच्छल संत अज्जा स्याणी॥

सप्तमशते अष्टमोद्देशकार्थः ॥७।८॥

## ढाल १२४

### दूहा

१. अशुद्ध आहार भोजी कह्यो, प्रमत्तपणै करि जेह।
असंवरी आतम जिणे, नवमें पिण वलि तेह॥

१. पूर्वमाधाकर्मभोक्तृत्वेनासंवृतवक्तव्यतोक्ता, नवमो-
द्देशकेऽपि तद् वक्तव्यतोच्यते, (वृ० प० ३१५)

२. असंवृत अणगार प्रभु! अशुभ जोग अपेक्षाय।
आतम वस कीधी नहीं, प्रमत्त कह्यो वृत्ति मांय॥

२. असंवुडे णं भंते! अणगारे
असंवृतः प्रमत्तः। (वृ० प० ३१५)

३. पुद्गल बाह्य लियां बिना, एक वर्ण इक रूप।
विकुर्वण समरथ अछै? जिन कहै नहिं तद्रूप॥

३. बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं
विउव्वित्तए?
णो इणट्ठे समट्ठे। (श० ७।१६७)

४. असंवृत अणगार प्रभु! बाहिर पुद्गल लेय।
एक वर्ण इक रूप प्रति, जाव हंत विकुर्वेय॥

४. असंवुडे णं भंते! अणगारे बाहिरए पोग्गले परिया-
इत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए?
हंता पभू। (श० ७।१६८)

५. ते प्रभु! स्यूं पुद्गल ग्रहै, इह नरलोके जेह।
ते पुद्गल लेई करी, विकुर्वणा करेह॥

५. से णं भंते! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता
विकुव्वइ?
'इहगतान्' नरलोकव्यवस्थितान्। (वृ० प० ३१५)

६. तत्थगए वैक्रिय करि, जास्यै जे जिण स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, करै विकुर्वण जान?

६. तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ?
'तत्थए' त्ति वैक्रियं कृत्वा यत्र यास्यति तत्र
व्यवस्थितानित्यर्थः। (वृ० प० ३१५)

७. अन्नत्थगत ए स्थान बे, तेह थकी अन्य स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, करै विकुर्वण जान?

७. अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ?
'अन्नत्थगए' त्ति उक्तस्थानद्वयव्यतिरिक्तस्थानाश्रिता-
नित्यर्थः। (वृ० प० ३१५)

८. जिन कहै पुद्गल इहां रह्या, लेई विकुर्वेह।
वैक्रिय करै ते स्थान नां, पुद्गल ग्रहण करेह॥

८. गोयमा! इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।

९. तत्थगए वैक्रिय करि, जास्यै जे जिण स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, विकुर्वै नहिं जान॥

९. नो तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. अन्नत्थगए ए स्थान बे, तेह थकी अन्य स्थान।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रही, विकुर्वे नहिं जान।।
११. एक वर्ण बहु रूप इम, चउभंगी छै ताय।
शत छट्ठे नवमें कह्यु, तेम इहां कहिवाय।।
१२. णवरं इतो विशेष छै, इण शतके अणगार।
इहां रह्या पुद्गल ग्रही, विकुर्वणा विचार।।
१३. शेष तिमज कहिवूं सहु, तिण शतके छै देव।
तिहां रह्या पुद्गल ग्रहै, आख्यूं एहवूं भेव।।

१४. जाव लुक्ख पुद्गल प्रतैं, निद्धपणैं अवलोय।
समर्थ प्रभु ! परिणामिवा ? हंता समर्थ होय।।
१५. ते प्रभु ! स्यूं पुद्गल ग्रहै, इहां रह्या छै जेह।
जाव अन्य स्थानक रह्या, ग्रहि वैक्रिय न करेह।।

१६. आख्यो ए पुद्गल तणो, जे परिणाम विशेष।
ते संग्राम विषे हुवै, तसु विशेष हिव लेख।।

*सुगुण जन ! सांभलो, वारू श्री जिन-वयण विशाल ।।(ध्रुपदं)

१७. जाण्यो सामान्य थकी सही जी, अरिहंत श्री वर्धमान।
आगल वस्तु जे आखियै जी, सर्वज्ञपणां थी जाण।।

१८. स्मृत नीं परे समरियो, प्रगटपणैं प्रतिभास।
महावीर महिमानिला, छानो नहिं कोइ तास।।

१९. जाण्यो विशेषपणैं करी, अरिहंत अतिसयधार।
महाशिलाकंटक हिवै, संग्राम नों अधिकार।।

## सोरठा

२०. महाशिला इज जाण, कंटक ते जीवित तणां।
विनाश करिवै माण, महाशिला कंटक कह्यो।।
२१. तृण-शलाकादि करेह, हण्या थका गज प्रमुख जे।
महाशिला प्रहारेह, हण्यां जिसो वेदन हुवै।।

२२. महाशिलाकंटक संग्राम, दोय वार सूत्रे वचन।
ते उल्लेख नुं ताम, अनुकरणे आख्यो वृतौ।।

२३. *महाशिलाकंटक प्रभु ! संग्रामे वर्त्तमान।
कुण जीतो कुण हारियो ? उत्तर दे भगवान।।

* लय : अमड भड रावणो इंदा सूं अड़ियो रे

१०. नो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।

११. एवं एगवण्णं अणेगरूवं चउभंगो जहा छट्ठसए नवमे उद्देसए (६।१६५) तहा इह वि भाणियव्वं।
१२. नवरं अणगारे इहगयं च इहगते चेव पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।
१३. सेसं तं चेव
तत्र तु देव इत्ति तत्रगतानिति चोक्तम्।
(वृ० प० ३१५)
१४. जाव लुक्खपोग्गलं निद्धपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?
हंता पभू।
१५. से भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता जाव नो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ। (सं०पा०)
(श० ७।१६६-१७२)
१६. अनन्तरं पुद्गलपरिणामविशेष उक्तः, स सङ्ग्रामे सविशेषो भवतीति सङ्ग्रामविशेषवक्तव्यताभणनाय प्रस्तावयन्नाह— (वृ० प० ३१५)

१७. नायमेयं अरहया,
ज्ञातं सामान्यतः 'एतद्' वक्ष्यमाणं वस्तु 'अर्हता' भगवता महावीरेण सर्वज्ञत्वात्। (वृ० प० ३१६)
१८. सुयमेयं अरहया,
'सुयं' ति स्मृतमिव स्मृतं स्पष्टप्रतिभासभावात्।
(वृ० प० ३१६)
१९. विण्णायमेयं अरहया—महासिलाकंटए संगामे।
विज्ञातं विशेषतः, (वृ० प० ३१६)

२०. महाशिलेव कण्टको जीवितभेदकत्वात् महाशिलाकण्टकः (वृ० प० ३१६)
२१. यत्र तृणशलाकादिनाऽप्यभिहतस्याश्वहस्त्यादेर्महाशिलाकण्टकेनेवाभ्याहतस्य वेदना जायते।
(वृ० प० ३१६)
२२. द्विर्वचनं चोल्लेखस्यानुकरणे, (वृ० प० ३१६)

२३. महासिलाकंटए णं भंते ! संगामे वट्टमाणे के जइत्था? के पराजइत्था ?
'जइत्थ' त्ति जितवान्
'पराजइत्थ' त्ति पराजितवान् हारितवान्।
(वृ० प० ३१६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. वज्री विदेहपुत्र जीतियो, वज्री ते इंद्र पिछाण।
विदेहपुत्र कोणिक कह्यो, ए बिहुं जीता जाण।।

२५. नव मल्लकी नव लेच्छकी, कासी कोसल देश नां राय।
अष्टादश गण राजवी, ते हार्‍या कहिवाय।।

**सोरठा**

२६. जेह मल्लकी नाम, नव विशेष राजा जिके।
कासी जनपद ताम, तेह संबंधी ए कह्या।।

२७. वले लेच्छकी नाम, नव विशेष राजा जिके।
कोसल जनपद ताम, तेह संबंधी ए कह्या।।

२८. *प्रयोजन ऊपने छते, जे करै गण-समुदाय।
गणप्रधान राजा तिके, गण-नृप सामंत ताय।।

२९. कोणक राजा तिण अवसरे, महाशिलाकंटक संग्राम।
उपस्थित इम जाणनैं, सेवग नैं कहै ताम।।

३०. शीघ्र तुम्हे देवानुप्रिया! उदाई नामैं एह।
गजराज प्रति सझ करो, चउरंगी सैन्य सझेह।।

३१. ए मुझ आज्ञा शीघ्र थी, पाछी सूंपो आण।
कोडुंबिक कोणिक तणां, वच सुण हरष भराण।।

३२. यावत शिर अंजलि करी, एवं सामी! तहत्त।
जो आज्ञा तिण विध हुस्यै, आप तणो वच सत्त।।

३३. इह विध वचन-विनय करी, राय वचन नैं तिवार।
अंगीकार करै आदरै, सेवक पुरुष जिवार।।

३४. शीघ्रपणै डाहो तिको, युद्ध सिखावणहार।
एहवो आचार्य तेहनो, जे उपदेश-दातार।।

३५. तेहनी जे मति बुद्धि करी, कलपना रचना पिछाण।
तिण रचना करिनै रची अतिहि निपुण नर जाण।।

३६. जिम उववाई में कह्यो, यावत रोद्र संग्राम।
तेह जोग गजराज नैं, सज्ज करै तिण ठाम।।

**सोरठा**

३७. कह्यु वृत्ति रै मांय, वाचनांतरे वारता।
सर्व लिखत देखाय, पाठ सहु साख्यात जे।।

*लय : अभड भड रावणो इंदा स्यूं अड़ियो रे

२४. गोयमा! वज्जी, विदेहपुत्ते जइत्था,
'वज्जि' त्ति 'वज्री' इन्द्रः 'विदेहपुत्ते' त्ति कोणिकः, एतावेव तत्र जेतारौ। (वृ० प० ३१७)

२५. नव मल्लई, नवलेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था। (श० ७।१७३)

२६,२७. 'नवमल्लइ' त्ति मल्लकिनामानो राजविशेषाः 'नवलेच्छइ' त्ति लेच्छकिनामानो राजविशेषा एव 'कासीकोसलग' त्ति काशी—वाणारसी तज्जनपदोऽपि काशी तत्सम्बन्धिन आद्या नव कोशला—अयोध्या तज्जनपदोऽपि कोशला तत्संबंधिनो नव द्वितीयाः। (वृ० प० ३१७)

२८. समुत्पन्ने प्रयोजने ये गणं कुर्वन्ति ते गणप्रधाना राजानो गणराजाः सामन्ता इत्यर्थः। (वृ० प० ३१७)

२९. तए णं से कोणिए राया महासिलाकंटगं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

३०. खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह,
'पडिकप्पेह' त्ति सन्नद्धं कुरुत। (वृ० प० ३१७)

३१. मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह। (श० ७।१७४)
तए णं ते कोडुंबियपुरिसा कोणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया

३२. जाव मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तहत्ति आणाए

३३. विणएणं वयणं पडिसुणंति,

३४,३५. पडिसुणित्ता खिप्पामेव छेयायरियोवएसमति-कप्पणा-विकप्पेहिं सुनिउणेहिं
छेको—निपुणो य आचार्यः—शिल्पोपदेशदाता तस्योपदेशाद् या मतिः—बुद्धिस्तस्या ये कल्पना-विकल्पाः .... (वृ० प० ३१७)

३६. एवं जहा ओववाइए सू० ५६, ५७ (सं०पा०) भीमं संगामियं अओज्झं उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेंति।

३७. वाचनान्तरे त्विदं साक्षाल्लिखितमेव दृश्यत इति। (वृ० प० ३१८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. *हय गय रथ भट सहित सूं, जाव सभी चतुरंग।
कोणिक नृप पै आय नै, बे कर जोड़ उमंग।।

३८. हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेंति, सण्णाहेत्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव (सं० पा०)

३९. यावत कोणिक राय नें, आज्ञा सूंपी जेह।
कोणिक नृप तिण अवसरै, आयो मज्जण-गेह।।

३९. कूणियस्स रण्णो तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति। (श० ७।१७५)

तए णं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति,

४०. मज्जण-घर में पैसनै, स्नान किया बलिकर्म।
वृत्तिकार कह्यो देव नों, कृतबलिकर्म ए मर्म।।

४०. उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे

'कयबलिकम्मे' त्ति देवतानां कृतबलिकर्म्मा। (वृ० प० ३१८)

४१. तिलक मसी कोतुक किया, मंगलीक द्रोबादि।
अशुभ स्वप्न नें टालिवा, प्रायश्चित ए साधि।।

४१. कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते

कृतानि कौतुकमङ्गलान्येव प्रायश्चित्तानीव दुःस्वप्नादिव्यपोहायावश्यं कर्त्तव्यत्वात् प्रायश्चित्तानि येन स तथा, तत्र कौतुकानि—मषीपुण्ड्रादीनि मङ्गलानि—सिद्धार्थकादीनि। (वृ० प० ३१८)

४२. सर्वालंकार तेणे करी, कियो विभूषित गात।
सन्नद्ध कहितां सन्नाह नें, कसिणे करि बंधनात।।

४२. सव्वालंकारविभूसिए सण्णद्ध-बद्ध-

सन्नद्धः संहननिकया तथा बद्धः कशाबन्धनतः (वृ० प० ३१८)

४३. वरमित तनु रक्षा भणी, कवच भणी पहिरेह।
पुणच पसारवै करी, शरासन-पट्टिका जेह।।

४४. एहवो धनुर्दंड छै तिको, बाहु विषे तिणवार।
बांधी शरासन-पट्टिका, कोणिक नृपति जिवार।।

४३,४४. वम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए

उत्पीडिता—गुणसारणेन कृतावपीडा शरासनपट्टिका—धनुर्दण्डो येन स तथा, उत्पीडिता वा—बाहौ बद्धा शरासनपट्टिका—बाहुपट्टिका येन सः। (वृ० प० ३१८)

४५. पहिर्या है आभरण कंठ नां, निमल पवर सुप्रधान।
राज्य चिह्न नुं पट्ट जिणे, ते बांध्यो छै जान।।

४५. पिणद्धगेवेज्ज-विमलवरबद्धचिंधपट्टे

ग्रैवेयकं—ग्रीवाभरणम्। (वृ० प० ३१८)

४६. ग्रह्या आयुध बहु शस्त्र नें, जेह प्रहरण कहाय।
पर नें प्रहार करण भणी, ए आयुध प्रहरणाय।।

४६. गहियाउहप्पहरणे

गृहीतानि आयुधानि—शस्त्राणि प्रहरणाय—परेषां प्रहारकरणाय येन सः। (वृ० प० ३१८)

## सोरठा

४७. अथवा आयुध तेह, अक्षेप्य खड्गादी ग्रही।
अधिक उलालि बधेह, पिण न्हाखै नहिं हाथ थी।।

४७. अथवाऽऽयुधानि अक्षेप्यशस्त्राणि खड्गादीनि (वृ० प० ३१८)

४८. क्षेप्य शस्त्र बाणादि, प्रहरण छै ए कर थकी।
अधिक वेगला साधि, न्हाखै पर हणवा भणी।।

४८. प्रहरणानि तु—क्षेप्यशस्त्राणि नाराचादीनि। (वृ० प० ३१८)

४९. *कोरंटक नाम तरु तणां, पुष्पमाला करि सहीत।
तेह छत्र धरिवै करी, पेखत पामै प्रीत।।

४९. सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं

'सकोरिंट……' ……कोरिण्टकाभिधानकुसुमगुच्छैर्माल्यदामभिः—पुष्पमालाभिः। (वृ० प० ३१८)

५०. चिउं चामर वाले करी, वीजित अंग सुजान।
मंगल जय रव जन करै, दर्शन देखत पान।।

५०. चउचामरवालवीजियंगे मंगलजयसद्दकयालोए

'मंगल……' ……जयशब्दः कृतः जनैर्विहितः। (वृ० प० ३१८)

*लय : अभड़ भड़ रावणो इन्दा स्यूं अड़ियो रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. इम जिम उववाई विषे, लोक अनेक संघात।
मज्जण घर थी नीकली, मन मांहे हरष धरात॥

५२. जिहां बाहिरली उवट्ठाण साल छै, जिहां उदाई नाम।
हस्ती नो राजा अछै, जाव आया तिण ठाम॥

५३. उदाई हस्तिराजा प्रतै, थया आरूढ तिवार।
कोणिक नृप तणो तदा, शोभ रह्यो दीदार॥

५४. प्रवर हार आच्छादन करी, सुकृत रचित सुरीत।
वक्ष हृदय तसु शोभतो, पेखत पामै प्रीत॥

५५. जिम उववाई विषे कह्यो, जावत चामर स्वेत।
उर्ध्व कर्‌या छै तिणे करी, चउरंगी सेन्य समेत॥

५६. मोटा जे भड़ तेहना, चडगर विस्तारवान।
तेहनै संग वृंदे करी, वींट्यो कोणिक राजान॥

५७. जिहां महाशिलाकंटक संग्राम छै, आयो तिहां चलाय।
तेह संग्राम आगै वलि, शक्र सुरिंद सुरराय॥

५८. पर प्रहार लागै नहीं, अभेद्य कवच विशेख।
एहवो मोटो एक विकुर्वे, वज्र सरीखो देख॥

५९. बे इंद्र इम निश्चै करी, करै संग्राम सवाय॥
देविंद मणुयिंद दीपता, शक्र कोणिक कहिवाय॥

६०. इक गज करिनै पिण तदा, समर्थ कोणिक राय।
जीपवा पर वैरी भणी, शक्र सहाय थी ताय॥

६१. कोणिक नृप तिण अवसरे, महाशिलाकंटक संग्राम।
जबर युद्ध करतो छतो, प्रबलपणो दिल पाम॥

६२. नव मल्लकी नव लेच्छकी, ए गणराय अठार।
कासी कोसल देश नां धणी, पराजित किया तिण वार॥

६३. हता प्रहार देई करी, मथिता मथियो मान।
प्रवर वीर भट जेहनां, परभव कियो प्रयाण॥

६४. पाड़ी लूंटी अवगणी, ध्वजा पताका जास।
कष्ट-पतित प्राण देखनै, गया दिशो दिशि न्हास॥

५१,५२. जाव (ओ० सू० ६३) जेणेव उदाई हत्थिराया तेणेव उवागच्छइ,

५३. उवागच्छित्ता उदाइं हत्थिरायं दुरूढे।
(श० ७।१७६)

५४. तए णं से कूणिए राया हारोत्थय-सुकय-रइयवच्छे
हारावस्तृतेन—हारावच्छादनेन सुष्ठु कृतरतिकं
वक्षः—उरो यस्य स तथा (वृ० प० ३१६)

५५. एवं जहा उववाइए (सं० पा० सू० ६५) जाव सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे

५६. महयाभडचडगरविंदपरिक्खित्ते
महाभटानां विस्तारवत्संघेन परिकरित इत्यर्थः
(वृ० प० ३१६)

५७. जेणेव महासिलाकंटए संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासिलाकंटगं संगामं ओयाए। पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया।

५८. एगं महं अभेज्जकवयं वइरपडिरूवगं विउव्वित्ता णं चिट्ठइ।

५९. एवं खलु दो इंदा संगामं संगामेंति, तं जहा—देविंदे य, मणुइंदे य।

६०. एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया जइत्तए, एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया पराजिणित्तए।
(श० ७।१७७)

६१ तए णं से कूणिए राया महासिलाकंटगं संगामं संगामेमाणे

६२. नव मल्लई नव लेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो

६३. हय-महिय-पवरवीर-घाइय-
हताः—प्रहारदानतो मथिता—माननिर्मथनतः प्रवरवीराः—प्रधानभटा घातिताश्च येषां ते।
(वृ० प० ३१६)

६४. विवडियचिंध-द्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था। (श० ७।१७८)
'किच्छपाणगए' त्ति कृच्छ्रगतप्राणान्—कष्टपतितप्राणानित्यर्थः। (वृ० प० ३१६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. किण अर्थे प्रभु इम कह्यो, महाशिलाकंटक संग्राम ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! गुणनिष्पन्न है नाम ।।

६५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—महासिलाकंटए संगामे ?
गोयमा !

६६. महाशिलाकंटक संग्राम में, वर्त्तमान विषे जेह।
अश्व तथा गज ते तिहां, सुभट सारथी तेह ।।

६६. महासिलाकंटए णं संगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सारही वा

६७. तृण करि वा काष्ठे करी, पत्र करी नैं पेख।
अथवा जे कांकरै करी, हणैं वैरी नै देख ।।

६७. तणेण वा, कट्ठेण वा, पत्तेण वा, सक्कराए वा, अभिहम्मति ।

६८. ते सहु जाणे एहवूं, महाशिला करि सोय।
इहां हणाणां म्हे सही, तिण अर्थे इम जोय ।।

६८. सव्वे से जाणेइ महासिलाए अहं अभिहए। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—महासिलाकंटए संगामे। (श० ७।१७९)

६९. महाशिलाकंटक संग्राम में, प्रभु! किता मनुष्य नी घात ?
जिन कहै चोरासी लख तणी, तेह हणाणा विख्यात ।।

६९. महासिलाकंटए णं भंते ! संगामे वट्टमाणे कति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ?
गोयमा ! चउरासीइं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ। (श० ७।१८०)

७०. हे भगवंत ! मनुष्य तिके, शीलव्रत करी रहीत।
जाव पचक्खाण पोसा रहित, वलि मन तसु कोप सहीत ।।

७०. ते णं भंते ! मणुया निस्सीला निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा रुट्ठा

७१. शरीर विषे पिण सर्वथा, दीसतो कोप विकार।
उपशम रहित युद्धे मरी, ऊपनां किण गती मझार ?

७१. परिकुविया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गया ?
कहिं उववण्णा ?

७२. जिन कहै बहुलपणै करी, नरक तिर्यंच मझार।
ऊपनां दुष्ट कर्मे करी, गया जमारो हार ।।

७२. गोयमा ! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववण्णा। (श० ७।१८१)

७३. देश अंक गुण्यासी तणो, एकसौ चोवीसमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

## ढाल : १२५

### दूहा

१. जाण्यो ए अरिहंत जिन, स्मृत ए जिन नै ताम।
विशेष करि जाण्यो प्रभु, रथ-मूसल संग्राम ।।

१. नायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—रहमुसले संगामे।

२. हे भंदत ! रथ-मूसले, संग्रामे वर्त्तमान।
कुण जीतो कुण हारियो ? भाखै तब भगवान ।।

२. रहमुसले णं भंते ! संगामे वट्टमाणे के जइत्था ? के पराजइत्था ?

३. वज्री ते सौधर्म इंद, कोणिक विदेहज पूत।
चमर असुर नो इंद्र ते, ए जीता युध जूत ।।

३. गोयमा ! वज्जी, विदेहपुत्ते, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया जइत्था,

४. नव मल्लकी नव लेच्छकी, अष्टादश ए राय।
रथ-मूसल संग्राम में, ए हार्या अधिकाय ।।

४. नव मल्लई, नव लेच्छई पराजइत्था। (श० ७।१८२)

*कोणिक आवियो हो ।। (ध्रुपदं)

५. कोणिक नृप तिण अवसरे, रथ-मूसल संग्राम।
सज्ज थयो जाणी करी, चढ़ियो देइ दमाम ।।

५. तए णं से कूणिए राया रहमुसलं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता

*लय : राघव आवियो हो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. जिम महाशिलाकंटक कह्यो, तिमहिज शेष कहाय।
णवरं इतलो विशेष छै, भूतानंद गजराय॥

६. सेसं जहा महासिलाकंटए नवरं भूयाणंदे हत्थिराया,

७. तेह गजेंद्र प्रते चढी, जाव जिहां लग जाण।
रथमूसल संग्राम में, आयो ऊजम आण॥

७. जाव रहमुसलं संगामं ओयाए।

८. रथमूसल संग्राम नें, आगल शक्र देविंद।
इम तिमहिज यावत रहै, सूत्रे एम कथिंद॥

८. पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एवं तहेव जाव चिट्ठइ। (सं० पा०)

९. ए वचने करि जाणियै, पूरववत पहिछाण।
अभेद्य कवच मांडी रह्यो, बड़े टबे पिण जाण।

१०. पूठ पाछै चमरे रच्यो, लोहमय मोटो एक।
तापस-भाजन वंस नो, तास आकार विशेख॥

१०. मग्गओ य से चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया एगं महं आयसं किढिणपडिरूवगं
'मग्गओ' त्ति पृष्ठतः 'आयसं' ति लोहमयं 'किढिण-पडिरूवगं' ति किठिनं—वंशमयस्तापससम्बन्धी भाजन-विशेषस्तत्प्रतिरूपकं—तदाकारं वस्तु। (वृ० प० ३२२)

११. ते विकुर्वी नै रहै, करै तीनूं इंद्र संग्राम।
देविंद मणुयिंद दीपता, असुर-इंद वलि आम॥

११. विउव्वित्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु तओ इंदा संगामं संगामेंति, तं जहा—देविंदे य, मणुइंदे य, असुरिंदे य।

१२. इक गज करिनें पिण तिको, समर्थ कोणिक राय।
जीपवा वेर्‌यां भणी, शेष तिमज कहिवाय॥

१२. एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया जइत्तए तहेव जाव दिसोदिसिं (सं० पा०)।
(श० ७।१८३-१८६)

१३. कोणिक नृप तिण अवसरे, रथमूसल संग्राम।
प्रबल युद्ध करतो छतो, कोप करीनें ताम॥

१३. तए णं से कूणिए राया रहमुसलं संगामं संगामेमाणे

१४. नव मल्लकी नव लेच्छकी, सामंत राय अठार।
कासी कोसल तणां धणी, दीधो तास प्रहार॥

१४. नव मल्लई, नव लेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हय-

१५. मान मथ्यो दहि नीं परै, वीरा प्रवर पिछाण।
घात घणां सुभटां तणी, परभव पूगा जाण॥

१५. महिय-पवरवीर-घाइय-

१६. ध्वजा पताका जेहनां, पाड़्या लूंट्या तास।
प्राणे पड़ी अति आपदा, गया दिशो दिशि न्हास॥

१६. विवडियचिंध-द्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था। (श० ७।१८७)

१७. जीत्यो कोणिक राजवी, हार्‌या अठारै राय।
दिशो दिशि न्हासी गया, कारी न लागी काय॥

१८. हार हाथी नैं कारणैं, बहु जन नो घमसाण।
कोणिक निज नाना तणी, कांय न राखी काण॥

१९. चेड़े एकीके शर हण्या, कालादि दश कुमार।
निरावलिया[1] मांहे कह्यो, तेहनो बहु विस्तार॥

१९. तए णं से चेडए राया..........कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ। (निरया० १।१।१४०)

२०. हार हाथी तो ज्यांही रह्या, हाडे पड़ियो वैर।
कोणिक नृप तिण अवसरे, इंद्र बोलाया खैर॥

२१. महाशिलाकंटक कियो, पहिलो जे युद्ध ताय।
लाख चोरासी मनुष्य मुआ, जीत्यो कोणिक राय॥

२२. रथमूसल ए दूसरो, दूजा युद्ध रै मांय।
जीतो कोणिक राजियो, हार्‌या अठारै राय॥

---

१. सू० १।२-१०।१४७,१४८



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो, रथमूसल संग्राम ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! गुणनिष्पन्न है नाम ।।
२४. रथमूसल संग्राम में, वर्त्तमान सुवदीत।
इक रथ अश्व रहीत पिण, सारथि सुभट रहीत।
२५. समुसल ते मूसल सहित, मोटो जन क्षय नाश ।।
वध करै बहु जन तणो, मर्दन चूरण तास।

२६. लोक तणो संहार अतिहि, कर्दम रुधिर करेह।
सर्व थकी चिहुं दिशि विषे, दोड़ंतो रथ जेह ।।

२७. तिण अर्थे करि गोयमा, म्है इम आख्यो ताम।
रथमूसल संग्राम नों, ए गुणनिष्पन्न नाम ।।
२८. रथमूसल संग्राम में प्रभु ! मनुष्य मुआ के लाख ?
जिन कहै छन्नू लख मूंआ, समय वचन वर साख ।।

२९. व्रत रहित जे मानवो प्रभु ! जाव काल करि ताय।
किहां गया किहां ऊपनां ? हिव भाखै जिनराय ।।
३०. इक मछली री कुख में, दस हजार नर देख।
ऊपजिया कर्मां वसै, अशुभ जोग सूं पेख ।।
३१. इक देवलोके ऊपनो, सुकुल मनुष्य भव एक।
शेष नरक तिर्यंच में, बहुलपणैं सुविशेख ।।

३२. हे भगवंत ! किण कारणैं, शक्र सुरिंद्र सुरराय।
चमर असुर-इंद बेहुं थया, कोणिक नृपति सहाय ।।

३३. जिन कहै शक्र सुरिंद्र सुरनृप, कोणिक जीव नो जोय।
मित्र हुंतो भव पाछिले, कार्त्तिक भव अवलोय ।।

३४. चमर असुर-इंद असुर-राजा पूरण तापस जीव।
कोणिक नों पर्यायमित्रि, तापसपणां नों अतीव ।।

३५. इम निश्चै करि गोयमा ! शक्र चमर बिहुं इंद।
स्हाज दियो कोणिक भणी, ए मोह राग कथिंद ।।
३६. देश अंक गुण्यासी तणो, इकसौ पचीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' संपति न्हाल ।।

२३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—रहमुसले संगामे ?
गोयमा !
२४. रहमुसले णं संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए, असारहिए, अणारोहए,
२५. समुसले महया जणक्खयं, जणवहं, जणप्पमद्दं,
'महताजणक्खयं' ति महाजनविनाशं……'जणपमद्दं' ति लोकचूर्णनम् । (वृ० प० ३२२)
२६. जणसंवट्टकप्पं रुहिरकद्दमं करेमाणे सव्वओ समंता परिधाविरथा ।
जनसंवर्त्त इव लोकसंहार इव । (वृ० प० ३२२)
२७. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—रहमुसले संगामे । (श० ७।१८८)
२८. रहमुसले णं भंते ! संगामे वट्टमाणे कति जणसय-साहस्सिओ वहियाओ ?
गोयमा ! छण्णउतिं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ।
(श० ७।१८९)
२९. ते णं भंते ! मणुया निस्सीला……कालं किच्चा कहिं गया ? कहिं उववन्ना ?
३०. गोयमा ! तत्थ णं दससाहस्सीओ एगाए मच्छियाए कुच्छिसि उववन्नाओ ।
३१. एगे देवलोगेसु उववन्ने । एगे सुकुले पच्चायाए । अवसेसा उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना ।
(श० ७।१९०)
३२. कम्हा णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलइत्था ?
३३. गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया पुव्वसंगतिए,
"पुव्वसंगइए" त्ति कार्त्तिकश्रेष्ठ्यवस्थायां शक्रस्य कूणिकजीवो मित्रमभवत् । (वृ० प० ३२२)
३४. चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया परियायसंगतिए ।
'परियायसंगइए' त्ति पूरणतापसावस्थायां चमरस्यासौ तापसपर्यायवर्त्ती मित्रमासीदिति । (वृ० प० ३२२)
३५. एवं खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलइत्था । (श० ७।१९१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १२६

### दूहा

१. हे भदंत ! भव अंत प्रभु ! बहु जन मांहोमांहि।
इम कहै यावत इह विधे, करै परूपणा ताहि ॥

१. बहुजणे णं भंते ! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—

२. इम निश्चै करि बहु मनुष्य, लघु मोटा संग्राम।
तेह विषे सम्मुख थई, जूझे सूरा ताम ॥

२. एवं खलु बहवे मणुस्सा अण्णयरेसु उच्चावएसु संगामेसु अभिमुहा चेव

३. शस्त्रे तेह हण्या छता, काल मास करि काल।
अन्य एक देवलोक में, उपजै तेह विशाल ॥

३. पहया समाणा कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति।
(श० ७।१९२)

४. ते किम ए भगवंत ! इम ? जिन कहै मांहोमांय।
बहु जन भाखै बात ए, ते मिथ्या कहिवाय ॥

४. से कहमेयं भंते ! एवं ?
गोयमा ! जण्णं से बहुजणे अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव····
जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु।

५. हूं पिण गोतम ! इम कहूं, जाव परूपूं एम।
इम निश्चै करि गोयमा ! सांभलजे धर प्रेम ॥

५. अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—
एवं खलु गोयमा !

*जिन भाखै सुण गोयमा ! सुगणा। (ध्रुपदं)

६. तिण कालें नें तिण समैं सुगणा, गोयमजी ! हो नगरी विशाला नाम।
हुंती अति रलियामणी सुगणा, गोयम जी ! हो तसु वर्णक बहु ताम ॥

६. तेणं कालेणं तेणं समएणं वेसाली नामं नगरी होत्था—वण्णओ।

७. तिण विशाला नगरी विषे, वरुण इसो तसु नाम।
नाग तणो ए पोतरो, तेह वसै तिण ठाम ॥

७. तत्थ णं वेसालीए नगरीए वरुणे नामं नागनत्तुए परिवसइ—

८. ते वरुण बड़ो ऋद्धिवंत छै, जावत अपरिभूत।
धन करि गंज सकै नहीं, श्रावक छै शुभ सूत ॥

८. अड्ढे जाव अपरिभूए समणोवासए,

९. जीव अजीव नें जाणिया, जाव श्रमण निर्ग्रंथ।
असणादिक प्रतिलाभतो, श्रावक व्रत पालंत ॥

९. अभिगयजीवाजीवे जाव समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण····पडिलाभेमाणे।

१०. बेले बेले पारणो, अंतर-रहित इक धार।
तप करि आतम भावतो, विचरै छै तिणवार ॥

१०. छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरति। (श० ७।१९३)

११. वरुण नागनत्तुओ तदा, एकदा ते किणवार।
राजा नीं आज्ञा करी, रायाभिओगेण धार ॥

११. तए णं से वरुणे नागनत्तुए अण्णया कयाइ रायाभिओगेणं,

१२. गण समुदाय ते न्यात नी, आज्ञा करी तिणवार।
बलवंत नें जोगे करी, युद्ध भणी हुओ त्यार।

१२. गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं

१३. रथमूसल संग्राम में, नृप नी आज्ञा पाय।
तिण अवसर छठ भक्त नों, अट्ठम दीधो ठाय ॥

१३. रहमुसले संगामे आणत्ते समाणे छट्ठभत्तिए अट्ठमभत्तं अणुवट्टेति,

---

*लय : तपसी में गुण अति घणां



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. आदेशकारी पुरुष नैं, बोलावी कहै वाय।
शीघ्र तुम्हे देवानुप्रिया ! जेज करो मति काय।।
१५. रथ चउघंट सहीत नैं, अश्व जोतरी जाण।
रथ सामग्री संकलन करी, सज करिनैं तुम आण।।

**सोरठा**

१६. जाव शब्द अवदात, पाठ तिके वाचनांतरे।
दीसै छै साख्यात, वृत्तिकार इहविध कही।।

१७. *हय गय रथ यावत सझी, आज्ञा म्हारी एह।
पाछी सूंपो आणनैं, कारज सर्व करेह।।
१८. कोटुंबिक तिण अवसरे, वरुण तणो तिणवार।
जाव विनय कर जोड़नै, वचन कियो अंगीकार।।
१९. शीघ्र करे सझै रथ भणी, छत्र ध्वजा करि सहीत।
जावत स्थापै आणनैं, प्रवर रथ सुप्रतीत।।

२०. †इहां जाव शब्दे पाठ छै ए, घंट सहित बखाणियै।
पताका मोटी ध्वजा, तिण सहित रथ पहिछाणियै।।
२१. वलि प्रवर तोरण तिण करी, जे सहित रथ शोभावियै।
रव नंदिघोष सहीत द्वादश, तूर्यध्वनि जन चावियै।।

२२. लघु घंटिका तेणे करी, जे सहित ही सुंदर कियो।
वर हेमजाले करी रथ पर्यंत चिहुं दिशि वींटियो।।

*लय : तपसी में गुण अति घणां

†लय : पूज मोटा भांजै टोटा

१४. कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !

१५. चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठावेह,
'जुत्तामेव' त्ति युक्तमेव रथसामग्र्येति।
(वृ० प० ३२२)

१७. हय-गय-रह-पवर जाव [सं० पा०] सण्णाहेत्ता मम
एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। (श० ७।१९४)
१८. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता।

१९. खिप्पामेव सच्छत्तं सज्झयं जाव चाउग्घंटं आसरहं
जुत्तामेव उवट्ठावेंति,

२०. यावत्करणादिदं दृश्यं—सघंटं सपडागं
(वृ० प० ३२२)
२१. सतोरणवरं सणंदिघोसं (वृ० प० ३२२)
भंभा मउगमद्दलकडंब रुत्थिरि हुडुक्कु कंसालो।
"काहलतिलिमावंसो संखो पणवो य बारसमो"[1]।

२२. 'सखिंखिणीहेमजालपेरंतपरिक्खित्तं' सकिङ्किणी-
केन—क्षुद्रघण्टिकायुक्तेन हेमजालेन पर्यन्तेषु
परिक्षिप्तो यः सः। (वृ० प० ३२२)

१. जयाचार्य ने प्रस्तुत ढाल की २१वीं गाथा में बारह प्रकार की वाद्य ध्वनि का संकेत देकर नीचे एक गाथा उद्धृत की है। किन्तु वह किस ग्रन्थ से ली गई है, इस सम्बन्ध में कोई निर्देश नहीं किया। भगवती के इस शतक की वृत्ति में उसका कोई उल्लेख नहीं है। नौवें शतक की टीका पत्र ४७६ में कुछ वाद्यों का उल्लेख है, पर उनका इस गाथा के साथ पूरा मेल नहीं होता है। बृहत्कल्पभाष्य की वृत्ति में बारह प्रकार के वाद्यों का उल्लेख है। किन्तु जयाचार्य द्वारा उल्लिखित गाथा में और उस गाथा में थोड़ा अन्तर है। इसलिए हमने मूल गाथा को 'जोड़' की गाथा के सामने उद्धृत किया है। बृहत्कल्प-वृत्ति में प्राप्त गाथा इस प्रकार है—
भंभा मुकुंदमद्दल, कडंबझल्लरिहुडुक्ककंसाला।
काहलतलिमावंसो, पणवो संखो य बारसमो।।
(सनिर्युक्तिभाष्यवृत्तिके बृहत्कल्पसूत्रे पृ० १२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. गिरि हेमवत नां नीपनां, जे चित्र विविध प्रकार नां।
कठ तिनिश नामैं तरु तणां ते, कनक खंचित रथ तनां।।

२४. अति भला छै जे चक्र जेहनैं, मंडला वृत वाटला।
धुरा पिण रमणीक अति, शोभायमानज झिलमिला।।
२५. अय जेह कालायस विशेषज, तिण करी कीधूं भलूं।
नेमी तिका जे चक्र नुं वर, भाग ऊपरलूं झिलूं।।
२६. तिण अय करी जे चक्र धारा, बांधवा नीं वर क्रिया।
रथ चक्र नुं जे अग्र भागज, नेमि ते दृढ़ता लियां।।
२७. वलि जातिवंतज वर तुरंगम, जोतर्या ते रथ तणैं।
नर चतुर अवसर जाण सारथि, संग्रह्या संयतपणैं।।

२८. शर घालवा नां भातड़ा, बत्तीस करि मंडित वही।
इक एक भातड़ विषे, सौ सौ बाण छै अति प्रवर ही।।
२९. कवचे करीनैं वली जेह, वतंस शेखर सहित ही।
शिरत्राण शिररक्षा सुकारक, तिण करीनैं युक्त ही।।
३०. फुन धनुष शर करिके सहित, हथियार खड्गादिक घणां।
ढालादि करि संभृत सुसज्जित सुभट-रथ रलियामणां।।
३१. चिहुं-घंट हय रथ जोतरो, ए जाव शब्द विषे कृता।
वलि वाचनांतर में सकल साख्यात पाठज दीसता।।

३२ *हय गय रथ जावत सझी, सेवक पुरुष सुजाण।
वरुण नागनतुओ जिहां, जाव आज्ञा सूंपै आण।।

३३. वरुण नागणतुओ तदा, मज्जणघर में आय।।
स्नान कियो कोणिक नीं परै, जाव प्रायश्चित ताय।

३४. सर्व अलंकारे करी, कियो विभूषित अंग।
सन्नद्ध वद्ध थयो तदा, बगतर टोप सुचंग।।
३५. कोरंट नामा वृक्ष नां, फूलां री माल सहीत।
एहवैं छत्र धरीजते, पेखत पामैं प्रीत।।
३६. बहु गणपति सामंत ते, जाव दूत संधिपाल।
तेह संघाते परिवर्यो, शोभित वरुण विशाल।।
३७. मज्जणघर सूं नीकल्यो, जिहां बाहिरली पेख।
उवट्ठाणशाला ओपती, दीवानखानो ए देख।।

*लय : तपसी में गुण अति घणां

२३. 'हेमवयचित्ततेणिसकणगनिउत्तदारुयागं' हैमवतानि—हिमवद्गिरिजातानि चित्राणि—विचित्राणि तैनिशानि—तिनिशाभिधानवृक्षसम्बन्धीनि स हिमवतीति तद्ग्रहणं कनकनियुक्तानि—नियुक्तकनकानि दारूणि यत्र सः। (वृ० प० ३२२)

२४. संविद्धचक्कमंडलधुरागं' सुष्ठु संविद्धे चक्रे यत्र मंडला च—वृत्ता धूर्यत्र सः। (वृ० प० ३२२)

२५,२६. 'कालायससुकयनेमिजंतकम्मं' कालायसेन—लोहविशेषेण सुष्ठु कृतं नेमेः—चक्रमण्डलमालाया यन्त्रकर्म—बन्धनक्रिया यत्र सः। (वृ० प० ३२२)

२७. 'आइन्नवरतुरयसुसंपउत्तं' जात्यप्रधानाश्वैः सुष्ठु संप्रयुक्तमित्यर्थः, 'कुशलनरच्छेयसारहिसुसंपग्गहियं।' (वृ० प० ३२२)

२८. 'सरसयवत्तीसयतोणपरिमंडियं।' (वृ० प० ३२२)

२९. 'सकंकडवडेंसगं' सह कङ्कटैः—कवचैरवतंसैश्च—शेखरकैः शिरस्त्राणभूतैर्यः सः। (वृ० प० ३२२)

३०. 'सचावसरपहरणावरणभरियजोहजुद्धसज्जं' (वृ० प० ३२२)

३१. 'चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव' त्ति वाचनान्तरे तु साक्षादेवेदं दृश्यते। (वृ० प० ३२२)

३२. हय-गय-रह जाव सण्णाहेंति, [सं० पा०] सण्णाहेत्ता जेणेव वरुणे नागनत्तुए....जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति। (श० ७।१९५)

३३. तए णं से वरुणे नागनत्तुए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति, जहा कूणिओ जाव (सं० पा०) पायच्छित्ते।

३४. सव्वालंकारविभूसिए सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवए

३५. सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं,

३६. अणेगगणनायग जाव (सं० पा०) दूय-संधिपालसद्धिं संपरिवुडे

३७. मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. चउ-घंट रथ छै जिहां, तिहां आवी नैं तिवार।
चउ-घंट हय रथ ऊपरै, चढियो हर्ष अपार॥

३९. हय गय रथ जाव परिवर्यो, मोटा सुभट विख्यात।
भाट प्रमुख जाव वींटियो, युद्ध करण नैं जात॥

४०. जिहां रथमूसल संग्राम छै, आयो तिहां चलाय।
अभिग्रह धार्यो एहवो, सांभलज्यो चित ल्याय॥

४१. रथमूसल संग्राम जे, करतां थकांज मोय।
प्रथम हणैं जे पुरुष नैं, हणवो कल्पै सोय।

४२. अन्य पुरुष नै मारिवा, मुझ नहिं कल्पै ताम।
एहवो अभिग्रह आदरी, करै रथमूसल संग्राम।

४३. वरुण संग्राम करतां छतां, इक नर आप सरीस।
त्वचा करी पिण सारिखो, सरिखो वय करि दीस॥

४४. भंड मत्त उपकरण सारिखा, भंड मत्त—शस्त्र कोशादि।
उपकरण कंकट[1] आदि दे, तेह सरीखा लाधि॥

४५. ते नर रथ करि वरुण नों, रथ प्रति साहमो तेह।
आयो शीघ्र उतावलो, वरुण नैं एम वदेह।

४६. अहो वरुण! नागणत्तुया! मुझ हण शस्त्रे मार।
इण विध ते नर वरुण नैं, बोल्यो दूजी वार॥

४७. वरुण नागणत्तुओ तदा, ते नर प्रति कहै एम।
सांभल हे देवानुप्रिया! म्हैं धार्यो छै नेम॥

४८. पहिला मोनैं नहिं हणैं, तेहनैं हणवो सोय।
मुझनैं तो कल्पै नहीं, पहिलां हण तूं मोय।

४९. तिण अवसर ते पुरुष ही, वरुण नागनत्तुयेह।
एम कह्यं आसुरुत्त ही, जाव मिसिमिसेमाणेह॥

**सोरठा**

५०. आसुरुत्ते जाण, शीघ्र कोप नां उदय थी।
थयो विमूढ अयाण, स्फुरित कोप चिह्नोऽथवा॥

५१. जाव शब्द में एह, रुट्ठे कुविए चंडिक्किए।
रुट्ठे रुष्ट कहेह, उदय थयो छै क्रोध तसुं॥

---

३८. जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ।

३९. हय-गय-रह जाव (सं० पा०) संपरिवुडे, महयाभडचडगरविंदपरिक्खित्ते

४०. जेणेव रहमुसले संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसलं संगामं ओयाए। (श० ७।१९६)
तए णं से वरुणे नागनत्तुए रहमुसलं संगामं ओयाए समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ—

४१. कप्पति मे रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स जे पुव्विं पहणइ से पडिहणित्तए,

४२. अवसेसे नो कप्पतीति; अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ, अभिगेण्हेत्ता रहमुसलं संगामं संगामेति।
(श० ७।१९७)

४३. तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स एगे पुरिसे सरिसए सरित्तए सरिव्वए

४४. सरिसभंडमत्तोवगरणे
सदृशी भाण्डमात्रा—प्रहरणकोशादिरूपा उपकरणं च—कङ्कटादिकं यस्य सः। (वृ० प० ३२२)

४५. रहेणं पडिरहं हव्वमागए। (श० ७।१९८)
तए णं से पुरिसे वरुणं नागनत्तुयं एवं वदासी—

४६. पहण भो वरुणा! नागनत्तुया! पहण भो वरुणा! नागनत्तुया! (श० ७।१९९)

४७,४८. तए णं से वरुणे नागनत्तुए तं पुरिसं एवं वदासी—
नो खलु मे कप्पइ देवाणुप्पिया! पुव्विं अहयस्स पहणित्तए, तुमं चेव णं पुव्विं पहणाहि।
(श० ७।२००)

४९. तए णं से पुरिसे वरुणेणं नागनत्तुएणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे (सं० पा०)।

५०. 'आसुरुत्ते' त्ति आशु—शीघ्रं रुप्तः—कोपोदयाद् विमूढः,
स्फुरितकोपलिङ्गो वा। (वृ० प० ३२२)

५१. यावत्करणादिदं दृश्यं 'रुट्ठे कुविए चंडिक्किए' त्ति तत्र 'रुष्टः' उदितक्रोधः। (वृ० प० ३२२)

---

१. कवच



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. कुविए कुपित अत्यंत, बढतो क्रोधोदय तसु ।
चंडिक्किय फुन मंत, रोद्र रूप है प्रगट ही ।।

५३. वली मिसिमिसेमाण, क्रोध रूप अग्नी करी ।
दीप्यमान जिम जाण, रक्त वर्ण मुख जेहनुं ।।

५४. वलि ए शब्दज पंच, कह्या इहां एकार्थिका ।
अतिहि कोप विरंच, ते प्रतिपादन अर्थ ही ।।

५५. *धनुष ग्रहै निज हाथ में, धनुष्य लेई ताम ।
उसु बाण प्रते ग्रहै, बाण ग्रही नें आम ।।

५६. 'ठाणं ठाइ' नुं अर्थ ए, ठाणं पदन्यास विशेख ।
ठाइ कहितां करै तिहां, पदन्यास करीनें देख ।।

५७. आयत सामान्य थी ताणियो, तेहिज कर्ण लग ताण ।
एहवो बाण करी तदा, एम करीनै जाण ।।

५८. वरुण नागणत्तुया प्रतै, कीधो गाढ प्रहार ।
शस्त्र घात कीधे छतै, आसुरुत्ते धार ।।

**यतनी**

५९. जाव मिसिमिसेमान, ग्रहै धनुष्य प्रति जान ।
वलि लीधो है हाथ में बाण, कर्ण लगै बाण नें ताण ।।

६०. तेह पुरुष प्रतै तिणवार, गाढो दीधो एक प्रहार ।
तिण सूं विलंब रहित जिवार, जीव काया होय गया न्यार ।।

६१. जिम परवत नों कूट जाण, तिको पड़तो थको पहिछाण ।
काल विलंब करै नहिं जेह, तिम विलंब रहित मार्‍यो तेह ।।

६२. *वरुण नागणत्तुओ तदा, लागां गाढ प्रहार ।
अत्थामे शक्ति-रहित थयो, सामान्य थी सुविचार ।।

६३. बल रहित ते शरीर नीं, शक्ति रहित थयो ताम ।
वीर्य रहित ते मन तणी, शक्ति घटी तिण ठाम ।।

६४. पुरुषकार ते रह्यो नहि, पौरुष पुरुषाभिमान ।
कार्य निष्पन्नकारी तिको, पराक्रम घट्यो जान ।।

---

* लय : तपसी में गुण अति घणां

५२. 'कुपितः' प्रवृद्धकोपोदयः 'चाण्डिकितः' सञ्जातचाण्डिक्यः प्रकटितरौद्ररूप इत्यर्थः ।
(वृ० प० ३२२)

५३. 'मिसिमिसीमाणे' त्ति क्रोधाग्निना दीप्यमान इव ।
(वृ० प० ३२२)

५४. एकार्थिका वैते शब्दाः कोपप्रकर्षप्रतिपादनार्थमुक्ताः ।
(वृ० प० ३२२,३२३)

५५. धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता

५६. ठाणं ठाति
'ठाणं' ति पादन्यासविशेषलक्षणं 'ठाति' त्ति करोति ।
(वृ० प० ३२३)

५७. आययकण्णाययं उसुं करेइ, करेत्ता
'आयय…' ति आयतः आकृष्टः सामान्येन स एव कर्णायतः—आकर्णमाकृष्ट आयतकर्णायतस्तम्,
(वृ० प० ३२३)

५८. वरुणं नागनत्तुयं गाढप्पहारी करेइ । (श० ७।२०१)
तए णं से वरुणे नागनत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे आसुरुत्ते

५९. जाव मिसिमिसेमाणे (सं० पा०) धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ, करेत्ता

६०. तं पुरिसं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ ।
(श० ७।२०२)

६१. कूटे इव तथाविधपाषाणसंपुटादौ कालविलम्बाभावसाधर्म्यादाहत्या—आहननं यत्र तत् कूटाहत्यम् ।
(वृ० प० ३२३)

६२. तए णं से वरुणे नागनत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे
'अस्थामा' सामान्यतः शक्ति-विकलः ।
(वृ० प० ३२३)

६३. अबले अवीरिए
'अबले' त्ति शरीरशक्तिवर्जितः 'अवीरिए' त्ति मानसशक्तिवर्जितः । (वृ० प० ३२३)

६४. अपुरिसक्कारपरक्कमे
पुरुषक्रिया पुरुषकारः—पुरुषाभिमानः स एव निष्पादितस्वप्रयोजनः पराक्रमः । (वृ० प० ३२३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. निज आतम नैं धारिवा, समर्थ पिण नहिं कोय ।
एहवो विचार तुरंग नैं, चालता नैं ग्रहै सोय ।।
६६. युद्ध थकी ते रथ प्रतै, ततखिण पाछो वाल ।
रथमूसल संग्राम थी, नीकलियो तिण काल ।।
६७. एकांत मनुष्य-रहित जे, अंत कहितां भूमिभाग ।
तिहां जईनैं हय प्रतै, चालता नीं ग्रहै वाग ।।
६८. रथ थापी हेठो ऊतरी, मूकै ताम तुरंग ।
सीख दीधी घोड़ा भणी, अधिक वेराग उमंग ।।
६९. दर्भ-संथारो संथरी, ऊपर बैठो आप ।
पूरव साहमो मुख करी, पल्यंक आसन स्थाप ।।
७०. कर तल जावत इम करी, तिहां बोलै इह विध वाय ।
नमोत्थुणं कियो सिद्ध नैं, धुर अरिहंत गुण पाय ।।

७१. नमस्कार थावो मांहरो, भगवंत श्री महावीर ।
धर्म नीं आदि करण धुरा, शासणनाथ सधीर ।।
७२. यावत मुक्ति जावा तणां, वांछक तसु अभिलाख ।
धर्म-आचारज मांहरा धर्मोपदेशक साख ।।
७३. समवसरण नैं विषे रह्या, भगवंत श्री महावीर ।
ते प्रति हूं वांदूं अछूं, इहां रह्योज सधीर ।।
७४. देख रह्या मुझनैं प्रभु, तिहां रह्या थका स्वाम ।
यावत वांदै इम कही, नमस्कार शिर नाम ।।
७५. नमस्कार वंदणा करी, बोलै इह विध संच ।
पहिलां म्है वीर प्रभु कन्है, अणुव्रत धार्या पंच ।।

७६. हिवड़ां पिण महावीर पे, सर्वथा प्राणातिपात ।
जावजीव पचखाण छै, खंधक जिम आख्यात ।।

७७. यावत एह शरीर नैं, छेहलै उस्सास-निसास ।
वोसिरावस्यूं इम कही, मूकै सन्नाहपट्ट तास ।।

७८. द्रव्य भाव सल्ल उद्धरी, आलोई पडिकमी न्हाल ।
पवर समाधिज पामियो, अनुक्रम कीधो काल ।।
७९. तिण अवसर ते वरुण नों, वल्लभ इक अभिराम ।
बाल-मित्र पिण जूझतो, रथमूसल संग्राम ।।
८०. एक पुरुष वरुण-मित्र नैं, दीधो गाढ प्रहार ।
जावत आतम धारिवा, समर्थ नहीं तिवार ।।

६५. अधारणिज्जमिति कट्टु तुरए निगिण्हइ,

६६. रहं परावत्तेइ, परावत्तेत्ता रहमुसलाओ संगामाओ पडिनिक्खमति ।

६७. एगंतमंतं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता तुरए निगिण्हइ ।

६८. रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तुरए मोएइ, मोएत्ता तुरए विसज्जेइ ।

६९. दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे

७०. करयल जाव कट्टु (सं० पा०) एवं वयासी—नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगति-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं,

७१. नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदि-गरस्स

७२. जाव सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स,

७३. वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए,

७४. पासउ मे से भगवं तत्थगए इहगयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ,

७५. वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—पुव्विं पि णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइ-वाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, एवं जाव थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए

७६. इयाणिं पि णं अहं तस्सेव भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए एवं जहा खंदओ

७७. जाव (सं० पा०) एयं पि णं चरिमेहिं ऊसास-नीसासेहिं वोसिरिस्सामि त्ति कट्टु सण्णाहपट्टं मुयइ,

७८. सल्लुद्धरणं करेइ, करेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समा-हिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए । (श० ७।२०३)

७९. तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स एगे पियबाल-वयंसए रहमुसलं संगामं संगामेमाणे

८०. एगेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे जाव (सं० पा०) अधारणिज्जमिति कट्टु



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. वरुण भणी संग्राम थी, पाछो निकलतो देख ।
वरुण तणी पर अश्व नें, सीख दीधी सुविशेख ।।

८२. वरुण कियो दर्भ-सांथरो, तेहवो इण पिण कीध ।
ते ऊपर बेसी करी, पूरब साहमो प्रसीध ।।

८३. यावत बे कर जोड़नैं, बोलै एहवी वाय ।
मुझ वल्लभ बाल-मित्र नैं, वरुण तणें जे ताय ।।

८४. शीलव्रत गुणव्रत जे, सामायक पचखाण ।
पोसह उपवास छै तिके, ते म्हारैं पिण जाण ।।

८५. इम कहि सन्नाहपट्ट नैं, मूकै छोड़ै न्हाल ।
सल्य बाणादिक काढनैं, अनुक्रम कीधो काल ।।

८६. काल गयो जाणी वरुण नैं, व्यंतर देव नजीक ।
जेह हुंता ते तिण समैं, महिमा कीधी सधीक ।।

८७. वृष्टि सुगंध उदक तणी, पंच वर्ण पहिछाण ।
फूल तणी वर्षा करी, ऊजम अधिको आण ।।

८८. वलि ते देव संबंधिया, गीत गायन मात्र संवाद ।
गंधर्व ते मादल तणी, ध्वनि सहित करै निनाद ।।

८९. तिण अवसर ते वरुण नैं, प्रधान देव नी ऋद्धि ।
दिव्य देव नीं कांति नैं, सुर अनुभाग समृद्धि ।।

९०. सुर कृत महिमा नैं कही, सुर अनुभाग प्रधान ।
ते निसुणी देखी वदै, लोक मांहोमांहि वान ।।

९१. इम निश्चै देवानुप्रिया ! नर बहु जूंझे ताम ।
ते सुरलोके ऊपजे, देव हुवै अभिराम ।।

९२. वरुण प्रभुजी ! किहां गयो ? काल मास करि काल ।
जिन कहै सुधर्म सुरपणें, ऊपनो ते सुविशाल ।।

९३. अरुणाभ नाम विमान में, केइयक सुर नीं सार ।
च्यार पल्योपम स्थिति कही, वरुण तणी पल्य च्यार ।।

९४. वरुण देव चवनैं किहां उपजस्यै भगवंत !
जिन कहै महाविदेह में, करस्यै सर्व दुख अंत ।।

८१. वरुणं नागनत्तुयं रहमुसलाओ संगामाओ पडिनिक्ख-
ममाणं पासइ, पासित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता
जहा वरुणे जाव तुरए विसज्जेति ।

८२. पडसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे

८३. जाव (सं० पा०) अंजलिं कट्टु एवं वयासी—जाइं णं
भंते ! मम पियबालवयंसस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स

८४. सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पच्चक्खाण-पोसहो-
ववासाइं ताइं णं 'ममं पि' भवंतु ।

८५. इति कट्टु सण्णाहपट्टं मुयइ, मुइत्ता सल्लुद्धरणं करेइ,
करेत्ता आणुपुव्वीए कालगए ।

(श० ७।२०४)

८६,८७. तए णं तं वरुणं नागनत्तुयं कालगयं जाणित्ता
अहासन्निहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं दिव्वे सुरभिगंधो-
दगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए,

८८. दिव्वे य गीय-गंधव्वनिनादे कए यावि होत्था ।

(श० ७।२०५)

गीतं गानमात्रं गन्धर्वं—तदेव मुरजादिध्वनिसनाथं
तल्लक्षणो निनादः—शब्दो गीतगन्धर्वनिनादः ।

(वृ० प० ३२३)

८९,९०. तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स तं दिव्वं
देविड्ढि दिव्वं देवज्जुतिं दिव्वं देवाणुभागं सुणित्ता य
पासित्ता य बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव
परूवेइ—

९१. एवं खलु देवाणुप्पिया ! बहवे मणुस्सा जाव
(सं० पा०) देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति ।

(श० ७।२०६)

९२. वरुणे णं भंते ! नागनत्तुए कालमासे कालं किच्चा
कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?
गोयमा ! सोहम्मे कप्पे....उववन्ने ।

९३. तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं
ठिती पण्णत्ता । तत्थ णं वरुणस्स वि देवस्स चत्तारि
पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता । (श० ७।२०७)

९४. से णं भंते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगाओ ........
चयं चइत्ता .... कहिं उववज्जिहिति ?
गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव
(सं० पा०) अंतं करेहिति । (श० ७।२०८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५. बाल मित्र प्रभु ! वरुण नों, किहां गयो करि काल ?
जिन कहै उत्तम कुल विषे, मनुष्य थयो सुविशाल ।।

९६. ते प्रभु ! तिहां थी नीकली, अंतर-रहित विचार ।
किहां जास्यै किण स्थानके, उपजस्यै जगतार ?

९७. जिन कहै महाविदेह में, सीझस्यै करि चित शंत ।
जाव करस्यै अंत दुख तणो, सेवं भंते ! सेवं भंत ।।

९८. अर्थ अंक गुण्यासी तणो, इकसौ छबीसमी ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

सप्तमशते नवमोद्देशकार्थः ।।७।९।।

९५. वरुणस्स णं भंते ! नागनत्तुयस्स पियबालवयंसए कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?
गोयमा ! सुकुले पच्चायाते । (श० ७।२०९)

९६. से णं भंते ! तओहितो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

९७. गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव अंतं काहिति । (श० ७।२१०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ७।२११)

## ढाल : १२७

### दूहा

१. नवम उदेशक नैं विषे, परमत निरास पेख ।
दशमें पिण तेहिज हिवै, वरणवियै सुविशेख ।।

२. तिण काले नैं तिण समय, नगर राजगृह नाम ।
गुणशिल चैत्यज जाव त्यां, पृथ्वी सिलपट्ट ताम ।।

३. तिण गुणसिल वर चैत्य थी, नहिं अति दूर नजीक ।
वसै बहू अन्यतीर्थिका, हिव तसु नाम कथीक ।।

४. कालोदाई धुर कह्यो, सेलोदाई सोय ।
सेवालोदाई सही, उदक नाम अवलोय ।।

५. नामुदक नमुदक वली, अर्णपाल अन्नयुत्थ ।
सेलपाल संखपाल फुन, गाथापती सुहत्थ ।।

६. *एक दिवस अन्यतीर्थी ताय, सहिय कहितां एकत्र मिलाय ।
समुपागत जूजुवा स्थान थी आय, सन्निविट्ठ कहितां
बैठा छै ताय ।।

७. सन्निषण्ण ते सुखे स्थित जेह, तेह सहू नैं परस्पर एह ।
उपनो कथा तणो आलाप, निसुणो चित एकत्रित स्थाप ।।

१. अनन्तरोद्देशके परमतनिरास उक्तो दशमेऽपि स एवोच्यते— (वृ० प० ३२३)

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था—वण्णओ ।
गुणसिलए चेइए—वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ ।

३. तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्णउत्थिया परिवसंति, तं जहा—

४. कालोदाई, सेलोदाई, सेवालोदाई, उदए,

५. नामुदए, नम्मुदए, अण्णवालए, सेलवालए, संखवालए, सुहत्थीगाहावई । (श० ७।२१२)

६. तए णं तेसिं अण्णउत्थियाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिविट्ठाणं
'समुवागयाणं' ति स्थानान्तरेभ्य एकत्र स्थाने समागतानाम् 'सन्निविट्ठाण त्ति' उपविष्टानाम्, (वृ० प० ३२४)

७. सण्णिसण्णाणं अयमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—
'सन्निसन्नाणं' ति संगततया निषण्णानां सुखासीनानामिति यावत् । (वृ० प० ३२४)

---
* लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. श्रमण ज्ञातसुत इह विध संच, अस्तिकाय परूपै पंच ।
प्रथम कहै धर्मास्तिकाय, जाव आगासत्थिकाय* कहाय ॥

८. एवं खलु समणे नायपुत्ते पंच अत्थिकाए पण्णवेति, तं जहा—धम्मत्थिकायं जाव पोग्गलत्थिकायं ।

**सोरठा**

९. अस्ति तेह प्रदेश, तास राशि जे काय प्रति ।
अस्तिकाय कहेस, शब्द तणूं ए अर्थ है ॥

९. 'अत्थिकाए' त्ति प्रदेशराशीन् । (वृ० प० ३२४)

१०. *ज्ञातपुत्र वली कहै वाय, च्यार अजीव हुवै ते मांय ।
धर्मास्ति अधर्मास्तिकाय, आगासत्थि पुद्गलास्ति ताय ॥

१०. तत्थ णं समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, पोग्गलत्थिकायं ।

**सोरठा**

११. एह अजीव विमास, तेह अचेतन जाणवा ।
काय कही तसु राश, अजीवकाय अहीजियै ॥

११. 'अजीवकाए' त्ति अजीवाश्च—ते अचेतनाः कायाश्च—राशयोऽजीवकायास्तान् ।
(वृ० प० ३२४)

१२. *श्रमण ज्ञातसुत वलि कहै वाय, पांचा में एक जीवास्तिकाय ।
अरूपीकाय परूपै जोग, छै ज्ञानादिक तसु उपयोग ॥

वा०—जीवै ते जीव, ज्ञानादि उपयोगवंत । ते प्रधान काय ते जीवकाय । कोइक जीवास्तिकाय नैं जड़पणैं करी अंगीकार करै । तेहनों मत दूर करवा नैं अर्थे ए जीव नैं ज्ञानादि उपयोगवंत कह्यो ।

१२. एगं च णं समणे नायपुत्ते जीवत्थिकायं अरूविकायं जीवकायं पण्णवेति ।

वा०—जीवनं जीवो—ज्ञानाद्युपयोगस्तत्प्रधानः कायो जीवकायोऽतस्तं, कैश्चिज्जीवास्तिकायो जडतयाऽभ्युपगम्यतेऽतस्तन्मतव्युदासायेदमुक्तमिति ।
(वृ० प० ३२५)

१३. श्रमण ज्ञातसुत वलि कहै वाय, अस्तिकाय पंच रै मांय ।
च्यार अरूपी अस्तिकाय, करै परूपण परिषद मांय ॥

१३. तत्थ णं समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरूविकाए पण्णवेति, तं जहा—

१४. धुर धर्मास्तिकाय पिछाण, अधर्मास्ति दूजी जाण ।
आकाशास्ति जीवास्तिकाय, तास अरूपी आखै वाय ॥

१४. धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं, जीवत्थिकायं ।

१५. ज्ञातपुत्र वलि इम कहै वाय, अस्तिकाय पंच रै मांय ।
पोग्गलत्थिकाय एक अजीव, रूपीकाय परूपै अतीव ॥

१५. एगं च णं समणे नायपुत्ते पोग्गलत्थिकायं रूविकायं अजीवकायं पण्णवेति ।

१६. से अथ किम ए अस्तिकाय, मन्ये वितर्क अर्थे वाय ।
आख्या एह अचेतन आद, विभाग करि किम हुवै संवाद ॥

१६. से कहमेयं मण्णे एवं ? (श० ७।२१३)
अथ कथमेतदस्तिकायवस्तु मन्य इति वितर्कार्थः 'एवम्' अमुना चेतनादिविभागेन भवतीति ।
(प० ३२५)

---

*** लय : इण पुर बल कंकोय न लेसी**

भगवती के सातवें शतक (सू० २१३) में पांच अस्तिकाय का निरूपण है। वहां 'धम्मत्थिकाए जाव पोग्गलत्थिकाए' पाठ है। और उसके पाठांतर में पोग्गलत्थिकाए के स्थान पर छह प्रतियों में आगासत्थिकायं पाठ है। जयाचार्य को प्राप्त प्रति में पाठान्तर वाला पाठ रहा होगा, इसलिए उन्होंने इस गीत की आठवीं गाथा में 'जोड़' की रचना उसी क्रम से की है। इससे आगे उनतीसवीं गाथा में भी जोड़ का यही क्रम है। इन दोनों ही गाथाओं के सामने अंगसुत्ताणि (भाग-२) का पाठ उद्धृत किया गया है। इसलिए आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के क्रम का व्यत्यय है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. तिण काले तिण समय विचार, भगवन श्री महावीर उदार।
जाव पधा॒ा गुणसिल जाण, यावत परिषद गई ठिकाण॥

१७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव गुणसिलए चेइए समोसढे जाव परिसा पडिगया।
(श० ७।२१४)

१८. तिण काले तिण समय विचार, भगवंत वीर तणो गणधार।
अंतेवासी ज्येष्ठ उदार, इन्द्रभूति नामे अणगार॥

१८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे

१९. गोतम गोत्रे बीजो नाम, इम जिम बीजे शतके ताम।
प्रवर निर्ग्रंथ उदेशो पेख, पंचमुदेश विषे गुण देख॥

१९. गोयमे गोत्तेणं एवं जहा बितियसते नियंठुद्देसए[1]
(अंगसु० भाग २ पृ० ३१० पा० टि० २)

२०. जाव भिक्षाचरी अटन करंता, भातपाणी संपूर्ण लहंता।
राजगृह नगर थकी नीकलिया, जाव उतावल रहित संचरिया॥

२०. जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्त-पाणं पडिग्गाहित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमइ, अतुरियं

२१. मन नां चपलपणां थी रहीतं, असंभ्रांत जावत सुध रीतं।
ईर्या शोधनकर्ता आप, स्थिर चित तन मन जयणा स्थाप॥

२१. अचवलमसंभंतं जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे सोहेमाणे

२२. अन्यतीर्थी बैठा छै तेह, नहिं अति दूर नजीक न जेह।
गोतम गमन करंता देख, आपस में बतलावै विशेख॥

२२. तेसिं अण्णउत्थियाणं अदूरसामंतेणं वीईवयति।
(श० ७।२१५)

तए णं ते अण्णउत्थिया भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासंति, पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

२३. अहो देवानुप्रिया ! अम्है एह, अस्तिकाय नी कथा सुजेह।
अनुकूल भावे कीधी तेह, प्रगट नहीं छै विशेषपणेह॥

२३. एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमा कहा अविप्पकडा
इयं कथा—एषाऽस्तिकायवक्तव्यताऽस्यानुकूल्येन प्रकृता—प्रक्रान्ता, अथवा न विशेषेण प्रकटा अविप्रकटा। (वृ० प० ३२५)

२४. ए अर्थ अविप्पकडा नां दोय, अविउप्पकडा पाठांतर होय।
कथा विशेष अजाणपणेह, आपे पूर्वे कीधी एह॥

२४. 'अविउप्पकड' त्ति पाठान्तरं तत्र अविद्वत्प्रकृता:
(वृ० प० ३२५)

२५. अथवा विशेष थकी पहिछाण, प्रबलपणैं करिनैं वलि जाण।
एह अर्थ नहिं प्रगट सुजोय, पाठांतर नां अर्थ ए दोय॥

२५. अथवा न विशेषत उत्—प्राबल्यतश्च प्रकटा अव्युत्प्रकटा। (वृ० प० ३२५)

२६. आपां सूं दूर नजीक न जेह, गोतम गमन करै छै एह।
श्रेय देवानुप्रिया ! ए अम्हनैं, पूछवूं एह अर्थ गोयम नैं॥

२६. अयं च णं गोयमे अम्हं अदूरसामंतेणं वीईवयइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं गोयमं एयमट्ठं पुच्छित्तए—

२७. आपस में इम कही तिवार, कीधो एह अर्थ अंगीकार।
गोतम भगवंत पासे आय, गोतम प्रति बोल्या इम वाय॥

२७. इति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—

२८. इम निश्चै गोतम ! अवलोय, थारा धर्माचारज जोय।
धर्म तणां उपदेशक ताय, श्रमण ज्ञातसुत इम कहिवाय॥

२८. एवं खलु गोयमा ! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे नायपुत्ते

२९. अस्तिकाय परूपै पंच, धुर धर्मास्तिकाय विरंच।
जाव आगासत्थिकाय तं चेव, यावत रूपी काय कहेव॥

२९. पंच अत्थिकाए पण्णवेति, तं जहा—धम्मत्थिकायं जाव पोग्गलत्थिकायं। तं चेव जाव रूविकायं अजीवकायं पण्णवेति।

---

१. यहां श० २।१०६ का उल्लेख किया गया है। अंगसुत्ताणि भाग २ में इस संदर्भ का पाठ अधूरा है। वहां शतक १।९ की भोलावण दी गई है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. हे गोतम ! ते किम छै एह ? तब बोल्या गोतम गुणगेह ।
अहो देवानुप्रिया ! सुण वाणी, इम निश्चै करि नैं पहिछाणी ।।
३१. छता भाव प्रतै म्है जोय, अछता भाव कहां नहि कोय ।
अछता भाव प्रतै पहिछाण, छता भाव नहि भाखां जाण ।।
३२. अहो देवानुप्रिया ! सुविमास, सगला छता भाव छै तास ।
छता भावपणै म्है भाखां, अछता भाव नै अछता आखां ।।
३३. अहो देवानुप्रिया ! तुम्ह जाणो, चेयसा—मन कर एह पिछाणो ।
तेह अर्थ स्वयमेव विचारो, तुम्हैज एह अर्थ अवधारो ।।

**सोरठा**

३४. पाठांतरे कहेह, वेअसा—ज्ञान प्रमाण कर ।
अबाधित लक्षणेह, स्वयं विचारो ए तुमे ।।
३५. *इम कही गोतम चाल्या धीर, आव्या गुणशिल जिहां छै वीर ।
जिम निर्ग्रंथ उदेशे पिछाणी, जाव दिखाड़े भात नैं पाणी ।।
३६. वीर प्रतै वांदे नमस्कार, नहिं अति दूर नजीक तिवार ।
जाव करै पर्युपासना सेव, अलगो करि नैं निज अहमेव ।।
३७. तिण काले तिण समय विचार, भगवंत श्री महावीर तिवार ।
महाकथा महाजन नैं ताम, देशना देई प्रवर्त्या स्वाम ।।
३८. तिण अवसर ते कालोदाई, तेह भूमिका देश कहाई ।
शीघ्रपणै आव्यो छै ताम, बतलावै तसु त्रिभुवन-स्वाम ।।
३९. अहो कालोदाई ! इम बोलै, वीर प्रभू वच अमृत तोलै ।
इम निश्चै हे कालोदाई ! मिलिया तुम्हे एकदा आई ।।
४०. अन्य स्थानक थी बैठा इक स्थान, तिमहिज पूरव बात पिछान ।
यावत किम ए बात मनाय, इम ते बोल्या मांहोमांय ।।
४१. इम निश्चै हे कालोदाई ! एह अर्थ समर्थ छै ताहि ?
हंता अत्थि बोलै जाची, वीर प्रभू कहै सगली साची ।।
४२. हे कालोदाई ! शुभ संच, अस्तिकाय परूपूं पंच ।
धर्मास्तिकाय कहूं धुर ताय, यावत पुद्गल अस्तिकाय ।।
४३. अस्तिकाय तिहां हूं च्यार, अजीवकाय परूपूं धार ।
यावत पुद्गलास्तिकाय, रूपीकाय कहूं इक ताय ।।

* लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी

३०,३१. से कहमेयं गोयमा ! एवं ? (श० ७।२१६)
तए णं से भगवं गोयमे ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—नो खलु वयं देवाणुप्पिया ! अत्थिभावं नत्थि त्ति वदामो, नत्थिभावं अत्थि त्ति वदामो ।
३२. अम्हे णं देवाणुप्पिया ! सव्वं अत्थिभावं अत्थि त्ति वदामो, सव्वं नत्थिभावं नत्थि त्ति वदामो ।
३३. तं चेयसा खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं सयमेव पच्चुवेक्खह त्ति कट्टु ते अण्णउत्थिए एवं वदासी—

३४. 'वेदस' त्ति पाठान्तरे ज्ञानेन प्रमाणाबाधितत्वलक्षणेन
(वृ० प० ३२५)
३५. वदित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ जाव (एवं जहा नियंठुद्देसए जाव भ० २।११०) भत्त-पाणं पडिदंसेति ।
३६. समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासण्णे जाव पज्जुवासति ।
(श० ७।२१७)
३७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महाकहापडिवण्णे या वि होत्था ।
३८. कालोदाई य तं देसं हव्वमागए ।
३९. कालोदाईति ! समणे भगवं महावीरे कालोदाइं एवं वयासी—से नूणं भे कालोदाई ! अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं
४०. समुवागयाणं सण्णिविट्ठाणं ....तहेव जाव से कहमेयं मण्णे एवं ?
४१. से नूणं कालोदाई ! अत्थे समत्थे ?
हंता अत्थि ।
४२. तं सच्चे णं एसमट्ठे कालोदाई ! अहं पंचत्थिकायं पण्णवेमि, तं जहा—धम्मत्थिकायं जाव पोग्गलत्थिकायं ।
४३. तत्थ णं अहं चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेमि तहेव जाव (सं० पा०) एगं च णं अहं पोग्गलत्थिकायं रूविकायं पण्णवेमि ।
(श० ७।२१८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. तिण अवसर ते कालोदाई, वीर प्रते बोल्यो हित ल्याई।
धर्मास्तिकाय विषे भगवान, अधर्मास्तिकाय विषे पहिछान।।

४५. आकाशास्तिकाय विषे सुअतीव, एह अरूपीकाय अजीव।
तेह विषे प्रभुजी ! अवलोय, बेसण सूवण समर्थ कोय?

४६. अथवा ऊभो रहिवा देख, वलि विशेष बेसवो पेख।
तुयट्टित्तए वा निद्रा करिवा, समर्थ छै कोई अनुसरिवा?

४७. जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांय, हे कालोदाई ! सुण वाय।
पुद्गल अस्तिकायज रूपी, अजीवकाय विषे तद्रूपी।।

४८. बेसण नैं समर्थ छै सोय, जावत निद्रा लेवा जोय।
इह विध भगवंत उत्तर दीधो, कालोदाई प्रश्न हिव सीधो।।

४९. हे प्रभु ! पुद्गल अस्तिकाय, रूपी अजीवकाय विषे ताय।
जीव नां पाप कर्म छै तेह, अशुभ विपाक संयुक्त करेह।।

५०. जिन कहै अर्थ समर्थ नहिं एह, जीव संबंधी पाप छै जेह।
पुद्गल विषे कदे नहिं होय, तेह अचेतनपणैं सुजोय।।

५१. कालोदाई ! ए जीवास्तिकाय, अरूपीकाय विषे इज ताय।
जीवां रै पाप कर्म बंधेह, अघ फल विपाक युक्त करेह।।

वा०—इहां कालोदाई पूछ्यो—पुद्गलास्तिकाय रूप काय—अजीवकाय नैं विषे जीवसंबंधी पाप कर्म पाप फल विपाक संयुक्त करै? एतलै पुद्गलास्तिकाय नैं विषे जीव बेसै, सूअै जाव निद्रा लेवै तिवारे जीवां रै बंध्या पाप कर्म तिके पाप फल संयुक्त पुद्गलास्तिकाय नैं हुवै? जीवां रै बंध्या तिके कर्म पुद्गल रै चैंहटै—पाप फल संयुक्त पुद्गल हुवै। जद भगवंत कहै—'णो इणट्ठे समट्ठे' ए अर्थ समर्थ नहीं। जीव पुद्गल ऊपर बैठां सूतां जीवां रै पाप कर्म बंध्या तेहनां अशुभ फल संयुक्त पुद्गल हुवै नहीं।

इहां ए भावार्थ—जीव संबंधी पाप कर्म अशुभ स्वरूप फल लक्षण विपाकदायक पुद्गलास्तिकाय नैं विषे न हुवै अचेतनपणैं करी अनुभव वर्जितपणां थकी तेहनैं। जीवास्तिकाय नैं विषेज पाप कर्म नो विपाक संयुक्त हुवै अनुभवयुक्तपणां थी जीव नैं।

५२. *इहां कालोदाई प्रतिबूझ्यो, ततखिण तिणनैं संवलो सूझ्यो।
वीर प्रतै वंदी तिण वार, नमण करी कहै वचन विचार।।

५३. हे प्रभु ! हूं वांछूं तुझ पास, परम धरम सुणवो सुखरास।
इम जिम खंधक दीक्षा लीधी, तिमहिज कालोदाइ प्रसीधी।।

४४. तए णं से कालोदाई समणं भगवं महावीरं एवं वदासी—
एयंसि णं भंते ! धम्मत्थिकायंसि, अधम्मत्थिकायंसि,
४५. आगासत्थिकायंसि, अरूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केइ आसइत्तए वा? सइत्तए वा?
४६. चिट्ठइत्तए वा? निसीइत्तए वा? तुयट्टित्तए वा?

४७. णो तिणट्ठे समट्ठे। कालोदाई ! एगंसि णं पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि
४८. चक्किया केइ आसइत्तए वा, सइत्तए वा, चिट्ठइत्तए वा, निसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा। (श० ७।२१६)
४९. एयंसि णं भंते ! पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि जीवाणं पावाकम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति?
५०. णो तिणट्ठे समट्ठे।
जीवसम्बन्धीनि पापकर्माण्यऽशुभस्वरूपफललक्षणविपाकदायीनि पुद्गलास्तिकाये न भवन्ति, 'अचेतनत्वेनानुभववर्जितत्वात्तस्य। (वृ० प० ३२५)
५१. कालोदाई ! एयंसि णं जीवत्थिकायंसि अरूविकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति।

५२. एत्थ णं से कालोदाई संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—
५३. इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतियं धम्मं निसामेत्तए। एवं जहा खंदए तहेव पव्वइए,

* लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. तिमहिज अंग इग्यारै सार, यावत विचरंतो गुणधार।
चरण करण सीख्यो अणगार, तीन गुप्त तसु अधिक उदार ।।

५५. राजगृह गुणशिल थी तिणवार, अन्यदा भगवंत कियो विहार।
बाहिर जनपद प्रभु विचरंता, जग-तारक जिनवर जयवंता ।।

५६. देश सप्तम शत दशमो न्हाल, इकसौ सत्त वीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद, 'जय-जश' सुख संपति अह्लाद ।।

५४. तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ जाव विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (श० ७।२२०)

५५. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ। (श ७।२२१)

## ढाल : १२८

### दूहा

१. तिण काले नें तिण समय, नगर राजगृह नाम।
गुणसिल नामे बाग थो, ईशाणकूणे ताम ।।

२. तिण काले नें तिण समय, भगवंत श्री महावीर।
कदा अन्यदा जाव प्रभु, समवसर्या गुणहीर ।।

३. परिषद वंदन परवरी, वीर तणी सुण वान।
नमस्कार वंदन करी, पोंहती अपणैं स्थान ।।

*कालोदाई इम वीनवै रे। (ध्रुपदं)

४. मुनिवर रे, एक दिवस तिण अवसरे रे,
कालोदाई मुनिराय हो लाल।
वीर प्रतैं वांदी करि रे,
नमण करी कहै वाय हो लाल ।।

५. हे प्रभु ! छै जीवां तणै, पाप कर्म नो बंध।
अघ फल विपाकयुक्त छै? जिन कहै हूंता संध ।।

६. हे प्रभु ! किम जीवां तणै, पाप कर्म उपजंत।
विपाक फल जे पाप नों, तेह युक्त किम हुंत ?

७. श्री जिन भाखै सांभलै, कालोदाई ! संत !
दे दृष्टांत कहूं अछं, जिन-वच महाजयवंत ।।

८. कोई एक पुरुषे कियो, अधिक मनोहर पेख।
थाली-पाक सुहामणो, मनगमतो सुविशेख ।।

९. अन्य भाजन में पचावियां, नहिं तथाविध थाय।
तिण कारण करिनैं इहां, थाली-पाक कहाय ।।

१०. भक्त दोष वर्जित तिको, शुद्ध कह्यो इण न्याय।
अष्टादश व्यंजन करी, संकुल संकीर्ण कहाय ।।

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे गुणसिलए चेइए।

२. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ जाव समोसढे,

३. परिसा जाव पडिगया। (श० ७।२२२)

४. तए णं से कालोदाई अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

५. अत्थि णं भंते ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ? हंता अत्थि। (श० ७।२२३)

६. कहण्णं भंते ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

७,८. कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थालीपागसुद्धं

९. अन्यत्र हि पक्वमपक्वं वा न तथाविधं स्यादितीदं विशेषणं। (वृ० प० ३२६)

१०. अट्ठारसवंजणाकुलं
शुद्धं—भक्तदोषवर्जितं। (वृ० प० ३२६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## दूहा

११. दाल उदन जव-अन्न फुन, जलचर थलचर मंस।
वली मंस खहचर तणुं, गोरस सखर प्रशंस।।

१२. जूष मांडिया नैं कह्यु, मूंग तंदूल तणूं ज।
वलि जीरा मिरचादि नुं, रस नैं जूष कह्यूं ज।।

१३. भक्ष खंड खाजा प्रमुख, गुलपापड़ी प्रसिद्ध।
अथवा गुलधाणी प्रतै, गुललावणी कहिद्ध।।

१४. वली मूल फल एक पद, हरित कह्यो जीरादि।
डाको ते बथुवा प्रमुख, भाजी तास संवादि।।

१५. वली रसालू चवदमों, बे पल प्रमाण घृत्त।
इक पल प्रमाण मधु कह्यो, अर्द्धाढक दहि मत्त।।

१६. मिरच वीस पल ह्वै वलि, दश पल गुल अरु खंड।
नृपति जोग ए तसु कह्युं, प्रवर रसालू मंड।।

१७. सुरा पान नैं जल वलि, पाणी फुन द्राक्षादि।
शाक तक्र स्यूं नीपनों, व्यंजन अठ दश वादि।।

१८. दोय खोभलै पुसलि इक, बे पुसली सेई एक।
च्यार सेइ नो कुड़ब इक, वीर वचन ए पेख।।

१९. च्यार कुडब पाथोज इक, चिहुं पथ आढक एक।
आढा च्यार तणी वलि, द्रोणी एक सुलेख।।

२०. साठ आढा नो जघन्य कुंभ, असी आढै कुंभ मद्ध।
सौ आढै उत्कृष्ट कुंभ, अनुयोगद्वार सुलद्ध।।

२१. गुंजा पंचक मास इक, सोल मास कर्ष एक।
च्यार कर्ष नों एक पल, पल-शत तुला संपेख।।

२२. वीस तुला नो भार इक, हेम तृतीय कांड ताम।
तोल मान ए आखियो, कहिवूं जे जे ठाम।।

२३. *विष मिश्रित भोजन तिको, भोगवतां सुख पाय।
पहिलां मधुरपणां थकी, अधिक मनोहर थाय।।

२४. ते भोजन जोम्यां पछै, परिणम ते पहिछाण।
दुष्ट रूप हेतूपणैं, दुर्गंध पिण इम जाण।।

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे

११, १२. सूओदणो जवन्नं तिन्नि य मंसाइं गोरसो जूसो।
तत्र मांसत्रयं—जलजादिसत्कं 'जूषो' मुद्गतन्दुल-जीरककटुभाण्डादिरसः। (वृ० प० ३२६)

१३. भक्खा गुललावणिया
'भक्ष्याणि' खण्डखाद्यादीनि 'गुललावणिया' गुडपर्प्पटिका लोकप्रसिद्धा गुडधाना वा। (वृ० प० ३२६)

१४. मूलफला हरियगं डागो
मूलफलान्येकमेवपदं 'हरितकं' जीरकादि 'डाको' वास्तुलकादिर्भर्जिका। (वृ० प० ३२६)

१५,१६. होइ रसालू य
'रसालूः' मज्जिका, तल्लक्षणं चेदम्—
दो घयपला महुपलं दहियस्सद्धाढयं मिरियवीसा।
दस खंडगुलपलाइं एस रसालू निवइजोगो।।
(वृ० प० ३२६)

१७. तहा पाणं पाणीय पाणगं चेव अट्ठारसमो सागो निरुवहओ लोइओ पिंडो।
'पानं' सुरादि 'पानीयं' जलं 'पानकं' द्राक्षापानकादि शाकः प्रसिद्ध इति। (वृ० प० ३२६)

१८. दो असतीओ पसती, दो पसतीओ सेतिया चत्तारि सेतियाओ कुलओ, (अनु० सू० ३७४)

१९. चत्तारि कुलया पत्थो, चत्तारि पत्थया आढगं चत्तारि आढगाइं दोणो। (अनु० सू० ३७४)

२०. सट्ठि आढगाइं जहण्णए कुंभे, असीइं आढगाइं मज्झिमए कुंभे, आढगसतं उक्कोसए कुंभे।
(अनु० सू० ३७४)

२१,२२. स्यात् गुञ्जाः पञ्च माषकः।५४७।
ते तु षोडश कर्षोऽक्षः पलं कर्षचतुष्टयम्।५४८।
तुला पलशतं तासां विंशत्या भार आचितः।५४९।
(अभि० चिन्ता०, तृतीय काण्ड)

२३. विससंमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाए भद्दए भवइ,

२४. तओ पच्छा परिणममाणे-परिणममाणे दुरूवत्ताए दुवण्णत्ताए दुगंधत्ताए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. जिम छट्ठे शतके कह्यु, तृतीय उदेश मझार।
यावत तेहनैं दुखपणें, परिणमैं वारंवार।।

२६. एणे दृष्टांते करी, कालोदाई अणगार।
जीव प्राणातिपाते करी, जाव मिच्छादंसण अवधार।।

२७. पाप अठारै सेवियां, सेवायां पिण जोय।
वलि तेहनें अनुमोदियां, प्रथम भद्र सुख होय।।

२८. पाप स्थानक सेव्यां पछै, विपरिणममाणे जोय।
विपरिणामांतर पामतो, दुष्ट रूप तसु होय।।

२९. यावत तेहनें दुखपणै, परिणमै बारंवार।
कालोदाई ! इम जीव रै, पाप कर्म बंध धार।।

## सोरठा

३०. पाप कर्म बंध एम, तसु विपक्ष पुन्य कर्म नों।
बंध फल विपाक तेम, प्रश्न तास पूछै हिवै।।

३१. *छै प्रभुजी ! जीवां तणै, कल्याण ते शुभ कर्म।
शुभ फलपणैज परिणमैं ? हंता जिन वच धर्म।।

३२. किणविध प्रभु जीवां तणै, कल्याण कर्म उपजंत।
विपाक फल कल्याण नों, तेह युक्त किम हुंत ?

३३. कालोदाई ! सांभले, दाखूं जे दृष्टंत।
कोइक पुरुष मनोहरू, शुद्ध थालीपाक करंत।।

३४. अष्टादश व्यंजन करी, संकीरण सुखदाय।
तिक्त कटुक औषधि करी, मिश्रत कीधो ताय।।

३५. ते भोजन नैं जीमतां, पहिलां भद्र न होय।
मनगमतो होवै नहीं, कटुक तिक्त थी जोय।।

३६. ते भोजन जीम्यां पछै, परिणम ते पहिछाण।
भला रूपपणै परिणमैं, भला वर्ण पिण जाण।।

३७. यावत सौख्यपणैं सही, दुक्खपणै नहिं होय।
वार वार इम परिणमैं, इण दृष्टांते जोय।।

३८. हे कालोदाई ! जीवां तणै, प्राणातिपात पिछाण।
ए हिंसा थी निवर्तै, शुभ जोगे करि जाण।।

३९. यावत वलि परिग्रह थकी, निवर्त्तवैं करि तेह।
क्रोध तजै यावत वलि, मिथ्यादर्शण तजेह।।

२५. जाव दुक्खत्ताए—नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति।
षष्ठशतस्य तृतीयोद्देशको (६।२०) महाश्रवकस्तत्र यथेदं सूत्रं तथेहाप्यध्येयम्। (वृ० प० ३२६)

२६. एवामेव कालोदाई ! जीवाणं पाणाइवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले,

२७. तस्स णं आवाए भद्दए भवइ
तस्य प्राणातिपातादेः (वृ० प० ३२६)

२८. तओ पच्छा विपरिणममाणे-विपरिणममाणे दुरूवत्ताए

२९. जाव दुक्खत्ताए—नो सुहत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमति। एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति।
(श० ७।२२४)

३१. अत्थि णं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाण-फलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?
हंता अत्थि। (श० ७।२२५)

३२. कहण्णं भंते ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाणफल-विवागसंजुत्ता कज्जंति ?

३३. कालोदाई ! से जहानामए केइ पुरिसे मणुण्णं थाली-पागसुद्धं

३४. अट्ठारसवंजणाकुलं ओसहमिस्सं
औषधं—महातिक्तकघृतादि। (वृ० प० ३२६)

३५. भोयणं भुंजेज्जा तस्स णं भोयणस्स आवाए नो भद्दए भवइ।

३६. तओ पच्छा परिणममाणे-परिणममाणे सुरूवत्ताए सुवण्णत्ताए

३७. जाव सुहत्ताए—नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिण-मति। एवामेव

३८. कालोदाई ! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे

३९. जाव परिग्गहवेरमणे कोहविवेगे जाव मिच्छादंसण-सल्लविवेगे

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे

४०. ए पाप अठारैं टालतां, पहिलां तेहनैं पेख।
भद्र मनोज्ञ हुवै नहीं, इन्द्रिय प्रतिकूल देख ।।
४१. पाप थकी निवर्त्यां पछै, परिणम ते अवलोय।
पुन्य कर्म करि परिणमैं, भला रूपपणें जोय ।।
४२. यावत सुखपणैं सही, दुक्खपणैं नहिं होय।
वार-वार इम परिणमैं, सुकृत्य फल सुख होय ।।
४३. इम निश्चै जीवां तणें, कालोदाई अणगार !
कल्याण शुभ कर्म बंध हुवै, शुभ फल विपाक सार ।।

४०. तस्स णं आवाए नो भद्दए भवइ।
इन्द्रियप्रतिकूलत्वात्। (वृ० प० ३२६)
४१. तओ पच्छा परिणममाणे-परिणममाणे सुरूवत्ताए सुवण्णत्ताए
४२. जाव सुहत्ताए—नो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ।
४३. एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाणफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ।।
(श० ७।२२६)

**सोरठा**

४४. 'वृत्तिकार कहिवाय, विरमण पाप अठार थी।
पुन्य कर्म उपजाय, शुभ रूपादि तेहथी ।।
४५. यंत्र धर्मसी कीध, पुन्य तणां फल नैं विषे।
ओषधि मिश्र प्रसीध, दृष्टांत छै एहवूं कह्यूं ।।
४६. ते माटै ए मर्म, पुन्य कर्म छै जेहनैं।
आख्यो कल्याण कर्म, न्याय दृष्टि करि देखियै ।।
४७. पाप-विरमण पाठ, तेह निर्जरा रूप पिण।
संवर पिण शिव वाट, करतां पुन्य शुभ जोग स्यूं ।।
४८. समवायंग सुसंच, पंचम समवाये कह्या।
निर्जर ठाणा पंच, हिंसादिक नो वेरमण ।।

४८. पंच निज्जरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—पाणाइवायाओ वेरमणं······ (समवाओ ५।६)

४९. पाप तणां पचखाण, ते संजम शुध पालतां।
शुभ जोगे करि जाण, पुन्य कर्म बंधै अछै ।।
५०. त्याग कियां विण ताय, पाप अठारै निवर्त्तै।
तेहथी पुन्य बंधाय, करणी आज्ञा मांहिली ।।
५१. तिण सूं कह्यो सुरूप, सुंदर वर्ण कह्यो वलि।
कल्याण कर्म तद्रूप, प्रत्यक्ष फल ए पुन्य नां ।।
५२. सेवै पाप अठार, पाप कर्म बंधै तसु।
पाप सेवायां धार, पुन्य कर्म बंधै नहीं ।।
५३. परिग्रह पंचम पाप, सेव्यां सेवायां वलि।
अनुमोद्यां संताप, पाप कर्म बंधै अछै ।।
५४. परिग्रह नवविध पेख, खेत्त वत्थू आदि दे।
दियां गृहस्थ नैं देख, पुन्य किहां थी तेहनै ।।
५५. सेवै पाप अठार, करणी आज्ञा बारली।
जोवो हिये विचार, पुन्य किम बंधै तेहनैं ?
५६. टालै पाप अठार, करणी आज्ञा मांहिली।
ए शुभ जोग श्रीकार, तेहथी पुन्य बंधै अछै ।।
५७. कालोदाई अणगार, पाप कर्म पुन्य कर्म नीं।
पूछा कीधी सार, तसु जिन उत्तर आपियो ।।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. पाप अठारै पेख, प्रवर्त्तै कोइ तेह में।
बंधै पाप विशेख, विष-मिश्र भोजन नीं परै।।
५९. पाप अठार पिछाण, निवर्त्तै कोइ तेहथी।
पुन्य कर्म बंधाण, भोजन ओषधि-मिश्र तिम।।' (ज० स०)

६०. *देश सप्तम शत दश तणो, सौ अठवीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगल माल।।

ढाल : १२९

**दूहा**

१. पूर्वे कह्या फल कर्म नां, हिव आगल अधिकार।
कर्मादिक अल्प बहु तणो, पूछै प्रश्न प्रकार।।

१. अनन्तरं कर्म्माणि फलतो निरूपितानि, अथ क्रिया-विशेषमाश्रित्य तत्कर्तृपुरुषद्वयद्वारेण कर्मादीनामल्प-बहुत्वे निरूपयति। (वृ० प० ३२६)

*कालोदाई पूछै भगवान नें। (ध्रुपदं)

२. दोय पुरुष प्रभु! सारिखा, जाव सरीखा ताहि।
भंड मात्र उपकरण छै, करै अग्नि आरम्भ मांहोमांहि।। प्रभूजो!

२. दो भंते! पुरिसा सरिसया जाव (सं० पा०) सरिसभंडमत्तोवगरणा अण्णमण्णेणं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति।

३. इक नर अग्नि लगावतो, इक नर अग्नि बुझाय।
हे प्रभु! दोनूंइ पुरुष में, महाकर्म किण रै बंधाय?

३. तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, एगे पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ।
एएसि णं भंते! दोण्हं पुरिसाणं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव?

४. महाक्रिया प्रभु! केहनैं, वलि महाआश्रव जोय।
वलि बहुवेदन केहनै, तिण कर्म करीनै होय।।

४. महाकिरियतराए चेव? महासवतराए चेव? महावेयणतराए चेव?

**सोरठा**

५. ज्ञानावरणी आदि, महाकर्म कहियै तसु।
महाकिरिया संवादि, छै दाहरूपा तेहनैं।।

५. अतिशयेन महत्कर्म—ज्ञानावरणादिकं यस्य स तथा, एवं 'महाकिरियतराए चेव' त्ति नवरं क्रिया—दाहरूपा। (वृ० प० ३२७)

६. महाआश्रव कहिवाय, महाकर्म बंध-हेतुकः।
महावेदना थाय, जेह थकी जीवां तणै।।

६. 'महासवतराए चेव' त्ति बृहत्कर्म्मबन्धहेतुकः 'महावेयणतराए चेव' त्ति महती वेदना जीवानां यस्मात् स तथा। (वृ० प० ३२७)

७. †अल्प कर्म बंधै केहनै, अल्प क्रिया वलि जोय।
अल्प आश्रव अल्प वेदना, किसा पुरुष रै थोड़ा होय?

७. कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव? अप्पकिरियतराए चेव? अप्पासवतराए चेव? अप्पवेयणतराए चेव?

*लय : हेम ऋषी भजिये सदा रे
†लय : कोसंबी नगर पधारिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. इक नर अग्नि उजालतो, इक नर अग्नि बुझाय।
बोल च्यारूइं केहनैं, प्रभु ! घणां थोड़ा कहिवाय ?
९. जिन कहै कालोदाइ ! सांभलै, अग्नि उजालै तास।
महाकर्म महाक्रिया हुवै, महाआश्रव वेदन रास ।। मुनीश्वर !
(वीर कहै कालोदाइ ! सांभलै)

१०. अग्नि बुझावै तेहनैं, अल्प कर्म बंधाय।
जाव अल्प वेदन कही, कालोदाइ पूछै किण न्याय ?

११. जे नर अग्नि लगावतो, अति घणी पृथ्वीकाय।
आरंभ बहु करै जेहनों, वले हणैं घणी अपकाय।।

१२. जीव थोड़ा तेउ नां हणैं, जीव वायु नां बहुत हणंत।
वणस्सइ जीव बहु हणैं, त्रस नीं बहु घात करंत।।

१३. जे नर अग्नि बुझावतो, थोड़ा पृथ्वी नां जीव हणंत।
वले जीव हणैं थोड़ा अप तणां, घणो तेउ नीं घात करंत।।

१४. अल्प जीव वायु नां हणैं, वनस्पती त्रसकाय।
त्यांरा पिण जीव थोड़ा हणैं, तिण अर्थे ए वचन कहाय।

१५. अग्नि लगावै तेहनैं, बहु पंच काय आरंभ।
आरंभ अल्प तेऊ तणो, तिण सूं महाकर्मादिक दंभ।।

१६. अग्नि बुझावे तेहनैं, पांच काय नों थोड़ो आरंभ।
तेऊ नीं बहुत विराधना, तिण सूं अल्पकर्मादि प्रारंभ।।

## सोरठा

१७. 'अग्नि लगावै ताय, आरंभ बहु पंच काय नों।
वली बुझावै लाय, अल्प आरंभ पांचूं तणो।।
१८. तेऊकाय नों ताय, अग्नि लगावै तसु अल्प।
वली बुझावै लाय, महा आरंभ तेऊ तणो।
१९. पंच काय नों पाप, अग्नि लगावै तसु घणो।
तेउ तणो संताप, तेहनैं लागै अल्प ही।।
२०. अग्नि बुझावै तास, पंच काय नों अल्प ही।
तेऊ तणो विमास, बहुत पाप क्रिया तसु।।

८. जे वा से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, जे वा से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ ?

९. कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव महाकिरियतराए चेव, महासवतराए, चेव महावेयणतराए चेव।

१०. तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ, से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव (सं० पा०) अप्पवेयणतराए चेव। (श० ७।२२७)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

११. कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, से णं पुरिसे बहुतरागं पुढविक्कायं समारभति, बहुतरागं आउक्कायं समारभति,

१२. अप्पतरागं तेउक्कायं समारभति, बहुतरागं वाउकायं समारभति, बहुतरागं वणस्सइकायं समारभति, बहुतरागं तसकायं समारभति।

१३. तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ, से णं पुरिसे अप्पतरागं पुढविकायं समारभति, अप्पतरागं आउक्कायं समारभति, बहुतरागं तेउक्कायं समारभति।

१४. अप्पतरागं वाउकायं समारभति, अप्पतरागं वणस्सइकायं समारभति, अप्पतरागं तसकायं समारभति। से तेणट्ठेणं कालोदाई ! एवं वुच्चइ—

१५. तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेयणतराए चेव।

१६. तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ, से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव, अप्पकिरियतराए चेव, अप्पासवतराए चेव, अप्पवेयणतराए चेव।
(श० ७।२२८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. इण वचने करि ताय, अग्नि बुझावै तेहनैं।
थोड़ो पाप बंधाय, पिण धर्म नहीं छै तेह में' ॥ (ज० स०)

२२. अग्नि सचेतन तास, अधिक प्रकाश करै अछै।
तेहनीं परै उजास, पुद्गल अचित्त हिव कहै ॥

२२. अग्निश्च सचेतनः सन्नवभासते एवमचित्ता अपि पुद्गलाः किमवभासन्ते ? इति प्रश्नयन्नाह—
(वृ० प० ३२७)

२३. *अचित्त पुद्गल पिण छै प्रभु ! जे करै अधिक प्रकाश।
उजुयाले वस्तू भणी, उज्जोवेंति पाठ विमास ॥

२३. अत्थि णं भंते ! अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति ? उज्जोवेंति ?
'उज्जोइंति' त्ति वस्तूद्द्योतयन्ति। (वृ० प० ३२७)

२४. तवेंति ताप करै तिके, पभासंति पहिछाण ?
तथाविध वस्तू भणी कांइ, दाहकपणें करि जाण ?

२४. तवेंति ? पभासेंति ?
'तवंति' त्ति तापं कुर्वन्ति 'पभासंति' त्ति तथाविधवस्तुदाहकत्वेन प्रभावं लभन्ते। (वृ० प० ३२७)

२५. हंता अत्थि जिन कहै, वलि कालोदाइ पूछंत।
पुद्गल अचित्त किसा प्रभु ! ए तो प्रकाशादिक करंत ?

२५. हंता अत्थि। (श० ७।२२९)
कयरे णं भंते ! ते अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति ? उज्जोवेंति ? तवेंति ? पभासेंति ?

२६. जिन कहै अणगार कोपियो, तेजूलेश्या तास।
शरीर थकी बारै नीकली, दूर गई जे विमास ॥

२६. कालोदाई ! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गता

२७. दूर वेगली जइ पड़ै, गइ छती भूमी-देश।
भूमि नैं देश जइ पड़ै, कोप्या अणगार नीं तेजुलेश।

२७. दूरं निपतति, देसं गता देसं निपतति।

सोरठा

२८. दूर गई छती जाण, दूर तिका अलगी पड़ै।
देश गई छती माण, तेह देश मांहै पड़ै ॥

२८. 'दूरं गंता दूरं निवयइ' त्ति दूरगामिनीति दूरे निपततीत्यर्थः, अथवा दूरे गत्वा दूरे निपततीत्यर्थः 'देसं गंता देसं निवयइ' त्ति (वृ० प० ३२७)

२९. वांछित शतादि पाय[1], तास देश अर्द्धादिके।
गमन स्वभाव कराय, 'देश गता' नों अर्थ ए ॥

३०. 'देश निपतति' जाण, वांछित छै तसु देश जे।
अर्द्धादिक में आण, पड़वुं ते तेजूलेश नुं।

२९, ३०. अभिप्रेतस्य गन्तव्यस्य क्रमशतादेर्देशे—तदर्द्धादौ गमनस्वभावेऽपि देशे तदर्द्धादौ निपततीत्यर्थः।
(वृ० प० ३२७)

३१. *जिहां जिहां दूर देश में, अथवा निकट प्रदेश।
तिहां तिहां अचित्त पुद्गल पड़ै, यावत प्रभासे तेजुलेश ॥

३१. जहिं जहिं च णं सा निपतति तहिं तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव (सं० पा०) पभासेंति।

३२. अचित्त पुद्गल पिण इह विधे, हे कालोदाइ अणगार !
अधिक प्रकाश करै सही, वीर वचन ए सार ॥

३२. एतेणं कालोदाई ! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव (सं० पा०) पभासेंति। (श० ७।२३०)

३३. कालोदाइ तब वीर नैं, करि वंदणा नमस्कार।
चोथ अठम बहु तप करी, जाव भावित आतम सार ॥

३३. तए णं से कालोदाई ! अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम जाव (सं० पा०) अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।
(श० ७।२३१)

---

*लय : कोसंबी नगर पधारिया

१. पग।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. जिम पहिले शतके कह्यू, पुत्र कालासवेसी संत।
जाव सर्व दुख क्षय किया, सेवं भंते ! सेवं भंते ! ।। ऋषीश्वर !
(धन्य धन्य कालोदाइ महामुनि)

३५. शतक सातमा नों कह्यो, दशमों उदेशो देख।
अर्थ सातमां शतक नों, संपूर्ण हुवो अशेख ।।

३६. ढाल एक सौ गुणतीसमी, भिक्खु पाट भारीमाल।
तीजै पाट ऋषिराय जी, सुख 'जय-जश' हरष विशाल ।।
सुगण जन !
(बलिहारी भिक्षु ऋषिराज नीं)

३४. जहा पढमसए कालासवेसियपुत्ते (१।४३३) जाव (सं० पा०) सव्वदुक्खप्पहीणे। (श० ७।२३२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ७।२३३)

**गीतक-छंद**

१. जिम वृद्ध नर लाठी ग्रही मंद-मंद पद स्थापन करी।
इम चालतुं जे पंथ मारग प्रति उल्लंघै हित धरी ।।

२. तिम शिष्ट जन उपदेश आणा-रूप-यष्टि ग्रही करी।
वर सूत्र पद नीं अर्थ रचना-न्यास शनै शनै धरी ।।

३. वर शतक सप्तम तास विस्तर तेहिज पथ मारग भलो।
उल्लंघियो वर जोड़ करि, नर वृद्ध इव शत गुणनिलो ।।

सप्तमशते दशमोद्देशकार्थः ।।७।१०।।

१-३. शिष्टोपदिष्टयष्ट्या पदविन्यासं शनैरहं कुर्वन्।
सप्तमशतविवृतिपथं लङ्घितवान् वृद्धपुरुष इव ।।
(वृ० प० ३२७)

## ढाल : १३०

**सोरठा**

१. सप्तम शतक मझार, पुद्गल आदिक भाव नीं।
परूपणा वर सार, विविध प्रकारे वर्णवी ।।

२. इहां पिण तेहिज जाण, अन्य प्रकार करी प्रवर।
परूपियै पहिछाण, अष्टम शतक विषे हिवै ।।

३. दस है तास उद्देश, ते संग्रह नैं अर्थ ए।
गाथा आदि कहेस, श्रोता चित दे सांभलो ।।

१. पूर्वं पुद्गलादयो भावाः प्ररूपिताः।
(वृ० प० ३२८)

२. इहापि त एव प्रकारान्तरेण प्ररूप्यन्त इत्येवं संबद्धमथाष्टमशतं विव्रियते। (वृ० प० ३२८)

३. तस्य चोद्देशसंग्रहार्थं 'पुग्गले' त्यादिगाथामाह—
(वृ० प० ३२८)

**दूहा***

४. पुद्गल नुं पहिलुं कह्यूं, आसीविष नों जाण।
वृक्ष तणो तीजो अख्यो, चउथो क्रिया वखाण ।।

५. आजीवका नों पांचमो, छट्ठो प्रासुक दान।
अदत्त-विचारण सप्तमो, प्रत्यनीक पहिछान ।।

४,६. पोग्गल आसीविस रुक्ख किरिय आजीव फासुकमदत्ते।
पडिणीय बंध आराहणा य दस अट्ठमंमि सते ।।
(श० ८ संगहणी-गाहा)

---

*लय : कोसम्बी नगरी पधारिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. नवमों बंध तणों कह्यो, आराधना नों अर्थ।
उद्देशक दस आखिया, अष्टम शते तदर्थ॥

७. नगर राजगृह नैं विषे, यावत गोतम स्वाम।
वीर प्रतै वंदन करी, इम बोलै शिर नाम॥

७. रायगिहे जाव एवं वदासी—

*देव जिनेंद्र कहै गोयम नें॥ (ध्रुपदं)

८. पुद्गल हे प्रभु! कितै प्रकारै, आप परूप्या स्वाम जी?
प्रभू प्रकाशै तीन प्रकारै, आख्या पुद्गल आम जी॥

८. कतिविहा णं भंते! पोग्गला पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—

९. भेद प्रथम जे प्रयोग-परिणता, मीसा-परिणता नाम।
तीजो भेद वीससा-परिणता, कहियै अर्थ तमाम॥

९. पयोगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया।
(श० ८।१)

१०. जीव व्यापारे शरीर आदिपणै, करि परिणम्या ताम।
ते पुद्गल नैं कहियै गोतम! प्रयोग-परिणता नाम॥

१०. 'पओगपरिणय' त्ति जीवव्यापारेण शरीरादितया परिणताः (वृ० प० ३२८)

११. प्रयोग स्वभाव बिहुं करि परिणता, मीसा-परिणता ताय।
बीजो भेद अछै पुद्गल नों, हिव कहियै तसु न्याय॥

११. 'मीससा—परिणय' त्ति मिश्रकपरिणताःप्रयोगविस्रसाभ्यां परिणताः (वृ० प० ३२८)

१२. प्रयोग-परिणाम भणी अणतजतो, स्वभाव करिकै दीस।
अन्य स्वभाव प्रते पहुंचाड्या, जीव कलेवर मीस॥

१२. प्रयोगपरिणाममत्यजन्तो विस्रसया स्वभावान्तरमापादिता मुक्तकडेवरादिरूपाः। (वृ० प० ३२८)

१३. अथवा ऊदारिकादिक नीं वर्गणा, पुद्गल छै ते रूप।
द्रव्य तिकेज स्वभाव करीनै, निपजाया छता तद्रूप॥

१३. अथवौदारिकादिवर्गणारूपा विस्रसया निष्पादिताः संतः (वृ० प० ३२८)

१४. जीव प्रयोगे एकेंद्रियादिक तनु, प्रमुखपणैं पहिछाण।
अन्य परिणाम प्रतै पहुंचाड्या, ते मीसा-परिणता जाण॥

१४. जीवप्रयोगेणैकेन्द्रियादिशरीरप्रभृतिपरिणामान्तरमापादितास्ते मिश्रपरिणताः। (वृ० प० ३२८)

## सोरठा

१५. जे प्रयोग-परिणाम, ते पिण पुद्गल इमज छै।
तो विशेष स्यूं ताम, मीसा-पुद्गल नैं विषे?

१५. ननुप्रयोगपरिणामोऽप्येवंविध एव ततः क एषां विशेषः? (वृ० प० ३२८)

१६. सत्य बात छै एह, प्रयोग-परिणत नैं विषे।
वीससा छतेपि जेह, वांछा तेहनी नहिं करी॥

१६. सत्यं, किंतु प्रयोगपरिणतेषु विस्रसा सत्यपि न विवक्षिता इति। (वृ० प० ३२८)

१७. मीसा-परिणत माण, द्वितीय भेद पुद्गल तणो।
दाख्यो न्याय सुजाण, तृतीय भेद हिव वीससा॥

१८. *वीससा-परिणता भेद तीसरो, स्वभाव करिनैं सोय।
परिणमिया बादल प्रमुख ते, ए तीनूं अवलोय॥

१८. 'वीससापरिणय' त्ति स्वभावपरिणताः। (वृ० प० ३२८)

वा०—इहां धर्मसी कह्यो ते लिखिये छै—अथ पओगसा ते जीवां ग्रह्या जे आठ कर्म, बारह पर्याप्ता-अपर्याप्ता, पांच शरीर, पांच इन्द्री, वर्णादिक पच्चीस—ए ५५ बोल तथा पन्द्रह योग एवं—७० बोल जीवां ग्रह्या ते पयोगसा पुद्गल कहियै।

मीसा ते, ७० बोल जीवां मूक्या ते रूप नथी मूक्यो, अनेरे रूप नथी परिणम्या अनै विस्रसाइं स्वभावांतर पहुंचाड्या, एतावता जीव रहित कलेवर मीसा पुद्गल कहियै।

वीससा ते, ए ७० बोल जीवां मूक्या पछी अनेरे वर्णादिके २५ आभला प्रमुख

* लय : कनकमंजरी चतुर विलक्षण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैं रूपे परिणम्या ते वीससा पुद्गल कहियैं।

ते पयोगसा कोणि-कोणि जीवां ग्रह्या छैं। तेहनां दंडक कहियै छै—पयोग-परिणयाणं भंते ! पोग्गला कतिविहा ? गोयमा ! १. सुहुमपुढ़वी, बादरपुढ़वी प्रमुख दस एकेंद्री, २. त्रिण विकलेंद्री—१३, ३. सात नारकी—२०, ४. तिर्यंच-पंचेंद्रिय जलचरादि संमूर्च्छिम पंच अनैं गर्भज पंच एवं दश—३०, ५. संमूर्च्छिम नैं गर्भेज मनुष्य—३२, ६. दश भवनपति—४२, ७. आठ वाणव्यंतर—५०, ८. पांच जोतषी—५५, ९. बारै वैमानिक—६७, नव ग्रैवेयक—७६, पांच अणुत्तर विमान—८१, जीव नां ८१ भेद आठ कर्म नां पुद्गल ग्रह्या ते पओगसा कहियै, ए प्रथम दंडक समचैं। अथ ८१ बिमणा करियै तिवारै—१६२ थावै। संमुर्च्छिम मनुष्य पर्याप्ता नों नहीं ते एक ओछो करियैं ते माटै—१६१ भेद। ए ९ दंडक पुद्गल ग्रहै पओगसा नां ९ भेद जाणवा।

१९. प्रयोग-परिणता पुद्गल प्रभुजी ! दाख्या कितलै प्रकार ?
भगवंत भाखै पंच प्रकारे, सांभल तसु विस्तार ।।
[प्रयोग-परिणत पुद्गल कहियै]

१९. पयोगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२०. एकेंद्रिय प्रयोग-परिणता, इम बेइंद्री जाण।
जाव पंचेंद्री प्रयोग-परिणता, ए पंच भेद पहिछाण ।।

२०. एगिंदियपयोगपरिणया, जाव (सं० पा०) पंचिंदिय-पयोगपरिणया। (श० ८।२)

२१. प्रभु ! एकेंद्री प्रयोग-परिणता, पुद्गल किते प्रकार ?
श्री जिन भाखै शिष्य अभिलाषै, पंच प्रकार विचार ।।

२१. एगिंदियपयोगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२२. पुढवी एकेंद्री प्रयोग-परिणता, इम अप तेउ वाउकाय।
पंचमी वणस्सइकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता ताय ।।

२२. पुढ़विकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, आउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, तेउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, वाउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, वणस्सइकाइयएगिंदियपयोगपरिणया (श० ८।३)

२३. पृथ्वी एकेंद्री प्रयोग-परिणता, पुद्गल हे जिनराय ?
कितै प्रकारै आप परूप्या ? जिन कहै द्विविध ताय ।।

२३. पुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२४. सूक्षम पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता पेख।
बादर पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता देख ।।

२४. सुहुमपुढ़विकाइयएगिंदियपयोगपरिणया, बादरपुढ़विकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य।

२५. अप एकेंद्री प्रयोग-परिणता, इणहिज रीत कहाय।
बे-बे भेद इसीविध कहिवा, जाव वणस्सइकाय ।।

२५. आउकाइयएगिंदियपयोगपरिणया एवं चेव। एवं दुयओ भेदो जाव वणस्सइकाइया य। (श० ८।४)

२६. बेइंद्रिय प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै अनेक प्रकार।
लट गींडोला अलसिया कृमिया, प्रमुख बहूविध धार ।।

२६. बेइंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता।
पुलाककृमिकादिभेदत्वात् द्वीन्द्रियाणाम्।
(वृ० प० ३३१)

२७. एवं तेइंद्री प्रयोग-परिणता, कुंथु कीड़्यां आदि।
चउरिंद्री पिण बहु माखी, माछर प्रमुख संवादि ।।

२७. एवं तेइंदिय-चउरिंदियपयोगपरिणया वि।
(श० ८।५)

त्रीन्द्रियप्रयोगपरिणता अप्यनेकविधाः कुंथुपिपीलिकादिभेदत्वात्तेषां, चतुरिन्द्रियप्रयोगपरिणता अप्यनेकविधा एव मक्षिकामशकादिभेदत्वात्तेषाम्। (वृ० प० ३३१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. पंचेंद्रिय प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै च्यार प्रकार ।
नरक-पंचेंद्रि प्रयोग-परिणता, इम तिरि मणु सुर धार ।।

२८. पंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—नेरइय-पंचिदियपयोगपरिणया, तिरिक्खमणुस्स-देवपंचिदियपयोगपरिणया । (श० ८।६)

२९. नरक-पंचेंद्री-प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै तसु विध सात ।
रत्नप्रभा-नारक-पंचेंद्री, जाव तमतमा ख्यात ।।

२९. नेरइयपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभ-पुढवि-नेरइयपंचिदियपयोगपरिणया वि जाव अहेसत्तमपुढविनेरइयपंचिदियपयोगपरिणया वि । (श० ८।७)

३०. तिरिक्ख-पंचेंद्री-प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै तीन प्रकार ।
जलचर-पंचेंद्री-प्रयोग-परिणता, थलचर खेचर धार ।।

३०. तिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया, थलचरतिरिक्ख ....खहचरतिरिक्ख....परिणया

३१. जलचर-पंचेंद्री-तिरि पूछा, जिन कहै तसुं विध दोय ।
संमूच्छिम-जलचर-पंचेंद्री, गर्भज जलचर जोय ।।

३१. जलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिमजलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियजलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया । (श० ८।६)

३२. थलचर-तिरि-पंचेंद्री पूछा, द्विविध कहै जिनराय ।
चोपद थलचर परिसर्प थलचर, ए बिहुं भेद कहाय ।।

३२. थलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—चउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया, परिसप्पथलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया । (श० ८।१०)

३३. चोपद थलचर केरी पूछा, द्विविध कहै जिन स्वाम ।
संमूच्छिम चोपद थलचर धुर, गर्भज थलचर नाम ।।

३३. चउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिमचउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलचरतिरिक्खजोणियपंचिदियपयोगपरिणया । (श० ८।११)

३४. इण आलावे करिनें कहिवा, द्विविध परिसर्प जेह ।
उरपरिसर्प हिया सूं चालै, भुज परिसर्प भुजेह ।।
३५. उरपरिसर्प द्विविध जिन आख्या, संमूच्छिम गर्भज ।
एवं भुजपरिसर्प द्विविध है, खेचर एम कहेज ।।

३४. एवं एएणं अभिलावेणं परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—उरपरिसप्पा य भुयपरिसप्पा य ।
३५. उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता तं जहा—संमुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य । एवं भुयपरिसप्पा वि । एवं खहयरा वि । (श० ८।१२)

३६. मनुष्य-पंचेंद्री-प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
मनुष्य-संमूच्छिम चउद स्थानकिया, गर्भज-मनुष्य विचार ।।

३६. मणुस्सपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिममणुस्सपंचिदियपयोगपरिणया, गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिदियपयोगपरिणया । (श० ८।१३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. देव-पंचेंद्री-प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै च्यार प्रकार।
भवनपति व्यंतर नैं ज्योतिषि, वैमानिक सुर सार।।

३८. देव-भवणवासी नीं पूछा, जिन कहै दसविध देख।
असुरकुमारा जावत कहिवा, थणियकुमारा पेख।।

३९. इण आलावे करिनै कहिवा, व्यंतर आठ प्रकार।
बहु पिसाचा जाव गंधर्वा, ए मोटी ऋद्धि नां विचार।।

४०. पंच प्रकार परूप्या ज्योतिषी, वासी चंद्र-विमान।
जावत तार-विमाण ज्योतिषी, हिव वैमानिक जान।।

४१. दोय प्रकार वैमानिक देवा, कल्प विषे उपपात।
कल्पातीत विषे जे ऊपनां, महा ऋद्धिवंत विख्यात।।

४२. कल्प विषे उपनां छै तेहनां, दाख्या द्वादश भेद।
सुधर्म-कल्प विषे जे उपनां, यावत अच्युत वेद।।

४३. कल्पातीतक दोय प्रकारे, ग्रैवेयक पहिछान।
पवर अणुत्तर विषे ऊपनां, कल्पातीत सुजान।।

४४. ग्रैवेयक नवविध जिन दाख्या, हेठिम-हेठिम होय।
यावत उवरिम-उवरिम ए नव ग्रैवेयक अवलोय।।

४५. अणुत्तरोत्पन्न कल्पातीतक, सुर-पंचेंद्रिय-प्रयोग।
तेह परिणता पुद्गल प्रभुजी ! कितै प्रकार सुजोग?

४६. जिन कहै पंच प्रकार परूप्या, विजय अणुत्तरोपपात।
जाव सव्वट्ठसिद्ध विषय ऊपनां, जाव परिणता ख्यात।।

**सोरठा**

४७. कह्यो धर्मसी एम, सूक्षम पृथ्वी आदि दे।
सव्वट्ठसिद्ध लग तेम, भेद इक्यासी जीव नां।।

४८. आठ कर्म छै तास, पुद्गल तेह प्रयोगसा।
धर दंडक सुविमास, समचै इहविध आखियो।।

४९. *एकेंद्रियादि सव्वट्ठसिद्ध लग, जीव भेद विशेष थी।
पुद्गल एह प्रयोग-परिणत, प्रथम दंडक उक्त थी।।

३७. देवपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासि-देवपंचिदियपयोगपरिणया एवं जाव वेमाणिया।
(श० ८।१४)

३८. भवणवासिदेवपंचिदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा।
गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमार-देवपंचिदियपयोगपरिणया जाव थणियकुमारदेवपंचि-दियपयोगपरिणया। (श० ८।१५)

३९. एवं एएणं अभिलावेणं अट्ठविहा वाणमंतरा—पिसाया जाव गंधव्वा।

४०. जोतिसिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—चंदविमाण-जोतिसिया जाव ताराविमाणजोतिसियदेवपंचिदिय-पयोगपरिणया।

४१. वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कप्पोवगवेमा-णिया कप्पातीतगवेमाणिया।

४२. कप्पोवगवेमाणिया दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मकप्पोवगवेमाणिया जाव अच्चुयकप्पोवगवेमा-णिया।

४३. कप्पातीतगवेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—गेवे-ज्जगकप्पातीतगवेमाणिया, अणुत्तरोववातियकप्पातीत-गवेमाणिया।

४४. गेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया नवविहा पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जगकप्पातीतगवेमाणिया।
(श० ८।१६)

४५. अणुत्तरोववातियकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिदियपयोग-परिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता?

४६. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—विजयअणुत्तरो-ववातिय जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातियकप्पातीतग-वेमाणियदेवपंचिदियपयोगपरिणया। (श० ८।१७)

४९. एकेन्द्रियादिसर्वार्थसिद्धदेवान्तजीवभेदविशेषितप्रयोग-परिणतानां पुद्गलानां प्रथमो दण्डकः।
(वृ० प० ३३१)

*लय : पूज मोटा भांजै टोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## दूहा

५०. सूक्षम पृथ्वी आदिदे, सव्वट्ठसिद्ध पर्यंत ।
पज्जत्तापज्जत्त विशेष कर, द्वितियो दंडक हुंत ॥

५१. *सूक्षम पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, प्रयोग-परिणता जान ।
ते पुद्गल प्रभु ! किते प्रकारै ? जिन कहै द्विविध मान ॥

५२. केइ प्रथम अपज्जत्तग भणै छै, पछै पज्जत्तगा जाण ।
अपर्याप्त नैं पहिलां भाखै, पाछै पर्याप्त आण ॥

५३. पज्जत्तग सूक्षम पृथ्वी नां, जाव परिणता जोय ।
अपर्याप्त सूक्षम पृथ्वी नां, जाव परिणता होय ॥

५४. बादर पृथ्वीकाय एकेंद्री, इमहिज करिवा भेद ।
एवं जाव वनस्पति जीवा, भणवा आण उमेद ॥

५५. इक-इक नां द्विविध करि कहिवा, सूक्षम बादर दोय ।
तेहनां बे बे भेदज कहिवा, पज्जत्त अपज्जत्त जोय ॥

५६. हिव बेइंद्रिय प्रयोग नीं पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
पज्जत्त-बेइंद्री-प्रयोग-परिणता, अपर्याप्त इम धार ॥

५७. तेइंद्री नां भेद बे इमहिज, चउरिंद्री पिण एम ।
पंचेंद्री नां भेद कहै हिव, सांभलज्यो धर प्रेम ॥

५८. रत्नप्रभा नारकी नीं पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
पर्याप्त-रत्नप्रभा जाव परिणत, अपर्याप्त इम धार ॥

५९. एवं यावत नरक सातमीं, करिवा बे बे भेद ।
हिव तिर्यंच-पंचेंद्री केरा, सुणज्यो आण उमेद ॥

६०. संमूर्च्छिम-जलचर-तिरि पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
पर्याप्त नैं अपर्याप्त नीं, इम गर्भेज विचार ॥

६१. संमूर्च्छिम-चउपद-थलचर नां, इम बे भेद कहाय ।
गर्भेज-चउपद-थलचर नीं पिण, दोय भेद इम थाय ॥

६२. एवं जाव संमूर्च्छिम खेचर, इम गर्भेज पिछाण ।
इक इक नां बे भेदज भणवा, पज्जत्त अपज्जत्त जाण ॥

६३. संमूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेंद्रिय, दोय प्रकार सुजोय ।
पज्जत्त अपज्जत्त कह्या पाठ में, न्याय हिये अवलोय ॥

## सोरठा

६४. 'भेद ग्यारमों एह, दोय भेद किणविध तसु ।
नय वचने करि जेह, बुद्धिवंत न्याय मिलावियै ॥

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

५०. सुहुमपुढविकाइए' इत्यादि सर्वार्थसिद्धदेवान्तः पर्याप्तकापर्याप्तकविशेषणो द्वितीयो दण्डकः ।
(वृ० प० ३३१)

५१. सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

५३. पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया य ।

५४. बादरपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया एवं चेव । एवं जाव वणस्सइकाइया ।

५५. एक्केका दुविहा—सुहुमा य, बादरा य, पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा । (श० ८।१८)

५६. बेइंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगबेइंदियपयोगपरिणया य, अपज्जत्तग जाव परिणया य ।

५७. एवं तेइंदिया वि, एवं चउरिंदिया वि ।
(श० ८।१९)

५८. रयणप्पभपुढविनेरइयपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगरयण०-पभ जाव परिणया य अपज्जत्तग जाव परिणया य ।

५९. एवं जाव अहेसत्तमा । (श० ८।२०)

६०. संमुच्छिमजलचरतिरिक्ख—पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तग अपज्जत्तग । एवं गब्भवक्कंतिया वि ।

६१. संमुच्छिमचउप्पयथलचरा एवं चेव । एवं गब्भवक्कंतिया वि ।

६२. एवं जाव संमुच्छिमखहयरगब्भवक्कंतिया य । एक्केके पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा । (श० ८।२१)

६३ संमुच्छिममणुस्सपंचिंदिय—पुच्छा ।
गोयमा ! एगविहा पण्णत्ता—अपज्जत्तगा चेव ।
(श० ८।२२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. पर्याप्ति केतली जाण, बांधी छै तिण कारणें।
पर्याप्तो पहिछाण, एहवूं न्याय जणाय छै ॥
६६. पूरी पर्याप्ति तास, बांधी नहिं तिण कारणें।
अपर्याप्तो विमास, न्याय इसो दीसै अछै ॥
६७. अथवा वाट वहंत, पर्याप्ति तिण बांधी नथी।
अपर्याप्तो कहंत, ए आश्री पिण जाणियै ॥
६८. किणहिक परत मझार, संमूच्छिम जे मनुष्य ते।
एक हि विध अवधार, अपर्याप्तोज पेखियो ॥
६९. संमूच्छिम मनु[1] बोल, जूनी परतज जेह छै।
तालपत्र नीं तोल, तेह मध्ये नथी दीसतु ॥
७०. किणहिक टबा मझार, एहवूं म्है देख्युं अछै।
आख्यो तिण अनुसार, सर्वज्ञ वदै तिकोज सत्य[2] ॥ (ज० स०)

७१. *गर्भेज-मनुष्य-पंचेंद्री पूछा, दोय भेद तसु देख।
पज्जत्त अपज्जत्त मनुष्य-पंचेंद्री, प्रयोग-परिणत पेख ॥

७१. गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय—पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि। (श० ८।२३)

७२. असुरकुमार भवनपति पूछा, जिन कहै दोय प्रकार।
पज्जत्त अपज्जत्त इम बे भणवा, जावत थणियकुमार ॥

७२. असुरकुमारभवणवासिदेवाणं पुच्छा।
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगअसुरकुमार अपज्जत्तगअसुरकुमार। एवं जाव थणियकुमारा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य। (श० ८।२४)

७३. इण आलावे करि इम भणवा, बे बे भेद विचार।
पिसाच व्यंतर जाव गंधर्वा, चंदा यावत तार ॥
७४. सोधर्म यावत अच्युत सूधी, हेठिम-हेठिम एम।
यावत उवरिम-उवरिम नवमों, विजय अणुत्तर तेम ॥

७३. एवं एतेणं अभिलावेणं दुयएणं भेदेणं पिसाया जाव गंधव्वा। चंदा जाव ताराविमाणा।
७४. सोहम्मकप्पोवगा जावच्चुतो। हेट्ठिमहेट्ठिम-गेवेज्जकप्पातीत जाव उवरिमउवरिमगेवेज्ज। विजयअणुत्तरोववाइय

७५. यावत अपराजित पिण इमहिज, सर्वारथसिद्ध जाण।
कल्पातीत पंचमो तेहनों, प्रश्न किये जिन वाण ॥

७५. जाव अपराजिय। (श० ८।२५)
सव्वट्ठसिद्धकप्पातीत—पुच्छा।

---

१. मनुष्य
२. जयाचार्य ने जिस पाठ के आधार पर जोड़ की, उस प्राचीन प्रति में संमूच्छिम मनुष्य के दो भेद किए हुए हैं। पर उस पाठ की संगति नहीं बैठती इसलिए जयाचार्य को गाथा ६४ से ७० तक सात सोरठों में इस विषय की समीक्षा कर न्याय मिलाना पड़ा। उन्हें एक आदर्श ऐसा भी मिला था जिसमें संमूच्छिम मनुष्य का एक ही भेद था, किन्तु वह प्रति प्राचीन नहीं थी। किसी टबा की प्रति में उनको उक्त पाठ उपलब्ध हुआ था, जिसका उन्होंने संकेत भी किया है। अंगसुत्ताणि भाग २ में एक भेद वाला पाठ ही रखा गया है। वहां किसी पाठान्तर की सूचना भी नहीं है। संगति भी इसी पाठ से बैठती है। इसलिए ६३ वीं गाथा में दो भेदों का उल्लेख होने पर भी उसके सामने अंगसुत्ताणि का एक भेद वाला पाठ उद्धृत किया गया है।

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

| | |
|---|---|
| ७६. दोय प्रकार परूप्या तेहनां, पज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध जाण ।<br>अपर्याप्त सव्वट्ठसिद्ध यावत, परिणता पिण पहिछाण ।। | ७६. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय, अपज्जत्तासव्वट्ठ जाव परिणया वि । (श० ८।२६) |
| **सोरठा** | |
| ७७. सूक्षम-पृथ्वी आदि, सर्वार्थसिद्ध लग कह्यं ।<br>पज्जत्त अपज्जत्त साधि, द्वितियो दंडक भाखियो ।। | |
| ७८. *अपज्जत्त-सूक्षम-पृथ्वी-एकेंद्री, प्रयोग-परिणता जेह ।<br>ओदारिक तेजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणता तेह ।। | ७८. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया । |
| ७९. जेह पर्याप्त सूक्षम जावत, परिणता ते कहिवाय ।<br>ओदारिक तेजस नैं कार्मण तनु, प्रयोग-परिणताय ।। | ७९. जे पज्जत्तासुहुम जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया । |
| ८०. एवं जाव चउरिंद्री पर्याप्त, णवरं वायू मांय ।<br>पर्याप्ता में वैक्रिय अधिको, ते इहविध कहिवाय ।। | ८०. एवं जाव चउरिंदिया पज्जत्ता, नवरं— |
| ८१. पज्जत्त-बादर-वायु-एकेंद्रो, प्रयोग-परिणता जेह ।<br>आहारक विण चिहुं यावत परिणत, सेसं तं चेव कहेह ।। | ८१. जे पज्जत्ताबादरवाउकाइयएगिंदियप्पयोगपरिणया ते ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया । सेसं तं चेव । (श० ८।२७) |
| ८२. अपर्याप्त धुर नरक पंचेंद्री, प्रयोग-परिणता जेह ।<br>ते वैक्रिय तैजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणतेह ।। | ८२. जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरापयोगपरिणया |
| ८३. इमहिज पर्याप्त पिण तेहनां, एवं यावत जाण ।<br>सप्तम नरक पज्जत्त अपज्जत्त में, तीन शरीर पिछाण ।। | ८३. एवं पज्जत्तगा वि । एव जाव अहेसत्तमा । (श० ८।२८) |
| ८४. अपज्जत्त संमूच्छिम जलचर नां, जाव परिणता जेह ।<br>तेह ओदारिक तैजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणतेह ।। | ८४. जे अपज्जत्तासंमुच्छिमजलचर जाव परिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीर जाव परिणया । |
| ८५. एवं पर्याप्ता पिण तेहनां, अपर्याप्ता गर्भेज ।<br>संमूच्छिम जलचर जिम तेह में, तीन शरीर कहेज ।। | ८५. एवं पज्जत्तगा वि । गब्भवक्कंतियअपज्जत्ता एवं चेव । |
| ८६. पर्याप्ता तसु इमहिज कहिवा, णवरं च्यार शरीर ।<br>बादर-वायु पज्जत्त जिम जाणो, जलचर-पज्जत्त समीर ।। | ८६. पज्जत्तगा णं एवं चेव, नवरं—सरीरगाणि चत्तारि जहा बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं । |
| ८७. जिम जलचर नां च्यार आलावा, संमूच्छिम नां दोय ।<br>पर्याप्ता नैं अपर्याप्ता ए, बे गर्भेज नां होय ।। | ८७. एवं जहा जलचरेसु चत्तारि आलावगा भणिया । |
| ८८. एवं चउपद उरपरिसर्प नां, भुजपरिसर्प नां च्यार ।<br>खेचर नां पिण च्यार आलावा, भणवा न्याय उदार ।। | ८८. एवं चउप्पया-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्पखहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा । (श० ८।२९) |
| ८९. जे संमूच्छिम मनुष्य-पंचेंद्री, प्रयोग-परिणता एह ।<br>ते औदारिक तेजस कार्मण तनु, जावत परिणतेह ।। | ८९. जे संमुच्छिममणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया । |
| **सोरठा** | |
| ९०. 'संमूच्छिम मणु'[1] मांहि, समचै तीन तनू कह्या ।<br>पजत्त अपज्जत्त ताहि, इहां बे भेद कह्या नथी ।। | |

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

1. मनुष्य



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९१. शरीर-पर्याप्त जेह, तेहनैं तीन शरीर है।
भेद ग्यारमों एह, इहां समचै इज आखियो ॥ (ज० स०)

९२. *इम गर्भज मनुष्य अपर्याप्त, तीन शरीरज पाय।
पर्याप्ता पिण णवरं इमहिज, पंच शरीर कहाय ॥

९२. एवं गब्भवक्कंतिया वि। अपज्जत्तगा वि पज्जत्तगा वि एवं चेव, नवरं—सरीरगाणि पंच भाणियव्वाणि। (श० ८।३०)

९३. अपज्जत्त-असुर-भवनवासी ते, नारकी जेम विचार।
इम पर्याप्त इम द्वि भेदे, जावत थणियकुमार ॥

९३. जे अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासि जहा नेरइया तहेव। एवं पज्जत्तगा वि। एवं दुयएणं भेदेणं जाव थणियकुमारा।

९४. एवं पिसाचा जाव गंधर्वा, चंदा यावत तार।
सोधर्मकल्प यावत अच्चू लग, नव ग्रैवेयक सार ॥

९४. एवं पिसाया जाव गंधव्वा। चंदा जाव ताराविमाणा। सोहम्मकप्पो जावच्चुओ। हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जग जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जग।

९५. विजय अणुत्तर जाव सव्वट्ठसिद्ध, अपज्जत्त पज्जत्त सुचीन ॥
भणवा ए बे भेद पांचूं नां, चरम भेद इम लीन ॥
९६. अपज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तर नां, जाव परिणता तेह।
तेह वैक्रिय तेजस कार्मण तनु, प्रयोग-परिणतेह ॥

९५,९६. विजयअणुत्तरोववाइय जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय। एक्केक्के दुयओ भेदो भणियव्वो जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव (सं० पा०) परिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया। (श० ८।३१)

९७. पर्याप्ता पिण इमहिज कहिवा, तीजो दंडक एह।
ओदारिकादिक शरीर विशेषण, आख्यो जिन वचनेह ॥

९७. 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादिरौदारिकादिशरीरविशेषणस्तृतीयो दण्डकः। (वृ० प० ३३१)

## दूहा

९८. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, सव्वट्ठसिद्ध पर्यंत।
इंद्रिय विशेषण हिव कहूं, चतुर्थ दंडक तंत ॥

९८. जे अपज्जत्तासुहुमपुढवी' त्यादिरिन्द्रियविशेषणश्चतुर्थो दण्डकः। (वृ० प० ३३२)

९९. *अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी एकेंद्री-प्रयोग-परिणता जेह।
ते फर्शेंद्री-प्रयोग-परिणता, इम पर्याप्ता लेह ॥

९९. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय एवं चेव।

१००. अपज्जत्त-बादर-पृथ्वी-एकेन्द्री, इणहिज रीत कहाय।
पर्याप्ता पिण इमहिज कहिवा, फर्शेंद्री प्रयोग ताय ॥

१००. जे अपज्जत्ताबादरपुढविकाइय एवं चेव। एवं पज्जत्तगा वि।

१०१. सूक्ष्म-बादर-अपज्जत्त पज्जत्ता, चिउं भेद करि ताय।
फर्शेंद्री प्रयोग-परिणता, जाव वणस्सइकाय ॥

१०१. एवं चउक्कएणं भेदेण जाव वणस्सतिकाइया। (श० ८।३२)

१०२. जे अपज्जत्त-बेंद्री-प्रयोग-परिणता, जीभ फर्शेंद्री तेह।
प्रयोग-परिणता पुद्गल कहियै, पर्याप्ता इम लेह ॥

१०२. जे अपज्जत्ताबेइंदियपयोगपरिणया ते जिब्भिंदिय-फासिंदियपयोगपरिणया, जे पज्जत्ताबेइंदिय एवं चेव।

१०३. एवं जाव चउरिंद्रिया कहिया, णवरं इक-इक तास।
इंद्रिय अधिक बधावणी जेहनै, यावत हियै विमास ॥

१०३. एवं जाव चउरिंदिया, नवरं—एक्केक्कं इंदियं वड्ढेयव्वं। (श० ८।३३)

१०४. अपज्जत्त प्रथम नरक पंचेंद्री, प्रयोग-परिणता जेह।
श्रोत्र चक्षु घ्राण जीभ फर्शेंद्रिय, प्रयोग-परिणता तेह ॥

१०४. जे अपज्जत्तरयणप्पभपुढविनेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय फासिंदियपयोगपरिणया।

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०५. पर्याप्ता पिण इमहिज कहिवा, प्रथम नरक जिम जाण ।
सर्व नरक भणवी इण रीते, इंद्रिय पंच पिछाण ।।

१०५ एवं पज्जत्तगा वि । एवं सव्वे भाणियव्वा ।

१०६. तिरि पंचेंद्री मनुष्य नें देवा, जाव पर्याप्त जेह ।
सर्वार्थसिद्ध जाव परिणता, पंच इंद्रिय परिणतेह ।।

१०६. तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवा जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव (सं० पा०) परिणया ते सोइंदिय-चक्खिदिय-पयोगपरिणया । (श० ८।३४)

## दूहा

१०७. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, शरीर इंद्रिय जाण ।
एह विशेषण बिहुं तणुं, पंचम दंडक आण ।।

१०७. 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादिरौदारिकादिसरीरस्पर्शादीन्द्रियविशेषणः पञ्चमः । (वृ० प० ३३२)

१०८. *जे अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि-एकेंद्री, ओदारिकादिक तत्थ ।
तीन शरीर प्रयोग-परिणता, ते फर्शेंद्री परिणत्त ।।

१०८. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालियतेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते फासिंदियपयोगपरिणया ।

१०९. इमज पर्याप्ति-सूक्ष्म-पृथ्वी, बादर अपज्जत्त एम ।
बादर-पृथ्वी-पर्याप्त इमहिज, कहिवा पूरव जेम ।।

१०९. जे पज्जत्तासुहुम एवं चेव । बादरअपज्जत्ता एवं चेव । एवं पज्जत्तगा वि ।

११०. इण आलावे करिनें जेहनें, जेतली इंद्री होय ।
जेता शरीर हुवै ते कहिवा, जाव सव्वट्ठसिद्ध जोय ।।

१११. पर्याप्ता जे सव्वट्ठसिद्ध नां, वैक्रिय तेजस तत्थ ।
कार्मण शरीर प्रयोग-परिणता, ते पंच इंद्रिय परिणत्त ।।

११०,१११. एवं एतेणं अभिलावेणं जस्स जति इंदियाणि सरीराणि य तस्स ताणि भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव (सं०पा०) देवपंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पयोगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिदिय जाव फासिंदियप्पयोगपरिणया । (श० ८।३५)

## दूहा

११२. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, वर्ण गंध रस फास ।
फुन संस्थान विशेषणे, छट्ठो दंडक तास ।।

११२. 'जे अपज्जत्ता सुहुमपुढवी' त्यादि वर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थानविशेषणः षष्ठः । (वृ० प० ३३२)

११३. *जे अपज्जत्ता-सूक्ष्म-पृथ्वी, एकद्री प्रयोग-परिणत्त ।
वर्ण थकी ते कृष्णे वर्णे, परिणता तास कथित्त ।।

११३. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि ।

११४. नील रक्त पीला नें धवला, गंध थकी अवलोय ।
सुगंध करि परिणत पुद्गल, दुर्गंध परिणत पिण होय ।।

११४. नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलवण्णपरिणया वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणया वि, दुब्भिगंधपरिणया वि ।

११५. रस थी तिक्त परिणता पिण छै, कटुक परिणत जेह ।
कसाय रस करि परिणत पिण ते, खाटा मीठा तेह ।।

११५. रसओ तित्तरसपरिणया वि, कडुयरसपरिणया वि, कसायरसपरिणया वि अंबिलरसपरिणया वि, महुररसपरिणया वि ।

११६. फर्श थकी कक्खड़ परिणत पिण, यावत लूखा तत्थ ।
संठाण थी परिमंडल वट्ट फुन, तंस चउरंस आयत्त ।।

११६. फासओ कक्खडफासपरिणया वि, जाव लुक्खफासपरिणया वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणया वि, वट्ट-तंस-चउरंस-आयत-संठाणपरिणया वि ।

११७. जे पज्जत्तग सूक्षम पृथ्वी, एवं चेव सुदिट्ठ ।
इम जिम अनुक्रम कर नें जाणवुं, जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठ ।।

११८. जे पर्याप्ता सव्वट्ठसिद्ध नां, जाव परिणता जाण ।
तेह वर्ण थी कृष्ण परिणता, जाव आयत संठाण ।।

११७,११८ जे पज्जत्तासुहुमपुढवि एवं चेव । एवं जहाणुपुव्वीए नेयव्वं जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाणपरिणया वि । (श० ८।३६)

*लय : कनकमंजरी चतुर विलक्षण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### दूहा

११९. ओदारिक आदिक तनु, वर्णादिक अवलोय।
ए बिहुंनैंज विशेषणे, सप्तम दंडक सोय॥

११९. एवमौदारिकादिशरीरवर्णादिभावविशेषणः सप्तमः।
(वृ० प० ३३२)

१२०. *जे अपज्जत्ता सूक्षम-पृथ्वी, एकेंद्रिय छै तत्थ।
ओदारिक तेजस नै कार्मण, तनु-प्रयोग-परिणत्त॥

१२१. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-परिणत्त।
जे पर्याप्ता सूक्षम-पृथ्वी, एवंविध अवितत्थ॥

१२०. जे अपज्जत्ता सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मासरीरपयोगपरिणया।

१२१. ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत-संठाणपरिणया वि। जे पज्जत्ता सुहुमपुढविक्काइय एवं चेव।

१२२. इम जिम अनुक्रम करि नैं जाणवूं, पूरव जेम सुदिट्ठ।
जेहनैं जेता तनु ते भणवा, जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठ॥

१२३. जेह पर्याप्त सव्वट्ठसिद्ध नां, देव पंचेंद्रिय देख।
वैक्रिय तेजस कार्मण तनु जे, जाव परिणता पेख॥

१२४. तेह वर्ण थी कृष्ण वर्ण नैं, पुद्गल-परिणत होय।
जाव आयत-संठाण-परिणता, सप्तम दंडक सोय॥

१२२, १२३. एवं जहाणुपुव्वीए नेयव्वं, जस्स जइ सरीराणि जाव जे पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सरीरपयोगपरिणया।

१२४. ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाण-परिणया वि। (श० ८।३७)

### दूहा

१२५. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, इंद्रिय नैं वर्णादि।
तास विशेषण नो हिवै, अष्टम दंडक आदि॥

१२५. इन्द्रियवर्णादिविशेषणोऽष्टमः। (वृ० प० ३३२)

१२६. *जे अपज्जत्ता-सूक्षम-पृथ्वी, एकेंद्रिय अवलोय।
फर्शेंद्रिय प्रयोग-परिणता, तेह वर्ण थी जोय॥

१२७. कृष्ण वर्ण यावत आयत हि, संठाण-परिणता देख।
पर्याप्ता-सूक्षम-पृथ्वी पिण, एवं चेव संपेख॥

१२८. इम जिम अनुक्रम पूर्वं कह्यो तिम, जेहनैं जेतली दिट्ठ।
इंद्रिय छै तसु भणवी तेतली, जाव जे पज्जत्ता सव्वट्ठ॥

१२९. पर्याप्ता जे सव्वट्ठसिद्ध वर, जाव पंचेंद्री पेख।
श्रोतेंद्रिय जावत फर्शेंद्रिय-परिणता पुद्गल शेष॥

१३०. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-संठाण।
परिणता पिण पुद्गल आख्या छै, अष्टम दंडक जाण॥

१२६. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियफासिंदिय-पयोगपरिणया ते वण्णओ।

१२७. कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाणपरिणया वि। जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एवं चेव।

१२८, १२९. एवं जहाणपुव्वीए जस्स जति इंदियाणि तस्स तति भाणियव्वाणि जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदियसो-तिंदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया।

१३०. ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयत-संठाणपरिणया वि। (श० ८।३८)

### दूहा

१३१. अपज्जत्त-सूक्ष्म-पृथ्वि ले, तनु इंद्रिय वर्णादि।
तास विशेषण नों हिवै, नवमों दंडक साधि॥

१३१. शरीरेन्द्रियवर्णादिविशेषणो नवमः।
(वृ० प० ३३२)

१३२. *जे अपज्जत्ता-सूक्षम-पृथ्वी, एकेंद्रिय अवलोय।
तीन शरीर अनैं फर्शेंद्री, प्रयोग-परिणता सोय॥

१३३. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-संठाण।
पर्याप्ता-सूक्षम-पृथ्वी नां, एवं चेव पिछाण॥

१३२. जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्माफासिंदियपयोग-परिणया।

१३३. ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाण-परिणया वि। जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय एवं चेव।

---

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३४. इम जिम अनुक्रम पूर्वे कह्यो तिम, जेहनें जेतला जाण ।
तनु इंद्री तसु कहियै तेतली, जावत इम पहिछाण ।।
१३५. पर्याप्ता जे सव्वट्ठसिद्ध अणु, जाव सुर पंचेंद्री पिछाण ।
वैक्रिय तेजस अनें कार्मण, इंद्रिय पंच सुजाण ।।

१३६. तेह वर्ण थी कृष्ण-परिणता, जाव आयत-संठाण ।
परिणता पिण पुद्गल आख्या छै, ए नवमो दंडक जाण ।।

१३७. *एह प्रयोग-परिणता नां नव, आख्या दंडक ऐन ।
श्री जिनराज तणां वच सरध्यां, मुक्ति-वधू चित चैन ।।

१३८. पुद्गल मीसा-परिणता प्रभुजी ! आख्या कितलै भेद ?
जिन कहै पंच प्रकार परूप्या, सांभल आण उमेद ।।
(मीसा पुद्गल एह कह्या जिन ।)

१३९. एकेंद्रिय-मीसा-परिणत पिण, जाव पंचेंद्रिय मीस ।
प्रभु! एकेंद्री-मीसा-परिणता, पुद्गल कतिविध दीस ?

१४०. जिन कहै पंच प्रकार परूप्या, प्रयोग-परिणत जेम ।
नव दंडक आख्या तिमहिज नव, मीसा-परिणत एम ।।

१४१. णवरं मीसा-परिणता भणवा, शेष तिमज कहिवाय ।
पूर्व ठाम प्रयोग-परिणता, इहां मीसा-परिणताय ।।
१४२. जाव पर्याप्त जेह सव्वट्ठसिद्ध, जाव आयत-संठाण ।
तेह परिणता पिण होवै छै, ए नव दंडक जाण ।।
१४३. ए नव दंडक विषे जीव जे, मूक्या पुद्गल तेह ।
ते मीसा-परिणता कहीजै, जीव-मुक्त तनु एह ।।
१४४. हे भगवंत ! वीससा-परिणता, पुद्गल कितै प्रकार ?
जिन कहै पंच प्रकार परूप्या, ते कहियै अधिकार ।।
(एह स्वभावे परिणम्या पुद्गल)

१४५. वर्ण-परिणता गंध-परिणता, रस-परिणता रेख ।
फास-परिणता भेद चतुर्थो, संठाण-परिणता शेष ।।
१४६. वर्ण-परिणता पंच प्रकारे, कृष्ण-वर्ण-परिणत्त ।
जाव शुक्ल वर्णे परिणत बहु, गंध द्विविध अवितत्थ ।।

१४७. जेम पन्नवणा धुर पद दाख्या, तिमज सर्व कहिवाय ।
यावत चरम सूत्र जिहां एहवूं, सांभलज्यो चित ल्याय ।।

*लय : कनकमंजरी चतुर विचक्षण

१३४. एवं जहाणुपुव्वीए जस्स जति सरीराणि इंदियाणि य तस्स तति भाणियव्वाणि जाव ।

१३५. जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सोइंदिय जाव फासिंदियपयोगपरिणया ।

१३६. ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आयतसंठाणपरिणया वि ।

१३७. एते नव दंडगा । (श० ८।३६)

१३८. मीसापरिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१३९. एगिंदियमीसापरिणया जाव पंचिंदियमीसापरिणया । (श० ८।४०)
एगिंदियमीसापरिणयाणं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ?

१४०. एवं जहापयोगपरिणएहिं नव दंडगा भणिया, एवं मीसा-परिणएहिं वि नव दंडगा भाणियव्वा, तहेव सव्वं निरवसेसं ।

१४१. नवरं—अभिलावो मीसापरिणया भाणियव्वं, सेसं तं चेव ।

१४२. जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव आयतसंठाणपरिणया वि । (श० ८।४१.)

१४४. वीससापरिणया णं भंते ! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१४५. वण्णपरिणया, गंधपरिणया, रसपरिणया, फासपरिणया, संठाणपरिणया ।

१४६. जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—कालवण्णपरिणया जाव सुक्किलवण्णपरिणया ।
जे गंधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुब्भिगंधपरिणया, दुब्भिगंधपरिणया ।

१४७. एवं जहा पण्णवणाए (पद १।४) तहेव निरवसेसं जाव ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४८. जे संठाण थी आयत-परिणता, वर्ण थकी पिण तेह।
कृष्ण-परिणता यावत लूखा, फर्श-परिणता जेह॥
१४९. अंक इक्यासी नो देश कह्यो ए, एक सौ तीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशाल॥

१४८. जे संठाणओ आयतसंठाणपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव लुक्खफासपरिणया वि। (श० ८।४२)

## ढाल : १३१

### दूहा

१. हिव इक पुद्गल द्रव्य जे, ते आश्री परिणाम।
चिंतवन करता छता, पूछै गोतम स्वाम॥

१. अथैकं पुद्गलद्रव्यमाश्रित्य परिणामं चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ३३२)

२. *एगे भंते! द्रव्य-पुद्गल पहचाणिए,
तेह भणी स्यूं प्रयोग-परिणत माणियै।
अथवा मीसा-परिणत तिण नैं दाखियै,
कै वीससा-परिणते वचन इक आखियै?

२. एगे भंते! दव्वे किं पयोगपरिणए? मीसापरिणए? वीससापरिणए?

३. श्री जिन भाखै प्रयोग-परिणत भाखियै,
और मीससा-परिणत पिण ते आखियै।
अनै वीससा-परिणत ते द्रव्य जाणियै,
यां तीनूं रै मांहि वचन इक आणियै॥

३. गोयमा! पयोगपरिणए वा मीसापरिणए वा वीससापरिणए वा। (श० ८।४३)

४. जो ते द्रव्य प्रयोग-परिणते ह्वै सही,
तो स्यूं मनज-प्रयोग-परिणत तसु कही।
वचन-प्रयोग-प्ररिणते तास वखाणियै,
काय-प्रयोग-परिणत तेहनैं जाणियै?

४. जइ पयोगपरिणए किं मणपयोगपरिणए? वइपयोगपरिणए? कायपयोगपरिणए?

५. जिन कहै मन-प्रयोग-परिणत छै जिको,
अथवा वचन-प्रयोग-परिणत ह्वै तिको।
अथवा काय-प्रयोग-परिणत तसु कह्यो,
यां तीनूं नो अर्थ वृत्ति थी इम लह्यो॥

५. गोयमा! मणपयोगपरिणए वा, वइपयोगपरिणए वा, कायपयोगपरिणए वा। (श० ८।४४)

### यतनी

६. मनपणै करी परिणमै तेह, इक पुद्गल परिणम्यो जेह।
मन-प्रयोग-परिणत तास, कहियै वर न्याय विमास॥

६. 'मणपओगपरिणए' त्ति मनस्तया परिणतमित्यर्थः। (वृ० प० ३३४)

७. भाषा द्रव्य प्रतै जे आम, काय जोगे करी ग्रही ताम।
वचन जोगे करी निकलतां, वच-प्रयोग-परिणत हुंतां॥

७. भाषाद्रव्यं काययोगेन गृहीत्वा वाग्योगेन निसृज्यमानं वाक्प्रयोगपरिणतमित्युच्यते। (वृ० प० ३३४, ३३५)

८. ओदारिकादिक जे काय जोग, तिण करिनैं ग्रह्या ते अमोघ।
ओदारिकादिक नीं अवलोय, वर्गणा नां द्रव्य प्रति जोय॥

८,९. औदारिकादिकाययोगेन गृहीतमौदारिकादिवर्गणाद्रव्यमौदारिकादिकायतयापरिणतं कायप्रयोगपरिणतमित्युच्यते। (वृ० प० ३३५)

*लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पंखिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. ओदारिक प्रमुख जे काय, तिण करिनैं जे परिणत ताय ।
काय-प्रयोग-परिणत जाण, इम कहियैं तास पिछाण ।।

१०. *जो मन-प्रयोग-परिणत द्रव्य होवै अछै,
स्यूं सत्य-मन-प्रयोग-परिणत जेह छै ।
असत्य-मन प्रयोग-परिणत दाखियै,
सत्य-मृषा—मिश्र-मन-प्रयोग ते आखियै ।।

१०. जइ मणपयोगपरिणए किं सच्चमणपयोगपरिणए ? मोसमणपयोगपरिणए ? सच्चामोसमणपयोगपरिणए ?

११. असत्यामृषा-मन-प्रयोगज परिणते ?
साच झूठ बिहुं नां हिज मन व्यवहार ते ।
प्रश्न चिउं मन जोग तणो गोयम भणें,
एक द्रव्य जगनाथ ! परिणमैं किणपणें ?

११. असच्चामोसमणपयोगपरिणए ?

१२. श्री जिन कहै सत्य-मन-प्रयोगज-परिणते,
तथा असत्य-मन-प्रयोग-परिणत द्रव्य ते ।
तथा मिश्र-मन-प्रयोग-परिणत छै जिको,
अथवा मन-व्यवहार-प्रयोगे छै तिको ।।

१२. गोयमा ! सच्चमणपयोगपरिणए वा, मोसमणपयोगपरिणए वा, सच्चामोसमणपयोगपरिणए वा, असच्चामोसमणपयोगपरिणए वा । (श० ८।४५)

१३. जो सत्य-मन-प्रयोग परिणत जेह छै,
स्यूं आरंभ-सत्य-मन-प्रयोगज तेह छै ।
अणारंभ-सत्य-मन-प्रयोग पिछाणियै ?
परिणते सगले ठाम विचारी आणियै ।।

१३. जइ सच्चमणपयोगपरिणए किं आरंभसच्चमणपयोगपरिणए ? अणारंभसच्चमणपयोगपरिणए ?

१४. सारंभ-सत्य-मन-प्रयोग उवेखियै,
असारंभ-सत्य-मन-प्रयोग विशेखियै ।
समारंभ-सत्य-मन-प्रयोग कहीजियै,
असमारंभ-सत्य-मन-प्रयोग लहीजियै ।।

१४. सारंभसच्चमणपयोगपरिणए ? असारंभसच्चमणपयोगपरिणए ? समारंभसच्चमणपयोगपरिणए ? असमारंभसच्चमणपयोगपरिणए ?

### यतनी

१५. आरंभ जीव-घात अवलोय, सारंभ हणवा नों मन होय ।
समारंभ कह्यो परिताप, अर्थ तीनूं तणों इम स्थाप ।।

१५. आरम्भो—जीवोपघातः····संरम्भो—वधसंकल्पः समारंभस्तु परिताप इति । (वृ० प० ३३५)

१६. *जिन कहै आरंभ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणते,
यावत असमारंभ-सत्य-मन द्रव्य ते ।
इहां आरंभ अणारंभ सत्य मन नैं कह्यो,
सावद्य निरवद्य एह न्याय गुणिजन लह्यो ।।

१६. गोयमा ! आरंभसच्चमणपयोगपरिणए वा जाव असमारंभसच्चमणपयोगपरिणए वा ।
(श० ८।४६)

१७. जो ए असत्य-मन-प्रयोग करी परिणत अछै,
स्यूं आरंभ-मृषा-मन-प्रयोगे जेह छै ?
जिम सत्य-मन तिम असत्य-मन पिण जाणियै,
इम मिश्र-मन व्यवहार-मन इम ठाणियै ।।

१७. जइ मोसमणपयोगपरिणए किं आरंभमोसमणपयोगपरिणए ? एवं जहा सच्चेणं तहा मोसेण वि । एवं सच्चामोसमणपयोगेण वि । एवं असच्चामोसमणपयोगेण वि । (श० ८।४७)

### यतनी

१८. 'अणारंभ असत्य मन जेह, तेह थी पिण पाप बंधेह ।
मन स्यूं जाणै दिन नैं रात, इण में जीव तणी नहिं घात ।।

---

*लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पंखिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. ए मन असत्य आरंभ-रहीत, पिण सावद्य पाप-सहीत ।
इमहिज मिश्र व्यवहार, सावज्ज जिन आज्ञा बार' ॥
(ज० स०)

२०. *जो वचन-प्रयोग करी नें परिणत जेह छै,
स्यूं सत्य-वचन-प्रयोग करी परिणत अछै ?
मन-प्रयोग कह्यो तिम वच पिण जाणवो,
यावत असमारंभ-प्रयोग पिछाणवो ॥

२१. जो काय-प्रयोग करी परिणत इक द्रव्य छै,
स्यूं ओदारिक शरीर काय प्रयोग छै ?
ओदारिक मिश्र-शरीर काय-प्रयोगे करी ?
वेक्रिय तनु काय ते प्रयोग करी फिरी ?

२२. वेक्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग ते ?
आहारक-तनु जे काय-प्रयोग-परिणते ?
आहारक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग है ?
कार्मण-शरीर-काय-प्रयोगे जोग है ?

२३. जिन कहै औदारिक शरीरज काय जे,
तास प्रयोग करी परिणत कहिवाय जे ।
यावत अथवा कार्मण शरीर जाणियै,
तेहिज काय प्रयोग थी परिणत ठाणियै ॥

वा०—औदारिक शरीर हीज पुद्गलखंधरूपपणैं करी उपचीयमानपणां थकी काय कहियै, ते औदारिकशरीरकाय । तेहनों जे प्रयोग ते ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग अथवा ओदारिक शरीर नों जे काय-प्रयोग ते ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग । इहां वृत्तिकार कह्यं—ए पर्याप्तक नैं हीज हुवै ।

'इहां वृत्तिकार जे मत प्रकट कर्यूं' ते विरुद्ध । पर्याप्तक अपर्याप्तक बिहुं नैं विषे पावै ते माटै । इहां हीज एक द्रव्य नीं सूत्रे पूछा कीधी । तिहां कह्यं—जे एक द्रव्य-प्रयोग-परिणत, मीसा-परिणत अथवा वीससा-परिणत । अनैं जे प्रयोग-परिणत ते मन-प्रयोग वा वचन-प्रयोग वा काय-प्रयोग-परिणत । पछै मन, वचन रा भेद कही कह्यं—जे काय-प्रयोग-परिणत ते ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत जाव कार्मण-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत । जे ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग परिणत ते एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत जाव पंचेन्द्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत । जे एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत ते पृथ्वीकाय-एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत जाव वनस्पतिकाय-एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत । जे पृथ्वी-एकेंद्रिय-ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत ते सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत अथवा बादर-पृथ्वीकाय जाव परिणत । जे सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत ते पर्याप्ता-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत अथवा अपर्याप्ता-सूक्ष्म-पृथ्वीकाय जाव परिणत इम बादर पिण ।

इहां सूत्रे पर्याप्तक, अपर्याप्तक बिहुं नैं विषे ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोग कह्यो 'ते माटै वृत्ति में पर्याप्त में हीज ए हुवै, इम कह्यं' ते विरुद्ध' । (ज० स०)

२०. जइ वइपयोगपरिणए किं सच्चवइपयोगपरिणए ? मोसवइपयोगपरिणए ? एवं जहा मणपयोगपरिणए तहा वइपयोगपरिणए वि जाव असमारंभवइपयोगपरिणए वा । (श० ८।४८)

२१. जइ कायपयोगपरिणए किं ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए ? ओरालियमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए ?

२२. वेउव्वियमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? आहारगसरीरकायपयोगपरिणए ? आहारगमीसासरीरकायपयोगपरिणए ? कम्मासरीरकायपयोगपरिणए ?

२३. गोयमा ! ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा जाव कम्मासरीरकायपयोगपरिणए वा । (श० ८।४९)

औदारिकशरीरमेव पुद्गलस्कन्धरूपत्वेनोपचीयमानत्वात् काय औदारिकशरीरकायस्तस्य यः प्रयोगः औदारिकशरीरस्य वा यः कायप्रयोगः स तथा । अयं च पर्याप्तकस्यैव वेदितव्यस्तेन यत् परिणतं तत्तथा ।
(वृ० प० ३३५)

* लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पंखिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालियमिस्सा-सरीरकायप्पओगपरिणए—ओदारिकज उत्पत्ति काल नैं विषे असंपूर्ण छतो मिश्र कार्मण करिकै ते ओदारिक मिश्र, तेहीज ओदारिक-मिश्रक, ते लक्षण शरीर ते ओदारिक मिश्रक-शरीर। तेहीज काय, तेहनों जे प्रयोग अथवा ओदारिक-मिश्रक-शरीर नों जे काय-प्रयोग ते ओदारिक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग। तिण करिकै परिणत जे ते ओदारिक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। ए वली ओदारिक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग उत्पत्ति काले हुवै ते अपर्याप्तक नैं हीज जाणवो।

जीव, अणंतरं कहितां च्यवन थी अनंतर, ते अंतर रहित एतलै चव्यां पछै उत्पत्ति समय कार्मण जोगे करी आहार लियै तिण उपरंत मिश्र करिके आहार लियै ज्यां लगै शरीर नीपजै त्यां लगै इति गाथार्थः।

औदारिकमुत्पत्तिकालेऽसम्पूर्णं सत् मिश्रं कार्म्मणेनेति औदारिकमिश्रं तदेवौदारिकमिश्रकं तल्लक्षणं शरीरमौदारिकमिश्रकशरीरं तदेव कायस्तस्य यः प्रयोगः औदारिकमिश्रकशरीरस्य वा यः कायप्रयोगः स औदारिकमिश्रकशरीरकायप्रयोगस्तेन परिणतं यत्तत्तथा, अयं पुनरौदारिकमिश्रकशरीरकायप्रयोगोऽपर्याप्तकस्यैव वेदितव्यः।

जोएण कम्मएणं आहारेई अणंतरं जीवो।
तेण परं मीसेणं जाव सरीरस्स निप्फत्ती॥

उत्पत्त्यनन्तरं जीवः कार्मणेन योगेनाहारयति ततो यावच्छरीरस्य निष्पत्तिः (शरीरपर्याप्तिः) तावदौदारिकमिश्रेणाहारयति।

इम प्रथम कार्मण करिकै ओदारिक शरीर नों मिश्र उत्पत्ति आश्री कह्यो, तेहनां प्रधानपणां थकी। वली जिवारे ओदारिकशरीरी वैक्रिय-लब्धि सहित मनुष्य अनैं पंचेंद्रिय तिर्यञ्च तथा पर्याप्त-बादर-वायुकायिक वैक्रिय करै, तिवारै ओदारिक-काय-योग हीज वर्तमान प्रदेशां प्रते विक्षेपी नैं वैक्रिय शरीर योग्य पुद्गल प्रतै ग्रही नैं ज्यां लगै वैक्रियशरीर सम्पूर्ण न थयो त्यां लगै वैक्रिय करिकै ओदारिक शरीर नों मिश्रपणो। प्रारम्भकपणैं करी ते ओदारिक नैं प्रधानपणां थकीज ओदारिक-मिश्र कहियै। इम आहारक करिकै पिण ओदारिक शरीर नों मिश्रपणो जाणवो।

एवं तावत् कार्म्मणेनौदारिकशरीरस्य मिश्रता उत्पत्तिमाश्रित्य तस्य प्रधानत्वात्, यदा पुनरौदारिकशरीरी वैक्रियलब्धिसंपन्नो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः पर्याप्तबादरवायुकायिको वा वैक्रियं करोति तदा औदारिककाययोग एव वर्तमानः प्रदेशान् विक्षिप्य वैक्रियशरीरयोग्यान् पुद्गलानुपादाय यावद् वैक्रियशरीरपर्याप्त्या न पर्याप्तिं गच्छति तावद्वैक्रियेणौदारिकशरीरस्य मिश्रता, प्रारम्भकत्वेन तस्य प्रधानत्वात्, एवमाहारकेणाप्यौदारिकशरीरस्य मिश्रता वेदितव्येति।

वेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए—वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत। इहां वृत्तिकार कह्यो—वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग वैक्रिय-पर्याप्तक नैं हुवै। ए पिण विरुद्ध। इण वैक्रिय नैं अधिकारे हीज वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग देवता नां पर्याप्तक, अपर्याप्तक बिहुं में कह्यु। तिहां छेहड़ै एहवूं पाठ छै—

जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतगवेमाणियदेवपंचिंदिय-वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए वा, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध जाव कायपयोगपरिणते वा।

इहां कह्युं—सर्वार्थसिद्धि नां देवता पर्याप्ता, अपर्याप्ता बिहुं में वैक्रिय शरीर काय प्रयोग हुवै। ते माटै वृत्ति में वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग पर्याप्तक में हीज कह्युं, ते विरुद्ध।

इह वैक्रियशरीरकायप्रयोगो वैक्रियपर्याप्तकस्येति

'वेउव्वियमीसासरीरकायपयोगप्परिणए।' ए वैक्रिय-मिश्रक-काय-प्रयोग देवता नारकी नैं विषे ऊपजता छता अपर्याप्ता नैं। तेहनों मिश्रपणो वैक्रिय शरीर नैं कार्मण करिकै हीज हुवै।

अनै देवता नारकी नां पर्याप्ता नै कार्मण करिकै वैक्रिय नों मिश्र न हुवै, ते माटे देवता नारकी नां पर्याप्ता नैं वैक्रिय नुं मिश्र न कह्यं। अनै देवता नारकी भवधारणी उत्तर वैक्रिय करै, तिवारै पर्याप्ता नैं वैक्रिय नुं मिश्र पन्नवणा सूत्रे कह्यं छै, पिण ते अप्रधानपणां थकी तेहनुं कथन इहां कह्यं नथी।

इह वैक्रियमिश्रकशरीरकायप्रयोगो देवनारकेषूत्पद्यमानस्यापर्याप्तकस्य, मिश्रता चेह वैक्रियशरीरस्य कार्मणेनैव। (वृ० प० ३३५)

उत्तरवैक्रियारंभे च भवधारणीयं वैक्रयमिश्रं तद्वलेनोत्तरवैक्रियारम्भात्, भवधारणीयप्रवेशे चोत्तरवैक्रियमिश्रं, उत्तरवैक्रियबलेन भवधारणीये प्रवेशात्।
(प्रज्ञा० वृ० प० ३२४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनैं मनुष्य, तिर्यञ्च-पंचेंद्रिय और वायुकाय लब्धि-वैक्रिय परित्याग कर्ये छते ओदारिक प्रवेश काल नैं विषे ओदारिक उपादान अर्थे प्रवृत्त्ये छते वैक्रिय नां प्रधानपणां थकी ओदारिक करिकै पिण वैक्रिय मिश्रपणो हुवै ।

'आहारगसरीरकायप्पयोगपरिणए ।' आहारग-शरीर-काय-प्रयोग—आहारक-शरीर नीपनैं छते ते वेला ते आहारक नां हीज प्रधानपणां थकी आहारक-शरीर-काय-प्रयोग कहियैं ।

'आहारगमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए' आहारक-मिश्रक-शरीर-काय-प्रयोग आहारक अनैं ओदारिक नीं मिश्रता थी हुवै, ते आहारक तजवैं करि ओदारिक ग्रहण सन्मुख नैं । एतलै जे आहारकशरीरी थई कार्य करी वली ओदारिक प्रति ग्रहै ते आहारक नां प्रधानपणां थकी ओदारिक प्रवेश प्रति व्यापार नां भाव थी, ज्यां लगै सर्वथा आहारक न तजै त्यां लगै ओदारिक करिकै आहारक नों मिश्रपणो हुवै ।

इहां शिष्य पूछै—ते ओदारिक शरीर प्रतै तेणे जीवे सर्वथा नथी मूक्यो, पूर्वे ओदारिक शरीर नीपनो रहै छै हीज, ते ओदारिक प्रतै किम ग्रहै ? गुरु कहै—सत्य रहै छै, तो पिण ते ओदारिक-शरीर ग्रहण करिवा नैं अर्थे प्रवर्तै । इम ग्रहण करै हीज, इमुं कहियै ।

'कम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए' कार्मण-शरीर-काय-प्रयोग विग्रह गति नैं विषे वली केवली समुद्घात प्राप्त नैं तीजे चोथैं पंचमे समय नैं विषे हुवै ।

इम ओदारिक-शरीर-काय-प्रयोगादिक नीं व्याख्या कही । वलि मिश्र-काय-प्रयोगादिक नीं व्याख्या पंचम कर्म ग्रंथ तेहनी शतक टीका में कही तिम कहै छै—ओदारिक-मिश्र ते ओदारिक हीज अपरिपूर्ण औदारिक-मिश्र कहियैं । जिम गुड-मिश्र दधि, गुडपणैं न कहियै, दधिपणैं पिण न कहियैं । ते मिश्र 'दधि' 'गुड' करिकै अपरिपूर्णपणां थकी । इम ओदारिक-मिश्र कार्मण करिकै हीज ओदारिकपणैं करी अनैं कार्मणपणैं करी पिण कहि सकियै नहीं । अपरिपूर्णपणां थकी तेहनैं ओदारिक-मिश्र कहियै । इम वैक्रिय आहारक मिश्र पिण । इति ए शतक टीका नैं अनुसारे कह्यो ।

वैक्रिय करिकै ओदारिक मिश्र अनैं आहारक करिकै ओदारिक मिश्र इमहिज जाणवो तथा ओदारिक करिकै वैक्रिय मिश्र अनैं ओदारिक करिकै आहारक मिश्र इमहीज विचारी कहिवो ।

लब्धिवैक्रियपरित्यागे त्वौदारिकप्रवेशाद्धायामौदारिकोपादानाय प्रवृत्ते वैक्रियप्राधान्यादौदारिकेणापि वैक्रियस्य मिश्रतेति ।

इहाहारकशरीरकायप्रयोग आहारकशरीरनिर्वृत्तौ सत्यां तदानीं तस्यैव प्रधानत्वात् ।

इहाहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग आहारकस्यौदारिकेण मिश्रतायां, स चाहारकत्यागेनौदारिकग्रहणाभिमुखस्य, एतदुक्तं भवति—यदाहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावान्न परित्यजति यावत् सर्वथैवाहारकं तावदौदारिकेण सह मिश्रतेति ।

ननु तत्तेन सर्वथाऽमुक्तं पूर्वनिर्वर्त्तितं तिष्ठत्येव तत्कथं गृह्णाति ? सत्यं तिष्ठति तत् तथाऽप्यौदारिकशरीरोपादानार्थं प्रवृत्त इति गृह्णात्येवेत्युच्यत इति ।

इह कार्म्मणशरीरकायप्रयोगो विग्रहे समुद्घातगतस्य च केवलिनस्तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु भवति ।

प्रज्ञापनाटीकानुसारेणौदारिकशरीरकायप्रयोगादीनां व्याख्या, शतकटीकानुसारतः पुनर्मिश्रकायप्रयोगाणामेवं—औदारिकमिश्र औदारिक एवापरिपूर्णो मिश्र उच्यते, यथा गुडमिश्रं दधि, न गुडतया नापि दधितया व्यपदिश्यते तत् ताभ्यामपरिपूर्णत्वात्, एवमौदारिकं मिश्रं कार्मणेनैव नौदारिकतया नापि कार्म्मणतया व्यपदेष्टुं शक्यमपरिपूर्णत्वादिति तस्यौदारिकमिश्रव्यपदेशः, एवं वैक्रियाहारकमिश्रावपीति । (वृ० प० ३३५, ३३६)

## सोरठा

२४. जो ओदारिक जोय, तनु-काय-प्रयोग-परिणते ।
स्यूं एकेंद्री होय, यावत पंचेंद्री अछै ?

२५. तब भाखै जिनराय, एकेंद्री तनु काय पिण ।
जाव पंचेंद्री-काय-प्रयोग-परिणत द्रव्य छै ॥

२६. जो एकेंद्री होय, तो स्यूं पृथ्वीकाय छै ।
जाव वणस्सइ सोय ? जिन कहै पांचूं परिणते ॥

२४. जइ ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए ? जाव पंचिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए ?

२५. गोयमा ! एगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा जाव पंचिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा । (श० ८।५०)

२६. जइ एगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरकायपयोगपरि-



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णए ? जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालियसरीर-
कायपयोगपरिणए ?
गोयमा ! पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरकाय-
पयोगपरिणए वा जाव वणस्सइकाइयएगिंदिय-
ओरालियसरीरकायपयोगपरिणए वा ।
(श० ८।५१)

२७. जो छै पृथ्वीकाय, स्यूं सूक्षम बादर पृथ्वी ?
जिन कहै बिहुं कहिवाय, यावत प्रयोग-परिणते।

२७. जइ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरकायपयोग-
परिणए किं सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ?
बादरपुढविक्काइय जाव परिणए ?
गोयमा ! सुहुमपुढविकाइयएगिंदिय जाव परिणए
वा बादरपुढविक्काइय जाव परिणए वा ।
(श० ८।५२)

२८. जो सूक्षम पृथ्वीकाय, तो पर्याप्ता कै अपज्जत्ता।
जिन कहै बिहुं कहाय, बादर पृथ्वी पिण इमज ।।

२८. जइ सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए किं पज्जत्ता
सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ?
अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ?
गोयमा ! पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए
वा, अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए वा।
एवं बादरा वि ।

२९. जाव वणस्सइ एम, सूक्षम बादर भेद बे ।
पज्जत्त अपज्जत्त तेम, भेद बिहुं सगलां तणां ।।

२९. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं चउक्कओ भेदो ।

३०. बे० ते० चउरिंद्री ताय, पज्जत्त अपज्जत्त भेद बे।
ओदारिक-तनु-काय, प्रयोग-परिणत द्रव्य ते ।।

३०. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दुयओ भेदो— पज्जत्तगा
य अपज्जत्तगा य । (श० ८।५३)

३१. जो पंचेंद्री होय, स्यूं तिरि-पंचेंद्री मनुष्य।
जिन भाखै बिहुं जोय, यावत परिणत द्रव्य छै ।।

३१. जइ पंचिदियओरालियसरीरकायपयोगपरिणए किं
तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरकायपयोग-
परिणए ? मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ?
गोयमा ! तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा मणुस्स-
पंचिंदिय जाव परिणए वा । (श० ८।५४)

३२. जो तिरि-पं०इम होय, स्यूं जलचर तिर्यंच ते।
थलचर खेचर जोय ? पूर्ववत चिउं भेद ए ।।

३२. जइ तिरिक्खजोणिय जाव परिणए किं जलचरतिरिक्ख-
जोणिय जाव परिणए ? थलचर-खहचर जाव
परिणए ?

३३. संमूच्छिम बे भेद, पर्याप्त अपर्याप्तो।
इम गर्भेज संवेद, च्यार भेद इम कीजियै ।।

३३. एवं चउक्कओ भेदो जाव खहचराणं । (श० ८।५५)

३४. जो मनुष्य-पंचेंद्री जान, तो संमूच्छिम गर्भेज मनु ?
जिन कहै दोनूं मान, हिव पूछा गर्भेज नीं ।।

३४. जइ मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए किं संमुच्छिम-
मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए ? गब्भवक्कंतियमणुस्स
जाव परिणए ?
गोयमा ! दोसु वि । (श० ८।५६)

३५. जो गर्भेज-मनु ताय, तो स्यूं पज्जत्त अपज्जत्ता ?
जिन कहै बिहुं पाय, ओदारिक जाव परिणते ।।

३५. जइ गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए किं पज्जत्ता-
गब्भवक्कंतिय जाव परिणए ? अपज्जत्तागब्भ-
वक्कंतिय जाव परिणए ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. ए सहु ठाम कहाय, ओदारिक तनु काय जे।
प्रयोग-परिणत थाय, कहिवो अथवा द्रव्य इक।।
३७. आख्यो ऊदारीक-शरीर-काय-प्रयोग करि।
परिणत द्रव्य सधीक, कहूं ओदारिक-मिश्र हिव।।
३८. जो ओदारिक-मीस, तनु-काय-प्रयोगे परिणते।
स्यूं एकेंद्रिय दीस, कै यावत पंचेंद्रिय।।

गोयमा ! पज्जत्तागब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा, अपज्जत्तागब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा। (श० ८।५७)

३८. जइ ओरालियमीससरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदियओरालियमीससरीरकायपयोगपरिणए ? ....जाव पंचिंदियओरालिय जाव परिणए ?

३९. उत्तर जिन समभाव, जोग ओदारिक आखियो।
तिमहिज एह आलाव, जोग ओदारिक-मिश्र नों।।

३९. गोयमा ! एगिंदियओरालियमीससरीरकायपयोग-परिणए एवं जहा ओरालियसरीरकायपयोगपरिणएणं आलावगो भणिओ तहा ओरालियमीससरीरकायप-योगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो।

४०. णवरं बादर वाय, गर्भज-तिरि गर्भज-मनु।
पज्जत्त अपज्जत्त मांय, ओदारिक नो मिश्र हुवै।।

४०. नवरं—बादरवाउक्काइय-गब्भवक्कंतियपंचिंदियति-रिक्खजोणिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं—एएसि णं पज्जत्तापज्जत्तगाणं।

४१. शेष तणां सुजगीस, अपर्याप्ता विषेज ह्वै।
ओदारिक नो मीस, पर्याप्ता में नहिं हुवै।।

४१. सेसाणं अपज्जत्तगाणं। (श० ८।५८)

४२. जो वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग करी परिणत हुवै।
तो एकेंद्री मांय, कै पंचेंद्री वैक्रिय ?

४२. जइ वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदिय-वेउव्वियसरीरकायपयोगपरिणए ? पंचिंदियवेउव्विय-सरीर जाव परिणए ?

४३. उत्तर दे जगभाण, एकेंद्री जाव परिणते।
तथा पंचेंद्री जाण, जाव परिणते ह्वै अछै।।

४३. गोयमा ! एगिंदिय जाव परिणए वा, पंचिंदिय जाव परिणए वा। (श० ८।५९)

४४. जो एकेंद्री मांय, तो स्यूं वाऊकाय में।
वलि अवाऊकाय, जाव एकेंद्री परिणते ?

४४. जइ एगिंदिय जाव परिणए किं वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ? अवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए ?

४५. जिन कहै वाऊकाय, एकेंद्री जाव परिणते।
नहीं अवाऊकाय, वाऊ विण वेक्रै नहीं।।
४६. इण आलावे करि जाण, पन्नवण पद इकवीस में।
अवगाहन संठाण, वैक्रिय शरीर तिहां कह्यो।।
४७. तिणहिज रीत पिछाण, सर्व पाठ भणवो इहां।
जाव पर्याप्तक जाण, सर्वार्थसिद्ध लग अछै।।
४८. पज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध देव, पंचेंद्री वैक्रिय तनु।
काय-प्रयोग कहेव, परिणत छै इक द्रव्य ते।।

४५. गोयमा ! वाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए, नो अवाउक्काइयएगिंदिय जाव परिणए।

४६. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे (प० २१। ५०) वेउव्वियसरीरं भणियं।

४७, ४८. तहा इह वि भाणियव्वं जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पातीतावेमाणियदेवपंचिंदियवेउ-व्वियसरीरकायपयोगपरिणए वा।

४९. तथा अपज्जत्ता जाण, सर्वार्थसिद्ध प्रवर सुर।
जाव काय पहिछाण, प्रयोग-परिणत द्रव्य ते।।
५०. जो वेक्रै मीस शरीर-काय प्रयोगज परिणते।
स्यूं एकेंद्री समीर, कै यावत पंचेंद्रिय।।

४९. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए वा। (श० ८।६०)

५०. जइ वेउव्वियमीससरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदियमीससरीरकायपयोगपरिणए ? जाव पंचिंदिय-मीससरीरकायपयोगपरिणए ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१. आख्यो वैक्रिय जेम, कहिवो वैक्रिय-मिश्र तिम।
णवरं विशेष एम, वैक्रिय-मिश्र केहनैं?
५२. सुर नारकी अपज्जत्त, मिश्र वैक्रिय तेह में।
शेष तणैंज पज्जत्त, जोग वैक्रिय-मिश्र है॥
५३. 'इहां वैक्रिय-मीस, देव नारकी नैं विषे।
अपर्याप्त कहीस, पर्याप्ता में नहिं कह्यो॥
५४. अपज्जत्त उत्पत्ति ताहि, मिश्र कार्मण जोग करि।
पूर्ण वैक्रिय नांहि, वैक्रिय-मिश्र त्यां लगै॥
५५. नारक सुर पर्याप्त, वैक्रिय तनु भवधारणी।
उत्तर वैक्रिय व्याप्त, करतां नैं वलि पेसतां॥
५६. भवधारणी तद्रूप, करतां उत्तर वैक्रिय।
पूर्ण न थयो रूप, त्यां लग वैक्रिय नुं मिश्र॥
५७. उत्तर-वैक्रिय धार, भवधारणी में पेसतां।
कहियै छै तिणवार, उत्तर-वैक्रिय नुं मिश्र॥
५८. भवधारणी विचार, करतां उत्तर-वैक्रिय।
वलि पेसतां धार, कहियै वैक्रिय नुं मिश्र॥
५९. नारक सुर सुजगीस, चिउं मन नैं चिउं वचन रा।
वैक्रिय वैक्रियमीस, ए दस बहु वचनै सदा॥
६०. उत्पत्ति विरह निहाल, तिण वेला पिण ए दसूं।
पन्नवण सूत्र विशाल, सोलम पद में आखियो'[1]॥
६१. सुर नारकी इण न्याय, पर्याप्त वैक्रिय मिश्र है।
तास कथन इहां नांय, अप्रधानपणो ते भणी॥
६२. भवधारण वेकैह, उत्तर वैक्रिय तिण कियो।
वैक्रिय बिहुं कहेह, तिण सूं प्रधानपणो नहीं॥
६३. कार्मण जोगे मीस, तास प्रधानपणैं करी।
अपर्याप्त कहीस, पर्याप्ता में ए नहीं॥
६४. नारक सुर इण न्याय, कार्मण करि वैक्रिय मिश्र।
नहीं पर्याप्त मांय, तिण आश्रयी ए पाठ है॥
६५. मनुष्य-तिर्यंच पर्याप्त, वैक्रिय शरीर करै तिको।
पूर्व ओदारिक व्याप्त, करिवा लागो वैक्रिय॥
६६. पूर्ण वैक्रिय नांहि, ओदारिक मिश्र ज्यां लगै।
ओदारिक नो ताहि, प्रधानपणुं छै ते भणी।

५१. *एवं जहा वेउव्वियं तहा* वेउव्वियमीसगं वि, नवरं—

५२. देवनेरइयाणं अपज्जत्तगाणं, सेसाणं पज्जत्तगाणं।

---

१. प्रयोग गति के पन्द्रह प्रकार बतलाए गए हैं। नारक और देवों में उन पन्द्रह प्रकारों में से ग्यारह प्रकार पाए जाते हैं। यह उल्लेख पण्णवणा १६।२० में है। प्रस्तुत ढाल के ५९वें और ६० वें पद्यों में जयाचार्य ने नारक और देवों के योग के दस प्रकार बतलाए हैं। यह विसंगति नहीं, विवक्षा है। नारक और देवों में कार्मण योग अपर्याप्तावस्था में ही होता है, उसके बाद नहीं। उसकी विवक्षा न करने के कारण यहां उनमें दस योग बतलाए गए हैं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. प्रवेश करतां जोय, प्रधानपणो वैक्रिय तणो।
तिण कारण अवलोय, जोग वैक्रिय मिश्र ए।
६८. इहां ओदारिक नों भेल, वैक्रिय पुद्गल साथ जे।
जे मनुष्य तिर्यंच सुमेल, ओदारिक वैक्रिय मिश्र॥
(ज० स०)

६९. जाव पर्याप्त जेह, सर्वार्थसिद्ध सुर प्रवर।
जाव परिणत नहिं एह, वैक्रिय मिश्र प्रयोग प्रति॥
७०. अपर्याप्त समीर, सव्वट्ठसिद्ध पंचेंद्रिय।
वैक्रिय मिश्र शरीर, काय प्रयोगे परिणते॥
७१. जो आहारक-तनु-काय-प्रयोग-परिणत द्रव्य तै।
स्यूं मनुष्य आहारक थाय, कै मनुष्य बिना आहारक हुवै?

७२. जिम ओगाहण संठाण, पन्नवण पद इकवीस में।
यावत ऋद्धिपत्त जाण, प्रमत्तसंयत सम्यक्-दृष्टि॥
७३. पर्याप्त संखेज्ज वास, आयू तणो धणी तिको।
आहारक शरीर तास, काय प्रयोगे परिणते॥

७४. रिद्ध पाम्या विण तास, प्रमत्त-संयत सम्यक्दृष्टि।
पर्याप्त संखेज्ज वास, आहारक जाव परिणत नहीं॥
७५. जो आहारक मिश्र तनु काय, प्रयोग करि परिणत हुइं।
तो मनुष्य विषे कहिवाय, कै मनुष्य विना आहारक मिश्र?
७६. आहारक आख्यो जेम, तिमहिज आहारक-मिश्र पिण।
समस्त भणवो तेम, वृत्तिकार तिहां इम कह्यु॥
७७. आहारक करत जगीस, पूर्ण न थये पूतलो।
ओदारिक नों मीस, प्रधानपणो ओदारिक नों॥
७८. आहारक तनु निपजाय, ते कार्य करि पुनरपि।
ओदारिक नां ताय, ग्रहण करै पुद्गल प्रतै॥
७९. प्रवेश में व्यापार, प्रधानपणों आहारक तणों।
आहारकमिश्र तिवार, ऊदारिक सह मिश्रता॥

८०. जो कार्मण शरीर काय-प्रयोग करि परिणत हुइं।
स्यूं एकेंद्री थाय, कै यावत पंचेंद्रिय?

८१. भाखै तब जगभाण, एकेंद्रिय कार्मण तनु।
जिम ओगाहण संठाण, भेद कार्मण तिम इहां॥

६९. जाव नो पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए

७०. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदियवेउव्वियमीसासरीरकायपयोगपरिणए। (श० ८।६१)

७१. जइ आहारगसरीरकायपयोगपरिणए किं मणुस्साहारगसरीरकायपयोगपरिणए? अमणुस्साहारग जाव परिणए?

७२,७३. एवं जहा ओगाहणसंठाणे (प० २१।७२) जाव इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउय जाव परिणए

'जहा ओगाहणसंठाणे' त्ति प्रज्ञापनायामेकविंशतितमपदे। (वृ० प० ३३६)

७४. नो अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउय जाव परिणए। (श० ८।६२)

७५. जइ आहारगमीसासरीरकायपयोगपरिणए किं मणुस्साहारगमीसासरीरकायपयोगपरिणए?

७६. एवं जहा आहारगं तहेव मीसगं पि निरवसेसं भाणियव्वं। (श० ८।६३)

७८,७९. यदा आहारकशरीरी भूत्वा कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदरिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावान्न परित्यजति यावत्सर्वथैवाहारकं तावदौदारिकेण सह मिश्रतेति[1],
(वृ० प० ३३५)

८०. जइ कम्मासरीरकायपयोगपरिणए किं एगिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए? जाव पंचिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए?

८१. गोयमा! एगिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए, एवं जहा ओगाहणसंठाणे कम्मगस्स भेदो तहेव इह वि

---

१. पृ० ३१८ के दूसरे पेराग्राफ में वृत्ति का यह अंश उद्धृत है। किन्तु यहां जोड़ की गाथाओं में वही प्रसंग उल्लिखित है। इसलिए वृत्ति का वही अंश यहां उद्धृत किया गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. जाव पर्याप्त-सव्वट्ठ-अणुत्तर उत्पन्न जाव सुर।
पंचिंदि-कम्म-तनु दिट्ठ, काय प्रयोगे परिणते॥

८३. अपर्याप्ता विचार, सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तर तणां।
जाव परिणते धार, विकल्प करि इक द्रव्य ते॥

वा०—'इहां सर्वार्थसिद्ध नां देवता में पर्याप्ता में अथवा अपर्याप्ता में कार्मण कह्यु ते कार्मण शरीर जाणवो। पिण कार्मण जोग नो इहां कथन नथी। जे भणी तेहनां अपर्याप्ता में कार्मण न हुवै, ते माटै इहां कार्मण जोग नो कथन न संभवै। पन्नवणा नां इक्कीसमा पद नैं विषे पिण कार्मण शरीर कह्यो छै, तेहीज शरीर इहां लेखवणो।' (ज० स०)

८४. जो मीसा-परिणत होय, स्यूं मन-मीसा-परिणते?
वच-मिश्र-परिणत जोय, काय-मिश्र-परिणत हुइं?

८५. भाखै श्री जिनराय, मन-मीसा-परिणत हुइं।
तथा वचन-मिश्र थाय, काय-मिश्र-परिणत तथा॥

८६. जो मन-मिश्र जगीस, स्यूं सत्य-मन-मीसा हुइं?
कै असत्य-मन-मीस, कै मिश्र मनैपरिणत हुइं[1]॥

८७. प्रयोग-परिणत जेम, मीसा-परिणत पिण तिमज।
भणवो समस्त एम, जाव पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्ध॥

८८. अणुत्तर उत्पन्न जोय, जाव देव पंचेंद्रिय।
कर्मशरीरा सोय, मीसा-परिणत ह्वै तथा॥

८९. अपर्याप्ता विचार, सर्वार्थसिद्ध जाव ते।
कर्म मिश्र अवधार, परिणत छै इक द्रव्य तथा॥

९०. जदि वीससा जोय, परिणत ए स्वभाव करि।
तो वर्ण-परिणत होय, गंध रस फर्श संठाण ते?

९१. आखै जिन अवितत्थ, वर्ण-परिणत द्रव्य इक।
तथा गंध-परिणत्त, अथवा रस-परिणत हुइं॥

९२. अथवा परिणत फास, अथवा संठाणे करि।
परिणत होवै तास, एक द्रव्य पुद्गल तणो॥

९३. जो वर्ण-परिणत होय, तो स्यूं परिणत कृष्ण वर्ण।
नील पीत अवलोय, रक्त शुक्ल परिणत हुइं[2]?

९४. भाखै श्री जिनराय, कृष्ण वर्ण परिणत हुइं।
अथवा जाव कहाय, शुक्ल वर्ण परिणत अछै॥

९५. जो गंध-परिणत होय, सुगंध दुर्गंध परिणत?
जिन कहै सुगंध जोय, अथवा दुर्गंध परिणते॥

८२. जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पातीतग-वेमाणियदेवपंचिंदियकम्मासरीरकायपयोगपरिणए वा।

८३. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए वा। (श० ८।६४)

८४. जइ मीसापरिणए किं मणमीसापरिणए? वइमीसा-परिणए? कायमीसापरिणए?

८५. गोयमा! मणमीसापरिणए वा, वइमीसापरिणए वा, कायमीसापरिणए वा। (श० ८।६५)

८६. जइ मणमीसापरिणए किं सच्चमणमीसापरिणए? मोसमणमीसापरिणए?

८७,८८. जहा पयोगपरिणए तहा मीसापरिणए वि भाणियव्वं निरवसेसं जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणु-त्तरोववाइय जाव देवपंचिंदियकम्मासरीरगमीसा-परिणए वा

८९. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव कम्मा-सरीरमीसापरिणए वा। (श० ८।६६)

९०. जइ वीससापरिणए किं वण्णपरिणए? गंधपरिणए? रसपरिणए? फासपरिणए? संठाणपरिणए?

९१. गोयमा! वण्णपरिणए वा, गंधपरिणए वा, रसपरिणए वा,

९२. फासपरिणए वा, संठाणपरिणए वा। (श० ८।६७)

९३. जइ वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए जाव सुक्किलवण्णपरिणए?

९४. गोयमा! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किलवण्ण-परिणए वा। (श० ८।६८)

९५. जइ गंधपरिणए किं सुब्भिगंधपरिणए? दुब्भिगंध-परिणए?

गोयमा! सुब्भिगंधपरिणए वा दुब्भिगंधपरिणए वा। (श० ८।६९)

---

१. प्रस्तुत ढाल की गाथा ८६ में मिश्र-परिणत मन के तीन भेद स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। सामने उद्धृत पाठ में समर्पण का पाठ है। इससे मूल प्रतिपाद्य में कोई अन्तर नहीं आता।

२. यहां जोड़ में पाठ पूरा है, किन्तु अंगसुत्ताणि में संक्षिप्त पाठ है, इसलिए सामने उसी को उद्धृत किया है। अगली गाथा में जोड़ भी संक्षिप्त पाठ के आधार पर है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६. जो रस-परिणत रेख, स्यूं तीखै रस परिणते ?
पूछा तास संपेख, पांचूंइ रस नीं करी ।।
९७. भाखै श्री जगभाण, तिक्त रसे परिणत हुई ।
अथवा यावत जाण, परिणत मधुर रसे करी ।।
९८. जो परिणत है फास, स्यूं कक्खड़ परिणत हुई ?
यावत लुक्ख विमास, पूछा ए एक द्रव्य नीं ।।
९९. भाखै श्री जिन भेव, कक्खड़ फर्श परिणते ।
अथवा जाव कहेव, लुक्ख फर्श करि परिणते ।।
१००. जो परिणत संठाण, तो परिमंडल वट्ट वलि ।
परिणत तंस पिछाण, चउरंस आयत परिणते[1] ?
१०१. उत्तर दे जिनदेव, परिमंडल परिणत हुई ।
अथवा जाव कहेव, आयत परिणत द्रव्य इक ।।

१०२. *इक द्रव्य आश्री एह त्रिविध करि आखिया,
प्रथम जीव प्रयोग परिणते भाखिया ।
मीसा दूजो भेद कै वीससा तीसरो,
झीणी चरचा एह चतुर दिल में धरो ।।
१०३. अष्टम शतके प्रथम उदेशक देश ही,
सौ इकतीसमीं ढाल विशाल विशेष ही ।
भिक्षु भारीमाल ऋषराय पसाय सोभावियो,
'जय-जश' संपति हरष परम सुख पावियो ।।

९६. जइ रसपरिणए किं तित्तिरसपरिणए ? पुच्छा ।

९७. गोयमा ! तित्तिरसपरिणए वा, जाव महुररसपरिणए वा । (श० ८।७०)

९८. जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए ?

९९. गोयमा ! कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए । (श० ८।७१)

१००. जइ संठाणपरिणए—पुच्छा ।

१०१. गोयमा ! परिमंडलसंठाणपरिणए वा जाव आयतसंठाणपरिणए वा । (श० ८।७२)

## ढाल : १३२

### दूहा

१. पूछा हिव बे द्रव्य नीं, श्री गोतम गुणखान ।
देव जिनेंद्र प्रतै करै, उत्तर दे भगवान ।।
२. हे भदंत ! बे द्रव्य, स्यूं प्रयोग-परिणता होय ?
मीस-परिणता छै प्रभु ! वलि वीससा जोय ?
३. जिन कहै बे द्रव्य प्रयोग करि, तथा मीस बे चंग ।
तथा वीससा द्रव्य बे, एक संयोग त्रि भंग ।।
४. इक प्रयोग करि परिणते, मीस-परिणते एक ।
अथवा एक प्रयोग करि, एक वीससा देख ।।

१. अथ द्रव्यद्वयं चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ३३६)

२. दो भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसापरिणया ? वीससापरिणया ?

३. गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा ।

४. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, अहवेगे पयोगपरिणए, एगे वीससापरिणए,

---

* लय : नदी जमुना रै तीर उड़ै दोय पंखिया

१. यहां जोड़ में पाठ पूरा है, पर अंगसुत्ताणि में संक्षिप्त पाठ है । इसलिए सामने वही पाठ उद्धृत किया गया है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. अथवा इक मीसा-परिणत, एक वीससा जाण।
द्विकसंजोगिक भंग त्रिण, आख्या एह पिछाण।।
६. जो प्रयोग करि परिणता, तो स्यूं मनः-प्रयोग ?
वचन-प्रयोगे परिणता, काय-प्रयोगे जोग ?
७. जिन कहै मन-प्रयोग बिहुं, तथा वचन बिहुं भंग।
तथा काय-प्रयोग बिहुं, एक संजोग त्रि भंग।।
८. मन-प्रयोग करि इक द्रव्य, वचन-प्रयोगे एक।
अथवा इक मन द्रव्य करी, इक द्रव्य काय संपेख।।
९. अथवा इक द्रव्य वचन करि, काय प्रयोगे एक।
द्विकसंजोगिक ए त्रिहुं, आख्या भंग विशेख।।

१०. *जो मन-प्रयोगे परिणत होय, स्यूं सत्य-मन-प्रयोगे जोय।
असत्य-मन मिश्र-मन जान, मन असत्यामृषा पिछान ?

११. जिन कहै सत्य-मन-प्रयोग दोइ, अथवा बिहुं असत्य-मन होइ।
जाव बिहुं द्रव्य मन व्यवहार, इक संयोगिक भंग ए च्यार।
१२. अथवा इक द्रव्य सत्य-मन देख, इक द्रव्य असत्य-मन संपेख।
अथवा इक सत्य-मन-प्रयोग, इक मिश्र-मन-प्रयोगे जोग।।

१३. अथवा इक द्रव्य सत्य-मन-प्रयोग, एक असत्यामृषा-मन-जोग।
अथवा इक द्रव्य असत्य-मन, एक मिश्र-मन-प्रयोग जन।।

१४. अथवा एक मृषा-मन जोय, एक व्यवहारज-मन अवलोय।
अथवा इक मिश्र-मन प्रयोग, एक असत्यामृषा-मन जोग।।

१५. जो सत्य-मन-प्रयोग-परिणता, स्यूं आरंभ-सत्य-मन वर्त्तता ?
जावत असमारंभ-सत्य-मन ? षट पद[1] आरंभ प्रमुख कथन।।
१६. जिन कहै आरंभ-सत्य-मन दोइ, अथवा जावत इहविध होइ।
असमारंभ-सत्य-मन बेहु, इक संयोगिक षट भंग एहु।।
१७. अथवा आरंभ-सत्य-मन एक, एक अणारंभ-सत्य-मन पेख।
दोय संजोगिया भांगा एम, भणवा जे जिहां उठै तेम।।

१८. वृत्तिकार कह्यो एहवी वाय, एकत्वे षट विकल्प कहिवाय।
द्विकसंजोगिया पनरै जाणी, एवं सहु इकवीस पिछाणी।।
१९. जाव सव्वट्ठसिद्ध गति सुखदानी, त्यां लग कहिवा छै पहिछानी।
एहु प्रयोग परिणता पेख, बे द्रव्य आश्री भांगा देख।।

* लय : वनमाला ए निसुणी जाम

1. १. आरंभ २. अनारंभ ३. सारंभ ४. असारंभ ५. समारंभ ६. असमारंभ।

५. अहवेगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए। (श० ८।७३)

६. जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया ? वइपयोगपरिणया ? कायपयोगपरिणया ?

७. गोयमा ! मणपयोगपरिणया वा, वइपयोगपरिणया वा, कायपयोगपरिणया वा।

८. अहवेगे मणपयोगपरिणए, एगे वइपयोगपरिणए, अहवेगे मणपयोगपरिणए, एगे कायपयोगपरिणए।

९. अहवेगे वइपयोगपरिणए, एगे कायपयोगपरिणए। (श० ८।७४)

१०. जइ मणपयोगपरिणया किं सच्चमणपयोगपरिणया ? असच्चमणपयोगपरिणया ? सच्चमोसमणपयोगपरिणया ? असच्चमोसमणपयोगपरिणया ?

११. गोयमा ! सच्चमणपयोगपरिणया वा जाव असच्चमोसमणपयोगपरिणया वा।

१२. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे मोसमणपयोगपरिणए। अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए।

१३. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए, अहवेगे मोसमणपयोगपरिणए, एगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए

१४. अहवेगे मोसमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए, अहवेगे सच्चमोसमणपयोगपरिणए, एगे असच्चमोसमणपयोगपरिणए। (श० ८।७५)

१५. जइ सच्चमणपयोगपरिणया किं आरंभसच्चमणपयोगपरिणया ? जाव असमारंभसच्चमणपयोगपरिणया ?

१६. गोयमा ! आरंभसच्चमणपयोगपरिणया वा, जाव असमारंभसच्चमणपयोगपरिणया वा

१७. अहवेगे आरंभसच्चमणपयोगपरिणए, एगे अणारंभसच्चमणपयोगपरिणए। एवं एएणं गमेणं दुयासंजोएणं नेयव्वं, सव्वे संजोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा।

१८. तेष्वेकत्वे षड् द्विकयोगे तु पञ्चदश सर्वेऽप्येकविंशतिः। (वृ० प० ३३७)

१९. जाव सव्वट्ठसिद्धगत्ति। (श० ८।७६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. जो मीसा-परिणता कहाय, स्यूं मन-मीसा-परिणता थाय ?
मीसा-परिणता सुजोय, प्रयोग-परिणता जिम अवलोय ।।
२१. जदि वीससा-परिणता देख, तो स्यूं वर्ण-परिणता पेख ?
गंध-परिणता आदि सुजोय, वीससा-परिणता पिण इम होय ।।
२२. जाव तथा समचउरंस एक, एक आयत-संठाण संपेख ।
द्विकसंयोगिक ए दस भंग, वीससा-परिणत एह प्रसंग ।।
२३. हे भगवंत ! तीन द्रव्य जेह, स्यूं प्रयोग-परिणता कहेह ।
मीसा-परिणता तास कहीजै ? वलि वीससा-परिणता लीजै ?
२४. जिन कहै प्रयोग-परिणता तीन, अथवा मीसा-परिणता चीन ।
अथवा तीनुं द्रव्य पिछान, तेह वीससा-परिणता जान ।।
२५. अथवा इक द्रव्य प्रयोग जाण, दोय द्रव्य मीसा पहिछाण ।
अथवा प्रयोग-परिणत एक, दोय वीससा-परिणता देख ।।
२६. तथा प्रयोग-परिणता दोय, इक द्रव्य मीसा-परिणत होय ।
अथवा दोय प्रयोग विशेख, एक वीससा-परिणत देख ।।
२७. अथवा इक द्रव्य मीसा होय, अनै वीससा कहियै दोय ।
अथवा दो मीसा कहिवाय, एक वीससा-परिणत पाय ।।
२८. तथा प्रयोगे परिणत एक, इक द्रव्य मीसा-परिणत पेख ।
एक वीससा-परिणत जाण, त्रिकसंजोगियो एक पिछाण ।।
२९. जदि प्रयोग-परिणता जोय, तो स्यूं मन-प्रयोगे होय ।
वचन-प्रयोग-परिणता कहियै ? काय-प्रयोग-परिणता लहियै ?
३०. जिन कहै मन-प्रयोग-परिणता, इहविध भांगा तास वर्त्तता ।
इकसंयोगिक त्रिण भंग थाय, द्विकसंयोगिक षट कहिवाय ।।
३१. तीन द्रव्य त्रिण पद मे चीन, इकसंयोगिक भांगा तीन ।
द्विक संयोगिक विकल्प दोय, भांगा तेहनां षट अवलोय ।।

३२. त्रिकसंयोगिक भांगो एक, विकल्प पिण तसु एक संपेख ।
तीन द्रव्य नां त्रिहुं पद मांय, ए दस भांगा सगला थाय ।।
३३. जो मन-प्रयोग-परिणता होय, स्यूं सत्य-मन-प्रयोगे जोय ?
इम चिउं मन नीं पूछा जाण, हिव उत्तर देवै जगभाण ।।

३४. त्रिहुं सत्य-मन-प्रयोग-परिणता, जावत त्रिहुं व्यवहार वर्त्तता ।
इकसंयोगिक भांगा च्यार, हिवै द्विकसंयोगिक अधिकार ।।
३५. अथवा सत्य-मन-प्रयोग एक, दोय मृषा-मन-प्रयोग देख ।
इम द्विकसंयोगिक भंग बार, जूजुआ करिवा न्याय विचार ।।

### सोरठा

३६. चिहुं पद सत्य-मनादि, तीन द्रव्य द्विकयोगिका ।
तसु विकल्प बे साधि, इक विकल्प नां भंग षट ।।

२०. जइ मीसापरिणया किं मणमीसापरिणया ? एवं मीसापरिणया वि । (श० ८।७७)

२१. जइ वीससापरिणया किं वण्णपरिणया ? गंधपरिणया ? एवं वीससापरिणया वि

२२. जाव अहवेगे चउरंससंठाणपरिणए, एगे आयतसंठाणपरिणए । (श० ८।७८)

२३. तिण्णि भंते ! दव्वा किं पयोगपरिणया ? मीसापरिणया ? वीससापरिणया ?

२४. गोयमा ! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा ।

२५. अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया, अहवेगे पयोगपरिणए, दो वीससापरिणया

२६. अहवा दो पयोगपरिणया एगे मीसापरिणए, अहवा दो पयोगपरिणया, एगे वीससापरिणए ।

२७. अहवेगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया, अहवा दो मीसापरिणया एगे वीससापरिणए ।

२८. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए । (श० ८।७९)

२९. जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया ? वइपयोगपरिणया ? कायपयोगपरिणया ?

३० गोयमा ! मणपयोगपरिणया वा, एवं एक्कासंयोगो दुयासंयोगो

३१. 'तिन्नीत्यादि, इह प्रयोगपरिणतादिपदत्रये एकत्वे त्रयो विकल्पाः द्विकसंयोगे तु षट् ।
(वृ० प० ३३८)

३२. तियासंयोगो य भाणियव्वो । (श० ८।८०)
त्रिकयोगे त्वेक एवेत्येवं सर्वे दश । (वृ० प० ३३८)

३३. जइ मणपयोगपरिणया किं सच्चमणपयोगपरिणया ? असच्चमणपयोगपरिणया ? सच्चमोसमणपयोगपरिणया ? असच्चमोसमणपयोगपरिणया ?

३४. गोयमा ! सच्चमणपयोगपरिणया वा जाव असच्चमोसमणपयोगपरिणया वा ।

३५. अहवेगे सच्चमणपयोगपरिणए, दो मोसमणपयोगपरिणया एवं दुयासंयोगो,

३६,३७. सत्यमनःप्रयोगादीनि तु चत्वारि पदानीत्यत एकत्वे चत्वारो द्विकसंयोगे तु द्वादश ।
(वृ० प० ३३८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. एहनां विकल्प दोय, षट भांगा दुगुना कियां।
द्वादश भांगा होय, तेह विचारी कीजियै ॥

३८. *त्रिकसंयोगिक भंग है च्यार, विकल्प तास एक अवधार।
त्रिण द्रव्य चिहुं पद विषे उचार, ए सहु भांगा बीस विचार ॥

३८. तियासंयोगो भाणियव्वो,
त्रिकयोगे तु चत्वार इत्येवं सर्वेऽपि विंशतिरिति।
(वृ० प० ३३८)

३९. पूर्वे मन वच काया ताम, भेद थकी जे प्रयोग परिणाम।
वर्णादिक भेद करी तेह, कह्या वीससा पूर्वे जेह ॥

३९. तत्र च मनोवाक्कायप्रभेदतोः यः प्रयोगपरिणामो मिश्रतापरिणामो वर्णादिभेदतश्च विश्रसापरिणाम उक्तः
(वृ० प० ३३८)

४०. तेह इहां पिण कहिवा जोय, अंत सूत्र ए आगल होय।
जाव तथा इक तंस संठाण, इक चउरंस आयत इक जाण ॥

४०. स इहापि वाच्य इति भावः, किमन्तं तत्सूत्रं वाच्यम्?
(वृ० प० ३३८)
एत्थ वि तहेव जाव अहवेगे तंससंठाणपरिणए, एगे चउरंससंठाणपरिणए, एगे आयतसंठाणपरिणए।
(श० ८।८१)

४१. परिमंडलादिक पद है पंच, इकसंयोगिक पंच विरंच।
द्विकसंयोगिक बीस विचार, त्रिकसंयोगिक दस अवधार ॥

४१. इह च परिमण्डलादीनि पञ्चपदानि तेषु चैकत्वे पञ्च विकल्पाः द्विकसंयोगे तु विंशतिः त्रिकयोगे तु दश।
(वृ० प० ३३८)

**सोरठा**

४२. परिमंडलादिक संच, त्रिण द्रव्य पंच पद नैं विषे।
इकसंयोगिक पंच, इक विकल्प है तेहनों ॥
४३. द्विकसंयोगिक बीस, विकल्प है बे तेहनां।
इक विकल्प नां दीस, भांगा दस ह्वै ते भणी ॥
४४. दस भांगा नैं देख, बे विकल्प माटै इहां।
दुगुणा कीधां पेख, बीस भंग द्विकयोगिका ॥
४५. त्रिण द्रव्य पंच पद स्थान, त्रिकयोगिक दस भंग ह्वै।
विकल्प एक पिछाण, सर्व भंग पैंतीस इम ॥
४६. इकसंयोगिक पंच, बीस भंग द्विकयोगिका।
त्रिकयोगिक दस संच, सर्व भंग पैंतीस इम ॥

४७. *हे प्रभु! च्यार द्रव्य सूं होय, कह्या प्रयोग-परिणता सोय ॥
मीस-परिणता कहियै ताय, तथा वीससा ते कहिवाय?

४७. चत्तारि भंते! दव्वा किं पयोगपरिणया? मीसापरिणया? वीससापरिणया?

४८. जिन कहै च्यारूं प्रयोग-परिणता, अथवा च्यारूं मीस-वर्त्तता।
तथा वीससा च्यारूं होय, इकसंयोगिक ए त्रिण जोय ॥

४८. गोयमा! पयोगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा।

४९. अथवा इक प्रयोगे पेख, मीस-परिणता त्रिहुं द्रव्य देख।
अथवा इक द्रव्य प्रयोग जाण, तीन द्रव्य वीससा पिछाण ॥

४९. अहवेगे पयोगपरिणए, तिण्णि मीसापरिणया। अहवेगे पयोगपरिणए, तिण्णि वीससापरिणया

५०. अथवा दोय प्रयोग-परिणता, बे द्रव्य मीसा विषे वर्त्तता।
तथा प्रयोग-परिणता दोय, दोय वीससा ते अवलोय ॥

५०. अहवा दो पयोगपरिणया, दो मीसापरिणया। अहवा दो पयोगपरिणया, दो वीससापरिणया।

५१. अथवा तीन प्रयोगे पेख, मीसा-परिणत इक द्रव्य देख।
अथवा तीन प्रयोगे पिछाण, एक वीससा-परिणत जान ॥

५१. अहवा तिण्णि पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए। अहवा तिण्णि पयोगपरिणया एगे वीससापरिणए।

*लय : वनमाला ए निसुणी जाम



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. अथवा इक द्रव्य मीसा थाय, तीन द्रव्य वीससा कहाय।
अथवा बे द्रव्य मीस-परिणता, दोय वीससा विषे वर्त्तता ।।
५३. अथवा त्रिण द्रव्य मीसा जाण, एक वीससा-परिणत माण।
द्विकसंयोगिक ए नव भंग, तेहनां विकल्प तीन प्रसंग ।।

५२. अहवेगे मीसापरिणए, तिण्णि वीससापरिणया। अहवा दो मीसापरिणया, दो वीससापरिणया।
५३. अहवा तिण्णि मीसापरिणया एगे वीससापरिणए।

**सोरठा**

५४. इक विकल्प भंग तीन, त्रिण विकल्प माटै तसु।
त्रिगुणा कियां सुचीन, नव भांगा द्विकयोगिका ।।

५४. इहप्रयोगपरिणतादित्रये एकत्वे त्रयो द्विकसंयोगे तु नव। (वृ० प० ३३८)

५५. *अथवा प्रयोग-परिणत एक, इक द्रव्य मीसा-परिणत पेख।
दोय द्रव्य वीससा वखाण, त्रिकसंयोगे धुर भंग जाण ।।
५६. अथवा प्रयोग-परिणत एक, मीस-परिणता बे द्रव्य देख।
एक वीससा-परिणत होय, ए बीजो भांगो अवलोय ।।
५७. तथा प्रयोग-परिणता दोय, इक द्रव्य मीसा-परिणत होय।
एक द्रव्य वीससा बखाण, ए तीजो भांगो पहिछाण ।।

५५. अहवेगे पयोगपरिणए, एगे मीसापरिणए, दो वीससापरिणया
५६. अहवेगे पयोगपरिणए, दो मीसापरिणया, एगे वीससापरिणए
५७. अहवा दो पयोगपरिणया, एगे मीसापरिणए एगे वीससापरिणए। (श० ८।८२)

५८. इकसंयोगिक भांगा तीन, द्विकसंयोगिक नव भंग चीन।
त्रिकसंयोगिक त्रिहुं भंग होय, सर्व भंग पनरै अवलोय ।।
५९. जदि प्रयोगे करिनें परिणता, तो स्यूं मन-प्रयोग वर्त्तता।
वचन-प्रयोगे काय-प्रयोग, इम अनुक्रम करि कहिवा जोग ।।
६०. च्यार द्रव्य नो प्रकरण कहिवो, पूरव अनुसारे करि लहिवो।
सूत्र संठाण लगै पहिछाण, भांगा सगला भणवा जाण ।।

५८. त्रय एव भवन्तीत्येवं सर्वेऽपि पञ्चदश। (वृ० प० ३३९)
५९. जइ पयोगपरिणया किं मणपयोगपरिणया? वइपयोगपरिणया? कायपयोगपरिणया?
६०. द्रव्यचतुष्कप्रकरणमुपलक्षितं, तच्च पूर्वोक्तानुसारेण संस्थानसूत्रान्तमुचितभङ्गकोपेतं समस्तमध्येयमिति। (वृ० प० ३३९)

६१. पंच द्रव्य षट द्रव्य पिछाण, यावत वली द्रव्य दस जाण।
द्रव्य संख्यात अनें असंख्यात, भणवा द्रव्य अनंत विख्यात ।।
६२. द्विकसंयोगिक भंगा जेह, वलि त्रिकसंयोगिक पिण तेह।
जावत दस संयोगि करेह, द्वादश संयोगे करि जेह ।।
६३. वर उपयोग करी सुप्रयोग, जिहां जिता ऊठै संयोग।
तेह सर्व भणवा धर प्यार, चारु बुद्धि सूं न्याय विचार ।।

६१. एवं एएणं कमेणं पंच छ सत्त जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा अणंता य दव्वा भाणियव्वा।
६२. दुयासंजोएणं तियासंजोएणं जाव दससंजोएणं बारससंजोएणं।
६३. उवजुंजिऊणं जत्थ जत्तिया संजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणियव्वा,

**सोरठा**

६४. पंच द्रव्य अवलोय, प्रयोग सादि त्रिहुं पदे।
इक-संयोग त्रिहुं होय, इक विकल्प है तेहनों ।।
६५. तीन पदे द्विक-योग, इक विकल्प नां भंग त्रिण।
तसु विकल्प चिहुं-योग, कियां चोगुणा बार भंग ।।
६६. तीन पदे त्रिक-योग, इक विकल्प नों भंग इक।
तसु विकल्प षट योग, त्रिकयोगिक इम भंग षट ।।

६४,६५. चत्वारो विकल्पा द्रव्यपञ्चकमाश्रित्यैकत्र द्विकसंयोगे पदत्रयस्य त्रयो द्विकसंयोगास्ते च चतुर्भिर्गुणिताः द्वादश। (वृ० प० ३३९)
६६. त्रिकयोगे तु षट्, कथं? त्रीण्येकमेकं च १ एकं त्रीण्येकं च २ एकमेकं त्रीणि च ३ द्वे द्वे एकं च ४ द्वे एकं द्वे च ५ एकं द्वे द्वे च ६ इत्येवं षट्। (वृ० प० ३३९)

---

* लय : वनमाला ए निसुणी जाम



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. चिहुं पद सत्य-मनादि, इकसंयोगिक भंग चिहुं।
द्विकयोगिक नां लाधि, चिहुं त्रिकल्प है तेहनां॥

६७. तत्र च द्रव्यपञ्चकापेक्षया सत्यमनः-प्रयोगादिषु चतुर्षु पदेषु द्विकत्रिकचतुष्कसंयोगा भवन्ति। (वृ० प० ३३६)

६८. इक विकल्प षट भंग, चिहुं विकल्प माटै तसु।
कियां चोगुणा चंग, द्विकयोगिक चोबीस भंग॥

६८. तत्र च द्विकसंयोगाश्चतुर्विंशतिः, कथम् ? चतुर्णां पदानां षट् द्विकसंयोगाः, तत्र चैकैकस्मिन् पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो विकल्पाः षण्णां च चतुर्भिर्गुणने चतुर्विंशतिरिति। (वृ० प० ३३६)

६९. त्रिकयोगिक भंग च्यार, इक विकल्प नां ह्वै तसु।
षट विकल्प इहां धार, षट-गुण कियां चोबीस भंग॥

६९. त्रिकसंयोगा अपि चतुर्विंशतिः, कथम् ? चतुर्णां पदानां त्रिकसंयोगाश्चत्वारः एकैकस्मिंश्च पूर्वोक्तक्रमेण षड् विकल्पाः, चतुर्णां च षड्भिर्गुणने चतुर्विंशतिरिति। (वृ० प० ३३६)

७०. चउयोगिक भंग च्यार, करिवा तेह विचार नैं।
ए सगला अवधार, च्यार चोबीस चोबीस चिहुं॥

७०. चतुष्कसंयोगे तु चत्वारः। (वृ० प० ३३६)

७१. एकेंद्रियादिक जाण, तथा परिमंडल प्रमुख जे।
पंच पदे पहिछाण, भंग पंच द्रव्य आश्रयी॥

७१. एकेन्द्रियादिषु तु पञ्चसु पदेसु द्विकचतुष्कपञ्चकसंयोगा भवन्ति। (वृ० प० ३३६)

७२. इकसंयोगिक पंच, द्विकयोगिक चालोस भंग।
विकल्प च्यार सुसंच, इक विकल्प नां दस हुवै॥

७२. तत्र च द्विकसंयोगाश्चत्वारिंशत्, कथम् ? पञ्चानां पदानां दशद्विकसंयोगा एकैकस्मिंश्च द्विकसंयोगे पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो विकल्पा दशानां च चतुर्भिर्गुणने चत्वारिंशदिति। (वृ० प० ३३६)

७३. त्रिकयोगिक ए अंग, षट विकल्प है तेहनां।
इक विकल्प दस भंग, षटगुणा कियां भंग साठ ह्वै॥

७३. त्रिकसंयोगे तु षष्टिः, कथम् ? पञ्चानां पदानां दश त्रिकसंयोगाःएकैकस्मिंश्च त्रिकसंयोगे पूर्वोक्तक्रमेण षड् विकल्पाः दशानां च षड्भिर्गुणने षष्टिरिति। (वृ० प० ३३६)

७४. चिहुं संयोगिक चंग, विकल्प च्यार हुवै तसु।
इक विकल्प पंच भंग, पंचगुणा कियां भंग बीस ह्वै॥

७४. चतुष्कसंयोगास्तु विंशतिः, कथम् ? पञ्चानां पदानां तु चतुष्कसंयोगे पञ्च विकल्पा एकैकस्मिंश्च पूर्वोक्तक्रमेण चत्वारो भङ्गाः पञ्चानां चतुर्भिर्गुणने विंशतिरिति। (वृ० प० ३३६)

७५. पंचयोगिक भंग एक, एह पंच पद नैं विषे।
पंच द्रव्य आश्री पेख, भंग विकल्प नीं आपना॥

७५. पञ्चकसंयोगे त्वेक एवेति (वृ० प० ३३६)

७६. इम षट आदि संयोग, नवरं षट पद नाम ए।
आरंभ-सत्य-मन-योग, अणारंभ-सत्य-मन वलि॥
७७. सारंभ असारंभ, समारंभ ए पंचमो।
असमारंभ मन लंभ, मन षट पद इम वच प्रमुख॥

७६,७७. एवं षट्कादिसंयोगा अपि वाच्याः, नवरं षट्कसंयोग आरम्भसत्यमनःप्रयोगादिपदान्याश्रित्य। (वृ० प० ३३६)

७८. भणवा सप्त संयोग, नाम सप्त पदनांज ए।
ओदारिकादि योग, सप्त द्रव्य नैं आश्रयी॥

७८. सप्तकसंयोगस्त्वौदारिकादिकायप्रयोगमाश्रित्य। (वृ० प० ३३६)

७९. अष्टसंयोगिक ख्यात, नाम अष्टपदनांज ए।
अठ व्यंतर नीं जात, अष्ट द्रव्य नैं आश्रयी॥

७९. अष्टकसंयोगस्तु व्यन्तरभेदान् (वृ० प० ३३६)

८०. नवसंयोगिक न्हाल, तसु नव पद नां नाम ए।
नव ग्रैवेयक भाल, ते नव द्रव्य नैं आश्रयी॥

८०. नवकसंयोगस्तु ग्रैवेयकभेदान् (वृ० प० ३३६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. दससंयोगिक वेद, तसु दस पद नां नाम ए।
भवनपति दस भेद, ते दस द्रव्य नैं आश्रयी।।

८२. ग्यारसंयोगिक ताहि, सूत्र विषे आख्यो नथी।
पूर्व कह्या पद मांहि, तास असंभव थी इहां।।

८३. बारसंयोगिक ताय, कल्पोत्पन्न सुर भेद नैं।
वा वैक्रिय तनु काय, प्रयोग तणी अपेक्षया।।

वा०—इहां बारै संयोगी नां जघन्य बारै द्रव्य हुवै पिण ओछा द्रव्य न हुवै।

८४ *नवमैं शतक बतीसमुदेश, गंगेय नों विस्तार कहेस।
गति नरकादि प्रवेश विचार, ते आगल कहिसूं अधिकार।।

८५. तिण अनुसारे इहां विचार, द्रव्य उपयोग करी नैं धार।
जाव असंख्याता कहिवाय, हिवै विशेष अनंत द्रव्य मांय।।

८६. द्रव्य अनंता इमहिज जान, नवरं इक पद अधिको आन।
गंगेय स्थान कह्या असंखेज, इहां अनंत पद अधिक कहेज।।

८७. जाव अनंत परिमंडल जाण, जाव अनन्त आयत संठाण।
अल्पबहुत्व तास कहाय, पूछै गोतम महामुनिराय।।

८८. पुद्गल प्रभुजी ! प्रयोग-परिणता, मीस वीससा विषे वर्त्तता।
कुण-कुण थकी अल्प बहु होय, तुल्य विशेषाधिक अवलोय ?

८९. सर्व थोड़ा पोग्गला प्रयोग, मीसा अनन्तगुणा ए जोग।
वीससा अनंतगुणा वर्त्तंत, सेवं भंते ! सेवं भंत !।।

वा०—सर्व थी थोड़ा पुद्गल प्रयोगसा कायादिरूपपणैं करी, जीव पुद्गल संबंध काल नां स्तोकपणां थकी। तेहथी मीसा-परिणता अनंतगुणा। जे भणी जीव प्रयोगे करी कीधो आकार, ते प्रति अणछांडतो छतो स्वभावे करी जे अन्य परिणाम प्रति पाम्या मुक्त कलेवरादिक नां अवयव रूप अनंतानंत तेह थकी। विश्रसा-परिणता अनंतगुणा परमाणु आदि नैं जीव अग्रहण प्रयोग्य नैं अनंतपणां थकी।

९०. इकयासी नो अंक विशाल, इक सौ बत्तीसमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल नै ऋषिराय प्रसाद,
'जय-जश' सुख संपति आह्लाद।।

अष्टमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।८।१।।

८१. दशकसंयोगस्तु भवनपतिभेदानाश्रित्य (वृ० प० ३३९)

८२. एकादशसंयोगस्तु सूत्रे नोक्तः पूर्वोक्तपदेषु तस्यासंभवात् (वृ० प० ३३९)

८३. द्वादशसंयोगस्तु कल्पोपन्नदेवभेदानाश्रित्य वैक्रियशरीरकायप्रयोगापेक्षया वेति। (वृ० प० ३३९)

८४. एए पुण जहा नवमसए पवेसणए (९।८६-१२०) भणिहामो।
नवमशतकसत्कतृतीयोद्देशके गाङ्गेयाभिधानानगारकृतनरकादिगतप्रवेशनविचारे। (वृ० प० ३३९)

८५. तहा उवजुंजिऊण भाणियव्वा जाव असंखेज्जा।

८६. अणंता एवं चेव, णवरं—एक्कं पदं अब्भहियं।

८७. जाव अहवा अणंता परिमंडलसंठाणपरिणया जाव अणंता आयतसंठाणपरिणया। (श० ८।८३)
अथैतेषामेवाल्पबहुत्वं चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ३४०)

८८. एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं पयोगपरिणयाणं, मीसापरिणयाणं, वीससापरिणयाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

८९. गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला पयोगपरिणया, मीसापरिणया अणंतगुणा, वीससापरिणया अणंतगुणा। (श० ८।८४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ८।८५)
वा०—'सव्वत्थोवा पुग्गला पओगपरिणय' त्ति कायादिरूपतया, जीवपुद्गलसम्बन्धकालस्य स्तोकत्वात्, 'मीसापरिणया अणंतगुण' त्ति कायादिप्रयोगपरिणतेभ्यः सकाशान्मिश्रकपरिणता अनन्तगुणाः, यतः प्रयोगकृतमाकारमपरित्यजन्तो विश्रसया ये परिणामान्तरमुपागता मुक्तकडेवराद्यवयवरूपास्तेऽनन्तानन्ताः, विश्रसापरिणतास्तु तेभ्योऽप्यनन्तगुणाः, परमाण्वादीनां जीवाग्रहणप्रायोग्याणामप्यनन्तत्वादिति। (वृ० प० ३४०)

*लय : वनमाला ए निसुणी जाम



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*ढाल : १३३

दूहा

१. प्रथम उदेशक नें विषे, पुद्गल नूं परिणाम ।
द्वितिये तेहिज आसीविष-द्वारे करि कहूं ताम ।।

२. हे भदंत ! आसीविषा, आख्या कितै प्रकार ? ।
जिन कहै आसीविष तणां, दोय प्रकार विचार ।।

३. प्रथम जाति-आसीविषा, कर्म-आसीविष ताय ।
न्याय कहूं हिव तेहनों, अर्थ सुगम कहिवाय ।।

४. जेहनीं दाढादिक विषे, जन्म थकी विष होय ।
तास जाति-आसीविषा, कहियै छै अवलोय ।।

५. कर्म क्रिया तेणे करी, सराप प्रमुख सोय ।
तिण करि घात करै तिको, कर्म-आसीविष जोय ।।

६. कर्म-आसीविष केहनें ? पंचेंद्री तिर्यंच ।
अथवा मनुष्य बिहुं तणां, पर्याप्ता में संच ।।

७. ए निश्चै तपसा थकी, तथा अन्य गुण तास ।
तेह थी आसीविष हुवै, लब्धि स्वभाव विमास ।।

८. ते सराप देई हणें, उत्कृष्ट गति सहसार ।
एहवी लब्धिज फोड़व्यां, आगल गमन न कार ।।

९. देवपणें जे ऊपनो, अपजत भाव अवस्थ ।
अनुभूत भावपणें करी, कर्म-आसीविष तत्थ ।।

१०. अपर्याप्त ह्वै ज्यां लगै ते सुर नें कहिवाय ।
कर्म-आसीविष लब्धिवंत, पर्याप्ते न थाय ।।

११. शब्दार्थ नां भेद करि, भाष्यकार कह्यूं एह ।
आसी—दाढा तनु त्रिषे, विष आसीविष तेह ।।

*देव जिनेन्द्र नीं अमृत वाणी ।। (ध्रुपदं)

१२. जाति-आसीविष कतिविध ? प्रभुजी !
जिन कहै च्यार प्रकारो रे ।
बिच्छू मंडुक्क सर्प नै मनुष्य, ए कह्या आसीविष च्यारो रे ।।

१३. बिच्छू जाति-आसीविष नों प्रभु ! केतलो एक सुजाणी ।
विष नों गोचर विषय परूपी ? जिन कहै सांभल वाणी ।।

*लय : एक दिवस रुकमण हरि बोलै

१. प्रथमे पुद्गलपरिणाम उक्तो, द्वितीये तु स एवाशी-विषद्वारेणोच्यते । (वृ० प० ३४०)

२. कतिविहा णं भंते ! आसीविसा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा आसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—

३. जातिआसीविसा य, कम्मआसीविसा य ।
(श० ८।८६)

४. 'आशीविषाः' दंष्ट्राविषाः 'जाइआसीविस' त्ति जात्या—जन्मनाऽऽशीविषा जात्याशीविषाः ।
(वृ० प० ३४१)

५. 'कम्मआसीविस' त्ति कर्म्मणा—क्रियया शापादिनोपघातकरणेनाशीविषाः कर्माशीविषाः ।
(वृ० प० ३४१)

६. तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च कर्माशीविषाः पर्याप्तका एव (वृ० प० ३४१)

७. एते हि तपश्चरणानुष्ठानतोऽन्यतो वा गुणतः खल्वाशीविषा भवन्ति (वृ० प० ३४१)

८. शापप्रदानेनैव व्यापादयन्तीत्यर्थः, एते चाशीविषलब्धिस्वभावात् सहस्रारान्तदेवेष्वेवोत्पद्यन्ते ।
(वृ० प० ३४१)

९. देवास्त्वेत एव ये देवत्वेनोत्पन्नास्तेऽपर्याप्तकावस्थायामनुभूतभावतया कर्म्माशीविषा इति ।
(वृ० प० ३४१)

११. उक्तञ्च शब्दार्थभेदसम्भवादि भाष्यकारेण—आसी—दाढ़ा तग्गयमहाविसाऽऽसीविसा । (वृ० प० ३४१)

१२. जातिआसीविसा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मंडुक्कजातिआसीविसे, उरगजातिआसीविसे मणुस्सजातिआसीविसे । (श० ८।८७)

१३. विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. विच्छू जाति-आसीविष समर्थ छै, अर्द्ध भरत नैं प्रमाणो।
दोय सो त्रेसठ जोजन साधिक, तेहिज मात्रा जाणो॥
१५. जेहनों एहवो शरीर हुवै तो, निज विष करिनैं जेहो।
विषपणां प्रतै द्विधाभूत जे, करिवा समर्थ तेहो॥

१४,१५. गोयमा! पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेणं विसपरिगयं विसट्टमाणं पकरेत्तए।
अर्द्धभरतस्य यत् प्रमाणं—सातिरेकत्रिषष्ट्यधिकयोजनशतद्वयलक्षणं तदेव मात्रा—प्रमाणं यस्याः सा तथा तां 'बोंदि' ति तनुं 'विसेणं' ति विषेण स्वकीयाशीप्रभवेण करणभूतेन 'विसपरिगयं' ति विषं भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य विषतां परिगता—प्राप्ता विषपरिगताऽतस्ताम्, अत एव "विसट्टमाणिं" ति विकसन्तीं—विदलन्तीं। (वृ० प० ३४१,३४२)

१६. विच्छू विष इतरी भूमि व्याप्त, पिण निश्चय करि न्हालो।
नहिं कीधो न करै नहिं करसी, इम ए तीनूंइ कालो॥
१७. मंडूक जाति-आसीविष पूछा, तब भाखै जिनरायो।
भरत प्रमाण काया विष गोचर, शेषं तं चेव कह्यायो॥

१६. विसए से विसट्टयाए, नो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा। (श० ८।८८)
१७, १८. मंडुक्कजातिआसीविसस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते?
गोयमा! पभू णं मंडुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेणं विसपरिगयं सेसं तं चेव जाव (सं० पा०) करिस्संति। (श० ८।८९)

**सोरठा**

१८. जाव करिस्संतीह, तीनुं काल विषे तिको।
संप्राप्ती न करीह, विषय मात्र आख्यो अछै॥
१९. *एवं सर्प जाति-आसीविष, णवरं विशेष वदंति।
जंबू प्रमाण तनू विष गोचर, तं चेव जाव करिस्संति॥

१९. एवं उरगजातिआसीविसस्स वि, नवरं—जंबुद्दीवप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेणं विसपरिगयं सेसं तं चेव जाव (सं० पा०) करिस्संति। (श० ८।९०)

२०. मनुष्य जाति-आसीविष पिण इमहिज, णवरं द्वीप अढाई।
तनु ह्वै तो इतरो विष व्यापै, पिण त्रिहुं काल न थाई॥

२०. मणुस्सजातिआसीविसस्स वि एवं चेव, नवरं—समयखेत्तप्पमाणमेत्तं बोंदि विसेणं विसपरिगयं, सेसं तं चेव जाव (सं० पा०) करिस्संति। (श० ८।९१)

२१. वलि गोयम पूछै जिनवर नैं, जो कर्म-आसीविष होयो।
तो नारकी तिर्यंच मनुष्य सुर, कर्म-आसीविष जोयो?

२१. जइ कम्मआसीविसे किं नेरइयकम्मआसीविसे? तिरिक्खजोणियकम्मआसीविसे? मणुस्सकम्मआसीविसे? देवकम्मआसीविसे?

२२. जिन कहै नारकी में नहिं पावै, तिर्यंच मनुष्य नैं देवा।
ए त्रिहुं गति मांहै कर्म-आसीविष, लब्धि प्रभावज लेवा॥

२२. गोयमा! नो नेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देवकम्मासीविसे वि। (श० ८।९२)

२३. जो तिर्यंच ह्वै कर्म-आसीविष, स्यूं एकेंद्री तिर्यंचो।
जाव पंचेंद्री तिर्यंच विषे ए, कर्म-आसीविष संचो॥

२३. जइ तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे?

२४. जिन कहै एकेंद्री में नहिं पावै, जाव चउरिंद्री में नांही।
कर्म-आसीविष तो पावै छै, तिर्यंच पंचेंद्री मांही॥

२४. गोयमा! नो एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव नो चउरिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे।

---

*लय : एक दिवस रुकमण हरि बोलै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. जो तिर्यंच पंचेंद्री मांहै, कर्म-आसीविष पायो ।
तो स्यूं संमूच्छिम तिरि पंचेंद्री, कै गर्भज तिरि मांह्यो ?॥

२६. इम जिम वैक्रिय शरीर तणां जे, भेद कह्या तिम कहियै ।
जाव पर्याप्त संख वर्षायु, गर्भज तिरि-पं० लहियै ॥

**सोरठा**

२७. वैक्रिय शरीर भेद, जाव पज्जत्ता आखिया ।
सुणज्यो आण उमेद, जाव शब्द में अर्थ ए ॥

२८. *संमूच्छिम तिर्यंच पंचेंद्री, कर्म-आसीविष नांही ।
कर्म-आसीविष तो लहियै छै, गर्भज तिर्यंच मांही ॥

२९. जो गर्भज-तिरि कर्म-आसीविष, स्यूं आयु वर्ष संखेजो ।
वर्ष असंख तणां जे तिर्यंच, ए किण मांही कहेजो ?

३०. जिन कहै संख वर्ष नां तिर्यंच, कर्म-आसीविष ताह्यो ।
वर्ष असंख आयु नां तिर्यंच, नहिं पावै तिण मांह्यो ॥

३१. जो संख वर्ष नां आयु वाला में, तो पर्याप्ता मांह्यो ।
कै अपज्जत्त संखेज्ज वर्ष नां, जाव शब्द में ए आयो ?

३२. जिन कहै पर्याप्त संख वर्ष तिरि, कर्मभूमि गर्भजो ।
अपज्जत्ता संखेज्ज वर्ष आयु में, कर्मासीविष न लहेजो ॥

३३. वलि गोयम पूछै जो मनुष्य में, कर्म-आसीविष होयो ।
स्यूं संमूच्छिम मनुष्य में पावै, कै गर्भज में जोयो ?

३४. जिन कहै संमूच्छिम में नहिं पावै, गर्भज मनुष्य में पायो ।
इम जिम वैक्रिय शरीर भेद तिम, कहिवो इहां पिण ताह्यो ॥

३५. जाव पर्याप्त संख वर्षायु, कर्मभूमि गर्भजो ।
तेह मनुष्य में कर्म-आसीविष, अपर्याप्त न लहेजो ॥

३६. जो सुर कर्म-आसीविष होवै, तो स्यूं भवनपति जोयो ?
जाव वैमानिक देव विषे ए, कर्म-आसीविष होयो ?

३७. जिन कहै भवनपति में पिण छै, वाणव्यंतर पिण लहियै ।
जोतिषी देव वैमानिक मांहै, कर्म-आसीविष कहियै ॥

२५. जइ पंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं संमुच्छिमपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ? गब्भवक्कंतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

२६. एवं जहा वेउव्वियसरीरस्स भेदो जाव ।

२८. गोयमा ! नो संमुच्छिमपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे गब्भवक्कंतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे । (वृ० प० ३४२)

२९. जइ गब्भवक्कंतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं संखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, असंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे ? (वृ० प० ३४२)

३०. गोयमा ! संखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे नो असंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे । (वृ० प० ३४२)

३१. जइ संखेज्ज जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसंखेज्ज जाव कम्मासीविसे अपज्जत्तसंखेज्ज जाव कम्मासीविसे ? (वृ० प० ३४२)

३२. पज्जत्तासंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियपंचिदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, नो अपज्जत्तासंखेज्जवासाउय जाव कम्मासीविसे । (श० ८।९३)

३३. जइ मणुस्सकम्मासीविसे किं संमुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे ? गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे ?

३४. गोयमा ! नो संमुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे एवं जहा वेउव्वियसरीरं ।

३५. जाव पज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमागब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे, नो अपज्जत्ता जाव कम्मासीविसे । (श० ८।९४)

३६. जइ देवकम्मासीविसे किं भवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

३७. गोयमा ! भवणवासिदेवकम्मासीविसे, वाणमंतरजोतिसियवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि ।

* लय : एक दिवस रुकमण हरि बोलै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. जो भवनपति होवै कर्म-आसीविष, तो स्यूं असुरकुमारो ?
यावत थणियकुमार विषे ए, कर्म-आसीविष धारो ।।

३९. जिन कहै असुरकुमार विषे पिण, कर्म-आसीविष जाणी ।
एवं यावत थणियकुमार में, कर्म-आसीविष माणी ।।

४०. जो असुरकुमार में कर्म-आसीविष, ते स्यूं पज्जत्त अपज्जत्तो ?
जिन कहै अपर्याप्ता में होवै छै, पर्याप्ता में न पत्तो ।।

४१. एवं यावत थणियकुमार में, अपर्याप्ता रै मांह्यो ।
पाछिल भव नों कर्म-आसीविष, ऊपजतां इहां पायो ।।

४२. जो वाणव्यंतर देव कर्म-आसीविष तो स्यूं पिसाच रै मांही ।
एम सहु नां अपर्याप्ता में, पर्याप्ता में नांही ।।

४३. जोतिषी सर्व नां अपर्याप्ता में, पर्याप्ता में न होयो ।
जो छै वैमानिक तो स्यूं कल्प में, कै कल्पातीत जोयो ?

४४. जिन कहै कल्प विषे जे ऊपनां, कर्म-आसीविष त्यांही ।
कल्पातीत देव छै ज्यां मे, कर्म-आसीविष नांही ।।

४५. जो हुवै कल्प विषे उपनां में, तो स्यूं सोधर्म मझारो ?
जाव अचू कल्प ऊपनां ज्यांमे, कर्म-आसीविष धारो ?

४६. जिन कहै सोधर्म-कल्प ऊपनां, कर्म आसीविष पावै ।
यावत अष्टम स्वर्ग लगै छै, आगल ए नहिं थावै ।।

४७. जो सोधर्म-स्वर्गे कर्म-आसीविष, तो पर्याप्ता लहियै ?
तथा अपर्याप्ता में पावै छै ? हिव जिन उत्तर दइयै ।।

४८. सोधर्म-स्वर्गे पर्याप्ता में, कर्मासीविष नहिं थावै ।
अपर्याप्ता में ए पावै छै, पूर्व भव थी ले आवै ।।

४९. इम जाव अष्टम कल्प नां देवा, पर्याप्ता अवलोयो ।
कर्म-आसीविष त्यांमे नहिं छै, अपर्याप्ता में होयो ।।

५०. अंक बयासी नो देश अर्थ ए, इक सौ तेतीसमी ढालो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ।।

३८. जइ भवणवासिदेवकम्मासीविसे किं असुरकुमार-भवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव थणियकुमारभवण-वासिदेवकम्मासीविसे ?

३९. गोयमा ! असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि जाव थणियकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे वि ।

४०. जइ असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे किं पज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ? अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ? गोयमा ! नो पज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे, अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासिदेव-कम्मासीविसे ।

४१. एवं जाव थणियकुमाराणं ।

४२. जइ वाणमंतरदेवकम्मासीविसे किं पिसायवाणमंतर-देवकम्मासीविसे ? एवं सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं ।

४३. जोइसियाणं सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं ।
जइ वेमाणियदेवकम्मासीविसे किं कप्पोवावेमाणिय-देवकम्मासीविसे ? कप्पातीयावेमाणियदेवकम्मा-सीविसे ?

४४. गोयमा ! कप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे, नो कप्पातीयावेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

४५. जइ कप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोहम्म-कप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोवा-वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

४६. गोयमा ! सोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे वि, नो आणयकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे जाव नो अच्चुयकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

४७. जइ सोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे किं पज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ? अपज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

४८. गोयमा ! नो पज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेव-कम्मासीविसे, अपज्जत्तासोहम्मकप्पोवावेमाणियदेव-कम्मासीविसे ।

४९. एवं जाव नो पज्जत्तासहस्सारकप्पोवावेमाणियदेव-कम्मासीविसे,

अपज्जत्तासहस्सारकप्पोवावेमाणियदेवकम्मासीविसे ।
(श० ८।९५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १३४

### दूहा

१. पूर्वे एह कही तिके, वस्तु प्रति अवलोय ।
ज्ञान रहित जे जीव छै, ते जाणैं नहिं कोय ।।
२. ज्ञानी पिण कोइ एक जे, दश वस्तु प्रति देख ।
किणहि प्रकार जाणैं नहिं, ते कहियै सुविशेख ।।

*देव जिनेंद्र नी हो भवियण ! सरस सुधारस वाण ।। (ध्रुपदं)

३. छद्मस्थ दश स्थानक प्रतै, हो भवियण ! सर्व भाव करि सोय ।
जाणै नहिं देखै नहीं हो, भवियण ! तास नाम अवलोय कै ।।
४. धुर धर्मास्तिकाय नैं, वले अधर्मास्तिकाय ।
वलि आकाशास्तिकाय नैं, तृतीय बोल ए थाय ।।
५. जीव शरीर-रहित जिको, ए सिद्ध जीव कहाय ।
परमाणु पुद्गल प्रतै, शब्द गंध नैं वाय ।।

वा०—परमाणु पुद्गल पंचमे बोल कह्यो । तेहनां उपलक्षण थकी द्विप्रदेशिकादिक खंध पिण न जाणैं ।

६. प्रत्यक्ष ए प्राणी तिको, थास्यै जिन वीतराग ।
अथवा जिन होस्यै नहीं, नवमों बोल सुमाग ।।

७. प्रत्यक्ष ए प्राणी तिको, करिस्यै सर्व दुख अंत ।
अथवा ए करिस्यै नहीं, दशमों एह कहंत ।।
८. वृत्तिकार इहां इम कह्यो, अवधि प्रमुख अवलोय ।
अतिसय ज्ञान रहीत ते, छद्मस्थ ग्रहिवो सोय ।।
९. अवध्यादिके सहित फुन, अमूर्त्तपणैं करि तेह ।
धर्मास्तिकायादि प्रति, अजाणतो पिण जेह ।।
१०. जाणै परमाणु प्रमुख, मूर्त्तपणां थी एह ।
फुन सहु मूर्त्त विषय थकी, विशिष्ट अवधि करेह ।।

वा०—अथ ननु सर्व भावे करि न जाणैं, इम कह्यं । वली तिण कारण थकी ते दश वस्तु किणहि प्रकार करिकैं अवध्यादिक सहित जाणतो छतो पिण अनंत पर्यायपणैं करी न जाणैं इति ।

इम जो ए सत्य तो दश संख्या नो नियम ते निरर्थक हुवै । घटादिक अतिहि घणां पदार्थ नैं अकेवली सर्व पर्यायपणैं करी जाणवा असमर्थपणां थकी । एतले 'सव्वभावेणं न जाणइ' एहनों अर्थ—सर्व भाव ते अनंत पर्याय करिकै ए दश वस्तु न जाणै, इम अर्थ कीजै तो घटादिक अनेक वस्तु अवध्यादिक सहित

*लय : सुण सुण साधुजी हो मुनिवर

१. एतच्चोक्तं वस्तु अज्ञानी न जानाति
(वृ० प० ३४२)
२. ज्ञान्यपि कश्चिद्दश वस्तूनि कथञ्चिन्न जानातीति दर्शयन्नाह—
(वृ० प० ३४२)

३. दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ, तं जहा—
४. धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं

५. जीवं असरीरपडिबद्धं परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं, वातं ।
'जीव असरीरपडिबद्धं' ति देहविमुक्तं सिद्धमित्यर्थः ।
(वृ० प० ३४२)

वा०—परमाणुश्चासौ पुद्गलश्चेति उपलक्षणमेतत्तेन द्व्यणुकादिकमपि कश्चिन्न जानातीति ।
(वृ० प० ३४२)

६. अयं जिणे भविस्सइ वा न वा भविस्सइ
अयमिति—प्रत्यक्षः कोऽपि प्राणी जिनो—वीतरागो भविष्यति न वा भविष्यतीति नवमम् ।
(वृ० प० ३४२)

७. अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा न वा करेस्सइ ।

८. छद्मस्थ इहावध्याद्यतिशयविकलो गृह्यते ।
(वृ० प० ३४२)
९,१०. अन्यथाऽमूर्त्तत्वेन धर्मास्तिकायादीनजानन्नपि परमाण्वादि जानात्येवासौ, मूर्त्तत्वात्तस्य समस्तमूर्त्तविषयत्वाच्चावधिविशेषस्य (वृ० प० ३४२)

वा०—अथ सर्वभावेनेत्युक्तं ततश्च तत् कथञ्चिज्जानन्नप्यनन्तपर्यायतया न जानातीति, सत्यं, केवलमेवं दशेति संख्यानियमो व्यर्थः स्यात्, घटादीनां सुबहूनामर्थानामकेवलिना सर्वपर्यायतया ज्ञातुमशक्यत्वात्, सर्वभावेन च साक्षात्कारेण—चक्षुःप्रत्यक्षेणेति हृदयं, श्रुतज्ञानादिना त्वसाक्षात्कारेण जानात्यपि ।
(वृ० प० ३४२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिण अनंत पर्याय करिकै न जाणै तो दश स्थानक कहिण रो नेम निरर्थक हुवै। ते माटे 'सव्वभावेणं न जाणइ' एहनों अर्थ—साक्षात्कार ते चक्षु प्रत्यक्षे करी दश बोल अवध्यादिक सहित अतिशयज्ञानी पिण न जाणै, ए तात्पर्य। वली श्रुतज्ञानादिक करिकै असाक्षातपणै करी जाणै पिण साक्षातपणै करी न जाणै।

११. छद्मस्थ अतिशय-रहित ते, नहिं जाणै दस स्थान।
अन्यथा अवधि सहित जे, परमाणु आदिक जान।।

१२. सव्वभावेणं पाठ नों, सर्व प्रकारे सोय।
स्पर्श रस गंध रूप नैं, जाणवै करी सुजोय।।

१३. ए प्रत्यक्ष जिन केवली, होस्यै तथा न होय।
दसमें ठाणें वृत्ति में, अर्थ कियो इम जोय।।

११-१३. नवरं छद्मस्थ इह निरतिशय एव द्रष्टव्योऽन्यथाऽवधिज्ञानी परमाण्वादि जानात्येव, सव्वभावेणं ति सर्वप्रकारेण स्पर्शरसगन्धरूपज्ञानेन घटमिवेत्यर्थः तत्रायमिति प्रत्यक्षज्ञानसाक्षात्कृतो जिनः केवली भविष्यति न वा भविष्यतीति।
(ठाणं वृ० प० ४८४)

## दूहा

१४. कह्यो तास व्यतिरेक हिव, प्रवर केवली पेख।
तसु अधिकार कहै हिवै, सांभलज्यो सुविशेख।।

१४. उक्तव्यतिरेकमाह— (वृ० प० ३४२)

१५. *एह दसूं निश्चै करी, उत्पन्न ज्ञान दर्शन।
धरणहार छै तेहनों, अरहा केवली जिन।।

१५. एयाणि चेव उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली

१६. सर्व भाव करिनैं सही, वर साक्षात विशेख।
जाणै केवलज्ञान स्यूं, केवलदर्शण करि देख।।

१६. सव्वभावेणं जाणइ-पासइ,
'सव्वभावेणं जाणइ' त्ति सर्वभावेन साक्षात्कारेण जानातिकेवलज्ञानेनेति हृदयम्। (वृ० प० ३४२)

१७. धुर धर्मास्तिकाय नैं, यावत ए दुख अंत।
करिस्यै ए करिस्यै नहीं, ए दस बोल उदंत।।

१७. धम्मत्थिकायं जाव (सं० पा०) करेस्सइ वा न वा करेस्सइ। (श० ८।१९६)

## सोरठा

१८. जाणै केवलधार, एहवो आख्यो ते भणी।
ज्ञान-सूत्र हिव सार, कहियै छै गुण-आगलो।।

१८. जानातीत्युक्तमतो ज्ञानसूत्रम्। (वृ० प० ३४२)

१९. *कतिविध ज्ञान परूपियो, जिन कहै पंच प्रकार।
आभिनिबोधिक ज्ञान ते, हिव शब्दारथ सार।।

१९. कतिविहे णं भंते! नाणे पण्णत्ते?
गोयमा! पंचविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियनाणे

२०. अभि संमुख जे अर्थ नैं हो गोयम! अविपरीत विचार।
नियत असंशय रूप जे हो गोयम! बोधि जाणवो सार।
(सांभल गोयमा! हो मुनिवर! आभिनिबोधिक ज्ञान)।।

२०. अर्थाभिमुखोऽविपर्ययरूपत्वात् नियतोऽसंशयरूपत्वाद्बोधः (वृ० प० ३४३)

वा०—आभिनिबोधिक ज्ञान ते पांच इंद्रिय अनैं नोइंद्रिय-मन, ते निमित्त बोध।

वा—आभिनिबोधिकज्ञानम्—इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तो बोधः। (वृ० प० ३४४)

२१. शब्द कारण श्रुत ज्ञान नों, अवधि मर्याद पिछान।
मनपर्यव केवल तणो, अर्थ वृत्ति थी जान।।

२१. सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे, केवलनाणे। (श० ८।९७)
श्रूयते तदिति श्रुतं—शब्दः स एव ज्ञानं भावश्रुतकारणत्वात् कारणे कार्योपचारात् श्रुतज्ञानम्। (वृ० प० ३४४)

---

*लय : सुण सुण साधूजी हो मुनिवर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

२२. सुणवा थकीज ज्ञान, इंद्रिय मनो निमित्त जे ।
तेश्रुत ज्ञान पिछान, श्रुत ग्रंथ अनुसारी तिको ।।

२३. हेठुं हेठुं जेह, विस्तृत जे वस्तु प्रति ।
जिण करिकै जाणेह, अवधि ज्ञान कहियै तसु ।।

२४. तथा मर्याद करेह, रूपी द्रव्यज जाणियै ।
अन्य प्रति नहिं जाणेह, द्वितीय अर्थ ए अवधि नुं ।।

२५. मन चिंतवता जेह, मनोद्रव्य नां पर्यवा ।
जिण करिकै जाणेह, ते मनपर्यव ज्ञान छै ।।

२६. वा मन नां पर्याय, पर्याय तेह विचारणा ।
ते प्रति जाणैं ताय, मनपर्याय सुज्ञान छै ।।

२७. केवल एक कहाय, मतिज्ञानादिक रहित ए ।
अथवा शुद्ध सुहाय, आवरण रूप कलंक विन ।।

२८. अथवा सकल उदार, प्रथमपणैं करिनैंज ते ।
विशेष थकी विचार, संपूरण जे ऊपजै ।।

२९. तथा साधारण नांय, अन्य नहीं एह सारखो ।
तथा अनंत कहाय, अनंत वस्तु नैं जाणवै ।।

३०. यथा अवस्थित देख, तीन काल नीं वस्तु नैं ।
शील प्रकाशन पेख, एहवूं केवलज्ञान छै ।।

३१. *हिव स्यूं आभिनिबोधि ते? जिन कहै च्यार प्रकार।
अवग्रह ईहा अवाय छै, वलि धारणा सार ।।

३२. अवग्रह अर्थ ग्रहण करै, सामान्य थी कहिवाय ।
अशेष विशेष तेहनीं, विचारणा तसु नांय ।।

**सोरठा**

३३. अव नों अर्थ कहाय, प्रथम थकी जे अर्थ प्रति ।
ग्रहण जे करिवो ताय, अवग्रह शब्दार्थ वृत्तौ ।।

३४. *ईहा छता अर्थ भणी, आलोचना विशेख ।
अवाय कह्या जे अर्थ नों, निशेष निश्चय देख ।।

३५. धारण जाण्या अर्थ नैं, विशेष दिल में धार ।
एह अर्थ नहिं वीसरै, भेद कह्या ए च्यार ।।

*लय : सुण सुण साधूजी हो मुनिवर

२२. श्रुताद् वा—शब्दात् ज्ञानं श्रुतज्ञानं—इन्द्रियमनोनिमित्तः श्रुतग्रन्थानुसारी बोध इति । (वृ० प० ३४४)

२३. 'ओहिणाणे' त्ति अवधीयते—अधोऽधो विस्तृतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः स एव ज्ञानम् । (वृ० प० ३४४)

२४. अवधिना वा—मर्यादया मूर्त्तद्रव्याण्येव जानाति नेतराणीति व्यवस्थया ज्ञानमवधिज्ञानम् । (वृ० प० ३४४)

२५. मनसो मन्यमानमनोद्रव्याणां पर्यवः—परिच्छेदो मनःपर्यवः स एव ज्ञानं मनःपर्यवज्ञानम् । (वृ प० ३४४)

२६. मनःपर्यायाणां वा—तदवस्थाविशेषाणां ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम् । (वृ० प० ३४४)

२७. केवलमेकं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षत्वात् शुद्धं वा आवरणमलकलङ्करहितत्वात् । (वृ० प० ३४४)

२८. सकलं वा—तत्प्रथमतयैवाशेषतदावरणाभावतः सम्पूर्णोत्पत्तेः । (वृ० प० ३४४)

२९. असाधारणं वाऽनन्यसदृशत्वात् अनन्तं वा ज्ञेयानन्तत्वात् । (वृ० प० ३४४)

३०. यथावस्थिताशेषभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासीति भावना तच्च तत् ज्ञानं चेति केवलज्ञानम् ।

३१. से किं तं आभिणिबोहियनाणे ?
आभिणिबोहियनाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
ओग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा ।

३२. 'उग्गहो' त्ति सामान्यार्थस्य—अशेषविशेषनिरपेक्षस्यानिर्देश्यस्य रूपादेः । (वृ० प० ३४४)

३३. अव इति—प्रथमतो ग्रहणं—परिच्छेदनमवग्रहः । (वृ० प० ३४४)

३४. 'ईह' त्ति सदर्थविशेषालोचनमीहा, 'अवाओ' त्ति प्रक्रान्तार्थविनिश्चयोऽवायः । (वृ० प० ३४४)

३५. 'धारणे' त्ति अवगतार्थविशेषधरणं धारणा । (वृ० प० ३४४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. रायप्रश्रेणी में कह्या, भेद ज्ञान नां जाण।
तिमहिज इहां भणवा सहु, यावत केवलनाण॥

३६. एवं जहा रायप्पसेणइज्जे (७३९-७४६) नाणाणं भेदो तहेव इह भाणियव्वो जाव सेत्तं केवलनाणे। (श० ८/९८)

३७. कतिविध प्रभु! अज्ञान छै? जिन कहै तीन प्रकार।
मति अरु श्रुत अज्ञान छै, विभंगनाण अवधार॥

३७. अण्णाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे, विभंगनाणे। (श० ८/९९)

विरुद्धा भङ्गा—वस्तुविकल्पा यस्मिंस्तद्विभङ्गं तच्च तज्ज्ञानं च अथवा विरूपो भङ्गः—अवधिभेदो विभङ्गः स चासौ ज्ञानं चेति विभङ्गज्ञानम्। (वृ० प० ३४४)

**वा०**—विभंग नाण ए पाठ नो अर्थ वृत्ति में कह्यु—विरुद्धा भंगा जेहनैं विषे तथा विरूप अवधि नों भेद ते विभंग। इम अकार विशेषित विभंग में स्थापित करी विभंग नैं ज्ञान कह्यु, ते अर्थ मिलतुं नथी।

'विभंग तो अणुयोगदुवार (सू० २८५) में क्षयोपशम भाव कह्यो छै, ते उज्जल जीव छै' तेहनां विरुद्ध भांगा नथी। वले अवधिज्ञान अनैं विभंग नुं दर्शण एक छै, ते माटै ए विरुद्ध नथी। अनैं विरूप पिण नथी। विभंग विरुद्ध हुवै तो ए विभंग नो दर्शन अवधि ते पिण विरुद्ध विरूप हुवै। अनैं जो अवधि-दर्शन विरुद्ध विरूप हुवै तो अवधि-ज्ञान नों पिण एहिज दर्शन छै, ते भणी अवधि-ज्ञान पिण विरुद्ध विरूप हुवै अनैं अवधि-ज्ञान विरुद्ध विरूप नहीं तो अवधि-दर्शन अनैं विभंग-अज्ञान ए विरुद्ध विरूप नहीं।

जद कोई पूछै—ए विरुद्ध नहीं तो विभंग नों अर्थ स्यूं? तेहनों उत्तर—इहांइज लद्धी में कह्यु—विभंग नाणे कतिविधे? जद भगवान कहै—अनेकविध। ते भणी विविधा भंगा जेहने विषे ते विभंग इम अर्थ संभवै, ते विरुद्ध भंगा नो अर्थ न संभवै। जद कोइ पूछै—ठाम-ठाम विभंगनाण सूत्र में क्यूं कह्यो? तेहनो उत्तर—हेमाचार्य कृत प्राकृत व्याकरण में सूत्र नां शब्द साध्या। तिहां एहवुं सूत्र छै, ते कहै छै—'लुक्' 'स्वरस्य स्वरे परे बहुलं लुग् भवति' एहनों अर्थ—स्वर परे हो तो पाछला स्वर नो बहुलपणै किहांइक लुक् हुवै, किहांयक न हुवै। ते माटै बहुल शब्द कह्यो।

विभंग अनाण इसो शब्द हुंतो। इहां 'लुक्' सूत्रे करी गकार मांहिला अकार नुं लुक् थयुं अनैं स्वर हीन गकार अनाण शब्द नां अकार में मिल्यां विभंगनाण शब्द सिद्ध थयुं।

वली पंच वर्णा फूल नैं सूत्रे 'दसद्धवण्णकुसुम' पाठ कह्यु छै। इहां पिण दस अद्ध शब्द हुंतो 'लुक्' सूत्रे करी सकार मांहिला अकार नों लुक् थयुं। स्वर हीन सकार अद्ध शब्द नां अकार में मिल्यां दसद्ध शब्द सिद्ध थयुं।

तथा सर्वार्थसिद्ध नैं 'सव्वट्ठसिद्ध' पाठ कह्युं। इहां पिण सव्वअट्ठसिद्ध शब्द हुंतो। 'लुक्' सूत्रे करी व्वकार मांहिला अकार नुं लुक् थयुं। स्वरहीन व्वकार अट्ठ शब्द नां अकार में मिल्यां सव्वट्ठ शब्द सिद्ध थयुं। इत्यादिक अनेक ठामे 'लुक्' सूत्र करी पाछला स्वर नों लुक् हुवै छै। तिम विभंग नाण शब्द पिण जाणवो।

तिवारे कोई पूछै- विभंग अनाण इसो पाठ किहांइ कह्यो छै? तेहनों उत्तर—भगवती शतक ९।३३ में असोच्चा नैं अधिकारे कह्यो—निरंतर छठ-छठ तप, सूर्य स्हामी आतापना, प्रकृति भद्रक, स्वभावे उपशांत, स्वभावे पतला क्रोध-मान माया-लोभ, तिणे करी मृदु—कोमल, मार्दवसंपन्न, अल्लीण- इन्द्रियां वश्य करी, भद्रिक,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनीतपणै करी एकदा प्रस्तावे शुभ अध्यवसाये करी शुभ परिणामे करी विशुद्ध लेश्याइं करी तदावरणी कर्म नां क्षयोपशम करी 'ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स'—ईहा कहितां अर्थ-चेष्टा—ज्ञान सन्मुख विचारवो। अपोह नों अर्थ वृत्तिकार तो विपक्ष कियो अनैं बड़ा टबा में कह्यो—धर्म ध्यान बीजा पक्ष रहित निर्णय करवो।

मग्गण कहितां तेहिज धर्म नीं आलोचना। गवेषणं कहितां अधिक धर्म नीं आलोचना करतां छतां विभंगे णामं अण्णाणे समुप्पज्जति—विभंग नामैं अज्ञान ऊपजै। जघन्य आंगुल नों असंख्यातमो भाग उत्कृष्ट असंख्याता हजार जोजन जाणै, देखै ते विभंग ज्ञान करिकै जीव पिण जाणै, अजीव पिण जाणै। पाखंड नैं विषे रह्या ते महाआरंभी नैं संक्लिश्यमान जाणै। तेहनी अपेक्षाये अल्पआरंभी नैं विशुद्धमान जाणै। जद प्रथम समक्त्व पामै, साधु धर्म प्रतै रोचवै, सद्दहै, बांछै, चारित्र परिवजै, लिंग परिवजै—

तस्स णं तेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं सम्मदंसण-पज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं से विब्भंगे अण्णाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ—

तिणे मिथ्यात्व पर्याये करी परिहीयमान होवै करी, सम्यग् दर्शन नां पर्याय तिण करी परिवर्द्धमान होते थके, ते विभंग नामा अज्ञान सम्यग्दर्शन परिगृहीत छतो उतावलो हीज अवधिज्ञान हुइं। इहां प्रत्यक्ष पाठ में कह्यो—विभंग नामे अज्ञान ऊपजै। वलि कह्यं सम्यक्त पाम्ये छते 'विभंगे अण्णाणे' विभंग अज्ञान शीघ्र अवधि हुवै। इहां 'लुक्' सूत्रे करी पाछला स्वर नों लुक् नथी थयुं। बहुलपणै लुक् कह्यं छै ते माटै इहां लुक् न थयुं।

अनैं विभंग नाण शब्द हुवै तिहां णकार मांहिला अकार नो लुक् हुवै पिण अनाण शब्द नां अकार नों लुक् न थयुं ते माटै विभंग नामैं अज्ञान कहीजै पिण ज्ञान न कहीजै। जो विभंग में अकार नों अर्थ हुइं तो विभंगे अनाणे एहवो सूत्रे क्यूं कह्यो? तथा इहां सूत्रे बाल तपस्वी नैं विभंग ऊपजैं ते विभंग ऊपजवा नो कारण सूत्रे कह्यं, निरंतर छठ-छठ तप, सूर्य की आतापना, भद्रिक, विनीत, क्रोधादिक पातला, मृदु-मार्दव, आलीन एहवा गुण कह्या। वलि भला अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्याइं करी तदावरणी कर्म नां क्षयोपशमे करी भली विचारणाइं करी (अर्थ में कह्यो) धर्म ध्याने करी विभंग अज्ञान ऊपजै। ए विभंग उपजवा नां कारण कह्या। विभंग विरुद्ध हुवै तो शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध-लेश्या तदावरणी नों क्षयोपशम ए अभितर शुद्ध ऊपजवा नां कारण क्यूं कह्या?

वली कह्यो विभंग अज्ञान करी जीव पिण जाणै, अजीव पिण जाणै, पाखंड्यां नैं जाणै, सम्यक्त्व पामैं, जो ए विभंग विरुद्ध थी जीव-अजीव किम जाणैं? पाखं-ड्यां नैं किम ओलखै? सम्यक्त्व किम पामै? ते माटै ए विरुद्ध नथी। कर्म नां क्षयोपशम थी ए उपजे ते उज्जल जीव विरुद्ध नथी। अज्ञानी रा भाजन माटै विभंग अज्ञान कह्यु अनैं सम्यक्त्व पामे ज्ञान रा भाजन माटै तेहनैं अवधिज्ञान कहियै।

सम्यग् दृष्टि पूर्व भण्यो तेहनैं ज्ञानी रा भाजन माटै ज्ञान कहियै अनैं ते एक बोल ऊंधो श्रद्धयां छतां ते पूर्व नां ज्ञान नैं अज्ञानी रा भाजन माटै श्रुत अज्ञान कहियै। एक बोल ऊंधो श्रद्ध्यो ते मिथ्यात आश्रव छै, पिण तेहनैं अज्ञान न कहियै।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्यार ज्ञान तीन अज्ञान तो क्षयोपशम भाव छै। ऊंधो श्रद्धै ते मोहकर्म नों उदय-निष्पन छै। मति ज्ञानावरणी नों क्षयोपशम थयां थकां मति ज्ञान, मति अज्ञान नीपजै। श्रुत ज्ञानावरणी रो क्षयोपशम थयां श्रुत ज्ञान, श्रुत अज्ञान नीपजै। अवधि ज्ञानावरणी रो क्षयोपशम थयां अवधिज्ञान, विभंग अज्ञान नीपजै। मनःपर्याय ज्ञान-वरणी रो क्षयोपशम थयां मनःपर्याय ज्ञान नीपजै। केवलज्ञानावरणी नों क्षय थयां केवलज्ञान नीपजै। ते भणी ए च्यार ज्ञान, तीन अज्ञान क्षयोपशम भाव छै। केवल-ज्ञान क्षायिक भाव छै। ऊजला लेखै निरवद्य छै। ते माटै अज्ञान विरुद्ध विरूप नथी

जिम टकसाल थकी एक रूपयो भंगी ले गयो, एक रूपयो ब्राह्मण ले गयो। भंगी कनैं ते भंगी रो रूपयो बाजै, ब्राह्मण कनैं ते ब्राह्मण रो रूपयो बाजै। इम भाजन लारै जुदो नाम बाजै, पिण रूपयो चांदी रो छै, चोखो छै। इम ज्ञानावरणी रा क्षयो-पशम रूप टकसाल थी च्यारज्ञान, तीन अज्ञान नीपना, ते ऊजल जीव छै। कर्म अलगा थयां जीव ऊजलो हुवै, तेहनैं विरुद्ध विरूप किम कहियै। अज्ञानी केइ बोल ऊंधा श्रद्धै छै, ते तो मिथ्यात आश्रव छै। ते मोह कर्म नां उदय थी नीपनों छै, ते अज्ञान नथी। अनैं अज्ञानी रै जेतलो शुद्ध जाणपणो छै ते ज्ञानावरणी रा क्षयोपशम थी नीपनो छै, तेहनैं अज्ञान कहीजै। ते माटै ऊंधी श्रद्धा नैं अज्ञान जुदा-जुदा छै, तेहनैं कर्म अलगा थयां जीव ऊजलो हुवै छै, ज्ञान अज्ञान नीपजै ते ऊजल जीव नैं विरुद्ध कहै ते महा अन्याय छै।

वलि इहांइज लद्धी में पांच ज्ञान, तीन अज्ञान रा पजवा कह्या, ते कहै छै— सर्व थी थोड़ा मनपर्याय ज्ञान रा पजवा। तेहथी विभंग अज्ञान नां पजवा अनंत-गुणा। तेहथी अवधिज्ञान नां पजवा अनंतगुणा। तेहथी श्रुत अज्ञान नां पजवा अनंत-गुणा। तेहथी श्रुत ज्ञान नां पजवा विसेसाहिया। तेहथी मति अज्ञान नां पजवा अनंतगुणा। तेहथी मतिज्ञान नां पजवा विसेसाहिया। तेहथी केवलज्ञान नां पजवा अनंतगुणा। इहां मनःपर्याय ज्ञान थकी विभंग अज्ञान नां पजवा अनंतगुणा कह्या अनैं अवधि ज्ञान थकी श्रुत अज्ञान नां पजवा अनंतगुणा तीर्थंकरे कह्या, ते माटै ए विभंग अज्ञान विरुद्ध नथी। तीनूं अज्ञान रो क्षयोपशम भाव ऊजल जीव छै, न्याय दृष्टि करी विचारी जोयज्यो।' (ज० स०)

३८. हिव स्यूं मति अज्ञान ते? जिन कहै च्यार प्रकार।
अवग्रह ईहा अवाय छै, वले धारणा सार।।

३९. हिव स्यूं ते अवग्रह कह्यो? जिन कहै दोय प्रकार।
अर्थ अवग्रह जाणियै, व्यंजन अवग्रह धार।।

४०. जिम आभिनिबोधिक कह्यो, तिमहिज णवरं एह।
एकार्थ वर्जी करी, तास न्याय इम लेह।।

४१. ज्ञान आभिनिबोधिक विषे, ओगिण्हणया जेह।
अवधारणया सवणया, अवलंबणया मेह।।

४२. इत्यादिक जे आखिया, पंच पंच जे भेद।
एक अर्थ छै तेहनों, अवग्रहादिक नां वेद।।

३८. से किं तं मइअण्णाणे?
मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—ओग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा। (श० ८/१००)

३९. से किं तं ओग्गहे?
ओग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य।

४०. एवं जहेव आभिणिबोहियनाणं तहेव, नवरं—एगट्ठियवज्जं।

४१, ४२. इहाभिनिबोधिकज्ञाने 'उग्गिण्हणया अवधारणया सवणया अवलंबणया मेहे, त्यादीनि पञ्च पञ्चैकार्थिकान्यवग्रहादीनामधीतानि। (वृ० प० ३४५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. मति अज्ञान विषे वली, ते नहिं कहिवा भेद ।
तिण कारण एकार्थिका, वर्ज्या आण उमेद ।।
४४. जाव नोइंद्री धारणा, कही धारणा एह ।
मति अज्ञान ए आखियो, भाव क्षयोपशम जेह ।।
४५. हिव स्यूं श्रुत अज्ञान ते ? तब भाखै जिनराय ।
ए अज्ञानी नां रच्या, मिच्छदिट्ठी नां ताय ।।
४६. जिम नंदी सूत्रे कह्या, भारत रामायण आदि ।
यावत वेद चिउं वली, अंग उपंगज साधि ।।

४७. शिक्षादिक षट अंग छै, उपंग तसु व्याख्यान ।
श्रुत अज्ञान ए आखियो, हिव तसु न्याय पिछान ।।

**सोरठा**

४८. मिथ्यादृष्टी जाण, स्वछंद बुद्धि मति रच्या ।
भारतादि पहिछाण, श्रुत अज्ञान कह्यो तसु ।।

**वा०**—तिहां अवग्रह, ईहा बुद्धि अनैं अवाय, धारणा मति स्वच्छंद ते पोता नां अभिप्राय करिकै । तत्व थकी सर्वज्ञ प्रणीत अर्थ अनुसार विना बुद्धि अनैं मति ए बिहुं करिकै विकल्पित ते रच्या, ते स्वच्छंद बुद्धि मति विकल्पित कहियै, ते भारतादिक ।

४९. 'निज शास्त्र रै मांहि, जिन-मत मिलती वारता ।
तसु जाणपणो ताहि, कहियै श्रुत अज्ञान ते ।।
५०. पूरव भण्यो पिछाण, समदृष्टि रै ज्ञान श्रुत ।
मिथ्याती रै जाण, श्रुत अज्ञान कहीजियै ।।
५१. तिम निज रचित विचार, जिन मत मिलती बात जे ।
तसु जाणपणो सार, श्रुत अज्ञान कह्यो अछै ।।
५२. ज्ञानवरणी देख, क्षयोपशम थी नीपनों ।
ज्ञान अज्ञान संपेख, अनुयोगद्वार विषे कह्यो ।।

५३. असोच्चा अधिकार, विभंग मिथ्यादृष्टि तणैं ।
सम्यक्त आयां सार, अवधिज्ञान कहियै तसु ।।
५४. इहविध न्याय पिछाण, अवधिज्ञान समदृष्टि रै ।
आयां धुर गुणठाण, विभंग अज्ञान कहीजियै ।।
५५. विभंग अवधि जे ज्ञान, दर्शण एक बिहुं तणो ।
अवधि नाम पहिछाण, भाव क्षयोपशम ते भणी ।।
५६. जिन आगम अवलोय, समदृष्टी रै ज्ञान ते ।
भणैं मिथ्याती कोय, कहियै तास अज्ञान ते ।।
५७. भाजन लारै जान, ज्ञान अज्ञान कहीजियै ।
समदृष्टी रै ज्ञान, अज्ञान अज्ञानी तणैं ।।

४३. मत्यज्ञाने तु न तान्यध्येयानीति भावः ।
(वृ० प० ३४५)

४४. जाव नोइंदियधारणा । सेत्तं धारणा, सेत्तं मइअण्णाणे ।
(श० ८/१०१)

४५, ४६. से किं तं सुयअण्णाणे ?
सुयअण्णाणे—जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धि-मइ-विगप्पियं, तं जहा—भारहं, रामायणं जहा नंदीए (सू० ६७) जाव चत्तारि वेदा संगोवंगा ।

४७. इहाङ्गानि—शिक्षादीनि षट् उपाङ्गानि च—तद्-व्याख्यानरूपाणि । (वृ० प० ३४५)
सेत्तं सुयअण्णाणे । (श० ८/१०२)

वा०—'सच्छंदबुद्धिमइविगप्पियं तं जहा—भारहं रामायण' मित्यादि तत्रावग्रहेहे बुद्धिः अवायधारणे च मतिः स्वच्छन्देन—स्वाभिप्रायेण तत्त्वतः सर्वज्ञप्रणीतार्थानुसारमन्तरेण बुद्धिमतिभ्यां विकल्पितं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितं । (वृ० प० ३४५)

५२. से किं तं खओवसमनिप्फण्णे ?
खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—
खओवसमिया आभिणिबोहियनाणलद्धी……
खओवसमिया विभंगनाणलद्धी (अणुओग सू० २८५)
५३. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं……से विभंगे अण्णाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ ।
(श० ९ उ० ३१ सू०३३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. केइ अजाण कहंत, जे मिथ्यादृष्टी तणें।
भणवो जितरो हुंत, ऊंधो जाणपणो सरव॥

५९. चंदपन्नती मांय, पहिला पाहुड़ा तणां।
सप्तम जे सुखदाय, पाहुड पाहुड में कह्यो॥

५९-६३. चंदपण्णत्ती १।२५ (सूरपण्णत्ती)

६०. अट्ठ पडिवत्ती जाण, अन्यतीर्थि नीं कहण ते।
मंडल नो संठाण, जुओ-जुओ भाखै तिके॥

६१. इक कहै समचउरंस, मंडल नो संठाण छै।
एक विषम चउरंस, संस्थाने मंडल कहै॥

६२. सम चउकोण संठाण, एक विषम चउकोण कहै।
सम चक्रवाल पिछाण, एक विषम चक्रवाल कहै॥

६३. चक्र अर्द्ध चक्रवाल, एक छत्र आकार कहै।
ए तसु कहण निहाल, पडिवत्ती अठ तेहनीं॥

६४. जिन कहै छत्राकार, ए नय करिनैं जाणवी।
स्वमत ए अंगीकार, सात पडिवत्ती नहिं मिलै॥

६५. इम अन्यतीर्थक बात, जिन-मत सूं मिलती तिका।
मानी श्री जगनाथ, अणमिलती मानी नथी॥

६६. तिम तसु ग्रंथ मझार, जिन-मत मिलती वारता।
ते शुद्ध जाणैं सार, तिण रै ए अज्ञान है॥

६७. तिण कारण अज्ञान, क्षय उपशम भावे कह्य।
अज्ञान निसुणी कान, भरम कोई भूलो मती'॥

(ज० स०)

६८. *अथ स्यूं विभंग अनाण ते? जिन कहै विविध प्रकार।
ग्राम तणैं संठाण छै, नगर संठाण विचार॥

६८. से किं तं विभंगनाणे ?
विभंगनाणे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—गामसंठिए, नगरसंठिए,

६९. यावत सण्णिवेस नैं, संठाणे पहिछाण।
द्वीप तणै संस्थान ते, समुद्र तणैं संठाण॥

६९. जाव सण्णिवेससंठिए, दीवसंठिए, समुद्दसंठिए,

७०. वास भरत प्रमुख कह्या, क्षेत्र तणैं संठाण।
वर्षधर हिमवंत आदि दे गिरि संठाणे जाण॥

७०. वाससंठिए, वासहरसंठिए,
'वाससंठिए' त्ति भरतादिवर्षाकारं 'वासहरसंठिए' त्ति हिमवदादिवर्षधरपर्वताकारं। (वृ० प० ३४५)

७१. पर्वत गिरि सामान्य ते, तास संठाण विचार।
तरु थूभ हय गज वली, तेह तणैं आकार॥

७१. पव्वयसंठिए, रुक्खसंठिए, थूभसंठिए, हयसंठिए, गयसंठिए,

७२. नर किन्नर किंपुरुष नैं, महोरग गंधर्व जाण।
उसभ पशु आकार ते, कहियै विभंग अनाण॥

७२. नरसंठिए, किन्नरसंठिए, किंपुरिससंठिए, महोरगसंठिए, गंधव्वसंठिए, उसभसंठिए, पसुसंठिए,

७३. पसय द्विखुर अटवी तणां, चउपद तणां विशेष।
पंखी नैं बांदर तणा, आकारेज कहेस॥

७३. पसयसंठिए, विहगसंठिए, वानरसंठिए—
तत्र पसयः—आटव्यो द्विखुरश्चतुष्पदविशेषः। (वृ० प० ३४५)

७४. वलि नाना प्रकार नां, संठाणे करि सोय।
विभंग तणो आकार छै, एह विभंग अवलोय॥

७४. नाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते। (श० ८/१०३)

*लय : सुण सुण साधुजी हो मुनिवर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५. देश बयांसी अंक नुं, सौ चउतीसमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गण गुणमाल ॥

## ढाल १३५

### दूहा

१. आख्या ज्ञान अज्ञान ए, हिव आगल अधिकार ।
ज्ञानी अज्ञानी तणो, करै निरूपण सार ॥

२. जीव दंडक चउवीस जे, वलि गत्यादिक द्वार ।
ज्ञान अनें अज्ञान नीं, नियमा भजना सार ॥

*जय जश दायक संपति लायक, नायक नाथ निमल नाणी ।
देव जिनेंद दिनेंद अमंद, सुधा-रस चंद सरस वाणी ॥ (ध्रुपदं)

३. हे प्रभु ! जीवा स्यूं नाणी छै, कै तसु कहियै अज्ञानी ?
जिन कहै जीवा ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण पहिछानी ॥

४. जे ज्ञानी ते केइ बे ज्ञानी, केइ एक छै त्रिण ज्ञानी ।
केइ चउज्ञानी केइ इक ज्ञानी, हिव एहनों निर्णय जानी ॥

५. बे ज्ञानी ते मति श्रुत ज्ञानी, त्रिण ज्ञानी इहविध जानी ।
मति श्रुत अवधि तथा मति श्रुत मनपज्जव तीजो गुणखानी ॥

६. चउज्ञानी ते मति श्रुत अवधि, अनें मनपज्जव पहिछानी ।
इक ज्ञानी ते नियमा निश्चै, केवलज्ञानी सुध ध्यानी ॥

७. जे अज्ञानी जीव अछै ते, कितरा इक बे अज्ञानी ?
केइ एक छै तीन अज्ञानी, तसु निरणय आगल जानो ॥

८. जे बे अज्ञानी छै तेहनें, कहियै मति श्रुत अज्ञानी ।
तीन अज्ञानी जेह जीव ते, मति श्रुत विभंग त्रिहुं जानी ॥

९. प्रभु ! नारक स्यूं ज्ञानी छै ? कै नारक छै अज्ञानी ?
जिन कहै नारक ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण ते जानी ॥

१०. ज्ञानी ते नियमा त्रिहुं ज्ञानी, मति श्रुत अवधि ज्ञान जानी ।
समदृष्टी जे नरके जावै, ए त्रिहुं सहित गमन ठानी ॥

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

१. अनन्तरं ज्ञानान्यज्ञानानि चोक्तानि, अथ ज्ञानिनोऽ-ज्ञानिनश्च निरूपयन्नाह— (वृ० प० ३४५)

२. गइइंदिए य काए सुहुमे पज्जत्तए भवत्थे य ।
भवसिद्धिए य सन्नी लद्धी उवओग जोगे य ॥१॥
लेसा कसाय वेए आहारे नाणगोयरे काले ।
अन्तर अप्पाबहुयं च पज्जवा चेह दाराइं ॥२॥ (वृ० प० ३४६)

३. जीवा णं भंते ! किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! जीवा नाणी वि, अण्णाणी वि ।

४. जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी, अत्थेगतिया एगनाणी ।

५. जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी य । जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, अहवा आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी, मणपज्जवनाणी ।

६. जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी । जे एगनाणी ते नियमा केवलनाणी ।

७. जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी ।

८. जे दुअण्णाणी ते मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी य । जे तिअण्णाणी ते मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगनाणी । (श० ८/१०४)

९. नेरइया णं भंते ! किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि ।

१०. जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी, तं जहा—आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी ।
सम्यग्दृष्टिनारकाणां भवप्रत्ययमवधिज्ञानमस्तीति-कृत्वा ते नियमात् त्रिज्ञानिनः । (वृ० प० ३४५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. जे अज्ञानी ते केइक में, दोय अज्ञान कह्या नाणी।
तीन अज्ञान केइक में लाभै, भजना तीन अनाणाणी॥

## सोरठा

१२. असन्नी नरके जाय, नरक अपर्याप्त विषे।
विभंग न लाभे ताय, बे अज्ञान इण कारणें॥

१३. सन्नी मिथ्याती ताय, नरक विषे जे ऊपजै।
तिको विभंग ले जाय, भवप्रत्यय छै ते भणो॥

१४. *असुरकुमार तणी पूछा, जिन कहै नरक जिम पहिछाणी।
नियमा तीनूं ज्ञान तणी छै, भजना तीन अनाणाणी॥

१५. एवं यावत थणियकुमारा, हिव पुढवी पूछा जानी।
जिन कहै पुढवी ज्ञानी नहिं छै, नियमा दोय अनाणाणी॥

१६. एवं जाव वणस्सइ कहियै, ज्ञानी नहिं ते अज्ञानी।
कर्म ग्रंथ दूजो गुणठाणो, आख्यो तेह विरुध जानी॥

१७. बे इंद्री नीं पूछा जिन कहै, ज्ञानी नें वलि अज्ञानी।
जे ज्ञानीं ते नियमा बे छै, मति श्रुत ज्ञान तास जानी॥

१८. जे अज्ञानी ते नियमा थी, कहियै मति श्रुत अज्ञानो।
इमहिज ते इंद्री नें कहिवूं, इमहिज चउरिंद्री जानो॥

## सोरठा

१९. सम्यक्त वमतो जाण, विकलेंद्री में ऊपजै।
सास्वादन गुणठाण, अपर्याप्त विषे हुवै॥

२०. *पंचेंद्री तिर्यंच नी पूछा, जिन भाखै सुण सुखदानी।
तिरि-पंचेंद्री ज्ञानो पिण छै, अज्ञानी पिण ते जानी॥

२१. जे ज्ञानी ते केइक में बे, केइक तिर्यंच त्रिण ज्ञानी।
इम त्रिण ज्ञान तणी छै भजना, भजना तीन अज्ञानानो॥

११. जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी। एवं तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।
(श० ८/१०५)

१२. असञ्ज्ञिनः सन्तो ये नारकेषूत्पद्यन्ते तेषामपर्याप्तकावस्थायां विभङ्गाभावादाद्यमेवाज्ञानद्वयमिति ते द्व्यज्ञानिनः। (वृ० प० ३४५)

१३. ये तु मिथ्यादृष्टिसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यन्ते तेषां भवप्रत्ययो विभङ्गो भवतीति ते त्र्यज्ञानिनः। (वृ० प० ३४५)

१४. असुरकुमारा णं भंते! किं नाणी? अण्णाणी?
जहेव नेरइया तहेव, तिण्णि नाणाणि नियमा, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

१५. एवं जाव थणियकुमारा। (श० ८/१०६)
पुढविक्काइया णं भंते! किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नो नाणी, अण्णाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी—मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य।

१६. एवं जाव वणस्सइकाइया। (श० ८/१०७)
सव्वजियठाणमिच्छे सग सासणि....
....'सग' त्ति सप्त जीवस्थानानि सासादने भवन्ति। तद्यथा—'पञ्चापर्याप्ताः' बादरैकेन्द्रियोऽपर्याप्तः....
(देवेन्द्रसूरिविरचित चतुर्थ कर्मग्रन्थ पृ० १७९)

१७. बेइंदियाणं पुच्छा।
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि।
जे नाणी ते नियमा दुण्णाणी तं जहा—आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य।

१८. जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, तं जहा—मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी य। एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि। (श० ८/१०८)

१९. द्वीन्द्रियाः केचित् ज्ञानिनोऽपि सास्वादनसम्यग्दर्शनभावेनापर्याप्तकावस्थायां भवन्तीत्यत उच्यते।
(वृ० प० ३४५)

२०. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।
गोयमा! नाणी वि अण्णाणी वि।

२१. जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, अत्थेगतिया तिअण्णाणी, एवं तिण्णि नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

*लय: चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. मणुसा जीव कह्या जिम कहिवा, पंच ज्ञान भजना ठानी।
तीन अज्ञान तणी छै भजना, अखिल न्याय दिल में आनी।।
२३. बाणव्यंतरा जेम नारकी, जोतिषी वैमानिक ख्यानी।
तीन ज्ञान बलि तीन अज्ञान तणी, नियमा निश्चै मानी।।

२४. सिद्धां नीं पूछा जिन भाखै, ज्ञानी छै नहिं अज्ञानी।
केवलज्ञान तणी छै नियमा, आतमीक सुख गुणखानी।।

वा०—जीवादि छब्बीस पद नैं विषे ज्ञानी अज्ञानी चिंतव्या, हिवै तेहिज गति, इंद्रिय, कायादि द्वार नैं विषे चिंतवन करता छता कहै छै—

२५. नारकगतिया जीवा प्रभुजी! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी?
श्री जिन भाखै ज्ञानी पिण छै, अज्ञानी पिण पहिछानी।।
२६. तीनूं ज्ञान तणी छै नियमा, भजना तीन अज्ञानानी।
नरक विषे नर तिरि ऊपजता, वाटे वहिता ए जानी।।

**सोरठा**

२७. पंचेंद्री तिर्यंच, वलि मनुष्य थी नरक में।
उत्पत्तिकामी संच, एह विचालै बरतता।।
२८. सम्यग्दृष्टी जेह, नियमा तीनूं ज्ञान नीं।
मिथ्यादृष्टी तेह, भजना तीन अज्ञान नी।।
२९. असन्नी नरके जाय, वाटे दोय अज्ञान तसु।
सन्नी मिथ्याती ताय, वाटे तीन अज्ञान ह्वै।।

३०. तिण कारण अवलोय, नियमा तीनूं ज्ञान री।
अज्ञान त्रिहुं नीं सोय, भजना छै इण कारणें।।

३१. *तिर्यंचगतिया जीवा प्रभुजी! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी?
जिन कहै दोय ज्ञान नैं दोय अज्ञान तणी नियमा जानी।।

**सोरठा**

३२. तिर्यंच में आवंत, वाटे ज्ञान अज्ञान बे।
अवधि विभंग न हुंत, तिण स्यूं नियमा बे तणी।।

*लय: चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

२२. मणुस्सा जहा जीवा, तहेव पंच नाणाणि, तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।
२३. वाणमंतरा जहा नेरइया। जोइसिय-वेमाणियाणं तिण्णि नाणाणि, तिण्णि अण्णाणि नियमा।
(श० ८/१०९)

२४. सिद्धाणं भंते! पुच्छा।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी, नियमा एगनाणी—केवलनाणी। (श० ८/११०)
वा०—अनन्तरं जीवादिषु षड्विंशतिपदेषु ज्ञान्यज्ञानिनश्चिन्तिताः, अथ तान्येव गतीन्द्रियकायादिद्वारेषु चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ३४५)
२५. निरयगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि।
२६. तिण्णि नाणाइं नियमा, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।
(श० ८/१११)

२७. ये पंचेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येभ्यो नरके उत्पत्तुकामा अन्तरगतौ वर्त्तन्ते ते निरयगतिका विवक्षिताः।
(वृ० प० ३४६)

२९. असञ्ज्ञिनां नरके गच्छतां द्वे अज्ञाने अपर्याप्तकत्वे विभङ्गस्याभावात् सञ्ज्ञिनां तु मिथ्यादृष्टीनां त्रीण्यज्ञानानि भवप्रत्ययविभङ्गस्य सद्भावाद्।
(वृ० प० ३४६)
३०. एतत्प्रयोजनत्वाद् गतिग्रहणस्येति 'तिन्नि नाणाइं नियम' त्ति····अतस्त्रीण्यज्ञानानि भजनयेत्युच्यत इति।
(वृ० प० ३४६)

३१. तिरियगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा! दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा।
(श० ८/११२)

३२. तिर्यक्षु गतिः—गमनं येषां ते तिर्यग्गतिकास्तेषां तदपान्तरालवर्त्तिनां 'दो नाण' त्ति सम्यग्दृष्टयो अवधिज्ञाने प्रपतिते एवं तिर्यक्षु गच्छन्ति तेन तेषां द्वे एव ज्ञाने 'दो अन्नाणे' त्ति मिथ्यादृष्टयोऽपि हि विभङ्गज्ञाने प्रतिपतिते एव तिर्यक्षु गच्छन्ति तेन तेषां द्वे अज्ञाने इति। (वृ० प० ३४६, ३४७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. *मनुष्यगतिया जीवा प्रभुजी ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
जिन कहै भजना तीन ज्ञान नीं, नियमा बे अज्ञानानि ।।

**सोरठा**

३४. मनु गति में आवंत, वाटे वहितां नैं विषे ।
अवधि सहित गच्छंत, तीर्थंकरवत कोइक में ।।
३५. कोइक अवधि तजेह, आवै बे ज्ञाने करी ।
तिण सूं एम कहेह, भजना ए त्रिण ज्ञान नीं ।।
३६. अज्ञानी आवंत, मनुष्य विषे जे वाट में ।
विभंग अनाण न हुंत, नियमा दोय अज्ञान नीं ।।

३७. *सुरगतिया जिम नारकगतिया, सिद्धगतिया प्रभु! स्यूं ज्ञानी?
सिद्ध जेम सिद्धगतिया कहिवा, सुर सिद्ध न्याय हिवै जानी ।।

**सोरठा**

३८. जे ज्ञानी सुर हुंत, अंतराल तेहनैं अवधि ।
भव-प्रत्यय उपजंत, देवायु धुर समय में ।।
३९. इण कारण तसु ख्यात, नारक जिम त्रिण ज्ञान नीं ।
नियमा निश्चै थात, इहविध आख्यो वृत्ति में ।।
४०. फुन अज्ञानी जेह, ऊपजता असन्नी थकी ।
बे अज्ञान कहेह, अपर्याप्त में विभंग नहीं ।।
४१. सन्नी थी उपजंत, विभंग ह्वै भवप्रत्यय ।
तसु नारक जेम कहंत, भजना तीन अज्ञान नीं ।।
४२. प्रथम समय सिद्ध पेख, सिद्धि-गतिका तेहनैं ।
कह्या वाटे वहिता देख, सिद्धा ते सहु सिद्ध गिण्या ।।
४३. सिद्धा सिद्धि-गतिकाज, अन्य विशेष न बिहुं मझै ।
वलि गति द्वार समाज, तिण सूं देखाड़्या इहां ।।

४४. इम अन्य द्वार मझार, अकाइया प्रमुख कह्या ।
द्वार वले अधिकार, पुनरुक्त दोष न जाणवूं ।।

४५. *हे भगवंत ! सइंदिया जीवा, स्यूं ज्ञानी के अज्ञानी ?
जिन कहै च्यार ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना जानी ।।

**सोरठा**

४६. सइंदिया में जाण, गुणठाणा बारै अछै ।
तिण कारण पहिछाण, केवल वर्जी चिउं कह्या ।।

वा०—इंद्रिय उपयोगवंत ते सइंदिया ज्ञानी नैं कदाचित् बे, कदाचित् तीन, कदाचित् च्यार ज्ञान हुवै । तेहनैं केवलज्ञान नहीं, अतीन्द्रिय ज्ञानपणां थकी । दोय

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु

३३. मणुस्सगतिया णं भंते! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी?
गोयमा ! तिण्णि नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा ।

३४. मनुष्यगतौ हि गच्छन्तः केचिद्ज्ञानिनोऽवधिना सहैव गच्छन्ति तीर्थङ्करवत् । (वृ० प० ३४७)
३५. केचिच्च तद्विमुच्य तेषां त्रीणि वा द्वे वा ज्ञाने स्यातामिति । (वृ० प० ३४७)
३६. ये पुनरज्ञानिनो मनुष्यगतावुत्पत्तुकामास्तेषां प्रतिपतित एव विभङ्गे तत्रोत्पत्तिः स्यादित्यत उक्तं 'दो अन्नाणाइं नियमं' त्ति । (वृ० प० ३४७)
३७. देवगतिया जहा निरयगतिया । (श० ८/११३)
सिद्धगतिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा । (श० ८/११४)

३८. देवगतौ ये ज्ञानिनो यातुकामास्तेषामवधिर्भवप्रत्ययो देवायुः प्रथमसमय एवोत्पद्यते । (वृ० प० ३४७)
३९. अतस्तेषां नारकाणामिवोच्यते 'तिन्नि नाणाइं नियमं' त्ति । (वृ० प० ३४७)
४०. ये त्वज्ञानिनस्तेऽसञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यमाना द्व्यज्ञानिनः, अपर्याप्तकत्वे विभङ्गस्याभावात् । (वृ० प० ३४७)
४१. सञ्ज्ञिभ्य उत्पद्यमानास्त्वज्ञानिनो भवप्रत्ययविभङ्गस्य सद्भावाद् अतस्तेषां नारकाणामिवोच्यते—'तिन्नि अन्नाणाइं भयणाए' त्ति । (वृ० प० ३४७)

४३. यद्यपि च सिद्धानां सिद्धिगतिकानां चान्तरगत्यभावान्न विशेषोऽस्ति तथाऽपीह गतिद्वारबलायातत्त्वात्ते दर्शिताः । (वृ० प० ३४७)
४४. एवं द्वारान्तरेष्वपि परस्परान्तर्भावेऽपि तद्विशेषापेक्षयाऽपौनरुक्त्यं भावनीयमिति । (वृ० प० ३४७)

४५. सइंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८/११५)

वा०—'सेन्द्रियाः' इन्द्रियोपयोगवन्तस्ते च ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च, तत्र ज्ञानिनां चत्वारि ज्ञानानि भजनया स्यात् द्वे स्यात् त्रीणि स्याच्चत्वारि, केवलज्ञानं तु नास्ति



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि ज्ञान हुवै ते लब्धि अपेक्षया। उपयोग नीं अपेक्षाय करिकै सर्व नैं एक काल नैं विषे एकहीज ज्ञान हुइं।

तेषाम् अतीन्द्रियज्ञानत्वात्तस्य, द्व्यादिभावश्च ज्ञानानां लब्ध्यपेक्षया, उपयोगापेक्षया तु सर्वेषामेकदैकमेव ज्ञानम् (वृ० प० ३४७)

४७. *हे प्रभु ! एगिंदिया जीवा ते, स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
पृथ्वीकाय जेम नो नाणी, नियमा बे अज्ञानानि ।।

**वा०**—तिहां जे प्रथम द्वारे जीव पद, चउवीस दंडक सिद्ध पद—ए छब्बीस पद नैं विषे पृथ्वीकाय नैं कह्यो नो नाणी अज्ञानी छै, तेहनैं बे अज्ञान नियमा इम कह्यो। तिम एकेन्द्रिय नैं पिण कहिवूं।

४७. एगिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा पुढविकाइया।

४८. बेइंदी नैं तेइंद्री, वलि चउरिंद्री पहिछानी।
दोय ज्ञान नैं दोय अज्ञान तणी नियमा निश्चै ठानी ।।

४८. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया णं दो नाणा, दो अण्णाणा नियमा।

## सोरठा

४९. विकलेंद्री अपजत्ति, सास्वादन ज्ञानी विषे।
ज्ञान दोय निष्पत्ति, षट आवलिका मान तसु ।।

४९. 'बेइंदिये' त्यादि, एषां द्वे ज्ञाने, सासादनस्तेषूत्पद्यत इति कृत्वा,सासादनश्चोत्कृष्टतः षडावलिकामानोऽतो द्वे ज्ञाने तेषु लभ्येत इति (वृ० प० ३४७)

५०. *पंचिंदिया सइंदिया जिम छै, अणिंदिया पूछा ठानी।
सिद्ध जेम केवल नीं नियमा, इंद्रिय द्वार समाप्तानी ।।

५०. पंचिंदिया जहा सइंदिया। (श० ८।११६)
अणिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी !
जहा सिद्धा। (श० ८।११७)

५१. सकाइया जीवा हे भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना दिल पहिछानी ।।

५१. सकाइया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए।

## सोरठा

५२. काय ओदारिक आदि, तेणे करी सहित जे।
सकाइया संवादि, पृथ्वी प्रमुखज काय षट।

५२. सह कायेन—औदारिकादिना शरीरेण पृथिव्यादिषट्कायान्यतरेण वा कायेन ये ते सकायास्त एव सकायिकाः। (वृ० प० ३४७)

५३. *पृथ्वी जावत वनस्पती ते, ज्ञानी नहिं छै अज्ञानी।
बे अज्ञान तणी नियमा, मति श्रुत अनाण तणी जानी ।।

५३. पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया नो नाणी, अण्णाणी—नियमा दुअण्णाणी तं जहा—मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

५४. तसकायिक ते सकाइया जिम, पंच तीन भजना ठानी।
अकाइया नी पूछा कीधां, जिन कहै सिद्धां जिम जानी ।।

५४. तसकाइया जहा सकाइया (श० ८।११८)
अकाइया णं भंते जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा। (श० ८।११९)

५५. सूक्ष्म जीव प्रभु ! स्यूं ज्ञानी? जिम पृथ्वी तिम पहिछानी।
दोय अज्ञान तणो छै नियमा, नहिं कहियै तेहनैं ज्ञानी ।।

५५. सुहुमा णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा पुढविक्काइया। (श० ८। १२०)

५६. बादर जीवा स्यूं प्रभु ! ज्ञानी ? सकाइया जिम ए जानी।
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना तिण में मानी ।।

५६. बादरा णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सकाइया। (श० ८।१२१)

५७. नोसूक्ष्म नोबादर जीवा, सिद्ध जेम आख्यातानी।
केवल ज्ञान तणी छै नियमा, सूक्ष्म द्वार समाप्तानी ।।

५७ नोसुहुमा-नोबादरा णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा। (श० ८।१२२)

५८. पर्याप्ता प्रभु ! स्यूं ज्ञानी छै ? सकाइया जिम ए जानी।
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना सांभल ध्यानी ।।

५८. पज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सकाइया। (श० ८।१२३)

*लय : चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. पर्याप्ता नारकी हे भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी नियमा निश्चै ठानी ।।

**वा०**—अपर्याप्तक असंज्ञी नारक नैं विभंग नहीं, इण हेतु थकी पर्याप्तक अवस्था नैं विषे ते असन्नी नारकी नैं अज्ञान तीनहीज हुई ।

६०. पर्याप्ता दस भवनपति ते, जेम नारकी तिम जानी ।
पज्जत पृथ्वी ते जिम एगिंदिया, जाव चउरिंदिया इम ठानी ।।

६१. पर्याप्ता तिर्यंच पंचेंद्री, स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना हे मुनि ! जानी ।।

**वा०**—पर्याप्ता पंचेंद्री तिर्यंच नैं अवधि ज्ञान अथवा विभंग अज्ञान किणहिक में हुवै, किणहिक में न हुवै । तिण सूं तीन ज्ञान, तीन अज्ञान नीं भजना कही ।

६२. पज्जत्त मणुस्सा सकाइया जिम, पंच ज्ञान भजना जानी ।
तीन अज्ञान तणी छै भजना, अदल न्याय हृदये आनी ।।

६३. पर्याप्त व्यंतर नैं जोतिषी, वैमानिक सुर सुखदानी ।
नरक पज्जता जिम त्रिण ज्ञान, अज्ञान तणी नियमा ठानी ।।

६४. अपर्याप्त जीवा हे भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कै अन्नाणी ?
तीन ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी भजना कहियै छाणी ।।

६५. अपर्याप्ता नारक प्रभुजी ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नीं नियमा कहियै, भजना तीन अज्ञानानी ।।

६६. एवं जावत थणियकुमारा, अपज्जत्त पंच स्थावर जाणी ।
जेम एकेंद्री तिम नहिं ज्ञानी, नियमा मति श्रुत अन्नाणी ।।

६७. अपज्जत्त विकलेंद्री फुन तिर्यंच पंचेंद्री अपज्जत्त जानी ।
दोय ज्ञान नैं दोय अज्ञान तणी नियमा निश्चै ठानी ।।

**वा०**—विकलेन्द्री तिर्यंच पंचेन्द्री नां अपर्याप्तक में कोइक में सास्वाद हुवै तिण में बे ज्ञान नी नियमा, कोइक में सास्वादन नहीं हुवै, तेह में दोय अज्ञान नीं नियमा ।

६८. अपर्याप्ता मनुष्य हे भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कै अज्ञानी ?
तीन ज्ञान नीं भजना कहियै, नियमा दोय अज्ञानानी ।।

**वा०**—अपर्याप्तक मनुष्य सम्यग्दृष्टि नैं अवधि हुवै तिवारे तीन ज्ञान जिम तीर्थंकर में । जिण में अवधि न हुवै तिण में बे ज्ञान । मिथ्यादृष्टि में बे अज्ञान हीज, मनुष्य अपर्याप्तक विषे विभंग न हुवै, ते माटे बे अज्ञान नीं नियमा ।

६९. अपर्याप्ता जे वाणव्यंतरा, अपज्जत्त नारका जिम जानी ।
तीन ज्ञान नीं नियमा कहियै, भजना तीन अनाणानी ।।

७०. अपज्जत्त जोतिषि नैं वैमानिक, तत्र सन्नी ऊपजे आनी ।
तीन ज्ञान नैं तीन अज्ञान तणी नियमा निश्चै जानी ।।

५९. पज्जत्ता णं भंते ! नेरइया किं नाणी ?
तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा नियमा ।

**वा०**—अपर्याप्तकानामेवासञ्ज्ञिनारकाणां विभङ्गाभाव इति, पर्याप्तकावस्थायां तेषामज्ञानत्रयमेवेति ।
(वृ० प० ३४७)

६०. जहा नेरइया एवं थणियकुमारा । पुढविकाइया जहा एगिंदिया । एवं जाव चउरिंदिया । (श० ८।१२४)

६१. पज्जत्ता णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नाणी ? अण्णाणी ? तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

**वा०**—पर्याप्तकपञ्चेन्द्रियतिरश्चामवधिर्विभङ्गो वा केषाञ्चित्स्यात् केषाञ्चित् पुनर्नेति त्रीणि ज्ञानान्यज्ञानानि वा ।

६२. मणुस्सा जहा सकाइया ।

६३. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।
(श० ८।१२५)

६४. अपज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—भयणाए ।
(श० ८।१२६)

६५. अपज्जत्ता णं भंते ! नेरइया किं नाणी ? अण्णाणी ?
तिण्णि नाणा नियमा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

६६. एवं जाव थणियकुमारा । पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया जहा एगिंदिया । (श० ८।१२७)

६७. बेइंदियाणं पुच्छा ।
दो नाणा, दो अण्णाणा—नियमा । एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं । (श० ८।१२८)

**वा०**—अपर्याप्तकद्वीन्द्रियादीनां केषाञ्चित् सासादनसम्यग्दर्शनस्य सद्भावाद् द्वे ज्ञाने केषाञ्चित्पुनस्तस्यासद्भावाद् द्वे एवाज्ञाने । (वृ० प० ३४७)

६८. अपज्जत्तगा णं भंते ! मणुस्सा किं नाणी ? अण्णाणी ?
तिण्णि नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा ।

**वा०**—अपर्याप्तकमनुष्याणां पुनः सम्यग्दृशामवधिभावे त्रीणि ज्ञानानि यथा तीर्थंकराणां, तदभावे तु द्वे ज्ञाने, मिथ्यादृशां तु द्वे एवाज्ञाने, विभङ्गस्यापर्याप्तकत्वे तेषामभावात् (वृ० प० ३४७)

६९. वाणमंतरा जहा नेरइया ।

७०. अपज्जत्तगाणं जोइसिय- वेमाणियाणं तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—नियमा (श० ८।१२९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. नोपर्याप्त-नोअपज्जता, स्यूं प्रभु ! ज्ञानी अज्ञानी ?
जेम सिद्ध तिम पाठज कहिवो, द्वार पर्याप्त ए जानी ।।

७१. नोपज्जत्तगा-नोअपज्जत्तगा णं भंते! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा । (श० ८।१३०)

७२. नरक-भवस्था उत्पत्ति स्थानक, पाम्या ते प्रभु ! स्यूं नाणी ?
नारक-गतिया तिम ए कहिवा, बुद्धिवंत लीजो पहिछाणी ।।

७२. निरयभवत्था णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा निरयगतिया । (श० ८।१३१)
निरयभवे तिष्ठन्तीति निरयभवस्थाः—प्राप्तोत्पत्ति-स्थानाः । (वृ० प० ३४८)

७३. तिरिय-भवस्था तिर्यंच उत्पत्ति-स्थानक पाम्या ते जानी ।
तीन ज्ञान नें तीन अज्ञान तणी भजना कहियै ध्यानी ।।

७३. तिरियभवत्था णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा—भयणाए ।
(श० ८।१३२)

७४. मनुष्य-भवस्था सकाइया जिम, उत्पत्ति-स्थानक प्राप्तानी ।
पंच ज्ञान नें तीन अज्ञान तणी भजना मुनिवर जानी ।।

७४. मणुस्सभवत्था ?
जहा सकाइया । (श० ८।१३३)

७५. सुर-भवस्था जिम नरक-भवस्था, उत्पत्ति-स्थानक प्राप्तानि ।
ज्ञान तीन नीं नियमा कहियै, भजना तीन अज्ञानानि ।।

७५. देवभवत्था णं भंते !
जहा निरयभवत्था

७६. अभवस्था भव विषे रह्या नहिं, सिद्ध जेम आख्यातानि ।
ज्ञान एक केवल नीं नियमा, भवस्थद्वार समाप्तानि ।।

७६. अभवत्था जहा सिद्धा । (श० ८।१३४)

७७. भवसिद्धिया प्रभु ! स्यूं ज्ञानी छै ? सकाइया जिम पहिछानी ।
पांच ज्ञान नें तीन अज्ञान तणी भजना ए कथियानी ।।

७७. भवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सकाइया । (श० ८।१३५)

७८. अभवसिद्धिया पूछा जिन कहै, ज्ञानी नहिं छै अज्ञानी ।
तीन अज्ञान तणी छै भजना, ए तो प्रत्यक्ष ही जानी ।।

७८. अभवसिद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए (श० ८।१३६)

७९. नोभव नें नोअभव-सिद्धिया, जीवा प्रभुजी ! स्यूं नाणी ?
सिद्ध जेम इक केवल नियमा, भवसिद्धिक ए द्वारानी ।।

७९. नो भवसिद्धिया-नो अभवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ?
जहा सिद्धा । (श० ८।१३७)

८०. सन्नी पूछा जेम सइंदिया, च्यार तीन भजना जानी ।
असन्नी जेम बेइंदिया तिम छै, दोय-दोय नियमा ठानी ।।

८०. सण्णीणं पुच्छा । जहा सइंदिया । असण्णी जहा बेइंदिया ।

## सोरठा

८१. असन्नी अपज्जत्त मांहि, सास्वादन में ज्ञान बे ।
जिहां सास्वादन नांहि, निश्चय तिहां अज्ञान बे ।।

८१. अपर्याप्तकावस्थायां ज्ञानद्वयमपि सासादनतया स्यात्, पर्याप्तकावस्थायां त्वज्ञानद्वयमेवेत्यर्थः ।
(वृ० प० ३४८)

८२. *नोसन्नी-नोअसन्नी केवलि, सिद्ध जेम कहियै ध्यानी ।
सन्नीद्वार कह्यो ए नवमों, जीव सहित आख्यातानी ।।

८२. नोसण्णी-नोअसण्णी जहा सिद्धा ।
(श० ८।१३८)

८३. अंक बयांसी देश ढाल ए, सौ पेंतीसमीं पहिछानी ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति सुखदानी ।।

*लय : चेत चतुर नर कहै तनैं सतगुरु



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १३६

### दूहा

१. हे प्रभु ! लद्धी कतिविहा ? दाखै श्री जिनदेव ।
दस प्रकार लद्धी कह्यो, इहां वृत्तिकार कहेव ।।
२. कर्म-क्षयादिक थी हुवै, ज्ञानादिक गुण जाण ।
तास लाभ लद्धी तिका, तसु दस भेद पिछाण ।।
३. ज्ञान-लद्धी दर्शन-लद्धी, चारित्र-लद्धी चाय ।
लद्धी चरित्ताचरित्त फुन, दान-लद्धि कहिवाय ।।
४. लाभ-लद्धी नैं भोग-लद्धी, वलि लद्धी उपभोग ।
वीर्य नैं इंद्रिय-लद्धी, ए दस लद्धी अमोघ ।।
५. ज्ञानावरणी कर्म क्षय, तथा क्षयोपशम होय ।
तिण करिनैं जे लाभ ते, ज्ञान-लद्धि अवलोय ।।
६. दर्शण मोहनी कर्म ते, उपशम क्षायक होय ।
तथा क्षयोपशम थी हुवै, दर्शन-लद्धी सोय ।।

**वा०**—इहां दर्शन-लद्धी में जे उदय भाव—ऊंधी श्रद्धा ते लब्धि में किम न लेखवी ? उत्तर—ए लब्धि उज्जल जीव छै, निरवद्य छै । अनैं ऊंधी श्रद्धा मिथ्यात आश्रव बिगड्यो जीव छै, सावद्य छै ते माटे । मिथ्यादृष्टि रै वा मिश्रदृष्टि रै जेतली शुद्ध श्रद्धा क्षयोपशम भावे छै अनैं सम्यग्दृष्टि रै सर्व शुद्ध श्रद्धा छै, ते दर्शण लद्धी में लेखवी ।

७. चारित्र मोहनीं कर्म ते, उपशम क्षायक होय ।
तथा क्षयोपशम थी हुवै, चारित्र-लद्धी जोय ।।
८. चारित्र मोहनीं कर्म ते, क्षयोपशम थी होय ।
लद्धी चरित्ताचरित्त ते, श्रावकपणो सुजोय ।।

९. दान अंतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, दान-लद्धि अवलोय ।।
१०. लाभ अंतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, लाभ-लद्धि अवलोय ।।
११. भोग अंतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, भोग-लद्धि अवलोय ।।
१२. उपभोग अंतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, उपभोग-लद्धि अवलोय ।।
१३. वीर्य अंतराय कर्म नां, क्षायक थी जे होय ।
अथवा क्षयोपशम थकी, वीर्य-लद्धी जोय ।।
१४. दर्शणावरणी कर्म नां, क्षय उपशम थी जेह ।
इंद्रिय-लद्धी ऊपजै, भावे इंद्रिय एह ।।
१५. 'दानादिक पांचूं लब्धि, उज्जल जीव पिछाण ।
देवै ते तो जोग छै, सावद्य निरवद्य जाण ।।

१. कतिविहा णं भंते ! लद्धी पण्णत्ता ?
गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा—

२. तत्र लब्धि :—आत्मनो ज्ञानादिगुणानां तत्तत्कर्मक्षयादितो लाभः । (वृ० प० ३५०)

३. नाणलद्धी दंसणलद्धी चरित्तलद्धी चरित्ताचरित्तलद्धी दाणलद्धी ।

४. लाभलद्धी भोगलद्धी उवभोगलद्धी वीरियलद्धी इंदियलद्धी । (श० ८।१३९)

५. तत्र ज्ञानस्य—विशेषबोधस्य पञ्चप्रकारस्य तथाविधज्ञानावरणक्षयक्षयोपशमाभ्यां लब्धिर्ज्ञानलब्धिः ।
(वृ० प० ३५०)

७. चारित्रं—चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमोपशमजो जीवपरिणामः (वृ० प० ३५०)

८. चरित्रं च तदचरित्रं चेति चरित्राचरित्रं—संयमासंयमः, तच्चाप्रत्याख्यानकषायक्षयोपशमजो जीवपरिणामः । (वृ० प० ३५०)

९-१३. दानादिलब्धयस्तु पञ्चप्रकारान्तरायक्षयक्षयोपशमसम्भवाः । (वृ० प० ३५०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. मोह कर्म नां उदय थी, दियै कुपात्र दान।
मोह नां क्षयोपशम थकी, दान सुपात्र जान।।
१७. दान अंतराय कर्म नों, क्षयोपशम तो होय।
पिण मोह उदय बहुलो हुवै, जद दियै कुपात्र सोय।।
१८. दान अंतराय कर्म नों, क्षयोपशम पिण होय।
वलि क्षयोपशम मोह नों, दियै सुपात्र सोय'।। (ज० स०)
१९. एक बार जे भोगवै, असणादिक ते भोग?
वस्त्रादिक बहु वार ते, जे उपभोग प्रयोग।।

१९. इह च सकृद्भोजनमशनादीनां भोगः, पौनःपुन्येन चोपभोजनमुपभोगः, स च वस्त्रभवनादेः।
(वृ० प० ३५०)

*सो ही सयाणा जिन वच साधै, जिन वच साधै आण आराधै।। (ध्रुपदं)

२०. ज्ञान-लद्धी प्रभु! कितै प्रकार? जिन कहै पंच प्रकार उदार।
आभिनिबोधिक ज्ञान-सुलद्धी, जावत केवलज्ञान प्रसिद्धी।।

२०. नाणलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियनाणलद्धी जाव केवलनाणलद्धी।
(श० ८।१४०)

२१. अज्ञान-लद्धि प्रभु! कितै प्रकार? ताम स्वाम कहै त्रिविध विचार।
मति अज्ञान श्रुत अनाण लद्धी, विभंग अनाण नीं लद्धी प्रसिद्धी।।

२१. अण्णाणलद्धी णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मइअण्णाणलद्धी सुयअण्णाणलद्धी विभंगणाणलद्धी।
(श० ८।१४१)

**सोरठा**

२२. 'ज्ञानावरणो जाण, क्षयोपशम सेती लहै।
ज्ञान अज्ञान पिछाण, अनुयोगद्वारे आखियो।।

२२. से किं तं खओवसमनिप्फण्णे?
खओवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—
खओवसमिया आभिणिबोहियनाणलद्धी.......खओवसमिया विभंगनाणलद्धी (अणुओग० सू० २८५)

२३. अज्ञानी रै ताम, सम जाणपणो जेतलो।
अज्ञान तिण रो नाम, भाजन लारै वाजियो।।
२४. जाणै गाय नैं गाय, दिवस भणी जाणै दिवस।
इत्यादी कहिवाय, जाणपणो सम छै तिको।।
२५. तिण सूं क्षयोपशम भाव, निरवद्य उज्जल लेख ए।
देख विचारो न्याव, इण कारण लद्धी कही।।
२६. ज्ञानावरणी कर्म, पंच प्रकृति है तेहनीं।
जोवो एहनो मर्म, मति ज्ञानावरणी प्रमुख।।
२७. मति ज्ञानावरणी जेह, क्षयोपशम तेहनों थयां।
वर मति ज्ञान लहेह, मति अज्ञान पामै वलि।।
२८. श्रुत ज्ञानावरणी जाण, क्षयोपशम तेहनों थयां।
वर श्रुत ज्ञान प्रधान, श्रुत अज्ञान लहै वली।।
२९. अवधि ज्ञानावरणीह, क्षयोपशम तिण रो थयां।
अवधि ज्ञान लद्धीह, विभंग अनाण लहै वली।।
३०. तदावरणी कर्म सोय, क्षय उपशम थी विभंग ह्वै।
सूत्र भगवती जोय, इकतीसम नवमैं अख्युं।।

३०. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं.......से विभंगे अण्णाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।
(श० ९, उ० ३१, सू० ३३)

३१. अवधि विभंग नुं जान, आवरणी तो एक है।
तेहनुं नाम पिछाण, अवधि ज्ञानावरणी अछै।।

*लय : सो ही सयाणा अवसर साधै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. तसु क्षय उपशम होय, अवधि विभंग दोनुं लहै।
एं दोनुं नो जोय, अवधि दर्शन पिण एक है।
३३. विभंग ज्ञानावरणीह, क्षय उपशम थी विभंग हुवै।
पिण ए भेद सुलीह, अवधि ज्ञानावरणी तणुं ॥
३४. जाती-समरण पाय, समदृष्टि नैं मिच्छदिट्ठी।
क्षय उपशम जे थाय, मति ज्ञानावरणी तणुं ॥
३५. ज्ञाता गज भव ईह, जाती-समरण ऊपनों।
मति ज्ञानावरणीह, क्षयोपशम थी वृत्ति में ॥
३६. समदृष्टी रै सोय, वर मतिज्ञान कह्यो तसु।
मिच्छदिट्ठि रै जोय, मति अज्ञान कहीजियै ॥
३७. तिण सुं धुर त्रिहुं ज्ञान, वलि तीनूं अज्ञान ते।
क्षयोपशम ए जान, लद्धी उज्जल जीव एं ॥ (ज० स०)

३५. जातिस्मरणावरणीयानि कर्म्माणि—मतिज्ञानावरणीयभेदाः।
क्षयोपशम—उदितानां क्षयोऽनुदितानां विष्कम्भितोदयत्वम्। (ज्ञाता वृ० प०७४)

३८. *दर्शन-लद्धि प्रभु! किते प्रकार? जिन कहै तीन प्रकार विचार।
समदर्शण नैं मिथ्यादर्शन, समामिथ्या दर्शन संस्पर्शन ॥

३८. दंसणलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसणलद्धी, सम्मामिच्छादंसणलद्धी।
(श० ८।१४२)

## सोरठा

३९. दर्शन मोह उपाधि, उपशम क्षायक क्षयोपशम।
सम्यक्त उपशम आदि, समदर्शण लद्धी तिको ॥
४०. दर्शण मोह पिछाण, क्षयोपशम थी नीपजै।
मिथ्यादृष्टि सुजाण, दृष्टि समामिथ्या वली ॥
४१. मिथ्याती रै ताम, ऊंधी श्रद्धा जेतली।
मिथ्यादृष्टिज नाम, एह उदय भावे कही ॥
४२. 'मिथ्याती रै इष्ट, सूधी श्रद्धा जेतली।
ए पिण मिथ्यादृष्ट, पिण क्षयोपशम भाव ए ॥
४३. अनुयोगद्वार मझार, उदय निष्पन्न रा बोल में।
मिथ्यादृष्टि विचार, ए उदय भाव ऊंधी श्रद्धा ॥
४४. ए आश्रव मिथ्यात, दर्शण मोह उदय थकी।
लद्धि में न कहात, उदय भाव मिथ्यादृष्टि ॥
४५. अनुयोगद्वार मझार, क्षय उपशम निष्पन्न विषे।
तीन दृष्टि सुविचार, भाव क्षयोपशम शुद्ध श्रद्धा ॥
४६. तिण सूं मिथ्यादृष्ट, क्षय उपशम भावे तिका।
उज्जल जीव सुइष्ट, लद्धी में आखी इहां ॥
४७. समामिथ्यादृष्ट, भाव क्षयोपशम जिन कही।
मिश्र गुणठाणे इष्ट, तसु शुद्ध श्रद्धा जेतली' ॥ (ज० स०)

३९. इह च सम्यग्दर्शनं मिथ्यात्वमोहनीयकर्माणुवेदनोपशमक्षयक्षयोपशमसमुत्थ आत्मपरिणामः।
(वृ० प० ३५०)

४१. मिथ्यादर्शनमशुद्धमिथ्यात्वदलिकोदयसमुत्थो जीवपरिणामः। (वृ० प० ३५०)

४३. अणुओगदाराइं सू० २७५

४५. अणुओगदाराइं सू० २८५

४८. *चरित्र लद्धि प्रभु! किते प्रकार? जिन कहै पंच प्रकार विचार।
सामायक चारित्र प्रसिद्धी, वली छेदोपस्थापनिक लद्धी ॥

४८. चरित्तलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयचरित्तलद्धी, छेदोवट्ठावणियचरित्तलद्धी।

*लय : सो ही सयाणा अवसर साधै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. परिहार-विशुद्धि सूक्ष्म-संपराय, चारित्र मोह क्षयोपशम थाय।
यथाख्यात पंचम प्रसिद्धी, उपशम क्षायक चरित्त सुलद्धी ॥

५०. चरित्ताचरित्त लद्धी भगवान ! कितै प्रकार परूपी जान ?
जिन कहै एक आकार प्रकार, देशविरत क्षयोपशम सार ॥

५१. दान लद्धी जाव उपभोग लद्धी, इक इक तास प्रकार प्रसिद्धी।
अंतराय क्षय क्षयोपशम होय, तेहथी उज्जल जीव सुजोय ॥

५२. वीर्य लद्धि प्रभु ! कितै प्रकार ? जिन कहै तीन प्रकार विचार।
बाल वीर्य लद्धी अवधार, चिहुं गुणठाणे शक्ति उदार ॥

५३. पंडित वीर्य लद्धी पिछाण, ए मुनिवर नी शक्ति सुजान।
बाल पंडित वीर्य ए लद्धी, श्रावक नीं ए शक्ति प्रसिद्धी ॥

५४. इंद्रिय लद्धि प्रभु! कितै प्रकार ?जिन कहै पंच प्रकार विचार।
सोइंदि जाव फर्शेंद्री लद्धी, दर्शणावरणी क्षयोपशम सिद्धी ॥

५५. ज्ञानलद्धिया हे प्रभु ! जीवा, स्यूं ज्ञानी अज्ञानी कहीवा ?
जिन कहै ज्ञानी कहियै तास, अज्ञानी नहिं कहियै जास ॥

५६. केइक बे ज्ञानी अवलोय, केइक त्रिण चिउं ज्ञानी होय।
केइक एक केवल शुद्ध खेम, पंच ज्ञान नीं भजना एम ॥

५७. तास अलद्धिया प्रभु!स्यूं नाणी?जिन कहै नो ज्ञानी छै अन्नाणी।
केइक बे अज्ञानी न्हाल, भजना तीन अज्ञान नीं भाल ॥

५८. आभिनिबोधिक ज्ञानलद्धिया, स्यूं ज्ञानी अज्ञानी कहिया ?
जिन कहै अज्ञानी नहिं जेह, च्यार ज्ञान नीं भजना भणेह ॥

५९. तास अलद्धिया जे कहिवाय, मतिज्ञान न लहै जे मांय।
ते ज्ञानी कहियै भगवान ! कै अज्ञानी कहियै जान ?

६०. जिन कहै ज्ञानी पिण कहिवाय, अज्ञानी पिण छै वलि ताय।
जे ज्ञानी ते नियमा एक, केवलज्ञानी कहियै विशेख ॥

६१. जे अज्ञानी ते इम जान, कितलाइक में दोय अज्ञान।
तीन अज्ञान केइक में तेम, भजना त्रिण अज्ञान नीं एम ॥

६२. मतिज्ञानलद्धियो कह्यो सोय, श्रुतज्ञानलद्धियो इम जोय।
मतिज्ञान नुं अलद्धियो जान, तिम श्रुतज्ञान अलद्धियो मान ॥

६३. पूछा अवधिज्ञानलद्धिया नी, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी।
केइक तीन ज्ञानी कहिवाय, केइक चिउंनाणी मुनिराय ॥

६४. जे त्रिणज्ञानी ते इम कहियै, मति श्रुत अवधिज्ञान त्रिहुं लहियै।
जे चिउंनाणी ते कहिवाय, मति श्रुत अवधि रु मनपर्याय ॥

४९. परिहारविसुद्धिचरित्तलद्धी सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी अहक्खायचरित्तलद्धी। (श० ८।१४३)

५०. चरित्ताचरित्तलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता।

५१. एवं जाव उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता। (श० ८।१४४)

५२. वीरियलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा--बालवीरियलद्धी,

५३. पंडियवीरियलद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी। (श० ८।१४५)

५४. इंदियलद्धी णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियलद्धी जाव फासिंदियलद्धी। (श० ८।१४६)

५५. नाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ? नाणी, नो अण्णाणी।

५६. अत्थेगतिया दुण्णाणी, एवं पंच नाणाइं भयणाए। (श० ८।१४७)

५७. तस्स अलद्धीया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी। अत्थेगतिया दुअण्णाणी,तिण्णि अण्णाणा भयणाए। (श० ८।१४८)

५८. आभिणिबोहियनाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया दुण्णाणी चत्तारि नाणाइं भयणाए। (श० ८।१४९)

५९. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?

६०. गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते नियमा एगनाणी--केवलनाणी।

६१. जे अण्णाणी ते अत्थेगतिया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

६२. एवं सुयनाणलद्धिया वि। तस्स अलद्धिया वि जहा आभिणिबोहियनाणस्स अलद्धीया। (श० ८।१५०)

६३. ओहिनाणलद्धियाणं पुच्छा।
गोयमा! नाणी, नो अण्णाणी। अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी।

६४. जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी।
जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी मणपज्जवनाणी। (श० ८।१५१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. अवधि ज्ञान नां अलद्धिया नी, गोयम पूछा करी पिछानी ।
जिन कहै ज्ञानी पिण छै तेह, अज्ञानी पिण छै वलि जेह ।।

६६. अवधि ज्ञान वर्जी नें एम, च्यार ज्ञान नीं भजना तेम ।
भजना तीन अज्ञान नीं भणियै, अवधिज्ञान वर्जी इम गुणियै ।।

६७. पूछा मनपज्जव लद्धिया नीं, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी ।
केइक त्रिण ज्ञानी मुनिराय, केइक चिउं ज्ञानी सुखदाय ।।

६८. जे त्रिण ज्ञानी ते इम जाणी, मति श्रुत नें मनपज्जवनाणी ।
जे चउनाणी ते इम थाय, मति श्रुत अवधि रु मनपर्याय ।।

६९. ते मनपज्जव अलद्धिया नीं, पूछा नों उत्तर इम जानी ।
मनपज्जव वर्जी चिहुं ज्ञान, तीन अज्ञान नीं भजना जान ।।

७०. केवलज्ञानलद्धियो भगवान ! स्यूं ज्ञानी अज्ञानी जान ?
जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी, नियमा एक केवल नीं मानी ।।

७१. पूछा केवल नां अलद्धिया नीं, केवलज्ञान वर्ज पहिछानी ।
च्यार ज्ञान नें तीन अज्ञान, ए बेहुं नी भजना जान ।।

७२. पूछा अनाण नां लद्धिया नीं, जिन कहै नो ज्ञानी छै अज्ञानी ।
भजना तीन अज्ञान नीं भाल, तिण में बे किहां तीन निहाल ।।

७३. पूछा अज्ञान नां अलद्धिया नीं, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी ।
पंच ज्ञान नीं भजना पेख, बे त्रिण चिउं किहां एक विशेख ।।

७४. अनाणलद्धिया अलद्धिया भणिया,
तिणहिज विध आगल ए थुणिया ।
मति अज्ञान नें श्रुत अज्ञान, तसु लद्धिया अलद्धिया जान ।।

७५. पूछा विभंग तणां लद्धिया नी, तीन अज्ञान नीं नियमा जानी ।
तास अलद्धिया में पंच नाण, भजना नियमा दोय अन्नाण ।।

७६. दर्शणलद्धिया प्रभु ! स्यूं नाणी ? जिन कहै नाणी नें अन्नाणी ।
पंच ज्ञान नें तीन अज्ञान, भजनाइं भणिवो बुद्धिवान ।।

६५. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि ।

६६. एवं ओहिनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए । (श० ८।१५२)

६७. मणपज्जवनाणलद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । अत्थेगतिया, तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी ।

६८. जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, मणपज्जवनाणी ।
जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, मणपज्जवनाणी ।

६९. तस्स अलद्धीयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । मणपज्जनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८।१५४)

७०. केवलनाणलद्धियाणं भंते ! जीवा किं नाणी अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । नियमा एगनाणी—केवलनाणी । (श० ८।१५५)

७१. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । केवलनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८।१५६)

७२. अण्णाणलद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नो नाणी, अण्णाणी । तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८।१५७)

७३. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी । पंच नाणाइं भयणाए ।

७४. जहा अण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भणिया, एवं मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा ।

७५. विभंगनाणलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं नियमा । तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं नियमा । (श० ८।१५८)

७६. दंसणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी वि अण्णाणी वि । पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८।१५९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. दर्शण-अलद्धिया प्रभु ! जीवा, स्यूं ज्ञानी ए प्रश्न कहीवा ?
जिन कहै तास अलद्धियो नांही, तीन दृष्टि विण जीव न थाई ॥

७८. समदर्शण-लद्धिया पंच ज्ञान, भजना बे त्रिण चिउं इक मान।
तास अलद्धिया में त्रिण अज्ञान, भजना किहां बे किहां त्रिण जान ॥

७९. मिथ्यादर्शन-लद्धिया मांय, तीन अज्ञान नीं भजना पाय।
तास अलद्धिया में पंच नाण, तीन अज्ञान नीं भजना पिछाण ॥

वा०—मिथ्यादर्शन नां अलद्धिया ते सम्यग्दृष्टि अनैं मिश्रदृष्टि नैं अनुक्रम करिकै पंच ज्ञान, तीन अज्ञान नी भजना।

८०. समामिथ्यादर्शन-लद्धिया नीं, तास अलद्धिया नीं वलि जानी।
मिथ्यादर्शन लद्धि अलद्धी, तेह कह्या तिम भणवूं प्रसिद्धी ॥

८१. चारित्र-लद्धिया स्यूं प्रभु ! नाणी ? पंच ज्ञान नीं भजना जानी।
किहां बे ज्ञान किहां त्रिण जोय, किहां चिउं ज्ञान किहां इक होय ॥

८२. तेह चरित्र नां अलद्धिया में, मनपज्जव वर्जी ए ठामें।
भजना च्यार ज्ञान नीं भाल, तीन अज्ञान नीं भजना न्हाल ॥

वा०—चारित्र-अलद्धिया दूजे, चोथै, पांचमै गुणठाणै बे ज्ञान वा तीन ज्ञान अनैं सिद्धा में एक केवलज्ञान। तेहनैं विषे चारित्र लब्धि नथी ते माटै। अनैं पहिलै, तीजै गुणठाणे दो अज्ञान वा तीन अज्ञान।

८३. सामायक-चारित्र-लद्धिया नीं, पूछा जिन भाखै छै ज्ञानी।
वर्जी केवलनाण उदार, च्यार ज्ञान नीं भजना सार ॥

८४. ते सामायक चारित्र सोय, तास अलद्धिया में अवलोय।
पांच ज्ञान नैं तीन अज्ञान, भजनाइं करि भणिवा जान ॥

वा०—सामायिक-चारित्र नां अलद्धियो ते छेदोपस्थापनी आदि पामवै करी अथवा सिद्ध भावे करी ए ज्ञानी में पांच ज्ञान नीं भजना। अनैं प्रथम, तीजै गुणठाणे अज्ञानी। तिहां तीन अज्ञान नी भजना।

८५. सामायक-चारित्र नां जेम, लद्धि अलद्धी आख्या तेम।
जाव यथाख्यात इम जोय, लद्धि अलद्धी में अवलोय ॥

८६. णवरं यथाख्यात-लद्धिया में, पंच ज्ञान नीं भजना पामै।
बे त्रिण चिउं इक ज्ञान उदार, चरम परम गुणस्थानक च्यार ॥

७७. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! तस्स अलद्धिया नत्थि।

७८. सम्मदंसणलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए।

७९. मिच्छादंसणलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं—भयणाए।

वा०—मिथ्यादर्शनस्यालब्धिमतां सम्यग्दृष्टीनां मिश्रदृष्टीनां च क्रमेण पञ्च ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च भजनयेति। (वृ० प० ३५३)

८०. सम्मामिच्छादंसणलद्धिया, अलद्धिया य जहा मिच्छादंसणलद्धिया अलद्धिया तहेव भाणियव्वा।
(श० ८।१६०)

८१. चरित्तलद्धिया णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
गोयमा ! पंच नाणाइं भयणाए।

८२. तस्स अलद्धीयाणं मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं—भयणाए। (श. ८।१६१)

वा०—चारित्रालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेषां मनःपर्यववर्जानि चत्वारि ज्ञानानि भजनया भवन्ति, कथम् ? असंयतत्वे आद्यं ज्ञानद्वयं तत् त्रयं वा, सिद्धत्वे च केवलज्ञानं, सिद्धानामपि चरित्रलब्धिशून्यत्वाद्, यतस्ते नोचारित्रिणो नोअचारित्रिण इति, ये त्वज्ञानिनस्तेषां त्रीण्यज्ञानानि भजनया। (वृ० प० ३५३)

८३. सामाइयचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी—केवलवज्जाइं चत्तारि नाणाइं भयणाए।

८४. तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं—भयणाए।

वा०—सामायिकचरित्रालब्धिकास्तु ये ज्ञानिनस्तेषां पंच ज्ञानानि भजनया, छेदोपस्थापनीयादिभावेन सिद्धभावेन वा, ये त्वज्ञानिनस्तेषां त्रीण्यज्ञानानि भजनया।
(वृ० प० ३५३)

८५. एवं जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धीया य भणिया, एवं जाव अहक्खाय-चरित्तलद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा।

८६. नवरं—अहक्खायचरित्तलद्धीयाणं पंच नाणाइं भयणाए।
(श० ८/१६२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८७. चरित्ताचरित्त-लद्धिया जीवा, स्यूं नाणी अनाणी कहीवा ?
जिन कहै ज्ञानी श्रावक एह, अज्ञानी नहिं कहीजै तेह ।।

८८ केयक मांहे छै बे ज्ञान, केयक में त्रिण ज्ञान पिछान।
बे ज्ञानी ते मति श्रुत सार, त्रिण ते मति श्रुत अवधि विचार ।।

८९. तास अलद्धिय में पंच ज्ञान, तीन अज्ञान नीं भजना जान।
श्रावक विण संसारी सिद्ध, चरित्ताचरित्त अलद्धिया लिद्ध ।।

९०. दान-लद्धिया में पंच ज्ञान, तीन अज्ञान नीं भजना जान।
चवदै गुणठाणैं ए कहियै, सिद्धां मांहे ए नहिं लहियै ।।

९१. पूछा तेहनां अलद्धिया नी, ज्ञानी छै ते नहिं अज्ञानी।
नियमा निश्चै छै इक नाणी, केवलनाणी सिद्ध सुहाणी ।।

९२. एवं यावत वीर्य लद्धी, वलि तसु अलद्धिया गुणवृद्धी।
वीर्य लद्धी वीर्य आतम, तास अलद्धी सिद्ध सुखातम ।।

९३. पूछा बालवीर्य-लद्धिया नीं, तीन ज्ञान नीं भजना जानी।
भजना तीन अज्ञान नीं कहियै, धुर ए चिहुं गुणठाणे लहियै ।।

९४. ते बालवीर्य नां अलद्धिया नीं, पंच ज्ञान नीं भजना ठानी।
श्रावक साधू नैं सिद्ध लहियै, धुर चिहुं गुणठाणा विण कहियै ।।

९५ वलि पंडितवीर्य-लद्धिया नीं, पंच ज्ञान नीं भजना जानी।
छठ्ठा गुणठाणा थी कहियै, चउदसमें गुणठाणे लहियै ।।

९६. पंडितवीर्य तणो अलद्धियो, मनपज्जव वर्जी नैं कहियो।
च्यार ज्ञान नैं तीन अज्ञान, भजना एह मुनी विण जान ।।

९७. बालपंडितवीर्य-लद्धिया नीं, तीन ज्ञान नीं भजना जानी।
तास अलद्धिया में पंच ज्ञान, तीन अज्ञान नीं भजना आन ।।

९८. वलि पूछा इंद्री-लद्धिया नीं, च्यार ज्ञान नीं भजना जानी।
तीन अज्ञान तणी है भयणा, धुर द्वादश गुणठाणे वयणा ।।

९९. पूछा इंद्री-अलद्धिया नीं, जिन कहै ज्ञानी छै न अज्ञानी।
नियमा एक केवल वर नाणी, इंद्री भाव तिहां नहिं जाणी ।।

१००. पूछा सोइंदिय-लद्धिया नीं, जिम इंद्री-लद्धिया तिम जानी।
च्यार ज्ञान नीं भजना कहियै, भजना तीन अज्ञान नीं लहियै ।।

१०१. पूछा सोइंदिय-अलद्धिया नीं, जिन कहै ज्ञानी वलि अज्ञानी।
जे ज्ञानी ते के बे नाणी, कितलायक इक नाणी जाणी ।।

८७. चरित्ताचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी।

८८. अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया तिण्णाणी। जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य। जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी।

८९. तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए। (श० ८/१६३)

९०. दाणलद्धियाणं पंच नाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए। (श० ८/१६४)

९१. तस्स अलद्धीयाणं पुच्छा।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी—केवलनाणी।

९२. एवं जाव वीरियस्स लद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा।

९३. बालवीरियलद्धियाणं तिण्णि नाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए।

९४. तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

९५. पंडियवीरियलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

९६. तस्स अलद्धीयाणं मनपज्जवनाणवज्जाइं नाणाइं, अण्णाणाणि य भयणाए।

९७. बालपंडियवीरियलद्धियाणं तिण्णि नाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धीयाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए। (श० ८/१६५)

९८. इंदियलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
गोयमा ! चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं—भयणाए। (श० ८/१६६)

९९. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।
गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगनाणी—केवलनाणी। (श० ८/१६७)

१००. सोइंदियलद्धिया णं जहा इंदियलद्धिया। (श० ८/१६८)

१०१. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि। जे नाणी ते अत्थेगतिया दुण्णाणी, अत्थेगतिया एगनाणी।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०२. जे बे नाणी ते पहिछाणी, आभिनिबोधिक नें श्रुत नाणी।
बे ते चोरिंद्री अपजत्त में, सास्वादन सम्यक्त ह्वै तिण में ॥

१०२. जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी।
तेऽपर्याप्तिकाः सासादनसम्यग्दर्शनिनो विकलेन्द्रियाः
(वृ० प० ३५४)

१०३. जे इक नाणी ते पहिछाणी, केवलज्ञानी सिद्ध वखाणी।
वलि तेरम चवदम गुणठाणे, भावे सोइंद्री नहिं माणे ॥
१०४. जे अन्नाणी ते वलि जाणी, नियमा बे मति श्रुत अन्नाणी।
कहियै छै ए सर्व एकेंद्री, मिच्छदिट्ठी बे ते चउरिंद्री ॥
१०५ जिम सोइंदी लद्धि अलद्धी, तेम चक्षु-इंद्रिय प्रसीद्धी।
वलि घ्राणेंद्री लद्धि अलद्धी, भणवा न्याय करी बुद्धि-वृद्धी ॥
१०६. पूछा रसइंद्रि-लद्धिया नीं, च्यार ज्ञान नीं भजना आनी।
वलि भजनाइं तीन अनाणं, बे ते चउ पंचेंद्री जाणं ॥

१०३. जे एगनाणी ते केवलनाणी।

१०४. जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, तं जहा—मइ-अण्णाणी य सुयअण्णाणी य।
१०५. चक्खिदियघाणिदियाणं लद्धीया अलद्धीया य जहेव सोइंदियस्स। (श० ८/१६९)
१०६. जिब्भिदियलद्धियाणं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं—भयणाए।
(श० ८/१७०)

१०७. रसइंद्रि-अलद्धिया मांय, ज्ञानी अज्ञानी कहिवाय।
एकेंद्रिया केवली तास, रस-इंद्रि लाधै नहिं जास ॥
१०८. जे ज्ञानी ते नियमा एक, केवलज्ञानी कहियै विशेख।
अज्ञानी ते नियमा दोय, मति श्रुत अज्ञानी अवलोय ॥

१०७. तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।
गोयमा! नाणी वि, अण्णाणी वि।
१०८. जे नाणी ते नियमा एगनाणी—केवलनाणी। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी, तं जहा—मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य

१०९. फर्सेंद्री नीं लद्धियो जाण, इंद्रि-लद्धिया जेम पिछाण।
फर्सेंद्री-अलद्धियो जेह, इंद्री-अलद्धिया जिम एह ॥
११०. फर्सेंद्री-लद्धिया में जाण, पहिला थी बारम गुणठाण।
तास अलद्धिया केवलज्ञानी, लद्धि अलद्धी द्वार पिछानी ॥
१११. अंक बयांसी देश निहाल, एकसौ नें छत्तीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद,
'जय-जश' सुख संपति अहलाद ॥

१०९. फासिंदियलद्धीया अलद्धीया य जहा इंदियलद्धिया अलद्धिया य। (श० ८/१७१)

११०. स्पर्शनेन्द्रियालब्धिकास्तु केवलिन एव।
(वृ० प० ३५४)

## ढाल : १३७

### दूहा

१. लद्धि अलद्धि घमंड[1] सूं, कह्यो अधिक विस्तार।
उपयोगादिक द्वार हिव, सांभलज्यो धर प्यार ॥

२. *सागारोवउत्ता प्रभु! जीवा, स्यूं ज्ञानी अज्ञानी कहीवा?
जिन कहै पंच ज्ञान नी पेख, भजना तीन अज्ञान नीं देख ॥

२. सागारोवउत्ता णं भंते! जीवा किं नाणी? अण्णाणी?
पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए।
(श० ८।१७२)

१. स्वाभिमान
*लय : विना रा भाव सुण सुण गूंजै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—आकार ते विशेष, तिण करीके सहित जे बोध ते साकार, विशेष ग्राहक बोध इत्यर्थः । तेहनैं विषे उपयुक्त ते साकार नां अनुभव कर्त्ता ते साकारोपयुक्ता ।

वा—आकारो—विशेषस्तेन सह यो बोधः स साकारः, विशेषग्राहको बोध इत्यर्थः, तस्मिन्नुपयुक्ताः तत्संवेदका ये ते साकारोपयुक्ताः । (वृ० प० ३५५)

३. पांच ज्ञान तीन अज्ञान, सागारोवउत्ता अठ जान ।
अणागार दर्शण है च्यार, बुद्धिवंत हिये अवधार ॥

४. आभिनिबोधिक ज्ञान सागार, स्यूं ज्ञानी अज्ञानी धार ?
जिन कहै भजना चिउं नाण, दोय तीन च्यार इम जाण ॥

४. आभिणिबोहियनाणसागारोवउत्ता णं भंते ?
चत्तारि नाणाइं भयणाए ।

५. इम श्रुतज्ञान सागार, अवधिज्ञान सागार विचार ।
अवधिज्ञान-लद्धिया ज्यूं जाण, च्यार ज्ञान नीं भजना आण ॥

५. एवं सुयनाणसागारोवउत्ता वि । ओहिनाणसागारोवउत्ता जहा ओहिनाणलद्धिया ।

६. मनपज्जवज्ञान सागार, मनपज्जवलद्धी जिम सार ।
च्यार ज्ञान नीं भजना कहियै, किहां तीन किहां चिउं लहियै ॥

६. मणपज्जवनाणसागारोवउत्ता जहा मणपज्जवनाणलद्धीया ।

७. केवलज्ञान सागार सुखेम, केवलज्ञान-लद्धिया जेम ।
हिवै मति अज्ञान सागार, भजना तीन अज्ञान प्रकार ॥

७. केवलनाणसागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धीया । मइअण्णाणसागारोवउत्ताण तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

८. इम श्रुत अज्ञान सागार, भजना तीन अज्ञान नीं धार ।
वलि विभंग अज्ञान सागार, नियमा तीन अनाण विचार ॥

८. एवं सुयअण्णाणसागारोवउत्ता वि । विभंगनाणसागारोवउत्ताणं तिण्णि अण्णाणाइं नियमा । (श० ८।१७३)

९. अणागारोवउत्ता जीवा, भगवंत ! स्यूं ज्ञानी कहीवा ?
भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान, सिद्ध नैं चवदै गुणस्थान ॥

९. अणागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
पंच नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए ।

१०. इम चक्खु अचक्खु पिछाण, णवरं भजना करि चिउं नाण ।
केवलज्ञान चक्खु में न पाय, भजना तीन अज्ञान कहाय ॥

१०. एवं चक्खुदंसण-अचक्खुदंसणअणागारोवउत्ता वि, नवरं—चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं—भयणाए । (श० ८।१७४)

११. पूछा अवधि दर्शण अणागार, ज्ञानी अज्ञानी बेहुं विचार ।
जे ज्ञानी ते के त्रिण ज्ञानी, केइ च्यार ज्ञानी गुणखानी ॥

११. ओहिदंसणअणागारोवउत्ताणं पुच्छा ।
गोयमा ! नाणी वि, अण्णाणी वि । जे नाणी ते अत्थेगतिया तिण्णाणी, अत्थेगतिया चउनाणी ।

१२. जिके तीन ज्ञानी पहिछानी, तिके मति श्रुत अवधि सुज्ञानी ।
जिके च्यार ज्ञानी कहिवाय, तिके केवल विण चिउं पाय ॥

१२. जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी ओहीनाणी । जे चउनाणी ते आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी ।

१३. जे अज्ञानी ते अवलोय, नियमा तीन अज्ञान नीं सोय ।
मति श्रुत विभंग विचार, कह्यो अवधि दर्शण नों प्रकार ॥

१३. जे अण्णाणी ते नियमा ति अण्णाणी, तं जहा—मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगनाणी ।

१४. केवल दर्शण जे अणागार, केवलज्ञान-लद्धिया ज्यूं सार ।
ए तो आख्यो उपयोग द्वार, हिवै जोग द्वार सुविचार ॥

१४. केवलदंसणअणागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धिया । (श० ८।१७५)

१५. प्रभु ! जीवा सजोगी स्यूं ज्ञानी ? जिम सकाइया तिम जानी ।
पंच तीन नीं भजना पिछाण, इणमें पावै तेरै गुणठाण ॥

१५. सजोगी णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सकाइया ।

१६. इम मन वच नै काय जोगी, पंच तीन नीं भजना प्रयोगी ।
अजोगी केवली सिद्ध जेम, कह्यो जोगद्वार धर प्रेम ॥

१६. एवं मणजोगी वइजोगी कायजोगी वि । अजोगी जहा सिद्धा । (श० ८।१७६)

१७ सलेसी जीवा स्यूं प्रभु ! ज्ञानी ? ए पिण सकाइया जिम जानी ।
भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान, इणमें पावै तेरै गुणस्थान ॥

१७. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सकाइया । (श० ८।१७७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. कृष्णलेसो प्रभु ! स्यूं ज्ञानी ? ए तो सइंदिया जिम जानी ।
भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान, कहियै धुर षट गुणस्थान ॥
१९. इम नील कापोत विचार, च्यार तीन नीं भजना धार ।
तेजु पदम सप्त गुणस्थान, भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान ॥
२०. शुक्ललेसी सलेसी ज्यूं जान, भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान ।
इण में पावै तेरै गुणठाण, अलेसी सिद्ध जेम वखाण ॥
२१. प्रभु ! सकषाई स्यूं नाणी ? ए तो सइंदिया जिम जाणी ।
भजना च्यार तीन कहिवाई, इम यावत लोभ-कषाई ॥

२२. अकषाई प्रभु ! स्यूं नाणी ? पंच ज्ञान नीं भजना जाणी ।
दोय तीन च्यार इक ज्ञान, लहै चरम च्यार गुणस्थान ॥
२३. सवेदी जीवा स्यूं प्रभु ! नाणी ? ए तो सइंदिया जिम जाणी ।
भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान, धुर नव गुणठाणे जान ॥
२४. इम स्त्री पुं नपुंसक जोय, अवेदी अकषाई जिम होय ।
पंच ज्ञान नीं भजना पिछाण, ऊपरला षट गुणठाण ॥
२५. आहारगा जीवा स्यूं प्रभु ! ज्ञानी ? ए तो सकषाई जिम वानी ।
णवरं केवलज्ञान पिण जान, भजना पंच ज्ञान त्रि अज्ञान ॥

२६. अणाहारका जीवा स्यूं ज्ञानी ? मनपज्जव वर्जी पिछानी ।
भजना च्यार ज्ञान त्रि अज्ञान, सिद्ध अपज्जत्त जिन-गुणस्थान[1] ॥
२७. अंक बंयासी देश निहाल, एक सौ सैंतीसमीं ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय, सुख संपति 'जय-जश' पाय ॥

१८. कण्हलेस्सा णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सइंदिया ।
१९. २० एवं जाव पम्हलेस्सा ।
सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा । अलेस्सा जहा सिद्धा ।
(श० ८।१७८)

२१. सकसाई णं भंते । किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सइंदिया । एवं जाव लोभकसाई ।
(श० ८।१७९)

२२. अकसाई णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
पंच नाणाइं भयणाए । (श० ८।१८०)
२३. सवेदगा णं भंते ? जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सइंदिया ।
२४. इत्थिवेदगा वि, एवं पुरिसवेदगा वि, एवं नपुंसगवेदगा वि । अवेदगा जहा अकसाई । (श० ८।१८१)
२५. आहारगा णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
जहा सकसाई, नवरं—केवलनाणं पि ।
(श० ८।१८२)
२६. अणाहारगा णं भंते ! जीवा किं नाणी ? अण्णाणी ?
मणपज्जवनाणवज्जाइं नाणाइं, अण्णाणाइं तिण्णि—भयणाए । (श० ८।१८३)

## ढाल १३८

### दूहा

१. हिवै ज्ञान-गोचर कहूं, द्वार सतरमों सार ।
अधिक उदार विचार थी, वारू करि विस्तार ॥

२. *आभिनिबोधिक ज्ञान नीं, विषै किती जगतार ?
श्री जिन भाखै संक्षेप थी, दाखी च्यार प्रकार ॥

वा०—अनेरा भेद ते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप भेद नैं विषे अंतर्भावे करि कहियै ते संक्षेप करि ॥

१. अथ ज्ञानगोचरद्वारे— (वृ० प० ३५६)

२. आभिणिबोहियनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?
गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
वा०—'समासतः' सङ्क्षेपेण प्रभेदानां भेदेष्वन्तर्भावनेत्यर्थः । (वृ० प० ३५७)

१. तेरहवें गुणस्थान में केवलसमुद्घात के समय

*लय : प्रभवो मन मांहे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. द्रव्य थकी नैं खेत्र थी, काल थकी कहिवाय।
भाव थकी भणियै वलि, तास अर्थ वृत्ति मांय ॥

वा०—द्रव्य थकी—द्रव्य जे धर्मास्तिकायादि, ते प्रतै आश्रयी नैं। क्षेत्र थकी—ते जे द्रव्य नैं आधारे जेतलो क्षेत्र अथवा आकाशमात्र क्षेत्र आश्रयी नैं। काल थकी—तीन काल प्रतै अथवा द्रव्य पर्याय अवस्थिति प्रतै आश्रयी नैं। भाव थकी—औदयिकादिक भाव प्रतै अथवा द्रव्य नां पर्याय प्रतै आश्रयी नैं।

४. आभिनिबोधिक ज्ञानी द्रव्य थी, पाठ आएसेणं तंत।
अर्थ सामान्य विशेष थी, सहु द्रव्य जाणैं देखंत ॥
५. वृत्तिकार इहां इम कह्युं, आएसेणं रो अर्थ।
आएस तेह प्रकार छै, सामान्य विशेष तदर्थ ॥
६. ते सामान्य विशेष बिहुं विषे, ओघ सामान्य थी जेह।
जे द्रव्य मात्रपणैं करि, जाणैं देखै तेह ॥
७. पिण जे द्रव्य विषे रह्या, सर्व विशेष विचार।
तेह अपेक्षा ए नहीं, वारू न्याय उदार ॥
८. अथवा आएसेणं तणो, अर्थ दूजो एह।
श्रुत-अभ्यासपणैं करी, जाणै देखै जेह ॥
९. सर्व द्रव्य षट द्रव्य नैं, जाणै देखै केम ?
एहनों न्याय टीका मझै, आख्यो छै एम ॥
१०. अवाय धारणा पेक्षया, जाणैं छै सोय।
अवाय धारणा रूप ए, ज्ञान छै अवलोय ॥
११. अवग्रह ईहा अपेक्षया, जाणै जेह सुजन्न।
तेह पासइ कहीजियै, अवग्रह ईहा दर्शन्न ॥
१२. भाष्यकार पिण इम कह्यो, अवाय धारणा ज्ञान।
अवग्रह नैं ईहा भणी, दर्शण वांछयो पिछान ॥
१३. तथा तत्व नीं रुचि तिका, सम्यक्त्व शोभाय।
जेणे करी तत्व रोचवै, तास ज्ञान कहिवाय ॥
१४. सामान्यग्राही दर्शन अछै, विशेषग्राही ज्ञान।
तिण सूं अवग्रहादिक चिहुं, दर्शन ज्ञान पिछाण ॥
१५. सामान्य अर्थ ग्रहण विषे, अवग्रह ईहा थाय।
विशेष ग्रहण स्वभाव में, धारणा नैं अवाय ॥

वा०—इहां शिष्य पूछै—हे भगवन ! अठाईस भेदमान आभिनिबोधिक ज्ञान कहियै। जे नंदी सूत्रे (सू० ५१) कह्यं छै मति ज्ञान नां अठाईस भेद। अनै इह व्याख्याने पांच इंद्रिय अनैं मन—ए षट नां अवाय अनैं धारणा इम द्वादशविध मतिज्ञान हुवै। अनैं पंच इंद्रिय अनैं मन ए षट नां अर्थावग्रह अनै ईहा, एवं बारह भेद अनैं च्यार व्यंजनावग्रह एवं सोलह चक्षु आदि दर्शन हुवै। एतलै नंदी में तो मतिज्ञान नां अठाईस भेद कह्या अनैं इण व्याख्याने अवाय धारणा ए द्वादशविध नैं ज्ञान कह्या, शेष सोलह नैं चक्षु अचक्षु दर्शण कह्यो। ए आपस

३. दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

वा०—द्रव्यतो—द्रव्याणि धर्मास्तिकायादीन्याश्रित्य, क्षेत्रतो—द्रव्याधारमाकाशमात्रं वा क्षेत्रमाश्रित्य, कालतः—अद्धां द्रव्यपर्यायावस्थितिं वा समाश्रित्य, भावतः—औदयिकादिभावान् द्रव्याणां वा पर्यायान् समाश्रित्य। (वृ० प० ३५७)

४. दव्वओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ।
५. आदेशः—प्रकारः सामान्यविशेषरूपः।
(वृ० प० ३५७)
६,७. तत्र चादेशेन—ओघतो द्रव्यमात्रतया न तु तद्गत-सर्वविशेषापेक्षयेति भावः, (वृ० प० ३५७)

८. अथवा आदेशेन श्रुतपरिकर्म्मिततया
(वृ० प० ३५७)
९. सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति।
(वृ० प० ३५७)
१०. अवायधारणापेक्षयाऽवबुध्यते, ज्ञानस्यावायधारणारूपत्वात्, (वृ० प० ३५७)
११. 'पासइ' त्ति पश्यति अवग्रहेहापेक्षयाऽवबुध्यते, अवग्रहेहयोर्दर्शनत्वात्, (वृ० प० ३५८)
१२, १३. आह च भाष्यकारः—
नाणमवायधिईओ दंसणमिट्ठं जहोग्गहेहाओ।
तह तत्तरुई सम्मं रोइज्जइ जेण तं णाणं ॥
(वृ० प० ३५८)
१४. जं सामन्नग्गहणं दंसणमेयं विसेसियं नाणं
(वृ० प० ३५८)
१५. अवग्रहेहे च सामान्यार्थग्रहणरूपे अवायधारणे च विशेषग्रहणस्वभावे इति। (वृ० प० ३५८)

वा०—नन्वष्टाविंशतिभेदमानमाभिनिबोधिकज्ञानमुच्यते, यदाह—'आभिणिबोहियनाणे अट्ठावीसं हवंति पयडीओ' त्ति इह च व्याख्याने श्रोत्रादिभेदेन षड्भेदतयाऽवायधारणयोर्द्वादशविधं मतिज्ञानं प्राप्तं, तथा श्रोत्रादिभेदेनैव षड्भेदतयाऽर्थावग्रहईहयोर्व्यञ्जनावग्रहस्य च चतुर्विधतया षोडशविधं चक्षुरादिदर्शनमिति प्राप्तमिति कथं न विरोधः ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांही विरोध किम नथी ? गुरु कहै—सत्य, किंतु मतिज्ञान अनैं चक्षु आदि दर्शण ए बिहुं नो भेद ते जुदापणो अणवांछी नैं मतिज्ञान अठावीसविध कहियै । इति पूज्य परम गुरु कहै ।

१६. आभिनिबोधिक ज्ञानी, तिको खेत्र थी सर्व खेत ।
आदेसेणं ते ओघ थी, जाणै देखै तेथ ॥

१७. अथवा श्रुत अभ्यास थी, श्रुत भणवै करि सार ।
जाणै देखै सर्व खेत्र नैं, लोकालोक विचार ॥

१८. काल थकी पिण इमज छै, भाव थकी पिण एम ।
भाष्यकार इहां इम कह्यो, ते सुणज्यो धर प्रेम ॥

१९. आदेसेणं ते प्रकार थी, ते ओघादेसेण ।
सामान्य प्रकारे करी, षट द्रव्य जाणै तेण ॥

२०. पिण सर्व पर्याय जाणै नहीं मतिज्ञानी ताय ।
केवलज्ञानी अछै तिके, जाणै सर्व पर्याय ॥

२१. खेत्र थकी लोकालोक नैं, काल थकी त्रिहुं काल ।
भाव थकी पंच भाव नैं, जाणै देखै विशाल ॥

२२. अथवा आदेश ते सूत्र छै, सूत्र विषै जे अर्थ ।
भणवै करिनै पदार्थ जे, जाण्ये छते तदर्थ ॥

२३. सूत्र भावना बिना अपि, सूत्र नैं अनुसार ।
पसरै ज्ञान-मति तेहनों, एम कह्यो भाष्यकार ॥

२४. वाचनांतरे न पासइ कह्यो पाठांतरेण ।
नंदी टीका कृत आखियो, एहिज पाठ नीं श्रेण ॥

२५. पाठ आदेश प्रकार ते, सामान्य विशेख ।
तेणे करी जाणै अछै, तास न्याय इम देख ॥

२६. तिहां द्रव्य जाति सामान्य थी, जाणै सहु द्रव्य ख्यात ।
एह धर्मास्तिकायादि छै, द्रव्य रूप ए जात ॥

२७. विशेष थी पिण इह विधे, ए धर्मास्ति कहेस ।
धर्मास्ति नो देश ए, इत्यादिक जाणेस ॥

२८. न पासइ नों न्याय ए, सर्व धर्मास्तिकायादि ।
वलि शब्दादि पुद्गल सहु, नहिं देखै संवादि ॥

२९. योग्य देश अवस्थित प्रतै, देखै पिण तेह ।
देखवा जोग पुद्गल तणां, देश प्रतै देखेह ॥

३०. श्रुत ज्ञान नों केतलो, विषय कही भगवान ?
जिन भाखै संक्षेप थी, च्यार प्रकारे जान ॥

३१. द्रव्य थकी नैं क्षेत्र थी, काल थकी कहिवाय ।
भाव थकी कहियै वली, हिवै एहनों न्याय ॥

सत्यमेतत् किन्त्वविवक्षयित्वा मतिज्ञानचक्षुरादिदर्शनयोर्भेदं मतिज्ञानमष्टाविंशतिधोच्यते इति पूज्या व्याचक्षत इति । (वृ० प० ३५८)

१६. खेत्तओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं खेत्तं जाणइ-पासइ ।

१७. 'आदेसेणं' ति ओघतः श्रुतपरिकर्मिततया वा 'सव्वं खेत्तं' ति लोकालोकरूपं । (वृ० प० ३५८)

१८. कालओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वं कालं जाणइ-पासइ ।
भावओ णं आभिणिबोहियनाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ-पासइ । (श० ८/१८४)

१९, २०. आएसोत्ति पगारो ओघादेसेण सव्वदव्वाइं ।
धम्मत्थिकाइयाइं जाणइ न उ सव्वभावेणं ॥ (वृ० प० ३५८)

२१. खेत्तं लोगालोगं कालं सव्वद्धमहव तिविहंपि ।
पंचोदइयाईए भावे जन्नेयमेवइयं ।
(वृ० प० ३५८)

२२,२३. आएसोत्ति व सुत्तं सुओवलद्धेसु तस्स मइनाणं ।
पसरइ तब्भावणया विणावि सुत्ताणुसारेणं ॥
(वृ० प० ३५८)

२४. इदं च सूत्रं नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' त्ति पाठान्तरेणाधीतम्, एवं च नन्दिटीकाकृता (नन्दी वृ० प० १८५) व्याख्यातम् । (वृ० प० ३५८)

२५. आदेशः—प्रकारः स च सामान्यतो विशेषतश्च ।
(वृ० प० ३५८)

२६. तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति । (वृ० प० ३५८)

२७. विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि (वृ० प० ३५८)

२८,२९. न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन् शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति । (वृ० प० ३५८)

३०. सुयनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ?
गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

३१. दव्वओ, खेतओ, कालओ, भावओ ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. द्रव्य थी श्रुतज्ञानी तिको, उपयुक्त है जेह ।
जाणें देखै ते द्रव्य सहु, खेत्र काल इम लेह ।।
३३. भाव थी श्रुतज्ञानी तिको, उपयुक्त है जेह ।
जाणें देखै सर्व भाव ते, इहां वृत्तिकार कहेह ।।
३४. उवउत्ते उपयोग-सहित ते, भावश्रुत उपयुक्त ।
पिण उपयोग रहित न, एह विशेषण उक्त ।।
३५. धर्मास्तिकाय आदि दे, सर्व द्रव्य छै जेह ।
श्रुत ज्ञान नीं विषय नां, विशेष थी जाणें तेह ।।

३६. देखै ते श्रुत अनुवर्त्ति करी, मन अचक्षु दर्शन्न ।
तेणे करी सर्व द्रव्य नैं, श्रुत विषे जे प्रपन्न ।।

३७. तदा पूर्ण दस पूर्व थी, चवद पूर्वधर जाण ।
श्रुतकेवलि ते बाहुल्यपणें, जाणै देखै पिछाण ।।
३८. ऊणा दस पूरवधरा, भजना करि तेह ।
ते वलि मति विशेष थी, जाणवा जोग्य जेह ।।
३९. वृद्ध कहै देखै वलो, ते किण रीत देखाय ?
दर्शण जोग्य न सकल हि, कहियै एहनूं न्याय ।।

४०. पन्नवणा तीसमां पद विषे, पासणया श्रुत ज्ञान ।
ते अंगीकारपणां थकी, पेखै कहिवूं पिछाण ।।
४१. अनुत्तर विमान आदि दे, आलंकी देखाय ।
बहुलपणें केइ वस्तु नें, देखवो इम थाय ।।
४२. वलि सर्व प्रकार अदृष्ट नुं, नहीं थाय आलेख ।
द्रव्य थकी ए आखियो, इम क्षेत्रादिक देख ।।
४३. अन्य आचार्य इम कहै, जाणइ पाठ जोय ।
ण पासइ इहविध पठै, ते कहै देखै न कोय ।।
४४. भाव थी श्रुतज्ञानी, तिको उपयोग-सहीत ।
सर्व भाव जाणें अछै, एहवो आख्यो वदीत ।।
४५. पिण छद्मस्थ जाणें नहीं, सर्व पजवा पिछाण ।
इहां सर्व भाव जाणें कह्या, तास न्याय इक जाण ।।
४६. सूत्र विषे इहां सर्व ते, पंच संख्या कहिवाय ।
भाव ते उदय प्रमुख भणी, ग्रहण करेवा ताय ।।
४७. ते पंच भाव सर्व प्रतै, जाति थकी जाणेह ।
भाव विषय जे सर्व रह्या, ते नहिं जाणें तेह ।।
४८. अथवा कहिवा जोग भाव नों, अनंतमें भागहीज ।
गणधरे सूत्रपणें रच्या, द्वादश अंग कहीज ।।
४९. तो पिण प्रसंग अनुप्रसंग थी, सहु कहिवा जोग जेह ।
श्रुत विषय कहियै तसु, ते सहु भाव जाणेह ।।

३२. दव्वओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ । एवं खेत्तओ वि कालओ वि । (सं० पा०)
३३. भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ-पासइ । (श० ८/१८५)
३४. 'उवउत्ते' त्ति भावश्रुतोपयुक्तो नानुपयुक्तः । (वृ० प० ३५८)
३५. 'सर्वद्रव्याणि' धर्मास्तिकायादीनि 'जानाति' विशेषतोऽवगच्छति, श्रुतज्ञानस्य तत्स्वरूपत्वात् (वृ० प० ३५८)
३६. पश्यति च श्रुतानुवर्त्तिना मानसेन अचक्षुर्दर्शनेन, सर्वद्रव्याणि चाभिलाप्यान्येव जानाति । (वृ० प० ३५८)
३७. पश्यति चाभिन्नदशपूर्वधरादिः श्रुतकेवली । (वृ० प० ३५८)
३८. तदारतस्तु भजना, सा पुनर्मतिविशेषतो ज्ञातव्येति । (वृ० प० ३५८)
३९. वृद्धैः पुनः पश्यतीत्यत्रेदमुक्तं—ननु पश्यतीति कथं ? कथं च न सकलगोचरदर्शनायोगात् ? अत्रोच्यते (वृ० प० ३५८)
४०. प्रज्ञापनायां (३०/२) श्रुतज्ञानपश्यत्तायाः प्रतिपादितत्वात् । (वृ० प० ३५८)
४१. अनुत्तरविमानादीनां चालेख्यकरणात् । (वृ० प० ३५८)
४२. सर्वथा चादृष्टस्यालेख्यकरणानुपपत्तेः, एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयमिति (वृ० प० ३५८)
४३. अन्ये तु न 'पासइ' त्ति पठन्तीति । (वृ० प० ३५८)
४४,४५. 'ननु भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ' इति यदुक्तमिह तत् 'सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे' त्ति अनेन च सह कथं न विरुध्यते ? (वृ० प० ३५८)
४६. इह सूत्रे सर्वग्रहणेन पञ्चौदयिकादयो भावा गृह्यन्ते । (वृ० प० ३५८)
४७. तांश्च सर्वान् जातितो जानाति । (वृ० प० ३५८)
४८. अथवा यद्यप्यभिलाप्यानां भावानामनन्तभाग एव श्रुतनिबद्धः । (वृ० प० ३५८)
४९,५०. तथापि प्रसङ्गानुप्रसङ्गतः सर्वेऽप्यभिलाप्याः श्रुतविषया उच्यन्ते अतस्तदपेक्षया सर्वभावान्



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. कहिवा जोग भाव अपेक्षया, जाणैं सहु भाव सोय।
भाव कहिवा जोग जे नहीं, तास अपेक्षा न होय।।

५१. अभिलाप्य भाव जिके नहीं, श्रुत विषय नहीं जेह।
ते सहु पजवा जाणैं नहीं, इति विरोध न एह।।

५२. अवधि ज्ञान नीं केतली, विषय कही भगवान् ?
जिन भाखै संक्षेप थी, च्यार प्रकारे आख्यान।

५३. द्रव्य थकी वलि क्षेत्र थी, काल थकी कहिवाय।
भाव थकी भणियै वली, आगल तेहनों न्याय।।

५४. द्रव्य थी अवधि ज्ञानी तिको, रूपी द्रव्य जाणैं देखै।
जेम नंदी सूत्रे कह्या, जाव भाव थी अवेखै।।

५५. वृत्तिकार कह्यो द्रव्य थी, तेजस भाषा जेह।
बिहुं विच द्रव्य रह्या तिके, जघन्य थकी जाणेह।।

५६. अवधिज्ञानी उत्कृष्ट थी, सहु द्रव्य पिछाण।
सूक्ष्म बादर भेद जुजूआ, जाणैं देखै सुजाण।।

## दूहा

५७. जाणैं विशेषपणैं करी, तेह ज्ञान सागार।
देखै सामान्यपणैं करी, ते दर्शन अणागार।।

५८. अवधिज्ञानी रै अवश्य हुवै, अवधि दर्शन संपेखै।
जाणैं ए अवधि ज्ञाने करी, अवधि दर्शन करि देखै।।

## सोरठा

५९. इहां कोइ प्रश्न करेह, धुर देखग थी ज्ञान ह्वै।
ते अनुक्रम तजेह, जाणै इम धुर किम कह्यो।।

६०. इहां अवधिज्ञान अधिकार, प्रधान कहिवा नें अर्थ।
आदि ज्ञान अवधार, कह्यु पाठ धुर जाणइ।।

६१. अवधि-दर्शन नो जेह, अवधि विभंग साधारण करि।
तसु अप्रधानपणेह, पछै पाठ है पासइ।।

६२. तथा साकारोपयुक्त, तेहनैं लब्धिज ऊपजै।
अवधि ज्ञान लब्धि उक्त, ते उपजै साकार में।।

६३. ते अर्थ जाणवा ताय, धुर साकारज जाणइ।
पाछै अनुक्रम आय, उपयोग प्रवृत्ति पासइ।।

## दूहा

६४. अवधिज्ञानी जे क्षेत्र थी, जघन्य आंगुल नैं तेथ।
असंख्यातमैं भाग जे, जाणै देखै खेत।।

---

जानातीत्युक्तम्। (वृ० प० ३५८, ३५९)

५१. अनभिलाप्यभावापेक्षया तु 'सुए चरित्ते न पज्जवा सव्वे' इत्युक्तमिति न विरोधः। (वृ० प० ३५९)

५२. ओहिनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते? गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

५३. दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

५४. दव्वओ णं ओहिनाणी रूविदव्वाइं जाणइ-पासइ जहा—नंदीए (सू० २२) जाव (सं० पा०) भावओ।

५५. 'दव्वओ ण' 'मित्यादि अवधिज्ञानी रूपिद्रव्याणि पुद्गलद्रव्याणीत्यर्थः, तानि च जघन्येनानन्तानि तैजसभाषाद्रव्याणामपान्तरालवर्त्तीनि। (वृ० प० ३५९)

५६. उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ-पासइ।
उत्कृष्टतस्तु सर्वबादरसूक्ष्मभेदभिन्नानि जानाति। (वृ० प० ३५९)

५७,५८. जानाति विशेषाकारेण, ज्ञानत्वात्तस्य, पश्यति सामान्याकारेणावधिज्ञानिनोऽवधिदर्शनस्यावश्यम्भावात्। (वृ० प० ३५९)

५९. नन्वादौ दर्शनं ततो ज्ञानमिति क्रमस्तत्किमर्थमेनं परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युक्तम्? (वृ० प० ३५९)

६०. इहावधिज्ञानाधिकारात् प्राधान्यख्यापनार्थमादौ जानातीत्युक्तम्। (वृ० प० ३५९)

६१. अवधिदर्शनस्य त्ववधिविभङ्गसाधारणत्वेनाप्रधानत्वात् पश्चात्पश्यतीति। (वृ० प० ३५९)

६२. अथवा सर्वा एव लब्धयः साकारोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्ते लब्धिश्चावधिज्ञानमितिसाकारोपयोगोपयुक्तस्यावधिज्ञानलब्धिर्जायते। (वृ० प० ३५९)

६३. इत्येतस्यार्थस्य ज्ञापनार्थं साकारोपयोगाभिधायकं जानातीति प्रथममुक्तं ततः क्रमेणोपयोगप्रवृत्तेः पश्यतीति। (वृ० प० ३५९)

६४. खेत्तओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं जाणइ-पासइ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. *लोक जेतला अलोक में, खंड असंख प्रमाण।
शक्ति जाणण देखण तणी, उत्कृष्ट थी जाण।।
६६. अवधिज्ञानी जे काल थी, आवलिका नें विख्यात।
असंख्यातमा भाग नीं, जाणें जघन्य थी बात।।
६७. उत्कृष्ट असंख्याती कही, अव-उत्सर्प्पिणी लेख।
अतीत अनागत विषे रह्या, रूपी द्रव्य जाणें देख।।
६८. भाव थी जघन्यपणें करी, अनंता जे भाव।
आधार द्रव्य अनंत थी, जाणें देखै कहाव।।

## सोरठा

६९. जे पर्याय आधार, द्रव्य नां अनंतपणां थकी।
पर्याय पिण सुविचार, अनंतपणो इम आखियो।।
७०. पिण इक द्रव्य मांहि, पर्याय अनंत-अनंत छै।
ते सहु जाणें नांहि, जाणें अनंत पर्याय अनंत द्रव्य नीं।।
७१. *उत्कृष्ट पिण जे भाव नें, जाणें देखै अनंत।
उत्कृष्ट पद सहु पज्जव थी, भाग अनंतमे हुंत।।

## सोरठा

७२. इक-इक द्रव्य रै मांहि, असंख असंख पर्याय प्रति।
जाणें देखै ताहि, अवधिनाणी उत्कृष्ट थी।।
७३. *प्रवर ज्ञान मनपज्जव नीं, विषै किती भगवान?
जिन भाखै संक्षेप थी, च्यार प्रकारे जान।।
७४. द्रव्य थकी नें क्षेत्र थी, काल थकी कहिवाय।
भाव थकी भणियै वली, हिव ऋजुओ ताय।।
७५. द्रव्य थकी ते ऋजुमती, द्रव्य अनंता जेह।
अनंतप्रदेशिया खंध नें, जाणें देखै तेह।।
७६. द्रव्य थकी जे ऋजुमती, अनंत ही अवलोय।
अनंतप्रदेशिक खंध नें, जाणें देखै सोय।।
७७. जिम नंदी सूत्रे कह्यु, कहिवुं छै तेम।
ज्यां लग भाव थी त्यां लगै, सुणज्यो धर प्रेम।।

## सोरठा

७८. ऋजु कहितां पहछाण, जे सामान्यज ग्राहिणी।
मति ते कहियै ज्ञान, ऋजुमती कहियै तसु।।
७९. घट चिंतवियो एण, ए अध्यवसाय निमित्त जे।
मनोद्रव्य जाणेण, ते सामान्यजग्राहिणी।।
८०. तथा उजुमती जास, ऋज्वी मति कहियै तिका।
ऋजुमतिमान विमास, तेहिज ग्रहियै छै इहां।।

*लय : प्रभवो मन मांहै

६५. उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोगे लोयमेत्ताइं खंडाइं जाणइ-पासइ।
६६. कालओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं जाणइ-पासइ।
६७. उक्कोसेणं असंखेज्जाओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ-पासइ।
६८. भावओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ-पासइ।
भावतोऽवधिज्ञानी जघन्येनानन्तान् भावानाधार-द्रव्यानन्तत्वाज्जानाति, पश्यति। (वृ० प० ३५९)

७०. न तु प्रतिद्रव्यमिति (वृ० प० ३५९)

७१. उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ-पासइ, सव्वभावाण-मणंतभागं जाणइ-पासइ। (श० ८।१८६)
तेऽपि चोत्कृष्टपदिनः सर्वपर्यायाणामनन्तभाग इति। (वृ० प० ३५९)

७३. मणपज्जवनाणस्स णं भंते! केवतिए विसए पण्णत्ते? गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
७४. दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ।

७५. दव्वओ णं उज्जुमती अणंते अणंतपदेसिए खंधे जाणइ-पासइ।
७६. 'अणंते' त्ति 'अनन्तान्' अपरिमितान् 'अणंतपएसिए' त्ति अनन्तपरमाण्वात्मकान् (वृ० प० ३५९)
७७. जहा नंदीए (सू० २५) जाव (सं० पा०) भावओ।

७८. ऋज्वी—सामान्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः। (वृ० प० ३५९)
७९. घटोऽनेन चिन्तित इत्यध्यवसायनिबन्धना मनोद्रव्य-परिच्छित्तिरित्यर्थः (वृ० प० ३५९)
८०. अथवा ऋज्वी मतिर्यस्यासावृजुमतिस्तद्वानेव गृह्यते। (वृ० प० ३५९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. अनंत प्रदेशिक खंध, विशिष्ट इक परिणाम करि ।
परिणत प्रतै प्रबंध, जाणै देखै अनंत प्रति ॥
८२. अढी अंगुल जे हीन, अढी द्वीप बे समुद्र नां ।
सन्नी पर्याप्ति चीन, मन द्रव्य जाणै ऋजुमती ॥

८३. मनपर्याय ज्ञानावरण, क्षयोपशम नें पटुपणें ।
साक्षात करि उच्चरण, जाणैं ए मन द्रव्य नें ॥
८४. विशेष नो जे जाण, भूयिष्ठ प्रचुरता तणो ।
पृथक्करण थी माण, घट चिंतव्यो पिण पट न तु ॥
८५. जाणैं इम कहिवाय, पूर्व न्यायज दाखियो ।
वलि देखै ते ताय, तेहनो न्याय कहीजियै ॥
८६. मन करि आलोचित्त, पुनः घटादिक अर्थ प्रति ।
तुर्य ज्ञान सुपवित्त, प्रत्यक्ष थी जाणैं नहीं ॥
८७. किंतु तसु परिणाम-अन्यथा-अनुपपत्ति करी ।
जाणैं घट नैं ताम, देखै कहियै तेहनें ॥
८८. भाष्यकार इम ख्यात, जाणैं जे अनुमान थी ।
बाह्य वस्तु अवदात, ए अंगीकार करिवुं इहां ॥
८९. जे मनपज्जव ज्ञान, रूपी द्रव्य आलंबनै ।
करतो थको सुजान, अमूर्त्त पिण वलि चिंतवै ॥
९०. धर्मास्तिकायादि, चिंतवतो पिण इण करी ।
साक्षात थकी संवादि, समर्थ नहीं ते जाणवा ॥
९१. तथा चतुर्विध जेह, चक्षु आदि दर्शन कह्यो ।
भिन्न आलंबन एह, विशेष आलंबन तिको ॥
९२. तेह विषे फुन धार, दर्शन नां संभव थकी ।
पेखै इम वच सार, कहितां पिण नहिं दुष्ट ते ॥

वा०---भिन्न आलंबन ते विशेष आलंबनईज ए मनपर्याय ज्ञान छै, पिण दर्शण आलंबन नथी ते विशेष आलंबन नैं विषे मनपर्याय ज्ञान दर्शन संभव थकी। पासइ कहितां देखै एहवुं कहिवै पिण दुष्ट नथी। एक प्रमाता नी अपेक्षा करी तदनंतर भाविपणां थकी।

इहां ए हार्द---घटादिक अर्थ प्रति चिंतवतो परोक्ष साक्षातईज मनपर्याय ज्ञान नों धणी मनोद्रव्य प्रतै प्रथम जाणैं वलि तेहिज मन अचक्षु दर्शन करकैं चिंतवै। तेहनीं अपेक्षया पासइ कहितां देखै इम कहियै।

तिवार पछै एकईज मनपर्याय ज्ञानी जाणतो मन-पर्याय ज्ञान थकी अनंतरईज मन अचक्षु दर्शन ऊपजे। इम एहवा एकईज प्रमाता मनपर्याय ज्ञाने करी मनोद्रव्य जाणैं अनें तेहिज अचक्षु दर्शने करी देखै एहवुं कहियै, इत्यलं विस्तरेण।

एतलै मनपर्याय ज्ञानी ऋजुमती द्रव्य थकी अनंता अपरिमित अनंतप्रदेशिक खंध प्रतै जाणै देखै। हिवै विपुलमति द्रव्य थकी जाणैं तेहनों अधिकार कहै छै---

८१. तत्र स्कन्धान् विशिष्टैकपरिणामपरिणतान् । (वृ० प० ३५६)

८२. सञ्ज्ञिभिः पर्याप्तकैः प्राणिभिरर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्तिभिर्मनस्त्वेन परिणामितानित्यर्थः । (वृ० प० ३५६)

८३. 'जाणइ' त्ति मनःपर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्य पटुत्वात्साक्षात्कारेण । (वृ० प० ३५६)

८४. विशेषभूयिष्ठपरिच्छेदात् जानातीत्युच्यते (वृ० प० ३५६)

८६,८७. तदालोचितं पुनरर्थं घटादिलक्षणं मनःपर्यायज्ञानं स्वरूपाध्यक्षतो न जानाति किन्तु तत्परिणामान्यथाऽनुपपत्त्याऽतः पश्यतीत्युच्यते । (वृ० प० ३५६)

८८. उक्तञ्च भाष्यकारेण---'जाणइ बज्झेऽणुमाणाओ' त्ति इत्थं चैतदङ्गीकर्त्तव्यम् । (वृ० प० ३५६)

८९,९०. यतो मूर्त्तद्रव्यालम्बनमेवेदं, मन्तारश्चामूर्त्तमपि धर्मास्तिकायादिकं मन्येरन् । न च तदनेन साक्षात् कर्त्तुं शक्यते । (वृ० प० ३५६)

९१. तथा चतुर्विधं च चक्षुर्दर्शनादि दर्शनमुक्तमतो भिन्नालम्बनमेवेदमवसेयम् (वृ० प० ३५६)

९२. तत्र च दर्शनसम्भवात्पश्यतीत्यपि न दुष्टम् । (वृ० प० ३५६)

वा०---एकप्रमात्रपेक्षया तदनन्तरभावित्वाच्चोपन्यस्तमित्यलमतिविस्तरेण । (वृ० प० ३५६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३. विपुलमती कहिवाय, तेहिज खंध विषे वलि।
मनोद्रव्य पर्याय, जाणें एह विशेष थी॥

९४. विपुला कहितां जोय, विशेष थी जे ग्राहिणी।
मति संवेदन होय, विपुलमति कहियै तसु॥

९५. इण घट चिंत्यो ताहि, छै ते घट सोना तणो।
पाडलिपुर रै मांहि, तेह घड़ो निष्पन्न छै॥

९६. वली नीपनो आज, वलि ते घट मोटो इतो।
इत्यादिक तसु साज, जाणें एह विशेष थी॥

९७. चिंतित अध्यवसाय, हेतुभूत अछै जिके।
मनोद्रव्य पर्याय, जाणें विपुलमति प्रवर॥

९८. अथवा विपुला जान, मति जेहनी ते विपुलमति।
अछै विपुलमतिवान, तेहिज विपुलमति कह्यु॥

९९. *तेहिज विपुलमति तिको, अब्भहियतराणि।
अधिक द्रव्यार्थपणें करी, जाणें एह सुनाणी॥

### सोरठा

१००. ऋजुमति देख्या खंध, तेह अपेक्षा अति बहु।
द्रव्यपणें करि संध, वर्णादिक करिकै बलि॥

१०१. *विउलतराए पाठ ए, विस्तीर्णपणे देख।
विसुद्धतराए विशेष थी, निर्मलपणें संपेख॥

१०२. वितिमिरतराए कहितां वलि, अतिसय करि तेह।
गया अंधकार तणी परै, ते प्रति जाणें देखेह॥

१०३. क्षेत्र थकी जे ऋजुमति, हेठे जावत जाण।
ए प्रत्यक्ष रत्नप्रभा पृथ्वी, तेह तणो पहिछाण॥

१०४. उवरिम हेट्ठिल क्षुल्लक जे, प्रतर प्रतै माणै।
नीचो देखै एतलो, मनोगत भाव जाणैं॥

### सोरठा

१०५. तिरिछा लोक नें मध्य, रुचक अछै तेहथी अधो।
नव सय जोजन बुद्ध, त्यां ए रत्नप्रभा तणों॥

१०६. उवरिम क्षुल्लकज ताय, प्रतर तिहां कहीजियै।
क्षुल्लकपणो तसु पाय, अधोलोक प्रतर नीं पेक्षया॥

१०७. तेह थकी पिण हेठ, सौ जोजन जइये तिहां।
विजय ऊंडी बे नेठ, हेट्ठिल क्षुल्लक प्रतर जिहां॥

१०८. रुचक थकी इम धार, नीचो जोजन सहस्र जे।
जाणें देखै सार, भाव मनोगत छै तिके॥

*लय : प्रभवो मन मांहे

९४. विपुला—विशेषग्राहिणी मति विपुलमतिः (वृ० प० ३५९)

९५. घटोऽनेन चिन्तितः स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकः (वृ० प० ३५९)

९६,९७ अद्यतनो महानित्याद्यध्यवसायहेतुभूता मनोद्रव्यविज्ञप्तिः (वृ० प० ३५९)

९८. अथवा विपुला मतिर्यस्यासौ विपुलमतिस्तद्वानेव। (वृ० प० ३५९)

९९. ते चेव विउलमई अब्भहियतराए।

१००. ऋजुमतिदृष्टस्कन्धापेक्षया बहुतरान् द्रव्यार्थतया वर्णादिभिश्च। (वृ० प० ३५९)

१०१. विउलतराए विसुद्धतराए।

१०२. वितिमिरतराए जाणइ-पासइ।
वितिमिरतरा इव—अतिशयेन विगतान्धकारा इव ये ते वितिमिरतरास्त एव वितिमिरतरका अतस्तान्। (वृ० प० ३५९, ३६०)

१०३. खेत्तओ णं उज्जुमई अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए

१०४. उवरिमहेट्ठिल्ले खुड्डागपयरे
मनोगतान् भावान् जानाति पश्यतीति योगः। (वृ० प० ३६०)

१०५,१०६. तत्र रुचकाभिधानात्तिर्यग्लोकमध्यादधो यावन्नवयोजनशतानि तावदमुष्या रत्नप्रभाया उपरिमाः क्षुल्लकप्रतराः क्षुल्लकत्वं च तेषामधोलोकप्रतरापेक्षया। (वृ० प० ३६०)

१०७. तेभ्योऽपि येऽधस्तादधोलोकग्रामान् यावत्तेऽधस्तनाः क्षुल्लकप्रतराः (वृ० प० ३६०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०९. *ते ऊंचो जिहां लग जाणवो, जोतिष चक्र नो जेह ।
उवरिम तल मन द्रव्य नें, जाणें देखै तेह ।।

### सोरठा

११०. रुचक थकी अवधार, नव सय जोजन ऊर्द्ध जे ।
जोतिष चक्र नों सार, तेहनों ऊपर तल लगै ।।

१११. *तिरिछो जावत एतलूं, मनुष्य क्षेत्र नें अंत ।
एहिज विभाग थकी हिवै, कहियै धर खंत ।।

११२. अढी द्विप बे समुद्र में, पनर कर्मभूमि खेत ।
तीस अकर्म भूमि विषे, छप्पन अंतरद्वीप तेथ ।।

११३. सन्नी पंचेंद्री पर्याप्त नां, मनोगत भाव तास ।
जाणें देखै ऋजुमति, पाठ विषे ए विमास ।।

११४. तं चेव तेहिज विपुलमति, अधिको आंगुल अढाइ ।
आठूंइ जे दिशि विषे, जाणें देखै ताहि ।।

### सोरठा

११५. तं चेव अर्थ कथित, इहां क्षेत्र प्रधानपणां थकी ।
तेहिज मन द्रव्य सहित, जीवाधार क्षेत्र संग्रह्यु ।।

११६ *अब्भहियतरागं पाठ ए, लांब विखंभ आश्रित्त ।
विपुलतरागं पाठ ए, बाहुल्य आश्री कथित्त ।।

### सोरठा

११७. मनोद्रव्य जिह खेत, तसु लांब चोड़ जाडापणुं ।
क्षेत्राधिकार एथ, तिण सुं बिहुं पद अर्थ इम ।।

११८. *विसुद्धतरागं निर्मल अति, वितिमिरतरागं जेह ।
तदावरणी जे कर्म नां, विशिष्ट क्षयोपशम लेह ।।

११९. ए पूर्वे कह्या ते क्षेत्र नां, सन्नी पर्याप्ता नां भाव ।
जाणें देखै निर्मलपणें, विपुलमति नो ए न्याव ।।

१२०. काल थकी जे ऋजुमति, जघन्य थकी ए भाग ।
पल्योपम छै तेहनों, असंख्यातमों भाग ।।

१२१. उत्कृष्ट पिण पल्योपम तणो, असंख्यातमो भाग ।
अतीत अनागत काल नां, जाणें देखै सुमाग ।।

### सोरठा

१२२. अतीत अनागत जेह, मनोद्रव्य बिहुं काल नां ।
जाणें देखै तेह, पल्य नुं असंख भाग जे ।।

*लय : प्रभवो मन मांहै

१०९. उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले ।

११०. ऊर्ध्वं यावज्ज्योतिषश्च—ज्योतिश्चक्रस्योपरितलं ।
(वृ० प० ३६०)

१११. तिरियं जाव अंतोमणुस्सखेत्ते ।

११२. अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णए अंतरदीवगेसु ।

११३. सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ-पासइ ।

११४. तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरं खेत्तं जाणइ-पासइ ।

११५. इह क्षेत्राधिकारस्य प्राधान्यात्तदेव मनोलब्धिसमन्वित-जीवाधारं क्षेत्रमभिगृह्यते । (वृ० प० ३६०)

११६. तत्राभ्यधिकतरकमायामविष्कम्भावाश्रित्य विपुलतरकं बाहल्यमाश्रित्य । (वृ० प० ३६०)

११८. 'विसुद्धतरकं' निर्मलतरकं वितिमिरतरकं तु तिमिर-कल्पतदावरणस्य विशिष्टतरक्षयोपशमसद्भावादिति ।
(वृ० प० ३६०)

१२०. कालओ णं उज्जुमई जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखि-ज्जयभागं

१२१. उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जयभागं अतीय-मणागयं वा कालं जाणइ-पासइ ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. *तं चेव कहितां तेहिज अद्धा, अतीत अनागत जान ।
पल्य नों भाग असंख्यातमों, जघन्य उत्कृष्ट पिछान ।।
१२४. जाणें देखै विपुलमति, अतिहि अधिक द्रव्य मन ।
अतिहि विपुल नें विशुद्ध घणुं, अतिहि वितिमिर जन ।।
१२५. भाव थकी जे ऋजुमति, अनंत भाव अवलोय ।
द्रव्य तणां पर्याय नें, जाणें देखै सोय ।।
१२६. सर्व भाव वर्णादिक तणां, पर्याय कहाय ।
तेहनो भाग अनंतमो, जाणें देखै ताय ।।
१२७. तेहिज भाव विपुलमति, अतिहि अधिक अवेखै ।
विपुल विशुद्ध नें वितिमिर हि, अतिसय करि जाणें देखै ।।

**सोरठा**

१२८. मनोद्रव्य छै जेह, वर्णादिक पर्याय तसु ।
जाणें देखे तेह, मनपज्जव धर भाव थी ।।
१२९. जहा नंदीए जाण, एह पाठ अनुसार थी ।
नंदी थकी वखाण, भाव लगै इम आखियो ।।
१३०. *हे प्रभु ! केवल ज्ञान नीं, विषय किती कहिवाव ?
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव ।।
१३१. केवलज्ञानी द्रव्य थी, सहु द्रव्य जाणें देखै ।
एवं जावत भाव थी, नंदी मांहि विशेखै ।।
१३२. खेत्र थकी सर्व खेत्र नें, काल थकी सर्व काल ।
भाव थकी सर्वभाव नें, केवलज्ञाने न्हाल ।।
१३३. इहां सर्व द्रव्य कहिवै करी, धर्मास्तिकायादि ।
आकाश द्रव्य ग्रहण थयो, स्यूं वलि क्षेत्र संवादि ।।
१३४. क्षेत्रपणें करि रूढ छै, ग्रहण कियो आकाश ।
तिण कारण वलि क्षेत्र थी, अंगीकार कियो तास ।।
१३५. हे प्रभु ! मति अज्ञान नीं, विषय किती कहिवाव ?
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव ।।
१३६. मति अज्ञानी द्रव्य थी, मति अज्ञान रै जेह ।
विषय आया जे द्रव्य नें, जाणें देखै तेह ।।
१३७. अपाय नें धारणा करी, द्रव्य तेह जाणंत ।
देखै अवग्रह ईहा करी, इम वृत्तिकार कहंत ।।

*लय : प्रभवो मन मांहै

१२३,१२४. तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ-पासइ ।

१२५. भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ-पासइ ।

१२६. सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ-पासइ ।

१२७. तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ-पासइ ।
(श० ८।१८७)

१२९. (नंदीसुत्तं सू० २५)

१३०. केवलनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा— दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ

१३१. दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ-पासइ । एव जाव (सं० पा०) भावओ ।
तावत्केवलविषयाभिधायि नन्दीसूत्रं (सू० ३३) इहाध्येयमित्यर्थः (वृ० प० ३६०)

१३२. खेत्तओ णं केवलनाणी सव्वं खेत्तं जाणइ-पासइ । कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ-पासइ । भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ-पासइ ।
(श० ८।१८८)

१३३,१३४. इह च धर्मास्तिकायादिसर्वद्रव्यग्रहणेनाकाशद्रव्यस्य ग्रहणेऽपि यत्पुनरुपादानं तत्तस्य क्षेत्रत्वेन रूढत्वादिति । (वृ० प० ३६०)

१३५. मइअण्णाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा— दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ ।

१३६. दव्वओ णं मइअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणइ-पासइ ।

१३७. जानात्यपायादिना पश्यत्यवग्रहादिना ।
(वृ० प० ३६०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३८. एवं जावत भाव थी, मति अज्ञानी संपेखै ।
मति अज्ञान विषय जे, द्रव्य आया जाणैं देखै ॥

१३८. जाव (सं० पा०) भावओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाण-परिगए भावे जाणइ-पासइ ।

**सोरठा**

१३९. जाव शब्द में जाण, क्षेत्र थकी नैं काल थी ।
जाणैं देखै माण, ते कहियै छै इह विधे ॥

१४०. *मति अज्ञानी क्षेत्र थी, मति अज्ञान रै जोय ।
विषय आया जे क्षेत्र नैं, जाणैं देखै सोय ॥

१४१. मति अज्ञानी काल थी, मति अज्ञान रै जेह ।
विषय आया जे काल नैं, जाणैं देखै तेह ॥

१४२. हे प्रभु ! श्रुत अज्ञान नीं, विषय किती कहिवाव ?
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव ।

१४०. खेत्तओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगयं खेत्तं जाणइ-पासइ ।

१४१. कालओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगयं कालं जाणइ-पासइ । (श० ८।१८९)

१४२. सुयअण्णाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ ।

१४३. श्रुत-अज्ञानी द्रव्य थी, श्रुत अज्ञान रै जेह ।
विषय आया जे द्रव्य नैं, आघवेइ कहेह ॥

१४४. पण्णवेइ भेद थकी कहै, परूपै ए विशेष ।
वाचनांतरे ए वली, कहियै पाठ विशेष ॥

१४३. दव्वओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं आघवेइ,

१४४. पण्णवेइ, परूवेइ ।
'प्रज्ञापयति' भेदतः कथयति 'प्ररूपयति' उपपत्तितः कथयतीति वाचनान्तरे पुनरिदमधिकमवलोक्यते ।
(वृ० प० ३६०)

१४५. दंसेइ ओपमा मात्र थी, यथा गौ तथा रोझ ।
निदंसेइ थापै तिको, हेतु दृष्टांत सोझ ॥

१४६. उवदंसेइ उपनय करी, फुन निगमन करि आखै ।
वा अन्य मत नैं देखाड़वै, वाचनांतरे दाखै ॥

१४७. इमहिज क्षेत्र थी काल थी, श्रुत अज्ञान नैं जेह ।
विषय क्षेत्र अरु काल नैं, आघवेइ प्रमुखेह ॥

१४५,१४६. 'दंसेति निदंसेति उवदंसेति' त्ति तत्र च दर्शयति उपमामात्रतस्तच्च यथा गौस्तथा गवय इत्यादि, निदर्शयति हेतुदृष्टान्तोपन्यासेन उपदर्शयति उपनयनि-गमनाभ्यां मतान्तरदर्शनेन वेत्ति । (वृ० प० ३६०)

१४७. खेत्तओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगयं खेत्तं आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ ।
कालओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगयं कालं आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ ।

१४८. श्रुत अज्ञानी भाव थी, श्रुत अज्ञान नैं वादि ।
विषय आया जे भाव नैं, आघवेइ इत्यादि ॥

१४९. हे प्रभु ! विभंग अज्ञान नीं, विषय किती कहिवाव ।
च्यार प्रकार संक्षेप थी, द्रव्य क्षेत्र काल भाव ॥

१५० विभंग अज्ञानी द्रव्य थी, विभंग अज्ञान रै जेह ।
विषय आया जे द्रव्य नैं, जाणैं देखै तेह ॥

१४८. भावओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगए भावे आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ । (श० ८।१९०)

१४९. विभंगनाणस्स णं भंते ! केवतिए विसए पण्णत्ते ? गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ ।

१५०. दव्वओ णं विभंगनाणी विभंगनाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणइ-पासइ ।

**सोरठा**

१५१. विभंग अज्ञान करेह, जाणैं द्रव्य तसु विषय जे ।
अवधि दर्शन करि तेह, देखै तेहिज द्रव्य प्रति ॥

१५१. 'जाणइ' त्ति विभङ्गज्ञानेन 'पासइ' त्ति अवधिदर्शनेनेति (वृ० प० ३६०)

---

*लय : प्रभवो मन मांहै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. *एवं यावत भाव थी, विभंग अज्ञान रै जेह।
विषय आया जे भाव नैं, जाणै देखै तेह।।
१५३. अंक बयासी नो देश ए, सौ अड़तीसमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल।।

१५२. एवं जाव (सं० पा०) भावओ णं विभङ्गनाणी विभंगनाणपरिगए भावे जाणइ-पासइ (श० ८।१६१)

## ढाल : १३९

### दूहा

१. जीव सहित अष्टादशम, कालद्वार कहिवाय।
ज्ञानी को ज्ञानी प्रभु! काल कितो रहिवाय?
२. जिन कहै ज्ञानी द्विविधे, आदि-सहित अवधार।
पिण ते अंत-रहित कह्यो, एह केवली सार।।

३. अथवा आदि-सहित जे, अंत-सहित अवधार।
आभिनिबोधिक प्रमुख जे, चउ नाणीसुविचार।।
४. तत्र आदि करि सहित जे, अंत-सहित अवलोय।
जघन्य स्थिति है जेहनी, अंतर्मुहूर्त्त जोय।।
५. धुर बे ज्ञानी आश्रयी, जघन्य थकी इम जाण।
अंतर्मुहूर्त्त मात्र है, वारू न्याय विनाण।।
६. स्थिति उत्कृष्टी एतली, छासठ सागर तास।
जाझेरी जिनवर कही, तसु इम न्याय विमास।।
७. विजयादिक में वार बे, तथा अचू त्रिण वार।
नर भव अधिक कहीजियै, एक जीव अधिकार।।

वा०—पन्नवणा पद १८ में पर्याप्ता रो पर्याप्तो उत्कृष्ट पृथक सौ सागर रहै इम कह्यं । तेहनुं न्याय—बीच अपर्याप्तो हुवै, पिण ते अपर्याप्तपणै मरै नहीं। तिम इहां पिण ६६ सागर जाझेरो कह्यो, ते बीच नर भव में कदाचित ज्ञान न हुवै तो पिण अज्ञानीपणै मरै नहीं, एहवूं न्याय जणाय छै।

८. जीव अनेकज आश्रयी, सर्वकाल सुखकार।
ज्ञान त्रिहुं लाधे सदा, वारू न्याय विचार।।
९. ज्ञानी मतिज्ञानी वलि, यावत केवल न्हाल।
अज्ञानी मति श्रुत विभंग, ए दस नों जे काल।।
१०. ए दस नीं संचिट्ठणा, अवस्थित जे काल।
यथा कायस्थिति पन्नवणा, अठारमें पद न्हाल।।

१. अथ कालद्वारे—'साइए' इत्यादि। (वृ० प० ३६०)
नाणी णं भंते! नाणी त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
२. गोयमा! नाणी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सादीए वा अपज्जवसिए
इहाद्यः केवली। (वृ० प० ३६०)
३. सादीए वा सपज्जवसिए।
द्वितीयस्तु मत्यादिमान्। (वृ० प० ३६०)
४. तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं।
५. आद्यं ज्ञानद्वयमाश्रित्योक्तं, तस्यैव जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रत्वात्। (वृ० प० ३६१)
६. उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं सातिरेगाइं।
(श० ८।१६२)
७. दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्नच्चुए अहव ताइं।
अइरेगं नरभवियं। (वृ० प० ३६१)
वा०—पज्जत्तए णं भंते! पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं सातिरेगं। (पण्णवणा पद १८।११३)
८. णाणाजीवाण सव्वद्धं। (वृ० प० ३६१)
९,१०. ज्ञान्याभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञान्यवधिज्ञानिमनःपर्यवज्ञानिकेवलज्ञान्यज्ञानिमत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां 'संचिट्ठणे' ति अवस्थितिकालो यथा कायस्थितौ प्रज्ञापनाया अष्टादशे पदे (७९-८४) ऽभिहितस्तथा वाच्यः। (वृ० प० ३६१)

*लय : प्रभवो मन मांहै



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*जय जशकारी हो ज्ञान जिनेन्द्र नो (ध्रुपदं) ॥

११. आभिनिबोधिक श्रुतज्ञानी धुरे,
अंतर्मुहूर्त्त काल हो, भविकजन !
छासठ सागर जाझेरो कह्यो,
उत्कृष्ट काल निहाल हो, भविकजन !

११. आभिणिबोहियनाणी णं भंते ! आभिणिबोहियनाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा एवं चेव । (श० ८।१९३)
एवं सुय नाणी वि । (श० ८।१९४)
आभिनिबोधिकज्ञानादिद्वयस्य तु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्त-मुत्कृष्टतस्तु सातिरेकाणि षट्षष्टिः सागरोपमाणि ।
(वृ० प० ३६१)

१२. अवधिज्ञानी इक समय जघन्यपणें,
विभंग तणो अवधि होय ।
समय एक रही ते पाछो पड़ै,
इम इक समय सुजोय ॥

१२. ओहिनाणी वि एवं चेव, नवरं—जहण्णेणं एक्कं समयं । (श० ८।१९५)
यदा विभंगज्ञानी सम्यक्त्वं प्रतिपद्यते तत् प्रथमसमय एव विभङ्गमवधिज्ञानं भवति तदनन्तरमेव च तत् प्रतिपतति तदा एकं समयमवधिर्भवतीत्युच्यते ।
(वृ० प० ३६१)

**सोरठा**

१३. अवधिज्ञान विलाय, पिण समकित जाती नथी ।
जघन्य स्थिति पिण ताय, अंतर्मुहूर्त्त नी तेहथी ॥
१४. अवधिज्ञान जसु होय, मति श्रुत नियमा ह्वै तसु ।
इक समय अवधि रहि जोय, मति श्रुत ज्ञान विषे रहै ॥

वा०—विभंग अज्ञानी नो अवधिज्ञानी किम हुवै ? अनें तेहनी एक समय नीं थिति किम ? देवता, नारक, मनुष्य, तिर्यंच-पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टि तेहनें तीन अज्ञान हुवै । हिवै मिथ्यादृष्टि नो समदृष्टि थयो, तिवारे तीन अज्ञान नां ज्ञान थया, विभंग नो अवधि थयो । तिवारै एक समय पछैज तेहनो आयु पूर्ण थयो अथवा अनेरे प्रकारे एक समय ते अवधि रही पाछो पड़्यो, पिण सम्यक्त नहीं गई । कारण मति, श्रुत ज्ञान नीं जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त नीं छै, सम्यक्त नीं पिण एतलीज छै । इण न्याय अवधिज्ञान नीं स्थिति जघन्य एक समय नीं ।

१५. *अवधिज्ञान उत्कृष्टपणें रहै, छासठ सागर देख ।
जाझो काल कह्यो ते ऊपरे, न्याय पूर्ववत पेख ॥

१५. अवधिज्ञानिनामप्येवं नवरं जघन्यतो विशेषः ।
(वृ० प० ३६१)

१६. मनपज्जव इक समय जघन्य रहै, अप्रमत्त नें उपजंत ।
समय एक रही तेह विनष्ट ह्वै, इम वृत्तिकार कहंत ॥

१६. मणपज्जवनाणी णं भंते ! मणपज्जवनाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं ।
संयतस्याप्रमत्ताद्धायां वर्त्तमानस्य मनःपर्यवज्ञानमुत्पन्नं तत उत्पत्तिसमयसमनन्तरमेव विनष्टं चेत्येवमेकं समयं ।
(वृ० प० ३६१)

१७. मनपर्यवज्ञानी उत्कृष्ट थी, देसूण पूर्व कोड़ ।
चरण लियां मनपर्यव ऊपजै, जावजीव लग जोड़ ॥

१७. उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं । (श० ८।१९६)
तथा चरणकाल उत्कृष्टो देशोना पूर्वकोटी, तत्प्रतिपत्तिसमनन्तरमेव च यदा मनःपर्यवज्ञानमुत्पन्नमाजन्म चानुवृत्तं तदा भवति मनःपर्यवस्योत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटीति । (वृ० प० ३६१)

---

*** लय : पूजजी पधारो हो नगरी**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. केवलज्ञानी आदि-सहित छै, अंतर-रहित अवधार।
सिद्धां में पिण केवल सास्वतो, वारू न्याय विचार।।

१८. केवलनाणी णं भंते ! केवलनाणी ति कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! सादीए अपज्जवसिए। (श० ८।१९७)

१९. अज्ञानी मति श्रुत अनाण नां, तीन भेद सुप्रयोग्य।
आदि-रहित नैं अंत-रहित जे, अभव्य सिद्ध-अयोग्य।।

१९. अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी णं भंते ! पुच्छा।
गोयमा ! अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी य तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणादीए वा अपज्जवसिए। अभव्यानाम्। (वृ० प० ३९१)

२०. आदि-रहित नैं अंत-सहित जे, मुक्तियोग्य भव्य इष्ट।
आदि-सहित नैं अंत-सहित ते, पडिवाई समदृष्ट।।

२०. अणादीए वा सपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए। भव्यानाम्....प्रतिपतितसम्यग्दर्शनानाम्। (वृ० प० ३९१)

२१. आदि-सहित नैं अंत-सहित जे, अंतर्मुहूर्त्त जघन्न।
सम्यक्त भ्रष्ट अंतर्मुहूर्त्त रही, वलि सम्यक्त उप्पन्न।।

२१. तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं।
सम्यक्त्वप्रतिपतितस्यान्तर्मुहूर्त्तोपरि सम्यक्त्वप्रतिपत्तौ। (वृ० प० ३९१)

२२. उत्कृष्टो ए काल अनंत है, अव-उत्सर्पिणी अनंत।
काल थकी ए श्री जिन आखियो, हिव क्षेत्र थकी वृतंत।।

२२. उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंता ओसप्पिणी उस्सप्पिणीओ कालओ।

२३. पुद्गलपरावर्त्त आधो कह्यो, देश ऊण अवलोय।
उत्कृष्ट पडिवाई इतरो रुलै, क्षेत्र थकी ए जोय।।

**वा०**—द्रव्यादिक भेदे करिकै च्यार प्रकार नों पुद्गलपरावर्त्त। ते मध्य ए क्षेत्र थकी पुद्गलपरावर्त्त जाणवो।

२३. खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। (श० ८।१९८)

२४. विभंग अनाणी जघन्य पदे रहै, एक समय तसु रीत।
विभंग ऊपनां समय रही पड़ै, श्री जिन वचन प्रतीत।।

**वा०**—जेहनैं अवधिज्ञान होय ते मिथ्याती थये छते तेहनैं विभंग अज्ञान थयो। पछै एक समय रही पाछो गयो। तिवारै मति श्रुति अज्ञान में रह्यो। इण न्याय विभंग अज्ञान नी जघन्य स्थिति एक समय नी।

२४. विभंगनाणी णं भंते ! पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं।
उत्पत्तिसमयानन्तरमेव प्रतिपाते। (वृ० प० ३९१)

२५. उत्कृष्ट सागर तेतीस अधिक ए, देसूण पूर्व कोड़।
मनुष्य विषे जे विभंगपणें रही, नरक सातमी जोड़।।

२५. उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं। (श० ८।१९९)
देशोनां पूर्वकोटिं विभङ्गितया मनुष्येषु जीवित्वाऽप्रतिष्ठानादावुत्पन्नस्येति। (वृ० प० ३९१)

२६. ज्ञान पंच नैं तीन अज्ञान नों, अंतर सर्व विचार।
जीवाभिगम विषे जिम भाखियो, कहिवूं तिम अधिकार।।

२६. पञ्चानां ज्ञानानां त्रयाणां चाज्ञानानामन्तरं सर्वं यथा जीवाभिगमे (पडिवत्ती ८ सू० १६०-१६५) तथा वाच्यं। (वृ० प० ३९१)

२७. आभिनिबोधिक अंतर काल थी, अंतर्मुहूर्त्त जघन्न।
उत्कृष्ट पुद्गल अर्द्ध देसूण नों, काल अनंत उप्पन्न।।

२७. आभिणिबोहियनाणिस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। (श० ८।२००)

२८. इमहिज श्रुत अवधि मनपज्जव नो, अंतर कहियै तास।
केवलज्ञान तणो नहिं आंतरो, पूरण नाण प्रकाश।।

२८. सुयनाणि-ओहिनाणि-मणपज्जवनाणीणं एवं चेव। (श० ८।२०१)
केवलनाणिस्स पुच्छा।
गोयमा ! नत्थि अंतरं। (श० ८।२०२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. मति श्रुत अज्ञान नां त्रिण भेद छै, आदि-रहित अवलोय।
अंत-रहित ते अभव्य आसरी, तसु अंतर नहिं होय॥

२९,३०. मइअण्णाणिस्स सुयअण्णाणिस्स य पुच्छा।

३०. आदि-रहित नैं अंत-सहित ते, भव्य आश्री पहिछाण।
शिव गति जावा जोग तिके कह्या, अंतर तास म जाण॥

३१. आदि-सहित नैं अंत-सहित ते, ए पडिवाई पेख।
जघन्य अंतर्मुहूर्त्त नों आंतरो, विमल नैत्र करि देख॥

३१. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

३२. उत्कृष्टो छासठ सागर तणो, जाझेरो कहिवाय।
सम्यक्त नीं स्थिति इतरी भोगवी, फेर अनाणी थाय॥

३२. उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं। (श० ८।२०३)

३३. विभंग अनाण रो अंतर जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त न्हाल।
उत्कृष्टो तसु अंतर एतलो, वनस्पति नो काल॥

वा०—असंख्याता पुद्गलपरावर्त्त वनस्पति में रहै—आवलिका रै असंख्यातमें भाग जेतला समा, तेतला पुद्गलपरावर्त्तन रहै।

३३. विभंगनाणिस्स पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइ-कालो। (श० ८।२०४)

३४. अल्पबहुत्व त्रिण तीजा पद विषे, धुर पंच ज्ञान नी जाण।
दूजी अल्पबहुत्व तीन अज्ञान नीं, तीजी उभय नीं माण॥

३४. अल्पबहुत्वानि त्रीणि ज्ञानिनां परस्परेणाज्ञानिनां च ज्ञान्यज्ञानिनां च (वृ० प० ३६२)

३५. आभिनिबोधिक ज्ञानी हे प्रभु! जाव केवली देख।
अल्पबहु कुण-कुण थी ते अछै, तुल्य अधिक सुविशेख?

३५. एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं ....केवलनाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

३६. सर्व थी थोड़ा मनपज्जवधरा, मुनिवर में ए होय।
अवधिज्ञानी ए असंखगुणा अछै, गति च्यारूं में जोय॥

३६. गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवनाणी, ओहिनाणी असंखेज्जगुणा
तत्र ज्ञानिसूत्रे स्तोका मनःपर्यायज्ञानिनो, यस्माद् ऋद्धिप्राप्तादिसंयतस्यैव तद्भवति, अवधिज्ञानिनस्तु चतसृष्वपि गतिषु सन्तीति तेभ्योऽसंख्येयगुणाः (वृ० प० ३६२)

३७. मति श्रुत ज्ञानी मांहोमां तुल्ला, विसेसाहिया अवलोय।
केवलज्ञानी अनंतगुणा अछै, अल्पबहुत्व धुर जोय॥

३७. आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया,
केवलनाणी अणंतगुणा। (श० ८।२०५)

३८. तीन अनाणी में सर्व थोड़ा अछै, विभंग-अनाणी जोय।
एह सन्नी पंचेंद्री में अछै, ते भणी थोड़ा होय॥

३८. एतेसि णं भंते! जीवाणं....
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा विभंगनाणी,
अज्ञानिसूत्रे तु विभङ्गज्ञानिनः स्तोकाः, यस्मात् पंचेन्द्रिया एव ते भवति। (वृ० प० ३६२)

३९. मति श्रुत अनाणी ए बिहुं कह्या, तुल्ला मांहोमांय।
विभंग थकी ए अनंतगुणा अछै, अनंतकाय रै न्याय॥

३९. मइअण्णाणी सुयअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा। (श० ८।२०६)
यतो मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्चैकेन्द्रिया अपीति तेन तेभ्यस्तेऽनन्तगुणाः। (वृ० प० ३६२)

४०. हिवै आठां में सर्व थोड़ा अछै, मनपज्जव मुनिराय।
अवधिज्ञानी ते असंखगुणा अछै, तेहनों छै इम न्याय॥

४०. एतेसि णं भंते! जीवाणं आभिणिबोहियनाणीणं....
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवनाणी ओहिनाणी असंखेज्जगुणा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

४१. सुर नारक समदृष्ट, अवधिज्ञान तेहनें अवश्य।
तिरि मनु सन्नी इष्ट, समदृष्टि कोइक विषे।।

४२. *मति श्रुत ज्ञानी परस्परे तुल्ला, अवधि ज्ञान थी एह।
विसेसाहिया अधिक विशेष ते, सहु समदृष्टी लेह।।

४३. विभंग अनाणी असंखगुणा कह्या, सुर नारक सुविचार।
अवधिज्ञानी छै तेह थकी घणां, विभंग असंखगुणा धार।।

४२. आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी य दो वि तुल्ला विसेसाहिया।

४३. विभंगनाणी असंखेज्जगुणा
आभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्यो विभंगज्ञानिनोऽसंख्येयगुणाः कथम्? उच्यते, यतः सम्यग्दृष्टिभ्यः सुरनारकेभ्यो मिथ्यादृष्टयस्तेऽसंख्येयगुणा उक्तास्तेन विभङ्गज्ञानिन आभिनिबोधिकज्ञानिश्रुतज्ञानिभ्योऽसंख्येयगुणाः। (वृ० प० ३६२)

४४. केवलज्ञानी अनंतगुणा अख्या, सिद्ध भगवंत रै न्याय।
उभय अनाणी तुल्य अनंतगुणा, वनस्पति में पाय।।

४४. केवलनाणी अणंतगुणा, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणंतगुणा। (श० ८।२०७)
केवलज्ञानिनस्तु विभङ्गज्ञानिभ्योऽनन्तगुणाः, सिद्धानामेकेन्द्रियवर्जसर्वजीवेभ्योऽनन्तगुणत्वात्, मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्चान्योन्यं तुल्याः केवलज्ञानिभ्यस्त्वनन्तगुणाः, वनस्पतिष्वपि तेषां भावात्, तेषां च सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वादिति। (वृ० प० ३६२)

४५. आभिनिबोधिक नां पजव किता? अनंत कहै जिनराय।
पंच ज्ञान नैं तीन अज्ञान नां, इमज अनंत कहाय[1]।।

४५. केवतिया णं भंते! आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता?
गोयमा! अणंता आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता। (श० ८।२०८)
केवतिया णं भंते! सुयनाणपज्जवा पण्णत्ता?
एवं चेव। (श० ८।२०९)
एवं जाव केवलनाणस्स। एवं मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स। (श० ८।२१०)
केवतिया णं भंते! विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता?
गोयमा! अणंता विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता। (श० ८।२११)

## सोरठा

४६. वृत्ति विषे छै ताय, पज्जव तणोज न्याय जे।
बहु विस्तारज आय, कहियै तिण अनुसार थी।।

## दूहा

४७. आभिबोनधिक ज्ञान नां, पर्यव विशेष धर्म।
स्व पर पज्जव भेद थी, द्विविध इम तसु मर्म।।

४७. आभिनिबोधिकज्ञानस्य पर्यवाः—विशेषधर्म्मा आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाः, ते च द्विविधाः स्वपरपर्यायभेदात्। (वृ० प० ३६२)

४८. मति-विशेष अवग्रह-प्रमुख, क्षयोपशम थी हुंत।
तास विचित्रपणां थकी, स्व पर्याय अनन्त।।

४८. तत्र येऽवग्रहादयो मतिविशेषाः क्षयोपशमवैचित्र्यात्ते स्वपर्यायास्ते चानंतगुणाः, कथम्? (वृ० प० ३६२)

---

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी

१. जोड़ की प्रस्तुत गाथा बहुत संक्षिप्त है। भगवती में किसी संक्षिप्त पाठ की सूचना नहीं है। इसलिए इस पद्य के सामने भगवती का पूरा पाठ रखा गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. एक अवग्रहादिक थकी, आदि अनंत ही भाग ।
वृद्धि करिनै विशुद्ध है, उज्जल गुणे अथाग ।।

५०. अन्य असंखिज्ज भाग ही, वृद्धि करि गुण रिद्ध।
अपर भाग संखेज्ज वृद्धि, अन्य संखगुण वृद्ध ।।

५१. तेहथी अन्य असंखगुण, वृद्धि करि पहिछान ।
अपर अनंत ही गुण वृद्धि, ऊजल गुण सुविधान ।।

५२. इम संख्याता नां अछै, प्रवर भेद संख्यात ।
तथा असंख्याता तणां, भेद असंख विख्यात ।।

५३. तथा अनंता नां वलि, अनंत भेद थी जोय ।
हुवै अनंता पजव इम, प्रथम न्याय ए होय ।।

५४. तथा ज्ञेय जे वस्तु छै, घटादि जाणण जोग ।
एक-एक वस्तु नैं विषे, छै मति नूं उपयोग ।।

५५. ज्ञेय नां भिन्नपणां थकी, जुदो-जुदो उपयोग ।
इम अनंत द्रव्य जाणवै, पज्जव अनंत प्रयोग ।।

**वा०**—अथवा मति ज्ञान नैं जाणवा जोग पदार्थ नां अनंतपणा थकी । अनैं एक-एक ज्ञेय ते जाणवा जोग पदार्थ प्रति ते मतिज्ञान नैं भिद्यमानपणां थकी भिद्यमान ते भिन्नपणां थकी ।

५६. अथवा जे मति ज्ञान नां, केवल बुद्धि कर ताय ।
भेद्यां खंड अनंत ह्वै, इम अनंत पर्याय ।।

**वा०**—अथवा मति ज्ञान प्रति अविभाग-परिच्छेद ते खंड तेणे करी केवल-ज्ञान-रूपणी बुद्धि करिकै भिन्न ते जूजुआ कियां थकां अनंत खंड हुवै इण प्रकार करी अनंता ते मति ज्ञान नां पर्याय हुवै ।

५७. ए स्व-पज्जव पेक्षया, कह्या अनंत उदार।
हिव पर-पज्जव आश्रयी, आख्या वृत्ति मझार ।।

**वा०**—तथा जेह पदार्थ मतिज्ञान परिच्छिन्न घटादिक वस्तु थकी व्यतिरिक्त जे अनेरा पदार्थ तेहनां पर्याय ते मतिज्ञान नां पर-पर्याय । ते स्व पर्याय थकी अनंतगुण, पर नैं अनंत गुणपणां थकी । हिवै शिष्य प्रेरणा करै छै—

५८. जो ते पर पर्याय छै, तो इहां ग्रहण न युक्त।
पर संबंधीपणां थकी, ते मति नां किम उक्त ?

५९. जो मतिज्ञान तणां गिणो, तो नहिं पर पर्याय ?
इम शिष्य तर्क कियां थकां, कहियै छै तसु न्याय ।।

६०. जेह थकी मति नैं विषे, असंबद्ध ते थाय।
तेह थकी जे तेहनां, कहियै पर पर्याय ।।

६१. वा श्रुतज्ञानादिक तणां, छै पज्जव जे सार ।
ते मतिज्ञान तणां नहीं, परित्यज्यमान विचार ।।

६२. जेह भणी मतिज्ञान तसु, परित्यज्यमानपणेह ।
तिण प्रकार करि एहनें, स्व पर्याय कहेह ।

४९. एकस्मादवग्रहादेरन्योऽवग्रहादिरनन्तभागवृद्ध्या विशुद्धः (वृ० प० ३६२)

५०. अन्यस्त्वसंख्येयभागवृद्ध्या अपरः संख्येयभागवृद्ध्या अन्यतरः संख्येयगुणवृद्ध्या (वृ० प० ३६२)

५१. तदन्योऽसंख्येयगुणवृद्ध्या अपरस्त्वनन्तगुणवृद्ध्या । (वृ० प० ३६२)

५२. एवं च संख्यातस्य संख्यातभेदत्वादसंख्यातस्य चासंख्यातभेदत्वात् (वृ० प० ३६२)

५३. अनन्तस्य चानन्तभेदत्वादनन्ता विशेषा भवंति । (वृ० प० ३६२)

५४,५५. अथवा तज्ज्ञेयस्यानन्तत्वात् प्रतिज्ञेयं च तस्यभिद्यमानत्वात् । (वृ० प० ३६२)

५६. अथवा मतिज्ञानमविभागपरिच्छेदैर्बुद्ध्या छिद्यमानमनन्तखण्डं भवतीत्येवमनन्तास्तत्पर्यवाः । (वृ० प० ३६२)

वा०—तथा ये पदार्थान्तरपर्यायास्ते तस्य परपर्यायास्ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः, परेषामनन्तगुणत्वादिति । (वृ० प० ३६२)

**वा०**—तथा ये पदार्थान्तरपर्यायास्ते तस्य परपर्यायास्ते च स्वपर्यायेभ्योऽनन्तगुणाः, परेषामनन्तगुणत्वादिति ।

५८. ननु यदि ते परपर्यायास्तदा तस्येति न व्यपदेष्टुं युक्तं, परसंबंधित्वात् । (वृ० प० ३६२, ३६३)

५९. अथ तस्य ते तदा न परपर्यायास्ते व्यपदेष्टव्याः, स्वसंबंधित्वादिति, अत्रोच्यते, (वृ० प० ३६३)

६०. यस्मात्तत्रासंबद्धास्ते तस्मात्तेषां परपर्यायव्यपदेशः । (वृ० प० ३६३)

६१,६२. यस्माच्च ते परित्यज्यमानत्वेन तथा स्वपर्यायाणां स्वपर्याया एते इत्येवं विशेषणहेतुत्वेन च तस्मिन्नुपयुज्यन्ते तस्मात्तस्य पर्यवा इति व्यपदिश्यन्ते । (वृ० प० ३६३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. असंबद्ध पिण धन यथा, स्व धन इम कहिवाय।
तेम असंबद्ध मति थकी, तो पिण तसु पर्याय ।।

वा०—इहां शिष्य पूछ्यूं—हे भगवान ! जे ते पर पर्याय छै तो ते मतिज्ञान नां न कहिवा, परसंबंधिपणां थकी। अथ ते पर्याय मतिज्ञान नां छै तो ते पर-पर्याय न कहिवा, स्वसंबंधीपणां थकी ?

**हिवं आचार्य कहै छै**—जेह थकी ते मतिज्ञान नैं विषे असंबद्ध छै ते कारण थकी तेहनैं पर पर्याय कहियै। अथवा जेह थकी ते परित्यज्यमानपणैं करी जे श्रुतज्ञानादिक पजवा ते मतिज्ञान नां पर्यवा नहीं इण प्रकार करिकै परित्यज्यमान-पणुं—त्यज्यवापणुं मतिज्ञान में छै, तिण प्रकार करिकै ए स्व पर्याय नां विशेषण हेतुपणैं करि ते मतिज्ञान के विषे जुड़ै। जिम असंबद्ध पिण धन स्वधन कहियै, उप-युज्यमानपणां थकी।

६४. अनंत पज्जव श्रुतज्ञान नां, ते द्विविध कहिवाय।
स्व पज्जव पर पज्जव फुन, निसुणो तेहनों न्याय ।।

६५. तिहां स्व पज्जव रह्या अछै, जे श्रुत ज्ञानज मांय।
अक्षरश्रुतादि भेद तसु, चतुर अनैं दस पाय ।।

६६. पजवा तास अनंत इम, क्षयोपशम विचित्त।
वलि श्रुत ज्ञाने ग्राह्य द्रव्य, ए बिहुं कर अवितत्थ ।।

६७. श्रुत अनुसारी बोध नुं, अनंतपणां थी अनंत।
वलि बुद्धि कर श्रुतज्ञान नां, खंड अनंता हुंत ।।

६८. पर पर्याय अनंत ही, सर्व भाव नां सोय।
तेह प्रसिद्धज जाणवा, मति नीं पर अवलोय ।।

६९. अथवा श्रुत जे ग्रंथ नैं, अनुसारे ह्वै ज्ञान।
श्रुत ग्रंथपणुंज वर्ण ही, अकरादि पहिछान ।।

७०. इक-इक अक्षर नैं विषे, जथाजोग अवलोय।
उदात्त नैं अनुदात्त फुन, स्वरित भेद थी सोय ।।

७१. वलि सानुनासिक कह्यु, निरनुनासिक भेद।
अल्पप्रयत्न महाप्रयत्न नां, भेदादिक करि वेद ।।

७२. फुन संयुक्त संयोग ही, असंयुक्त संयोग।
द्व्यादि संयोग भेद थी, नाम अनंत ही जोग ।।

७३. भिद्यमान करिकै तिके, भेद अनंत ही थाय।
तेहनां जे पर्याय नैं, कहियै स्व पर्याय ।।

७४. फुन तेहथी अन्य पजव नैं, कहियै पर पर्याय।
तेह अनंतज जाणवा, निमल विचारो न्याय ।।

वा०—इहां जाव शब्द में अवध्यादिक जाणवो।

७५. अनंत पज्जव है अवधि नां, स्व पर्याय कहाव।
नारक सुर भव प्रत्ययः, नर तिरि क्षयोपशम भाव ।।

वा०—च्यार गति में अवधि हुवै ते स्वामी नां भेद थकी असंख्याता भेद। ते अवधिज्ञान नीं विषयभूत द्रव्य अनैं पर्याय नां भेद थकी अनंता पज्जवा। वलि

६३. यथाऽसम्बद्धमपि धनं स्वधनं उपयुज्यमानत्वादिति।
(वृ० प० ३६३)

वा०—जइ ते परपज्जाया न तस्स अह तस्स न परपज्जाया।

(आचार्य आह)—जं तंमि असंबद्धा तो परपज्जाय-ववएसो ।।

चायसपज्जायविसेसणाइणा तस्स जमुवजुज्जंति।
सधणमिवासंबद्धं हवंति तो पज्जवा तस्स ।।
(वृ० प० ३६३)

६४. अनन्ताः श्रुतज्ञानपर्यायाः प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, ते च स्वप-र्यायाः परपर्यायाश्च। (वृ० प० ३६३)

६५. तत्र स्वपर्याया ये श्रुतज्ञानस्य स्वतोऽक्षरश्रुतादयो भेदाः। (वृ० प० ३६३)

६६. ते चानन्ताः क्षयोपशमवैचित्र्यविषयानन्त्याभ्याम्।
(वृ० प० ३६३)

६७. श्रुतानुसारिणां बोधानामनन्तत्वात् अविभागपलिच्छे-दानन्त्याच्च। (वृ० प० ३६३)

६८. परपर्यायास्त्वनन्ताः सर्वभावानां प्रतीता एव।
(वृ० प० ३६३)

६९. अथवा श्रुतं—ग्रंथानुसारि ज्ञानं श्रुतज्ञानं, श्रुतग्रन्थश्चा-क्षरात्मकः, अक्षराणि चाकारादीनि। (वृ० प० ३६३)

७०. तेषां चैकैकमक्षरं यथायोगमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदात्।
(वृ० प० ३६३)

७१. सानुनासिकनिरनुनासिकभेदात् अल्पप्रयत्नमहाप्रयत्न-भेदादिभिश्च। (वृ० प० ३६३)

७२. संयुक्तसंयोगासंयुक्तसंयोगभेदाद् द्व्यादिसंयोगभेदादभि-धेयानन्त्याच्च। (वृ० प० ३६३)

७३. भिद्यमानमनन्तभेदं भवति, ते च तस्य स्वपर्यायाः।
(वृ० प० ३६३)

७४. परपर्यायाश्चान्येऽनन्ता एव, एवं चानन्तपर्यायं तत्।
(वृ० प० ३६३)

७५. तत्रावधिज्ञानस्य स्वपर्याया येऽवधिज्ञानभेदाः भवप्रत्य-यक्षायोपशमिकभेदात् नारकतिर्यग्मनुष्यदेवरूप-
(वृ० प० ३६३)

वा०—स्वामिभेदाद् असंख्यातभेदतद्विषयभूतक्षेत्रकाल-भेदाद् अनन्तभेदतद्विषयद्रव्यपर्यायभेदादविभागप



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविभाग पलिच्छेद ते पिण अनंता।

मनःपर्याय ज्ञान स्वामी नां भेद थकी संख्याता भेद। ते मनपर्याय ज्ञान नीं विषयभूत द्रव्य अनैं पर्याय नां भेद थकी अनंता स्व पर्याय। वली अविभाग पलिच्छेद ते पिण अनंता।

हिवै केवलज्ञान नां स्वामी नां भेद थकी अनंता भेद। अनंता द्रव्य अनैं पर्याय नीं अपेक्षा करिकै अनंता स्व पर्याय अनैं अविभाग पलिच्छेद अपेक्षा करिकै पिण अनंता। इम मति अज्ञानादिक तीनूं नैं विषे पिण अनंत पर्यायपणुं विचारी कहिवो।

स्व पर पर्याय नीं अपेक्षा करिकै तो सर्व नैं सरीखापणां छै ते, माटै स्व पर्याय नीं अपेक्षा करिकै अल्पबहुत्व कहै छै।

लिच्छेदाच्च ते चैवमनन्ता इति,
मनः पर्यायज्ञानस्य, केवलज्ञानस्य च स्वपर्याया ये स्वाम्यादिभेदेन स्वगता विशेष्यास्ते चानन्ता अनन्त-द्रव्यपर्यायपरिच्छेदापेक्षयाऽविभागपलिच्छेदापेक्षया वेति, एवं मत्यज्ञानादित्रयेऽप्यनन्तपर्यायत्वमूह्यमिति।

इह च स्वपर्यायापेक्षयैवैषामल्पबहुत्वमवसेयं, स्वपर-पर्यायापेक्षया तु सर्वेषां तुल्यपर्यायत्वादिति।
(वृ० प० ३६३)

७६. *पंच ज्ञान नां पज्जवा नैं विषे, कुण-कुण थी अवलोय।
अल्प बहुत्व तुल्य अधिक विशेष छै? हिव जिन उत्तर जोय॥

७६. एतेसि णं भंते! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं,....
य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

७७. सर्व थकी थोड़ा पज्जव कह्या, मनपज्जव नां माण।
मनो मात्र द्रव्य क्षेत्र समय विषे, तास विषय पहिछाण॥

७७. गोयमा! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा।
तत्र सर्वस्तोका मनःपर्यायज्ञानपर्यायास्तस्य मनोमात्र-विषयत्वात्। (वृ० प० ३६३)

७८. मनपज्जव नां पज्जव थी वलि, अवधि ज्ञान नां एम।
अनंतगुणा पजवा वर आखिया, तसु न्याय सुणो धर प्रेम॥

७८. ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा।

## सोरठा

७९. मनपज्जव थी पाय, द्रव्य अनैं पर्याय थी।
अवधिज्ञान नैं ताय, विषय अनंतगुण भाव थी॥

७९. मनःपर्यायज्ञानापेक्षयाऽवधिज्ञानस्य द्रव्यपर्यायितोऽनन्त-गुणविषयत्वात्। (वृ० प० ३६३)

८०. *अवधिज्ञान नां जे पजवा थकी, वर श्रुत ज्ञान तणांज।
अनंतगुणा पजवा अधिका अछै, हिवै तसु न्याय समाज॥

८०. सुयनाणपज्जवा अणंतगुणा।

## सोरठा

८१. रूपी अरूपी जेह, द्रव्य विषय भावे करी।
विषय अनंत गुण एह, कहियै इम श्रुत ज्ञान नैं॥

८१. ततस्तस्य रूप्यरूपिद्रव्यविषयत्वेनानन्तगुणविषयत्वात्।
(वृ० प० ३६३)

८२. *जे श्रुत ज्ञान तणां पजवा थकी, वर मतिज्ञान नां जाण।
पजवा परम अनंतगुणा तसु, अदल न्याय हिव आण॥

८२. आभिणिबोहियनाणपज्जवा अणंतगुणा।

## सोरठा

८३. अभिलाप्य अनभिलाप्य, द्रव्यादि विषयपणैं करी।
विषय अनंत गुण प्राप्य, आभिनिबोधिक अनंतगुण॥

८३. ततस्तस्याभिलाप्यानभिलाप्यद्रव्यादिविषयत्वेनानन्तगु-णविषयत्वात्। (वृ० प० ३६३, ३६४)

---

***लयः पूजजी पधारो हो नगरी**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४. *तेहथी पजवा केवलज्ञान नां, अनंतगुणा अधिकाय।
सगला द्रव्य नैं पर्याय नैं, विषयपणैं करि ताय॥

८४. केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा। (श० ८।२१२)
सर्वद्रव्यपर्यायविषयत्वात्तस्येति। (वृ० प० ३६४)

८५. मति श्रुत विभंग त्रिहुं अज्ञान नां, पजवा मांहै पेख।
कुण-कुण थी यावत विसेसाहिया ? ह्विव जिन उत्तर देख॥

८५. एएसि णं भंते ! मइअण्णाणपज्जवाणं सुयअण्णाण-पज्जवाणं विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा ?

८६. सर्व थी थोड़ा पज्जव विभंग नां, अनंतगुणा श्रुत साव।
मति अज्ञान नां अनंतगुणा वली, त्रिहुं क्षयोपशम भाव॥

८६. गोयमा ! सव्वत्थोवा विभंगनाणपज्जवा, सुयअण्णाण-पज्जवा अणंतगुणा, मइअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा। (श० ८।२१३)

**सोरठा**

८७. अज्ञान नो अवधार, अल्पबहुत्व नों न्याय जे।
सूत्र तणैं अनुसार, इहां भाव नां इमज ए॥

८७. एवमज्ञानसूत्रेऽप्यल्पबहुत्वकारणं सूत्रानुसारेणोहनीयं। (वृ० प० ३६४)

८८. *ए प्रभु ! आभिनिबोधिक ज्ञान नैं, यावत केवल पेख।
मति श्रुत विभंग नां पजवा वली, कुण-कुण जाव विशेख ?

८८. एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं जाव केवलनाणपज्जवाणं, मइअण्णाणपज्जवाणं, सुयअण्णाण-पज्जवाणं, विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा।

८९. श्री जिन भाखै थोड़ा सर्व थी, मनपज्जव नां ताहि।
मनो मात्र द्रव्य विषयपणें करी, समयक्षेत्र रै मांहि॥

८९. गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा।

९०. मनपज्जव नां पज्जव थकी वली, अनंतगुणा अधिकाय।
विभंग अज्ञान तणा पजवा अछै, क्षयोपशम थी पाय॥

९०. विभंगनाणपज्जवा अणंतगुणा।

**सोरठा**

९१. मनपज्जव थी जाण, पजवा विभंग अनाण नां।
अनंतगुणा पहिछाण, अतिसय करि बहु विषय तसु॥

९१. तेभ्यो विभङ्गज्ञानपर्यवा अनन्तगुणाः मनःपर्यायज्ञानापेक्षया विभङ्गस्य बहुतमविषयत्वात्। (वृ प० ४६४)

९२. ऊर्द्ध अधो इम हुंत, नवमी ग्रैवेयक थकी।
सप्तम पृथ्वी अंत, इतरो देखै विभंगधर॥

९२. विभङ्गज्ञानमूर्द्ध्वमध उपरिमग्रैवेयकादारभ्य सप्तम-पृथिव्यन्ते। (वृ० प० ३६४)

९३. तिरछै लोके जोय, असंख्यात द्वीपोदधि।
तेह विषे अवलोय, रूपी द्रव्यज मांहिला॥

९३. क्षेत्रे तिर्यक् चासंख्यातद्वीपसमुद्ररूपे क्षेत्रे यानि रूपि-द्रव्याणि। (वृ० प० ३६४)

९४. केइक द्रव्य जाणेह, केइक तसु पर्याय प्रति।
जाणैं विभंग करेह, अनंतगुणा इण कारणैं॥

९४. तानि कानिचिज्जानाति कांश्चित्तत्पर्यायांश्च, तानि च मनः पर्यायज्ञानविषयापेक्षयाऽनन्तगुणानीति। (वृ० प० ३६४)

९५. *विभंग अनाण तणां पजवा थकी, अवधिज्ञान नां ताय।
अनंतगुणा पजवा अधिका अछै, तास न्याय कहिवाय॥

९५. ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा।

**सोरठा**

९६. सहु रूपी द्रव्य ताय, एक-एक जे द्रव्य नीं।
असंख-असंख पर्याय, जाणै अवधि ज्ञाने करी॥

९६, ९७. अवधेः सकलरूपिद्रव्यप्रतिद्रव्यासंख्यातपर्यायवि-षयत्वेन विभङ्गापेक्षया अनन्तगुणविषयत्वात्। (वृ० प० ३६४)

---

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. इम विभंग पेक्षाय, प्रवर अनंतगुण विषय थी।
अवधि ज्ञान अधिकाय, पज्जव अनंतगुणा कह्या।।

९८. *अवधिज्ञान नां जे पज्जव थकी, अनंतगुणा अधिकाय।
कहियै पज्जव श्रुत अज्ञान नां, ए जिन वच हिव न्याय।।

९८. सुयअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा।

सोरठा

९९. श्रुत अज्ञान करेह, जे श्रुत ज्ञान तणी परै।
सामान्य करि जाणेह, मूर्त्त अमूर्त्त समस्त द्रव्य।।
१००. ते द्रव्य नीं पर्याय, जाणै सामान्य विधि करी।
अवधिज्ञान पेक्षाय, विषय अनंतगुण अधिक इम।।

९९.,१०० श्रुताज्ञानस्य श्रुतज्ञानवदोघादेशेन समस्तमूर्त्तामूर्त्तद्रव्यसर्वपर्यायविषयत्वेनावधिज्ञानापेक्षयाऽनन्तगुणविषयत्वात्। (वृ० प० ३६४)

१०१. *जे श्रुत अज्ञान नां पजवा थकी, विशेषाधिक कहिवाय।
वर श्रुत ज्ञान तणां पजवा अछै, हिव कहियै तसु न्याय।।

१०१. सुयनाणपज्जवा विसेसाहिया।

सोरठा

१०२. विशेषाधिक श्रुत ज्ञान, श्रुत अज्ञान नी विषय में।
कै पर्याय पिछान, नहिं आया छै तेहनैं।।
१०३. विषयीकरण थी जेह, जे माटै श्रुत ज्ञान करि।
प्रगटपणैं जाणेह, तिण सूं ए विसेसाहिया।।

वा०—जिम ऋजुमति थकी विपुलमति निर्मलपणैं जाणैं, पिण ते ऋजुमति मेलो नथी। तिम श्रुत-अज्ञान थकी श्रुत ज्ञानवंत स्पष्ट—प्रगटपणैं जाणैं, पिण ते श्रुत-अज्ञान मेलो नथी, क्षयोपशम भाव छै ते माटे।

१०२,१०३. तेभ्यः श्रुतज्ञानपर्यवा विशेषाधिकाः, केषाञ्चित् श्रुताज्ञानाविषयीकृतपर्यायाणां विषयीकरणाद्, यतो ज्ञानत्वेनस्पष्टावभासं तत्। (वृ० प० ३६४)

१०४. *जे श्रुत-ज्ञान नां पजवा थकी, अनंतगुणा अधिकाय।
कहियैं पजवा मति-अज्ञान नां, तास न्याय हिव आय।।

१०४. मइअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा।

सोरठा

१०५. जे माटे श्रुत ज्ञान, जे अभिलाप्यज वस्तु नों।
विषय तास पहिचान, न कह्यं अनभिलाप्य नों।।
१०६. जाणैं मति अज्ञानेह, जे वस्तु अभिलाप्य प्रति।
प्रवर अनंतगुण जेह, अनभिलाप्य नुं विषय पिण।।

१०५. यतः श्रुतज्ञानमभिलाप्यवस्तुविषयमेव। (वृ० प० ३६४)

१०६. मत्यज्ञानं तु तदनन्तगुणानभिलाप्यवस्तुविषयमपीति। (वृ० प० ३६४)

१०७. *जे मति अज्ञान नां पजवा थकी, विशेषाधिक कहिवाय।
उज्जल पजवा छै मति ज्ञान नां, ए केवल ऊतरतो ताय।।

१०७. आभिणिबोहियनाणपज्जवा विसेसाहिया।

सोरठा

१०८. विशेषाधिक मति ज्ञान, मति अज्ञान नीं विषय में।
के पर्याय पिछान, नहिं आया छै तेहनैं।।

१०८,१०९. केषाञ्चिदपि मत्यज्ञानाविषयीकृतभावानां विषयीकरणात्, तद्धि मत्यज्ञानापेक्षया स्फुटतरमिति। (वृ० प० ३६४)

*लय : पूजजी पधारो हो नगरी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०९. विषयीकरण थी जेह, ते माटै*मति ज्ञान करि।
अति प्रगट जाणेह, तिण सूं ए विसेसाहिया।।

११०. *फुन मति ज्ञान तणां पजवा थकी, अनंतगुणा अधिकाय।
केवलज्ञान तणां पजवा कह्या, ए पूर्ण ज्ञान शोभाय।।

११०. केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा। (श० ८।२१४)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति (श० ८।२१५)

सोरठा

१११. सर्व काल भाविन्य, जाणैं द्रव्य पर्याय सहु।
एह सरीख न अन्य, सहु ज्ञान समाया इह विषे।।

१११. सर्वाद्धाभाविनां समस्तद्रव्यपर्यायाणामनन्यसाधारणावभासनादिति। (वृ० प० ३६४)

११२. *अष्टम शतक उदेशो दूसरो, सौ नवतीसमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल।।

अष्टमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।८।२।।

ढाल १४०

दूहा

१. पजवा कह्याज ज्ञान नां, ज्ञाने करि तरु आदि।
अर्थज जाणैं ते भणी, तृतीय वृक्ष संवादि।।

†जय-जय ज्ञान जिनेन्द्र नों।। (ध्रुपदं)

१. अनन्तरमाभिनिबोधिकादिकं ज्ञानं पर्यवतः प्ररूपितं, तेन च वृक्षादयोऽर्था ज्ञायन्तेऽतस्तृतीयोद्देशके वृक्षविशेषानाह— (वृ० प० ३६४)

२. तरु प्रभु! किता प्रकार नां? जिन कहै त्रिविधा वृक्षो रे।
संखजीविया जे विषे, जीव संखेज्ज प्रत्यक्षो रे।।

२. कतिविहा णं भंते! रुक्खा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा— संखेज्जजीविया
'संखेज्जजीविय' त्ति संख्याता जीवा येषु सन्ति ते संख्यातजीविकाः। (वृ० प० ३६४)

३. असंखजीविया नैं विषे, जीव असंख्या जाणो।
अनंतजीविया नैं विषे, अनंत जीव पहिछाणो।।

३. असंखेज्जजीविया, अणंतजीविया (श० ८।२१६)

४. संखेज्जजीविया कवण ते! जिन कहै अनेक प्रकारो।
ताल तमाल रु तक्कलि, वली तेतली धारो।।

४. से किं तं संखेज्जजीविया?
संखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा— ताल तमाले तक्कलि, तेयलि।

५. जेम पन्नवणा धुर पदे, जाव खजूर नालेरो।
अन्य वलि तथा प्रकार नां, संखेज्जजीविया हेरो।।

५. जहा पण्णवणाए [१।४३] जाव (सं० पा०) नालिएरी जे यावण्णे तहप्पगारा। सेत्तं संखेज्जजीविया। (श० ८।२१७)

६. असंखजीविया कवण ते? जिन कहै द्विविध देखो।
एकअस्थिका फल विषे, कुलियो बीज सुएको।।

६. से किं तं असंखेज्जजीविया?
असंखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य।
'एगट्ठिया' य त्ति एकमस्थिकं—फलमध्ये बीजं येषां ते एकास्थिकाः।

*लय : पूजजो पधारो हो नगरी
†लय : सल कोई मत राखजो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. बहुबीजा जे फल विषे, बीज घणां कहिवायो।
तेह अनेकज अस्थिका, द्वितीय भेद ए थायो।
८. एकअस्थिका कवण ते ? जिन कहै अनेक प्रकारो।
नींब अंब जंबू तरू, इत्यादिक सुविचारो।।
९. इम जिम पन्नवण धुर पदे, जाव फले बहुबीजो।
एह असंखिज्जजीविया, उभय प्रकार अहीजो।।

१०. अनंतजीविका कवण ते ? जिन कहै अनेक प्रकारो।
आलू मूलो आद्रकः, इत्यादिक सुविचारो।।

११. इम जिम सप्तम शतक में, जाव मुसंढी जेहो।
अन्य वलि तथा प्रकार नां, अनंतजीविया एहो।।

१२. अथ हिव भगवंत काछवो, पुनः कूर्म-पंक्ति लेणी।
गोह अनें गोह-पंक्ति जे, सर्प अनें अहि-श्रेणी।।

१३. मनुष्य नें पंक्ति मनुष्य नीं, महिष महिष नीं पंति।
दोय खंड करि तेहनां, अथवा त्रिखंडे हंति।।
१४. तथा संख्याता खण्ड करै, छेद्यां विच अंतरालो।
जीव प्रदेशे फर्शिया ? हंता फर्श्या न्हालो।।
१५. हे प्रभु ! कोई पुरुष जे, विचला प्रदेशां नें सोयो।
हस्ते करी तथा पग करी, आंगुलिये करि कोयो।।
१६. अथवा सिलाकाइं करी, काष्ठ करी अवलोयो।
अथवा लघु काष्ठे करी, तेह प्रदेश नें कोयो।।

१७. अल्प थोड़ो सो फर्शतो, फर्शे समस्त प्रकारो।
लिगारेक लिखतो थको, तथा खांचै एक वारो।।

१८. विशेष थी लिखतो थको, तथा खांचै बहु वारो।
अनेरे तीखे शस्त्रे करी, छेदै प्रदेश अपारो।।
१९. लिगारेक छेदतो थको, तथा छेदै एक वारो।
विशेष अत्यंत छेदतो, तथा वार-वार धारो।।

२०. अगनी करिनें बालतो, जीव प्रदेशां रै ताह्यो।
ईषत पीड़ा ऊपजै, वलि बहु पीड़ा थायो।।

७. 'बहुबीयगा य' त्ति बहूनि बीजानि फलमध्ये येषां ते बहुबीजकाः—अनेकास्थिकाः। (वृ० प० ३६४)
८. से किं तं एगट्ठिया ?
एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—निंबंब जंबु।
९. जहा पण्णवणापदे (१।३५) जाव [सं० पा०] फला बहुबीयगा। सेत्तं बहुबीयगा। सेत्तं असंखेज्जजीविया।
(श० ८।२१९, २२०)

१०. से किं तं अणंतजीविया ?
अणंतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—आलुए मूलए सिंगबेरे—

११. एवं जहा—सत्तमसए (७।६६) जाव सिउंढी मुसुंढी। जेयावण्णे तहप्पगारा। सेत्तं अणंतजीविया।
(श० ८।२२१)

१२. अह भंते ! कुम्मे, कुम्मावलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणा गोणावलिया, 'कूर्मावलिका' कच्छपपंक्तिः 'गोहे' त्ति गोधा सरीसृपविशेषः। (वृ० प० ३६५)

१३. मणुस्से, मणुस्सावलिया, महिसे, महिसावलिया—एएसि णं दुहा वा तिहा वा।
१४. संखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपएसेहिं फुडा ? हंता फुडा। (श० ८।२२२)
१५. पुरिसे णं भंते ! अंतरे हत्थेण वा पादेण वा अंगुलियाए वा

१६. सलागाए वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा
'कलिंचेण व' त्ति क्षुद्रकाष्ठरूपेण।
(वृ० प० ३६५)

१७. आमुसमाणे वा संमुसमाणे वा आलिहमाणे वा
आमृशन् ईषत् स्पृशन्नित्यर्थ.......संमृशन् सामस्त्येन स्पृशन्नित्यर्थः.......आलिखन् ईषत् सकृद्वाऽऽकर्षन्।
(वृ० प० ३६५)

१८,१९. विलिहमाणे वा अण्णयरेण वा तिक्खेणं सत्थजाएणं आछिंदमाणे वा विछिंदमाणे वा,
विलिखन् नितरामनेकशो वा कर्षन्।...........ईषत् सकृद्वा छिन्दन्...........नितरामसकृद्वा छिन्दन्
(वृ० प० ३६५)

२०. अगणिकाएण वा समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाणं किंचि आबाहं वा विवाहं वा उप्पाएइ ?
'आबाहं व' त्ति ईषद्बाधां.......व्याबाधां—प्रकृष्टपीडाम्। (वृ० प० ३६५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. अथवा जीव नीं चामड़ी, तेहनो छेदज होयो ?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं, करण समर्थ न कोयो ।।
२२. जीव तणां प्रदेश नें, शस्त्र अग्न्यादिक जाणी ।
संक्रमै नहीं निश्चै करी, वारू ए जिन वाणी ।।

२१. छविच्छेदं वा करेइ ?
णो तिणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ ।
(श० ८।२२३)

## सोरठा

२३. कच्छप प्रमुख जीव, तेह तणो अधिकार जे ।
पूर्वे कह्यु अतीव, प्रदेश नीं श्रेणी करी ।।
२४. जंतु उत्पत्ति खेत, रत्नप्रभादिक नें हिवै ।
चरिमाचरिम कहेत, विभाग देखाड़ण अरथ ।।

२३,२४. कूर्म्मादिजीवाधिकारात्तदुत्पत्तिक्षेत्रस्य रत्नप्रभादेश-चरमाचरमविभागदर्शनायाह— (वृ० प० ३६५)

२५. *पृथ्वी कही प्रभु ! केतली, जिन कहै पृथ्वी आठो ।
रत्नप्रभा जाव सातमीं, इसिपब्भारा सुघाटो ।।

२५. कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयण-प्पभा जाव अहेसत्तमा ईसीपब्भारा ।
(श० ८।२२४)

२६. रत्नप्रभा पृथ्वी प्रभु ! स्यूं चरिमा कै अचरिमा ?
चरम पद दशमों कह्यो, सर्व विस्तारज वरिमा ।।

वा०—पृथ्वी स्यूं एक वचने चरिम छै—पर्यंतवर्त्ति छै—चरमशरीरवत छै ? कै एक वचने अचरिम छै—मध्यवर्ती छै ? कै ते पृथ्वी नां तथाविध एकत्व परिणाम रूप द्रव्य चरिम—पर्यंतवर्ति सर्व छै कै अचरिम सर्व मध्यवर्ती छै ? ए बे प्रश्न बहुवचनांत जाणिवा । कै चरिमांत-प्रदेश छै ? कै अचरिमांत-प्रदेश छै ? ए बे प्रश्न पृथ्वी प्रदेशाश्रयी बहुवचनांत जाणवा ।

हे गोतम ! ए रत्नप्रभा पृथ्वी चरिम—अंत्यवर्ती नथी । कोइक वस्तु नीं अपेक्षाइं चरिम, अचरिम कहिवाइ । पिण अपेक्षा बिना कांइ कहिवाइ नहीं । अनें इहां तो अपेक्षा रहित केवल रत्नप्रभा पृथ्वी नुं प्रश्न पूछ्यूं छै, ते माटै चरिमा नहीं । तिम इणज युक्ते अचरिम—मध्यवर्ती पिण नहीं । तिम रत्नप्रभा पृथ्वी नें विषे तथाविध एकत्व परिणाम रूप बहु वचने घणां द्रव्य छै, ते पिण सर्व चरिम—अंत्यवर्ती नथी, अपेक्षा रहित माटै । तिम अचरिम—मध्यवर्ती पिण नथी, अपेक्षा रहित माटै । तिम ते पृथ्वी नां प्रदेश असंख्याता छै, ते प्रदेश पिण चरिम—अंत्यवर्त्ति नथी, पृथ्वी अपेक्षा रहित माटै । तेहनां प्रदेश नुं प्रश्न पिण अपेक्षा रहित केवल पूछ्यूं छै, ते माटै । तिम इणिज युक्ते ए पृथ्वी अचरिमांत प्रदेशे पिण नथी, कल्पना नां असंभव माटै ।

तो हिवै ए रत्नप्रभा पृथ्वी कैहवी छै ? ते कहै छै—निश्चैज एक वचने अचरिम अनैं बहु वचने चरिम—अंत्यवर्त्ति छै । ते किम तेहनो स्थापना यंत्र ए आकारे छै—

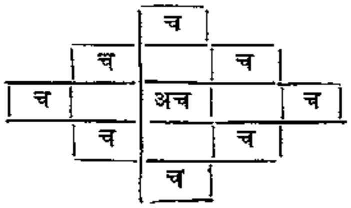


२६. इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा ? अचरिमा ?
चरिमपदं निरवसेसं भाणियव्वं,

वा०—....इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं चरिमा अचरिमा ? ....चरिमाइं अचरिमाइं ? चरि-मंतपएसा अचरिमंतपएसा ?

तत्र किं चरिमा अचरिमा ? इत्येकवचनांतः प्रश्नः 'चरिमाइं अचरिमाइं' इति बहुवचनांतः प्रश्नः ।

'गोयमा ! नो चरिमा नो अचरिमा' चरमत्वं ह्येतदापेक्षिकं, अपेक्षणीयस्याभावाच्च कथं चरिमा भविष्यति ? अचरमत्वमप्यपेक्षयैव भवति ततः कथ-मन्यस्यापेक्षणीयस्याभावेऽचरमत्वं भवति ? यदि हि रत्नप्रभाया मध्येऽन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्याश्चर-मत्वं युज्यते, न चास्ति सा, तस्मान्न चरमासौ, तथा यदि तस्या बाह्यतोऽन्या पृथिवी स्यात्तदा तस्या अचर-मत्वं युज्यते न चास्ति सा तस्मान्नाचरमाऽसाविति....

किं तर्हि नियमात् नियमेनाचरमं च चरमाणि च ।

*लय : सल कोई मत राखजो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश आश्री चरिमांत-प्रदेश अचरिमांत-प्रदेश छै, एहनों परमार्थ कहियैं छै—एहवी अखंड रूप चिंतवी नैं पूछीइं तो पूर्वोक्त छ भांगा मांहिलै एके भांगे कहिवावै नहीं। अनैं जो असंख्यात प्रदेशावगाढ़ अनेकावयव विभाग रूप चिंतवीइं तो यथोक्त—'णियमा अचरिमं चरिमाणि य चरिमंतपएसा अचरिमंतपएसा य' एह एक भांगो कहिवाइं ते किम ? रत्नप्रभा पृथ्वी ए आकारैं छै, एह पृथ्वी नां प्रत्येक तथाविध-एकत्व परिणत छेहला जे खंडुक ते चरिम कहिइं। अनैं जे वलि विचलुं जे मोटूं एक रत्नप्रभा नुं खंडुक तथाविध एकत्व परिणाम युक्त माटै एकपणैं चिंतव्युं ते अचरिम—मध्यवर्त्ति कहीइं—एतलैं अचरिम-चरिमाणि य। ए बे मिली नैं एक भांगो जाणवो। अखंड एक पृथ्वी मांहै ए बे नीं समुदाय चिंतवणी माटै। एतलै एह अवयवावयवीरूप चिंतवणी नों भांगो कह्यो।

हिवै जो प्रदेशपणैं चिंतवीइं तो 'चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य', एह भांगो कह्यो। ते किम ? जे बाह्य खंडगत प्रदेश ते चरिमांत-प्रदेश अनैं जे मध्य एक खंडगत प्रदेशे ते अचरिमांत-प्रदेशे कहीइं। तथा यथोक्त रूप रत्नप्रभा प्रांते एकप्रदेशिक श्रेणि पटलगत प्रदेशे ते चरिमांत-प्रदेश कहीइं अनैं मध्य भाग गत प्रदेश ते अचरिमांत-प्रदेश कहीइं। इम सर्वत्र भावना जाणवी। एवं जाव अहे-सत्तमा पुढवी। सोहम्माइं जाव अणुत्तरविमाणाणं एवं चेव ईसिप्प-ब्भाराविं लोगे वि एवं चेव एवं अलोगे वि इत्यादि।

एतदुक्तं भवति—अवश्यंतयेयं केवलभङ्गवाच्या न भवति, अवयवावयविरूपत्वादसंख्येयप्रदेशावगाढ़त्वाद्य-थोक्तनिर्वचनविषयैवेति।

एवमवस्थितायां यानि प्रान्तेषु व्यवस्थितानि तदध्यासितक्षेत्रखण्डानि तानि तथाविधविशिष्टैक-परिणामयुक्तत्वाच्चरमाणि, यत्पुनर्मध्ये महद् रत्नप्रभा-क्रान्तं क्षेत्रखण्डं तदपि तथाविधपरिणामयुक्तत्वादचरमं तदुभयसमुदायरूपा चेयमन्यथा तदभावप्रसङ्गात्।

प्रदेशपरिकल्पनायां तु चरमांतप्रदेशाश्चाचरमांत प्रदेशाश्च, कथं ? ये बाह्यखण्डप्रदेशास्तेचरमांतप्रदेशाः ये च मध्यखण्डप्रदेशास्तेऽचरमांतप्रदेशा इति, ····एवं शर्करादिष्वपि। (वृ० प० ३६५,३६६)

२७. यावत प्रभु ! वेमाणिया, फर्श चरिम करि जोयो।
स्यु चरिमा कै अचरिमा ? जिन कहै दोनूं होयो ॥

२७. जाव (श० ८।२२५)
वेमाणिया णं भंते ! फासचरिमेणं किं चरिमा ? अचरिमा ?
गोयमा चरिमा वि अचरिमा वि। (श० ८।२२६)

**सोरठा**

२८. जे वेमानिक देव, न लहै भव संभव फरस।
तत्र अनुत्पति हेव, मुक्तिगमन थी फरस चरम ॥

२८. ये वैमानिकभवसम्भवं स्पर्शं न लप्स्यन्ते पुनस्तत्रानु-त्पादेन मुक्तिगमनात्ते वैमानिकाः स्पर्शचरमेण चरमाः। (वृ० प० ३६६)

२९. जे वेमानिक देव, फुन लहिस्यै भव संभव फरस।
अचरिम फर्श कहेव, तिण सूं फर्श चरिमाचरिम ॥

२९. ये तु तं पुनर्लप्स्यन्ते ते त्वचरमाः। (वृ० प० ३६५,३६६)

३०. *सेवं भंते ! सेवं भंते ! इम कहै गोतम स्वामी।
अष्टम शतक नों आखियो, तृतीय उद्देशक धामी ॥

३०. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ८।२२७)

अष्टमशते तृतीयोद्देशकार्थः ॥८।३॥

**सोरठा**

३१. तृतीय उदेशक अंत, वेमानिक सुर आखिया।
ते छै किरियावंत, तुर्य उदेशे हिव क्रिया ॥

३१. अनंतरोद्देशके वैमानिका उक्तास्ते च क्रियावंत इति चतुर्थोद्देशके ता उच्यंते। (वृ० प० ३६६)

३२. *गोतम राजगृह नैं विषे, जाव बोल्या इम वायो।
क्रिया कही प्रभु ! केतली ? जिन कहै पंच कहायो ॥

३२. रायगिहे जाव एवं वयासी—कति णं भंते ! किरि-याओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

*लय : सल कोई मत राखजो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. काइया नै अधिकरणिया, एम पन्नवणा मझारो।
क्रिया पद बावीसमों, भणवो सर्व विस्तारो।।

३४. जाव क्रिया मायावत्तिया, विसेसाहियाओ अंतो।
सेवं भंते! सेवं भंते त्ति, अंक चोरासी शोभंतो।।

अष्टमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।८।४।।

**सोरठा**

३५. पाउसिया फुन जाण, पारितावणिया चतुर्थी।
प्राणातिपातकी माण, इत्यादि पन्नवणा मझे।।
३६. अल्पबहुत्व है अंत, सर्व थकी थोड़ा अछै।
मिथ्यातकी धुर हुंत, प्रथम तृतीय गुणठाण ए।।
३७. अपच्चखाणिया जाण, तेह थकी विसेसाहिया।
धुर च्यारूं गुणठाण, सर्व अविरति आश्रयी।।

३८. परिग्रहिया पहिछाण, तेह थकी विसेसाहिया।
देशविरति गुणठाण, तेह विषे संभव थकी।।
३९. आरंभिया पहिछाण, तेह थकी विसेसाहिया।
पूर्व पंच गुणठाण, प्रमत्त-संजति में बली।।
४०. मायावत्तिया माण, तेह थकी विसेसाहिया।
पूर्वोक्त गुणठाण, फुन अप्रमत्त दसवां लगै।।

वा०—सर्व-अविरत तथा देश-अविरत सहित रै मूर्च्छा ते परिग्रह की क्रिया कहियै। अनै अविरत बिना मूर्च्छा छठे गुणठाणे, ते अशुभ-योग रूप आरंभकी क्रिया कहियै, पिण परिग्रहकी क्रिया न कहियै। आरंभकी क्रिया में जीव हणवा रो नियम नथी। छठे गुणठाणे जीव हणै, झूठ बोलै, चोरी करै, मिथुन रा परिणाम—अतिचारादिक लगावै, वस्त्र पात्रादिक विषे ममत्व भाव करै, ते सर्व अशुभजोग छै। तेहनै आरंभकी क्रिया कहीजै। अनै सातमा थी दसमां तांई मायावत्तिया कहियै। मायावत्तिया में माया रो नियम नहीं। क्रोधादिक मांहिला एक कषाय नो उदय सूक्ष्म हुवै, तेहनै पिण मायावत्तिया क्रिया कहियै।

४१. *एक सौ नै चालीसमीं, ढाल रसाल विशालो।
भिक्खू भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगल मालो।।

३३. काइया, अहिगरणिया, पाओसिया, पारियावणिया पाणाइवायकिरिया—एवं किरियापदं निरवसेसं भाणियव्वं।

३४. जाव मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ। (श० ८।२२८)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ८/२२९)

३५. (पण्णवणा पद २२/१)

३६. 'सव्वत्थोवा मिच्छादंसणवत्तियाओ किरियाओ' मिथ्यादृशामेव तद्भावात्। (वृ० प० ३६७)
३७. 'अप्पच्चक्खाणकिरियाओ विसेसाहियाओ' मिथ्यादृशामविरतिसम्यग्दृशां च तासां भावात्। (वृ० प० ३६७)
३८. परिग्गहियाओ विसेसाहियाओ पूर्वोक्तानां देशविरतानां च तासां भावात्। (वृ० प० ३६७)
३९. 'आरंभियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानां प्रमत्तसंयतानां च तासां भावात्। (वृ० प० ३६७)
४०. 'मायावत्तियाओ विसेसाहियाओ' पूर्वोक्तानामप्रमत्तसंयतानां च तद्भावादिति। (वृ० प० ३६७)

*लय : सल कोई मत राखजो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल १४१

### दूहा

१. तुर्य उद्देश कही क्रिया, हिव पंचम उद्देश।
परिग्रहादि क्रिया विषय, विचार इहां कहेस ॥
२. राजगृह यावत वदै, गोसालक शिष्य स्वाम।
स्थविर भगवंत प्रतै इसी, वाण वदै छै ताम ॥

३. गोसालक शिष्य स्थविर नैं, श्रावक नीं अपेक्षाय।
प्रश्न पूछ्या छै जिके, गोतम पूछै ताय ॥

*हो म्हारा देव जिनेन्द्र दयाल, प्रभु नीं वाण सुधा रस वारू ॥ (ध्रुपद)

४. समणोपासक करि सामायक, बेठो साधु रै स्थानो।
कोइक पुरुष वस्त्रादिक वस्तु, ते भंड अपहरै जानो ॥

वा०--घर के विषै रही तथा साधु नैं उपाश्रय रही ते वस्तु अपहरै।

५. हे प्रभु ! सामायक पार्यां पछै, भंड गवेष जोवंत।
पोता नां भंड भणी जे गवेषै, कै पर-भंड गवेषंत ?

### सोरठा

६. इहां जे पूछणहार, तेहनों ए अभिप्राय छै।
भंड जे वस्तु उदार, कहियै छै पोता तणो ॥
७. पिण सामायक जाण, पडिवजतां जे परहर्या।
किया तास पचखाण, ते पोता नो किम हुवै ॥
८. ते माटै पूछंत, गवेषणा निज भंड तणी।
कै पर भंड नी हुंत ? ताम स्वाम उत्तर दियै ॥

९. *जिन कहै सामायक पार्यां पछै, निज भंड ते गवेषंत।
पारको भंड गवेषे नहीं ते, वलि गोयम पूछंत ॥
१०. ते प्रभु ! अणुव्रत गुणधारक, जे वेरमण ते सामाय।
पचखाण ते नवकारसी प्रमुख, वसवुं पर्व दिनै पोषध मांय ॥

### सोरठा

११. इहां शीलव्रतादि, ग्रहण किये पिण जाणवो।
सामायक पोसादि, अछै प्रयोजन एहनों ॥

*लय : हो म्हांरा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

---

१. क्रियाधिकारात्पञ्चमोद्देशके परिग्रहादिक्रियाविषयं विचारं दर्शयन्नाह— (वृ० प० ३६७)
२. रायगिहे जाव एवं वयासी—आजीविया णं भंते ! थेरे भगवंते एवं वयासी—
'आजीविकाः' गोशालकशिष्याः। (वृ० प० ३६८)
३. यच्च ते तान् प्रत्यवादिषुस्तद्गौतमः स्वयमेव पृच्छन्नाह- (वृ० प० ३६७)

४. समणोवासगस्स णं भंते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा।
'भंडं' ति वस्त्रादिकं वस्तु। (वृ० प० ३६८)
वा०—गृहवर्त्ति साधूपाश्रयवर्त्ति वा 'अवहरेज्ज' त्ति अपहरेत्। (वृ० प० ३६८)
५. से णं भंते ! तं भंडं अणुगवेसमाणे किं सभंडं अणुगवेसइ ? परायगं भंडं अणुगवेसइ ?

६. पृच्छतोऽयमभिप्रायः—स्वसम्बन्धित्वात्तत्स्वकीयम्। (वृ० प० ३६८)
७. सामायिकप्रतिपत्तौ च परिग्रहस्य प्रत्याख्यातत्वादस्वकीयम्। (वृ० प० ३६८)
८. अतः प्रश्नः, अत्रोत्तरं— (वृ० प० ३६८)

९. गोयमा ! सभंडं अणुगवेसइ, नो परायगं भंडं अणुगवेसइ। (श० ८।२३०)
१०. तस्स णं भंते ! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं,
तत्र शीलव्रतानि—अणुव्रतानि गुणा—गुणव्रतानि विरमणानि—रागादिविरतयः प्रत्याख्यानं—नमस्कारसहितादि पौषधोपवासः—पर्वदिनोपवसनम्। (वृ० प० ३६८)
११. १२. इह च शीलव्रतादीनां ग्रहणेऽपि सावद्ययोगविरत्या विरमणशब्दोपात्तया प्रयोजनं। (वृ० प० ३६८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. सावज्ज जोग पचखाण, सामायक प्रमुख विषे।
वलि धुर प्रश्न पिछाण, सामायक नों इज कियो।

१३. *हे भगवंत ! सामायक मांहै, भंड अभंडज होय ?
अपरिग्रह नैं निमित्तपणें करि ? जिन कहै हंता जोय ।।

१४. तो किण अर्थे प्रभु ! इम कहियै, स्व भंड ते गवेषंत।
पारका भंड प्रतै न गवेषै ? हिव जिन उत्तर तंत ।।

१५. हे गोतम ! जे सामायक मांहे, एहवा हुवै परिणाम।
नहिं मुझ रूपो नहिं मुझ सुवरण, नहिं मुझ कांसी ताम ।।

१६. नहिं मुझ वस्त्र नहिं म्हारो धन, विस्तीर्ण गणिमादि।
अथवा गवादिक धन नहिं म्हारो, कनक प्रसिद्ध संवादि ।।

१७. रत्न कर्केतनादिक नहिं म्हारा, मणी चंद्रकांतादि।
मोती नैं संख बेहुं ए प्रसिद्ध, सिल प्रवाल विद्रुम वादि ।।

१८. अथवा शिला ते स्फटिक शिला छै, विद्रुम मूंग प्रवाल।
रक्त-रत्न ते पद्मरागादिक प्रमुख न म्हारा न्हाल ।।

१९. संत विद्यमान सार द्रव्य ते, ए पिण म्हारा नांहि।
एहवी भावना भाय रह्यो छै, श्रावक सामायक मांहि ।।

२०. भंड अभंड सामायक मांहै, किम निज भंड गवेख।
एहवी आशंका टालण काजै, आगल जिन वच पेख ।।

२१. ममत्व भाव तिणै नहिं पचख्यो, सामायक में ताम।
हिरण्यादिक परिग्रह विषय छै, जे ममता परिणाम ।।

## सोरठा

२२. परिग्रह आदि विषेह, करण करावण नैं विषे।
मन वच काया जेह, तिण करिनैं पचख्यो तिणै ।।

२३. फुन ममता परिणाम, जे हिरण्यादिक नैं विषे।
ते नहिं पचख्यो ताम, अनुमति न अणत्यागवै ।।

२४. ममत्व भाव फुन ताय, अनुमतिरूपपणां थको।
वृत्ति विषे ए न्याय, इमज टबा में आखियो ।।

२५. कह्यो धर्मसी एम, ममता तेणे सर्वथा।
उतारी नहिं तेम, श्रावक सामायक मझै ।।

२६. 'आख्यो भिक्षु स्वाम, श्रावक षट अठ नव भंगे।
सामायक में ताम, न तजी ममता सर्वथा ।।

*लय : हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

१३. से भंडे अभंडे भवइ ?
हंता भवइ। (श० ८।२३१)
तस्या एव परिग्रहस्यापरिग्रहतानिमित्तत्वेन।
(वृ० प० ३६८)

१४. से केणं खाइ णं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सभंडं अणुगवेसइ नो परायगं भंडं अणुगवेसइ ?

१५. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ—नो मे हिरण्णे, नो मे सुवण्णे नो मे कंसे।

१६. नो मे दूसे, नो मे विपुलधणकणग,
धनं—गणिमादि गवादि वा कनकं—प्रतीतं।
(वृ० प० ३६८)

१७. रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-
रत्नानि—कर्केतनादीनि मणयः—चंद्रकांतादयः मौक्तिकानि शङ्खाश्च प्रतीताः शिलाप्रवालानि—विद्रुमाणि।

१८. रत्तरयणमादीए
अथवा शिला—मुक्ताशिलाद्याः प्रवालानि—विद्रुमाणि रक्तरत्नानि—पद्मरागादीनि।

१९. संतसारसावदेज्जे
'संत' त्ति विद्यमानं 'सार' त्ति प्रधानं 'सावएज्ज' त्ति स्वापतेयं द्रव्यम्। (वृ० प० ३६८)

२०. अथ यदि तद्भाण्डमभाण्डं भवति तदा कथं स्वकीयं तद् गवेषयति ? इत्याशंक्याह— (वृ० प० ३६८)

२१. ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाए भवइ।
ममत्वभावः पुनः—हिरण्यादिविषये।
(वृ० प० ३६८)

२२. परिग्रहादिविषये मनोवाक्कायानां करणकारणे तेन प्रत्याख्याते। (वृ० प० ३६८)

२३. ममतापरिणामः पुनः 'अपरिज्ञातः' ? अप्रत्याख्यातो भवति, अनुमतेरप्रत्याख्यातत्वात्। (वृ० प० ३६८)

२४. ममत्वभावस्य चानुमतिरूपत्वादिति।
(वृ० प० ३५८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. भांगा गुणपच्चास, श्रावक तणां कह्या अछै।
तें माटै सुविमास, नव भांगे उत्कृष्ट थी॥
२८. बाह्यपणें ते त्याग, नव भंगे पिण जाणज्यो।
अभ्यंतर अनुराग, ममत्वभाव त्याग्यो नथी॥
२९. सामायक रै मांहि, अधिकरण तसु आतमा।
शतक सातमै ताहि, प्रथम उदेशे भगवती॥
३०. अधिकरण कहिवाय, शस्त्र छै छ काय नों।
तीखो यत्न कराय, ए पिण सावज जोग छै॥
३१. पोसह जे नव भंग, मास-मास षट-षट करै।
ब्याज तास धन संग, ममत्व भाव इत्यादिके॥
३२. तिण अर्थे कहिवाय, निज भंड तणी गवेषणा।
पर-भंड कहियै नांय, बुद्धिवंत न्याय विचारज्यो॥
३३. *श्रावक प्रभु ! सामायक करिनै, बैठो छै मुनि-स्थान।
कोइ एक नर ते श्रावक नी, स्त्री प्रति सेवै जान॥
३४. हे भगवंत ! स्यूं ते श्रावक नीं स्त्री भार्य्या प्रति सेवै।
कै सेवै छै तास अभार्य्या ? हिव जिन उत्तर देवै॥
३५. श्री जिन भाखै ते श्रावक नीं भार्य्या प्रति सेवंत।
तास अभार्य्या प्रति नहिं सेवै, वलि गोयम पूछंत॥
३६. हे प्रभु ! तास शील-गुण-व्रत में, वेरमण ते सामाय।
पच्चक्खाण ते दशमा व्रत नों, वलि पोसह में ताय॥
३७. भार्य्या जेह अभार्य्या होवै ? जिन कहै हंता हुंत।
तो किण अर्थे प्रभु ! इम कहियै, तसु भार्य्या सेवंत॥
३८. जिन कहै तेहनैं सामायक में, छै एहवा परिणाम।
नहिं मुझ माता नहिं मुझ तातज, नहिं मुझ बंधव नाम॥
३९. ए भगनी पिण म्हारा नहिं छै, नहिं म्हारी ए नारी।
नहिं मुझ बेटा नहिं मुझ बेटी, पुत्र बहू नहिं म्हारी॥
४०. पिण प्रेमरागरूप बंधण ते, छेद्यो नहिं तिणवार।
तिण अर्थे तिण री स्त्री सेवै, तास अभार्य्या म धार॥

### सोरठा

४१. अनुमति अपचखाण, अनुमतिरूपज प्रेम बंध।
वृत्ति विषे ए वाण, ते माटे तेहनींज स्त्री॥
४२. 'दशाश्रुतखंध देख, पडिमा जे श्रावक तणी।
एकादशमी पेख, करै ज्ञात नीं गोचरी।

*लय : हो म्हारा राजा रा गुरुदेव बाबाजी

२९. से केणट्ठेणं·······गोयमा ! समणोवासगस्स णं सामाइयकडस्स समणोवासए अच्छमाणस्स आया अहिगरणी भवइ। (श० ७।५)

३२. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सभंडं अणुगवेसइ नो परायगं भंडं अणुगवेसइ। (श० ८।३३२)

३३. समणोवासगस्स णं भंते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ जायं चरेज्जा।

३४. से णं भंते ! किं जायं चरइ ? अजायं चरइ ?
'जायां' भार्यां 'चरेत्' सेवेत। (वृ० प० ३६८)

३५. गोयमा ! जायं चरइ, नो अजायं चरइ। (श० ८।२३३)

३६. तस्स णं भंते ! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण- पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं।

३७. सा जाया अजाया भवइ ?
हंता भवइ। (श० ८।२३४)
से केणं खाइ णं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जायं चरइ ? नो अजायं चरइ ?

३८. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ—नो मे माता, नो मे पिता, नो मे भाया,

३९. नो मे भगिणी, नो मे भज्जा, नो मे पुत्ता, नो मे धूया, नो मे सुण्हा।

४०. पेज्जबंधणे पुण से अव्वोच्छिन्ने भवइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जायं चरइ, नो अजायं चरइ। (श० ८।२३५)

४१. अनुमतेरप्रत्याख्यातत्वात् प्रेमानुबंधस्य चानुमतिरूपत्वादिति। (वृ० प० ३६८)

४२. अहावरा एक्कारसमा उवासगपडिमा······
(दशाश्रुतस्कन्ध ६।१८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. तिहां पिण पाठ विमास, ज्ञात पेज्ज बंधण तिको।
छेदाणो नहिं तास, ज्ञात गोचरी ते भणी॥
४४. पेज्ज बंधण रै मांय, कही ज्ञात नीं गोचरी।
निमल विचारो न्याय, जिन आज्ञा नहिं दै तसु॥
४५. आणंद अणसण मांय, आख्यो हूं ग्रहस्थ अछूं।
गृहस्थावास वसाय, तो पड़िमा ते किहां रही॥

४६. गृहस्थ नें दे दान, देतां नै अनुमोदियां।
दंड चोमासी जान, नशीत उदेशे पनरमें॥

४७. गृहि व्यावच मुनिराय, कृत कार्य अनुमोदवें।
दशवैकालिक मांय, अणाचार अठावीसमों॥
४८. तिण कारण इम जाण, श्रावक सामायक मझै।
ममत्वभाव पचखाण, सर्व थकी कीधा नथी'॥ (ज०स०)

४९. *देश पच्यासी नों ढाल कही ए, एक सौ नें इकताल।
भिक्खू भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशाल॥

४५. तए णं से……जइ णं भंते! गिहिणो गिहमज्झाव-
संतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ, एवं खलु मम पि
गिहिणो……। (उवासग० १।७६)
४६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं
वा (४) देति, देंतं वा सातिज्जति।
(निसीहज्झयणं १५।७६)
४७. गिहिणो वेयावडियं……। (दसवे० ३।६)

## ढाल १४२

### दूहा

१. श्रमणोपासक हे प्रभु! पूर्व काले पेख।
सुध श्रद्धा दिल में धरी, सम्यक्त्व पवर विशेख॥

२. स्थूल प्राणातिपात नां, धुर न किया पचखाण।
तेह पचखतो हे प्रभु! किसुं करै ते जाण?
३. वाचनांतरे वृत्ति में, अपच्चक्खाए ताम।
एह पाठ नें स्थानके, पच्चक्खाए छै आम॥
४. पच्चाइक्खमाणे इसै, पाठ तणै जे स्थान।
पच्चक्खावेमाणे इसो, दीसै पाठ सुजान॥
५. पच्चक्खाए नों अर्थ ए, स्वयमेव किया पचखाण।
पच्चक्खाएमाणे तिको, सुगुरु करायो जाण॥
६. इम पोतै पचखाण करि, अथवा सुगुरू पास।
वर पचखाणज धारतो, प्रभु! स्यूं करै विमास?

१. समणोवासगस्स णं भंते! पुव्वामेव
प्राक्कालमेव सम्यक्त्वप्रतिपत्तिसमनन्तरमेवेत्यर्थः।
(वृ० प० ३७०)
२. थूलए पाणाइवाए अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते!
पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेइ?
३. वाचनांतरे तु 'अपच्चक्खाए' इत्यस्य स्थाने 'पच्च-
क्खाए' त्ति दृश्यते। (वृ० प० ३७०)
४. 'पच्चाइक्खमाणे' इत्यस्य च स्थाने 'पच्चक्खावेमाणे'
त्ति दृश्यते। (वृ० प० ३७०)
५. तत्र च प्रत्याख्याता स्वयमेव प्रत्याख्यापयंश्च गुरुणा।
(वृ० प० ३७०)

*लय : हो म्हारा राजा रा गुरुदेव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. जिन कहै काल अतीत जे, कोधो प्राणातिपात ।
तास पडिकमै निवर्त्तै, निंदा करि पिछतात ॥

८. वर्त्तमान में संवरै, वर्त्तमान जे काल ।
हिंसा पाप करै नहीं, संवर अर्थ निहाल ॥

९. अनागत पचखै वलि, काल अनागत मांहि ।
हिंसा हूं करसूं नहीं, त्याग प्रतिज्ञा ताहि ॥

*जय जय जय जय ज्ञान जिनेंद्र नों रे ॥ (ध्रुपदं)

१०. गया काल नां प्राणातिपात नें रे, पडिकमतो स्यूं प्रयोग ।
स्यूं त्रिविध त्रिविधे करि पडिकमै रे, तीन करण तीन जोग ?

११. करण करावण नें अनुमोदवै, कह्या करण ए तीन ।
मन वच काया त्रिहुं जोगे करी, अंक तेतीस नों लीन[1] ॥

१२. त्रिविध-दुविध करनै जे पडिकमै, तीन करण बे जोग ।
अंक बत्तीस तणुं ए आखियो, प्रगटपणैं प्रयोग ॥

१३. त्रिविध-एकविध करिनैं पडिकमै, तीन करण इक जोग ।
अंक कह्यो छै ए इकतीस नों, ओलख दे उपयोग ॥

१४. दुविध-त्रिविध करिनैं जे पडिकमै, करण दोय जोग तीन ।
अंक तेवीस नै काल अतीत नैं, निंदै जेह दुचीन ॥

१५. दुविध-दुविध करिनैं जे पडिकमै, दोय करण जोग दोय ।
अंक बावीसे काल अतीत नों, अघ कृत निंदै जोय ॥

१६. दुविध-एकविध करिनैं पडिकमै, दोय करण जोग एक ।
एकवीस नें ए अंके करी, निंदै आण विवेक ॥

१७. इकविध-त्रिविध करीनैं पडिकमै, एक करण त्रिण जोग ।
तेरम अंके काल अतीत नीं, निंदै हिंस प्रयोग ॥

१८. इकविध-दुविध करीनैं पडिकमै, एक करण बे जोग ।
ए द्वादश नें अंक करी इहां, निंदै टाली सोग ॥

१९. इकविध-एकविधे करि पडिकमै, एक करण इक जोग ।
अंक इग्यार करी हिंसा प्रतै, निंदै एह प्रयोग ॥

२०. तेतीस बत्तीस नें इकतीस नों, तेबीस नें बावीस ।
इकवीस तेर बार इग्यार नां, विकल्प नव पूछीस ॥

७. गोयमा ! तीयं पडिक्कमति
अतीतकालकृतं प्राणातिपातं 'प्रतिक्रामति' ततो निंदा-
द्वारेण निवर्त्तत इत्यर्थः । (वृ० प० ३७०)

८. पडुप्पन्नं संवरेति
प्रत्युत्पन्नं—वर्त्तमानकालीनं प्राणातिपातं 'संवृणोति' न
करोतीत्यर्थः । (वृ० प० ३७०)

९. अणागयं पच्चक्खाति । (श० ८।२३६)
अनागतं—भविष्यत्कालविषयं 'प्रत्याख्याति' न
करिष्या-मीत्यादि प्रतिजानीते । (वृ० प० ३७०)

१०. तीयं पडिक्कममाणे किं तिविहं तिविहेणं पडिक्क-
मति ?

११. 'त्रिविधं' त्रिप्रकारं करणकारणानुमतिभेदात् प्राणाति-
पातयोगमिति गम्यते, त्रिविधेन मनोवचनकायलक्षणेन
करणेन प्रतिक्रामति । (वृ० प० ३७०)

१२. तिविहं दुविहेणं पडिक्कमति ?

१३. तिविहं एगविहेणं पडिक्कमति ?

१४. दुविहं तिविहेणं पडिक्कमति ?

१५. दुविहं दुविहेणं पडिक्कमति ?

१६. दुविहं एगविहेणं पडिक्कमति ?

१७. एगविहं तिविहेणं पडिक्कमति ?

१८. एगविहं दुविहेणं पडिक्कमति ?

१९. एगविहं एगविहेणं पडिक्कमति ?

---

*लय : साधुजी नगरी में आया सदा भला रे

१. टीकाकार ने मन, वचन और काय को करण कहा है तथा कृत, कारित और अनुमत को योग कहा है। जयाचार्य ने जोड़ में इसका व्यत्यय करते हुए मन, वचन और काय को योग तथा कृत, कारित और अनुमत को करण कहा है। यह सापेक्ष चिन्तन है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. जिन कहै त्रिविध त्रिविध करी पडिकमैं,
त्रिविध दुविध पडिकम्मंत ।
इम यावत इकविध इकविध करी, प्रतिक्रमैं गुणवंत ।।
२२. त्रिविध त्रिविध करि पडिकमतो छतो, न करै नहीं कराय ।
करता प्रति पिण अनुमोदन नहीं, मन वच काया ताय ।।

### सोरठा

२३. अतीत वध कृतवंत, तेहनैं निंदववै करी ।
न करै ते सम हुंत, तिण सुं न करेइ कह्यु ।।
२४. *न करै प्राणातिपात मनै करी, हा मुझ हणियो एण ।
तिण दिन म्हैं इणनैं हणियो नहीं, इसा ध्यान थी तेण ।।
२५. न करावै मन करि हिंसा प्रतै, हा ! तिण हणियो मोय ।
अन्य पास म्हैं न हणावियो, इम चिंतन थी सोय ।।

२६. करता प्रति जे अनुमोदै नहीं, उपलक्षण थी आम ।
करावता प्रति अनुमोदै नहीं, अनुमोदता प्रति ताम ।।
२७. वध पर-कृत अथवा आतम कियो, अनुमोदै नहिं जेह ।
मन कर वध चिंतववै करि तसु, अनुमोदन थी तेह ।।
२८. काल अतीत तणी हिंसा प्रतै, न करै मन करि एम ।
न करावै अनुमोदै न मन करो, त्रिहुं निवर्त्तै तेम ।।
२९. इम न करै हिंसा वचने करी, हा मुझ हणियो एण ।
तिण दिन मैं इणनैं हणियो नहीं, इम बोल्यां थी तेण ।।
३०. करावै वच करि हिंसा प्रतै, हा तिण हणियो मोय ।
अन्य पास तसु म्हैं न हणावियो, इम बोल्यां थी सोय ।।
३१. वध प्रति अनुमोदै नहिं वच थकी, अतीत हिंसा प्रतेह ।
अनुमोदै ते सरावै वच करी, रूड़ो हणियो एह ।।
३२. काय करी न करै नहिं कारवै, अनुमोदै नहिं काय ।
अंग विशेष तथाविध करण थी, अतीत काल कृत ताय ।।
३३. काल अतीत विषे जे वध प्रतै, मन प्रमुख सूं ताय ।
न करै न करावै नहिं अनुमोदै, निंदवै करि निवर्त्ताय ।।

३४. तेह अनिंदवै करिनैं वध तणो, अनुमोदन अनिवृत्ति ।
काल अतीत नों वध निंदवै करी, निवृत्ति ह्वै सुप्रवृत्ति ।।
३५. गये काल हिंसा कीधी तिका, अनिंदवै ते सोय ।
वर्त्तमान काले हिंसा करै, तेह सरीखी होय ।।

---

*लय : साधूजी नगरी आया सदा भला रे

२१. गोयमा ! तिविहं वा तिविहेणं पडिक्कमति, तिविहं वा दुविहेणं पडिक्कमति, एवं चेव जाव एगविहं वा एगविहेणं पडिक्कमति ।
२२. तिविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा ।

२३. 'न करोति' न स्वयं विदधाति अतीतकाले प्राणातिपातं । (वृ० प० ३७०)
२४. मनसा हा हतोऽहं येन मया तदाऽसौ न हत इत्येवमनुध्यानात् । (वृ० प० ३७०,३७१)
२५. 'न' नैव कारयति मनसैव यथा हा न युक्तं कृतं यदसौ परेण न घातित इति चिंतनात् । (वृ० प० ३७१)
२६,२७. 'कुर्वन्तं' विदधानमुपलक्षणत्वात् कारयंतं वा समनुजानंतं वा परमात्मानं प्राणातिपातं 'नानुजानाति' नानुमोदयति, मनसैव वधानुस्मरणेन तदनुमोदनात् । (वृ० प० ३७१)

२९-३१. एवं न करोति न कारयति कुर्वन्तं नानुजानाति वचसा, तथाविधवचनप्रवर्त्तनात् (वृ० प० ३७१)

३२. एवं न करोति न कारयति कुर्वन्तं नानुजानाति कायेन तथाविधाङ्गविकारकरणादिति । (वृ० प० ३७१)
३३. अथवैवमेषाऽतीतकाले मनःप्रभृतीनां कृतं कारितमनुज्ञातं वा वधं क्रमेण न करोति, न कारयति, न चानुजानाति तन्निन्दनेन तदनुमोदननिषेधतस्ततो निवर्त्तत इत्यर्थः (वृ० प० ३७१)
३४. तन्निन्दनस्याभावे हि तदनुमोदनानिवृत्तेः (वृ० प० ३७१)
३५-३७. कृतादिरसौ क्रियमाणादिरिव स्यादिति । (वृ० प० ३७१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. काल अतीत कराइ जे हिंसा, अनिदवै करि जाण।
वर्त्तमान करावै ते हिंसा, तेह सरीखी माण।।

३७. गये काल अनुमोदी जे हिंसा, अनिदवै करी जेह।
वर्त्तमान अनुमोदै ते जिसी, न्याय विचारी लेह।।

वा०—इहां यथासंख्य ते अनुक्रम न्याय नथी। न करै मन करिकै, न करावै वचन करिकै, नहीं अनुमोदै काया करिकै, इण प्रकार करिकै न कह्यु। सर्व न्याय वक्ता नैं वंछा आधीनपणां थकी। वली आगल कहिस्यै ते विकल्प नां अयोग्यपणां थकी।

वा०—न चेह यथासंख्यन्यायो न करोति मनसा न कारयति वचसा नानुजानाति कायेनेत्येवंलक्षणोऽनुसरणीयो, वक्तृविवक्षाऽधीनत्वात् सर्वन्यायानां वक्ष्यमाणविकल्पायोगाच्चेति। (वृ० प० ३७१)

३८. अंक तेतीस तणो इहविधे, आख्यो भांगो एक।
अंक बतीस तणां कहियै हिवै, भांगा तीन विशेख।।

३९. त्रिविध-दुविध करि पडिकमतो थको, न करै करावै नांहि।
करतां प्रति जे अनुमोदन नहीं, मन कर वच कर ताहि।।

३९. तिविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा।

४०. अथवा न करै नैं नहीं कारवै, करतां प्रति वलि जाण।
अनुमोदै नहिं मन काया करी, द्वितीय भंग पहिछाण।।

४०. अहवा न करेइ न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा,

४१. अथवा न करै नैं नहीं कारवै, करतां प्रति अवलोय।
अनुमोदै नहीं वच काया करी, तृतीय भंग ए होय।।

४१. अहवा न करेइ न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा

४२. अंक बतीस तणां ए आखिया, भांगा तीनूं एम।
इकत्रिस अंक तणां भंग त्रिण हुवै, सांभलज्यो धर प्रेम।।

४३. त्रिविध-एकविध पडिकमते छते, न करै नहीं कराय।
करतां प्रति वलि अनुमोदै नहीं, मन कर धुर भंग थाय।।

४३. तिविहं एगविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा।

४४. अथवा न करै नैं नहि कारवै, करतां प्रति वलि तेह।
अनुमोदै नहि वच जोगे करी, द्वितीय भंग छै एह।।

४४. अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ वयसा

४५. अथवा न करै नैं नहि कारवै, करतां प्रति वलि तेम।
अनुमोदै नहि कायाइं करी, तृतीय भंग छै तेम।।

४५. अहवा न करेइ, न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ कायसा

४६. भांगा तीन कह्या इकतीस नां, हिवै तेवीस नों अंक।
तास भंग हिव तीन कहूं अछूं, सांभलज्यो तज संक।।

४७. दुविध-त्रिविध करि पडिकमते छते, न करै नांहि कराय।
मन वच काया ए त्रिहुं जोग थी, प्रवर भंग धुर पाय।।

४७. दुविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ, न कारवेइ, मणसा, वयसा, कायसा।

४८. अथवा न करै नैं करतां प्रतै, अनुमोदै नहिं ताय।
मन वच कायाइं भंग दूसरै, काल अतीत पेखाय।।

४८. अहवा न करेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा, वयसा, कायसा

४९. अथवा न करावै करतां प्रतै, अनुमोदै नहि ताम।
मन वच कायाइं भंग तीसरै, निंदवै करनैं आम।।

४९. अहवा न कारवेइ, करेंतं नाणुजाणइ मणसा, वयसा, कायसा

५०. अंक तेवीस तणां ए आखिया, तंत भंग ए तीन।
नव भंग अंक बावीस तणां हिवै, सुणज्यो धर आकोन[1]।।

५१. दुविध-दुविध करि पडिकमते छते, न करै नहीं कराय।
मणसा वयसा बे जोगे करी, ए धुर भांगो थाय।।

५१. दुविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा वयसा

---

१. यकीन, विश्वास



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. अथवा न करै नें नहीं कारवै, मणसा कायसा जोय।
अथवा न करै करावै नहीं, वयसा कायसा सोय।।

५३. अथवा न करै अनुमोदै नहीं, मणसा वयसा जेह।
अथवा न करै अनुमोदै नहीं, मणसा कायसा तेह।।

५४. अथवा न करै अनुमोदै नहीं, वयसा कायसा जाण।
अथवा न करावै अनुमोदै नहीं, मणसा वयसा आण।।

५५. अथवा न करावै अनुमोदै नहीं, मणसा कायसा देख।
अथवा न करावै अनुमोदै नहीं, वयसा कायसा पेख।।

५६. अंक बावीस नां नव भांगा कह्या, हिव इकवीस नों अंक।
नव भांगे हिंसा जे अतीत नीं, निंदै छांडै बंक।।

५७. दुविध एकविध पडिकमते छते, न करै नांहि कराय।
मणसा मनजोगे करिनें तिको, पढम भंग ए थाय।।

५८. अथवा न करै नें नहीं कारवै, वयसा दूजो भंग।
अथवा न करै नें नहीं कारवै, कायसा तृतीय प्रसंग।।

५९. अथवा न करै नें करतां प्रतै अनुमोदै नहि मनेह।
अथवा न करै नें करतां प्रतै अनुमोदै न वचेह।।

६०. अथवा न करै नें करतां प्रतै अनुमोदै न कायेण।
अथवा न करावै करतां प्रतै अनुमोदै न मणेण।।

६१. अथवा न करावै करतां प्रतै अनुमोदै न वचेह।
अथवा न करावै नें करतां प्रतै अनुमोदै न कायेह।।

६२. अंक कह्यो छै ए इकवीस नों, हिवै तेर नुं अंक।
त्रिण भांगे करी हिंसा अतीत नीं, निंदै छांडी वंक।।

६३. इकविध-त्रिविधे पडिकमते छते, न करै पोतै जेह।
मणसा वयसा नें वलि कायसा, प्रथम भंग छै एह।।

६४. वलि न करावै मन वच काय थी, दूजो भांगो देख।
वलि करतां प्रति अनुमोदै नहीं, मन वच काया पेख।।

६५. अंक कह्यो छै ए तेरै तणो, हिवै बारै नो जाण।
नव भंगे कर हिंसा अतीत नीं, निंदै चतुर सुजाण।।

६६. इकविध दुविधे पड़िकमते छते, न करै मणसा वाय।
अथवा न करै मणसा कायसा, न करै वयसा काय।।

६७. अथवा न करावै मन वच करी, चोथो भांगो न्हाल।
अथवा न करावै मन काय थी, पंचम भंग संभाल।।

६८. अथवा न करावै वच कायसा, छठो भांगो एह।
अथवा करतां प्रति अनुमोदै नहीं, मनसा वयसा तेह।।

६९. अथवा करतां प्रति अनुमोदै नहीं, मणसा कायसा जाण।
अथवा करतां प्रति अनुमोदै नहीं, वयसा कायसा पिछाण।।

७०. अंक बारै नो एहिज आखियो, हिवै इग्यार नों हुंत।
नव भंगे करि हिंसा अतीत नीं, निंदवै करि निवर्त्तंत।।

५२. अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा कायसा, अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा कायसा

५३. अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा, अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा

५४. अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा

५५. अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा, अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा

५७. दुविहं एक्कविहेणं पडिक्कममाण न करेइ न कारवेइ मणसा

५८. अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा अहवा न करेइ न कारवेइ कायसा

५९. अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा अहवा न करेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा

६०. अहवा न करेइ करेंतं नाणजाणइ कायसा अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ मणसा

६१. अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ वयसा, अहवा न कारवेइ करेंतं नाणुजाणइ कायसा

६३. एगविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा वयसा कायसा

६४. अहवा न कारवेइ मणसा वयसा कायसा, अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा

६६. एक्कविहं दुविहेणं पडिक्कमाणे न करेइ मणसा वयसा, अहवा न करेइ मणसा कायसा अहवा न करेइ वयसा कायसा

६७. अहवा न कारवेइ मणसा वयसा, अहवा न कारवेइ मणसा कायसा

६८. अहवा न कारवेइ वयसा कायसा अहवा करेंतं नाण-जाणइ मणसा वयसा

६९. अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा कायसा अहवा करेंतं नाणुजाणइ वयसा कायसा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. पडिकमतो इकविध-इकविध करी, न करै मणसा ताय ।
अथवा न करै वयसा वचन थी, अथवा न करै काय ।।
७२. अथवा न करावै जे मन करी, वलि न करावै वाय ।
अथवा न करावै काया करी, छठा भांगा मांय ।।
७३. अथवा अनुमोदै नहीं मन करी, अनुमोदै नहि वाय ।
अथवा अनुमोदै नहीं कायसा, करतां प्रति ए ताय ।।
७४. पडिकमवो ते निवर्त्तवो अछै, गये काल कृत पाप ।
ते निंदन द्वारे करि पडिकमै, करण जोग चित स्थाप ।।
७५. गये काल हा अरि म्हैं नहि हण्यो, इम चिंता न करंत ।
तिण कारण न करेइ पाठ छै, मन वच काये हुंत ।।
७६. गये काल हा अरि न हणावियो, इम चिंता न करंत ।
तिण सूं न करावेइ पाठ छै, मन वच काये हुंत ।।
७७. गये काल किणहि अरि मारियो, ते नहिं अनुमोदंत ।
अनुमोदै नहि ते माटे कह्यो, मन वच काया हुंत ।।
७८. अंक तेतीस नों भांगो एक छै, बत्तीस नां त्रिण भंग ।
इकतीस तेवीस नैं तेरै तणां, त्रिण-त्रिण भंग प्रसंग ।।
७९. बावीस इकवीस बार इग्यार नां, नव-नव भंगा तास ।
काल अतीतज आश्री आखिया, भांगा गुणपच्चास ।।
८०. वर्त्तमान काले हिंसा प्रतै, संवरतो स्यूं हुंत ?
त्रिविध-त्रिविध करिनैं जे संवरै, इत्यादि प्रश्न पूछंत ।।
८१. इम जिम पडिकमवा साथे कह्या, भांगा गुणपच्चास ।
भणवा इमहिज संवरते छते, चालीस नव भंग तास ।।

८२. अनागत काल आश्री हिंसा प्रतै, पच्खाण करतो जेह ।
जीव घात नहि करसूं एहवी, प्रतिज्ञा चित धारेह ।।
८३. स्यूं पचखै त्रिविधे त्रिविधे करी, एवं तिमहिज तास ।
भणवा इम भांगा पूर्व विधे, वारू गुणपच्चास ।।
८४. काल अनागत आश्री एम छै, न करै मन करि जेह ।
ते प्रति हणसूं काल आगामिके, इम चिंतन थी तेह ।।
८५. न करावै मन करिनैं इह विधे, काल आगमिया मांहि ।
एह तणी हूं घात करावसूं, इम चिंतन थी ताहि ।।
८६. अनुमोदै नहि मन करि इह विधे, काल अनागत मांहि ।
ए वध करसी इम निसुणी करी, हर्ष करण थी ताहि ।।
८७. जिम मन चिंतवियो तिम वचन थी, बोल्यां वयसा थाय ।
अंग विकार करण थी कायसा, लीज्यो न्याय मिलाय ।।
८८. ए गुणपन्न भंग काल अतीत नां, वर्त्तमान पिण न्हाल ।
काल अनागत नां पिण एतला, एक सौ नैं सैंताल ।।

७१. एगविहं एगविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा अहवा न करेइ वयसा, अहवा न करेइ कायसा
७२. अहवा न कारवेइ मणसा, अहवा न कारवेइ वयसा अहवा न कारवेइ कायसा
७३. अहवा करेंतं नाणुजाणइ मणसा अहवा करेंतं नाणुजाणइ वयसा अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा
(श० ८/२३७)

७८, ७९. एवं त्रिविधं त्रिविधेनेत्यत्र विकल्पे एक एव विकल्पः तदन्येषु पुनर्द्वितीयतृतीयचतुर्थेषु त्रयः त्रयः पञ्चमषष्ठयो र्नव नव सप्तमे त्रयः अष्टमनवमयो र्नव नवेति, एवं सर्वेप्येकोनपञ्चाशत् (वृ० प० ३७१)
८०. पडुप्पन्नं संवरेमाणे किं तिविहं तिविहेणं संवरेइ ?

८१. एव जहा पडिक्कममाणेणं एगूणपन्नं भंगा भणिया एवं संवरमाणेण वि एगूणपन्नं भंगा भाणियव्वा ।
(श० ८/२३८)
८२,८३. अणागयं पच्चक्खमाणे किं तिविहं तिविहेणं पच्चक्खाइ ? एवं एते चेव भंगा एगूणपन्नं भाणियव्वा जाव अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा ।
(श० ८/२३९)

८४. भविष्यत्कालापेक्षया त्वेवमसौ—न करोति मनसा तं हनिष्यामीत्यस्य (चिन्तनात्) (वृ० प० ३७१)
८५. न कारयति मनसैव तमहं घातयिष्यामीत्यस्य चिन्तनात् (वृ० प० ३७१)
८६. नानुजानाति मनसा भाविनं वधमनुश्रुत्य हर्षकरणात् (वृ० प० ३७१)
८७. एवं वाचा कायेन च तथास्तथाविधयोः करणादिति (वृ० प० ३७१)
८८. सर्वेषां चैषां मीलने सप्तचत्वारिंशदधिकं भङ्गकशतं भवति (वृ० प० ३७१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८९. समणोपासक पहिलां इज प्रभु ! स्थूलज मृषावाद।
नहि पचख्यो ते पाछै पचखतो, प्रश्न पूछै इत्याद।।

८९. समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव थूलए मुसावाए अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते ! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेइ ?

९०. भंग एकसौ सैंताली कह्या, जीव हिंसा नां जेह।
तिमहिज मृषावाद तणां इता, काल त्रिहुं करि तेह।।

९०. एवं जहा पाणाइवायस्स सीयालं भंगसयं भणियं, तहा मुसावायस्स वि भाणियव्वं।

९१. स्थूल अदत्तादान तणां इता, स्थूल मिथुन इम न्हाल।
स्थूल परिग्रह नां पिण एतला, एकसौ नैं सैंताल।।

९१. एवं अदिन्नादाणस्स वि एवं थूलगस्स वि मेहुणस्स, थूलगस्स वि परिग्गहस्स जाव अहवा करेंतं नाणुजाणइ कायसा

९२. भांगा पांचूंइ अणुव्रत नां, काल त्रिहुं नां जाण।
सर्व सातसौ नैं पैंतीस छै, एहवा श्रावक माण।।

९२. एते खलु एरिसगा समणोवासगा भवंति।

## दूहा

९३. मन कर करण करावणो, अनुमोदन किम होय ?
उत्तर जिम वच काय नुं, तिमहिज मन नो जोय।।
९४. जिम वच तनु जोगे करी, करण करावण होय।
अनुमोदन पिण ह्वै अछै, तिम मन करि पिण जोय।।

९३,९४. अथ कथं मनसा करणादि ? उच्यते, यथा वाक्काययोरिति
आह च—आह कहं पुण मणसा करणं कारावणं अणुमई य ?
जह वइतणुजोगेहिं करणाई तह भवे मणसा।।
(वृ० प० ३७१)

९५. वच काया नां जोग त्रिहुं, तेह तणोज कथीन।
मन आधीनपणां थकी, मन नां करणज तीन।।
९६. अथवा सावज-जोग नी, चिंतवणा चित मांय।
वीतराग देवै तसु, मन नां करण कहाय।।

९५,९६. तयहीणत्ता वइतणुकरणाईणं च अहव मणकरणं।
सावज्जजोगमणणं, पन्नत्तं वीयरागेहिं।।
(वृ० प० ३७१)

९७. ए सावज करिवुं मुझै, इम चिंतवन करेह।
सावज एह कराविवुं, द्वितीय करण चिंतेह।।
९८. फुन सावज कीधे छते, रूडुं कीधुं एण।
इम मन करनैं चिंतवै, मन करि अनुमत तेण।।

९७,९८. कारावण पुण मणसा चिंतेइ करेउ एस सावज्जं।
चिंतेई य कए उण सुट्ठु कयं अणुमई होइ।।
(वृ० प० ३७१)

९९. ए सगलो अधिकार छै, वृत्ति विषे विस्तार।
ते अनुसारे आखियो, लीज्यो न्याय विचार।।

वा०—इहां त्रिविध-त्रिविधे करी ए विकल्प आश्रयी आक्षेप-परिहार। आक्षेप ते प्रश्न, परिहार ते उत्तर। वृद्ध कह्युं ते इम—न करै, न करावै, करतां प्रतै अनुमोदै नहीं मन, वचन, काया करी नै, इति एवंरूप त्रिक देशविरति गृहस्थ रै किम हुवै ? स्व विषय थी बाहर अनुमति तो पिण निषेध हुवै, इण कारण थकी त्रिविध-त्रिविधे करी ए विकल्प हुवै।

केयक इम कहै—गृहस्थ नै त्रिविध-त्रिविधे करी संवरवूं नहीं, ते सम्यक् नहीं। जे कारण थकी इणहिज सूत्र नै विषे ते संवरण कह्युं।

तो पूर्वोक्त निर्युक्ति नीं गाथा में अनुमोदन नां प्रत्याख्यान नो निषेध किम कीधो ? ऐहनो उत्तर—ते स्वविषय अनै सामान्य प्रत्याख्यान नै विषे निषेध छै। अन्यत्र—स्वविषय थी बाह्य विशेष पचखाण में एहनो निषेध नथी। जेम स्वयंभूरमण समुद्र नां मत्स्यादिक नैं हणवानां त्रिविध-त्रिविधे त्याग कीधे स्यूं दोष ?

वा०—इह च त्रिविधं त्रिविधेनेति विकल्पमाश्रित्याक्षेपपरिहारौ वृद्धोक्तावेवम्—
न करेइच्चाइतियं गिहिणो कह होइ देसविरयस्स ?
भन्नइ विसयस्स बहिं पडिसेहो अणुमईए वि।।
(वृ० प० ३७१)
केई भणंति—गिहिणो तिविहं तिविहेणं नत्थि संवरणं।
तं न जओ निद्दिट्ठं इहेव सुत्ते विसेसेउं।।
तो कह निज्जुत्तीए ऽणुमइनिसेहोत्ति ?
सो सविसयंमि।
सामन्ने वऽन्नत्थ उ तिविहं तिविहेण को दोसो।।

केइक कहै--दीक्षाभिमुख कोई गृहस्थ पुत्रादिक सन्तति मात्र निमित्त थी एकादसवीं प्रतिमा प्रतिपन्न छै, ते गृहस्थ नै त्रिविध-त्रिविध त्याग थइ सकै।

जिम त्रिविध-त्रिविध इहां प्रश्न उत्तर कह्यो, तिम और ठिकाणे पिण करवो। ए वृद्ध उक्त वार्त्ता वृत्ति में कही, तिम इहां लिखी छै। बुद्धिवंत न्याय सूं विचारी लेईज्यो तथा वली त्रिविध-त्रिविध पचखाण नों हीज न्याय कहै छै—

१००. त्रिविध-त्रिविध श्रावक तणें, त्याग वाह्य थी जोय।
देशव्रती रै सर्व थी, भितरपणें न होय॥
१०१. इग्यारमी पडिमा मझे, समण सरीखो जेह।
पेज्जबंधण जे ज्ञाति नुं, छूटो नहीं कहेह॥

वा०—'कोइ कहै—इग्यारमी पडिमा में 'समणभूए' कह्यो छै ते माटै ए त्रिविधे-त्रिविधे त्याग छै, इणरै अविरत किसी रही ? सावज्ज-जोग किसो रह्यो ? तेहनो उत्तर--प्रथम तो ए देशविरती छै ते माटै देश अविरती बाकी रही। वलि इग्यारमी पडिमा वहै जिता काल तांईज त्याग छै, आगमिया काल में पंच आश्रव सेवा रो आगार तथा आसा यूं की यूं छै।

कोइ कहै—जावजीव कुशील का त्याग करो। जद पडिमाधारी कहै—जावजीव त्याग करवा रा भाव नहीं। इण लेखै आगमिया काल नीं आसा मिटी नहीं। इग्यारमी पडिमा में कोइ पूछै—थारै पांच आश्रव का त्याग जावजीव छै के नथी ? जद कहै—इग्यारै मास तांइ छै, तठा पछै पंच आश्रव द्वार नों आगार छै। इण लेखै आगमिया काल नीं अविरती यूं की यूं छै, मिटी नथी।

हिवै वर्त्तमान काल नो लेखो कहै छै—दशाश्रुतखंध सूत्रे कह्यो—न्यातीला नो पेज्जबंधण तूटो नथी, ते भणी न्यातीलां नी गोचरी करै। इग्यारमी पडिमा में 'नायपेज्जबंधणे अव्वोच्छिन्ने भवइ एवं से कप्पइ नायविहं एत्तए'। इहां कह्यो—न्यातीलां रो पेज्जबंधण विच्छेद हुवो नथी, इम तेहनैं कल्पै न्यात विधे गोचरी करै आहार नैं जाये। इहां न्यातीलां रा पेज्जबंधण कै खाते तेहनी गोचरी कही ते माटै पेज्जबंधण पिण जिन आज्ञा बाहिर सावज्ज छै अनैं गोचरी पिण आज्ञा बाहिर सावज्ज छै।

जद कोइ कहै—ए सावज्ज छै तो कल्पै न्यातीलां रै घरे जायवूं, इम क्यूं कह्यं ? तेहनों उत्तर सूत्रे करी कहै छै। उववाइ सूत्रे कह्यो—

अम्मड परिव्राजक नैं कल्पै मगध देश संबंधी अर्द्ध आढो मान विशेष पाणी नों ग्रहिवुं। ते पिण वहितो नहीं अवहितो, इम थिमिए ते पाणी नीचै कादो नथी, पसण्णे ते अतिहि निर्मल परिपूए ते छाण्यो पिण अछाण्यो नथी, ते पिण ए सावज्ज—पापसहित इम कहीनैं लेवो, पिण निरवद्य कही न लेवो। ते पिण जीव कहीनैं लेवो पिण अजीव कही न लेवो। ते पिण दीधो लेवो कल्पै पिण अणदीधो न लेवो। ते पिण हाथ, पग, चरू, हांडली, चरम, चाटूड़ा--प्रमुख उपगरण नैं पखालवा-धोवा भणी अनैं पीवा निमित्त पिण कल्पै, स्नान निमित्त नहीं कल्पै।

इहा अम्मड नैं कल्पै काचो पाणी लेवो इम कह्यं, तेहनो जे कल्प—आचार हूंतो ते बतायो पिण ते सावज्ज कल्प में केवली की आज्ञा नथी। तिम पडिमाधारी नैं पिण कल्प—आचार जे हूंतो ते कह्यं, पिण ते सावज्ज कल्प जिन-आज्ञा बारै छै। तिण सूं न्यातीला नीं गोचरी सावज्ज छै।

इह च 'सविसयंमि' त्ति स्वविषये यथानुमतिरस्ति
'सामन्ने व' त्ति सामान्ये वाऽविशेषे प्रत्याख्याने सति 'अण्णत्थ उ' त्ति विशेषे स्वयंभूरमणजलधिमत्स्यादौ।
पुत्ताइसंतइनिमित्तमेत्तमेगारसिं पवण्णस्स।
जंपंति केइ गिहिणो दिक्खाभिमुहस्स तिविहंपि॥
यथा च त्रिविधं त्रिविधेनेत्यत्राक्षेपपरिहारौ कृतौ तथाऽन्यत्रापि कार्यौ।

(वृ० प० ३७१)

अम्मडस्स कप्पइ मागहए अद्धाढए जलस्स पडिग्गाहित्तए से वि य वहमाणे णो चेव णं अवहमाणए, से वि य थिमिओदए णो चेव णं कद्दमोदए, से वि य बहुप्पसण्णे णो चेव णं अबहुप्पसण्णे, से वि य परिपूए णो चेव णं अपरिपूए, से वि य सावज्जे त्ति काउं णो चेव णं अणवज्जे, से वि य जीवा त्ति काउं णो चेव णं अजीवा, से वि य दिण्णे णो चेव णं अदिण्णे, से वि य हत्थ-पाय-चरू-चमस-पक्खालणट्ठयाए पिबित्तए वा णो चेव णं सिणाइत्तए

(ओवाइयं सू० १३७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वली कोडांगमें धन तेहनां परिग्रहा में ईज छै। नफा तोटा रो मालक तेहीज छै। हजारां रूपइया नो व्याज आवै तेहनों अभितरपणां में अनुमोदना छै। जिम न्यातीला रो पेज्जबंधण तिम अभितरपणैं परिग्रह नीं मूर्च्छा जाणवी। किणही रै लाख रूपइया नो धन हूंतो ते मित्री नैं भलाय इग्यारवीं पडिमा वहै तो ते धन किण रा परिग्रहा में ? मित्री रै तो हजार रूपइया उपरांत राखवा रा त्याग छै अनैं ते लाख रुपइया नी सार-संभाल मित्री करै, पिण मन में जाणै ए धन म्हारो नथी, ते भणी लाख रुपइया पाडिमाधारी रा परिग्रहा में छै।

वलि दशाश्रुतखंध सूत्रे कह्यो—इग्यारमी पडिमा में सर्व धर्म नीं रुचि जाव उदि्दष्ट भक्त नां त्याग। इहां पहिली पडिमा में तो सर्व धर्म नीं रुचि अनैं दशमी पडिमा में उदि्दष्ट-भक्त ते तिण रै अर्थे कीधो ते भोगविवा रा त्याग अनैं जाव शब्द में व्रत सामायक, देशावगासी, पोसह आदि विचली पडिमा में त्याग हूंता ते सर्व इग्यारमी पडिमा में कह्या, ते माटै इग्यारमी पडिमा में सामायिक-पोसह पिण करै ते सामायक-पोसहा में सावज्ज जोग रा त्याग छै। ते सामायक-पोसहा में खाणो-पीणो ए सावज्ज, तेहनां त्याग करै ते माटै ए खाणो-पीणो सावज्ज छै। अनैं ते अविरत में छै।

(दशाश्रुतस्कन्ध ६।१८)

वलि इग्यारमी पडिमा में तपसा री केवली आज्ञा देवै अनैं पारणा री केवली आज्ञा न देवै। गोतम नैं पारणैं गोचरी री आज्ञा दीधी। तिम एहनैं गोचरी नीं आज्ञा न देवैं। ते माटै ए गोचरी सावज्ज छै। पडिमा विचे तो संथारो बड़ो, ते संथारे में आणंदे गोतम नैं कह्यो—हूं गृहस्थ गृहस्थावास वसतां नैं एतलो अवधि ऊपनों, ते माटै इग्यारमी पडिमाधारी नैं पिण गृहस्थ कहियै। अनैं नशीत उदेशै पन्द्रह में गृहस्थ नैं असणादिक देवै, देतां प्रतैं अनुमोदै तो साधु नैं चोमासी प्रायश्चित कह्यो। त्रीजे करण अनुमोद्यां प्रायश्चित, तो पहिले करण देणवाला नैं धर्म किहां थकी ? अनैं जो देण वाला नैं धर्म हुवै तो धर्म नी अनुमोदनां कियां प्रायश्चित किम आवै ?

तए णं से आणंदे.......मम वि गिहिणो गिहमज्झाव-संतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे।

(उवासगदसाओ १।७६)

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं वा (४) देति देंतं वा सातिज्जति।

(निसीहज्झयणं १५।७६)

दशवैकालिक अध्ययन तीन में गृहस्थ नी वेयावच्च करै, करावै, करता नैं अनुमोदै तो साधु नैं अठाईसमों अणाचार कह्यो। अनैं गृहस्थ नी साता पूछै तो सोलमों अणाचार कह्यो। तथा भगवती शतक सात उदेशै एक मे सामायक में श्रावक री आत्मा अधिकरण कही। अधिकरण छै ते छ काय रो शस्त्र छै। तिमहीज इग्यारमी पडिमा में आत्मा अधिकरण जाणवी। ते माटै अभितरपणां में पेज्जबंधण—ममत्वभाव छूटो नथी।

गिहिणो वेयावडियं............

(दसवे० ३।६)

............संपुच्छणा............

(दसवे० ३।६)

से केणट्ठेणं............गोयमा ! समणोवासयस्स णं सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स आया अहिगरणी (श० ७।५)

अनैं द्वारिका नगरी प्रत्यक्ष देवलोकभूत कही। तथा चक्रवर्ती नां घोड़ा नैं ऋषि नीं परै क्षमावंत कह्या, तिम इग्यारमी पडिमा में समणभूए कह्यो, ए ओपमा-वाची शब्द छै। उत्तराध्ययन अध्येन पांच में एकेक भिक्षु थकी गृहस्थ संजम करिकै प्रधान अनै सर्व गृहस्थ थकी साधु संजम करी प्रधान। गृहस्थ में श्रावक पिण सगला आया, ते पडिमाधारी साधु सरीखो किम हुवै। पिण ओपम दीधां दोष नथी'।

(ज० स०)

एवं खलु जंबू........वारवती नामं नयरी होत्था.... पच्चक्खं देवलोगभूया।

(नाया० १।५।२)

इसिमिव खंतिखमाए। (जम्बू० ३।१०६)

संति एगेहिं भिक्खूहिं गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहिं य सव्वेहिं साहवो संजमुत्तरा॥

(उत्तरा० ५।२०)

१०२. 'अम्मड' नां शिष्य सातसय, पाप अठारै ताहि।
सर्व थकी त्याग न किया, कह्यो उववाई मांहि॥

१०३. देशविरति गुणठाण ए, सर्व थकी किम होय ?
तिण सूं त्यागज बाह्य ए, विमल न्याय अवलोय॥

१०२,१०३. तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परि-वायगस्स सत्त अंतेवासिसया.......

(ओवाइयं सू० ११५)

तए णं ते परिव्वाया.......पुव्विं णं अम्हेहिं अम्मडस्स



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिव्वायगस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए ........इयाणि अम्हे समणस्स भगवओ........सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामो जावज्जीवाए........
(ओवाइयं सू० ११७)

१०४. उववाई वृत्ति में कह्यो, देशविरति फल जन्न।
आराधक परलोक नां, नहिं ब्रह्मलोक गमन्न।।

१०५. परिव्राजक-क्रिया तणो, फल ब्रह्मलोकज ख्यात।
अन्य पिण मिथ्याती कपिल-प्रमुख ब्रह्म उपपात।।

१०६. इण वचने करि एहनें, मत नीं टेक जणाय।
तिण सुं ब्रह्म कल्पे गया, बाह्य त्याग इण न्याय।।

१०४,१०५. एते च यद्यपि देशविरतिमन्तस्तथापि परिव्राजकक्रियया ब्रह्मलोकं गता इत्यवसेयम् अन्यथैतद्भणनं वृथैव स्याद्, देशविरतिफलं त्वेषां परलोकाराधकत्वमेवेति, न च ब्रह्मलोकगमनं परिव्राजकक्रियाफलमेषामेवोच्यते, अन्येषामपि मिथ्यादृशां कपिलप्रभृतीनां तस्योक्तत्वादिति। (औपपातिक वृ० प० १८२)

१०७. आश्रव पंचज सर्व ही, त्याग्या मींडक ख्यात।
ज्ञाता तेरह में कह्यो, न्याय बाह्य थी थात।।

१०७. तए णं से दद्दुरे अथामे····तं इयाणिं पि तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि····। (नाया० १३।४२)

१०८. पन्नवण पद बावीसमें, सर्व हिंसा पचखाण।
मनुष्य विनाज हुवै नहीं, तिण सुं मुनि रै जाण।।

१०८. एवं पाणाइवायविरयस्स मणूसस्स वि।
(पण्ण० २२।६६)

१०९. षट पोसह इक मास में, त्रिविध त्रिविध कृत कोय।
हुवै बोहित्तर वर्ष में, अष्ट पोहरिया जोय।।

११०. गुमासता तसु सइकड़ां, लाभ खरच नों जाण।
मालक तो एहीज छै, भितर अनुमति माण।।

१११. पोसह नां दिवसां तणो, ब्याज आवै घर मांय।
वलि लाखां रुपयां तिके, तसु परिग्रह में थाय।।

११२. तिमहिज पडिमा ग्यारमीं, तेह विषे पहिछाण।
तिण सुं त्रिविधे बाह्य छै, भितरपणें म जाण'।।
(ज० स०)

११३. *देश पच्यासी ढाल कही भली, एक सौ नें बयांलीस।
भिक्षु भारीमाल राय 'जय-जश' तणी, संपति विस्वाबीस।।

## ढाल १४३

### दूहा

१. पूर्वे भाख्या तेहवा, निर्ग्रंथ तणांज न्हाल।
श्रावक ह्वै गुणसुंदरू, प्रवर शीलव्रत पाल।।

१. अथानंतरोक्तशीलाः श्रमणोपासका एव भवन्ति।
(वृ० प० ३७२)

२. निश्चै करिनें नहिं हुवै, आजीविक गोसाल।
तास उपासक एहवा, ए जिन वचन निहाल।।

२. नो खलु एरिसगा आजीविओवासगा भवंति।
(श० ८।२४०)

*लय : साधुजी नगरी में आया सवा भला रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. आजीविक गोसाल नां, सिद्धांत नुं ए अर्थ।
परूपियो छै ते हिवैं, कहियै सुणो तदर्थ॥
४. जसु आयु क्षय नहिं हुओ, अप्रासुक अक्षीण।
ते प्रति भोगविवा तणो, तास शील है हीण॥

५. सर्व सत्व प्राणी-वरग, असंजती ते जीव।
हंता—हणि लकुटादिके, आहार करंत अतीव॥

६. खडगादिक करिनै वली, छेदी द्विधा भाव।
भेदी सूलादिक करी, भिन्न करो अधिकाव॥

७. पंखादिक नै खोसवै, लुंपित्ता कहिवाय।
त्वचा विलोपन छोलि करि, एह विलुंपित्ताय॥

८. उपद्रव तास विनाश करि, आहार प्रतै आहारंत।
आजीविक श्रावक इसा, भाखै इम भगवंत॥
६. कह्यो धर्मसी अचित करि, आहार प्रतै आहारंत।
इतलै ते छेद्यां बिना, फलादि नहिं खावंत॥
१०. हननादिक दोषे निपुण, वर्ग असंजत सत्त।
निण में ए बारै प्रमुख, निज मत में उन्मत्त॥

११. आधारभूत अथवा जिको, आजीवक मत जाण।
श्रावक गोशाला तणां, बारै तिहां पिछाण॥

१२. श्रावक आणंदादि जे, वीर तणैं दश ख्यात।
तिम एहनैं ए बार है, अन्य बहु नाम धरात॥
१३. ताल इसै नामै प्रथम, द्वितियो तालप्रलंब।
उव्विध संव्विध अवविधे, उदक नामुदक दंभ॥
१४. नमुदक अनुपालक नवम, शंखपाल अभिधान।
वलि अयंपुल कातरक, ए बारै ही जान॥
१५. आजीविक नां मुख्य ए, उपासक कहिवाय।
जाणें गोसालक भणी, अरिहंत देव इच्छाय॥

१६. मात पिता नीं सुश्रुषा, करणहार अधिकार।
छांड्या छै फल पंच जिण, ऊंबर धुर अवधार॥
१७. बड फल पींपर बोर ते, सतर अंजीर पिछाण।
पिलक्खु पींपल जात है, किया तास पचखाण॥

३. आजीवियसमयस्स णं अयमट्ठे

४. अक्खीणपडिभोइणो
अक्षीणायुष्कमप्रासुकं परिभुञ्जत इत्येवंशीला अक्षीण-परिभोगिनः। (वृ० प० ३७२)
५. सव्वे सत्ता, से हंता
'सर्वे सत्त्वाः' असंयताः सर्वे प्राणिनः यद्येवं ततः किम्? इत्याह—'से हंते' त्यादि 'से' त्ति ततः 'हंत' त्ति हत्वा लगुडादिना अभ्यवहार्यं प्राणिजातं। (वृ० प० ३७२)
६. छेत्ता, भेत्ता
'छित्वा' असिपुत्रिकादिना द्विधा कृत्वा 'भित्त्वा' शूलादिना भिन्नं कृत्वा। (वृ० प० ३७२)
७. लुंपित्ता विलुंपित्ता
'लुप्त्वा' पक्षादिलोपनेन 'विलुप्य' त्वचो विलोपनेन। (वृ० प० ३७२)
८. उद्दवइत्ता आहारमाहारेंति। (श० ८।२४१)
'अपद्राव्य' विनाश्याहारमाहारयंति। (वृ० प० ३७२)

१०. तत्थ खलु
'तत्थ' त्ति 'तत्र' एवं स्थितेऽसंयतसत्त्ववर्गे हननादि-दोषपरायणे इत्यर्थः। (वृ० प० ३७२)
११. इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवंति, तं जहा—
आजीविकसमये वाऽधिकरणभूते द्वादशेति विशेषा-नुष्ठानत्वात् परिगणिताः। (वृ० प० ३७२)
१२. आनन्दादिश्रमणोपासकवदन्यथा बहवस्ते। (वृ० प० ३७२)
१३. ताले, तालपलंबे, उव्विहे, संविहे, अवविहे, उदए, नामुदए।
१४. णम्मुदए, अणुवालए, संखवालए, अयंपुले, कायरए—इच्चेते दुवालस।
१५. आजीविओवासगा अरहंतदेवतागा
'अरिहंतदेवयाग' त्ति गोशालकस्य तत्कल्पनयाऽर्हत्त्वात्। (वृ० प० ३७२)
१६. अम्मापिउसुस्सूसगा पंचफलपडिक्कंता (तं जहा—उंबरेहिं
१७. वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खूहिं)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. अपर पिलंडु लसण वलि, कंद मूल वर्जेह।
कर्मनिलंछण नाक भिन्न, वृषभ-प्रमुख न करेह।।
१९. वृषभादिक त्रस प्राण नें, तनु अति पीड़ वर्जंत।
तेणे करि आजीविका करता ते विचरंत।।
२०. विशिष्ट योग्यता स्यूं विकल, ए पिण बंछै एम।
करिवूं धर्माचरण वर, निज मत में दृढ़ नेम।।

२१. स्यूं कहिवो वलि आर्य ए, श्रमणोपासक होय।
अति विशिष्ट गुरु देव नो, स्वीकृत प्रवचन सोय।।

२२. नहिं कल्पै छै जेहनें, ए आगल कहिवाय।
कर्म तणां हेतू पनर, कर्मादानज ताय।।
२३. ते पोतै करिवा वलि, करायवा अन्य पाय।
करतां प्रति अनुमोदवा, नहिं कल्पै अधिकाय।।
२४. *ईंट-लीहालादि अग्नि आरंभ करि, आजीवका करि विणज व्यापार।
सोनार लोहार ठठारा भठारा, भडभूंजादिक कर्म अंगार।
अंगालकर्म कहीजै तेहनें।।
२५. आजीवका करै वणस्सइ बेची, बेचै साग पत्र कंद मूल।
फूल तृणादि बेचै वनराई, फल बीजादिक धान तंदूल।
ए वणकर्म कहीजै दूजो।।
२६. पल्यंक पाट बाजोट गाडा रथ, किंवाड नें थंभादिक जाण।
एह बणावी बणावी बेचै, तथा मोल लेइ बेचै पिछाण।
ते साडीकर्म कहीजै तीजो।।
२७. भाड़ो करै ऊंट बलदादिक नों, हाट हवेली भाड़ै आपै।
गाडादिक नें भाड़ै देवै, रोकड़ नाणो ब्याजै थापै।
भाड़ीकर्म कहीजै चोथो।।

२८. हल कुदालादिक करि महि फोड़ै, करै आजीवका नालेर फोड़ी।
धान पीसै दलै पत्थर फोड़ै, वलि अखरोट सोपारी तोड़ी।
ते फोडीकर्म पंचमो कहियै।।
२९. शंख मोती जवारातादिक बेचै, कस्तूरी कवडा गजदंता।
हाड चर्म सींग त्रस तणां वलि, तास व्यापार करै मतिभ्रंता।
दंतविणज छठो कर्मादान ए।।

३०. मैंण आल केसर नें कसूंबो, बेचै लाख गुली हरियाल।
करै व्यापार साजी साबू नो, धाहरियादिक रंग नो न्हाल।
ते लक्खविणज कहीजै सातमो।।

*लय : आ अनुकम्पा जिन आज्ञा में

१८. पलंडुल्हसुणकंदमूलविवज्जगा अणिल्लंछिएहिं अणक्क-भिन्नेहिं गोणेहिं।
१९. तसपाणविवज्जिएहिं छेत्तेहिं वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।
२०. एए वि ताव एवं इच्छंति
एतेऽपि तावद्विशिष्टयोग्यताविकला इत्यर्थः
(वृ० प० ३७२)
२१. किमंग! पुण जे इमे समणोवासगा भवंति,
विशिष्टतरदेवगुरुप्रवचनसमाश्रितत्वात्तेषाम्।
(वृ० प० ३७२)
२२. जेसिं नो कप्पंति इमाइं पन्नरस कम्मादाणाइं।

२३. सयं करेत्तए वा, कारवेत्तए वा करेंतं वा अन्नं समणुजाणेत्तए तं जहा—

२४. इंगालकम्मे
एवमग्निव्यापाररूपं यदन्यदपीष्टकापाकादिकं कर्म तदङ्गारकर्मोच्यते अङ्गारशब्दस्य तदन्योपलक्षणत्वात्।
(वृ० प० ३७२)
२५. वणकम्मे
वनकर्म्म—वनच्छेदनविक्रयरूपं, एवं बीजपेषणाद्यपि।
(वृ० प० ३७२)
२६. साडीकम्मे
शकटानां वाहनघटनविक्रयादि। (वृ० प० ३७२)

२७. भाडीकम्मे
भाट्या—भाटकेन कर्म अन्यदीयद्रव्याणां शकटादिभिर्देशांतनयरनं गोगृहादिसमर्प्पणं वा भाटीकर्म्म।
(वृ० प० ३७२)
२८. फोडीकम्मे
स्फोटिः—भूमेः स्फोटनं हलकुद्दालादिभिः सैव कर्म्म स्फोटीकर्म्म। (वृ० प० ३७२)
२९. दंतवाणिज्जे
दंतानां—हस्तिविषाणानाम् उपलक्षणत्वादेषां चर्म-चामरपूतिकेशादीनां वाणिज्यं—क्रयविक्रयो दंत-वाणिज्यं। (वृ० प० ३७२)
३०. लक्खवाणिज्जे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. बेचै केस युक्त द्विपद चौपद नैं, ऊन रूइ रेशम थान बणाय ।
करै आजीविका ए बेची नैं, ते केसविणज कहीजै ताय ।
कर्मादान कह्यो ए आठमो ॥

३२. तेल घृत दही दूध नैं मीठो, मधु मांस माखण नै दारू ।
करै व्यापार इत्यादिक रस नों, नवमो ते रसविणज प्रकारू ।
ए कर्मादान कहीजै नवमों ॥

३३. सोमल-खार नैं सींधीमोहरो, नीलोथूथो बछनाग विचार ।
हरवंसी निरवंसी विणजै, आफु हरताल प्रमुख व्यापार ।
ए विषविणज कहीजै दसमों ॥

३४. घरटी घाणी चरखी नों फेरवो, अरट फेरवो कह्यो टवा मांय ।
यंत्र करी तिल इक्षु आदि नैं, पीलै ते वृत्ति विषे कहिवाय ।
जंतपीलण कर्म इग्यारमों ए ॥

३५. दोपद चोपद नैं आंक देवै, नाक बींधै कान फाड़ै ताय ।
बलदादिक नैं तणी न्हखावै, चाम छेदी करै आजीवकाय ।
कर्मनिलंछन बारमों कहियै ॥

३६. दाम साटै बालै ग्राम नगर पुर, अटव्यादिक नैं देवै लगाय ।
आजीवका अर्थे दव देवै, बालै वलि मुरड़ादिक ताय ।
दवग्गिदावणया कर्म तेरमों ॥

३७. आजीवका अर्थ दाम साटै, सर द्रह तलाब कुओ नैं बावी ।
तसु जल सोखवै बाहिर काढै, गोधूमादिक में घालै जल पावी ।
सरद्रह तलाव सोसणिया चवदमो ॥

३८. साधु बिना सघला पोखीजै, असइपोसणया तसु केहवै ।
रोजगार लेइ त्यां ऊपर रहवै, खाणो पीणो असंजती नैं देवै ॥
पनरमों ए कर्मादान कहीजै ॥

३९. दानशाला ऊपर रहै पशु चरावै, हय गय बलद कुर्कट
ऊंट मोर ।
प्रमुख पशु पंखी पोषण ऊपर रहै, पोखी नैं करै आजीविका घोर।
असइपोसणिया पनरमो कह्यो ए ॥

## सोरठा

४०. 'वृत्ति विषे इम वाय, असइ-पोसणिया तणो ।
दासी-पोषण ताय, ते भाड़ो ग्रहिवा अरथ ॥

४१. वलि कुर्कट मंजार, आदि क्षुद्र जे जीव नैं ।
पोखै ते पिण धार, एहवुं अर्थ कियो तिणे ॥

४२. आदि मांहि अवलोय, हिंसक अन्य पिण आविया ।
त्यांनैं पोख्यां सोय, धर्म नहीं तसु लेख पिण ॥

४३. सप्तम अंग प्रपन्न, अर्थ वृत्ति मांहै इसु ।
पोखै दासी जन्न, भाडे आजीविका अरथ ॥

३१. केसवाणिज्जे
केसवज्जीवानां गोमहिषीस्त्रीप्रभृतिकानां विक्रयः ।
(वृ० प० ३७३)

३२. रसवाणिज्जे
मद्यादिरसविक्रयः । (वृ० प० ३७३)

३३. विसवाणिज्जे

३४. जंतपीलणकम्मे
यंत्रेण तिलेक्ष्वादीनां यत्पीडनं तदेव कर्म्म यंत्रपीडन-
कर्म्म । (वृ० प० ३७३)

३५. निल्लंछणकम्मे
वर्द्धितककरणमेव कर्म निर्लाञ्छनकर्म्म ।
(वृ० प० ३७३)

३६. दवग्गिदावणया
दवस्य दापनं—दाने प्रयोजकत्वमुपलक्षणत्वाद्दानं च
दवाग्निदापनं । (वृ० प० ३७३)

३७. सर-दह-तलागपरिसोसणया ।

३८. असतीपोसणया ।

४०. दास्याः पोषणं तद्भाटीग्रहणाय । (वृ० प० ३७३)

४१. अनेन च कुर्क्कुटमार्जारादिक्षुद्रजीवपोषणमप्याक्षिप्तं
दृश्यमिति । (वृ० प० ३७३)

४३. 'असतीजनपोषणता' असतीजनस्य—दासीजनस्य पोषणं
तद्भाटिकोपजीवनार्थं यत्तत् तथा,
(उपासकदशा वृ० प० ४३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. एवं अन्य पिण जंत, कूड़ कर्मकारक जिके।
प्राणी प्रति पोषंत, असतीजन-पोषण कह्यु।।
४५. ए वृत्ति तणैं पिण न्याय, कूड़ कर्म मांहै सहु।
हिंसक जीव गिणाय, तसु पोख्यां नहिं धर्म पुन्य।।
४६. पनरै कर्मादान, आजीविका नैं अरथ ए।
कियां करायां जान, अनुमोद्यां पिण धर्म नहीं।।
४७. विण आजीविक सोय, चवदै सेव्यां पाप बंध।
तिमज पनरमों जोय, हिंसक पोख्यां पाप हुवै'।।
(ज० स०)

४८. *एहवा निर्ग्रंथ तणां छै श्रावक, शुक्ल ते उज्जल मच्छर-रहीत।
कृतज्ञ भला व्रत नां पालक, हित अनुबंधी वली शुद्ध रीत।।

४९. शुक्ल अभिजात ते शुक्ल ही प्रधान, शुद्ध ववहार नां धणी थइ नैं।
इक देवलोक में सुरपणें ऊपजै, काल नैं अवसर काल करी नैं।।

**सोरठा**

५०. देवलोक अवतार, श्रावक नैं पूर्वे कह्यो।
देव प्रतै इज सार, भेद थकी कहियै हिवै।।

५१. *देवलोक प्रभु ! कितै प्रकारै ? जिन कहै चउविहा छै देवलोगा।
भवणपति जाव वेमाणिया ए, सेवं भंते ! सेवं भंते ! सुजोगा।।

५२. अष्टम शतक नैं पंचमुदेशो, एक सौ नैं तयांलीसमी ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति हरष विशाल।।

अष्टमशते पंचमोद्देशकार्थः ।।८।५।।

४४. एवमन्यदपिक्रूरकर्मकारिणः प्राणिनः पोषणमसतीजन-पोषणमेवेति। (उपासकदशा वृ० प० ४३)

४८. इच्चेते समणोवासगा सुक्का
'सुक्क' त्ति शुक्ला अभिन्नवृत्ता अमत्सरिणः कृतज्ञाः सदारम्भिणो हितानुबन्धाश्च। (वृ० प० ३७३)

४९. सुक्काभिजातीया भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति।
(श० ८।२४२)
'शुक्लाभिजात्याः' शुक्लप्रधानाः। (वृ० प० ३७३)

५०. अनंतरं देवतयोपपत्तारो भवंतीत्युक्तमथ देवानेव भेदत आह— (वृ० प० ३७३)

५१. कतिविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासी वाणमंतरा, जोइसिया, वेमाणिया।
(श० ८।२४३)

५२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श० ८।२४४)

*लय : आ अनुकम्पा जिन आज्ञा में



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १४४

### दूहा

१. पंचमुदेशक नें विषे, श्रावक नों अधिकार।
आख्यो छै तेहिज हिवै, छठै उदेशै सार।।

१. पञ्चमे श्रमणोपासकाधिकार उक्तः षष्ठेऽप्यसावेवोच्यते। (वृ० प० ३७३)

*रूड़े विविध प्रकारे रे, प्रश्न गोयम पूछंता।। (ध्रुपदं)

२. हे प्रभुजी ! श्रमणोपासक ते, तथारूप श्रमण प्रति धारो।
माहण मूल गुणे करि कहियै, बिहुं नामे अणगारो।।

२. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा।

३. एहवा मुनि नें श्रमणोपासक, फासु—जीव-रहीतो।
एषणीक निर्दोष आहार चिउं, प्रतिलाभै धर प्रीतो।।

३. फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स।

४. स्यूं फल होवै ते श्रावक नें ? तब भाखै जिनरायो।
एकंत तेहनें हुवै निर्जरा, पाप कर्म नहिं थायो।।

४. किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगंतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ। (श० ८।२४५)

५. हे प्रभु ! श्रमणोपासक ते तथारूप श्रमण प्रति धारो।
माहण मूल गुणे करि कहियै, बिहुं नामें अणगारो।।

५. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा।

६. आहार अफासु सचित्त कह्यो इहां, वलि ते अनेषणीको।
असण पाण खादिम नें स्वादिम, च्यारूं आहार सधीको।।

६. अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं।

७. प्रतिलाभ्यां फल स्यूं श्रावक नें ? तब भाखै जिनरायो।
तास निर्जरा हुवै बहुतर, पाप अल्पतर थायो।।

७. पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?
गोयमा ! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ। (श० ८।२४६)

८. पाठ मांहै ए बात परूपी, समचै श्री जिनरायो।
जाण अजाण भेद नहिं खोल्यो, भिक्षु न्याय बतायो।।

### सोरठा

९. कह्यो वृत्ति में ताय, कारण पड़ियां ए अछै।
अन्य आचार्य वाय, अकारणे पिण ते कहै।।

९. इह च विवेचका मन्यन्ते—असंस्तरणादिकारणत एवाप्रासुकादिदाने बहुतरां निर्जरा भवति नाकारणे····
अन्ये त्वाहुः—अकारणेऽपि गुणवत्पात्रायाप्रासुकादिदाने परिणामवशाद्बहुतरा निर्जरा भवत्यल्पतरं च पापं कर्म्मेति। (वृ० प० ३७३)

१०. विरुद्ध बिहुं ए अर्थ, छैहड़े वलि आख्यो इहां।
केवलिगम्य तदर्थ, जे फुन तत्व तिकोज छै।।

१०. यत्पुनरिह तत्त्वं तत्केवलिगम्यमिति। (वृ० प० ३७४)

११. भिक्षू गुणभंडार, अर्थ कियो छै एहनो।
सांभलज्यो सुखकार, ढाल कहूं हिव तास कृत[1]।।

---

*लय : गरब न कीजै रे सतगुरु सीखड़ली

१. भगवती सूत्र श० ८ सूत्र २४६ के पाठ की व्याख्या कई आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से की है। इससे वह पाठ विवादास्पद बन गया। कुछ आचार्यों ने साधु को अप्रासुक और अनेषणीय आहार देने में अल्प पाप, बहुत निर्जरा का सिद्धान्त स्वीकृत किया है, पर उनमें भी कुछ आचार्य इसे आपवादिक मानते हैं और कुछ



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## दूहा

'भिष्ट भागल विकल हुआ तके, करै असुध वेहरण री थाप ।
चोर ज्यूं अशुद्ध अर्थ हेरता, थोथा करै अज्ञानी विलाप ॥१॥

किहांइक पाठ छै सूतर में, तिण रो न्याय मेलै नहिं मूढ ।
साधां नै असुध वेहरायां धर्म कहै, एहवी करै अज्ञानी रूढ ॥२॥

साधां नें असुध वेहराविया, तिणमें धर्म नहिं अंसमात ।
धर्म कहै असुध वहिराविया, तिण रा घट में घोर मिथ्यात ॥३॥

च्यार आहार सचित नें असूझता, श्रावक वेहरावै जाण-जाण ।
तिण में पाप अलप बहोत निर्जरा, एहवी करै अज्ञानी ताण ॥४॥

ए पाठ भगोती सूतर मझै, शतक आठमा मांय ।
तिण रो अर्थ करणवालो पिण डरपियो, तिण केवलियां नें दियो भलाय ॥५॥ ५. भगवती ८।२४६

छद्मस्थ अर्थ करै इहां, तिणरो केवली जाणैं न्याय ।
कदा कोइ बुधवंत बुध थकी, उनमान थी देवै बताय ॥६॥

जाण अफासु थापियां, वीर वचन विगटाय ।
सूतर सूं पिण मिलै नहीं, ते प्रतष दीसै अन्याय ॥७॥

साध नें सचित नें असुध दियां, कहै बोहत निरजरा अलप पाप ।
तिण ऊंधी श्रद्धा रो निरणो कहूं, ते सुणजो चुपचाप ॥८॥

*असुध वहरण री थाप करै ते अज्ञानी। (ध्रुपदं)
(असुध वहरण री थाप करो मति कोई)

अफासु आहार नें सचित कह्यो जिण,
अणेसणिज्जेणं ते असूझतो थावै ।
ते साधां नै श्रावक जाणे वेहरावै,
तिण रै अल्प पाप नै बोहत निरजरा बतावै ॥९॥

---

* लय : आ अनुकम्पा जिन आज्ञा में

सामान्य। जयाचार्य ने उक्त दोनों मंतव्यों को विरुद्ध बताते हुए टीकाकार के उस अभिमत का उल्लेख किया है, जिसमें वृत्तिकार ने इस प्रसंग को केवलिगम्य कहकर छोड़ दिया है।

आचार्य भिक्षु ने अपनी कृति 'श्रद्धा निर्णय की चौपई' में इस संबंध में सांगोपांग विवेचन किया है। उन्होंने कारण या अकारण—किसी भी स्थिति में साधु को अप्रासुक और अनेषणीय आहार देने में अल्प पाप, बहुत निर्जरा के सिद्धान्त का खण्डन कर अपनी प्रज्ञा से भगवती के उक्त पाठ की व्याख्या की है। जयाचार्य ने 'श्रद्धा-निर्णय की चौपई की २१ वीं ढाल, जिसकी दोहों सहित ७० गाथाएं हैं, अविकल रूप से इस प्रसंग में उद्धृत की है। उस ढाल की अलग पहचान के लिए गाथाओं के अंक उनसे पहले न देकर बाद में दिए गए हैं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोरो अन सचित नैं असूझतो छै,
ते साधां नैं श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण में जिणमारग रा अजाण अज्ञानी,
अलप पाप नैं बोहत निरजरा बतावै ॥१०॥
काचो पाणी सचित नैं असूझतो छै,
ते साधां नै श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण में जिण मारग रा अजाण अज्ञानी,
अलप पाप नैं बोहत निरजरा बतावै ॥११॥
काचा फल दाड़मादिक असूझता छै,
ते साधां नै श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण दीधां में मूढ मिथ्याती जीवड़ा,
अल्प तो पाप नैं बहोत निरजरा बतावै ॥१२॥
सचित पान डोडादिक असूझता छै,
ते साधां नैं श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण दीधां में मूढ मिथ्याती जीवा,
अल्प तो पाप नैं बोहत निरजरा बतावै ॥१३॥
च्यारूं आहार सचित नैं असूझता छै,
ते साधां नै श्रावक जाण वेहरावै ।
तिण दीधां में मूढ मिथ्याती जीव,
तिण नैं अल्प पाप नैं बोहत निरजरा बतावै ॥१४॥
साधां नै आहार सचित नैं असुध वेहरावै,
तिण श्रावक रो बारमो व्रत भागो ।
साधु जाणे नैं सचित असूझतो लेवै तो,
ओ पिण व्रत भांगे नैं होय गयो नागो ॥१५॥
साधां रै आहार सचित नैं असुध लेवण रा,
जीवै ज्यां लग छै पचखाण ।
रोगादिक पीड़्यां साधु रा प्राण जाये तो ही,
सचित नैं असूझतो नहिं लेवै जाण ॥१६॥
असल श्रावक ते साधां नैं असुध न देवै,
सुध साधां रा जाता देखै तो ही प्राणो ।
असुध देई नैं साधां रो साधपणों न लूटै,
पोता रा लीधा चोखा पालै पचखाणो ॥१७॥
कदा राग रो घाल्यो असुध वेहरावै,
तिण में संवर निर्जरा रो अंस न जाणै ।
व्रत भागो नैं पाप लागो छै तिण रो,
प्राछित ले व्रत राखै ठिकाणै ॥१८॥
च्यारूं आहार सचित नैं असूझता छै,
ते साधां नै श्रावक जाणे केम वेहरावै ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध साधु तो जाणे नें असुध न वेहरै,
अल्प पाप नें बोहत निर्जरा किम थावै ॥१६॥
अफासु ने अणेसणिज्जे पाठ सूतर में,
तिण पाठ रो अर्थ सूधो कहणी नावै ।
जथातथ तिण रो अर्थ करै तो,
घणां लोकां में सेखी उड़ जावै ॥२०॥
तिण रा झूठा-झूठा अर्थ अनेक बतावै,
कदे कारण पड़ियां रो नाम बतावै ।
वले विविध प्रकारे घुचलाइ घाले नें,
भारीकर्मा भोलां लोकां नै भरमावै ॥२१॥
ओ तो पाठ भगोती सूतर में छै पिण,
आंधा रै अंतरंग नहीं छै पिछाणो ।
च्यारूं आहार सचित नें असूझता दीधां में,
बोहत निरजरा किहां थी होसी रे अयाणो ॥२२॥
फासु एषणीक साधु नें देवै श्रावक,
ठाम-ठाम बहु सूतरां रै मांहि ।
ते सचित असुध जाणे किम देवै श्रावक,
वले बहुत निरजरा जाणै किम त्यांहि ॥२३॥
इण पाठ नें मूंहढे आणै वारूंवार,
त्यांरा सचित नें असुध खावा रा परिणाम ।
जो असुध वेहरण रा परिणाम नहीं छै,
तो यूं ही क्यांनै बकसी बेकाम ॥२४॥
च्यारूं आहार सचित नें असुध वेहरावै,
तिण रै तो अल्प आउखो बंधाय ।
भगोती पांचमें शतक छठै उदेशे,
वलै तीजे ठाणे ठाणाअंग मांय ॥२५॥
साधु नें आहार सचित नें असुध वेहरावै,
अल्प पाप नें बोहत निरजरा थाय ।
जब तो ठाणाअंग नें भगोती सूतर रो,
पाठ नें अर्थ दोनूं ई ऊथप जाय ॥२६॥
साधु नें जाण नें आधाकर्मी वेहरावै,
ते तो चारित्र धर्म रो लूंटणहार ।
ते पिण नरक निगोद में भींषां खावै,
उत्कष्टो रुलै तो अनंतो काल ॥२७॥
आधाकर्मी वेहरायां छै एकंत पाप,
सचित नें असुध वेहरायां ओ पिण पाप ।
च्यारूं आहार सचित नें असुध वेहरायां,
तिण में मूढ करै बोहत निरजरा री थाप ॥२८॥

२५. कहण्णं भंते ! अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेंति ?
गोयमा ! ····तहारूवं समणं वा····पडिलाभेत्ता—
(भ० श० ५।१२४)
तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तंजहा—
········तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता भवति········ (ठाणं ३।१७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधां नें असुध आहार तो अभख कह्यो जिण,
ते अभख आहार देवै दातारो ।
तिण रै अल्प दोष बोहत निरजरा कहै ते,
भूल गया मूढ बिना विचारो ॥२९॥
साधां नें असुध आहार तो अभख कह्यो जिण,
निरावलिका भगोती गिनाता मांय ।
तो अभख आहार साधां नें श्रावक वेहरायां,
अल्प पाप नें बोहत निरजरा किम थाय ?३०॥
कुसीलिया ते हीण-आचारी, बिना विचारियां बोलसी वेणो ।
रोगीयादिक गिलाण नें अर्थे, आधार्कमियादिक जाणे नें लेणो ॥३१॥
ए तो आचारंग रै छठे अधेने,
ते जोयलो चोथा उद्देशा मांय ।
तो सचित नें असूझतो साधां नें दीधा,
अल्प पाप नें बोहत निरजरा किम थाय ?३२॥
नहीं कल्पै ते वस्तु साधु वेहरै तो,
तिण नें तो चोर कह्यो जिनराय ।
कह्यो छै आचारंग पहिले सतखंधे,
आठमाधेन पहिला उद्देशा मांय ॥३३॥
ठाम-ठाम सूतर में नषेध्यो, साधां नें असुध लेणो नहि कांई ।
श्रावक नें पिण असुध न देणो, असुध दियां में धर्म छै नांही ॥३४॥
च्यार आहार सचित नें असूझता छै,
त्यां नै श्रावक तो निसंक सूं जाणै सुध मान ।
आपरी तरफ सूं सुध व्यवहार करै नें,
साधां नें हरष सूं दियो छै दान ॥३५॥
तिण री पाग में सचित पंखीयादिक न्हाख्यो,
अथवा सचित रजादिक लागी छै आय ।
तिण री श्रावक नें कांइं खबर नहीं छै,
पिण व्यवहार सूं सुध जाण दियो वेहराय ॥३६॥
इण रीते आहार सचित नें असूझतो छै,
पिण श्रावक तो सुध जाणे नें वेहरावै ।
अल्प पाप ते पाप तणो छै नकारो,
चोखा परिणाम सूं बोहत निरजरा थावै ॥३७॥
कै तो अजाणपणै साधु नें वेहरावै,
तिणरी तरफ सूं फासू नें सूझतो जाण ।
इण रीते ए पाठ नों अर्थ हुवै तो,
ते पिण केवलज्ञानी वदै ते प्रमाण ॥३८॥
ऊनों पाणी निसंक सूं श्रावक जाणै छै,
तिण पाणी नें घर रा बावर दियो ताय ।

३०. निरयावलिया (३।३।२७)
....तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया । (भ० श० १८।२१४)
नायाधम्मकहाओ (५।७३)

३१,३२. वसित्ता बंभचेरंसि आणं 'तं णो' त्ति मण्णमाणा । (आयारो प्रथम श्रुत० ६।७८)

३३. इहमेगेसि आयार-गोयरे णो सुणिसंते भवति,...... अदुवा अदिन्नमाइयंति । (आयारो ८।३,४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण ठाम में काचो पाणी घर रा घाल्यो,
तिणरी तो श्रावक नें खबर न काय ॥३९॥
तिण पाणी नें श्रावक ऊनो जाणे नें,
निसंक सूं साधां नें दियो वेहराय।
तिण रै अल्प पाप नै बोहुत निरजरा हुवै तो,
ते पिण केवलज्ञानी नें देणो भलाय ॥४०॥
कोरा चिणा पड़्या छै भूंगड़ादिक में,
सचित गोहूं पड़्या छै धाणी रै मांय।
तिणरी श्रावक नें खबर न कांइ,
सूझता जाणी साधां नै दिया वेहराय॥४१॥
अचित दाखां में सचित दाखां पड़ी छै,
अचित खादम में सचित खादम छै ताय।
तिणरी श्रावक नें तो खबर न कांइ,
ते सूझतो जाण नै दियो वेहराय॥४२॥
इत्यादिक अनेक सचित वस्त छै,
ते श्रावक निसंक सूं अचित जाण।
ते पिण आपरो तरफ सूं चोकस करनें,
साधां नें वेहरावै घणो हरष आण॥४३॥
इण रीते श्रावक रै बोहुत निरजरा होवै,
तो पिण केवलज्ञानी जाणें।
म्हैं तो अटकल सूं उनमान कर्‌यो छै,
वले सूतर रा अनुसारा प्रमाणै॥४४॥
आधाकर्मी साधु जाणे नें भोगवै तो, नरक निगोद में झीषां खावै।
असुध देवै ते संजम रो लूंटणहारो, चिउ गति में घणो दुख पावै॥४५॥
आधाकर्मी साधु अजाणे भोगवै तो,
पाप रो अंस न लागो लिगार।
तिण दातार नें पूछे निरणो करि लीधो,
संका सहित पिण नहीं लियो तिणवार॥४६॥
आधाकर्मी आहार कियो तिण रै घर,
उण रै तो घरे साधु वेहरण गयो नांही।
ते आहार अनेक घरां रै आंतरे,
निरणो करे वेहर्‌यो पातरा मांही॥४७॥
तिण आहार भोगवतां सुध साधु रै, पाप रो लेप न लागो कांइ।
सूयगडांग इकवीसमें अधेनै, जोय करो निरणो घट मांही॥४८॥
च्यार आहार सचित नें असूझता छै,
तिणरी श्रावक नें खबर नहीं छै लिगार।
ते सूझता जाणे साधां नें वेहरावै,
तिणरा छै निरवद जोग व्यापार॥४९॥

४७,४८. अहाकम्माणि भुंजंति अण्णमण्णे सकम्मुणा।
उवलित्तेत्ति जाणिज्जा अणुवलित्तेत्ति वा पुणो॥
एएहिं दोहिं ठाणेहिं ववहारो ण विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं अणायारं विजाणए॥
(सूयगडो २।५।८,९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्यार आहार अचित नें सूझता छै,
पिण श्रावक रै संका पड़ी तिण वार।
ते संका सहित साधां नें वेहरावै,
तिण रा सावज्ज जोग व्यापार ॥५०॥
सावज्ज जोग सूं एकंत पाप लागै छै,
निरवद जोग सूं निरजरा नैं पुन थाय।
थोड़ो पाप नें बोहुत निरजरा बतावै,
तिण नें पूछीजे किसा जोगां सूं हुवै ताय ॥५१॥
संका सहित आहार साधां नै वेहरायो,
तिण घर रो माल खोय नै पाप लगायो।
तो सचित नें असूझतो जाण नें देसी,
तिण रै बोहुत निरजरा किण विध थायो ॥५२॥
सुध साधां भेलो तो अभवी रहै छै,
तिण रो साधु देखै छै सुध ववहार।
तिण अभवी नें साध वांदै पूजे छै,
तिणरो साधां नै दोष न लागै लिगार ॥५३॥
साधां भेलो रहै चोथा व्रत रो भागल,
तें तो छानो छै तिण रो न पड़्यो उघाड़ो।
तिणनें वांदै पूजै आहार पाणी देवै छै,
तिणरो साधां नें दोष न लागो लिगारो ॥५४॥
अभवी भागल नें जाणे मांहे राखै,
जब सर्व साधां रो साधुपणो भागै।
ज्यूं सचित नैं असूझतो जाणे वेहरायां,
तिणरै निश्चैइ एकंत पापज लागै ॥५५॥
सचित नें असूझतो आहार दियां में,
अल्प पाप नें निरजरा सरधै किण लेखै।
दोय वाना सरध्यां मिश्र दान थपै छै,
मिश्र उथाप्यो तिण सांहमो क्यूं नहिं देखै ॥५६॥
मिश्र वालां री श्रद्धा नैं खोटी कहै छै,
पोतै पिण मिश्र थापै छै मूढ़ मिथ्याती।
आपरा बोल्यां री आपनै समझ न कांइ,
ते तो हीयाफूट गधा रा साथी ॥५७॥
मिश्र थापण वालां री तो सरधा खोटी छै,
ते कहै मिश्र में मून राखां छां ताय।
मिश्र दान रा सूंस न करावां म्है किणनै,
त्यांनै पिण त्यांरा झूठ री खबर न कांय ॥५८॥
साधां नै आहार असुध देवण रो,
ए त्याग करावै छै किण न्याय?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्प दोष नें बोहत निरजरा जाणें छै,
तिण रै निरजरा री कांय देवै अंतराय ॥५९॥
वले साधां रै अंतराय आहार री पाड़ी,
दातार नें अंतराय दीधी विशेषै।
अल्प दोष थकी बोहत निरजरा हुंती थी,
तिणनें सूंस करायो छै किण लेखै ॥६०॥
श्रावक साधां नें असुध जाण नें वेहरावै,
तिणनें धर्म नें पाप दोनूंइ जाणो।
तिणनें असूझतो दान देवण रा,
किसै लेखै करावो पचखाणो ॥६१॥
मुख सूं कहै मिश्र दान तणां म्हें,
किणनेंइ सूंस करावां नांही।
इण मिश्र दान रा सूंस करायां,
थांरी श्रद्धा री वरग वूहा नहिं कांई ॥६२॥
मूला गाजर जमीकंद दान देवै छै,
तिणमें धर्म थोड़ो नें घणो कहै पाप।
तिण दान रा सूंस करावो नांही,
मिश्रदान जाणी रहो चुपचाप ॥६३॥
अल्प पाप नें बोहत निरजरा जाणो छो,
तिण दान तणां पचखाण करावो।
बोहत पाप नें निरजरा अल्प जाणो थे,
तिण दान रा सूंस करावो छो किण न्यावो ?६४॥
कोइ कहै यां तो सूतर रो पाठ उथाप्यो,
पिण पोतै उथाप्यो ते खबर न कांय।
मोह मतवाला ज्यूं बोलै अज्ञानी,
ते सांभलजो भवियण चित ल्याय ॥६५॥
च्यारूं आहार सचित नें असूझता छै,
त्यांरा श्रावक त्यांनै क्यूं न वेहरावै।
अल्प पाप नें बोहत निरजरा कहै छै,
त्यांनै वेहरावता संका क्यूं ल्यावै ॥६६॥
च्यार आहार सचित नें असूझता वेहरै,
जब तो यां पाठ साचो करि थाप्यो।
च्यार आहार सचित नें असुध न लेवै,
जब पोतैईज थाप्यो नें पोतै उथाप्यो ॥६७॥
च्यार आहार सचित साधां नें वेहरावै,
जब श्रावकांइ पाठ साचो करि थाप्यो।
च्यारूं आहार सचित नें असुध न देवै,
जब त्यांइज थाप्यो नै त्यांहीज उथाप्यो ॥६८॥



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेसाइ साध नें जेसाइ श्रावक,
यां दोयां रा घट मांहै घोर अंधारो।
जैसा कूं तैसा आय मिलिया छै,
ऊंट रै लारे ऊंटा बांधी कतारो ॥६९॥
अल्प पाप नें बोहत निरजरा ऊपर, जोड़ कीधी गंगापुर ग्राम मझार।
समत अठारै वर्ष सतावनैं, पोह सुद आठम मंगलवार ॥७०॥

**सोरठा**

१२. 'फासु सूझतो जाण, दियै अफासू मुनि भणी।
सुध व्यवहार पिछाण, अल्प पाप ते पाप नहीं ॥
१३. अल्प अभाव सुजान, उत्तराज्झयणे धुर झयण।
अल्प-अंडादिक स्थान, आहार करै मुनिवर तिहां ॥

१३. अप्पपाणेऽप्पबीयम्मि, पडिच्छन्नंमि संवुडे।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं ॥
(उत्तर० १।३५)

१४. अल्प वर्षा में विहार, प्रभु कियो पनरम शतक में।
अर्थ वृत्ति में सार, अल्प वर्षा ते नहिं वर्षा ॥

१४. तए णं अहं गोयमा ! ····अप्पवुट्ठिकायंसि····
(भ० श० १५।५७)
'अप्पवुट्ठिकायंसि' त्ति अल्पशब्दस्याभाववचनत्वाद-विद्यमानवर्ष इत्यर्थः। (वृ० प० ६६५)

१५. अल्प-अंडादि स्थान, आहार परिठवै महामुनि।
द्वितीय आचारंग जान, प्रथम झयण उदेश धुर ॥
१६. आधाकर्मी स्थान, सेव्यां महासावज क्रिया।
सुध स्थानक पहिछाण, सेव्यां अल्पसावज क्रिया ॥
१७. अल्प अभाव कहाय, पिण महासावज पेक्षया।
अल्पसावज क्रिया थाय, ते सावज थोड़ी नहीं ॥
१८. द्वितीय आचारंग मांहि, द्वितीय अध्येन विषे अछै।
द्वितीय उदेशै ताहि, महासावज अल्पसावज क्रिया ॥
१९. तिम बहु निर्जर पेक्षाय, पाप अल्प थोड़ो नथी।
अल्प अभाव कहाय, अल्प क्रिया तिम अल्प अघ ॥
२०. अल्प आतंक पिछाण, ठाम ठाम सूत्रे कह्यो।
अल्प अभावज जाण, आतंक ते रोगे करी ॥
२१. इम बहु सूत्रां मांय, अल्प अभाववाची कह्यो।
इहां पिण तेम जणाय, अल्प पाप ते पाप नहीं' ॥ (ज० स०)

१५. से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया····अप्पंडे, अप्पपाणे····
(आयारचूला १।२)
१६-१९. इह खलु पाईणं वा····दुपक्खं ते कम्मं सेवंति, अयमाउसो ! महासावज्जकिरिया वि भवइ ॥
(आयारचूला २।४१)
इह खलु····अप्पसावज्जकिरिया वि भवइ।
(आयारचूला २।४२)

२२. *हे प्रभुजी ! श्रमणोपासक ते, तथारूप असंजती जाणो।
विरतरहित तिण पाप कर्म नां, न किया छै पचखाणो ॥
२३. फासु अचित्त अफासु सचित्तज, एषणीक निर्दोषं।
तथा अनेषणीक जे कहियै, असूझतो अवलोकं ॥
२४. असण पाण यावत स्यूं फल ह्वै ? तब प्रभु भाखै त्यांही।
एकांत पाप कर्म ह्वै तेहनैं, नथी निर्जरा कांई ॥

२२. समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मं
२३. फासुएण वा, अफासुएण वा, एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा
२४. असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?
गोयमा ! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ। (श० ८।२४७)

*लय : गरब न कीजे रे सतगुरु सीखड़ली



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

२५. वृत्ति विषे सुविचार, प्रथम अर्थ तो सुध कियो।
असंजती अवधार, अगुणवान ए पात्र है।।
२६. फासु अफासू आदि, दियां पाप कर्म फलपणें।
निर्जरा अभाव वादि, आख्यो तेहनों न्याय इम।।
२७. फासु अफासू दान, दियां असंजम नों इहां।
उपष्टंभ तुल्य मान, एकंत पाप कह्यो अछै।।
२८. फुन प्रासुकादि मांहि, जंतु-घात अभाव करि।
अप्रासुक में ताहि, जीव-घात सद्भाव करि।।
२९. पाप तणोज विशेख, तिको अत्र नहिं वंछियो।
निर्जर-अभाव पेख, पाप कर्म फुन वंछियो।।
३०. प्रथम अर्थ ए शुद्ध, टीकाकार कियो अछै।
आगल एम विरुद्ध, विस्तार्यो ते हिव कहूं।।
३१. मोक्ष अर्थ पहिछान, तेह दान इहां चिंतव्यो।
वलि अनुकंपा दान, उचित दान नहिं चिंतव्यो।।
३२. तेह निषेध्यो नाहिं, विरुद्ध एम विस्तारियो।
धुर थाप्यो वृत्ति मांहि, तिण कर विरुधज ऊथप्यो।।
३३. असंजती नैं दान, अनुकंपा आणी दियै।
उपष्टंभ ते जान, अछै असंजम नो तिको।।
३४. ते माटै ए दान, कारण कहियै पाप नों।
बहु सूत्रे जिन वान, संक्षेपे ते हिव कहूं।।
३५. 'आख्यो आद्रकुमार, द्वितीय सूगडांग नैं छठै।
जावै नरक मझार, बे सहस्र द्विज जीमावियां।।
३६. चवदम उत्तराझयण, द्विज जीमायां तमतमा।
तसु धुर-गाथा वयण, कुंवर विमासी नैं वदै।।
३७. अन्यतीर्थी तसु देव, श्रद्धा भ्रष्ट मुनी भणी।
असणादिक चिउं भेव, नहिं द्यूं देवावूं नहीं।।
३८. सप्तम अंग मझार, आणंद ए अभिग्रह लियो।
'छ छंडी आगार', समायक में ते तजै।।
३९. प्रसंसै सावज दान, हिंसा कही छ काय नीं।
प्रथम सूगडांग जान, एकादशम अझयण में।।
४०. तीजै करण प्रसंस, घातो ते षट-काय नों।
तो दै दान निधंस, स्यूं कहिवो धुर करण नों।।

२५. 'अस्संजयअविरये' त्यादिनाऽगुणवान् पात्रविशेष उक्तः। (वृ० प० ३७४)

२६. प्रासुकाप्रासुकादेर्दानस्य पापकर्मफलता निर्जराया अभावश्चोक्तः (वृ० प० ३७४)

२७. असंयमोपष्टम्भस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्। (वृ० प० ३७४)

२८. यश्च प्रासुकादौ जीवघाताभावेन अप्रासुकादौ च जीवघातसद्भावेन विशेषः। (वृ० प० ३७४)

२९. सोऽत्र न विवक्षितः, पापकर्म्मणो निर्जराया अभावस्यैव च विवक्षितत्वादिति। (वृ० प० ३७४)

३१. सूत्रत्रयेणापि चानेन मोक्षार्थमेव यद्दानं तच्चिन्तितं, यत् पुनरनुकम्पादानमौचित्यदानं वा तन्न चिन्तितम्।। (वृ० प० ३७४)

३५. सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए णितिए माहणाणं।
ते पुण्णखंधं सुमहज्जणित्ता, भवंति देवा इइ वेयवाओ।। (सूयगडो २।६।४४)

३६. वेया अहीया न भवन्ति ताणं, भुत्ता दिया निन्ति तमं तमेणं।
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं।। (उत्तर० १४।१२)

३७,३८. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए····नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं, देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं, वित्तिकंतारेणं। (उवा० १।४५)

३९-४१. जे य दाणं पसंसंति, वधमिच्छंति पाणिणं।
जे य णं पडिसेहंति, वित्तिच्छेदं करेंति ते।। (सूयगडो १।११।२०)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. वर्त्तमान जे काल, निषेध्यां अंतराय छै।
पिण उपदेशे न्हाल, हुवै जिसा फल मुनि कहै।।
४२. अन्यतीर्थी गृहि ताय, दान दियां अनुमोदियां।
दंड चोमासी आय, नशीत उदेशै पनरमें।।

४३. परिभ्रमण संसार, हेतू सावज दान नें।
जाण तज्यो अणगार, सूयगडांग नवमें कह्यो।।

४४. वीर तणां गुण सार, कीधा तिण कारण तुझै।
पीढ फलग पाडिहार, देऊं सेज्या साथरो।।
४५. पिण धर्म तप नहिं कोय, इम कहिनें सकडालसुत।
दिया कुशिष्य नें सोय, सप्तम अंग रै सातमें।।
४६. मृगालोढो देख, गोतम पूछ्यो वीर नें।
किं दच्चा सुविशेख, तेहनां फल ए भोगवै।।
४७. चोथै ठाण पंडूर, कह्या कुक्षेत्र कुपात्र नें।
पुन्य रूप अंकूर, त्यां बायो ऊगै नहीं।।

४८. पापकारिया क्षेत्र ब्राह्मण उत्तराभ्रयण में।
बारम भ्रयण सुतेत्र, हरकेसी मुख जख कह्या।।
४९. क्रोधी कपटी मान, मुनि मुख जख द्विज नें कह्यो।
ए स्थापै सत्यवान, तो ते पिण सत्य जाणजो।।
५०. दान धर्म शौच-मूल, चोखी सिन्यासण कह्यो।
तास केडायत स्थूल, सावज दाने पुन्य कहै।।
५१. इत्यादिक बहु ठाम, असंजती नें दान रा।
कह्या कटुक फल स्वाम, न्याय दृष्टि निर्णय करो।।
५२. कोइ कहै तथारूप, मत-धोरी[1] ए असंजती।
प्रतिलाभै तद्रूप, गुरु बुद्धि दीधां पाप है।।
५३. इम करै अर्थ विरुद्ध, पिण ए तो जाणै नहीं।
श्रमणोपासक शुद्ध, दायक श्री जिनवर कह्यो।।
५४. असंजती नें तेह, श्रावक गुरु किम जाणस्यै?
वलि गुरु जाणी जेह, किम दै सचित्त असूझतो?
५५. तथारूप श्रमण माहन्न, अचित्त सूझतो तसु दियां।
एकांत निर्जर जन्न, तिण में सहु मुनि आविया।।
५६. तथारूप असंजत मांहि, सर्व असंजत आविया।
पाप न पच्चख्या ताहि, एहवा लछ[2] तिहां कह्या।।

४२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा असणं वा (४) देति, देंतं वा सातिज्जति।
(निसीहज्झयणं १५।७६)

४३. उद्देसियं कीयगडं पामिच्चं चेव आहडं।
पूति अणेसणिज्जं च तं विज्जं! परिजाणिया।।
(सूयगडो १।६।१४)

४४,४५. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—
(उवासगदसाओ ७।५१)

४६. से णं भंते! पुरिसे पुव्वभवे के आसि?……किं वा दच्चा किं वा भोच्चा… (विवागसुयं १।४२)

४७. चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी…
(ठाणं ४।५३७)

क्षेत्रवर्षी—पात्रे दान-श्रुतादीनां निक्षेपकः, अन्यो विपरीतो……(ठाणं वृ० प० २६०)

४८,४९. कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं परिग्गहं च।
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं।। (उत्तर० १२।१४)

५०. तए णं सा चोक्खा परिव्वाइया मिहिलाए बहूणं राईसर जाव सत्थवाहपभिईणं पुरओ दाणधम्मं च सोयधम्मं च…उवदंसेमाणी विहरइ।
(नायाधम्मकहाओ ८।१४०)

१. सम्प्रदाय का प्रमुख २. लक्षण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. तथारूप असंजति मांहि, मत नो धोरी जे कहै ।
तो तथारूप श्रमण में ताहि, तीर्थंकर तसु लेख है ।।
५८. पडिलाभेइ तास, गुरु बुद्धि अर्थ करै तसु ।
ते पिण बिना विमास, प्रत्यक्ष अशुद्ध पिछाणजो ।।
५९. ठाणांग तीजै ठाण, पंचम शतके भगवती ।
छठै उदेशै जाण, बंध अशुभ दीर्घायु नों ।।
६०. जीव हिंसा नैं झूठ, तथारूप श्रमण माहण भणी ।
हेली निंदी आक्रूट, गरही वलि खिंसी करी ।।
६१. अपमानी चिउं आहार, अमनोज्ञ अप्रीतिकारियो ।
प्रतिलाभ्यां थी धार, अशुभ दीर्घायू बंधै ।।
६२. हेली निंदी आहार, अमनोज्ञ अप्रीतिकारियो ।
गुरु जाणी दातार, किण विध देवै एहवो ।।
६३. मुनि नो द्वेषी एह, ते हेली निंदी करी ।
अणगमतो पिंड देह, पडिलाभेइ पाठ त्यां ।।
६४. तिण कारण अवधार, पडिलाभेइ नों अरथ ।
देवा तणो विचार, प्रतिलाभै कहितां दियै ।।
६५. जब कोइ कहै वाय, श्रमण माहण नैं दै तिहां ।
पडिलाभेइ ताय, अन्य स्थान पडिलाभ नहीं ।।

५९-६१. तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—पाणे अतिवातित्ता भवइ, मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता णिंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमाणित्ता अण्णयरेणं अमणुण्णेणं अपीतिकारतेणं असणपाणखाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति । (ठाणं ३।१९)
(भगवती ५।१३६)

६६. सेठ सुदर्शन सोय, शुकदेव भणी प्रतिलाभतो ।
विचरै भाख्यो सोय, ज्ञाता अध्येन पंचमै ।।
६७. इहां शुकदेव विचार, अन्यतीर्थी कहै ते भणी ।
विस्तीर्ण बहु आहार, प्रतिलाभै गणधर कह्यो ।।
६८. प्रतिलाभै मुनि स्थान, थाप्यो ते पिण नां मिल्यो ।
तिण कारण इम जान, मुनि नो पिण कारण नहीं ।।
६९. पडिलाभेइ ताम, देवा तणुंज नाम छै ।
मुनि अन्यतीर्थिक आम, गुरु बुद्धि ए त्रिहुं नियम नहि ।।

६६,६७. तए ण से सुदंसणे सुयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा हट्ठतुट्ठे सुयस्स अंतिए सोयमूलयं धम्मं गेण्हइ, गेण्हित्ता परिव्वायए विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे संखसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।
(नायाधम्म० ५।५६)

७०. दक्खिणाए पडिलंभ, दान तणो लेवो जिहां ।
मौन रहै मुनि बंभ, सूगडांग इकवीसमे ।।
७१. दक्खिणाए कहितां दान, पडिलंभ प्राप्ति तेहनी ।
दान ग्रहण पहिछान, मौन अद्धा वर्त्तमान ए ।।
७२. इहां पिण सावज दान, असंजती नैं जे दियै ।
पडिलंभ पाठ पिछान, सूत्र देख निर्णय करो ।।
७३. इत्यादिक अवलोय, प्रतिलाभै कहितां दियै ।
संक्षेपे हिव सोय, पूर्वोक्त कहूं वारता ।।

७०. दक्खिणाए पडिलंभो अत्थि वा नत्थि वा पुणो ।
ण वियागरेज्ज मेहावी, संतिमग्गं च बूहए ।।
(सूयगडो २।५।३२)

७४. तथारूप श्रमण माहन्न, श्रावक प्रतिलाभैज शुद्ध ।
अष्टम शतक वचन्न, छठै उदेशै भगवती ।।

७४. भगवती ८।२४५

७५. तथारूप श्रमण माहन्न, प्रतिलाभै हेली निंदी ।
वलि अणगमतो अन्न, पंचम शत उद्देश छठ ।।

७५. भगवती ५।१३६



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. ज्ञाता मांहि अदंभ, प्रतिलाभै सुकदेव नें।
दक्खिणाए पडिलंभ, सूगडांग इकवीसमें ।।
७७. श्रावक देवै सोय, पडिलाभ पाठ कह्यो तिहां।
धर्मद्वेषी दे कोय, त्यां पिण पडिलभ पाठ है ।।
७८. साधु नें दे सोय, त्यां पिण पडिलभ पाठ है।
दे अन्यतीर्थक नें कोय, त्यां पिण पडिलभ पाठ है ।।
७९. अन्य असंजति देह, त्यां पिण पडिलभ पाठ है।
तिण कारण वच एह, गुरु बुद्धि रो कारण नहीं ।।
८०. केइक निपट अजान, श्रमण कहै साधू भणी।
माहण श्रावक दान, एकांत निर्जर तसु कहै ।।
८१. प्रथम पाठ नों अर्थ, विरुद्ध करै इण रीत सूं।
पिण पडिलाभ तदर्थ, इहां पिण पाठ अछै इसो ।।
८२. पडिलभ गुरु बुद्धि होय, तो माहण श्रावक भणी।
गुरु बुद्धि किम दे सोय, तसु लेखै पिण ऊथप्यो ।।
८३. पडिलभ गुरु बुद्धि होय, तो माहण श्रावक नहीं।
माहण श्रावक सोय, तो पडिलभ गुरु बुद्धि नहीं ।।
८४. तसु लेखे पिण एम, विरुद्ध परस्पर अर्थ इम।
परम दृष्टि धर प्रेम, निमल न्याय चित में धरो ।।
८५. माहण श्रावक अर्थ, पडिलभ नों गुरु बुद्धि कहै।
ए दोनूंइ तदर्थ, विरुद्ध अर्थ पहिछाणज्यो ।।
८६. श्रावक भणीज ताहि, माहण तसु कहियै नहीं।
पडिलभ गुरु बुद्धि नांहि, पडिलभ नाम देवा तणो ।।
८७. ते माटै पहिछाण, श्रावक असंजती भणी।
प्रतिलाभै दै दान, तेहनें एकांत पाप ह्वै ।।' (ज०स०)

७६. नायाधम्मकहाओ १।५६
सूयगडो २।५।३२

## दूहा

८८. दान तणां अधिकार थी, दान तणोज विचार।
कहियै छै ते सांभलो, वीर वचन हितकार ।।

८८. दानाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ३७४)

८९. *निर्ग्रंथ गृहस्थ घरे गोचरी, पिंड नुं पड़वूं जाणी।
मुझ पात्रा में होइस एहवी, बुद्धि कर गयो पिछाणी ।।

८९. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठं
पिण्डस्य पातो मम पात्रे भवत्वितिबुद्धयेत्यर्थः (वृ० प० ३७४)

९०. दोय पिंड कोइ गृहस्थ निमंत्रे, हे आउखावंतो!
एक पिंड तो तुम्हैं जीमजो, एक स्थविरां नैं दिंतो ।।

९०. केइ दोहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो!
अप्पणा भुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि।

९१. निर्ग्रंथ ते पिंड प्रति लेइनैं, स्थविर तणी पहिछाणी।
गवेषणा करवी मन साचै, ऊजम अधिको आणी ।।

९१. से य तं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया

*लय : गरब न कीजे रे सतगुरु सीखड़ली



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. गवेषणा करतांज कदाचित, जे स्थानक में तासो।
स्थविर प्रतै देखै छै त्यांहिज, देणो पिंड हुलासो॥
९३. गवेषणा करतां निश्चै करि, कदा स्थविर नहिं देखै।
ते पिंड प्रति पोतै न भोगवै, ए जिन आण अवेखै॥
९४. स्थविर बिना अन्य मुनि नें न दियै, अदत्त प्रसंग कहीजै।
गृही कह्यो स्थविर प्रतैंज दीजियै, अन्य भणी नहिं दीजै॥

९५. ताम जायवो एकांत स्थानक, गृही नांवै नवि देखै।
तेह अचित्त बहुप्रासुक जे, स्थंडिल प्रतै अवेखै॥

**सोरठा**

९६. बहु विध फासू जोय, बहु प्रासुक कहियै तसु।
अचित्त भूमि अवलोय, अल्पकाल तेहनें थयो॥
९७. विस्तीरण पहिछाण, वली दूर अवगाढ़ ते।
नहीं बीज त्रस प्राण, बहु प्रासुक कहियै तसु॥

९८. *दृष्टि करि पडिलेही स्थंडिल, जंतू पूंजी सोयो।
ते पिंड परिठविवो विध सेती, ए जिन आज्ञा होयो॥
९९. गृही घर आहार लेवा नें साधु, कियो प्रवेश पिछाणी।
तीन पिंड कोइ गृहस्थ धामै, बोलै इह विध वाणी॥
१००. एक पिंड पोतै भोगवजो, दोय स्थविर नें दीजै।
तेह पिंड ले स्थविर गवेषै, शेष तिमज विध कीजै॥

१०१. यावत प्रासुक स्थान परिठवै, इम यावत अवलोयो।
दस पिंड कोइ गृहस्थ निमंत्रै, णवरं विशेषज होयो॥
१०२. एक पिंड पोतै भोगविजै, नव स्थविरां नें दीजै।
शेष तिमज यावत परिठविवो, आज्ञा ले जीमीजै॥

१०३. निर्ग्रंथ गृही घर यावत कोई, दोय पात्र धामीजै।
एक पात्र पोतै भोगवजो, एक स्थविर नें दीजै॥

१०४. तेह पात्र ग्रही तिमहिज यावत, स्थविर न लाधां तेहो।
पोतै पात्र विषे नहिं जीमै, अन्य भणी नहिं देहो॥
१०५. शेष जाव तिमहिज परिठवियै, इम यावत पहिछाणी।
पात्र दसूं तांइ ए कहिवो, पिंड तणी पर जाणी॥

*लय : गरब न कीजै रे सतगुरु सीखड़ली

९२. जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्प-दायव्वे सिया।
९३. नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तं नो अप्पणा भुंजेज्जा
९४. नो अण्णेसिं दावए
अदत्तादानप्रसंगात्, गृहपतिना हि पिण्डोऽसौ विवक्षित-स्थविरेभ्य एव दत्तो नान्यस्मै इति।
(वृ० प० ३७५)
९५. एगंते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले
'एगंते' त्ति जनालोकवर्जिते 'अणावाए' त्ति जनसंपात-वर्जिते (वृ० प० ३७५)

९६,९७. बहुधा प्रासुकं बहुप्रासुकं तत्र, अनेन चाचिरकालकृते विकृते विस्तीर्णे दूरावगाढे त्रसप्राणबीजरहिते चेति संगृहीतं द्रष्टव्यमिति। (वृ० प० ३७५)

९८. पडिलेहेत्ता पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया।
(श० ८।२४८)
९९. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्प-विट्ठं केइ तिहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—
१००. एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, दो थेराणं दलयाहि से य ते पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सेसं तं चेव
१०१. जाव (सं० पा०) परिट्ठावेयव्वा सिया। एवं जाव दसहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा नवरं—
१०२. एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि, नव थेराणं दल-याहि।
सेसं त चेव जाव परिट्ठावेयव्वा सिया।
(श० ८।२४९)
१०३. निग्गंथं च णं गाहावइ जाव (सं० पा०) केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा—एगं आउसो! अप्पणा पडिभुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि।
१०४. से य तं पडिग्गाहेज्जा तहेव जाव (सं० पा०) तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अण्णेसिं दावए।
१०५. सेसं तं चेव जाव (सं० पा०) परिट्ठावेयव्वे सिया। एवं जाव दसहिं पडिग्गहेहिं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०६. वक्तव्यता जिम कही पात्र नीं, गोच्छो तिमज सुमंडो ।
रजोहरण नें चोलपटो, वलि कंबल लाठी दंडो ।।
१०७. संथारा नीं वक्तव्यता पिण, कहिवी इणहिज रीतं ।
यावत दस संथारा धामै, जाव परिठवै प्रीतं ।।
१०८. अंक छयांसी देश ढाल ए, एक सौ चोमालीसं ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय' सुख विस्वावीसं ।।

१०६. एवं जहा पडिग्गहवत्तव्वया भणिया, एवं गोच्छग-रयहरण-चोलपट्टग-कंबल-लट्ठि-
१०७. संथारगवत्तव्वया य भाणियव्वा जाव दसहिं संथारएहिं उवनिमंतेज्जा जाव परिट्ठावेयव्वा सिया ।
(श० ८।२५०)

## ढाल : १४५

### दूहा

१. निग्रंथ नां प्रस्ताव थी, निग्रंथ तणो विचार ।
पद आराधक पामियै, तेह तणो अधिकार ।।

१. निर्ग्रन्थप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० ३७५)

*साहिब ! परम पियारा हो । परम पियारा,
परम पियारा, परम पियारा हो ।
जगत-प्रभु ! तुझ वचनामृत पान,
लागै परम पियारा हो ।। (ध्रुपदं)

२. निर्ग्रन्थ गृहस्थ नें घरे कोइ, गयो आहार नै ताहि ।
अकृत्य-स्थान अकारण सेव्यो, मूल गुणादिक मांहि ।।

२. निग्गंथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए,
मूलगुणादिप्रतिसेवारूपोऽकार्यविशेषः ।
(वृ० प० ३७६)

३. पश्चाताप ऊपनों पाछै, जद मन एहवी धार ।
इहांईज हिवड़ां ए स्थानक हूं, आलोवूं सुविचार ।।

३. तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि
तस्य निर्ग्रन्थस्य सञ्जातानुतापस्य । (वृ० प० ३७६)

### सोरठा

४. आचार्य नें जान, चित्त विषे स्थापन करी ।
आलोविवुं गुणखान, एहवी मन में चिंतवी ।।
५. आचार्य अवधार, दोय प्रकारे दाखिया ।
गणाचार्य सुविचार, तथा वाचनाचार्य फुन ।।
६. आसातना अधिकार, तुर्य अध्येनै आवश्यक ।
आचार्य कही सार, कह्या वाचनाचार्य फुन ।।

४. 'आलोचयामि' स्थापनाचार्यनिवेदनेन ।
(वृ० प० ३७६)
५,६. तेत्तीसाए आसायणाहिं—........आयरियाणं आसायणाए........वायणारियस्स आसायणाए........
(आवस्सयं ४।८)

७. *पडिकमुं मिच्छामिदुक्कडं द्यूं, निंदूं हूं निज साख ।
गर्हा गुरु नीं साख करीनें, इम चित में अभिलाख ।।

७. पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि
'प्रतिक्रमामि' मिथ्यादुष्कृतदानेन, 'निंदामि' स्वसमक्षं स्वस्याकृत्यस्थानस्य वा कुत्सनेन 'गर्हे' गुरुसमक्षं कुत्सनेन । (वृ० प० ३७६)

*लय : कांइ न मांगा जो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

८. 'गुरु साखे सुखकार, गणपति ते आचार्य गुरु ।
फुन दीक्षा-दातार, ते दीक्षा-गुरु दीपता ॥
९. इहां गुरु साखे जाण, निंदै दुःकृत कर्म नैं ।
ते गुरु दिल में आण, ते आश्री ए वचन है ॥
१०. अणसण अवसर जाण, रायप्रश्रेणी में कह्यो ।
प्रदेशी पहिछाण, आख्यो छै इण रीत सूं ॥
११. पूर्वे केशी पास, अणुव्रत म्हैं आदर्‌या ।
सर्व थकी हिव तास, तेह समीपै हिव करूं ॥
१२. तिम इहां पिण अवलोय, आपणपै गुरु साख थी ।
दुःकृत निंदै सोय, ते गुरु याद करी इहां ॥' (ज० स०)

१३. *विउट्टामि तेहनां बंधन नैं, तोड़ूं छेदूं ताम ।
विसोहेमि कहितां दंड लेवूं, पंक पखालूं आम ॥

१४. अणकरिवै करिनैं हूं ऊठूं, थई अधिक उजमाल ।
यथायोग्य जे प्रायश्चित्त, पडिवजुं तपसा न्हाल ॥
१५. ए गीतार्थपणा थकी ह्वै, अन्य भणी ए नांय ।
गीतार्थ नहीं ते पिण मन में, पश्चाताप कराय ॥
१६. ते मन चिंतै मिच्छामिदुक्कडं, पोतै देसूं ताय ।
तठा पछै हूं स्थविर समीपे, लेसूं आलोयण जाय ॥
१७. यावत तपोकर्म पडिवजसूं, इम चिंतव मन मांहि ।
स्थविर समीपे आलोयणादिक, करिवा चाल्यो ताहि ॥
१८. स्थविरां पासे ते नहिं पूगो, सुणियो मारग मांय ।
स्थविर निर्वाच थया वायादिके, मुख बोल्यो नहिं जाय ॥

### सोरठा

१९. आलोचनादिक हेत, तसु परिणाम छतै अपि ।
स्थविरां स्वस्थ सचेत, नवि आलोचन करि सकै ॥

२०. *तिण कारण ए प्रश्न पूछ्‌चो, आराधक ए स्वाम ।
अथवा तास विराधक कहियै ? इम पूछे अभिराम ॥
२१. जिन कहै मोक्ष मार्ग नों आराधक, नहीं विराधक जेह ।
आलोयण नें सन्मुख माटै, भाव शुद्ध थी एह ॥

२२. द्वितीय आलावे ते मुनि चाल्यो, पूगो नहिं स्थविरां पाय ।
आप निर्वाच थयो वायादिक थी, मुख बोल्यो नहिं जाय ॥

---

*लय : कांइ न मांगा जी

१०,११. तए णं से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अप्प-दुस्समाणे जेणेव पोसहसाला....पुव्विं पि मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए ....सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं जावज्जीवाए पच्चक्खामि ।
(रायपसेणइय सू० ७९६)

१३. विउट्टामि विसोहेमि
वित्रोटयामि—तदनुबन्धं छिनद्मि 'विशोधयामि' प्रायश्चित्तपङ्कं प्रायश्चित्ताभ्युपगमेन ।
(वृ० प० ३७६)

१४. अकरणयाए अब्भुट्ठेमि अहारियं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जामि ।

१५. एतच्च गीतार्थतायामेव भवति नान्यथा
(वृ० प० ३७६)

१६. तओ पच्छा थेराणं अंतियं आलोएस्सामि

१७. जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि ।

१८. से य संपट्ठिए असंपत्ते, थेरा य पुव्वामेव अमुहा सिया
अमुखाः निर्वाचः स्युर्वातादिदोषात्
(वृ० प० ३७६)

१९. ततश्च तस्यालोचनादिपरिणामे सत्यपि नालोचनादि संपद्यते ।
(वृ० प० ३७६)

२०. इत्यतः प्रश्नयति । (वृ० प० ३७६)
से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?

२१. गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।
'आराहए' त्ति मोक्षमार्गस्याराधकः शुद्ध इत्यर्थः भावस्य शुद्धत्वात् । (वृ० प० ३७६)

२२. से य संपट्ठिए असंपत्ते, अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. आराधक प्रभु ! तेह विराधक ? जिन भाखै सद्भाव ।
तेह आराधक नहीं विराधक, ए दूजो आलाव ।।
२४. वलि आलोयणादिक नें चाल्यो, पूगो नहिं स्थविरां पास ।
मार्ग मांहि सुण्यो काल कीधो, स्थविर बड़ा गुण-रास ।।
२५. आराधक प्रभु ! तेह विराधक ? तब भाखै भगवान ।
छै आराधक नहीं विराधक, तृतीय आलावो जान ।।
२६. वलि आलोयणादिक नें चाल्यो, पूगो नहिं स्थविरां पास ।
विच में पोतै काल कियो प्रभु ! ते मुनिवर गुणरास ।।
२७. आराधक प्रभु ! तेह विराधक ? तब भाखै भगवान ।
छै आराधक नहीं विराधक, तुर्य आलावो जान ।।

**सोरठा**

२८. चाल्यो पहुंतो नांय, च्यार आलावा तसु कह्या ।
पहुंतो स्थविरां पाय, तसु चिहुं आलावा कहूं ।।

२९. *आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरां पास ।
स्थविर निर्वाच थया वायादिक थी, बोलणी नांवै तास ।।
३०. हे प्रभु ! ते मुनि स्यूं आराधक, तथा विराधक जेह ?
जिन कहै कहियै तास आराधक, नहीं विराधक तेह ।।
३१. आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरां पाय ।
आप निर्वाच थयां आराधक, नहीं विराधक ताय ।।

३२. आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरां पाय ।
स्थविर काल कीधां आराधक, मुनी विराधक नांय ।।

३३. आलोयणादिक लेवा चाल्यो, पहुंतो स्थविरां पाय ।
पोते काल कियां आराधक, तेह विराधक नांय ।।

३४. स्थविर कनैं अणपूगां नां धुर, चिहुं आलावै भाव ।
तिमज स्थविर पासे पहुंता नां, ए सहु अठ आलाव ।।
३५. निर्ग्रंथ स्थानक बाहिरे कांइ, स्थंडिल भूमी जाय ।
तथा सज्झाय करण नीकलियो, त्यां कोइ दोष लगाय ।।
३६. दोष निवर्त्ती इम मन चिंतै, पोतै हूं आलोय ।
एम इहां पिण तिमहिज भणवा, आठ आलावा जोय ।।

३७. मुनि ग्रामानुग्राम विचरतां, विहार करंता जोय ।
करिवा जोग नहीं ते स्थानक, दोषण सेव्यो कोय ।।
३८. ते मन चिंतै प्रथम आलोइस, पछै स्थविर रै पाय ।
इहां पिण तिमहिज आठ आलावा, जाव विराधक नांय ।।

२३. से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।
२४. से य संपट्ठिए असंपत्ते, थेरा य कालं करेज्जा ।

२५. से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।
२६. से य संपट्ठिए असंपत्ते, अप्पणा य पुव्वामेव कालं करेज्जा ।
२७. से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।

२९. से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य अमुहा सिया ।

३०. से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।
३१. से य संपट्ठिए संपत्ते, अप्पणा य अमुहे सिया । से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।
३२. से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य कालं करेज्जा । से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए, नो विराहए ।
३३. से य संपट्ठिए संपत्ते, अप्पणा य कालं करेज्जा । से णं भंते ! किं आराहए ? विराहए ?
गोयमा ! आराहए नो विराहए । (श० ८।२५१)
३४. इत्येवं चत्वारि असंप्राप्तसूत्राणि संप्राप्तसूत्राण्यप्येवं चत्वार्येव एवमेतान्यष्टौ । (वृ० प० ३७६)
३५. निग्गंथेण य बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खंतेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए
३६. तस्स णं एवं भवति—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि—एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए । (श० ८।२५२)
३७. निग्गंथेण य गामाणुगामं दूइज्जमाणेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए
३८. तस्स णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि—एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा जाव नो विराहए । (श० ८।२५३)

*लय : कांइ न मांगा जी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. गृहपति-घर पिंड-अर्थ साधवी, पैठां दोष लगाय।
तसु मन इम ह्वै इहां इज पहिलां, हूं आलोविस ताय॥

३९. निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठाए अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तीसे णं एवं भवइ—इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि

४०. यावत तप मन सूं पडिवजसूं, पछै पवित्रणी पाय।
आलोवणादिक करिसूं यावत, पडिवजसूं तप ताय॥

४०. जाव तवोकम्मं पडिवज्जामि, तओ पच्छा पवत्तिणीए अंतियं आलोएस्सामि जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि।

४१. आलोयणादिक लेवा चाली, पिण पहुंती नहिं ताय।
पवित्रणी निर्वाचि हुई तब, मुख बोल्यो नहिं जाय॥

४१. सा य संपट्ठिया असंपत्ता, पवत्तिणी य अमुहा सिया।

४२. तिका साधवी आराधक प्रभु! है क विराधक तेह?
श्री जिन भाखै तिका आराधक, नहीं विराधक जेह॥

४२. सा णं भंते! किं आराहिया? विराहिया?
गोयमा! आराहिया, नो विराहिया।

४३. निर्ग्रंथ नां त्रिण गमा कह्या जिम, निर्ग्रंथी नां तीन।
गोचरी दिशा सज्झाय-भूमिका, वलि विहार नां चीन॥

४३. सा य संपट्ठिया जहा निग्गंथस्स तिण्णि गमा भणिया एवं निग्गंथीए वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा।

४४. जाव आराधक तिका साधवी, नथी विराधक जेह।
किण अर्थे प्रभुजी! इम भाख्यो? हिव जिन उत्तर देह॥

४४. जाव आराहिया नो विराहिया। (श० ८।२५४)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—आराहए? नो विराहए?

४५. यथा दृष्टांते कोयक नर इक, मोटो ऊर्णालोम[1]।
सण नां लोम प्रतै अथवा वलि, कपास नां जे रोम॥

४५. गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे एगं महं उण्णालोमं वा, ····सणलोमं वा, कप्पासलोमं वा

४६. अथवा तृण नां अग्र प्रतै वलि, बे त्रिण संख प्रकार।
छेदीनें जे अग्निकाय में, प्रक्षेपै तिणवार॥

४६. तणसूयं वा दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिंदित्ता अगणिकायंसि पक्खिवेज्जा
'तणसूयं व' त्ति तृणाग्रं वा (वृ० प० ३७६)

४७. ते निश्चै करिनैं हे गोतम! छेदवा मांड्यो जान।
छेद्यो तास कहीजै छै ते, इम पूछै भगवान॥

४७. से नूणं गोयमा! छिज्जमाणे छिण्णे

४८. प्रक्षेपवा मांड्यो तेहनें, प्रक्षेप्यो कहिजै ताय।
दह्यमान बालवा मांड्यूं, बाल्यूं दग्ध कहाय?

४८. पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते दज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया?

४९. गोतम भाखै हंता भगवन! छिद्यमान ते छिण्ण।
जाव बालिवा मांड्यो तेहनें, बाल्यूं कहियै जन्न॥

४९. हंता भगवं! छिज्जमाणे छिण्णे, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, दज्झमाणे दड्ढे त्ति वत्तव्वं सिया

### सोरठा

५०. क्रिया-काल नैं जाण, निष्ठा-काल तणैं वली।
अभेद करि पहिछाण, खिण-खिण निष्पत्ति कार्य नीं॥

५०. क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदेन प्रतिक्षणं कार्यस्य निष्पत्तेः (वृ० प० ३७६)

५१. वर्त्तमान जे काल, क्रिया-काल कहियै तसु।
निष्ठा-काल निहाल, अद्धा-समाप्ति भणी कह्युं॥

५२. ए बेहूं नो तेथ, अभेद करि खिण-खिण प्रतै।
कार्य निष्पत्ति समेत, छिज्जमाण छिन्न ते भणी॥

५२. छिद्यमानं छिन्नमित्युच्यते (वृ० प० ३७६)

५३. इम मुनि भाव उचित्त, आलोचना परिणत छतै।
आराधना प्रवृत्त, ते आराधक ईज छै॥

५३. एवमसावालोचनापरिणतौ सत्यामाराधनाप्रवृत्त आराधक एवेति। (वृ० प० ३७६)

१. अंगसुत्ताणि में 'उण्णालोमं' के बाद 'गयलोमं' पाठ है। जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में शायद यह पाठ नहीं होगा, इसलिए इसकी जोड़ नहीं है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. *यथा दृष्टांत वली ए दूजो, कोइक पुरुष विचार ।
नवो वस्त्र अथवा धोयो ते, तंतुगतं वा धार ।।
५५. तुरी वेमादिक थकी ऊतर्‌यो, मजीठ रंग नों जाण ।
तेहनीं द्रोणि भाजन में घालै, रंगवा नैं पहिछाण ।।

५४,५५. से जहा वा केइ पुरिसे वत्थं अहतं वा धोतं वा तंतुग्गयं वा मंजिट्ठ-दोणीए पक्खिवेज्जा
'अहतं' नवं 'धोयं' ति प्रक्षालितं तंतुग्गयं' ति तन्त्रोद्‌गतं तुरिवेमादेरुत्तीर्णमात्रं मंजिट्ठादोणीए' त्ति मञ्जिष्ठारागभाजने (वृ० प० ३७६)

५६. ते निश्चै करिनैं हे गोतम ! वस्त्र प्रतै जे ताय ।
उखेलवा मांड्यो छै तिण नैं, उखेलियो कहिवाय ।।

५६. से नूणं गोयमा ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते ?

५७. प्रक्षेपवा मांड्यो भाजन में, प्रक्षेप्यूं कहिवाय ।
रंगवा मांड्यूं छै वस्त्र नैं, रंग्यो कहीजै ताय ?

५७. पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते रज्जमाणे रत्ते त्ति वत्तव्वं सिया ?

५८. गोतम भाखै हंता भगवं ! जेह वस्त्र नैं ताय ।
उखेलवा मांड्यो छै तेहनैं, उखेल्यो कहिवाय ।।

५८. हंता भगवं ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते

५९. यावत रंगवा मांड्यो तिण नैं, रंग्यो कहीजै स्वाम ।
तिण अर्थे गोतम ! इम भाख्यो, तेह आराधक ताम ।।

५९. जाव (सं० पा०) रत्ते त्ति वत्तव्वं सिया। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—आराहए, नो विराहए ।
(श० ८।२५५)

६०. अंक छयांसी देश ढाल ए, एक सौ पैंतालीस ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय' सुख विस्वावीस ।।

## ढाल : १४६

### दूहा

१. प्रवर आराधक महामुनि, दीपक जिम दीपंत ।
दीप तणोज स्वरूप हिव, ए अधिकार कहंत ।।

१. आराधकश्च दीपवद्दीप्यत इति दीपस्वरूपं निरूपयन्नाह— (वृ० प० ३७६)

२. दीवो बलै ते स्यूं प्रभु ! दीवो बलैज ताय ?
लट्ठी शिखा प्रमुख जे, दीवा नों समुदाय ।।

२. पदीवस्स णं भंते ! झियायमाणस्स किं पदीवे झियाइ ?
प्रदीपो दीपयष्ट्यादिसमुदायः । (वृ० प० ३७७)

३. लट्ठी दीप-शिखा बलै, अथवा वाट बलंत ।
तेल बलै कै ढाकणो, दीवा तणो जलंत ?

३. लट्ठी झियाइ ? वत्ती झियाइ ? तेल्ले झियाइ ? दीवचंपए झियाइ ?
'लट्ठि' त्ति दीपयष्टिः 'वत्ति' त्ति दशा 'दीवचंपए' त्ति दीपस्थगनकं । (वृ० प० ३७७)

४. अथवा अग्नि बलै अछै ? तब भाखै जिनराय ।
दीवो न जलै जाव तसु, बलै ढाकणो नांय ।।

४. जोती झियाइ ?
गोयमा ! नो पदीवे झियाइ जाव (सं० पा०) नो दीवचंपए झियाइ (श० ८।२५६)
'जोइ' त्ति अग्निः (वृ० प० ३७७)

---

*लय : कांइ न मांगा जी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. तेऊ—अग्नि बलै अछै, ए निश्चय-नय वाय ।
अग्नि तणां प्रस्ताव थी, वलि तेहिज कहिवाय ।।

५. जोती झियाइ ।
ज्वलनप्रस्तावादिदमाह— (वृ० प० ३७७)

६. गृह आगार ते खरकुटी, हे प्रभु ! जलंते जेह ।
स्यूं आगार कुटीगृह बलै ? कुड्डा भींति बलेह ?

६. अगारस्स णं भंते ! झियायमाणस्स किं अगारे झियाइ ? कुड्डा झियाइ ?
इह चागारं—कुटीगृहं 'कुड्ड' त्ति भित्तयः (वृ० प० ३७७)

७. कै कडणा—त्राटी जलै, बली धारणा ताय ?
वलहरण—आधार जे थूणी बलै कहाय ?

७. कडणा झियाइ ? धारणा झियाइ ?
'कडण' त्ति त्रट्टिकाः 'धारण' त्ति बलहरणाधारभूते स्थूणे । (वृ० प० ३७७)

८. अथवा वलहरणा जलै ? धारण ऊपर ताम ।
तिरछो लांबो लाकड़ो, मोभ प्रसिद्धज नाम ।।

८. वलहरणे झियाइ ?
'बलहरणे' त्ति धारणयोरुपरिवर्त्ति तिर्यगायतकाष्ठं 'मोभ' इति यत्प्रसिद्धम् (वृ० प० ३७७)

९. जलै वंश छजावटी, छित्वर आधारभूत ।
कै मल्ला—थांभा बलै ? कुड्या अवष्टंभ सूत ।।

९. वंसा झियाइ ? मल्ला झियाइ ?
'वंस' त्ति वंशाश्छित्वराधारभूताः 'मल्ल' त्ति मल्लाः—कुड्यावष्टम्भनस्थाणवः बलहरणाः (वृ० प० ३७७)

१०. बाग—मूंज वंशादि नां, बंधनभूत बलेह ।
छित्वर ते वंशादिमय, छादन आधार जेह ।।

१०. वागा झियाइ ? छित्तरा झियाइ ?
'वाग' त्ति वल्का—वशांदिबन्धनभूता वटादित्वचः 'छित्तर' त्ति छित्वराणि—वंशादिमयानि छादनाधारभूतानि किलिञ्जानि । (वृ० प० ३७७)

११. छान—दर्भादिमय पटल ? कै प्रभु ! अग्नि बलेह ?
इम गोयम पूछै छते, हिव जिन उत्तर देह ।।

११. छाणे झियाइ ? जोती झियाइ ?
'छाणे' ति छादनं दर्भादिमयं पटलमिति । (वृ० प० ३७७)

१२. आगार कुटीगृह नहिं जलै, न बलै भींति तिवार ।
यावत छान जलै नहीं, बलै अग्नि अवधार ।।

१२. गोयमा ! नो अगारे झियाइ, नो कुड्डा झियाइ जाव नो छाणे झियाइ, जोति झियाइ । (श० ८।२५७)

१३. आखी ज्वलन-क्रिया इहां, परतनु-आश्री तेह ।
परतनु-आश्रित हिव क्रिया, जीव नारकादेह ।।

१३. इत्थं च तेजसां ज्वलनक्रिया परशरीराश्रयेति परशरीरमौदारिकाद्याश्रित्य जीवस्य नारकादेश्च क्रिया अभिधातुमाह— (वृ० प० ३७७)

*रे भवियण ! जिन-वच महा जयकारो ।
स्वाम-वयण री आसथा राख्यां पामै भवदधि पारी । (ध्रुपदं)

१४. एक जीव नै हे भगवंत जी ! अन्य पृथिव्यादि जाण ।
तेहनां जे एक ओदारिक आश्रयी, केतली क्रिया पिछाण ?

१४. जीवे णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?
औदारिकशरीरात्—परकीयमौदारिकशरीरमाश्रित्य कतिक्रियो जीवः ? (वृ० प० ३७७)

१५. जिन कहै कदा क्रिया त्रिण थावै, कदा क्रिया हुवै च्यार ।
कदाचित पंच क्रिया होई, कदा अकिरिया उदार ।।

१५. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए सिय पंचकिरिए । सियअकिरिए । (श० ८।२५८)

**सोरठा**

१६. एक जीव नें जोय, पृथव्यादिक इक जीव तनु ।
ते आश्री अवलोय, कदा तीन क्रिया कही ।।

१६. यदैको जीवोऽन्यपृथिव्यादेः सम्बन्ध्यौदारिकशरीरमाश्रित्य कायं व्यापारयति तदा त्रिक्रियः । (वृ० प० ३७७)

***लय : रे भवियण ! सेवो रे साधु सयाणा**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. एक तथा बे जोय, इहविध तो पावै नहीं।
जो किरिया तसु होय, तो तीनां सूं नहि घटै॥

१७. एतासां च परस्परेणाविनाभूत्वात् स्यात्त्रिक्रिय इत्युक्तं न पुनः स्यादेकक्रियः स्याद्द्विक्रिय इति।
(वृ० प० ३७७)

१८. पन्नवण सूत्रे पेख, बावीसमां पद नें विषे।
जेह जीव नें देख, क्रिया होवै इह विधे॥

१८. उक्तञ्च प्रज्ञापनायामिहार्थे— (वृ० प० ३७८)

१९ क्रिया काइया तास, नियमा तसु अधिकरणकी।
अहिगरणिया जास, नियमा तसु काइया तणी॥
२०. इत्यादिक सुविचार, मांहोमांहि त्रिहुं क्रिया।
नियमा कहि जगतार, ते माटै इक बे न ह्वै॥

१९, २०. जस्स णं जीवस्स काइआ किरिया कज्जति तस्स अहिगरणिया किरिया नियमा कज्जति, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ तस्स वि काइया किरिया नियमा कज्जइ? गोयमा! जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स अहिगरणी नियमा कज्जति, जस्स अहिगरणी किरिया कज्जति तस्स वि काइया किरिया णियमा कज्जति।
जस्स णं भंते! जीवस्स काइया किरिया कज्जति तस्स पाओसिया किरिया कज्जति? जस्स पाओसिया किरिया कज्जति तस्स काइयाकिरिया कज्जति?
गोयमा! एवं चेव। (पन्नवणा २२।४८,४९)

२१. वली काइया ताय, भजना परितावणिया तणी।
इमज पाणाइवाय, दोय तणी भजना कही॥

२१. जस्स णं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया सिय कज्जइ, सिय नो कज्जइ इत्यादि।
(वृ० प० ३७८)

२२. ते माटै धुर तीन, तनु व्यापार करी हुवै।
जो परितापन कीन, तो चउथी परितापकी॥

२२. ततश्च यदा कायव्यापारद्वारेणाद्यक्रियात्रय एव वर्त्तते न तु परितापयति न चातिपातयति तदा त्रिक्रिय एवेत्यतोऽपि स्यात्त्रिक्रिय इत्युक्तं, यदा तु परितापयति तदा चतुष्क्रियः। (वृ० प० ३७८)

२३. जीव काया ह्वै न्यार, तो पाणाइवाय पिण।
तास पंच सुविचार, तेहनों न्याय वली कहूं॥

२३. यदा त्वतिपातयति तदा पञ्चक्रियः।
(वृ० प० ३७८)

२४. परितावयणा जास, नियमा तसु काइया तणी।
इत्यादिक सुविमास, पाठ पन्नवणा में कह्या॥

२४. जस्स पुण पारियावणिया किरिया कज्जइ तस्स काइया नियमा कज्जति। (पन्नवणा २२।५०)

२५. 'अप्रमत्त इक जीव, तसु अन्य ओदारीक इक।
ते आश्रयी कहीव, पाठ अकिरिया न्याय इम॥
२६. काइया नां बे भेद, अशुभ जोग अविरति नीं।
बावीसम पद वेद, द्वितीय ठाण उदेश धुर॥

२६. काइया णं भंते! किरिया कतिविहा पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणुवरयकाइया य दुप्पउत्तकाइया य। (पन्नवणा २२।२)

२७. अविरति चिउ गुणठाण, पंचम अविरति देश थी।
अशुभ जोग नीं जाण, छठा लग आगै नहीं॥
२८. ते माटै ए वाय, क्रिया काइया धुर तिका।
अप्रमत्त में नांय, अशुभ जोग ह्वै जद छठै॥
२९. जिहां काइया जाण, अहिगरणी पाउसिया तणी।
नियमा कहि जगभाण, पद बावीसम पन्नवणा॥

(२९. पन्नवणा २२।४८, ४९)

३०. अहिगरणिया जाण, वलि पाउसिया छै तिहां।
काइया नीं पहिछाण, तिण ठामें नियमा कही॥



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. तिण कारण अवधार, काइयादि पांचूं क्रिया ।
प्रमत्त लगै विचार, पिण अप्रमत्त मांहे नहीं ॥
३२. मायावत्तिया एक, सप्तम थी दसमा लगै ।
कषाय आश्री पेख, काइयादिक थी ए जुदी ॥
३३. आत्मादि आरंभ, अशुभ जोग आश्री कह्या ।
पेखो पाठ अदंभ, छट्ठे गुणठाणै प्रगट ॥
३४. अणारंभी अप्रमत्त, शुभ जोगां आश्रयो प्रमत्त ।
अणारंभी अवितत्थ, धुर शतके उद्देश धुर ॥
३५. अणारंभी अप्रमत्त, आत्मादि आरंभ रहित ।
तिण कारण ए वत्त, अप्रमत्त में पंच नहिं ॥

३४, ३५. तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा, तं जहा—पमत्तसंजया य अप्पमत्तसंजया य ।
तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया, ते णं नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा ।
तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया, ते सुहं जोगं पडुच्च नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा । (भ० श० १।३४)

३६. लब्धि फोड़वै तास, प्रमाद आश्री अधिकरण ।
शतक सोलमें जास, प्रथम उदेशा नैं विषै ॥
३७. ते माटै ए न्याय, काइयादि पांचूं क्रिया ।
अप्रमत्त में नांय, ते शुभ जोगी जिन कह्या ॥' (ज० स०)

३६. से केणट्ठेणं जाव अधिकरणं पि ?
गोयमा ! पमायं पडुच्च···· (भ० श० १६।२४)

३८. *हे भगवंत ! एक नेरइया नैं, पृथिव्यादिक जे जाण ।
एक ओदारिक शरीर आश्रयी, केतली क्रिया पिछाण ?

३८. नेरइए णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

३९. जिन कहै कदाचित तीन क्रिया, ते फर्श्यां भय पाय ।
कदा च्यार परिताप पमायां, जीव हण्यां पंच थाय ॥

३९. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए । (श० ८।२५९)

४०. हे प्रभु ! जे इक असुरकुमार नैं, पृथव्यादिक जे ताय ।
एक ओदारिक शरीर आश्रयी, केतली क्रिया कहाय ?

४०. असुरकुमारे णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिए ?

४१. कदा तीन कदा च्यार कदा पंच, जाव वैमानिक एम ।
णवरं मनुष्य जीव जिम कहिवो, अक्रिया अप्रमत्त तेम ॥

४१. एवं चेव । एवं जाव वेमाणिए, नवरं—मणुस्से जहा जीवे । (श० ८।२६०)

४२. हे भगवंतजी ! एक जीव नैं, अन्य बहु पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक बहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

४२. जीवे णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिए ?
औदारिकशरीरेभ्य इत्येवं बहुत्वापेक्षोऽयमपरो दण्डकः । (वृ० प० ३७८)

४३. जिन कहै कदा तीन बहु फर्श्यां, कदा चिहुं बहु ताप ।
कदा पंच बहु जीव हण्यां थी, कदा अक्रिया स्थाप ॥

४३. गोयमा ! सिय तिकिरिए जाव सिय अकिरिए । (श० ८।२६१)

४४. हे भगवंत ! एक नेरइया नैं, अन्य पृथव्यादि बहु जीव ।
तास ओदारिक बहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

४४. नेरइए णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिए ?

४५. कदा तीन कदा च्यार कदा पंच, प्रथम दंडक जिम जाण ।
एक वचन नों भाख्यो छै तिम, बहु वचने पिण आण ॥

४५. एवं एसो वि जहा पढ़मो दंडओ तहा भाणियव्वो ।

४६. एवं जाव वैमानिक कहिवा, णवरं एतो विशेख ।
मनुष्य विषै कहिवो जीव तणी पर, अक्रिया अधिक संपेख ॥

४६. जाव वेमाणिए, नवरं—मणुस्से जहा जीवे । (श० ८।२६२)

*लय : रे भवियण सेवो ! रे साधु सयाणा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. हे भगवंतजी ! घणा जीवां नें, अन्य पृथव्यादि बहु जीव ।
तास ओदारिक इक तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

४८. जिन कहै तीन कदा इक फर्श्यां, कदा चिउं इक ताप ।
कदा पंच इक जीव हण्यां थी, कदा अकिरिया स्थाप ।।

४९. हे भगवंत ! बहु नेरइया नें, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक इक तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

५०. कदा तीन कदा च्यार कदा पंच, प्रथम दंडक कह्यो ज्यांही ।
तिणहिज रीते ए सहु भणवो, जाव वेमाणिया[1] तांई ।।

४७. जीवा णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

४८. गोयमा ! सिय तिकिरिया जाव सिय अकिरिया ।
(श० ८।२६३)

४९. नेरइया णं भंते ! ओरालियसरीराओ कतिकिरिया ?

५०. एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ तहा भाणियव्वो जाव वेमाणिया, नवरं—मणुस्सा जहा जीवा ।
(श० ८/२६४)

५१. हे भगवंतजी ! बहु जीवां नें, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक बहु तनु आश्री, केतलो क्रिया कहीव ?

५२. जिन कहै तीन कदा बहु फर्श्यां, कदा चिहुं बहु ताप ।
कदा पंच बहु जीव हण्यां थी, कदा अकिरिया स्थाप ।।

५३. हे भगवंत ! बहु नेरइया नें, अन्य पृथव्यादि जीव ।
तास ओदारिक बहु तनु आश्रयी, केतली क्रिया कहीव ?

५४. त्रिण पिण चिउं पिण पंच क्रिया पिण, एवं जाव वेमाणिया ।
णवरं मनुष्या जीव तणी पर, अधिक अकिरिया भणिया ।।

५१. जीवा णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

५२. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि । (श० ८।२६५)

५३. नेरइया णं भंते! ओरालियसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

५४. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि ।
एवं जाव वेमाणिया, नवरं—मणुस्सा जहा जीवा ।
(श० ८।२६६)

५५. हे भगवंतजी ! एक जीव नें, जे अन्य वैक्रिय एक ।
ते आश्री केतली क्रिया छै ? हिव जिन उत्तर देख ।।

५६. कदा तीन क्रिया भय उपजायां, परितापना थी च्यार ।
कदा अकिरियावंत हुवै छै, अप्रमत्त नें अवधार ।।

५५. जीवे णं भंते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?
जीवः परकीयं वैक्रियशरीरमाश्रित्य कतिक्रियः ?
(वृ० प० ३७८)

५६. गोयमा ! सिय तिकिरिए सिय चउकिरिए सिय अकिरिए । (श० ८।२६७)

**सोरठा**

५७. वेक्रै वाला जीव, मार्‍या न मरै तेह थी ।
प्राणातिपात अतीव, क्रिया न कही पंचमी ।।

५८. अव्रत आश्री तास, ते नहिं वांछी इम वृत्तौ ।
हणवो कार्य विमास, ते आश्री नहिं पंचमी ।।

५७. पञ्चक्रियश्चेह नोच्यते, प्राणातिपातस्य वैक्रियशरीरिणः कर्त्तुमशक्यत्वाद् । (वृ० प० ३७८)

५८. अविरतिमात्रस्य चेहाविवक्षितत्वाद् ।
(वृ० प० ३७८)

५९. *हे भगवंत एक नेरइयो, एक वेक्रिय तनु साथ ।
ते आश्री केतली क्रियावंत छै ? हिव भाखै जगनाथ ।।

६०. कदा तीन क्रिया भय उपजायां, कदा चिउं परिताप ।
इम जाव वैमानिक पिण णवरं, मनुष्य जीव जिम स्थाप ।।

५९. नेरइए णं भंते ! वेउव्वियसरीराओ कतिकिरिए ?

६०. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए । एवं जाव वेमाणिए, नवरं—मणुस्से जहा जीवे ।

---

*लय : रे भवियण ! सेवो रे साधु सयाणा

१. अंगसुत्ताणि भाग २ में 'वेमाणिया' के बाद 'नवरं—मणुस्सा जहा जीवा' पाठ है । जयाचार्य ने इसकी जोड़ नहीं की है । संभवतः जयाचार्य को उपलब्ध प्रति में यह पाठ नहीं होगा ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. इम जिम ओदारिक शरीर नां, च्यार दंडक कह्या तेम ।
वेक्रै शरीर तणां पिण कहिवा, दंडक च्यारूं एम ॥
६२. णवरं पंचमी क्रिया न भणवी, वेक्रै मार्‍या मरै नांहि ।
शेष विस्तार ते तिमहिज कहिवो, च्यारूंई दंडक मांहि ॥

**सोरठा**

६३. एक जीव नें जाण, इक वेक्रै तनु आश्रयी ।
एक जीव नें माण, वेक्रै बहु तनु आश्रयी ॥
६४. घणां जीव नें जोय, इक वेक्रै तनु आश्रयी ।
बहु जंतू नें सोय, बहु वेक्रै तनु आश्रयी ॥
६५. नारकादिक चउवीस, इक-इक नां दंडक चिउं ।
कहिवा सर्व जगीस, वारू न्याय विचारियै ॥

६६. *जेम वैक्रिय तिम आहारक पिण, तेजस कार्मण एम ।
एक-एक नां दंडक च्यारूं, भणवा छै धर प्रेम ॥

**सोरठा**

६७. अधोलोक रै मांहि, नरक जीव वर्त्तै अछै ।
आहारक शरीर ताहि, मनुष्य लोकवर्त्तीपणैं ॥
६८. ते नारक नें जास, आहारक नीं क्रिया तणो ।
विषय नहीं छै तास, स्थान जूजुआ ते भणी ॥
६९. आहारक आश्रयी केम, नारक नें त्रिण चउ क्रिया ?
तेहनों उत्तर एम, न्याय वृत्ति थी सांभलो ॥
७०. नरक पूर्वभव मांय, शरीर वोसिरायो नहीं ।
तेणें तनु निपजाय, ते परिणाम तज्यो नथी ॥
७१. प्रथम पूर्व जे भाव, प्रज्ञापन नय मत करी ।
शरीर तास कहाव, नरक जीव नों ईज इम ॥
७२. घृत काढ्यो पिण तास, कहियै घृत नों ते घड़ो ।
वारू न्याय विमास, धुर नैगम नय नें मतै ॥
७३. तिम नारक नो जीव, पूर्व भव नीं देह तसु ।
नारक-देह कहीव, घृत-घट नें न्याये करी ॥
७४. मनुष्य लोक में तेह, तास हाड प्रमुख करी ।
आहारक तनु फर्शेह, तथा हुवै परितापना ॥

७५. आहारक आश्रयी एम, नारक नें त्रिण चउ क्रिया ।
धुर त्रिहुं क्रिया तेम, ते तो अवश्य हुवै तदा ॥

७६. इम इहां अवलोय, अन्य विषय पिण जाणवी ।
तेजस कार्मण दोय, तास न्याय निसुणो हिवै ॥

*लय : रे भवियण सेवो रे साधु सयाणा

६१. एवं जहा ओरालियसरीरेणं चत्तारि दंडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा ।
६२. नवरं—पंचमकिरिया न भण्णइ, सेसं तं चेव ।

६६. एवं जहा वेउव्वियं तहा आहारगं पि, तेयगं पि कम्मगं पि भाणियव्वं—एक्केक्के चत्तारि दंडगा भाणियव्वा

६७,६८. अथ नारकस्याधोलोकवर्त्तित्वादाहारकशरीरस्य च मनुष्यलोकवर्त्तित्वेन तत्क्रियाणामविषयत्वात् ।
(वृ० प० ३७८)

६९. कथमाहारकशरीरमाश्रित्य नारकः स्यात्त्रिक्रियः स्याच्चतुष्क्रिय इति ? अत्रोच्यते । (वृ० प० ३७८)
७०. यावत् पूर्वशरीरमव्युत्सृष्टं जीवनिर्वर्तितपरिणामं न त्यजति । (वृ० प० ३७८)
७१. तावत्पूर्वभावप्रज्ञापनानयमतेन निर्वर्त्तकजीवस्यैवेति व्यपदिश्यते । (वृ० प० ३७८)
७२,७३. घृतघटन्यायेनेत्यतो नारकपूर्वभवदेहो नारकस्यैव ।
(वृ० प० ३७८)

७४. तद्देशेन च मनुष्यलोकवर्त्तिनाऽस्थ्यादिरूपेण यदाहारकशरीरं स्पृश्यते परिताप्यते वा ।
(वृ० प० ३७८)
७५. तदाहारकदेहान्नारकस्त्रिक्रियश्चतुष्क्रियो वा भवति, कायिकीभावे इतरयोरवश्यंभावात् परितापनिकीभावे चाद्यत्रयस्यावश्यंभावादिति । (वृ० प० ३७८)
७६. एवमिहान्यदपि विषयमवगन्तव्यम् ।
(वृ० प० ३७८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. तेजस कार्मण दोय, ते आश्री त्रिण चिउं क्रिया ।
तेहनें भय नहिं होय, पीड़ न ह्वै तो केम कही ?

७८. तेजस कार्मण बेह, शरीर अपेक्षया करी ।
जीव भणी फर्शेह, अथवा परितापन हुवै ।।

७९. जे ओदारिक आदि, ते आश्रितपणें करी ।
तेजस कार्मण लाधि निश्चै करि ए बिहुं हुवै ।।

८०. *जाव प्रभु ! बहु वैमानिक नैं, बहु कार्मण शरीर ।
ते आश्री केतली क्रिया छै ? हिव जिन उत्तर हीर ।।

८१. तीन क्रिया पिण होवे तेहनें, च्यार क्रिया पिण हुंत ।
जाव शब्द कही चरम प्रश्न ए, सेवं भंते ! सेवं भंत !

८२. अष्टम शतक नो छठो उदेशो, इकसौ छयांलीसमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल ।।

अष्टमशते षष्ठोद्देशकार्थः ।।८।६।।

७८. यच्च तैजसकार्म्मणशरीरापेक्षया जीवानां परितापकत्वम् । (वृ० प० ३७८)

७९. तदौदारिकाद्याश्रितत्वेन तयोरवसेयं । (वृ० प० ३७८)

८०. जाव— (श० ८।२६८)
वेमाणिया णं भंते ! कम्मगसरीरेहिंतो कतिकिरिया ?

८१. गोयमा ! तिकिरिया वि चउकिरिया वि । (श० ८।२६९)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ८।२७०)

## ढाल १४७

### दूहा

१. छट्ठा उद्देशक विषे, आख्यो क्रिया स्वरूप ।
क्रिया नां प्रस्ताव थी, सप्तमुदेश तद्रूप ।।

२. प्रद्वेष क्रिया नुं हिवै, कारण जे कहिवाय ।
विवाद अन्यतीर्थिक तणुं, तसु विचार हिव आय ।।

†अंतेवासी वीर नां जी, प्रवर स्थविर भगवंत (ध्रुपदं)

३. तिण कालै नैं तिण समै जी, नगर राजगृह नाम ।
गुणसिल बाग सुहामणो जी, ईसाणकूण रै ठाम ।।

४. जाव पृथ्वी सिलपट्ट तिहां, ते गुणसिल थी हुंत ।
नहिं अति दूर नजीक नां, बहु अन्यतीर्थिका वसंत ।।

५. तिण कालै नें तिण समै, भगवंत श्री महावीर ।
निज तीर्थ में धर्म नीं, आदि करण गुणधीर ।।

६. यावत गुणसिल बाग में, समवसर्या भगवान ।
जाव परषदा वीर नां, वच सुण गई निज स्थान ।।

१. षष्ठोद्देशके क्रियाव्यतिकर उक्त इति क्रियाप्रस्तावात् सप्तमोद्देशके (वृ० प० ३७९)

२. प्रद्वेषक्रियानिमित्तकोऽन्ययूथिकविवादव्यतिकर उच्यते (वृ० प० ३७९)

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे—वण्णओ गुणसिलए चेइए—वण्णओ

४. जाव पुढविसिलावट्टओ । तस्स णं गुणसिलस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्णउत्थिया परिवसंति ।

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आदिगरे

६. जाव समोसढे जाव परिसा पडिगया । (श० ८/२७१)

*लय : रे भवियण सेवो रे साधु सयाणा
†लय : शिव गतिगामी जीवड़ा जी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. तिण कालै नैं तिण समै, वीर तणां बहु शीस ।
भगवंत स्थविर सुहामणा, जाति-संपण्णा जगीस ।।

८. पितृ पक्ष कुल-संपण्णा, बीजे शतके जेम ।
पंचम उद्देशे कह्या, अखिल स्थविर गुण एम ।।

९ जाव आस जीवण तणी, मरण तणो भय नांहि ।
वीर थकी अति दूर नां, अतिहि नजीक न ताहि ।।

१०. जानु उर्द्ध अधो सिरा, ध्यान-कोठा रै मांय ।
संजम तप कर आतमा, भावत विचरै प्राय ।।

११. अन्यतीर्थिका ते तदा, जिहां स्थविर भगवंत ।
तिहां आवी स्थविरां प्रतै, इहविध वाण वदंत ।।

१२. हे आर्यो ! तुम्है अछो, त्रिविध त्रित्रिध करि जाण ।
असंजती नैं अविरती, न किया पाप पचखाण ।।

१३. जिम सप्तम शतके कह्यो, द्वितीय उदेशे न्हाल ।
सर्व पाठ भणवा इहां, यावत एकांत बाल ।।

१४. ते थेरा तिण अवसरे, महिमागर मतिवंत ।
ते अन्यतीर्थियां प्रतै, इहविध वाण वदंत ।।

१५. किण कारण आर्यो ! अम्है, त्रिविध-त्रिविध करि न्हाल ।
असंजती नैं अविरती, यावत एकांत बाल ।।

१६. तिण अवसर अन्यतीर्थिका, स्थविरां प्रति कहै एम ।
अणदीधो ग्रहो छो तुम्है, अणदियो भोगवो तेम ।।

१७. वले अनुमोदो अणदियो, अणदियो ग्रहता आम ।
अदत्त भोगवता छता, अदत्त अनुमोदता ताम ।।

१८. त्रिविध-त्रिविध करिनैं तुम्है, असंजती इम न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध वलि अव्रती, यावत एकांत बाल ।।

१९. ते थेरा तिण अवसरे, अन्ययुथिका नैं कहै एम ।
किण कारण आर्यो ! अम्है, अदत्त ग्रहां धर प्रेम ?

२०. अणदीधो किम भोगवां ? अदत्त अनुमोदां केम ?
अणदीधो ग्रहता अम्है, जाव अनुमोदता तेम ।।

२१. त्रिविध-त्रिविध करिनैं अम्है, असंजती कहिवाय ।
यावत एकांत बाल छां ? इम पूछे मुनिराय ।।

२२. तिण अवसर अन्ययूथिया, स्थविर भगवंत नैं ताय ।
वयण इसी विध बोलता, सांभलज्यो चित ल्याय ।।

२३. हे आर्य ! कोई तुम्ह भणी, देवा मांड्यो तास ।
अणदीधूं कहियै तसु, काल भिन्न थी विमास ।।

७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अन्तेवासी थेरा भगवंतो जाति-संपन्ना

८. कुलसंपन्ना जहा बितियसए

९. जाव (सं० पा०) जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ।

१०. उड्ढंजाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति । (श० ८।२७२)

११. तए णं ते अण्णउत्थिया जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते थेरे भगवंते एवं वयासी—

१२. तुब्भे णं अज्जो तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय

१३. जहा सत्तमसए बितिए उद्देसए जाव (सं० पा०) एगंतबाला या वि भवह । (श० ८।२७३)

१४. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—

१५. केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय जाव एगंतबाला (सं० पा०) या वि भवामो ? (श० ८।२७४)

१६. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी— तुब्भे णं अज्जो ! अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह,

१७. अदिन्नं सातिज्जह । तए णं ते तुब्भे अदिन्नं गेण्ह-माणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं सातिज्जमाणा

१८. तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय जाव एगंतबाला या वि भवह (श० ८।२७५)

१९. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी— केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो,

२०. अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो, जए णं अम्हे अदिन्नं गेण्हमाणा जाव (सं० पा०) अदिन्नं साति-ज्जमाणा

२१. तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय पच्चक्खाय-पावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवामो ?
(श० ८।२७६)

२२. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—

२३. तुब्भण्णं अज्जो ! दिज्जमाणे अदिन्ने,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. देवा मांड्यो शब्द नैं, कहियै वर्त्तमान काल ।
दीधो ए तो शब्द छै, काल अतीत निहाल ।।
२५. वर्त्तमान जे काल थी, काल अतीत बलि ताहि ।
अत्यंत भिन्नपणैं करी, देवा मांड्यूं ते दीधो नांहि ।।
२६. दीधो अतीत काल में, तेहिज दीधो ताय ।
देवा मांड्युं तेहनें, अणदीधो कहिवाय ।।
२७. ग्रहिवा लेवा मांडियो, अणलीधुं कहिवाय ।
पात्रे मांड्यु घालवा, ते अणघाल्युं थाय ।।
२८. देवा मांड्युं शब्द ए, दायक नीं अपेक्षाय ।
ग्रहिवा मांड्युं शब्द ए, ग्राहक अपेक्षा ताय ।।
२९. णिसिरिज्जमाणे शब्द ए, पात्र तणी अपेक्षाय ।
शब्द तीनूंइ जूजुआ, इण कारण कहिवाय ।।
३०. हे आर्यो ! कोइ तुम भणी, देवा मांड्युं तेह ।
तुझ पात्रे पड़ियो नथी, बिच में वर्त्तै जेह ।।
३१. अंतराल कोइ अपहरै, गाथापति नुं ते आहार ।
निश्चै करि नहिं तुम तणो, पात्रे न पड़ियो तिवार ।।
३२. अणदीधो इण कारणे, तुम्है ग्रहो छो सोय ।
जावत अणदीधो तुम्है, अनुमोदो छो जोय ।।
३३. अणदीधो ग्रहता तुम्है, जावत एकांत बाल ।
ए वच अन्यतीर्थिक तणो, अति विपरीत निहाल ।।
३४. ते थेरा भगवंत तदा, अन्ययुथिया नैं कहै वाय ।
हे आर्यो ! निश्चै अम्है, अणदीधो ग्रहां नांय ।।
३५. अणदीधो नहिं भोगवां, अनुमोदां न अदत्त ।
हे आर्यो ! दीधो अम्है, आहार ग्रहां वच सत्त ।।
३६. वलि म्हैं दीधो भोगवां, दीधो अनुमोदंत ।
म्है दीधो ग्रहतां थकां, दीधो भोगवतां तंत ।।
३७. वलि दीधो अनुमोदतां, त्रिविध-त्रिविध करि जाण ।
संजती व्रतधारी अम्है, पाप तणां पचखाण ।।
३८. जिम सप्तम शतके कह्यो, जाव पंडित एकंत ।
द्वितिय उदेशा नैं विषे, ते इहां पाठ कहंत ।।
३९. तिण अवसर अनउत्थिया, स्थविरां प्रति कहै एम ।
किण कारण आर्यो ! तुम्है, दीधो ग्रहो धर प्रेम ।।
४०. यावत अनुमोदो दियो, दीधो ग्रहतां तिवार ।
जाव एकांत पंडित तुम्है, थावो छो अधिक उदार ।।
४१. ते थेरा भगवंत तदा, अनउत्थिया नैं कहै एम ।
देवा लागा अम्ह भणी, ते दीधो कहां तेम ।।
४२. ग्रहिवा मांड्यो ते ग्रह्यो, वलि पात्रा रै मांय ।
प्रक्षेपवा मांड्यो तिको, प्रक्षेप्यो कहिवाय ।।

२४. दीयमानस्य वर्त्तमानकालत्वाद् दत्तस्य चातीतकाल-
वर्त्तित्वाद् । (वृ० प० ३८१)
२५. वर्त्तमानातीतयोश्चात्यन्तभिन्नत्वाद्दीयमानं दत्तं न
भवति । (वृ० प० ३८१)
२६. दत्तमेव दत्तमिति व्यपदिश्यते । (वृ० प० ३८१)
२७. पडिगाहेज्जमाणे अपडिग्गाहिए, निस्सिरिज्जमाणे
अणिसिट्ठे
२८. तत्र दीयमानं दायकापेक्षया प्रतिगृह्यमाणं ग्राहका-
पेक्षया (वृ० प० ३८१)
२९. 'निसृज्यमानं' क्षिप्यमाणं पात्रापेक्षयेति
(वृ० प० ३८१)
३०. तुब्भण्णं अज्जो ! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं
एत्थ णं अंतरा
३१. केइ अवहरेज्जा गाहावइस्स णं तं, नो खलु तं तुब्भं,
३२. तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं
सातिज्जह ।
३३. तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतबाला या
वि भवह । (श० ८।२७७)
३४. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—
नो खलु अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो,
३५. अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो ! अम्हे णं
अज्जो ! दिन्नं गेण्हामो,
३६. दिन्नं भुंजामो दिन्नं सातिज्जामो । तए णं अम्हे
दिन्नं गेण्हमाणा, दिन्नं भुंजमाणा
३७. दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-
पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा ।
३८. जहा सत्तमसए जाव (सं० पा०) एगंतपंडिया
या वि भवामो । (श० ८।२७८)
३९. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—
केण कारणेणं अज्जो ! तुम्हे दिन्नं गेण्हह
४०. जाव दिन्नं सातिज्जह, जए णं तुब्भे दिन्नं गेण्हमाणा
जाव एगंतपंडिया या वि भवह ? (श० ८।२७९)
४१. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी
—अम्हण्णं अज्जो ! दिज्जमाणे दिन्ने,
४२. पडिग्गाहिज्जमाणे पडिग्गाहिए, निस्सिरिज्जमाणे
निसिट्ठे ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. देवा मांड्यो अम्ह भणी, पात्र विषे पड्यो नांय ।
अंतराल विच वर्त्तता, अपहरै कोइ ले जाय ॥
४४. आहार तिको छै अम्ह तणो, गाथापति नों नांय ।
इम दीधो ग्रहां छां अम्है, वलि दीधो भोगवाय ॥
४५. वलि अनुमोदां छां दियो, दीधो ग्रहतां ताम ।
दीधो भोगवतां थका, दियो अनुमोदतां आम ॥
४६. त्रिविध-त्रिविध करिनें अम्है, संजती विरती सोय ।
जावत एकांत छां अम्है, पंडित पिण अवलोय ॥
४७. देवा मांड्यो अणदियो, तुझ मत लेखे न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध थे असंजती, यावत एकांत बाल ॥

४८. अन्ययूथिया कहै स्थविर नैं, किण कारण म्हैं न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध छां असंजती, यावत एकांत बाल ?

४९. ते थेरा भगवंत तदा, अन्ययुथिया नैं कहै एम ।
तुझ लेखे आर्यो ! तुम्है, अणदीधूं ग्रहो तेम ॥
५०. इम अणदीधूं भोगवो, अदत्त अनुमोदो न्हाल ।
अणदीधूं ग्रहता थकां, यावत एकांत बाल ॥
५१. अन्ययूथिका कहै स्थविर नै, किण कारण म्है न्हाल ।
अणदीधूं ग्रहां भोगवां, जाव एकांत बाल ॥

५२. ते थेरा भगवंत तदा, अणउत्थिया नें कहै वाय ।
हे आर्यो ! अवलोकियै, तुझ श्रद्धा रै न्याय ॥
५३. देवा लागो तुझ भणी, अणदीधो कहो धार ।
तिमज जाव गृहस्थ तणो, नहिं ते थांरो आहार ॥
५४. इम तुझ लेखै इज तुम्है, अणदीधूं ग्रहो न्हाल ।
तिमहिज पाठ सहु इहां, यावत एकांत बाल ॥
५५. अन्ययूथिया कहै स्थविर नें, आर्यो ! तुम्ह वलि भाल ।
त्रिविध-त्रिविध करि असंजती, यावत एकांत बाल ॥

५६. स्थविर कहै किण कारणैं, हे आर्यो ! म्हे न्हाल ।
त्रिविध-त्रिविध करि असंजती, यावत एकांत बाल ?

५७. अन्ययुथिया कहै स्थविर नैं, हे आर्यो ! तुम्ह देख ।
रीयं रीयमाणा छता, गमन करंता विशेख ॥

४३. अम्हण्णं अज्जो ! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं, एत्थ णं अंतरा केइ अवहरेज्जा,
४४. अम्हण्णं तं, नो खलु तं गाहावइस्स, तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हामो, दिन्नं भुंजामो,
४५. दिन्नं सातिज्जामो तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा, दिन्नं भुंजमाणा, दिन्नं सातिज्जमाणा
४६. तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपाव-कम्मा जाव एगंतपंडिया या वि भवामो ।
४७. तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवह । (श० ८।२८०)
४८. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवामो ? (श० ८।२८१)
४९. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो अदिन्नं गेण्हह
५०. अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं सातिज्जह, तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा जाव एगंतबाला या वि भवह । (श० ८।२८२)
५१. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो जाव एगंतबाला या वि भवामो ? (श० ८।२८३)
५२. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—तुब्भण्णं अज्जो !
५३. दिज्जमाणे अदिन्ने तं चेव जाव गाहावइस्स (सं० पा०) णं तं, नो खलु तं तुब्भं ।
५४. तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह जाव एगंतबाला या वि भवह । (श० ८।२८४)
५५. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवह । (श० ८।२८५)
५६. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला या वि भवामो ? (श० ८।२८६)
५७. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा

'रीयं रीयमाण' त्ति 'रीत' गमनं रीयमाणाः' गच्छन्तो गमनं कुर्वाणा इत्यर्थः (वृ० प० ३८१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. पुढ़वि ते पृथ्वी प्रतै, पेच्चेह ते आक्रमंत।
अभिहणह बिहुं पग करि, सन्मुख करीनें हणंत।।

५९. वत्तेह पग करि चींथता, लेसेह भूमि लेसंत।
संघातेह जीव नें, संघात एकत्र करंत।।

६०. संघट्टेह फरसो अछो, परितावेह पीड़ात।
किलामेह ते किलामना, मारणांतिक समुद्घात।।

६१. उद्दवेह उपद्रव करो, जीव काया करो न्यार।
पृथ्वी ऊपर चालता, हणो छो जीव अपार।।

६२. इम पृथ्वी आक्रमता, जाव उपद्रवता भाल।
त्रिविध-त्रिविध थे असंजती, यावत एकांत बाल।।

६३. स्थविर भगवंत तिण अवसरे, अणउत्थिया नें कहै वाय।
हे आर्यो! म्है चालता, पृथ्वी आक्रमां नांय।।

६४. सन्मुख थइ हणां नहीं, यावत जीव काया न्यार।
न करां पृथ्वी जंतु नें, एहनों नहीं आगार।।

६५. आर्यो! म्है मग चालता, काय आश्री सुविचार।
कार्य छै जे काय नां, उच्चारादिक अवधार।।

६६. वली जोग आश्री कह्यो, ग्लानादिक मुनिराय।
वेयावच्च प्रमुख तसु, व्यापार आश्री ताय।।

६७. ऋतं सत्य आश्री वलि, अपकायादिक जीव।
संरक्षण लक्षण तसु, संयम आश्री अतीव।।

६८. देसंदेसेणं वयामो, घणी भूमिका तास।
जे वांछित देशे करी, गमन करां सुविमास।।

६९. विशेष ईर्य्या-समित थी, छांडी सचित्त पृथ्वी देश।
अचित्त पृथ्वी देशे अम्है, गमन करां सुविशेष।।

७०. वलि प्रदेश प्रदेशे करी, इम सचित्त पृथ्वी-प्रदेश।
ते छांड़ी चालां अम्है, अचित्त प्रदेशे विशेष।।

७१. देश तिको जे भूमि नों, मोटो खंड विचार।
प्रदेश अति लघु खंड कह्यो, विमल न्याय अवधार।।

५८. पुढविं पेच्चेह अभिहणह

'पुढविं पेच्चेह' पृथिवीमाक्रामथेत्यर्थः 'अभिहणह' त्ति पादाभ्यामाभिमुख्येन हथ। (वृ० प० ३८१)

५९. वत्तेह लेसेह संघाएह

पादाभिघातेनैव 'वर्त्तयथ' श्लक्ष्णतां नयथ 'श्लेषयथ' भूम्यां श्लिष्टां कुरुथ 'संघातयथ' संहतां कुरुथ। (वृ० प० ३८१)

६०. संघट्टेह, परितावेह, किलामेह

'सङ्घट्टयथ' स्पृशथ, 'परितापयथ' समन्ताज्जातसन्तापां कुरुथ, क्लमयथ—मारणान्तिकसमुद्घातं गमयथेत्यर्थः (वृ० प० ३८१)

६१. उद्दवेह, तए णं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा

'उपद्रवयथ' मारयथेत्यर्थः (वृ० प० ३८१)

६२. अभिहणमाणा जाव उद्दवेमाणा (सं० पा०) तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवह। (श० ८।२८७)

६३. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—नो खलु अज्जो! अम्हे रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चामो

६४. अभिहणामो जाव उद्दवेमो।

६५. अम्हे णं अज्जो! रीयं रीयमाणा कायं वा

'कायं' शरीरं प्रतीत्योच्चारादिकायकार्यमित्यर्थः (वृ० प० ३८१)

६६. जोयं वा

'जोगं व' त्ति 'योगं' ग्लानवैयावृत्त्यादिव्यापारं प्रतीत्य (वृ० प० ३८१)

६७. रियं वा पडुच्च

'ऋतं' सत्यं प्रतीत्य—अप्कायादिजीवसंरक्षणं संयममाश्रित्येत्यर्थः (वृ० प० ३८१)

६८,६९. देसं देसेणं वयामो,

प्रभूतायाः पृथिव्या ये विवक्षिता देशास्तैर्व्रजामो नाविशेषेण। ईर्यासमितिपरायणत्वेन सचेतनदेशपरिहारतोऽचेतनदेशैर्व्रजाम इत्यर्थः (वृ० प० ३८१)

७०. पदेसं पदेसेणं वयामो,

७१. देशो—भूमेर्महत्खण्डं प्रदेशस्तु—लघुतरमिति (वृ० प० ३८१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. देश प्रतै देशे करी म्है, गमन करंता जाण।
प्रदेश प्रति प्रदेशे करी, चालंता सुविहाण ॥
७३. पृथ्वी नां जंतु प्रतै, नहीं आक्रमा ताहि।
पगां करी म्है नहीं हणां, जाव उपद्रव द्यां नांहि ॥
७४. पृथ्वी अणआक्रमता, पगां न हणता जाव।
उपद्रव अणदेता थका, नहीं हणवा रा भाव ॥
७५. वलि एहनें हणवा तणो, नहीं आगार अत्यंत।
त्रिविध त्रिविध करिनें अम्हैं, जाव पंडित एकंत ॥

**सोरठा**

७६. जयणा गुण जोगेण, अम्ह जिम तुम्ह नहिं चालता।
एहवा अभिप्रायेण, स्थविर कहै अन्ययुथिक प्रति ॥
७७. पृथ्वी आक्रम आदि, असंजत भावादि गुण।
तेह तुम्हां में लाधि, इह विध स्थविर कहै हिवै ॥

७८. *आर्यो ! पोतै इज तुम्है, त्रिविध-त्रिविध करि न्हाल।
असंजती नें अविरती, यावत एकांत बाल ॥

७९. तिण अवसर अन्ययूथिया, स्थविर प्रतै भाखंत।
किण अर्थे आर्यो ! अम्है, यावत बाल एकंत ?

८०. ते थेरा तब इम कहै, आर्यो ! तुम्ह चालंत।
आक्रमो पुढ़वी प्रतै, जाव उपद्रव हणंत ॥

८१. इम पुढ़वी नै आक्रमता, जावत हणता जंत।
त्रिविध-त्रिविध थे असंजती, जावत बाल एकंत ॥

८२. तिण अवसर अन्ययूथिया, स्थविरां प्रति कहै वाय।
हे आर्यो ! जे ताहरी, श्रद्धा ए कहिवाय ॥
८३. गम्यमान जातां थकां, अणगया कहो छो ताम।
व्यतिक्रमता नें पिण कहो, अव्यतिक्रम्या आम ॥
८४. नगर राजगृह पामवा नीं इच्छा मारग मांहि।
असंपत्ते अणपामिया, एम कहो छो ताहि ॥
८५. स्थविर कहै आर्यो ! अम्है, जाता थका मग मांय।
निश्चै न कहां अणगया, विमल विचारी न्याय ॥
८६. वलि व्यतिक्रमता थका, अव्यतिक्रम्या कहां नांय।
इच्छा राजगृह पामवा नीं, अणपाम्या न कहाय ॥
८७. हे आर्यो ! गमन करण म्है मांड्यो, गमन कियोज कहंत।
व्यतिक्रमवा मांड्यो तिण नें, व्यतिक्रम्योज वदंत ॥

*लय : शिवगतिगामी जीवड़ा रे

७२. तेणं अम्हे देसं देसेणं वयमाणा, पदेसं पदेसेणं वयमाणा

७३. नो पुढविं पेच्चेमो अभिहणामो जाव उद्दवेमो

७४. तए णं अम्हे पुढविं अपेच्चेमाणा अणभिहणमाणा जाव अणोद्दवेमाणा

७५. तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतपंडिया या वि भवामो

७६,७७. अथोक्तगुणयोगेन नास्माकमिवैषां गमनमस्तीत्यभिप्रायतः स्थविराः यूयमेव पृथिव्याक्रमणादितोऽसंयतत्वादिगुणा इति प्रतिपादनार्थान्ययूथिकान् प्रत्याहुः
(वृ० प० ३८१)

७८. तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मा जाव एगंतबाला या वि भवह। (श० ८।२८८)

७९. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला या वि भवामो ? (श० ८।२८९)

८०. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह जाव उद्दवेह

८१. तए णं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा जाव उद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला या वि भवह।
(श० ८।२९०)

८२. तए णं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भण्णं अज्जो !

८३. गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते

८४. रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते।
(श० ८।२९१)

८५. तए णं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—नो खलु अज्जो ! अम्हं गम्ममाणे अगते

८६. वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते

८७. अम्हण्णं अज्जो ! गम्ममाणे गए वीतिक्कमिज्जमाणे वीतिक्कंते,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८८. नगर राजगृह पामवा नीं, इच्छा मारग बीच।
पुर संप्राप्त थया कहां म्है, वारू वचन समीच ।।

८८. रायगिहं नगरं संपाविउकामे संपत्ते

८९ हे आर्यो ! थे पोतै कहो, जावा मांड्यो गयो नांय।
व्यतिक्रमवा मांड्यो तिण नें, अव्यतिक्रम्यो कहाय ।।

८९. तुब्भण्णं अप्पणा चेव गम्ममाणे अगते, वीतिकम्मिज्ज-
माणे अवीतिक्कंते

९०. नगर राजगृह पामवा नीं, इच्छा मारग मांहि।
असंप्राप्त थया तुम्ह कहो, विन आलोच्यां ताहि ।।

९०. रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते

९१. ते थेरा भगवंत तदा, अणयुथिया नें भणी एम।
गति-प्रवाद नामे भलो, अज्झयण परूपता तेम ।।

९१. तए णं ते थेरा भगवंतो अण्णउत्थिए एवं पडिभणंति ।
पडिभणित्ता गइप्पवायं नाम अज्झयणं पण्णवइंसु ।।
(श० ८।२९२)

**सोरठा**

९२. अन्ययुथियां नें आम, प्रतिहणि जीती पाठान्तरे[1]।
गतिप्रवादज नाम, अज्झयण परूपता हुवा ।।

९३. परूपिये गति यत्र, ते गति-प्रवाद नाम है।
गति विस्तारज तत्र, ते अध्येन कहिता हुवा ।।

९३. गतिः प्रोच्यते—प्ररूप्यते यत्र तद् गतिप्रवादं
(वृ० प० ३८१)

९४. *हे प्रभुजी ! कतिविध कह्यो, गति-प्रवाद विचार ?
श्री जिन भाखै सांभलो, तेहनां पांच प्रकार ।।

९४. कतिविहे णं भंते ! गइप्पवाए पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे गइप्पवाए पण्णत्ते, तं जहा—

९५. प्रयोग-गति पिछाणियै, जोग पनर तसु जान।
तत-गति ग्रामादिक विषे, पंथ गमन वर्त्तमान ।।

९५. पयोगगई, ततगई
तत्र प्रयोगस्य सत्यमनःप्रभृतिकस्य पञ्चदशविधस्य
गतिः—प्रवृत्तिः प्रयोगगतिः, 'ततगइ' त्ति ततस्य—
ग्रामनगरादिकं गन्तुं प्रवृत्तत्वेन । (वृ० प० ३८१)

९६. आरंभो ए सूत्र थी, सूत्र पन्नवणा मांय।
षट दशमां पद में कह्यो, जावत से तं विहाय ।।

९६. एत्तो आरब्भ पयोगपयं निरवसेसं भाणियव्वं जाव सेत्तं
विहायगई । (श० ८।२९३)
इतः सूत्रादारभ्य प्रज्ञापनायां षोडशं प्रयोगपदं
(वृ० प० ३८१)

९७. बंधन-छेदन तीसरी, कर्म-बंधण जे छेद।
शरीर थी जे जीव नीं, गति इक समय संवेद ।।

९८. अथवा गति शरीर नीं, जीव थकी हुवो न्यार।
बंधण छेदण तीसरी, ए बिहुं भेद विचार ।।

९७,९८. बंधणछेयणगई,
तत्र बंधनच्छेदनगतिः—बन्धनस्य कर्मणः संबंधस्य वा
छेदने—अभावे गतिर्जीवस्य शरीरात् शरीरस्य वा
जीवाद् बन्धनच्छेदनगतिः । (वृ० प० ३८१)

९९. चोथी गति उपपात छै, तेहनां तीन प्रकार।
क्षेत्र-गती भव-गति कही, नो-भव-गति सुविचार ।।

९९. उववायगई
उपपातगतिस्तु त्रिविधा—क्षेत्रभवनोभवभेदात्
(वृ० प० ३८१)

१००. नारक तिरि नर अमर नों, वलि सिद्ध-क्षेत्र आख्यात।
ऊपजवा अर्थे करै, गमन क्षेत्र उपपात ।।

१००. तत्र नारकतिर्यग्नरदेवसिद्धानां यत् क्षेत्रे उपपाताय—
उत्पादाय गमनं सा क्षेत्रोपपातगतिः ।
(वृ० प० ३८१, ३८२)

---

*लय : शिवगतिगामी जीवड़ा

१. टीकाकार ने पाठान्तर का कोई उल्लेख नहीं किया है। अंगसुत्ताणि भाग २ में पडिभणंति का पाठान्तर दिया है 'पडिहणइ'। उक्त पद्य की जोड़ का आधार यही पाठ होना चाहिए।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०१. नरकादिक चिउं भव गति, भव नें विषे उपपात ।
सिद्ध गति नें वरजी करी, क्षेत्र गति जिम ख्यात ।।

१०२. नोभव गति द्विविध कही, सिद्ध पुद्गल नीं विख्यात ।
गमन मात्र ए गति कही, ते नोभव उपपात ।।

१०३. विहाय ए गति पंचमी, तेहनां सतरै प्रकार ।
फुसमाणे आदे करि, जाव शब्द में धार ।।

१०४ सेवं भंते ! सेवं भंते ! शतक आठमें सार ।
सखर उदेशो सातमों, आख्या अर्थ उदार ।।

१०५. इकसौ सैंतालीसमीं, ढाल रसाल निहाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' गल माल ।।

अष्टमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।८।७।।

१०१. या च नारकादीनामेव स्वभवे उपपातरूपा गतिः सा भवोपपातगतिः । (वृ० प० ३८२)

१०२. यच्च सिद्धपुद्गलयोर्गमनमात्रं सा नोभवोपपातगतिः । (वृ० प० ३८२)

१०३. विहायगई
विहायोगतिस्तु स्पृशद्गत्यादिकाऽनेकविधेति (वृ० प० ३८२)

१०४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ८।२९४)

## ढाल : १४८

### दूहा

१. सप्तमुदेशक स्थविर नां, प्रत्यनीक आख्यात ।
अष्टम गुरवादिक तणां, प्रत्यनीक दुख पात ।।

२. नगर राजगृह नें विषे, यावत गोतम स्वाम ।
भक्ति विनय करि वीर नों, इम बोलै सिर नाम ।।

*श्री वीर जिनेश्वर भाखै वारता ।(ध्रुपद)

३. हे प्रभु ! गुरु आश्री केता कह्या, कांइ प्रत्यनीक पहिछाण ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, कांइ प्रतिकूल एह अयाण ।

४. अर्थदाता आचार्य तेहनों, कांइ श्रुतदाय उवझाय ।
स्थविर ते जाति पर्याय श्रुते करि, ए त्रिविध कहियै ताय ।।

### सोरठा

५. साठ वर्ष नों जात, तास कहीजै वय-स्थविर ।
पर्याय स्थविरज ख्यात, चरण लियां वर्ष बीस तसु ।।

६. तृतीय स्थविर श्रुत जाण, ठाण अनें समवाय अंग ।
तसु धारक पहिछाण, स्थविर त्रिहुं ए दाखिया ।।

१. अनन्तरोद्देशके स्थविरान् प्रत्यन्ययूथिकाः प्रत्यनीका उक्ताः अष्टमे तु गुर्वादिप्रत्यनीका उच्यन्ते । (वृ० प० ३८२)

२. रायगिहे जाव एवं वयासी—

३. गुरू णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—

४. आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए । (श० ८।२९५)
तत्राचार्यः—अर्थव्याख्याता उपाध्यायः—सूत्रदाता स्थविरस्तु जातिश्रुतपर्यायैः । (वृ० प० ३८२)

५,६. तत्र जात्या षष्टिवर्षजातः श्रुतस्थविरः—समवायधरः पर्यायस्थविरो—विंशतिवर्षपर्यायः । (वृ० प० ३८२)

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. *प्रत्यनीक निंदक यां तीनूं तणां, कांइ बोलै अवर्णवाद।
गुण सुण न गमै छिद्रपेही वणो, कांइ अविनय नीं असमाध।।

८. 'दशाश्रुत-खंध में श्री जिन आखियो, कांइ आचार्य उवज्झाय।
वियावच पूजा न करै मान थी, महामोहणी कर्म बंधाय।।

९. अध्येन सतरमैं हो उत्तराध्येन में, कांइ आचार्य उवज्झाय।
हेलै निंदै श्रुत विनय दायक भणी, कांइ ते पापी साधु कहाय।।

१०. तीजै ठाणै उदेशै तीसरै, कांइ गुरु-भक्ता ऊपर द्वेष।
राग अप्रीतिवंत अभक्त थी, कांइ ते अविनीत विशेष।।

११. दशवैकालिक नवमा अध्येन में, कांइ आचार्य नों जोय।
प्रतिकूल आसातनाकारी तिको, कांइ अबोह-हेतु होय।।

१२. पंचम ठाणै उदेशै दूसरे, कांइ आचार्य उवझाय।
तेहनों अवर्णवादी अति दुख लहै, कांइ दुर्लभबोधी थाय।।

१३ आचार्य उवज्झाय नैं स्थविर नों, कांइ अवर्णवादी एह।
तेहनैं प्रत्यनीक प्रभुजी! इहां कह्यो, ते नरकादिक दुख लेह।।'
(ज० स०)

१४. हे प्रभु! गति आश्री केता कह्या, कांइ प्रत्यनीक पहिछाण?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया,
कांइ गति मनुष्य गत्यादि जाण।।

१५. इह लोक प्रत्यक्ष नर पर्याय नों, कांइ प्रत्यनीक ए एम।
प्रतिकूलकारी इंद्रिय अर्थ नों, कांइ पंचाग्नि तपस्वी जेम।।

**सोरठा**

१६. 'पंचाग्नि साधंत, अग्नि आरंभ ते कर्म-बंध।
अशुभ जोग वर्त्तंत, ते जिण आज्ञा में नहीं।।

१७. पिण रवि तप्त तपंत, वलि शीलादिक गुण भला।
छठ अठमादिक तंत, ते करणी थी सुर हुवै।।

१८. ते माटै सुविमास, काम भोग इह भव तणां।
प्रत्यनीक है तास, फल परभव अल्प ते भणी।।' (ज० स०)

१९. *परलोक देवादिक नां सुख तणो, कांइ प्रत्यनीक अवलोय।
वेश्यादिक काम भोग तत्पर थकी, परलोके सुख नहि होय।।

२०. दोनूंइ लोक तणो प्रत्यनीक ते, कांइ चोरादिक कहिवाय।
इह भव में पिण वध बंधन लहै, कांइ परभव दुरगति पाय।।

७. एतत् प्रत्यनीकता चैवम्—
जच्चाईहिं अवन्नं भासइ वट्टइ न या वि उववाए।
अहिओ छिद्दप्पेही पगासवाई अणणुलोमो।।
(वृ० प० ३८२)

८. आयरियउवज्झायाणं सम्मं ण पडितप्पति अप्पडि-पूयए थद्धे, महामोहं पकुव्वति। (दशाश्रुत० ९।२५)

९. आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिसई बाले, पावसमणि त्ति वुच्चई।।
(उ० १७।४)

१०. आराध्यतत्संमतेतरलक्षण.........
(ठाणं वृ० प० १४८)

११. आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो।
(दसवेआलियं ९।१।१०)

१२. पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति.......
आयरिय-उवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे.......।
(ठाणं ५।१३३)

१४. गति णं भंते! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता?
गोयमा! तओ पडिणीया पण्णत्ता,
'गति' मानुष्यत्वादिकां प्रतीत्य। (वृ० प० ३८२)

१५. तं जहा—इहलोगपडिणीए
तत्रेहलोकस्य—प्रत्यक्षस्य मानुषत्वलक्षणपर्यायस्य प्रत्यनीक इन्द्रियार्थप्रतिकूलकारित्वात् पञ्चाग्नितपस्विवद् इहलोकप्रत्यनीकः। (वृ० प० ३८२)

१९. परलोगपडिणीए
परलोको—जन्मान्तरं तत्प्रत्यनीकः—इन्द्रियार्थतत्परः।
(वृ० प० ३८२)

२०. दुहओलोगपडिणीए। (श० ८।२९६)
द्विधालोकप्रत्यनीकश्च चौर्यादिभिरिन्द्रियार्थसाधनपरः
(वृ० प० ३८२)

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. समूह आश्री प्रभुजी ! केतला, कांइ प्रत्यनीक कहिवाय ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, कांइ समूह साधु-समुदाय ।।

२२. कुल गण संघ त्रिहुं नो जे अरी, कांइ कुल ते गच्छ-समुदाय ।
कुल नां समुदाय भणी जे गण कह्यो, कांइ संघ ते गण-समुदाय ।।

**सोरठा**

२३. समूह साधु-समुदाय, एहवो आख्यो वृत्ति में ।
अवर्णवादी ताय, इत्यादिक प्रतिकूलपणो ।।
२४. कुल चान्द्रादिक जाण, तत्समूह गण आखियो ।
कोटिकादि पहिछाण, गण-समूह संघ वृत्ति में ।।
२५. कुलादि नो फुन तेथ, लक्षण आख्युं छै अपर ।
सांभलज्यो धर चेत, ते पिण भगवइ वृत्ति में ।।
२६. इक आचार्य नांज, संतति थी जे ऊपनां
तसु कुल कह्यो समाज, ते त्रिणकुल नों एक गण ।।

२७. ज्ञान दर्शन चारित्त, गुणे विभूषित समण नों ।
सहु समुदाय पवित्त, संघ कहीजै तेहनें ।।

२८. 'समूह साधु-समुदाय, कुल गण संघ ए त्रिहुं कह्या ।
पिण तीनूं रे मांय, नहिं छै श्रावक-श्राविका ।।
२९. ठाणांग तीजे ठाण, तुर्य उदेशक नें विषे ।
समूह आश्री जाण, कुल गण संघ नां अरि कह्या ।।
३०. चांद्रादिक संवाद, कुल-समूह नें गण कह्युं ।
गण ते कोटिक आद, बे त्रिण गणपति नांज शिष्य ।।
३१. घणा आचार्य नांज, सीस भणी संघ आखियो ।
प्रत्यनीक तज लाज, बोलै अवर्णवाद तसु ।।' (ज० स०)

**वा०**—तथा ठाणांग ठाणे पांच उदेशे एक वृत्ति में कह्यं ते कहै छै—कुल ते चांद्रादिक साधु-समुदाय विशेष रूप प्रसिद्ध, गण ते कुल नुं समुदाय, संघ ते गण नुं समुदाय । तथा उववाई नी वृत्ति में कह्यं—कुल ते गच्छ नुं समुदाय, गण ते कुल नुं समुदाय, संघ ते गण नुं समुदाय । तथा प्रश्नव्याकरण अ० १० वृत्ति में कह्यं—कुल ते गच्छ नुं समुदाय चंद्रादिक, गण ते कुल नुं समुदाय कोटिकादिक, संघ ते गण नुं समुदाय रूप । इम अनेक ठामें कुल गण संघ ए तीन शब्द आवै । तिहां संघ नाम घणां साधां नां समुदाय नैं कह्यं, पिण श्रावक नैं न कह्यं ।

३२. *अनुकंपा आश्री प्रभुजी ! केतला, प्रत्यनीक जे दीस ?
जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, तपस्वी गिलाण सीस ।।

२१. समूहण्णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
'समूहं' साधुसमुदायं प्रतीत्य (वृ० प० ३८२)
२२. कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए ।
(श० ८।२९७)

२३. (भ० वृ० प० ३८२)

२४. तत्र कुलं—चान्द्रादिकं तत्समूहो गणः—कोटिकादिस्तत्समूहः संघः (वृ० प० ३८२)
२५. कुलादिलक्षणं चेदम्— (वृ० प० ३८२)

२६. एत्थ कुलं विन्नेयं एगायरियस्स संतई जा उ ।
तिण्ह कुलाण मिहो पुणसावेक्खाणं गणो होइ ।।
(वृ० प० ३८२)
२७. सव्वोवि नाणदंसणचरणगुणविहूसियाणसमणाणं ।
समुदाओ पुण संघो गणसमुदाओत्ति काऊणं ।।
(वृ० प० ३८२)

२९. समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए ।
(ठाणं ३।४९०)

(ठाणं वृ० प० २८९)
(औपपातिक वृ० प० ८१)
(प्रश्नव्याकरण वृ० प० १२६)

३२. अणुकंपं पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए ।
(श० ८।२९८)

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

| | |
|---|---|
| ३३. ए तीनं नीं जोय, अनुकंपा करवी अछै ।<br>उपष्टंभ अवलोय, भात पाणी प्रमुख करी ।। | ३३. अनुकम्पा—भक्तपानादिभिरुपष्टम्भस्तां प्रतीत्य ।<br>(वृ० प० ३८२) |
| ३४. न करै तेहनी सार, अन्य पास नहिं कारवै ।<br>ते प्रत्यनीक विचार, उपष्टंभ न दियै तसु ।। | |
| ३५. *हे प्रभु ! श्रुत आश्री केतला, कांइ प्रत्यनीक पहिछाण ?<br>जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, कांइ सूत्र अर्थ बिहुं जाण ।। | ३५. सुयण्णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?<br>गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्त-पडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभयपडिणीए ।<br>(श० ८।२९९) |

### सोरठा

| | |
|---|---|
| ३६. सूत्र पाठ सुविचार, अर्थ पाठ नों अर्थ ते ।<br>उभय बिहुं अवधार, ए त्रिहुं में दूषण कहै ।। | |
| ३७. पृथव्यादिक षट काय, षट व्रत अहिंसा प्रमुख ।<br>जुदा कह्या किण न्याय ? छहुं काय धुर व्रत में ।।<br>३८. फुन प्रमाद नां स्थान, कूर्मादिक जे योनि छै ।<br>ज्योतिषि-चक्र पिछान, सूत्रे स्यूं अर्थे कह्यु ।।<br>३९. शिव मग साधक ताय, ज्योतिषि चक्ररु योनि नुं ।<br>स्यूं प्रयोजनै कहाय ? इत्यादिक दूषण कहै ।। | ३७-३९. काया वया य ते च्चिय, ते चेव पमाय अप्प-मायाय ।<br>मोक्खाहिगारियाणं, जोइस जोणीहिं किं कज्जं ।।<br>इत्यादि दूषणोद्भावनं (वृ० प० ३८३) |
| ४०. *हे प्रभु ! भाव पडुच्च केता कह्या, कांइ प्रत्यनीक प्रस्ताव ?<br>जिन कहै तीन प्रकार परूपिया, कांइ शुद्ध जीव पर्याय सुभाव ।। | ४०. भावण्णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?<br>गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा— |
| ४१. प्रत्यनीक ज्ञान दर्शन चारित्र तणो, कांइ करै परूपणा विपरीत ।<br>अथवा ज्ञानादिक में दूषण कहै, कांइ बोलै वचन अनीत ।। | ४१. नाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए ।<br>(श० ८।३००)<br>भावान् ज्ञानादीन् प्रति प्रत्यनीकः तेषां वितथप्ररूपणतो दूषणतो वा (वृ० प० ३८३) |

### सोरठा

| | |
|---|---|
| ४२. प्राकृत भाषा मांहि, मंद-बुद्धि सूतर रच्या ।<br>अवगुण बोलै ताहि, ज्ञान तणो प्रत्यनीक ते ।। | ४२. पाययसुत्तनिबद्धं को वा जाणइ पणीय केणेयं ।<br>(वृ० प० ३८३) |
| ४३. दान बिना स्यूं होय, सम्यक्त नैं चारित्र थकी ?<br>प्रत्यनीक ते जोय, दर्शन चरण तणां तिके ।। | ४३. किं वा चरणेणं तु दाणेण विणा उ हवइ त्ति ।<br>(वृ० प० ३८३) |

४४. *आख्यो ए देश अठ्यासी अंक नो,
कांइ इक सौ अड़ताली ढाल ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, कांइ 'जय-जश' मंगलमाल ।।

---

*लय : श्री वीर जिनेश्वर सुणजो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : १४९

**दूहा**

१. ते प्रत्यनीकपणां प्रते, अणकरिवै करि तेह।
उद्यमवंत थया तिके, शुद्ध योग्य छै जेह॥
२. ते ह्वै शुद्ध व्यवहार थी, ते माटै व्यवहार।
परूवणा नें काज हिव, कहियै अर्थ उदार॥
३. जो व्यवहरण मुमुक्षु नों, प्रवृत्ति-निवृत्ति-रूप।
तेहनों नाम कह्यो इहां, वर व्यवहार अनूप॥
४. तेहनो कारण ज्ञान जे, ते पिण छै व्यवहार।
गोयम गणहर तेहनीं, पूछा करै उदार॥

*श्री जिनराज तणां वच सरध्यां, जीव आराधक थावै।
जीव आराधक थावै म्हे वारी जाऊं।
जन्म मरण मिट जावै, सम्यक्त दृढ़ चित्त भावै॥
हलुकर्मी चित्त ल्यावै। (ध्रुपदं)

५. हे भगवंत! व्यवहार केतला? जिन कहै पंच प्रकारं।
आगम श्रुत नें आण धारणा, पंचम जीत उदारं॥

६. केवल मनपज्जव नें अवधिधर, चउद पूर्व दस सारं।
नव पूर्वधर ए षट-विध है, धुर आगम व्यवहारं॥
७. आचार कल्प ते नशीत जघन्य, तास जाण सुविचारं।
आठ पूर्वधर उत्कृष्ट कहियै, बीजो श्रुत व्यवहारं॥
८. नव दश प्रमुख पूर्व श्रुत में छै, पिण अर्थ अतींद्रिय जेहो।
तेहनें विषे विशिष्ट ज्ञान नों, हेतुपणें करि एहो॥
९. अतिशय सहितपणें करि तेहनें, आगम मांहै आण्यो।
केवलवत ए भेद आगम नां, इम वृत्तिकार वखाण्यो॥
१०. देशांतर जे रह्या गीतार्थ, तेहनै पासे तामो।
जेह अगीतार्थ साधु नें, मूकी नें तिण ठामो॥
११. गूढ अर्थ पद करि दोषण नों, प्रायश्चित पूछावै।
तास कहण थी दियै प्रायश्चित, आज्ञा तृतीय कहावै॥
१२. चोथो जे व्यवहार धारणा, गीतारथ वैरागी।
द्रव्यादिक अपेक्षा किण नें, दियो प्रायश्चित सागी॥
१३. ते दंडधारी नें कोइ मुनिवर, तिणहिज विध पहिछाणी।
अन्य संत नें प्रायश्चित देवै, तेह धारणा जाणी॥
१४. अथवा वैयावच नों कारक, प्रायश्चित नहिं जाणें।
तसु गुण देखो नें आचारज, प्रसन्न हरष अति आणें॥

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

१. एते च प्रत्यनीका अपुनःकरणेनाभ्युत्थिताः शुद्धिमर्हन्ति। (वृ० प० ३८३)
२. शुद्धिश्च व्यवहारादिति व्यवहारप्ररूपणायाह— (वृ० प० ३८३)
३. व्यवहरणं व्यवहारो—मुमुक्षुप्रवृत्तिनिवृत्तिरूपः। (वृ० प० ३८४)
४. इह तु तन्निबन्धनत्वात् ज्ञानविशेषोऽपि व्यवहारः। (वृ० प० ३८४)

५. कतिविहे णं भंते! ववहारे पण्णत्ते?
गोयमा! पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा—आगमे, सुतं, आणा, धारणा, जीए।
६. केवलमनःपर्यायावधिपूर्वचतुर्दशकदशकनवकरूपः। (वृ० प० ३८४)
७. श्रुतं—शेषमाचारप्रकल्पादि। (वृ० प० ३८४)

८. नवादिपूर्वाणां च श्रुतत्वेऽप्यतीन्द्रियार्थेषु विशिष्टज्ञानहेतुत्वेन। (वृ० प० ३८४)
९. सातिशयत्वादागमव्यपदेशः केवलवदिति। (वृ० प० ३८४)
१०,११. तथाऽऽज्ञा—यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थनिवेदनायातीचारालोचनं इतरस्यापि तथैव शुद्धिदानं। (वृ० प० ३८४)

१२. धारणा—गीतार्थसंविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धिः कृता। (वृ० प० ३८४)
१३. तामवधार्य यदगुप्तमेवालोचनदानतस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते इति। (वृ० प० ३८४)
१४. वैयावृत्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणोऽशेषानुचितस्य। (वृ० प० ३८४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. प्रायश्चित पद किता ऊधरी, तेहनें आप धरावै ।
ते धारी दंड दियै अन्य नें, ते धारणा कहावै ।।
१६. प्रवर जीत व्यवहार पंचमो, द्रव्य क्षेत्र काल भावो ।
दोषण सेवणहार तणुं वलि, देख संघयण सहावो ।।
१७. द्रव्य क्षेत्र काल भाव संघयण, धीरज हाणि अवधारं ।
तास निभै तेहवो दंड देवै, तेह जीत व्यवहारं ।।
१८. अथवा जे किणहि गछ मांहै, कारण विषयज भाव्यं ।
सूत्र थकी अधिको प्रायश्चित, आचार्ये प्रवर्त्ताव्यं ।।
१९. वलतुं ते गच्छ मांहि परंपर, तेहिज दंड देवाइं ।
ते पिण जीत व्यवहार बखाण्यो, वृत्तौ एम कहाइं ।।

१५. प्रायश्चित्तपदानां प्रदर्शितानां धरणमिति ।
(वृ० प० ३८४)

१६,१७. जीतं द्रव्यक्षेत्रकालभावपुरुषप्रतिसेवानुवृत्या संहननधृत्यादिपरिहाणिमवेक्ष्य यत् प्रायश्चित्तदानं ।
(वृ० प० ३८४)

१८,१९. यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्तः कारणतः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्त्तितो बहुभिरन्यैश्चानुवर्तित इति ।
(वृ० प० ३८४)

**सोरठा**

२०. ठाणांग पंचम ठाण, द्वितीय उद्देशक नें विषे ।
पंच व्यवहार पिछाण, तास वृत्ति में इम कह्युं ।।
२१. जे बहुश्रुत बहु वार, प्रवर्त्यो वर्ज्यो नथी ।
वर्त्तै वर्त्या लार, कार्य ह्वै ए जीत करि ।।

२०. पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा—आगमे, सुते, आणा, धारणा, जीते । (ठाणं ५।१२४)

२१. बहुसो बहुस्सुएहिं जो वत्तो नो निवारिओ होइ ।
वत्तणुवत्तपमाणं जीएण कयं हवइ एयं ।।
(ठाणं वृ० प० ३०७)

२२. तथा आचार्य शुद्ध, परंपराए करि तिको ।
दियै दंड अविरुद्ध, जीत कल्प ए छै वली ।।
२३. आचरियो सुविचार, सावज्ज रहित किणे किहां ।
अन्य गणपति अनिवार, बहु अणुमत ए आचरित ।।

२२. जं जस्स उ पच्छित्तं आयरिअपरंपराए अविरुद्धं ।
जोगा य बहुविहीया एसो खलु जीयकप्पो उ ।।
(ठाणं वृ० प० ३०७)

२४. *केवल अवधि अनें मनपर्यव, प्रत्यक्ष आगम जाणी ।
चउद पूर्व दश नव पूरवधर, परोक्ष आगम माणी ।।
२५. प्रत्यक्ष आगम सरिसो कहियै, परोक्ष आगम सोय ।
चंद्रमुखी ते चंद्र जिसो मुख, तिम ए पिण अवलोय ।।
२६. यथा प्रकार करीनें तेहनें, पांचूं में पहिछाणं ।
आगम जे व्यवहार हुवै जद, तेहिज स्थापै जाणं ।।
२७. आगम व्यवहारे आगम करि, तास प्रवृत्ति सुचीनं ।
अन्य श्रुतादि चिउं न प्रवर्त्तै, तेहथी ए अतिहीनं ।।
२८. रवि प्रकाश थकी नहिं अधिको, दीप तणो सुप्रकाशं ।
रवि थी दीप प्रकाश हीन छै, तिम इहां पिण सुविमासं ।।

२६,२७. जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा ।

२९. जो आगम व्यवहार न लाभै, हुवै श्रुत सुखकारं ।
तो श्रुत करि व्यवहार प्रवर्त्तै, तेहिज थापवुं सारं ।।
३०. जो व्यवहार श्रुत नहिं लाभै, ह्वै त्यां आण उदारं ।
तो आज्ञा करि व्यवहार प्रवर्त्तै, तेहिज स्थापवूं सारं ।।
३१. जो आज्ञा व्यवहार न लाभै, हुवै धारणा जेह ।
तो व्यवहार धारणा करिनें, प्रवर्त्तवुं गुणगेह ।।

२९. णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा ।

३०. णो य से तत्थ सुए सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा ।

३१. णो य से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा ।

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. जो व्यवहार धारणा न ह्वै, हुवै जीत सुखकारं ।
तो जीत करी व्यवहार प्रवर्तै, अतीत वा नवो उदारं ।।
३३. ए पांच प्रकार करिनैं, स्थापै ए व्यवहारं ।
आगम श्रुत आज्ञा नैं धारणा, जीत गणिकृत सारं ।।

**सोरठा**

३४. सामान्य करिकै एह, निगमन पूर्वे आखियो ।
जिम-जिम इत्यादेह, विशेष करि निगमन ह्विवै ।।

३५. *जिम-जिम ते आगम श्रुत आज्ञा, वलि धारणा जीतं ।
तिम तिम ते व्यवहार प्रतै मुनि, स्थापै अधिक पुनीतं ।।

**सोरठा**

३६. ए पांचू करि पेख, प्रवर्त्तै ते पुरुष नैं ।
प्रश्न द्वार करि देख, फल कहियै ते सांभलो ।।

३७. *अथ हे प्रभु ! आगमबलिया, केवली प्रमुखज सोई ।
ए आगम व्यवहारवंत ते, स्यूं आखं अवलोई ?
३८. ए व्यवहार पंचविध ते मुनि, जे जे काले जानं ।
जहिं जहिं जे जे क्षेत्रे फुन, वलि प्रयोजनै पिछानं ।।

**सोरठा**

३९. जे जे काले जोग, प्रयोजने क्षेत्रे वलि ।
जे जे उचित प्रयोग, ए रह्यो शेष वच इम वृत्तौ ।।

४०. *तदा तदा ते ते काले मुनि, अवसर विषे उदारं ।
तहिं तहिं ते ते क्षेत्रे फुन, वलि प्रयोजने विचारं ।।

**सोरठा**

४१. अद्धा क्षेत्र विषेह, तेह जोग व्यवहार प्रति ।
प्रवर्त्तै गुणगेह, ते व्यवहार छै केहवूं ?
४२. अनिश्रितोपासृत्य, सर्वाशंसारहित जे ।
ते मुनि अंगीकृत्य, प्रायश्चित्तादिक तिको ।।

४३. अथवा निश्रित सीस, उपाश्रित तेहिज मुनि ।
व्यावच करै जगीस, तसु पक्षपात रहितपणैं ।।

४४. अथवा निश्रित राग, उपाश्रित ते द्वेष फुन ।
ए बिहुं रहित सुमाग, प्रायश्चित्तादिक प्रवृत्ति ।।

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

३२. णो य से तत्थ धारणा सिया, जहा से तत्थ जीए सिया, जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा ।
३३. इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, तं जहा—आगमेणं सुएणं, आणाए, धारणाए, जीएणं ।

३४. 'इच्चेएहिं' इत्यादि निगमनं सामान्येन 'जहा जहा से' इत्यादि तु विशेषनिगमनमिति । (वृ० प० ३८५)
३५. जहा जहा से आगमे सुए आणा धारणा जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा ।

३६. एतैर्व्यवहर्त्तुः फलं प्रश्नद्वारेणाहः— (वृ० प० ३८५)

३७. से किमाहु भंते ! आगमबलिया समणा निग्गंथा ?

३८. इच्चेतं पंचविहं ववहारं जदा जदा जहिं जहिं ।

३९. यदा यदा यस्मिन् यस्मिन् अवसरे यत्र यत्र प्रयोजने वा क्षेत्रे वा यो य उचितस्तं तमिति शेषः । (वृ० प० ३८५)
४०. तदा तदा तहिं तहिं
तदा तदा काले तस्मिन् तस्मिन् प्रयोजनादौ । (वृ० प० ३८५)

४२. अणिस्सिओवस्सितं
अनिश्रितैः—सर्वाशंसारहितैरुपाश्रितः—अङ्गीकृतोऽनिश्रितोऽपाश्रितस्तम् । (वृ० प० ३८५)
४३. अथवा निश्रितश्च—शिष्यत्वादि प्रतिपन्नः उपाश्रितश्च—स एव वैयावृत्यकरत्वादिना प्रत्यासन्नतरस्तौ । (वृ० प० ३८५)
४४. अथवा निश्रितं—रागः उपाश्रितं च—द्वेषस्ते । (वृ० प० ३८५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. अथवा निश्रित जोय, आहारादिक मुझ आपस्यै ।
उपाश्रित शिष्य सोय, महाकुलवंतादिक अछै ।।
४६. इम पक्षपात रहीत, प्रायश्चित्तादि प्रवर्त्ततो ।
श्रमण निर्ग्रंथ पुनीत, आण आराधक ते हुवै ।।
४७. इहविध प्रश्न सुजोय, प्रश्न द्वार फल पूछियां ।
गुरु कहै हंता होय, गम्यमान गुरु वच इहां ।।

वा०—हे भगवंत ! जे आगमबलिया श्रमण निर्ग्रंथ केवली आदि ते इम कहै छै के ए पांच व्यवहार सम्यक् व्यवहरवा थकी आज्ञा नां आराधक थाय ? पाठ में तो इम प्रश्न रूपज छै । तिवारे गुरु—हंता हां इम कहै छै । ए उत्तर गम्यमान छै ।

४८. अन्य आचार्य ख्यात, आगमबलिया जिन प्रमुख ।
श्रमण निर्ग्रंथ विख्यात, हे भदंत ! फल स्यूं कहै ।।
४९. कह्या पंच व्यवहार, स्यूं फल तसु ए शेष वच ।
इम पूछै सुविचार, आगल गुरु उत्तर दियै ।।
५०. इच्चेयं इत्यादि, प्रवर पंच व्यवहार प्रति ।
जे जे अवसर लाधि, जे जे क्षेत्र प्रयोजने ।।
५१. ते ते काल उचित्त, ते ते क्षेत्र प्रयोजने ।
अनिश्रित उपाश्रित्त, सम्यक् प्रवर्त्ततो अछै ।।
५२. श्रमण तणी निर्ग्रंथ, आण-आराधक ते हुवै ।
ए गुरु उत्तर तंत, अन्य आचार्य इम कहै ।।
५३. *वलि व्यवहार तणी टीका में, धुर च्यारूं व्यवहारं ।
तीर्थ अंत तांई नहि रहिसी, जीत तीर्थ लग सारं ।।
५४. अंक अठ्यासी देश ढाल ए, एक सौ नवचालीसं ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय' सुख विस्वावीसं ।।

४५. अथवा निश्रितं च—आहारादिलिप्सा उपाश्रितं च—शिष्यप्रतीच्छककुलाद्यपेक्षा । (वृ० प० ३८५)

४६. सम्मं ववहरमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ । (श० ८।३०१)
सर्वथा पक्षपातरहितत्वेन यथावदित्यर्थः (वृ० प० ३८५)

वा०—आज्ञाया—जिनोपदेशस्याराधको भवतीति, हंत ! आहुरेवेति गुरुवचनं गम्यमिति । (वृ० प० ३८५)

४८. अन्ये तु से किमाहु भंते ! इत्याद्येवं व्याख्यान्ति अथ किमाहुर्भदन्त ! आगमबलिकाः श्रमणा निर्ग्रन्थाः ! पञ्चविधव्यवहारस्य फलमिति शेषः अत्रोत्तरमाह—'इच्चेय' मित्यादि (वृ० प० ३८५)

५३. सुत्तमणागयविसयं……होहिंति न आइल्ला जा तित्थं ताव जीतो उ ।।
आद्याश्चत्वारो व्यवहारा न यावत्तीर्थं च भविष्यन्ति जीतस्तु व्यवहारो यावत्तीर्थं तावद् भवितेति ।
(व्यव० भाष्य भाग १० प० १०)

## ढाल : १५०

### दूहा

१. आण आराधकनांज फल, अशुभ क्षये शुभ बंध ।
ते माटै हिव बंध नों, कहूं निरूपण संध ।।
२. द्रव्य बंध निगडादि नों, इहां न ते अधिकार ।
कर्म बंध जे भाव थी, कहियै ते विस्तार ।।
३. कतिविध बंध कह्यो प्रभु ! जिन कहै द्विविध ताय ।
इरियावहि शुभ वेदनी, शुभाशुभ संपराय ।।

*लय : पारस देव तुम्हारा दरसण

१. आज्ञाराधकश्च कर्म्म क्षपयति शुभं वा तद् बध्नातीति बन्धं निरूपयन्नाह— (वृ० प० ३८५)
२. द्रव्यतो निगडादिबन्धो भावतः कर्मबन्धः, इह च प्रक्रमात् कर्मबन्धोऽधिकृतः । (वृ० प० ३८५)
३. कतिविहे णं भंते ! बंधे पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—इरियावहियबंधे य, संपराइयबंधे य । (श० ८।३०२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. 'ग्यारम बारम तेरमें, केवल जोग निमित्त ।
इरियावहि नों बंध त्यां, एह कषाय रहित्त ॥

५. संपराय नो बंध जे, दशमां गुण लग होय ।
एह कषाय सहित नें, शुभाशुभ अवलोय ॥

६. द्विविध सातावेदनी, इरियावहि संपराय ।
पन्नवणा पद तेवीसमें, प्रगट पाठ रै मांय ॥

७. अनायुक्त गमनादिके, संपराय बंधाय ।
सप्तम शतक उदेश धुर, एह पाप-संपराय ॥

८. संपराय सकषाय नें, इरियावहि अकषाय ।
सप्तम शतक उदेश धुर, सप्तमुद्देशक मांय ॥

९. संपराय सकषाय नें, इरियावहि अकषाय ।
दशम शतक वलि भगवती, द्वितीय उदेशक मांय ॥

१०. इरियावहिइं वर्त्ततां, सीज्झ्या सोज्झै ताय ।
काल अनागत सीज्झस्यै, द्वितीय सूयगडांग मांय ॥

११. शुद्ध उपयोगे चालतां, कुकुड पोत चंपाय ।
शतक अठारम आठमें, इरियावहि बंधाय ॥

१२. तिहां सातमां शतक नों, सप्तमुदेश भलाय ।
वीतराग ए बे भणी, उपशम-क्षीण कषाय ॥

१३. इरियावहि नो शुभ फरस, स्थिति बे समय सुसंध ।
उत्तराध्येन गुणतीसमें, वीतराग रै बंध ॥

१४. ते माटै इरियावहि, सातावेदनी जाण ।
संपराय शुभ अशुभ है, समय न्याय पहिछाण ॥' (ज० स०)

*वारी जाऊं रे जिन वचनां तणी ।(ध्रुपदं)

१५. इरियावहि कर्म हे प्रभु ! नरक तिर्यंच तिर्यंचणी बांधै जी ?
के मनुष्य मनुष्यणी नै बंधै, कै देवता देवी सांधै जी ?

१६. जिन भाखै न बांधै नेरइयो, तिर्यंच बांधै नांही ।
तिर्यंचणी बांधै नहीं, देव देवी न बांधै ज्यांही ॥

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

४. ऐर्यापथिकं—केवलयोगप्रत्ययं कर्म तस्य यो बन्धः स तथा । (वृ० प० ३८५)

५. साम्परायिकबन्धः कषायप्रत्यय इत्यर्थः । (वृ० प० ३८५)

६. सातावेदणिज्जस्स जहा ओहिया ठिती भणिया तहेव भाणियव्वा इरियावहियबंधयं पडुच्च संपराइयबंधयं च । (पण्णवणा २३।१७६)

७. अणगारस्स भंते ! अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा····गोयमा ! नो रियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ । (भ० ७।२०)
····जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति····तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ । (भ० ७।२१)

९. ····जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति तस्स णं इरियावहिया-किरिया कज्जइ, जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ । (भ० १०।१४)

१०. ····एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिंसु बुज्झिंसु मुच्चिंसु परिणिव्वाइंसु सव्व-दुक्खाणं अंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा । (सूयगडो २।८०)

११. ····अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो····तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ ॥ (भ० १८।१५६)

१२. जस्स णं कोह- माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति, तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ । (भ० ७।१२६)

१३. पेज्जदोसमिच्छादंसणविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
····जाव सजोगी भवइ ताव य इरियावहियं कम्मं बंधइ सुहफरिसं दुसमयठिइयं···· (उत्तर० २९।७१)

१५. इरियावहियं णं भंते ! कम्मं किं नेरइओ बंधइ ? तिरिक्खजोणिओ बंधइ ? तिरिक्खजोणिणी बंधइ ? मणुस्सो बंधइ ? मणुस्सी बंधइ ? देवो बंधइ देवी बंधइ ?

१६. गोयमा ! नो नेरइओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिओ बंधइ, नो तिरिक्खजोणिणी बंधइ, नो देवो बंधइ, नो देवी बंधइ



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. पूर्व काल विषे रह्या, इरियावहि पणो जाणी।
ते बंधग द्वितीयादि समयवर्त्ती, बहु मनुष्य मनुष्यणी पिछाणी ।।

१७. पुव्वपडिवन्नए पडुच्च मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति ।
पूर्व—प्राक्काले प्रतिपन्नमैर्यापथिकबन्धकत्वं यैस्ते पूर्वप्रतिपन्नकास्तान्, तद्बन्धकत्वद्वितीयादिसमयवर्त्तिन इत्यर्थः। (वृ० प० ३८५)

**सोरठा**

१८. पूर्व प्रतिपन्न जेह, ते आश्री ए वचन है।
सदा केवली तेह, इरियावहि बंधक घणां ।।
१९. घणां केवली मांहि, बहु मनुष्य बहु मनुष्यणी।
ए बेहुं पद ताहि, बहु वचने करिनें कह्या ।।

१८,१९. ते च सदैव बहवः पुरुषाः स्त्रियश्च सन्ति उभयेषां केवलिनां सदैव भावात् (वृ० प० ३८५)

२०. *पडिवजणहार आसरी, वर्त्तमान ए कालो।
इरियावहि कर्म बंध नों, पढम समयवर्त्ती न्हालो ।।

२०. पडिवज्जमाणए पडुच्च
प्रतिपद्यमानकान् ऐर्यापथिककर्म्मबन्धनप्रथमसमयवर्त्तिन इत्यर्थः। (वृ० प० ३८५)

२१. तास विरह संभव थको, किणहि वेला नर एको।
किणहि वेला इक स्त्री हुवै, किणहि वेला बहु पेखो ।।

२१. एषां च विरहसम्भवाद् (वृ० प० ३८५)
मणुस्सो वा बंधइ, मणुस्सी वा बंधइ, मणुस्सा वा बंधंति, मणुस्सीओ वा बंधंति

**सोरठा**

२२. कदा मनुष्य इक होय, तथा कदा इक मनुष्यणी।
तथा मनुष्य बहु जोय, तथा कदा बहु मनुष्यणी ।।
२३. इक संयोग सधीक, ए चिउं भांगा आखिया।
हिव द्विक संयोगीक, चिउं भांगा कहियै अछै ।।

२२,२३. एकदा मनुष्यस्य स्त्रियाश्चैकैकयोगे एकत्वबहुत्वाभ्यां चत्वारो विकल्पाः, द्विक्संयोगे तथैव चत्वारः (वृ० प० ३८५)

२४. इक वचने नर एक, वलि इक वचनै मनुष्यणी।
प्रथम भंग ए पेख, द्विकसंयोगिक आखियो ।।

२४. अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य बंधइ

२५. अथवा नर इक जान, बहु वचने करि मनुष्यणी।
द्वितीय भंग पहिछाण, इरियावहि बंधक हुवै ।।

२५. अहवा मणुस्सो य मणुस्सीओ य बंधंति

२६. अथवा बहु नर जोय, इक वचनै इक मनुष्यणी।
तृतीय भंग ए होय, इरियावहि बंधकपणें ।।

२६. अहवा मणुस्सा य मणुस्सी य बंधंति

२७. तथा मनुष्य बहु होय, बहु वचने बहु मनुष्यणी।
तुर्य भंग अवलोय, द्विकसंयोगिक नों कह्यो ।।

२७. अहवा मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति ।
(श० ८।३०३)

२८. इकसंयोगिक च्यार, द्विकसंयोगिक पिण चिउं।
इरियावहि बंध धार, पडिवजमाण पडुच्च ए ।।
२९. लिंग अपेक्षा एह, कह्या मनुष्य नैं मनुष्यणी।
वेद अपेक्षा जेह, हिव स्त्री पुरुष प्रमुख कहै ।।

२९. एषां च पुंस्त्वादि तत्तल्लिङ्गापेक्षया न तु वेदापेक्षया अथ वेदापेक्षं स्त्रीत्वाद्यधिकृत्याह—
(वृ० प० ३८६)

३०. *इरियावहि बंधक प्रभु! स्यूं, इक स्त्री वेद बांधै?
इक पुं वेद बांधै अछै, एक नपुंसक सांधै?
३१. ए त्रिहुं पद इक वच कह्या, बहु स्त्री वेद बांधै?
बहु पुं वेद बांधै अछै, कै बहु नपुंसक सांधै?

३०. तं भंते! किं इत्थी बंधइ? पुरिसो बंधइ? नपुंसगो बंधइ?
३१. इत्थीओ बंधंति? पुरिसा बंधंति? नपुंसगा बंधंति?

*लय : राम सोहो लेवै सीता तणी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. ए त्रिहुं पद बहु वच कह्या, कै तीनूंइ वेद-रहीतो।
तेह अवेदी बांधै अछै, इरियावहि सुवदीतो?

३२. नोइत्थी नोपुरिसो नो नपुंसगो बंधइ?

३३. जिन कहै स्त्री बांधै नहीं, इक पुं वेद न बांधै।
जाव नो बहु नपुंसगा, ए षट पद बंध न सांधै।।

३३. गोयमा! नो इत्थी बंधइ, नो पुरिसो बंधइ, जाव (सं० पा०) नो नपुंसगा बंधंति।
उत्तरे तु षण्णां पदानां निषेधः। (वृ० प० ३८६)

३४. पूर्वकाल विषे रह्या, इरियावहि बंधकपणो जाणी।
द्वितीयादि समयवर्त्ती तिके, बहु अपगतवेदा पिछाणी।।

३४. पुव्वपडिवन्नए पडुच्च अवगयवेदा बंधंति—

३५. †इरियावहि कर्म बंधकपणां नें जाणियै,
बे त्रिण प्रमुख समय थयां तेह पिछाणियै।
पूर्व प्रतिपन्न होय सदा बहु केवली,
वेद रहित इहां वीतराग मुनि रंगरली।।

३६. वेद रहित नवमें दशमें गुणठाण ही,
पिण इरियावहि बंध तास नवि जाण ही।
इरियावहि बंध क्षीण-कषाई नें कह्यो,
तिण सूं वेद रहित ए अकषाई ग्रह्यो।।

३७. *पडिवजणहार आसरी, वर्त्तमान ए कालो।
इरियावहि कर्म बंध नों, पढम समयवर्त्ती न्हालो।।

३८. तास विरह संभव थकी, वेद रहित एक बांधै।
तथा अवेदी बांधै बहु, ए बे विकल्प सांधै।।

३७,३८. पडिवज्जमाणए पडुच्च अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति (श० ८।३०४)
प्रतिपद्यमानकानां तु सामयिकत्वाद् विरहभावेनैकादिसम्भवाद्, विकल्पद्वयमत एवाह—
(वृ० प० ३८६)

३९. जो एक अवेदी बांधै प्रभु! तथा घणां अवेदी बांधै।
एक बहु वचने करी, ए बे विकल्प सांधै।।

४०. जो एक अवेदी बांधै प्रभु! तथा घणां अवेदी बांधै।
तो स्यूं प्रभु! इक स्त्री पच्छाकडो, इरियावहि बंध सांधै?

३९, ४०. जइ भंते! अवगयवेदो वा बंधइ अवगयवेदा वा बंधंति तं भंते! किं इत्थीपच्छाकडो बंधइ?

**सोरठा**

४१. स्त्री वेदे वर्त्तेह, थयो अवेदो श्रेणि चढ।
स्त्री-पच्छाकड जेह, इमज अनेरा वेद पिण।।

४१. स्त्रीत्वं पश्चात्कृतं—भूततां नीतं येनावेदकेनासौ स्त्री-पश्चात्कृतः, एवमन्यान्यपि। (वृ० प० ३८६)

४२. *कै इक पुरुष-पच्छाकडो, इरियावहि बांधंतो?
एक नपुंसक-पच्छाकडो, ए त्रिहुं इक वच हुंतो?

४२. पुरिसपच्छाकडो बंधइ? नपुंसकपच्छाकडो बंधइ?

४३. कै बहु स्त्री-पच्छाकडा, बहु पुं-पच्छाकडा बांधै?
बहु नपुंसक-पच्छाकडा, इरियावहि बंध सांधै?

४३. इत्थीपच्छाकडा बंधंति? पुरिसपच्छाकडा बंधंति? नपुंसगपच्छाकडा बंधंति?

**सोरठा**

४४. इकसंयोगिक एह, इक वच बहु वच भंग षट।
हिव द्विकसंयोगेह, कहियै द्वादश भंगका।।

४४. इहैकक्योगे एकत्वबहुत्वाभ्यां षड्विकल्पाः द्विकयोगे तु तथैव द्वादश। (वृ०प० ३८६)

†लय: नदी जमुना रै तीर उड़ै
*लय: राम सोही लेवै सीता तणी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. *अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडो एको ।
इरियावहि बांधै अछै, प्रथम भंग ए पेखो ।।
४६. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, बहु पुरुष-पच्छाकडा जाणी ।
इरियावहि बांधै अछै, द्वितीय भंग ए ठाणी ।।
४७. अथवा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरुष-पच्छाकडो एको ।
इरियावहि बांधै अछै, तृतीय भंग सुविशेखो ।।
४८. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, बहु पुरुष-पच्छाकडा जेहो ।
इरियावहि बांधै अछै, तुर्य भंग छै एहो ।।
४९ अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, एक नपुंसक ताह्यो ।
पच्छाकडो बांधै अछै, ए पंचम भंग कहायो ।।
५०. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, बहु नपुंसक वेदो ।
पच्छाकडो बांधै अछै? ए भंग छट्ठो भेदो ।।
५१. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, एक नपुंसक जोयो ।
पच्छाकडो बांधै अछै? सप्तम भंगे सोयो ।।
५२. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, बहु नपुंसक जाणी ।
पच्छाकडा बांधै अछै? अष्टम भंगे पिछाणी ।।
५३. अथवा इक पुं-पच्छाकडो, एक नपुंसक भालो ।
पच्छाकडो बांधै अछै? नवमें भंगे न्हालो ।।
५४. अथवा इक पुं-पच्छाकडो, बहु नपुंसक मंतो ।
पच्छाकडा बांधै अछै? दसमों भंग दोपंतो ।।
५५. तथा बहु पुं-पच्छाकडा, एक नपुंसक संगो ।
पच्छाकडो बांधै अछै? एकादसमों भंगो ।।
५६. तथा बहु पुं-पच्छाकडा, बहु नपुंसक जेही ।
पच्छाकडा बांधै अछै, द्वादसमों भंग एही ।।

### सोरठा

५७. द्विक-संयोग सुघाट, द्वादश भंगा आखिया ।
त्रिक-संयोगिक आठ, प्रवर भंग कहियै हिवै ।।

४५. उदाहु इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ

४६. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडा य बंधंति

४७. अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ

४८. अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य बंधंति

४९. अहवा इत्थीपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ

५०. अहवा इत्थीपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति

५१. अहवा इत्थीपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ

५२. अहवा इत्थीपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति

५३. अहवा पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ

५४. अहवा पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति

५५. अहवा पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ

५६. अहवा पुरिसपच्छाकडा य, नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति

५७. त्रिकयोगे पुनस्तथैवाष्टौ (वृ० प० ३८६)

---

***लय : राम सोहीं लेवे सीता तणी**

ढाल १५० गाथा ४६ से ६६ तक की जोड़ जिस पाठ के आधार पर की गई है, उसमें प्रत्येक विकल्प को स्वतन्त्र रूप से दिखाया गया है। अंगसुत्ताणि भाग दो, शतक ८।३०५ में पाठ संक्षिप्त है। वहां इस पाठ के छब्बीस भंगों में प्रथम छह भंगों को स्वतंत्र रूप से रखकर आगे के भंगों में चार-चार भंग एक साथ लिए गए हैं। इसके लिए प्रत्येक भंग के आगे ४ का अंक लगा दिया गया है। भगवती की जोड़ में सब भंग अलग-अलग हैं। इसलिए इन भंगों से सम्बन्धित गाथाओं के सामने पाद-टिप्पण में दिए गए पाठ को उद्धृत किया गया है। मूल पाठ में भंग के प्रारंभ में 'उदाहु' पाठ है, किन्तु पाद टिप्पण में 'अहवा' है। अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्दों में कोई अन्तर नहीं है। अतः जोड़ के सामने पाद-टिप्पण का पाठ यथावत् रख दिया गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. *अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडो एको ।
इक नपुंसक-पच्छाकडो, बांधै धुर भंग देखो ।।

५८. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ?

**सोरठा**

५९. एवं एते जाण, छव्वीसं भंगा प्रवर ।
यावत अथवा माण, चरम भंग सूत्रे कह्यं ।।

५९. एवं एते छव्वीसं भंगा जाव[1]

६०. *अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकड एको ।
बहु नपुंसक-पच्छाकडा, द्वितीय भंग सुविशेखो ।।
६१. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडा बहु होई ।
एक नपुंसक-पच्छाकडो, तृतीय भंग अवलोई ।।
६२. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरिस-पच्छाकडा बहु जाणी ।
बहु नपुंसक-पच्छाकडा, तुर्य भंग पहिछाणी ।।
६३. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडो एको ।
एक नपुंसक-पच्छाकडो, पंचम भंग संपेखो ।।
६४. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडो एको ।
बहु नपुंसक-पच्छाकडा, छठो भांगो देखो ।।
६५. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडा बहु धारी ।
इक नपुंसक-पच्छाकडो, सप्तम भंग विचारी ।।
६६. तथा बहु स्त्री-पच्छाकडा, पुरिस-पच्छाकडा बहु कहियै ।
बहु नपुंसक-पच्छाकडा, अष्टम भंग सलहियै ।।
६७. इरियावहि बांधै अछै, एह छब्बीस प्रकारो ।
पडिवज्जमाण पडुच्च ए, पूछचा गोयम गणधारो ।।
६८. जिन कहै इत्थि-पच्छाकडो, इक वचने पिण बांधै ।
वलि इक पुरिस-पच्छाकडो, ते पिण ए बंध सांधै ।।
६९. एक नपुंसक-पच्छाकडो, ते पिण बांधै एहो ।
वलि बहु इत्थि-पच्छाकडा, ते पिण ए बांधे हो ।।
७०. वलि बहु पुरिस-पच्छाकडा, ते पिण ए बांधता ।
बहु नपुंसक-पच्छाकडा, ते पिण ए सांधता ।।
७१. अथवा इक स्त्री-पच्छाकडो, पुरिस-पच्छाकडो एको ।
द्विकसंयोगिक भंग ए, इम भंग छब्बीस संपेखो ।।
७२. जाव तथा भंग चरिम ए, बहु इत्थि-पच्छाकडा बांधै ।
बहु पुरिस-पच्छाकडा, बहु नपुंसग-पच्छाकडा सांधै ।।

६०. अहवा इत्थीपच्छाकडो य, पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति ?
६१. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ?
६२. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति ?
६३. अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ?
६४. अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडो य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति ?
६५. अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडो य बंधइ ?
६६. उदाहु इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति[2] ?

६८. गोयमा ! इत्थीपच्छाकडो वि बंधइ, पुरिसपच्छाकडो वि बंधइ,
६९. नपुंसगपच्छाकडो वि बंधइ, इत्थीपच्छाकडा वि बंधंति,
७०. पुरिसपच्छाकडा वि बंधंति, नपुंसगपच्छाकडा वि बंधंति,
७१. अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ, एवं एए चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा
७२. जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति ! (श० ८।३०५)

**सोरठा**

७३. इरियावहि बांधंत, पडिवज्जमाण पडुच्च ए ।
भंग छबीसे हुंत, वर्त्तमान इक समय में ।।

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

१,२. गाथा ५९ और ६६ के सामने उद्धृत पाठ पादटिप्पण का नहीं, मूल का है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. इरियावहि बंध ईज, काल तीन करिनैं हिवै।
विकल्प तास कहीज, पूछै गोयम गणहरू॥

७५. *इरियावहि कर्म हे प्रभु स्यूं बांध्यो गये कालो।
वर्त्तमान बांधै अछै, बांधिस फेर विशालो॥

७६. गये काले बांधै अछै, वर्त्तमान बांधंतो।
अनागत नहीं बांधस्यै? दूजो भंग दीपंतो॥

७७. गये काले बांध्यो अछै, बांध्यो नहिं वर्त्तमानो।
काल अनागत बांधस्यै? तृतीय भंग सुजानो॥

७८. गये काले बांध्यो अछै, बांधै नहिं वर्त्तमानो।
अनागत नहीं बांधस्यै? तुर्य भंग पहिचानो॥

७९. गये काले बांध्यो नहीं, वर्त्तमान बांधंतो।
काल अनागत बांधस्यै? पंचम भंग कहंतो॥

८०. गये काले बांध्यो नहीं, बांधै छै वर्त्तमानो।
अनागत नहि बांधसी? छट्ठो भंग पिछानो॥

८१. गये काले बांध्यो नहीं, नहि बांधै वर्त्तमानो।
काल अनागत बांधस्यै? सप्तम भंग सुजानो॥

८२. गये काले बांध्यो नहीं, बांधै नहि वर्त्तमानो।
अनागत नहीं बांधस्यै? अष्टम भंग पिछानो॥

८३. जिन कहै बहु भव नैं विषे, इरियावहि अपेक्षायो।
बांध्या बांधै बांधस्यै, केयक जीव कहायो॥

८४. केइ अतीतज बांधियो, बांधै छै वर्त्तमानो।
आगमिक नहिं बांधस्यै, इम तिमहिज सहु जानो॥

८५. जाव केयक नहि बांधियो, सांप्रत बांधै नांही।
आगमिक नहीं बांधस्यै, ए अष्टम भंग त्यांही॥

## सोरठा

८६. भवाकर्ष कहिवाय, जे अनेक भव नैं विषे।
उपशम आदिज ताय, श्रेणि पामवै करि तिको॥

८७. इरियावहि जे कर्म, तेहनां अणु नो जे ग्रहण।
भवाकर्ष ए मर्म, ते आश्री भंग अठ हुवै॥

८८. †भव पूर्व में उपशांतमोहे, बंध जे इरियावही।
फुन वर्त्तमान भव मांहि बांधै, मोह उपशम में रही॥

८९. वलि अनागत भव बांधस्यै जे, क्षपकश्रेण विषे सही।
बांध्यो रु बांधै बांधस्यै, इम प्रथम भंग पिछाणही॥

वा०—इहां वृत्ति में कह्यो—पूर्व भवे ग्यारमें गुणठाणे बांध्यो, वर्तमान भव में पिण ग्यारमें गुणठाणे बांधै, वलि अनागत पिण ग्यारमें गुणठाणे बांधसी।

७४. अथैर्यापथिककर्मबंधनमेव कालत्रयेण विकल्पयन्नाह—
(वृ० प० ३८६)

७५. तं भंते! किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ?

७६. बंधी बंधइ न बंधिस्सइ?

७७. बंधी न बंधइ बंधिस्सइ?

७८. बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ?

७९. न बंधी बंधइ बंधिस्सइ?

८०. न बंधी बंधइ न बंधिस्सइ?

८१. न बंधी न बंधइ बंधिस्सइ?

८२. न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ?

८३. गोयमा! भवागरिसं पडुच्च अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ

८४. अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ, एवं तं चेव सव्वं

८५. जाव अत्थेगतिए न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ

८६,८७. अनेकत्रोपशमादिश्रेणिप्राप्त्या आकर्षः—ऐर्यापथिककर्माणुग्रहणं भवाकर्षस्तं प्रतीत्य। (वृ० प० ३८६)

८८. पूर्वभवे उपशान्तमोहत्वे सत्यैर्यापथिकं कर्म्म बद्धवान् वर्त्तमानभवे चोपशान्तमोहत्वे बध्नाति।
(वृ० प० ३८६)

८९. अनागते चोपशांतमोहावस्थायां भन्त्स्यतीति
(वृ० प० ३८६)

*लय : राम सोहीं लेवै सीता तणो
†लय : पूज मोटा भांजे तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहां अनागत शब्द में अनागत काल लेवै जद तो कोई अटकाव नहीं। जिम तिण भव में उपशमश्रेणी लेई बलि तिणहिजभव में अनागत काले उपशमश्रेणी लहीनै इरियावहि बांधै। पर अनागतशब्दे अनागतभव लेवै तो बात मिलै नहीं। कारण उपशमश्रेणी तीन भव में आवै नहीं। जिम भगवती शतक २५ उद्देशक ७ में इम कह्यो—सूक्ष्म सम्पराय चारित्र उत्कृष्ट नौ बार आवै, ते पिण उत्कृष्टो तीन भव में आवै। बे भव में तो उपशमश्रेणी थी आठ बार अनै तीजे भव में खपकश्रेणी थी एक बार। इण न्याय उपशमश्रेणी तीन भव में आवै नहीं।

९०. बलि पूर्व भव गुण ग्यारमै, बांध्यो करम इरियावही।
फुन वर्तमान भव मांहि बांधै, क्षीण मोह विषे रही॥
९१. अरु अनागत नहिं बांधस्यै ते, चवदमां गुण में सही।
बांध्यो रु बांधै बांधस्यै नहिं, द्वितीये भंगे वृत्ति ही॥

९०,९१. द्वितीयस्तु यः पूर्वस्मिन् भवे उपशान्तमोहत्वं लब्धवान् वर्त्तमाने च क्षीणमोहत्वं प्राप्तः स पूर्वं बद्धवान् वर्त्तमाने च बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुन र्न भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

९२. बांध्यो ग्यारम मांहि, बांधै तेरम गुण विषे।
चवदम बांधस्यै नांहि, फुन सिद्धे इम 'धर्मसी'॥

९३. *जे पूर्व भव गुण ग्यारमें, बांध्यो करम इरियावही।
फुन वर्त्तमान भव में न बांधै, हेठलै गुणठाण ही॥
९४. बलि अनागत भव बांधस्यै, गुण ग्यारमें इम वृत्ति हो।
बांध्यो न बांधै बांधस्यै, इम तृतीय भंग विशेष ही॥

९३,९४. तृतीयः पूर्वजन्मनि उपशान्तमोहत्वे बद्धवान् तत्प्रतिपतितो न बध्नाति अनागते चोपशान्तमोहत्वं प्रतिपत्स्यते तदा भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

९५. बंध्यो ग्यारम ठाण[1], बांधै नहि दशमें गुणे।
पूर्व भव पहिछाण, पडतो उपशमश्रेणि जे॥
९६. आगल भव बांधेस, ग्यारम बारम तेरमें।
त्रिहुं गुणठाण विशेष, तृतीय भंग कृत 'धर्मसी'॥

९७. *जे पूर्व भव गुण[2] ग्यारमें, बांध्यो करम इरियावही।
फुन वर्त्तमान भव नांहि बांधै, चवदमें गुण ए सही॥
९८. वलि अनागत नहिं बांधस्यै ते, सिद्ध में पहिछाणियै।
बांध्या न बांधै बांधस्यै नहिं, तुर्य भंग ए जाणियै॥

९७,९८. चतुर्थस्तु शैलेशीपूर्वकाले बद्धवान् शैलेश्यां च न बध्नाति न च पुनर्भन्त्स्यतीति। (वृ० प० ३८६)

९९. जे पूर्वभव नवि बांधियो, गुण ग्यारमों पायो नहीं।
फुन वर्त्तमान भव मांहि बांधै, ग्यारमें गुण ए सही॥
१००. ते अनागत भव बांधस्यै वलि, ग्यारमां गुण में रही।
नहिं बंध्यो बांधै बांधस्यै, ए भंग पंचम वृत्ति ही॥

९९,१००. पञ्चमस्तु पूर्वजन्मनि नोपशान्तमोहत्वं लब्धवानिति न बद्धवान् अधुना लब्धमिति बध्नाति पुनरप्येष्यत्काले उपशान्तमोहाद्यवस्थायां भन्त्स्यतीति पञ्चमः (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१०१. पूर्व भवे अबंध, बंधै छै गुण ग्यारमें।
बंधस्यै त्रिहुं गुण संध, पंचम भंगे 'धर्मसी'॥

---

*लय : पूज मोटा भांजै तोटा

१, २. गुणस्थान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### गीतक-छंद

१०२. गुण क्षीणमोहपणादि न लह्यु, पूर्वं भव बांध्यो नहीं ।
भव वर्त्तमानै क्षीण मोहे, बंध छै इरियावही ।।
१०३. वलि अनागत नहिं बांधस्यै, जे चवदमां गुण में रही ।
नहिं बंध्यो बांधै बांधस्यै नहिं, भंग षष्टम ए सही ।।
१०४. जे भव्य अनादि अद्धा विषे, नहिं बांधियो पूर्वे सही ।
भव वर्त्तमाने जीव कोइक, न बांधै इरियावही ।।
१०५. फुन अनागत कालांतरे, ए बांधस्यै आगामिही ।
नहिं बंध्यो न बंधै बांधस्यै, भव्य रास सप्तम धाम ही ।।

### सोरठा

१०६. न बंध्यो न बंधै तेण, सप्तम भांगे बांधस्यै ।
उपशम क्षायक श्रेण, होणहार शिव 'धर्मसी' ।।

### गीतक-छंद

१०७. वलि अष्टमज अभव्य पूर्वे, न बांध्यो इरियावही ।
फुन वर्त्तमान भव में न बांधै, सदा धुर ठाणे रही ।।
१०८. जे अनागत नहिं बांधस्यै, शिव गमन योग्य जिको नहीं ।
नहिं बांधियो अरु नाहिं बांधै, बांधस्यै नहिं इम कही ।।

### सोरठा

१०९. भवाकर्ष रै मांय, काल त्रिहुं नै पद विषे ।
विचलै पद जे पाय, कहियै छै भंग अष्ट ही ।।
११०. विचलै पद धुर भंग, उपशम श्रेणिज ग्यारमें ।
द्वितीय भंग सुचंग, क्षीणमोह बांधै अछै ।।

१११. न बंधै तोजै भंग, दशमें गुणठाणे कह्यु ।
उपशम श्रेणि सुचंग, पूर्व भव पड़तो छतो ।।
११२. न बंधै चउथै भंग, ए चवदमें गुणठाण में ।
पंचम भंग प्रसंग, बंधै उपशांत ग्यारमें ।।

११३. बंधै षष्टम भंग, क्षीणमोह तेरम गुणे ।
सप्तम भव्य शिव अंग, शिव अयोग्य अष्टम अभव्य ।।

---

१०२,१०३. षष्ठः पुनः क्षीणमोहत्वादि न लब्धवानिति न पूर्वं बद्धवान् अधुना तु क्षीणमोहत्वं लब्धमिति बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुनर्न भन्त्स्यतीति षष्ठः । (वृ० प० ३८६)

१०४,१०५. सप्तमः पुनर्भव्यस्य, स ह्यनादौ काले न बद्धवान् अधुनाऽपि कश्चिन्न बध्नाति कालान्तरे तु भन्त्स्यतीति । (वृ० प० ३८६)

१०७,१०८. अष्टमस्त्वभव्यस्य (वृ० प० ३८६)

१०९. इह च भवाकर्षापेक्षेष्वष्टसु भङ्गकेषु (वृ० प० ३८७)

११०. 'बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र प्रथमे भङ्गे उपशान्तमोहः 'बन्धी बन्धइ न बन्धिस्सइ' इत्यत्र द्वितीये क्षीणमोहः : (वृ० प० ३८७)

१११. 'बन्धी न बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र तृतीये उपशान्तमोहः । (वृ० प० ३८७)

११२. 'बन्धी न बन्धइ न बन्धिस्सइ' इत्यत्र चतुर्थे शैलेशीगतः,
'न बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र पञ्चमे उपशान्तमोहः (वृ० प० ३८७)

११३. न बन्धी बन्धइ न बन्धिस्सइ इत्यत्र षष्ठे क्षीणमोहः 'न बन्धी न बन्धइ बन्धिस्सइ' इत्यत्र सप्तमे भव्यः, 'न बन्धी न बन्धइ न बन्धिस्सइ' इत्यत्राष्टमेऽभव्यः[1] । (वृ० प० ३८७)

---

१. प्रस्तुत ढाल की गाथा ११० से ११३ तक की जोड़ का आधार मूल पाठ है। उसके साथ थोड़ा अंश वृत्ति का है। वृत्ति में मूल पाठ ज्यों का त्यों है। इसलिए यहां जोड़ का आधार वृत्ति को मान उसे ही उद्धृत किया गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**भवाकर्ष रे सन्दर्भ में ईरियावहि कर्म-बन्ध नों यन्त्र**

| बंधी | बंधइ | बंधिस्सइ | | |
|---|---|---|---|---|
| ११ में बांध्यो | ११ में बांधै | ११ में बांधस्यै | उपशांत मोह प्रथम भंगो | १ |
| ,, | १३ में बांधै | १४ में, सिद्ध न बांधस्यै | क्षीण मोह | २ |
| ,, | १० में न बांधै | ११,१२,१३ में बांधस्यै | उपशम थी पड्यां १० में गुणठाणे | ३ |
| ,, | १४ में न बांधै | सिद्ध न बांधस्यै | क्षीण मोह अजोगी | ४ |
| न बांध्यो | ११ में बांधै | ११,१२,१३ में बांधस्यै | उपशांत मोह | ५ |
| ,, | १३ में बांधै | सिद्ध न बांधस्यै | क्षीण मोह | ६ |
| ,, | न बांधै | ११,१२,१३ बांधस्यै | भव्य | ७ |
| ,, | ,, | न बांधस्यै | अभव्य | ८ |

**गीतक-छंद**

११४. बहु भवां आश्री कर्म जे, इरियावही बंध आखियो।
इम भंग आठ उदार सार, विचारवे इहां दाखियो॥
११५. जे भवाकर्षज पाठ ए, बहु भवां आश्री जाणियै।
ग्रहणाकर्षज पाठ ते, भव एक नो हिव आणियै॥

११६. *ग्रहणाकर्ष एक भव विषे, कोइक जीव पिछाणी।
बांध्या बांधै बांधस्यै, प्रथम भंग ए जाणी॥
११७. इम यावत कोइ जीवड़ो, नहिं बांध्यो काल अतीतो।
बांधै नें वलि बांधस्यै, ए पंचम भंग वदीतो॥
११८. गये काले बांध्या नहीं, वर्त्तमान बांधंतो।
अनागत नहिं बांधस्यै, ए छठो भांगो नहिं हुंतो॥
११९. कोइ एक जे जीवड़ो, न बांध्यो अवलोयो।
नहिं बांधै नें बांधस्यै, ए सप्तम भंगो होयो॥
१२०. कोइ एक जे जीवड़ो, न बांध्यो गयें कालो।
न बांधै नहिं बांधस्यै, ए अष्टम भंग न्हालो॥

**सोरठा**

१२१. ग्रहणाकर्षज ताय, जेह एक भव नें विषे।
उपशम आदि कहाय, श्रेणि पामवै करि तिको॥
१२२. इरियावहि जे कर्म, तेहनुं आकर्ष बांधवो।
वर्त्तमान भव मर्म, ते आश्री भंग सप्त ह्वै॥
१२३. छठो भांगो नहिं होय, वक्तव्यता भंग सात नीं।
कहियै छै अवलोय, इक भव बंध इरियावही॥

*लय : राम सोही लेवें सीता तणी

११६. गहणागरिसं पडुच्च अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ

११७. एवं जाव अत्थेगतिए न बंधी बंधइ बंधिस्सइ

११८. नो चेव णं न बंधी बंधइ न बंधिस्सइ

११९. अत्थेगतिए न बंधी न बंधइ बंधिस्सइ

१२०. अत्थेगतिए न बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ
(श० ८/३०६)

१२१, १२२. एकस्मिन्नेव भवे ऐर्यापथिककर्मपुद्गलानां ग्रहणरूपो य आकर्षोऽसौ ग्रहणाकर्षः (वृ० प० ३८६)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२४. *जे पूर्व काले इक भवे, उपशांत-मोहादिक मही ।
ए बांधियो इरियावहि, वलि वर्त्तमान बांधै सही ।।

१२५. फुन अनागत जे समय में, वलि बांधस्यै ते भव रही ।
बांध्यो रु बांधै बांधस्यै, ए प्रथम भांगे वृत्ति ही ।।

१२४,१२५. एकः कश्चिज्जीवः प्रथमवैकल्पिकः, तथाहि—उपशान्तमोहादिर्यदा ऐर्यापथिकं कर्म बद्धवा बध्नाति तदाऽतीतसमयापेक्षया बद्धवान् वर्त्तमानसमयापेक्षया च बध्नाति अनागतसमयापेक्षया तु भन्त्स्यतीति (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१२६. बांध्यो ग्यारम ठाण, फुन बंधै गुण ग्यारमें ।
आगल बंधस्यै जाण, उपशांतमोहो 'धर्मसी' ।।

१२७. तथा बारम गुणठाण, फुन गुणठाणे तेरमें ।
बांध्यो बांधै जाण, वलि बांधस्यै 'धर्मसी' ।।

**गीतक-छंद**

१२८. द्वितीयेज भांगे केवली, बांध्योज काल अतीत हो ।
वलि वर्त्तमान बांधैज तिण भव, तेरमां गुण में रही ।।

१२९. फुन अनागत नहिं बांधस्यै, जे चवदमें गुणठाण ही ।
बांध्यो रु बांधै बांधस्यै नहिं, द्वितीय भंगे वृत्ति ही ।।

१२८,१२९. द्वितीयस्तु केवली, स ह्यतीतकाले बद्धवान् वर्त्तमाने च बध्नाति शैलेश्यवस्थायां पुनर्न भन्त्स्यतीति । (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१३०. बंध्यो बारम ताहि, बंधै छै गुण तेरमें ।
चवदम बंधस्यै नांहि, क्षीणमोह ए 'धर्मसी' ।।

**गीतक-छंद**

१३१. उपशांत मोहपणेंज बांध्यो, पड़ी फुन बांधै नहीं ।
तिणहीज भव वलि बांधस्यै, जे श्रेणि-उपशम फुन लही ।।

१३२. इक भवे उपशम श्रेणि इम, बे वार प्राप्त ह्वै सही ।
बांध्यो न बांधै बांधस्यै, इम भंग तृतीयो वृत्ति ही ।।

१३१,१३२. तृतीयस्तूपशान्तमोहत्वे बद्धवान् तत्प्रतिपतितस्तु न बध्नाति पुनस्तत्रैव भवे उपशमश्रेणीं प्रतिपन्नो भन्त्स्यतीति, एकभवे चोपशमश्रेणी द्विर्वारं प्राप्यत एवेति (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१३३. ग्यारम बंध्यो कहेस, पड़ी नहिं बांधै दशम गुण ।
फुन ग्यारम बांधेस, इक भव उपशम वार द्वय ।।

**गीतक-छंद**

१३४. भंग तुर्य बांध्यो तेरमें, ते चवदमें बांधै नहीं ।
फुन चवदमें नहिं बांधस्यै जे, एम आख्यो वृत्ति ही ।।

१३४. चतुर्थः पुनः सयोगित्वे बद्धवान् शैलेश्यवस्थायां न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति । (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१३५. बांध्यो तेरम मांहि, नहि बांधै गुण चवदमें ।
सिद्ध बांधस्यै नांहि, क्षीणमोह ए 'धर्मसी' ।।

---

*लय : पूज मोटा भांजै तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**गीतक छन्द**

१३६. फुन भंग पंचम आउखा नैं, पूर्व भाग विषे रही ।
उपशांत मोहादिक न लाधूं, ते भणी बंध्यो नहीं ।।
१३७. जे वर्त्तमान कालेज लाधूं, ते भणी बांधै सही ।
तिण अद्धा नैं आगले समये, बांधस्यै इरियावही ।।
१३८. बांध्यो नहीं बांधै अछै, वलि बांधस्यै ए जाणियै ।
इम भंग पंचम तणो न्यायज, वृत्ति मांहि पिछाणियै ।।

१३६,१३७. पञ्चमः पुनरायुषः पूर्वभागे उपशान्तमोहत्वादि न लब्धमिति न बद्धवान् अधुना तु लब्धमिति बध्नाति तद् अद्धाया एव चैष्यत्समयेषु पुनर्भन्त्स्यतीति (वृ० प० ३८६)

**सोरठा**

१३९. पूर्वे बांध्यो नांहि, बांधै छै गुण ग्यारमें ।
बंधस्यै ग्यारम मांहि, उपशम-श्रेणे 'धर्मसी' ।।
१४०. अथवा बांध्यो नांहि, बांधै बारसमें गुणे ।
वलि बांधस्यै ताहि, बारम तेरम क्षपक ते ।।

**गीतक छन्द**

१४१. नहिं बांधियो बांधै अछै, नहिं बांधस्यै इक भव मही ।
ए भंग छट्ठो शून्य छै, इह रीत कोई ह्वै नहीं ।।

१४१. षष्ठस्तु नास्त्येव (वृ० प० ३८६)

१४२. नहिं बांधियो बांधै अछै ए, दोय ऊपजता छता ।
नहिं बांधस्यै ए बोल तीजो, तिणज भव नहिं सर्वथा ।।

१४२. तत्र न बद्धवान् बध्नातीत्यनयोरुपपद्यमानत्वेऽपि न भन्त्स्यतीति इत्यस्यानुपपद्यमानत्वात् । (वृ० प० ३८७)

१४३. तसु न्याय कहियै आउखा नैं, पूर्व भाग विषे रही ।
उपशांत-मोहादिक न लाधूं, ते भणी बांध्यो नहीं ।।
१४४. ते वीतराग धुर समय में, बांधै अछै इरियावही ।
तसु समय बीजै बांधस्यै इज, वीतराग गुणे रही ।।
१४५. पिण बांधस्यै नहिं इम न होवै, समय मात्र इरियावही ।
तसु बंधनोज अभाव छै, ते भणी बंध हुस्यै सही ।।

१४३. तथाहि—आयुषः पूर्वभागे उपशान्तमोहत्वादि न लब्धमिति न बद्धवान् (वृ० प० ३८७)

१४४. तल्लाभसमये च बध्नाति ततोऽनन्तरसमयेषु च भन्त्स्यत्येव (वृ० प० ३८७)

१४५. न तु न भन्त्स्यति, समयमात्रस्य बन्धस्येहाभावात् । (वृ० प० ३८७)

**वा०**—न बांध्यो, बांधै, न बांधसी ए छठो भांगो शून्य छै, ते किम ? छठे भांगे कोइ एक जीव नहीं । ते छठा भांगा नैं विषे न बांध्यूं, बांधै छै—ए दोई उपजता थकां पिण 'न बांधस्यै' ए तीजैं बोल न ऊपजै, ते देखाड़े छै—आउखा नां पूर्व भाग नैं विषे उपशम-मोहत्वादि न लाधूं, एतला माटै न बांध्यूं । ते लाभ समय नैं विषे बांधस्यैंज पिण इम नहीं जे न बांधस्यै, समय मात्र नां बंध नो इहां अभाव छै ते माटै ।

१४६. जे ग्यारमें गुणठाण में, इक समय रहि मरणे करी ।
सुर भवे इरियावहि न बंधै, समय बंध इम उच्चरी ।।

१४६. यस्तु मोहोपशमनिर्ग्रन्थस्य समयानन्तरमरणेनैर्यापथिककर्मबन्धः समयमात्रो भवति नासौ षष्ठविकल्पहेतुः (वृ० प० ३८७)

१४७. इम कहै तेहनों एह उत्तर, बे भवे ए आखियो ।
पिण ग्रहण आकर्ष भवे इक, भंग ए नहिं भाखियो ।।

१४७. तदनन्तरैर्यापथिककर्म्मबन्धाभावस्य भवान्तरवर्त्तित्वाद् ग्रहणाकर्षस्य चेह प्रक्रान्तत्वात् (वृ० प० ३८७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४८. नहि बांधियो बांधै अछै, नहिं बांधस्यै इरियावहि ।
इक भवे बोलज बे हुवै, पिण तृतीय बोल हुवै नहीं ।।

१४९. ते भणी भांगो एह छट्ठो, ग्रहण आकर्ष नहीं ।
ते कारणे ए भंग नीं छै, शून्यता इक भव मही ।।

१५०. नहि बांधियो बांधै अछै, ए बोल बे नर भव मही ।
मरि सुर भवे नहिं बांधस्यै, ए ग्रहण आकर्ष नहीं ।।

१५१. ते भणी ग्रहणाकर्ष ते भव, एक आश्री जाणियै ।
ए भंग छठा तणी शून्यता, प्रवर न्याय पिछाणियै ।।

१५२. जो तेरमां नै चरम समय, बंधै अछै इरियावही ।
फुन समय बीजै बांधस्यै नहिं, तास वांछा जो हुई ।।

१५२. यदि पुनः सयोगिचरमसमये बध्नाति ततोऽनन्तरं न भन्त्स्यतीति विवक्ष्येतः । (वृ० प० ३८७)

१५३. इम तदा जे गुण तेरमां नैं, चरम समये बंध ही ।
तेह थी जे पूर्व समये, बांधियो इम संध ही ।।

१५३. तदा यत्सयोगिचरमसमये बध्नातीति तद्बन्धपूर्वकमेव स्यान्नाबन्धपूर्वकं, तत्पूर्वसमये तस्य बन्धकत्वात् । (वृ० प० ३८७)

१५४. ते भणी ए भंग द्वितीय ह्वै, पिण भंग छट्ठो ह्वै नहीं ।
इम भंग षष्ठम शून्यता ए, ग्रहण आकर्ष कहो ।।

१५४. एवं च द्वितीय एव भङ्गः स्यान्न पुनः षष्ठ इति । (वृ० प० ३८७)

वा०—कोई कहै—अतीतकाले इरियावहि सकषाइपणैं न बांध्यो अनैं तेरमा गुणठाणा रै छेहलै समये बांधै छै अनैं अजोगीपणें न बांधस्यै, इम छट्ठो भांगो किम न हुवै ? तेहनो उत्तर—इम दूजो हुवै, पिण छट्ठो न हुवै, ते किम ? जिवारे सयोगी चरम समये बांधै, ते चरिम समय थकी पूर्व समये इरियावहि नों बंध कहीजै, पिण पूर्व समये अबंधक नहीं । इम दूजो भांगो हीज हुइ पिण छट्ठो नहीं ।

१५५. नहि बांधियो फुन नथी बांधै, बांधस्यै इरियावही ।
शिवगमन योग्यज भाव छै, ते आश्रयी सप्तम सही ।।

१५५. सप्तमः पुनर्भव्यविशेषस्य (वृ० प० ३८७)

१५६. नहि बांधियो फुन नथी बांधै, बांधस्यै पिण ए नहीं ।
शिव गति अयोग्य अभव्य छै, ते आश्रयी अष्टम मही ।।

१५६. अष्टमस्त्वभव्यस्येति (वृ० प० ३८७)

१५७. जे ग्रहण आकर्ष एक भव में, बोल तीनूंइ लहै ।
ते आश्रयी भंग सप्त लाधै, भंग षष्टम शन्य है ।।

## सोरठा

१५८. ग्रहणाकर्ष रै मांय, काल त्रिहुं नैं पद विषे ।
विचलै पद जे पाय, अठ भंगे कहियै हिवै ।।

१५८. ग्रहणाकर्षापेक्षेषु पुनरेतेष्वेव (वृ० प० ३८७)

१५९. बांधै तेरम माण, क्षीण-मोह ए द्वितीय भंग ।
धुर भंग ग्यारम ठाण, अथवा बारम तेरमें ।।

१५९. प्रथमे उपशान्तमोहः क्षीणमोहो वा, द्वितीये तु केवली । (वृ० प० ३८७)

१६०. न बंधै दशमें ठाण, उपशम थी पड़ तृतीय भंग ।
न बंधै चउदम जाण, क्षीण-मोह ए तुर्य भंग ।।

१६०. तृतीये तूपशान्तमोहः, चतुर्थे शैलेशीगतः । (वृ० प० ३८७)

१६१. बंधै पंचम भंग, ग्यारम अथवा बिहुं गुणे ।
षष्ठम शून्य प्रसंग, भव्य सप्तम अष्टम अभव्य ।।

१६१. पञ्चमे उपशान्तमोहः क्षीणमोहो वा, षष्ठः शून्यः, सप्तमे भव्यो भाविमोहोपशमो भाविमोहक्षयो वा, अष्टमे त्वभव्य इति । (वृ० प० ३८७)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**ग्रहणाकर्ष रै सन्दर्भ में ईरियावहि कर्मबन्ध नों यन्त्र—**

| बंधी | बंधइ | बंधिस्सइ | | |
|---|---|---|---|---|
| ११ में बांध्यो | ११ में बांधै | ११ में बांधस्यै | ए उपशांत-मोह तथा १२, १३ में बांध्यो, बांधै, बांधस्यै। | १ |
| १२ में बांध्यो | १३ में बांधै | १४ में न बांधस्यै | ए क्षीण मोह। | २ |
| ११ में बांध्यो | १० मे न बांधै | ११ में बांधस्यै | उपशांत-मोह एक भव में दोय वार आवै। | ३ |
| १२ में बांध्यो | १४ में न बांधै | सिद्ध न बांधस्यै | ए क्षीण-मोह शैलेशी अवस्था। | ४ |
| न बांध्यो | ११ में बांधै | ११ में बांधस्यै | ए उपशांत-मोह तथा १२, १३ में बांधै, बांधस्यै। | ५ |
| न बांध्यो | बांधै | न बांधस्यै | ए शून्य। | ६ |
| न बांध्यो | न बांधै | बांधस्यै | ए भव्य उपशम-मोह होणहार तथा क्षीण-मोह होणहार। | ७ |
| न बांध्यो | न बांधै | न बांधस्यै | ए अभव्य। | ८ |

१६२. इरियावहि कर्म जाण, बंध आश्री कहियै हिवै।
आदि अंत करि माण, चिउं भंगे करि प्रश्न ते॥

१६३. *हे प्रभु ! ते इरियावहि, कर्म नो बंध वदीतो।
स्यूं आदि सहित अंत सहित छै ?
कै आदि सहित अंत रहीतो॥

१६४. कै आदि-रहित अंत-सहित ते ?
कै आदि-रहित अंत रहीतो ?
इरियावहि बांधै प्रभु ! जिन कहै सुण धर प्रीतो॥

१६५. आदि-सहित अंत-सहित छै, इरियावहि कर्म बांधै।
शेष तीन भांगे करी, तास बंध नहिं सांधै॥

१६६. ते प्रभु ! स्यूं इरियावहि, जीव देशे करि जोयो ?
कर्म नां देश प्रतै तदा, बांधै छै अवलोयो ?

१६७. कै जीव तणें देशे करी, कर्म सर्व प्रतिबांधै।
तथा सर्व जीवे करी, कर्म नां देश नैं सांधै ?

१६८. तथा सर्व जीवे करी, सर्व कर्म बंध होयो ?
ए चोभंगी पूछियां, हिव जिन उत्तर जोयो ?

१६९. जीव तणै देशे करी, कर्म नुं देश न बांधै।
जीव तणैं देशे करी, सर्व कर्म नहिं सांधै॥

*लय : राम सोही लेवै सीता तणी

१६२. अथैर्यापथिकबन्धमेव निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३८७)

१६३. तं भंते ! किं सादीयं सपज्जवसियं बंधइ ? सादीयं अपज्जवसियं बंधइ ?

१६४. अणादीयं सपज्जवसियं बंधइ ? अणादीयं अपज्जवसियं बंधइ ?

१६५. गोयमा ! सादीयं सपज्जवसियं बंधइ, नो सादीयं अपज्जवसियं बंधइ, नो अणादीयं सपज्जवसियं बंधइ, नो अणादीयं अपज्जवसियं बंधइ।
(श० ८/३०७)

१६६. तं भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ ?
'देसेन' जीवदेसेन 'देशं' कर्म्मदेशं।
(वृ० प० ३८७)

१६७. देसेणं सव्वं बंधइ ? सव्वेणं देसं बंधइ ?

१६८. सव्वेणं सव्वं बंधइ ?

१६९. गोयमा ! नो देसेणं देसं बंधइ, नो देसेणं सव्वं बंधइ



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७०. वले सर्व जीवे करी, कर्म देश न बांधंतो।
सर्व जीव प्रदेश थी, सर्व कर्म बंध हुंतो।।
१७१ जीव नां तथा स्वभाव थी, इरियावहि बंध एसो।
अष्टम शतक तणो कह्यो, अष्टमुदेशा नों देशो।।
१७२. एक सौ नें पचासमीं, रूड़ी ढाल रसालो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमालो।।

१७०. नो सव्वेणं देसं बंधइ, सव्वेणं सव्वं बंधइ (श० ८/३०८)
१७१. तथास्वभावत्वाज्जीवस्येति। (वृ० प० ३८७)

## ढाल १५१

### दूहा

१. संपराय हिव कर्म नों, बंध निरूपण काज।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दै जिनराज।।

*संपराय नों रे निर्णय सांभलो। (ध्रुपदं)

२. संपराय ए कर्म कहो प्रभु! नारक स्यूं बांधंत?
तिरिखजोणियो जाव देवी वलि, संपराय सांधंत?
३. श्री जिन भाखै बांधै नेरइयो, वलि बांधै तिर्यंच।
तिरिक्खजोणिणी पिण बांधै अछै, संपराय कर्म संच।।
४. मनुष्य मनुष्यणी पिण बांधै अछै, वलि बांधै छै देव।
वलि देवी पिण ए बांधै अछै, ए सातूं स्वयमेव।।

### सोरठा

५. मनुष्य मनुष्यणी टाल, संपराय कर्म-बंधका।
निश्चै पंच निहाल, सकषाई छै ते भणी।।
६. मनुष्य मनुष्यणी मांय, सकषाई छै तेहनें।
निश्चै बंध संपराय, अकषाई रै बंधै नहिं।।

७. *ते संपराय कर्म हे भगवंत! स्यूं बांधै इक स्त्री वेद?
एक पुरुष वेद एक नपुंसक, वलि त्रिहुं बहु वच भेद?
८. तथा अवेदो ते बांधै अछै? तब भाखै जिनराय।
एक इत्थि पिण ए बांधै अछै, इक पुं वेद बंधाय।।
९. एक नपुंसक पिण बांधै अछै, बहु स्त्री वेद बांधंत।
बहु पुरुष वेद बहु नपुंसका, यां रै पिण बंध हुंत।।
१०. इहां स्त्रियादिक त्रिण इक वचन थी, बहु वचनै पिण तीन।
संपराय कर्म बांधै छै सदा, ए अर्थ वृत्ति में चीन।।

१. अथ साम्परायिकबन्धनिरूपणायाह—
(वृ० प० ३८७)

२. संपराइयं णं भंते! कम्मं किं नेरइओ बंधइ? तिरिक्खजोणिओ बंधइ? जाव देवी बंधइ?
३. गोयमा! नेरइओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिणी वि बंधइ
४. मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, देवो वि बंधइ, देवी वि बंधइ (श० ८/३०९)

५. एतेषु च मनुष्यमनुषीवर्जाः पञ्च साम्परायिकबन्धका एव सकषायत्वात् (वृ० प० ३८८)
६. मनुष्यमनुष्यौ तु सकषायित्वे सति साम्परायिकं बध्नीतो न पुनरन्यदेति। (वृ० प० ३८८)

७. तं भंते! किं इत्थी बंधइ? पुरिसो बंधइ? तहेव जाव
८. नोइत्थी नोपुरिसो नोनपुंसगो बंधइ?
गोयमा! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ।
९. जाव नपुंसगा वि बंधंति।

१०. इह स्त्र्यादयो विवक्षितैकत्वबहुत्वाः षट् सर्वदा साम्परायिकं बध्नन्ति। (वृ० प० ३८८)

*लय : सुमति जिनेश्वर साहिब



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. तथा स्त्रियादिक वेद-रहित ते, कदा एक बांधंत ।
तथा अवेदी बहु बांधै कदा, गुण नवमें दशमंत ।।

**सोरठा**

१२. पूर्व प्रतिपन्न जोय, इक वचने बंध ह्वै कदा ।
बहु वचने पिण होय, इमहिज प्रतिपद्यमान बंध ।।
१३. वेद रहित संपराय, अल्पकाल छै तेहनों ।
ते माटै कहिवाय, इक वच बहु वच पिण बिहुं ।।

१४. *एक अवेदी प्रभु ! बांधै अछै, बहु अवेदी बांधंत ।
ते स्यूं बांधै स्त्री-पच्छाकडो, पुरुष-पच्छाकडो हुंत ?

१५. इम जिम इरियावहि-बंधक तणां, भाख्या भांगा छब्बीस ।
भणवा भांगा तिम संपराय नां, बीस अनें षट दीस ।।
१६. जावत भांगो ए छब्बीसमो, स्त्री-पच्छाकडा जोय ।
पुरिस-पच्छाकडा नपुंसक-पच्छाकडा, बहु वचने त्रिहुं होय ।।

**सोरठा**

१७. हिवै कर्म संपराय, बंधन तणूंज जाणवूं ।
काल त्रिहुं करि ताय, विकल्प करतो पूछियै ।।
१८. पूर्वे भाख्या सोय, विकल्प आठ विषेज ते ।
प्रथम चिहुं भंग होय, च्यारूं चरम हुवै नहीं ।।
१९. जीवां तणें पिछाण, संपराय कर्म बंध नों ।
अनादिपणें करि जाण, बांध्यो काल अतीत में ।।
२०. पिण नहिं बांध्यो जेह, भंग चरम चिहुं नहि हुवै ।
प्रथम चिहुं भंग लेह, तास प्रश्न गोयम करै ।।

२१. *संपराय कर्म हे भगवंत ! स्यूं, बांध्युं काल अतीत ?
वर्त्तमान काले बांधै अछै ? वलि बंध होस्यै वदीत ?
२२. बांध्यो बांधै नें नहिं बांधस्यै, दूजो भंग ए देख ।
बांध्यो नहिं बांधै वलि बांधस्यै, तृतीय भंग संपेख ।।
२३. बांध्यो नहिं बांधै नहिं बांधस्यै, तुर्य भंग ए ताम ।
ए च्यारूंइं भंग करि पूछियां, उत्तर दे जिन स्वाम ।।
२४. जीव किताइक पूर्वे बांधियो, बांधै छै वर्त्तमान ।
काल अनागत में वलि बांधस्यै, प्रथम भंग ए जान ।।

२५. †जे प्रथम भांगो जीव सगला, संसारिक ते जाणियै ।
जथाख्यात पाम्यो नथी, ते काल लग पहिछाणियै ।।

११. अहवा एते य अवगयवेदो य बंधइ, अहवा एते य अवगयवेदा य बंधंति । (श० ८।३१०)

१२,१३. अपगतवेदत्वे साम्परायिकबन्धोऽल्पकालीन एव, तत्र च योऽपगतवेदत्वं प्रतिपन्नपूर्वः साम्परायिकं बध्नात्यसावेकोऽनेको वा स्यात् एवं प्रतिपद्यमानकोऽपीति । (वृ० प० ३८८)

१४. जइ भंते ! अवगयवेदो य बंधइ, अवगयवेदा य बंधंति । तं भंते ! किं इत्थीपच्छाकडो बन्धइ ? पुरिसपच्छाकडो बंधइ ?

१५. एवं जहेव इरियावहियबंधगस्स तहेव निरवसेसं ।

१६. जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य नपुंसगपच्छाकडा य बंधंति । (श० ८।३११)

१७. अथ साम्परायिककर्म्मबन्धमेव कालत्रयेण विकल्पयन्नाह— (वृ० प० ३८८)

१८. इह च पूर्वोक्तेष्वष्टासु विकल्पेष्वाद्याश्चत्वार एव संभवंति नेतरे । (वृ० प० ३८८)

१९. जीवानां साम्परायिककर्मबन्धस्यानादित्वेन । (वृ० प० ३८८)

२०. 'न बन्धी' त्यस्यानुपपद्यमानत्वात् । (वृ० प० ३८८)

२१. तं भंते ! किं बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ ?

२२. बंधी, बंधइ न बंधिस्सइ ? बंधी न बंधइ बंधिस्सइ ?

२३. बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ?

२४. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ ।

२५. तत्र प्रथमः सर्व एव संसारी यथाख्यातासंप्राप्तोपशमकक्षपकावसानः । (वृ० प० ३८८)

---

*लय : सुमति जिनेश्वर साहिब

†लय : पूज मोटा भांजे तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. गये काल बांध्यो, वर्त्तमाने बांधै छै ते कारणे ।
वलि बांधस्यै जे जथाख्यात, पाम्यां विना ए धारणे ।।

२७. *बांध्यो बांधै नें नहिं बांधस्यै, संपराय कर्म जेह ।
दूजो भांगो ए जिनवर कह्यो, जीव किताइक एह ।।

### गीतक छन्द

२८. जे मोह-क्षय थी पूर्व काले, बांधियोज अतीत ही ।
वलि वर्त्तमान कालेज बांधै, एह कषाय सहीत ही ।।

२९. फुन मोह कर्म क्षय पेक्षया, नहिं बांधस्यै संपराय ही ।
बांध्यो रु बांधै बांधस्यै नहिं, द्वितीय भंग कहाय ही ।।

३०. *बांध्यो नहिं बांधै नें बांधस्यै, संपराय कर्म जाण ।
जीव किताइक एहवा जिन कह्या, तेहनुं न्याय पिछाण ।।

३१. †उपशंत मोह थकीज पूरव, संपराय बांध्यो सही ।
वर्त्तमान काले न बांधै, ग्यारमां गुण में रही ।।

३२. ग्यारमां गुण थी पड़ीनें, बांधस्यै वलि ते सही ।
बांध्यो न बांधै बांधस्यै वलि, भंग तीजो इम लही ।।

३३. *बांध्यो नहिं बांधै नहिं बांधस्यै, जीव किताइक देख ।
चोथो भांगो ए जिनवर कह्यो, तेहनों न्याय संपेख ।।

३४. †जे मोह-क्षय थी पूर्व काले, संपराय बांध्यो सही ।
अथ मोह-कर्म नां क्षय विषे, जे वर्त्तमान बांधै नहीं ।।

३५. वलि अनागत नहिं बांधस्यै ते, श्रेणि पाय पड़ै नहीं ।
बांध्यो न बांधै बांधस्यै नहिं, तुर्य भांगो ए सही ।।

### सोरठा

३६. संपराय कर्म जाण, बंध आश्री कहियै हिवै ।
आद अंत करि माण, चिउं भंगे करि प्रश्न ते ।।

३७. *संपराय कर्म हे भगवंत ! स्यूं, तास बंध पहिछाण ।
आदि-सहित छै कै अंत-सहित छै ? प्रथम भंग ए जाण ।।

३८. आदि-सहित छै कै अंत-रहित छै ? तथा अनादि सह अंत ।
आदि-रहित छै कै अंत-रहित छै, ए चिहुं भंग पूछंत ।।

३९. श्री जिन भाखै आदि-सहित छै, अंत-सहित पिण हुंत ।
उपशम-श्रेणि थकी पड़नें वलि, उपशम क्षपक लहंत ।।

४०. †ग्यारमां गुण थी पड़ीनें, संपराय बांधै सही ।
पामियै वलि ग्यारमों, अथवाज द्वादशमों लही ।।

*लय : सुमति जिनेश्वर
†लय : पूज मोटा भांजै तोटा

२६. स हि पूर्वं बद्धवान् वर्त्तमानकाले तु बध्नाति अनागतकालापेक्षया तु भन्त्स्यति । (वृ० प० ३८८)

२७. अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ ।

२८,२९. द्वितीयस्तु मोहक्षयात्पूर्वमतीतकालापेक्षया बद्धवान् वर्त्तमानकाले तु बध्नाति भाविमोहक्षयापेक्षया तु न भन्त्स्यति । (वृ० प० ३८८)
अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ ।

३१,३२. तृतीयः पुनरुपशान्तमोहत्वात् पूर्वं बद्धवान् उपशान्तमोहत्वे न बध्नाति तस्माच्च्युतः पुनर्भन्त्स्यतीति । (वृ० प० ३८८)

३३. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ।
(श० ८।३१२)

३४,३५. चतुर्थस्तु मोहक्षयात्पूर्वं साम्परायिकं कर्म बद्धवान् मोहक्षये न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति ।
(वृ० प० ३८८)

३६. साम्परायिककर्मबन्धमेवाश्रित्याह— (वृ० प० ३८८)

३७,३८. तं भंते ! किं सादीयं सपज्जवसियं बंधइ ? पुच्छा तहेव ।

३९. गोयमा ! सादीयं वा सपज्जवसियं बंधइ
उपशान्तमोहतायाश्च्युतः पुनरुपशान्तमोहतां क्षीणमोहतां वा प्रतिपत्स्यमानः ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. *आदि-रहित वलि अंत-सहित छै, क्षपक श्रेणि पेक्षाय ।
दशमां गुणठाणां थी बारमें, ए भांगो इण न्याय ।।
४२. आदि-रहित वलि अंत-रहित छै, अभव्य नीं अपेक्षाय ।
ए त्रिहुं भांगा जिनजी आखिया, वारू निर्मल न्याय ।।
४३. आदि-सहित नें अंत-रहित जे, निश्चै करि न बंधाय ।
ग्यारम थी पड़ आदि-सहित हुवै, तसु निश्चै अंत थाय ।।

४४. †ग्यारमां थी पड़्यां ए संपराय, आदि-सहित अछै ।
अवश्य शिवगामी तिको, ते भणी अंत-रहित न छै ।।

४५. *ते प्रभुजी ! स्यूं जीव देशे करी, कर्म नं देश बांधंत ?
इम जिम इरियावहि बंध कह्यो, तिम त्रिहुं भंग न हुंत ।।
४६. जाव जीव नां सर्व प्रदेश थी, सर्व कर्म बंध होय ।
संपराय कर्म इहविध जीवड़ो, बांधै छै अवलोय ।।
४७. देश अठ्यासी नो इकसौ ऊपरे, एकावनमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल ।।

४१. अणादीयं वा सपज्जवसियं बंधइ,
आदितः क्षपकापेक्षमिदम् । (वृ० प० ३८८)
४२. अणादीयं वा अपज्जवसियं बंधइ,
एतच्चाभव्यापेक्षं । (वृ० प० ३८८)
४३. नो चेव णं सादीयं अपज्जवसियं बंधइ ।
(श० ८।३१३)
४४. सादिसाम्परायिकबन्धो हि मोहोपशमाच्च्युतस्यैव भवति, तस्य चावश्यं मोक्षयायित्वात्साम्परायिकबन्धस्य व्यवच्छेदसम्भवः ततश्च न सादिरपर्यवसानः साम्परायिकबन्धोऽस्तीति । (वृ० प० ३८८)
४५. तं भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ ? एवं जहेव इरियावहियबंधगस्स ।
४६. जाव सव्वेणं सव्वं बंधइ । (श० ८।३१४)

## ढाल : १५२

### दूहा

१. कही कर्म नीं वारता, कर्म विषे इज जाण ।
अवतरवो परिसह तणो, यथायोग्य पहिछाण ।।
२. करतां तास परूपणा, कर्म-प्रकृति कहिवाय ।
वली परीसह प्रति प्रथम, कहियै छै वर न्याय ।।
३. कर्म-प्रकृति प्रभु ! केतली ? आठ कहै जिनराय ।
ज्ञानावरणी आदि दे, जावत वलि अंतराय ।।
४. ज्ञानावरणी कर्म धर, दर्शणावरणी ताय ।
वेदनी मोहणी आउखो, नाम गोत्र अंतराय ।।
५. प्रभु ! परीसह केतला ? जिन भाखै बावीस ।
भूख तृषा जावत चरम, दर्शण परिसह दीस ।।
६. भूख तृषा सी उष्ण वलि, डंसमंस चटकाय ।
अचेल अरति स्त्री तणो, चरिया गमन कराय ।।

१,२. अनन्तरं कर्म्मवक्तव्यतोक्ता, अथ कर्म्मस्वेव यथायोगं परीषहावतारं निरूपयितुमिच्छुः कर्मप्रकृतीः परीषहांश्च तावदाह— (वृ० प० ३८८)
३,४. कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठकम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं वेदणिज्जं मोहणिज्जं आउगं नामं गोयं अंतराइयं । (श० ८।३१५)
५. कइ णं भंते ! परीसहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा—
६. दिगिंच्छापरीसहे, पिवासापरीसहे, सीतपरीसहे, उसिणपरीसहे, दंसमसगपरीसहे, अचेलपरीसहे, अरइपरीसहे, इत्थिपरीसहे, चरियापरीसहे
चर्या—ग्रामनगरादिषु संचरणं । (वृ० प० ३९०)

*लय : सुमति जिनेश्वर
†लय : पूज मोटा भांज तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. सज्झाय-भूमि वैसवूं, सेज्या आक्रोसेह ।
वध यष्ट्यादिक करि हणैं, जाचण अलाभ जेह ।।

८. रोग अनें तृण फर्श नुं, जल मल नें सतकार ।
प्रज्ञा ते मति बुद्धि नों, हरष सोग परिहार ।।

९. ज्ञान मत्यादि विशिष्ट लही, नहिं करिवूं तसु मान ।
तास अभावे दीन नहिं, ग्रंथांतरे अज्ञान ।।

१०. दर्शण ते सम्यक्त्व विषे, शंक कंख परिहार ।
ए बावीस परीसहा, सहिवा हरष अपार ।।

*जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नों ।। (ध्रुपदं)

११. ए बावीस परीसहा, किती कर्म प्रकृति मांय, प्रभुजी !
समवतरै वर्त्तै अछै ? तब भाखै जिनराय, प्रभुजी !
१२. च्यार कर्म प्रकृति नें विषै, समवतार ते आय, हो गोयम !
ग्यानावरणी वेदनीं विषे, मोह अंतराय रै मांय, हो गोयम !

१३. ज्ञानावरणी कर्म नें विषे, किता परिसह वर्त्तंत ? ।
जिन कहै दोय परीसहा, प्रज्ञा अनाण[1] पामंत ।।

**सोरठा**

१४. प्रज्ञा परिसह जाण, मति ज्ञानावरणी विषे ।
समवतरै छै आण, तास न्याय इम वृत्ति में ।।
१५. प्रज्ञा बुद्धि अभाव, ज्ञानावरणी उदय थी ।
दैन्य मान नहिं साव, ते चरित्र मोह क्षयोपशमादि थी ।।

**बा०**—बुद्धि नहीं पामी तेह नो ज्ञानावरणी कर्म नो उदय अनैं बुद्धि नहीं पामवा थी दीनपणों नहीं करवो, बुद्धि पामवा थी मान नहीं करवो, ते चारित्र मोहणी कर्म नो क्षयोपशम उपशम क्षायक छै ।

७. निसीहियापरीसहे, सेज्जापरीसहे, अक्कोसपरीसहे, वहपरीसहे, जायणापरीसहे, अलाभपरीसहे
नैषेधिकी—स्वाध्यायभूमिः·······वधो वा—यष्ट्यादि-ताडनं । (वृ० प० ३९०)
८. रोगपरीसहे, तणफासपरीसहे, जल्लपरीसहे, सक्कार-पुरक्कारपरीसहे पण्णापरीसहे
प्रज्ञा—मतिज्ञानविशेषस्तत्परिषहणं च प्रज्ञाया अभावे उद्वेगाकरणं तद्भावे च मदाकरणं ।
(वृ० प० ३९०)
९. नाणपरीसहे
ज्ञानं—मत्यादि तत्परिषहणं च तस्य विशिष्टस्य सद्भावे मदवर्जनमभावे च दैन्यपरिवर्जनं, ग्रन्थान्तरे त्वज्ञानपरीषह इति पठ्यते । (वृ० प० ३९०)
१०. दंसणपरीषहे (श० ८।३१६)
दर्शनं—तत्त्वश्रद्धानं तत्परिषहणं च जिनानां जिनोक्तसूक्ष्मभावानां चाश्रद्धानवर्जनमिति ।
(वृ० प० ३९०)
११. एए णं भंते ! बावीसं परीसहा कतिसु कम्मपगडीसु समोयरंति ?
१२. गोयमा ! चउसु कम्मपगडीसु समोयरंति, तं जहा—नाणावरणिज्जे, वेदणिज्जे, मोहणिज्जे, अंतराइए ।
(श० ८।३१७)
१३. नाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?
गोयमा ! दो परीसहा समोयरंति, तं जहा—पण्णा-परीसहे नाणपरीसहे य । (श० ८।३१८)
१४. प्रज्ञापरीषहो ज्ञानावरणे—मतिज्ञानावरणरूपे समवत-रति । (वृ० प० ३९०)
१५. प्रज्ञाया अभावमाश्रित्य, तदभावस्य ज्ञानावरणोदय-सम्भवत्वात्, यत्तु तदभावे दैन्यपरिवर्जनं तत्सद्भावे च मानवर्जनं तच्चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादेरिति ।
(वृ० प० ३९०)

---

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

१. यहां अज्ञान परीषह ज्ञान परीषह के स्थान में है । भगवती में मूल पाठ में ज्ञान परीषह ही रखा गया है । उत्तराध्ययन में अज्ञान परीषह का उल्लेख है । संभव है जयाचार्य ने उसी संस्कार से यहां अज्ञान परीषह लिख दिया । अन्यथा इससे पहले गाथा ९ और आगे गाथा १६ में ज्ञानपरीषह का ही ग्रहण किया है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. इमज परीसह ज्ञान, नवरं इतो विशेष छै।
मत्यादि पहिछान, ज्ञानावरणी अवतरै ।।

१६. एवं ज्ञानपरीषहोऽपि नवरं मत्यादिज्ञानावरणेऽवतरति ।
(वृ० प० ३६०)

१७. *वेदनी कर्म विषे प्रभु ! किता परिसहा वर्त्तंत ।
जिन कहै ग्यारै परिसहा, समवतरंत पामंत ।।

१८. क्षुधा तृषा सी उष्ण नों, दंसमंस चरिया सेज ।
वध रोग तृण फर्श जल तणो, ग्यारै वेदनी विषेज ।।

१७. वेदणिज्जे णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?
गोयमा ! एक्कारस परीसहा समोयरंति, तं जहा—

१८. पंचेव आणुपुव्वी, चरिया सेज्जा वहे य रोगे य ।
तणफास जल्लमेव य, एक्कारस वेदणिज्जम्मि ।।
(श० ८।३१६)

**सोरठा**

१६. क्षुधा पिपासा आद, तेह विषे पीड़ा जिका ।
कर्म वेदनी वाद, तेह थकी जे ऊपनी ।।

२०. क्षुधादि पीड़ा जेह, तेह तणो सहिवुं तिको ।
चारित्रमोहणी तेह, क्षयोपशमादिक थी वृत्तौ ।।

२१. सहितां जे शुभ जोग, नाम कर्म नां उदय थी ।
बंधै पुन्य प्रयोग, कर्म तणी हुवै निर्जरा ।।

१६. क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकपरीषहा इत्यर्थः एतेषु च
पीडैव वेदनीयोत्था । (वृ० प० ३६०)

२०. तदधिसहनं तु चारित्रमोहनीयक्षयोपशमादिसम्भवं,
अधिसहनस्य चारित्ररूपत्वादिति । (वृ० प० ३६०)

२२. *दर्शण मोह कर्म विषे, किता परिसह वर्त्तंत ।
जिन कहै एक परिसह, दर्शण समवतरंत ।।

२२. दंसणमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कति परीसहा
समोयरंति ?
गोयमा ! एगे दंसणपरीसहे समोयरइ ।
(श० ८।३२०)

**सोरठा**

२३. दर्शण तत्व श्रद्धेह, दर्शण मोहणी कर्म नां ।
क्षयोपशमादि विषेह, तेह थकी सम्यक्त हुवै ।।

२४. दर्शण मोह उदयेह, शुद्ध सम्यक्त पामै नहीं ।
इण कारण थी एह, दर्शण मोह में अवतरै ।।

२५. शुद्ध श्रद्धा में शंक, दर्शण मोह थी ऊपजै ।
तिण कारण ए अंक, दर्शण मोह में अवतरै ।।

२३. दर्शनं तत्त्वश्रद्धानरूपं दर्शनमोहनीयस्य क्षयोपशमादौ
भवति । (वृ० प० ३६०)

२४. उदये तु न भवतीत्यतस्तत्र दर्शनपरीषहः समवतर-
तीति । (वृ० प० ३६०)

२६. *चारित्र-मोह कर्म विषे, किता परिसह वर्त्तंत ?
जिन कहै सात परिसहा, समवतरंत पामंत ।।

२७. अरति अचेल स्त्री निसीहिया, जाचना आक्रोश ख्यात ।
सक्कार पुरक्कार सप्त ए, चारित्र मोह उदयात ।।

२६. चरित्तमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कति परीसहा
समोयरंति ?
गोयमा ! सत्तपरीसहा समोयरंति, तं जहा—

२७. अरती अचेल इत्थी निसीहिया जायणा य अक्कोसे ।
सक्कार-पुरक्कारे, चरित्तमोहम्मि सत्ते ते ।।
(श० ८।३२१)

**सोरठा**

२८. अरति परीसह जाण, अरति मोहनीं नैं विषे ।
समवतरै पहिछाण, अरति मोह थी ऊपनों ।।

२९. वलि अचेल पिछान, मोह दुगंछा नैं विषे ।
समवतरै छै जान, ए छै लज्जा अपेक्षया ।।

३०. स्त्री परीसह जेह, पुरुष वेद मोह नैं विषे ।
स्त्री अपेक्षया तेह, पुरुष परीसह जाणवुं ।।

२८. तत्र चारतिपरीषहोऽरतिमोहनीये तज्जन्यत्वात् ।
(वृ० प० ३६०)

२९. अचेलपरीषहो जुगुप्सामोहनीये लज्जापेक्षया ।
(वृ० प० ३६०)

३०. स्त्रीपरीषहः पुरुषवेदमोहे स्त्र्यपेक्षया तु पुरुषपरीषहः
स्त्रीवेदमोहे । (वृ० प० ३६०)

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. पुरुष तणैं ह्वै जोय, अभिलाषा जे स्त्री तणो ।
फुन स्त्री नें इम होय, अभिलाषा जे पुरुष नीं ।।
३२. निसीहिया सुविचार, भय मोह विषेज अवतरै ।
उपसर्ग नो भय धार, तेह तणीज अपेक्षया ।।
३३. वलि जाचना जाण, मान मोहनी नें विषे ।
समवतरै पहिछाण, जाचण दुक्कर पेक्षया ।।
३४. फुन आक्रोश कहेह, क्रोध मोहनीं नें विषे ।
समवतरै छै जेह, क्रोधोत्पत्ति अपेक्षया ।।
३५. सत्कार पुरक्कार, मान मोहनी नें विषे ।
समवतरै सुविचार, मद उत्पत्ति अपेक्षया ।।
३६. सामान्य थी सहु एह, चारित्र मोहनीं नै विषे ।
समवतरै छै तेह, वृत्तिकार इम आखियो ।।

३७. *अंतराय कर्म विषे प्रभु ! किता परिसह वर्त्तंत ।
जिन कहै एक परिसह, अलाभ समवतरंत ।।

**सोरठा**

३८. लाभांतराय उदेह, लाभ अभाव थकीज फुन ।
तेहनुं सहिवुं तेह, चारित्र मोह क्षयोपशम वृत्तौ ।।

३९. *सप्त कर्म बंधै तेहनैं, किता परिसह कहंत ?
जिन कहै बावीस परिसहा, वीस वलि वेदंत ।।

४०. सीत वेदै जे समय में, उष्ण न वेदै वदीत ।
उष्ण वेदै जे समय में, वेदै नहीं ते सीत ।।

**सोरठा**

४१. सीतोष्ण मांहोमांहि, अत्यंत हो विरोधे करी ।
एक काल में ताहि, नहीं ऊपजै एकठा ।।
४२. जदपि बिहुं नुं जोय, एक वेलाइं एकठो ।
संभव छै अवलोय, अत्यंत शीत थकांज ते ।।
४३. अग्नि समीपे जेह, समकाले इक पुरुष नें ।
इक दिश सीत पड़ेह, बीजी दिशेज उष्ण छै ।।
४४. इण रीते कहिवाय, सीत उष्ण परिसह तणो ।
संभव छै इण न्याय, ए इहविध कहिवुं नथी ।।
४५. इहां काल कृत होज, शीत अनैं वलि उष्ण नां ।
आश्रय भाव थकीज, अधिकृत सूत्र विषे तिको ।।
४६. तथा बहुलपणैं सोय, जे इहविध व्यतिकर भण्यो ।
तपस्वी नें नहिं होय, ए सहु आख्यो वृत्ति में ।।

---

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

३१. तत्त्वतः स्त्र्याद्यभिलाषरूपत्वात्तस्य । (वृ० प० ३९०)

३२. नैषेधिकीपरीषहो भयमोहे उपसर्गभयापेक्षया ।
(वृ० प० ३९०)

३३. याञ्चापरीसहो मानमोहे तद्दुष्करत्वापेक्षया ।
(वृ० प० ३९०)

३४. आक्रोशपरीषहः क्रोधमोहे क्रोधोत्पत्त्यपेक्षया ।
(वृ० प० ३९०)

३५. सत्कारपुरस्कारपरीषहो मानमोहे मदोत्पत्त्यपेक्षया समवतरति । (वृ० प० ३९०)

३६. सामान्यतस्तु सर्वेऽप्येते चारित्रमोहनीये समवतरन्तीति । (वृ० प० ३९०)

३७. अंतराइए णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति ?
गोयमा ! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ ।
(श० ८।३२२)

३८. अन्तरायं चेह लाभान्तरायं, तदुदय एव लाभाभावात् तदधिसहनं च चारित्रमोहनीयक्षयोपशम इति ।
(वृ० प० ३९०)

३९. सत्तविहबंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता । वीसं पुण वेदेइ—

४०. जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ ।

४१. शीतोष्णयोः परस्परमत्यन्तविरोधेनैकदैकत्रासम्भवात् ।
(वृ० प० ३९०)

४२. अथ यद्यपि शीतोष्णयोरेकदैकत्रासम्भवस्तथाऽप्यात्यन्तिके । (वृ० प० ३९०, ३९१)

४३,४४. तथाविधाग्निसन्निधौ युगपदेवैकस्य पुंस एकस्यां दिशि शीतमन्यस्यां चोष्णमित्येवं द्वयोरपि शीतोष्णपरीषहयोरस्ति सम्भवः नैतदेवं ।
(वृ० प० ३९१)

४५,४६. कालकृतशीतोष्णाश्रयत्वादधिकृतसूत्रस्यैवंविधव्यतिकरस्य वा प्रायेण तपस्विनामभावादिति ।
(वृ० प० ३९१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. *चरिया वेदै ते समय में, निसीहिया वेदै नांहि ।
निसीहिया वेदै ते समय, चरियां न वेदै ताहि ॥

**सोरठा**

४८. चरिया कह्यु विहार, निसीहिया मास कल्पादि युत ।
विवक्त-उपाश्रय सार, बेसै सज्झायादि हित ॥

४९. विहार अनें अवस्थान, परस्परै ए बिहुं तणुं ।
विरोध थी पहिछान, एक काल नहिं संभवै ॥
५०. अथ सेज्या पिण ख्यात, निसीहिया परिसह नीं परै ।
चरिया रै संघात, ए पिण विरोध हुवै अछै ॥
५१. तो चरिया हुवै तिवार, सेज्जा निसीहिया नहिं हुवै ।
तो उत्कृष्ट विचार, वेदै एगुणवीस इम ॥

५२. उत्तर तसु अवलोय जे ग्रामादि गमन प्रति ।
प्रवृत्त छतेज जोय, जावा मांड्यु पिण तदा ॥
५३. कोयक उत्सुकथीज, चर्या थी नहिं निवर्त्यो ।
तसु परिणामेहीज, वीसामो रास्ते लिये ॥
५४. भोजनादिक नें अर्थ, अल्प काल सेज्या विषे ।
वसवुं तास तदर्थ, तदा विरोध न बिहुं तणो ॥
५५. गमन विषे सुविचार, अल्प काल सेज्जा रहै ।
वेदै चरिया सार, सेज्जा पिण वेदै तदा ॥
५६. तत्व थकी सुविचार, चर्या परिसह नें विषे ।
असमाप्त थी धार, सेज्या नां आश्रयण थी ॥
५७. जो इह विध ए हुंत, तो षड् विध बंधक किम कह्यो ।
जे समय चरिया वेदंत, सेज्या नहिं वेदै तदा ॥

५८. तसु उत्तर छै एम, षड विध बंधक नें कह्यु ।
मोह अंश अल्प तेम, प्रबल मोह नुं उदय नहिं ॥
५९. सर्व कार्य रै मांहि, उत्सुक भाव अभाव करि ।
सेज्जा काले ताहि, वर्त्ते सेज्या नें विषे ॥
६०. नवमा गुण जिम जेह, सेज्या वेदै तिण समय ।
उत्सुक भाव करेह, चरिया प्रति वेदै नथी ॥
६१. चर्या जब वेदंत, सेज्या नहिं वेदै तदा ।
बिहुं समकाल नहिं हुंत, ए बिहुं तणो विरोध इम ॥
६२. ते माटै इम जोय, जे सप्त कर्म बंधक तणें ।
चरिया निसीहिया दोय, एक समय वेदै न बिहुं ॥

*लय : शिवपुराण नगर सुहामणो

४७. जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ, नो तं समयं निसीहिया-परीसहं वेदेइ, जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ । (श० ८।३२३)

४८. तत्र चर्या—ग्रामादिषु संचरणं नैषेधिकी च—ग्रामादिषु प्रतिपन्नमासकल्पादेः स्वाध्यायादिनिमित्तं शय्यातो विविक्ततरोपाश्रये गत्वा निषदनम् । (वृ० प० ३९१)

४९. एवं चानयोर्विहारावस्थानरूपत्वेन परस्परविरोधान्नैकदा सम्भवः । (वृ० प० ३९१)
५०. अथ नैषेधिकीवच्छय्याऽपि चर्यया सह विरुद्धेति (वृ० प० ३९१)
५१. न तयोरेकदा सम्भवस्ततश्चैकोनविंशतेरेव परीषहाणामुत्कर्षेणैकदा वेदनं प्राप्तमिति । (वृ० प० ३९१)
५२-५४. नैवं यतो ग्रामादिगमनप्रवृत्तौ यदा कश्चिदौत्सुक्यादनिवृत्ततत्परिणाम एव विश्रामभोजनाद्यर्थमित्वरशय्यायां वर्त्तते तदोभयमप्यविरुद्धमेव । (वृ० प० ३९१)

५६. तत्त्वतश्चर्याया असमाप्तत्वाद् आश्रयस्य चाश्रयणादिति (वृ० प० ३९१)
५७. यद्येवं तर्हि कथं षड्विधबन्धकमाश्रित्य वक्ष्यति—'जं समयं चरियापरीसहं वेएति नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेएइ' इत्यादीति । (वृ० प० ३९१)
५८. अत्रोच्यते, षड्विधबन्धको मोहनीयस्याविद्यमानकल्पत्वात् (वृ० प० ३९१)
५९. सर्वत्रौत्सुक्याभावेन शय्याकाले शय्यायामेव वर्त्तते । (वृ० प० ३९१)
६०,६१. न तु बादररागवदौत्सुक्येन विहारपरिणामाविच्छेदाच्चर्यायामपि, अतस्तदपेक्षया तयोः परस्परविरोधाद्युगपदसम्भवः (वृ० प० ३९१)

६२. ततश्च साध्वेव 'जं समयं चरिए' त्यादीति (वृ० प० ३९१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. *आठ कर्म बंधै तेहनैं, किता परिसह ताय ?
जिन कहै बावीस परिसह, क्षुधा तृषा कहिवाय ।।

६४. सीय उसिण दंसमसग नों, जाव अलाभ नों जाण ।
इम अठ विध बंधक अपि, सप्त बंधक जिम माण ।।

**सोरठा**

६५. पूर्वे समचै ताहि, कह्या बावीस परीसहा ।
च्यार कर्म रै मांहि, समवतरै ते पिण कह्या ।।

६६. छेहड़े पाठ पिछाण, अंतराय कर्म नैं विषे ।
समवतरै ए जाण, एक अलाभ परीसह ।।

६७. इम अलाभ लग ख्यात, सप्त कर्म बंधक तणें ।
ते सहु पाठ विख्यात, कहिवुं अठ बंधक तणें ।।

६८. अठ बंधक रै एम, कह्या बावीस परीसहा ।
च्यार कर्म में तेम, कहिवुं पाठ अलाभ लग ।।

**वा०**—इहां गोतम पूछ्यो—केतला परिसहा परूप्या ? भगवंत कह्यो—बावीस परिसहा परूप्या—भूख तृषा रो नाम लेइ जाव दर्शन परिसह कह्यो। वलि पूछ्यो—केतला कर्मप्रकृति नैं विषे ए बावीस परिसहा समवतरै ? जद भगवंत कह्यो—च्यार कर्म प्रकृति नैं विषे समवतरै—ज्ञानावरणी नैं विषे दोय, वेदनी नैं विषे इग्यारे, दर्शण मोहणी रै विषे एक, चारित्र मोहणी रै विषे सात, अंतराय कर्म नैं विषे एक अलाभ परिसह, ए छेहड़ै कह्यो। तिम इहां पिण गोतम पूछ्यो—आठ-विध बंधग रै किता परिसहा परूप्या ? भगवंत कहै—बावीस परिसहा परूप्या। भूख, तृषा आदि पंच परिसहा नां नाम लेइ जाव अलाभ परीसह कह्यो। ए अंतराय कर्म नैं विषे एक अलाभ परिसह समवतरै ते पाठ पूर्वे छेहड़ै कह्यु छै, ते पाठ इहां पिण आठ बंधगा नैं विषे पिण छेहड़ै कहिवूं। ते भणी जाव अलाभ परिसहे कह्यो इति तत्वं।[1]

६९. *मोह आउखो वर्जे नैं, षड् विध बंधक ताय ।
सूक्ष्म संपराय नैं विषे, किता परिसह कहिवाय ।।

७०. जिन कहै षट-बंधक तणें, चउदै परिसहा जोय ।
द्वादश पिण वेदै अछै, तास न्याय इम होय ।।

६३. अट्ठविहबंधगस्स णं भंते ! कति परीसहा प०
गो० ! बावीसं परीसहा, तं० छुहापरीसहे, पिवासा-परीसहे

६४. सीयपरीसहे, उसिणपरीसहे, दंसमसगपरीसहे जाव अलाभपरीसहे एवं अट्ठविहबंधगस्स वि ।
(श० ८।३२४ का पा० टि०)

६९. छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कति परी-सहा पण्णत्ता ?
षड्विधबन्धकस्यायुर्मोहवर्जानां बन्धकस्य सूक्ष्मसम्प-रायस्येत्यर्थः । (वृ० प० ३९१)

७०. गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता। बारस पुण वेदेइ

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

१. इस वार्तिक में जिस पाठ के आधार पर परीषहों की चर्चा की गई है; वह भगवती के आठवें शतक (सूत्र ३१६-३२२) का पाठ है। उस पाठ को इसी ढाल की गाथा ५ से ३७ तक की जोड़ के सामने उद्धृत किया जा चुका है। वहां जो प्रसंग चर्चित हुआ है, उसी को उपसंहार रूप में यहां स्पष्ट किया गया है। इसलिए इस वार्तिक के सामने उक्त पाठ नहीं लिया गया।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. सीत वेदै जे समय में, ते समय उष्ण वेदै नांय ।
उष्ण वेदै जे समय में, ते समय सीत न वेदाय ।।

७२. चरिया वेदै जे समय में, ते समय सेज्या वेदै नांय ।
सेज्या वेदै जे समय में, ते समय चरिया न वेदाय ।।

**सोरठा**

७३. आठ परिसहा जेह, मोह कर्म थी ऊपजै ।
षट-बंधक नें तेह, ते आठूंई नहिं कह्या ।।

७४. इहां कोइ पूछै सोय, दशमां गुणठाणां मझै ।
चउद परीसह होय, मोह तणां आठूं टल्यां ।।

७५. ते सामर्थ थी जाण, नवमां गुणठाणां मझै ।
मोह तणां पहिछाण, आठ परीसह संभवै ।।

७६. मिलै तास किम न्याय, दर्शण सप्तक तेहनों ।
चिहुं अंतान[1] कषाय, त्रिहुं दर्शण मोह उपशम्यां ।।
७७ तास अभावे जाण, जे दर्शण परिसह तणो ।
हुवै अभाव पिछाण, सप्त परीसह संभवै ।।
७८. पिण आठूं नो नांय, तथाजु दर्शण मोह नों ।
सत्ता नीं अपेक्षाय, वंछयां आठूं जो हुवै ।।
७९. तो दशमें गुणठाण, मोह कर्म नीं छै सत्ता ।
तेहथि ऊपनां जाण, सर्व परीसह किम न ह्वै ।।

८०. तेहनों उत्तर एह, दर्शण-सप्तक उपशम्ये ।
ऊपरहीज कहेह, छेहड़ा नां अद्धा विषे ।।
८१. तेह नपुंसक-वेय, उपशम काल विषेज तब ।
नवमें गुण पामेय, त्यां दर्शण-परिसह ऊपजै ।।
८२. अन्य ग्रंथ रै मांहि, दर्शन त्रय नुं बृहत खंड ।
उपशमाया छै ताहि, सूक्षम खंड न उपशम्युं ।।

८३. तथा नपुंसक-वेय, तिण साथे उपशमाविवा ।
उपक्रम जे अधिकेय, करिवा नें मांड्यो जिणे ।।
८४. ते वेद नपुंसक जाण, उपशम अवसर नें विषे ।
ह्वै नवमो गुणठाण, उदै बादर संपराय नों ।।
८५. दर्शण मोहणी तास, किंचित उदय प्रदेश थी ।
दर्शण परिसह जास, ते प्रत्यय अन्य ग्रंथ इम ।।

१. अनन्तानुबन्धी

७१. जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ ।
७२. जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ । (श० ८।३२५)

७३. अष्टानां मोहनीयसम्भवानां तस्य मोहाभावेनाभावाद्-द्वाविंशतेः शेषाश्चतुर्दशपरीषहा इति ।
(वृ० प० ३९१)
७४. ननु सूक्ष्मसंपरायस्य चतुर्दशानामेवाभिधानान्मोह-नीयसम्भवानामष्टानामसम्भव इत्युक्तं ।
(वृ० प० ३९१)
७५. ततश्च सामर्थ्यादनिवृत्तिबादरसंपरायस्य मोहनीय-सम्भवानामष्टानामपि सम्भवः प्राप्तः ।
(वृ० प० ३९१)
७६,७७. कथं चैतद् युज्यते ? यतो दर्शनसप्तकोपशमे बादर-कषायस्य दर्शनमोहनीयोदयाभावेन दर्शनपरीषहा-भावात्सप्तानामेव सम्भवः (वृ० प० ३९१)

७८. नाष्टानां, अथ दर्शनमोहनीयसत्तापेक्षयाऽसावपीष्यत इत्यष्टावेव । (वृ० प० ३९१)
७९. तर्हि उपशमकत्वे सूक्ष्मसम्परायस्यापि मोहनीयसत्ता-सद्भावात्कथं तदुत्थाः सर्वेऽपि परीषहा न भवन्ति ?
(वृ० प० ३९१)
८०,८१. अत्रोच्यते, यस्माद्दर्शनसप्तकोपशमस्योपर्येव नपुंसक-वेदाद्युपशमकालेऽनिवृत्तिबादरसम्परायो भवति
(वृ० प० ३९१)

८२. स चावश्यकादिव्यतिरिक्तग्रंथान्तरमतेन दर्शनत्रयस्य बृहति भागे उपशान्ते शेषे चानुपशान्ते एव स्यात् ।
(वृ० प० ३९१)
८३. नपुंसकवेदं चासौ तेन सहोपशमयितुमुपक्रमते
(वृ० प० ३९१)
८४. ततश्च नपुंसकवेदोपशमावसरेऽनिवृत्तिबादरसम्परायस्य सत्तो (वृ० प० ३९१)
८५. दर्शनमोहस्य प्रदेशत उदयोऽस्ति न तु सत्तैव, ततस्त-त्प्रत्ययो दर्शनपरीषहस्तस्यास्तीति ।
(वृ० प० ३९१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. तेह थकी अवलोय, परिसह आठूं ई हुवै।
इम टीका में जोय, सर्वज्ञ वदै तिकोज सत्य ॥
८७. सूक्ष्म संपराय सूत, मोह कर्म सत्ता विषे।
परिसह हेतूभूत, एहवुं मोह उदय नथी ॥
८८. सूक्षम मात्र कहाय, मोह उदय छै ते भणी।
मोह थकी उपजाय, ते परिसह संभव नहीं ॥
८९. ए सगलो विस्तार, टीका मांहे आखियो।
बुद्धिवंत न्याय विचार, मिलतो हुवै ते मानियै ॥

वा०—इहां कह्यो—मोह आउखो वर्जी छ कर्म बंधै ते सूक्ष्मसंपराय दशमें गुणाठाणे सूक्ष्म लोभ नां जे अणु तेहनां वेदवा थकी सरागी कहियै अनैं केवलज्ञान नथी ऊपनो ते माटै छद्मस्थ कहियै, तेहनैं चवदै परिसह कह्या—आठ परिसह मोहणी थकी जे ऊपनां छै ते नथी। तेहनैं मोहनी नां बंध नो अभाव छै। अनैं उदय पिण सूक्ष्म मात्र छै, ते भणी मोहनी थी ऊपनां आठ परिसह छै ते दशमें गुणठाणे नथी। ते बावीस मांहि थी आठ दूर कीजै, तिवारे शेष चउदै रहै, इम कह्यु ।

वलि ते वचन नां सामर्थपणां थकी नवमैं गुणाठाणैं मोहनी नां उदय थकी ऊपनां आठूं परिसह नों संभव पामियै, ते किम मिलै? जे भणी नवमैं गुणठाणैं अनुतानबंधी क्रोध मान माया लोभ अनैं मिथ्यात मोहणी, मिश्र मोहणी, सम्यक्त्व मोहणी ए सातूं प्रकृति नैं दर्शण-सप्तक कहियै। तेहनों उपशम हुइं। बादर-संपराय नां धणी नैं दर्शन-मोहणी नों उदय नथी, तिवारैं दर्शण-परिसह पिण नथी। अनैं चारित्रमोहणी नां उदय थी सात परिसह छै, ते हुवैं पिण आठ किम हुवै ? अनैं जो नवमैं गुणठाणैं दर्शन-मोहणी नीं सत्ता छै ते सत्ता नीं अपेक्षाय एवं छीए तो आठ पिण हुवै। इम जो नवमें मोह-सत्ता नीं अपेक्षाय आठ परिसहा कहिइं तो दशमैं गुणठाणैं पिण मोहणी नीं सत्ता छै तिहां ए आठ किम न हुइं। न्याय नां समानपणां थकी। अनैं दशमैं गुणठाणैं तो मोहणी नां उदय नां आठूं परिसह वर्ज्या छै। अत्र उत्तर—जे भणी दर्शण-सप्तक उपशम नां ऊपरला छेहड़ा नां काल नैं विषेहीज नपुंसक वेद उपशमावा नां आदि नां काल नै विषे अनिवृत्ति बादरसंपराय नवमों गुणठाणो हुवै ते माटै नवमैं गुणठाणैं दर्शण परिसह हुवै।

तथा आवश्यकादिक व्यतिरिक्त ग्रंथांतर नैं मते इम कह्यु छै ते कहै छै—मिथ्यात-मोहणी, मिश्र-मोहणी, सम्यक्त्व-मोहणी—ए दर्शण-त्रय नां बृहत भाग ते मोटा स्थूल भाग उपशांत कीधे छते अनैं शेष भाग ते लघु अत्यंत सूक्ष्म भाग उपशांत नहींज थया हुइं नपुंसक वेद प्रतैं ते दर्शण मोह नां अत्यंत सूक्ष्म खंड साथै उपशमायवा नैं उपक्रम करै ते भणी ते नपुंसक वेद उपशम नां अवसर नैं विषे अनिवृत्ति-बादर सूक्ष्मसंपराय नवमों गुणठाणो हुवै। ते वेला दर्शण-मोह नैं प्रदेश थकी उदय छै पिण निकेवल सत्ता में ईज नथी ते प्रत्यय निमित्त कारण दर्शण परिसह नवमैं गुणठाणैं छै, ते भणी आठुंइ परिसह हुइं, इति।

अनैं सूक्ष्मसंपराय नैं मोह-सत्ता नैं विषे पिण ते परिसह हेतुभूत नथी अनैं सूक्ष्म मात्र पिण मोहनीय नो उदय छै ते भणी ते सूक्ष्म मात्र मोह नां उदय थी परिसह नों संभव न हुइं। जे सूक्ष्म लोभ कीट्टिका नों उदय छै ते परिसह नो हेतुभूत

८६. ततश्चाष्टावपि भवन्तीति (वृ० प० ३९१)

८७. सूक्ष्मसम्परायस्य तु मोहसत्तायामपि न परीषहहेतुभूतः (वृ० प० ३९१)

८८. सूक्ष्मोऽपि मोहनीयोदयोऽस्तीति न मोहजन्यपरीषहसम्भवः। (वृ० प० ३९१)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं। लोभ-हेतुक नैं परिसह नां अणकहिवा थकीज तिहां मोह नां उदय नां परिसह नथी।

अथवा कोइ पिण कथंचित किणहि प्रकार करए जो हुइं तो तेहनैं इहां अत्यंत अल्पपणै करी वंछ्यो नथी, एहवूं टीका मध्ये कह्यु। ते बहुश्रुत विचारी न्याय मिलै ते प्रमाण करियै, वलि केवली वदै ते सत्य। अनैं आठमै गुणठाणै उपशम-सम्यक्त्व हुइं, ए दर्शण मोह नां बडा खंड उपशमाया अनैं लघु खंड उपशमावा लागो ते 'कडेमाणे कडे' ए वीतराग री सरधा रै लेखै उपशम सम्यक्त्व कहियै। उपशमावा लागो तेहनैं उपशमायो कहियै। इण न्याय आठमै गुणाठाणै उपशम-सम्यक्त्व वर्त्तमान काले आवै। अनैं जो चोथा सूं लेइ सातमां गुणठाणां तांइ पिण उपशम-सम्यक्त्व छै, ते जो आगली उपशम-सम्यक्त्व हुइं। पछै श्रेणि चढै तो बात न्यारी, एहवूं पिण जणाय छै। वलि केवली वदै ते सत्य।

९०. *वीतराग छद्मस्थ जे, इकविध बंधक जाण।
किता परीसह परूपिया, ग्यारम बारम ठाण?
९१. जिन भाखै इमहीज छै, षट विध-बंधक जेम।
चउद परीसह परूपिया, द्वादश वेदै तेम।।

९२. सीत वेदै जे समय में, उष्ण न वेदै वदीत।
उष्ण वेदै जे समय में, वेदै नहिं ते सीत।।
९३. चरिया वेदै जे समय में, वेदै नहिं ते सेज।
सेज्या वेदै जे समय में, चरिया अवेद कहेज।।
९४. एक कर्म बंधै तेहनैं, सजोगी केवली जाण।
किता परीसह तेहनैं, तेरसमें गुणठाण।।
९५. जिन कहै ग्यार परीसहा, नव पुण वेदै तेम।
शेष सहु विस्तार ते, षटविध-बंधक जेम।।

९६. कर्म न बंधै तेहनैं, अजोगी केवली एह।
किता परीसह परूपिया, चोदशमै गुण जेह।।
९७. जिन भाखै सुण गोयमा! तास परिसहा ग्यार।
नव पुण ते वेदै अछै, ए जिन वयण उदार।।
९८. सीत वेदै जे समय में, उष्ण न वेदै वदीत।
उष्ण वेदै जे समय में, वेदै नहि ते सीत।।

९९ चरिया वेदै जे समय में, वेदै नहिं ते सेज।
सेज्ज वेदै ते समय में, चरिया अवेद कहेज[1]।।

९०. एक्कविहबन्धगस्स णं भंते! वीयरायछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
९१. गोयमा! एवं चेव जहेव छव्विहबन्धगस्स। (श० ८।३२६)
'एवं चेवे' त्यादि चतुर्दश प्रज्ञप्ता द्वादश पुनर्वेदयतीत्यर्थः (वृ० प० ३९२)
९२,९३. शीतोष्णयोश्चर्याशय्ययोश्च पर्यायेण वेदनादिति (वृ० प० ३९२)

९४. एगविहबन्धगस्स णं भंते! सजोगीभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
९५. गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता। नव पुण वेदेइ। सेसं जहा छव्विहबन्धगस्स। (श० ८।३२७)
९६. अबन्धगस्स णं भंते! अयोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता?
९७. गोयमा! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता। नव पुण वेदेइ—
९८. जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ,
९९. जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ। (श० ८।३२८)

---

*लय : शिवपुर नगर सुहामणो

१. कहां कितने परीषह होते हैं और जघन्यतः तथा उत्कर्षतः एक साथ कितने परीषह हो सकते हैं? कौन-कौन से परीषह एक साथ नहीं होते? इन प्रश्नों



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. देश अठचासी नों ए कह्यू, इक सौ बावनमीं ए ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

## ढाल : १५३

### दूहा

१ कह्या परिसहा तेह विषे, उष्ण परीसह जाण ।
तसु हेतू रवि तास हिव, वक्तव्यता पहिछाण ।।

१. अनन्तरं परीषहा उक्तास्तेषु चोष्णपरीषहस्तद्हेतवश्च सूर्या इत्यतः सूर्यवक्तव्यतायां निरूपयन्नाह—
(वृ० प० ३९२)

*प्रभु ! अरज करूं छूं वीनती । (ध्रुपदं)

२. हो प्रभु ! जंबूद्वीप नामा द्वीप में, ए तो सूरज दोय सुजाण हो ।
हो प्रभु ! ऊगवाना जे काल नां, मुहूर्त्त विषे पहिछाण हो ।।

२. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि

३. देखणहार जे मनुष्य छै, तेहनां स्थान तणी अपेक्षाय ।
दूर ते अलग रह्यो रवि, मूल ते निकट देखाय ।।

३. दूरे य मूले य दीसंति ?
'दूरे च', द्रष्टृस्थानापेक्षया व्यवहिते देशे 'मूले च' आसन्ने (वृ० प० ३९३)

४. मध्यांत मध्य विभाग में, ओ तो गगन तणो मध्य धार ।
अथवा दिवस नां मध्य नां, तिण मुहूर्त्त विषे विचार ।।

४. मज्झंतियमुहुत्तंसि
मध्यो—मध्यमोऽन्तो विभागो गगनस्य दिवसस्य वा मध्यान्तः (वृ० प० ३९३)

५. देखणहार नां स्थान अपेक्षया, मूल कहितां नजीक छै एह ।
द्रष्टा-प्रतीति अपेक्षया, दूर कहितां ते अलग दीसेह ।।

५. मूले य दूरे य दीसंति ?
'मूले च' आसन्ने देशे द्रष्टृस्थानापेक्षया 'दूरे च' व्यवहिते देशे द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया (वृ० प० ३९३)

६. आथमता मुहूर्त्त नें विषे, रवि दूर रह्यो पिण जेह ।
अनेक सहस्र जोजन रह्यो, मूल कहितां ते निकट दीसेह ।।

६. अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ?

७. †जे ऊगतो आथमत भानु, इहां थी अति दूर ही ।
अनेक सहस्र जोजन पिण, भू थकी दीसै निकट ही ।।

८. मध्यान ही शत अष्ट जोजन, भू थकी तो निकट ही ।
रवि उदय अस्तम पेक्षया, ते दूर दीसै छै सही ।।

८. द्रष्टा हि मध्याह्ने उदयास्तमनदर्शनापेक्षयाऽऽसन्नं रविं पश्यति योजनशताष्टकेनैव तदा तस्य व्यवहितत्वात् ।
(वृ० प० ३९३)

के उत्तर प्रवचन सारोद्धार गाथा ६९० एवं ६९१ में उपलब्ध हैं। वे गाथाएं अविकल रूप से उद्धृत की जा रही हैं—

बावीसं बायरसंपराय चउदस य सुहुम (संप) रायम्मि ।
छउमत्थ वीयरागे चउदस इक्कारस जिणम्मि ।।१।।
बीसं उक्कोसपए वट्टंति जहन्नओ य एक्को य ।
सीओसिणचरिय निसीहिया य जुगवं न वट्टंति ।।२।।

*लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर
†लय : पूज मोटा भांजै तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. *अहो मुनि जिन कहै हंता गोयमा ! जंबूद्वीप विषे रवि दोय ।
गोयम ! अलग छता उदय काल में,
मनुष्य नें निकट दीसै सोय ॥
१०. तं चेव जाव कहीजियै, आथमै तेह मुहूर्त्त मांय ।
दूर ते अलगा रह्यां रवि, इहां मनुष्य नें निकट देखाय ॥
११. जंबूद्वीप नामा द्वीप में, रवि उदय मुहूर्त्त विषे ताहि ।
मध्य मुहूर्त्त दोपहर में, वलि आथमैं ते मुहूर्त्त मांहि ॥
१२. समभूतला नीं अपेक्षया, ऊंचो आठसै योजन जोय ।
सर्व ठाम सरिखा हुवै ? कांइ जिन कहै हंता होय ॥

१३. जंबूद्वीप में जो रवि, उदय मध्य आथमतै काल ।
भू थकी सगलै सारिखो, कांइ ऊंचपणें करि न्हाल ॥

१४. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो, उदय आथमतो रवि एह ।
दूर रह्यो दीसै निकट ही, मध्य निकट पिण दूर दीसेह ?

१५. वीर कहै लेश्या तणां, प्रतिघात करिनें एह ।
रवि ऊगवा नां मुहूर्त्त विषे, दूर रह्यो पिण निकट दीसेह ॥

**सोरठा**

१६. रवि दूरपणां थी जाण, तेज तणां प्रतिघात कर ।
तेह देस नें माण, प्रसरण न हुवै तेज नों ॥
१७. थयो लेश प्रतिघात, दूर रह्यो पिण एह रवि ।
सुखे दीसवो थात, नजीक दीसै ते भणी ॥

१८. *तेज नें प्रबलपणै करी, मध्य दिवस मुहूर्त्त ते काल ।
रवि ढूकड़ो निकट रह्यो थको, दूर अलग दीसतो न्हाल ॥

**सोरठा**

१९. प्रबल तेज करि ताय, सूर्य निकट रह्यो छतो ।
दुखे दीसवो थाय, अलगो दीसै ते भणी ॥

२०. *लेश्या ते रवि नां तेज नां, प्रतिघात करीनें हुंत ।
आथमता मुहूर्त्त नें विषे, दूर रह्यो पिण निकट दीसंत ॥
२१. तिण अर्थे करि गोयमा ! रवि ऊगता मुहूर्त्त मांय ।
दूर थकी दीसै ढूकड़ा, जाव अस्तम जाव देखाय ॥

९,१०. हंता गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे य तं चेव जाव (सं० पा०) अत्थमण-मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति । (श० ८।३२९)

११. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि मज्झंतियमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य

१२. सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ?
हंता गोयमा ! .... (श० ८।३३०)
समभूतलापेक्षया सर्वत्रोच्चत्वमष्टौ योजनशतानीति-कृत्वा (वृ० प० ३९३)

१३. जइ णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि मज्झंतियमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं,

१४. से केणं खाइ अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया
उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ? जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ?

१५. गोयमा ! लेसापडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति

१६. तेजसः प्रतिघातेन दूरतरत्वात् तद्देशस्य तदप्रसरणेने-त्यर्थः । (वृ० प० ३९३)

१७. लेश्याप्रतिघाते हि सुखदृश्यत्वेन दूरस्थोऽपि स्वरूपेण सूर्य आसन्नप्रतीतिं जनयति । (वृ० प० ३९३)

१८. लेसाभितावेणं मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति

१९. तेजः प्रतापे च दुर्दृश्यत्वेन प्रत्यासन्नोऽप्यसौ दूरप्रतीतिं जनयतीति । (वृ० प० ३९३)

२०. लेसापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ।

२१. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति ।
(श० ८।३३१)

---

*लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. जंबूद्वीप में बे रवि, स्यूं जावै छै खेत्र अतीत।
वर्त्तमान-खेत्रे जावै अछै, अनागत खेत्रे जावै रीत?

२३. श्री जिन भाखै सांभलो, गया खेत्र प्रति नहिं जाय।
वर्त्तमान खेत्र प्रति जाय छै, अनागत प्रति जावै नांय।।

२२. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं गच्छंति? पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति? अणागयं खेत्तं गच्छंति?

२३. गोयमा! नो तीयं खेत्तं गच्छंति पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति, नो अणागयं खेत्तं गच्छंति। (श० ८।३३२)

**सोरठा**

२४. जेह खंड आकाश, तेह खंड प्रति जे रवि।
निज तेजे करि तास, व्यापै ते खेत्रज कह्यं।।

२४. इह च यदाकाशखण्डमादित्यः स्वतेजसा व्याप्नोति तत् क्षेत्रमुच्यते (वृ० प० ३९३)

२५. 'गयो खेत्र नहिं जाय, अतीत खेत्र उलंघियो।
जाय वर्त्तमान मांय, जावा लागो ते भणी।।

२६ अनागत जे खेत, ते प्रति पिण जावै नहीं।
उद्योत न करै तेथ, ए पिण वर्ज्यो ते भणी।।

२७. जावै छै ए जान, वर्त्तमान वाची शबद।
ते माटै वर्त्तमान, खेत्र प्रतै जावै रवि।।

२८. गयो ए शब्द अतीत, जास्यै काल अनागते।
ए बिहुं प्रश्न संगीत, पूछा न करी छै इहां'।।
(ज० स०)

**वा०**—इहां पाठ में पूछा इम करी—जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं गच्छंति? पडुप्पन्नं खेत्तं गच्छंति? अणागयं खेत्तं गच्छंति?

इहां गच्छंति ए शब्द वर्त्तमान काल वाची छै। वर्त्तमान काल में सूर्य जे खेत्रे जाय तेहनी पूछा करी ते माटै गच्छंति पाठ कह्यो। गये काल नीं पूछा हुवै तो गच्छंसु पाठ हुवै, ते इहां नहीं। आगमिया काल नीं पूछा में गच्छिस्संति पाठ हुवै, ते पिण इहां नहीं। ते माटै गच्छंति ए वर्त्तमान काल में सूर्य जाय, तेहनींज पूछा करी, जद भगवान वर्त्तमान नों ज जाब दियो।

२९. *जंबूद्वीप में बे रवि, कांइ गया खेत्र प्रति ताय।
अवभासै छै ते सही, कांई थोड़ो उद्योत कराय?

३०. तथा वर्त्तमान जे खेत्र नें, अवभासै करै अल्प उद्योत।
अथवा खेत्र अनागत प्रतै, अवभासै करै अल्प जोत?

३१. जिन भाखै गया खेत्र में, नहिं अवभासै छै ताहि।
अवभासै खेत्र वर्त्तमान में, अनागत अवभासै नांहि।।

३२. स्यूं फर्श्यो तेजे करी, अवभासै अल्प उद्योत?
कै तेजे अणफर्शियो, अवभासै अल्पज जोत?

३३. जिन भाखै फर्श्यो थको, अवभासै अल्प उद्योत।
अणफर्श्यो अवभासै नहीं, जाव नियमा छ दिशि अल्प जोत।।

२९. जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं ओभासंति?
अवभासयतः ईषदुद्द्योतयतः (वृ० प० ३९३)

३०. पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति? अणागयं खेत्तं ओभासंति?

३१. गोयमा? नो तीयं खेत्तं ओभासंति, पडुप्पन्नं खेत्तं ओभासंति नो अणागयं खेत्तं ओभासंति।
(श० ८।३३३)

३२. तं भंते! किं पुट्ठं ओभासंति? अपुट्ठं ओभासंति?

३३. गोयमा! पुट्ठं ओभासंति, नो अपुट्ठं ओभासंति जाव नियमा छद्दिसिं (श० ८।३३४)

*लय: अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. जंबूद्वीप में बे रवि, गये खेत्रे अधिक उद्योत।
इम जावत नियमा छ दिशे, कांइ अतिशय करि अति जोत ।।

३५. इम तपै छै उष्ण किरण थकी, इम भासंति शोभै जेह।
यावत नियमा छ दिशे, बिहुं सूर्य नीं बात एह ।।

३६. कह्यो तेहिज अर्थ जेह, शिष्य नैं हित अर्थे वलि।
प्रकारांतरे कहेह, वक्तव्यता सूरज तणी ।।

३७. *जंबूद्वीप में बे रवि, स्यूं खेत्र अतीत रैं मांय।
अवभासनादि क्रिया हुवै, कज्जइ ते भवति कहाय ।।

३८. तथा वर्त्तमान खेत्र नैं विषे, अवभासनादि क्रिया होय ?
तथा खेत्र अनागत नैं विषे, क्रिया अवभासनादिक जोय ?

३९. जिन भाखै गया खेत्र में, अवभासनादि क्रिया नांय।
क्रिया वर्त्तमान खेत्रे हुवै, खेत्र अनागत नहिं थाय ।।

४०. अवभासनादि तिका क्रिया, स्यूं तेजे करि फर्श्या होय।
अथवा क्रिया तेजे करी, अणफर्श्या थी हुवै सोय ?

४१. जिन भाखै तेजे फर्शी हुवै, पिण अणफर्शी नहिं होय।
जावत नियमा छ दिशे, पाठ इहां लग कहिवो जोय ।।

४२. जंबूद्वीप में बे रवि, खेत्र केतलो ऊर्द्ध तपंत ?
केतलो खेत्र हेठो तपै, तिरछो खेत्र कितो तपै भंत !

४३. सूर्य तणां विमाण थी, इकसौ जोजन ऊर्द्ध तपंत।
ऊंचो ताप खेत्र एतलोज छै, नीचो जोजन अठारसौ हुंत ।।

**सोरठा**

४४. रवि-मंडल थी हेठ, अठसौ जोजन समभूतलो।
तेहथी नीचो नेठ, सहस्र जोजन ऊंडो विजय ।।

४५. अधोलोक छै तेह, त्यां ग्रामादिक जे हुइं।
जिहां उद्योत करेह, अठदश सौ तल इम कह्या ।।

४६. *तिरछो सैंताली सहस्र जोजन तपै,
वलि दोय सौ तेसठ जाण।
जोजन नां साठिया भाग मांहिला, एकवीस भाग पहिछाण ।।

**सोरठा**

४७. सर्वोत्कृष्ट दिन एह, चक्षु फर्श अपेक्षया।
पूनम आसाढी जेह, सूर्य भिंतर मंडले ।।

*लय : अहो प्रभु चंद जिनेश्वर

३४. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं उज्जोवेंति ?
एवं चेव जाव नियमा छद्दिसिं। (श० ८।३३५)

३५. एवं तवेंति, एवं भासंति जाव नियमा छद्दिसिं।
(श० ८।३३६)

३६. उक्तमेवार्थं शिष्यहिताय प्रकारान्तरेणाह—
(वृ० प० ३९३)

३७. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरियाणं किं तीए खेत्ते किरिया कज्जइ ?
'किरिया कज्जइ' त्ति अवभासनादिका क्रिया भवतीत्यर्थः (वृ० प० ३९३)

३८. पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ ? अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ ?

३९. गोयमा ! नो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पन्ने खेत्ते किरिया कज्जइ, नो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ। (श० ८।३३७)

४०. सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ? अपुट्ठा कज्जइ ?
'पुट्ठ' त्ति तेजसा स्पृष्टात् (वृ० प० ३९३)

४१. गोयमा ! पुट्ठा कज्जइ, नो अपुट्ठा कज्जइ जाव नियमा छद्दिसिं (श० ८।३३८)

४२. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया केवतियं खेत्तं उड्ढं तवंति ? केवतियं खेत्तं अहे तवंति ? केवतियं खेत्तं तिरियं तवंति ?

४३. गोयमा ? एगं जोयणसयं उड्ढं तवंति, अट्ठारस जोयणसयाइं अहे तवंति।

४४,४५. सूर्यादिष्टासु योजनशतेषु भूतलं भूतलाच्च योजनसहस्रेऽधोलोकग्रामा भवन्ति तांश्च यावदुद्द्योतनादिति। (वृ० प० ३९३)

४६. सीयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि य तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स तिरियं तवंति।
(श० ८।३३९)

४७. एतच्च सर्वोत्कृष्टदिवसे चक्षुःस्पर्शापेक्षयाऽवसेयमिति।
(वृ० प० ३९३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. आखी पूर्वे एह, वक्तव्यता सूरज तणी।
तसु सामान्यपणेह, हिवै जोतिषी नीं कहै॥

४८. अनन्तरं सूर्यवक्तव्यतोक्ता, अथ सामान्येन ज्योतिष्क-वक्तव्यतामाह— (वृ० प० ३६३)

४९. *मानुषोत्तर गिरि तणें, कांइ भितर वर्त्तै अनूप।
चंद्र सूर्य ग्रहगण तणां, कांइ नक्षत्र तारारूप॥

५०. ते सुर स्यूं ऊर्द्ध ऊपनां? जिम जीवाभिगम विमास।
तिमहिज कहिवूं सर्व ही, जाव उत्कृष्ट विरह छ मास॥

४९. अंतो णं भंते! माणुसुत्तरपव्वयस्स जे चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त ताराख्वा

५०. ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववन्नगा?
जहा जीवाभिगमे (३) तहेव निरवसेसं जाव— (श० ८।३४०)
·······उक्कोसेणं छम्मासा। (श० ८।३४१)

५१. मानुषोत्तर बाहिरै, जिम जीवाभिगमे जोय।
जाव इंद्र स्थान ऊपजवा तणो, प्रभु! विरह केतलो होय?

५२. जिन कहै धुर इक समय नुं, उत्कृष्ट छ मास कहेस।
सेवं भंते! सेवं भंते! कह्यु, अष्टम शतक नों अष्टमुदेश॥

५३. एक सौ तेपनमीं कही, आ तो ढाल रसाल उदार।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' सुख संपति सार॥

अष्टमशते अष्टमोद्देशकार्थः॥८।८॥

५१,५२. बहिया णं भंते! माणुसुत्तरपव्वयस्स······· जहा जीवाभिगमे (३) जाव— (श० ८।३४२)
इंदट्ठाणे णं भंते! केवतियं कालं उववाएणं विरहिए पण्णत्ते?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा। (श० ८।३४३)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श० ८।३४४)

## ढाल : १५४

### दूहा

१. अष्टम उद्देशक विषे, देव जोतिषी जोय।
वक्तव्यता तेहनीं कही, तिका स्वभाविक होय॥

२. ते माटै हिवै वीससा, तथा प्रयोगिक बंध।
कहियै छै वर्णन तसु, जिन वच अमल अमंद॥

१,२. अष्टमोद्देशके ज्योतिषां वक्तव्यतोक्ता, सा च वैश्रसिकीति वैश्रसिकं प्रायोगिकं च बन्धं प्रतिपिपादयिषुर्नवमोद्देशकमाह— (वृ० प० ३६४)

३. कतिविध बंध कह्यो प्रभु! जिन कहै दोय प्रकार।
प्रयोग-बंध प्रथम कह्यो, द्वितीय वीससा धार॥

३. कतिविहे णं भंते! बन्धे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—पयोगबंधे य वीससाबंधे य। (श० ८।३४५)

४. जीव प्रयोगे बंध करचूं, प्रयोग-बंध ते पेख।
बंध स्वभाव थकी थयो, तेह वीससा देख॥

४. 'पओगबंधे य' त्ति जीवप्रयोगकृतः 'वीससाबंधे य' त्ति स्वभावसम्पन्नः। (वृ० प० ३६४)

†जय-जय वाणी जिन तणी॥ (ध्रुपदं)

५. वीससा-बंध प्रभु! कतिविधे? जिन कहै द्विविध रीत।
आदि-सहित बंध वीससा, दूजो आदि-रहीत॥

५. वीससाबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सादीयवीससाबंधे य अणादीयवीससाबंधे य। (श० ८।३४६)

---

***लय : अहो प्रभु चन्द जिनेश्वर**

**†लय : वीरमती कहै चंद नै**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—जिम आसन्न ते नजीक वीससा-बंध छै, ते माटै प्रथम वीससा-बंध कहै छै—

६. आदि-रहित बंध वीससा, कतिविध भगवान ?
जिन कहै त्रिविध परूपिया, सुणै सूरत दे कान ॥

७. धुर धर्मास्तिकाय नां, प्रदेशां नो कहाव ।
मांहोमांहि बंध छै तिको, आदि-रहित स्वभाव ॥

८. फुन अधर्मास्तिकाय नां, प्रदेशां नो कहाव ।
मांहोमांहि बंध छै तिको, आदि-रहित स्वभाव ॥

९. वलि आगासत्थिकाय नों, प्रदेशां नो कहाव ।
मांहोमांहि बंध छै तिको, आदि-रहित स्वभाव ॥

१०. प्रभु ! धर्मास्तिकाय नों, बंध प्रदेशां नो संध ।
आदि-रहित वीससा तिको, देश-बंध सर्व-बंध ॥

**सोरठा**

११. देश थकी जे होय, देश तणीज अपेक्षया ।
बंध तिको अवलोय, सांकल कटका नीं परे ॥

१२. सर्व थकी जे थाय, सर्वात्माइं बंध ते ।
सर्व-बंध कहिवाय, क्षीर नीर जिम जाणज्यो ॥

१३. *जिन भाखै देश बंध है, सर्व बंध न होय ।
न्याय कहूं छूं एहनों, सुणजो सहु कोय ॥

**सोरठा**

१४. जे धर्मास्तिकाय, तेहनां प्रदेशां तणो ।
कहियै मांहोमांय, संफर्शे करि देश बंध ॥

१५. सर्व बंध नहिं थात, तिहां जे एक प्रदेश नों ।
अन्य सहु प्रदेश साथ, अन्योऽन्य मिलिया नहीं ॥

१६. एक प्रदेश में जोय, सर्व प्रदेश मिल्यां छतां ।
धर्मास्ति नों सोय, एक प्रदेशपणुंज ह्वै ॥

१७. असंखेज्ज जे ताय, प्रदेशपणें हुवै नहीं ।
ते भणी देश बंध थाय, पिण नहिं छै ते सर्व बंध ॥

१८. *इम अधर्मास्तिकाय नों, इम आकास्तिकाय ।
आदि-रहित बंध वीससा, देश-बंध कहाय ॥

१९. प्रभु ! धर्मास्तिकाय नों, अन्योऽन्य अनाद ।
वीससा बंध अद्धा कितो, रहै काल थी वाद ?

---

*लय : वीरमती कहै चंद नै

वा०—यथासत्तिन्यायमाश्रित्याह—
(वृ० प० ३९४)

६. अणादीयवीससाबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

७. धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे,

८. अधम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे,

९. आगासत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबंधे ।
(श० ८।३४७)

१०. धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे णं भंते ! किं देसबन्धे ? सव्वबन्धे ?

११. देशतो—देशापेक्षया बन्धो देशबन्धो यथा सङ्कलिकाकटिकानां, (वृ० प० ३९५)

१२. सर्वतः सर्वात्मना बन्धः सर्वबन्धो यथा क्षीरनीरयोः ।
(वृ० प० ३९५)

१३. गोयमा ! देसबन्धे, नो सव्वबन्धे

१४. धर्मास्तिकायस्य प्रदेशानां परस्परसंस्पर्शेन व्यवस्थितत्वाद्देशबन्ध एव । (वृ० प० ३९५)

१५-१७. न पुनः सर्वबन्धः तत्र हि एकस्य प्रदेशस्य प्रदेशान्तरैः सर्वथा बन्धेऽन्योऽन्यान्तर्भावेनैकप्रदेशत्वमेव स्यात् नासंख्येयप्रदेशत्वमिति । (वृ० प० ३९५)

१८. एवं अधम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे वि, एवं आगासत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे वि ।
(श० ८।३४८)

१९. धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणादीयवीससाबन्धे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. श्री जिन भाखै गोयमा ! सदा काल रहाय।
इम अधर्मास्तिकाय छै, इम आगासत्थिकाय ।।

२१. आदि सहित प्रभु ! वीससा, बंध केतलै भेद ?
जिन कहै त्रिविध परूपिया, सुणजो आण उमेद ।।
२२. बंधन-प्रत्यय धुर कह्यो, भाजन-प्रत्यय बीजो।
परिणाम-प्रत्यय तीसरो, तसु अर्थ सुणीजो ।।

**दूहा**

२३. बांधियै जे एणे करी, बंधन तेह कहेह।
वांछित स्निग्ध आदि गुण, प्रत्यय हेतू तेह ।।
२४. भाजन आधारभूत जे, तेहिज प्रत्यय हेतु।
जेहनें विषे अछै तसु, भाजन-प्रत्यय वेतु ।।
२५. परिणाम ते अन्य रूप में, गमन जायवो जाण।
तेहिज प्रत्यय हेतु ज्यां, परिणाम-प्रत्यय माण ।।

२६. *बंधन-प्रत्यय स्यूं प्रभु ! तब भाखै जिनचंद।
जे परमाणु-पोग्गला, दुप्रदेशिया खंध ।।
२७. तीन प्रदेशिया जाव ते, दश प्रदेशिया देख।
संख-असंख प्रदेशिया, अनंत प्रदेशिया पेख ।।
२८. विषम मात्रा जेहनें विषे, ते बेमात्रा कहीजै।
तेहिज छै चींगटापणुं, बेमायणिद्ध लीजै ।।

२९. विषम मात्रा जेहनें विषे, ते बेमात्रा कहीजै।
तेहिज छै लूखापणुं, बेमाय लुक्ख लीजे ।।
३०. विषम मात्रा जेहनें विषे, ते बेमात्रा प्रत्यक्ख।
तेहिज निद्ध लुक्खापणुं, बेमायणिद्धलुक्ख ।।
३१. सम गुण निद्ध बंधै नहीं, सम गुण निद्ध साथ।
सम गुण लुक्ख बंधै नहीं, सम गुण लुक्ख संघात ।।
३२. विषम मात्रा निद्ध ते, निद्ध साथ बंधात।
विषम मात्रा लुक्ख ते, बंधै लुक्ख विषमात ।।
३३. बे गुण निद्ध जे चींगटो, अन्य बे गुण निद्ध।
ते साथे बंध हुवै नहीं, सम गुण माटै प्रसिद्ध ।।
३४. बे गुण लुक्खो जेह छै, बली अनेरो जेह।
बे गुण लुक्खो तेह थी, ए पिण नहिं बंधेह ।।
३५. इणविध बंध हुवै नहीं, तो हिव किणविध होय ?
चित्त लगाई सांभलो, वारू जिन वच जोय ।।

२०. गोयमा ! सव्वद्धं। एवं अधम्मत्थिकायअण्णमण्ण-अणादीयवीससाबन्धे वि, एवं आगासत्थिकायअण्ण-मण्णअणादीयवीससाबन्धे वि। (श० ८।३४९)
२१. सादीयवीससाबन्धे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
२२. बन्धणपच्चइए, भायणपच्चइए, परिणामपच्चइए।
(श० ८।३५०)

२३. बध्यतेऽनेनेति बन्धनं—विवक्षितस्निग्धतादिको गुणः स एव प्रत्ययो हेतुर्यत्र सः। (वृ० प० ३९५)
२४,२५. एवं भाजनप्रत्ययः परिणामप्रत्ययश्च, नवरं भाजनं—आधारः परिणामो—रूपान्तरगमनं।
(वृ० प० ३९५)

२६. से किं तं बन्धणपच्चइए ?
बन्धणपच्चइए —जण्णं परमाणुपोग्गलदुप्पदेसिय-
२७. तिप्पदेसिय जाव दसपदेसिय-संखेज्जपदेसिय-असंखेज्ज-पदेसिय-अणंतपदेसियाणं खंधाणं
२८. वेमायनिद्धयाए
विषमा मात्रा यस्यां सा विमात्रा सा चासौ स्निग्धता चेति विमात्रस्निग्धता। (वृ० प० ३९५)
२९. वेमायलुक्खयाए

३०. वेमायनिद्धलुक्खयाए

३१,३२. समनिद्धयाए बन्धो न होइसमलुक्खयाए वि न होइ। वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण बन्धो उ खंधाणं ।।
(वृ० प० ३९५)

३३. समगुणस्निग्धस्य समगुणस्निग्धेन परमाणुद्व्यणुकादिना बन्धो न भवति। (वृ० प० ३९५)
३४. समगुणरूक्षस्यापि समगुणरूक्षेण (वृ० प० ३९५)

---

*लय : वीरमती कहै चंद नै

३६. विषम मात्रा चींगटो, चींगटा थी बंधै ।
इमज लुक्ख लुक्ख थी बंधै, खंध नों बंध संधै ।।
३७. निद्ध गुण परमाणु आदि जे, अन्य निद्ध गुण साथ ।
बंध हुवै तो निश्चै करि, गुण बे आदि अधिकात ।।
३८. एक परमाणु आदि जे, इक गुण निद्ध जोय ।
बे गुण निद्ध बीजो अणु, ते साथै बंध होय ।।
३९. लुक्ख गुण परमाणु आदि जे, अन्य लुक्ख गुण साथ ।
बंध हुवै तो निश्चै करि, गुण बे आदि अधिकात ।।
४०. एक परमाणु आदि जे, इक गुण लुक्ख जोय ।
बे गुण लुक्ख बीजो अणु, ते साथै बंध होय ।।
४१. इम विषम मात्रा करि, निद्ध निद्ध साथ बंधात ।
वलि विषम मात्रा करि, लुक्ख बंधै लुक्ख साथ ।।
४२. हिव निद्ध लुक्ख बिहुं तणो, बंध हुवै मांहोमांय ।
ते आश्री कहियै अछै, सुणज्यो चित्त ल्याय ।।
४३. बंधै लुक्खो नें चींगटो, एक जघन्य गुण वरजी ।
विषम तथा सम नें विषे, बंध कह्यो इम जिणजी ।।
४४. इक गुण निद्ध ते चींगटो, इक गुण लुक्ख संघात ।
एह जघन्य गुण नहिं बंधै, अन्य विषे बंध थात ।।
४५. इक पुद्गल निद्ध इक गुणे, दूजो पुद्गल ताय ।
लुक्ख बे त्रिण गुण आदि दे, विषम गुण इम बंधाय ।।
४६. इक पुद्गल निद्ध बे गुणे, अन्य पुद्गल जोय ।
बे गुण लुक्ख साथे बंधै, ए सम गुण बंध होय ।।
४७. इक पुद्गल निद्ध त्रिण गुणे, तीन गुण लुक्ख साथ ।
इत्यादिक सम गुण नें विषे, बंध कह्यो जगनाथ ।।
४८. इम निद्ध लुक्ख बंधै अछै, सम विषम संघात ।
निद्ध लुक्ख पिण गुण जघन्य ते, एक गुण न बंधात ।।
४९. बंधन नो पूरव कह्यो, प्रत्यय कहितां हेतु ।
विमात्र स्निग्ध आदि थी, बंध ऊपजै वेतु ।।
५०. एक समय रहै जघन्य थी, उत्कृष्ट थी जेह ।
काल असंख्यातो रहै, असंख कालचक्र एह ।।
(बंधन-प्रत्यय ए कह्यो)
५१. भाजन-प्रत्यय कवण ते ? भाजन कहियै आधार ।
प्रत्यय हेतू जेह छै, भाजन-प्रत्यय विचार ।।
५२. जे जीर्ण जूनी सुरा तणो, जाडी थावा नों जेह ।
तेहिज लक्षण रूप नें, बंध भाख्यो एह ।।

३६. यदा पुनर्विषमा मात्रा तदा भवति बन्धः ।
(वृ० प० ३९५)
३७,३८. निद्धस्स निद्धेण दुयाहिएणं, (वृ० प० ३९५)
३९,४०. लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं । (वृ० प० ३९५)
४३,४४. निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,
जहन्नवज्जो विसमो समो वा ।। (वृ० प० ३९५)
४९. बन्धणपच्चएणं बन्धे समुप्पज्जइ,
बन्धनस्य—बन्धस्य प्रत्ययो—हेतुरुक्तरूपविमात्रस्निग्ध-
तादिलक्षणो बन्धनमेव वा···· (वृ० प० ३९५)
५०. जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । से
त्तं बन्धणपच्चइए । (श० ८।३५१)
असंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्प्पिणीरूपं (वृ० प० ३९५)
५१. से किं तं भायणपच्चइए ?
भायणपच्चइए—
५२. जण्णं जुण्णसुर
तत्र जीर्णसुरायाः स्त्यानीभवनलक्षणो बन्धः ।
(वृ० प० ३९५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. जूना गुल नो तथा वलि, जूनो जीर्ण तंदूल।
पिंडी रूप थावा तणो, लक्षण बंध थूल॥

५३. जुण्णगुल-जुण्णतंदुलाणं
जीर्णगुडस्य जीर्णतन्दुलानां च पिण्डीभवनलक्षणः।
(वृ० प० ३९५)

५४. ते भाजन-प्रत्यय तिण करि, बंध ऊपजै तेज।
अन्तर्मुहूर्त्त जघन्य थी, उत्कृष्ट काल संखेज॥
(भाजन-प्रत्यय ए कह्यो)

५४. भायणपच्चएणं बन्धे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं भायणपच्चइए।
(श० ८।३५२)

५५. परिणाम-प्रत्यय कवण ते? अभ्र संध्याकाल।
अभ्ररूंख यावत कह्यो, तीजा शतक विचाल॥

५५. से किं तं परिणामपच्चइए?
परिणामपच्चइए—जण्णं अब्भाणं, अब्भरुक्खाणं जहा ततियसए (सू० ३।२५३)

५६. जाव अमोघा जाणियै, दिशि-दाह जणाय।
ए परिणाम-प्रत्यय करि, बंध ऊपजै ताय॥

५६. जाव अमोहाणं परिणामपच्चएणं बन्धे समुप्पज्जइ,

५७. एक समय रहै जघन्य थी, उत्कृष्ट छ मास।
परिणाम-प्रत्यय ए कह्यो, तीजो भेद विमास॥

५७. जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा। सेत्तं परिणामपच्चइए

५८. एतलै आदि-सहित ए, वीससा-बंध आख्यो।
एतलै वीससा-बंध ए, देश नव्यासी नों दाख्यो॥

५८. सेत्तं सादीयवीससाबन्धे। सेत्तं वीससाबन्धे।
(श० ८।३५३)

५९. एक सौ चोपनमीं कही, वारू ढाल विशाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल॥

## ढाल : १५५

### दूहा

१. प्रयोग-बंध ते कवण है? जिन कहै त्रिण विध संध।
प्रयोग जीव व्यापार करि, जीव-प्रदेश नों बंध॥
२. अथवा जीव-व्यापार करि, औदारिक जे आद।
बहु पुद्गल नों बंध ते, प्रयोग-बंध संवाद॥

१,२. से किं तं पयोगबन्धे?
पयोगबन्धे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
'पओगबन्धे' त्ति जीवव्यापारबन्धः स च जीवप्रदेशाना-मौदारिकादिकपुद्गलानां वा। (वृ० प० ३९८)

३. आदि-रहित अंत-रहित धुर, आदि-सहित अंत-रहित।
आदि-सहित अंत-सहित ए, तृतीय भंग कथित॥

३. अणादीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा अपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए।

*गोयम सांभलै रे। (ध्रुपदं)

४. तिहां जे आदि-रहित छै रे, अंत-रहित है जेह।
अठ मध्य जीव प्रदेश नों रे, बंध कह्यो छै तेह कै॥

४. तत्थ णं जे से अणादीए अपज्जवसिए से णं अट्ठण्हं जीवमज्झपएसाणं

५. असंख प्रदेशिक जीव नां, अष्ट जे मध्य प्रदेश।
तेहनों बंध अनादि है, अंत-रहित सुविशेष॥

५. अस्य किल जीवस्यासंख्येयप्रदेशिकस्याष्टौ ये मध्य-प्रदेशास्तेषामनादिरपर्यवसितो बन्धः (वृ० प० ३९८)

---

*लय : सीता सुन्दरी रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. जीव जिवारै लोक नैं, व्यापी नैं तिष्ठंत ।
तिण काले पिण बंध ए, तिणहिज रीत रहंत ।।
७. अठ प्रदेश विण अन्य जे, जीव-प्रदेश नों बंध ।
विपरिवर्त्तमानपणां थकी, अनादि-अनंत न संध ।।

८. तेहनी छै ए स्थापना, तल सम च्यार प्रदेश ।
तेहनें ऊपर पुण वलि, च्यार प्रदेश कहेस ।।

९. इम ए अष्ट प्रदेश है, इम समुदाय थकीज ।
आख्यं बंध आठू तणुं, सखर न्याय सलहीज ।।
१०. तास विषे एक एक जे, आत्म-प्रदेश संघात ।
बंध परस्पर जिता तणो, हुवै तास अवदात ।।
११. ते अठ जीव प्रदेश में, तीन-तीन नें ताम ।
इक इक साथै बंध ते, अनादि अनंत पाम ।।

## दूहा

१२. तल परतर प्रदेश चिउं, ऊपर चिहुं प्रदेश ।
इम अठ मध्य प्रदेश-बंध, बिहुं परतर सुविशेष ।।

१३. *ऊपरला परतर तणो, वांछित प्रदेश एक ।
बे प्रदेश पासे तसु, एक हेठलो देख ।।
१४. शेष ऊपरला तीन जे, इम त्रिण त्रिण बंधात ।
बे-बे पसवाड़ा तणां, इक-इक हेठलुं ख्यात ।।
१५. उपरला परतर तणो, इक प्रदेश न बंधाय ।
तल परतर नां तीन जे, प्रदेश बंध्या नांय ।।
१६. तल नां जे परतर तणो, इक प्रदेश न बंधाय ।
ऊपर परतर नां तीन जे, प्रदेश बंध्या नांय ।।
१७. परतर वलि जे हेठलो, तिण नां च्यार प्रदेश ।
इक-इक प्रदेश तेहनों, त्रिण-त्रिण साथ बंधेस ।।
१८. तल परतर नां जे बिहुं, पार्श्ववर्त्ति बे प्रदेश ।
इक ऊपरलो इम त्रिहुं, बंध्या छै सुविशेष ।।

## दूहा

१९. चूर्णिकार व्याख्यान ए, वृत्तिकार व्याख्यान ।
दुरवगम थी परहरचो, इम टीका में वान ।।

**वा०**—ते आठ जीव नां मध्य प्रदेश नैं विषे पिण तीन-तीन प्रदेश नों एक-एक प्रदेश संघाते बंध छै, ते आदि-रहित अंत-रहित बंध जाणवूं ।

हिवै जे जीव नां आठ मध्य प्रदेश नैं एक-एक प्रदेश संघाते अनेरा तीन-तीन

*लय : सीता सुन्दरी रे

६. यदाऽपि लोकं व्याप्य तिष्ठति जीवस्तदाऽप्यसौ तथैवेति । (वृ० प० ३९८)

७. अन्येषां पुनर्जीवप्रदेशानां विपरिवर्त्तमानत्वान्नास्त्यनादिरपर्यवसितो बन्धः (वृ० प० ३९८)

८. तत्स्थापना—

| | |
|---|---|
| ० | ० |
| ० | ० |

एतेषामुपर्यन्ये चत्वारः (वृ० प० ३९८)

९. एवमेतेऽष्टौ । एवं तावत्समुदायतोऽष्टानां बन्ध उक्तः । (वृ० प० ३९८)

१०. अथ तेष्वेकैकेनात्मप्रदेशेन सह यावतां परस्परेण संबन्धो भवति तद्दर्शनायाह— (वृ० प० ३९८)

११. तत्थ वि णं तिण्हं तिण्हं अणादीए अपज्जवसिए

१२. पूर्वोक्तप्रकारेणावस्थितानामष्टानाम् (वृ० प० ३९८)

१३,१४. उपरितनः प्रतरस्य यः कश्चिद्विवक्षितस्तस्य द्वौ पार्श्ववर्त्तिनावेकश्चाधोवर्त्ती (वृ० प० ३९८)

१५. शेषस्त्वेक उपरितनस्त्रयश्चाधस्तना न संबध्यन्ते व्यवहितत्वात् । (वृ० प० ३९८)

१६. एवमधस्तनप्रतरापेक्षयाऽपीति । (वृ० प० ३९८)

१९. चूर्णिकारव्याख्या, टीकाकारव्याख्या तु दुरवगमत्वात्परिहृतेति । (वृ० प० ३९८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश नों बंध किम हुइं, ते देखाड़े छै—च्यार प्रदेश नों ऊपरलो प्रतर, च्यार प्रदेश नों हेठलो प्रतर, तेहनी स्थापना मांडी ओलखणा। इम पूर्वोक्त प्रकार करिकै आठ प्रदेश रह्या, तेहनों ऊपरलो प्रतर च्यार प्रदेश नों छै। ते ऊपरला प्रतर मांहिला च्यार प्रदेशां मांहिलो मन मानै जिकोइ एक प्रदेश वांछियै। तेहनैं अन्य तीन प्रदेश नों बंध हुइं। ऊपरला प्रतर नां च्यार प्रदेश मांहिला दोय प्रदेश तो पसवाड़े रह्या तेहनुं बंध। अनै हेठला प्रतर नां च्यार प्रदेश मांहिलो एक प्रदेश हेठै रह्यो तेहनुं बंध छै। इम ऊपरला प्रतर में च्यार प्रदेश ते एक एक प्रदेश तीन-तीन प्रदेश साथे बंध्या छै। एक एक प्रदेश तो मूलगो अनै तेहनें साथे तीन प्रदेश बंध्या एवं च्यार थया। अनैं बाकी रह्या च्यार प्रदेश तिके ते प्रदेश साथे न बंध्या। एक एक तो ऊपरला प्रतर नों न बंध्यो, खूणे रह्यो ते माटै। अनै हेठला प्रतर नां तीन-तीन प्रदेश ते पिण न बंध्या। ए फर्शणा मात्र हुइं, पिण ए च्यारूं बंध्या नथी।

ए च्यार प्रदेश नों ऊपरला प्रतर नों लेखो कह्यो इमहिज च्यार प्रदेश नों हेठलूं प्रतर छै। तेहनों लेखो पिण कहै छै—जे हेठला च्यार प्रतर मांहिला च्यार प्रदेशां मांहिलो मन मानै जिको कोइ एक प्रदेश वांछियै। तेहनुं तीन-तीन प्रदेश नों बंध हुइं। जे हेठला प्रतर नां च्यार प्रदेश मांहिला जे दोय प्रदेश तो पसवाड़े रह्या, तेहनुं बंध। अनैं ऊपरला प्रतर नां च्यार प्रदेश मांहिला जे एक प्रदेश ऊपर रह्यो तेहनुं बंध छै। इम हेठला प्रतर में च्यार प्रदेश ते एक प्रदेश तीन प्रदेश साथे बंध्या छै। एक एक तो हेठला प्रतर नों प्रदेश अनैं तीन-तीन ऊपरला प्रतर नां प्रदेश, एवं च्यार न बंध्या।

२०. *आठ प्रदेश बिना जिके, अन्य प्रदेश नुं बंध।
आदि सहित सूत्रे कह्यू, जिन वच अमल अमंद॥

**वा०**—आदि-रहित अन्त-रहित प्रथम भांगो कह्यो अनै बीजो भांगो आदि रहित, अन्त-सहित ते इहां न संभवै। जीव नां आठ मध्य प्रदेश नो बंध ते आदि-रहित छै, अपरिवर्त्तमानपणै करी ते बंध नुं अंत-सहितपणुं न ऊपजै ते माटै बीजो भांगो न संभवै। हिवै तीजो भांगो आदि-सहित अंत-रहित उदाहरणे करी कहै छै—

२१. आदि-सहित अंत-रहित ते, सिद्ध नां जीव प्रदेश।
तसु बंध सादि अनंत छै, चलण अभाव विशेष॥

२२. देश नव्यासी एक सौ, ए पचावनमी ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल॥

२०. शेषाणां मध्यमाष्टाभ्योऽन्येषां सादिर्विपरिवर्त्तमानत्वात्। (वृ० प० ३६८)

**वा०**—एतेन प्रथमभङ्ग उदाहृतः, अनादिसपर्यवसित इत्ययं तु द्वितीयो भङ्ग इह न संभवति, अनादिसंबद्धानामष्टानां जीवप्रदेशानामपरिवर्त्तमानत्वेन बन्धस्य सपर्यवसितत्वानुपपत्तेरिति। अथ तृतीयो भङ्ग उदाह्रियते। (वृ० प० ३६८)

२१. सिद्धानां सादिरपर्यवसितो जीवप्रदेशबन्धः, शैलेश्यवस्थायां संस्थापितप्रदेशानां सिद्धत्वेऽपि चलनाभावादिति। (वृ० प० ३६८)

*लय : सीता सुन्दरी रे



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १५६

### दूहा

१. तिहां जे आदि-सहित है, अंत-सहित अवलोय ।
तेहनां च्यार प्रकार है, सांभलजो सहु कोय ॥

२. आलीण कीजै जिण करी, ते आलावण-बंध ।
जिम डोरी करि बांधियो, तृणादि बंध सुसंध ॥

३. एक द्रव्य अन्य द्रव्य करि, श्लेषादिक करि सोय ।
तास एकठा मेलवो, अल्लियावण-बंध होय ॥

४. समुद्घात कीधे छते, विस्तार्‌या छै जेह ।
तेहिज जीव प्रदेश नों, एकत्र करिवो तेह ॥

५. ते जीव प्रदेश संबंध नां, विशेष बंध थी संध ।
तैजस आदि शरीर नां, प्रदेश तणो संबंध ॥

वा०—अनेरा आचार्य कहै छै—शरीरी—जीव नो समुद्घात नैं विषे संकोचन छते शरीरी नो जे बंध, ते शरीरी बंध ।

६. जीव तणां व्यापार करि, औदारिकादिक बंध ।
तेहनां जे पुद्गल ग्रहै, शरीर-प्रयोग संध ॥

७. अथवा शरीर रूप ही, प्रयोग नुं जे बंध ।
शरीर-प्रयोग बंध ते, ए चोथो बंध संध ॥

*जिनेश्वर धिन-धिन आप रो नाण ।
संशय-तिमिर निवारवा जी जाणक ऊगो भाण । (ध्रुपद)

८. स्यूं आलावण-बंध छै जी ? भाखै जिन गुण-गेह ।
तृण-काष्ठक-भारो बांधियै जी, पत्र नुं भारो बांधेह ॥

९. अथवा भारो पलाल नों, वेत्रलता जल-वंश ।
तिण करिनें बांधै तिको, पूर्व भारो कहंस ॥

१०. वाग ते वल्क त्वचा करी, वरत्त चर्म नीं नाडि ।
सण प्रमुख नीं रासड़ी, तिण करि बांधै भारि ॥

---

१. तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिए से णं चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

२. आलावणबंधे
आलाप्यते—आलीनं क्रियत एभिरित्यालापनानि—रज्ज्वादीनि तैर्बन्धस्तृणादीनामालापनबंधः
(वृ० प० ३९८)

३. अल्लियावणबंधे
अल्लियावणं—द्रव्यस्य द्रव्यान्तरेण श्लेषादिनाऽऽलीनस्य यत्करणं तद्रूपो यो बन्धः स तथा, (वृ० प० ३९८)

४,५. सरीरबंधे
समुद्घाते सति यो विस्तारितसङ्कोचितजीवप्रदेश-सम्बन्धविशेषवशात्तैजसादिशरीरप्रदेशानां सम्बन्ध-विशेषः स शरीरबन्धः । (वृ० प० ३९८)
वा०—शरीरिबन्ध इत्यन्ये तत्र शरीरिणः समुद्घाते विक्षिप्तजीवप्रदेशानां सङ्कोचने यो बन्धः स शरीरिबन्ध इति (वृ० प० ३९८)

६. सरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।३५४)
शरीरस्य—औदारिकादेर्यः प्रयोगेण—वीर्यान्तिरायक्षयो-पशमादिजनितव्यापारेण बन्धः तद्पुद्गलोपादानम्
(वृ० प० ३९८)

७. शरीररूपस्य वा प्रयोगस्य यो बन्धः स शरीरप्रयोग-बन्धः । (वृ० प० ३९८)

८. से किं तं आलावणबंधे ?
आलावणबंधे—जण्णं तणभाराण वा, कट्ठभाराण वा, पत्तभाराण वा

९. पलालभाराण वा, वेत्तलता
वेत्रलता जलवंशकम्बा (वृ० प० ३९८)

१०. वाग-वरत्त-रज्जु-
'वाग' त्ति वल्कः वरत्रा—चर्म्ममयी रज्जुः—सनादिमयी (वृ० प० ३९८)

---

*लय : धिन भगवंत रो जी ज्ञान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. वल्ली त्रपुषी अर्कादि करि, कुश ते दर्भ निर्मूल।
दर्भ ते मूल सहित छै, तिण करि बांधै स्थूल॥
१२. आदि शब्द थी जाणवो, वस्त्रादिक थी बंधेह।
अन्तर्मुहूर्त्त जघन्य थी, उत्कृष्ट काल संखेह।
(मुनीश्वर ! आलावण-बंध एह।)
१३. स्यूं अल्लियावण-बंध छै ? जिन कहै च्यार प्रकार।
लेसणा उच्चय समुच्चय, साहणणा बंध धार॥

## दूहा

१४. श्लेष ढीला द्रव्ये करि, चूनादिक थी संध।
संबंध जे अन्य द्रव्य नों, तेह लेसणा-बंध॥
१५. ढिगलो बहु पुद्गल तणो, करवी ऊंची राश।
तेह रूप जे बंध ते, उच्चय-बंध विमास॥
१६. सम्यक् प्रकारे करि, विशेष ऊंची राश।
तेह रूप जें बंध ते, समुच्चय-बंध विमास॥
१७. बहु अवयव नो एकठो, करिवो जे संघात।
तेह रूप जे बंध ते, साहणणा-बंध थात॥

१८. *हिव स्यूं लेसणा-बंध छै ? तब भाखै जिनराय।
कूट कोट्टिम मणिभूमिका नों, थंभ प्रासाद नों ताय॥

१९. काष्ठ अनैं वलि चर्म नों, घट पट कट नों विशेष।
चूनां चिक्खल कादै करि, वज्र लेप ते सिलेस॥

२०. लाख अनैं वलि मैंण थी, आदि शब्द थो संध।
गूगल राल ढीला द्रव्य थी, ऊपजै लेसणा-बंध॥

२१. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्ट काल संख्यात।
लेसणा-बंध कह्यो तसु, वर जिन वयण विख्यात॥
२२. हिव स्यूं उच्चय-बंध छै ? जिन कहै जे तृण-राश।
राशि काष्ठ नैं पत्र नीं, तुस नीं राशि विमास॥
२३. वलि भुस-राशिज छाण नीं, गोबर कचरा नीं राश।
ऊंचो चिणवै करि ऊपजै, उच्चय-बंध प्रकाश॥

२४. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्टो अवलोय।
काल संख्यातो ते रहै, उच्चय-बंध ए होय॥

११,१२. वल्लि-कुस-दब्भमादीएहिं आलावणबंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं आलावणबंधे। (श० ८।३५५)
वल्ली—त्रपुष्यादिका कुशा—निर्मूलदर्भाः दर्भास्तु समूलाः आदिशब्दाच्चीवरादिग्रहः (वृ० प० ३९८)

१३. से किं तं अल्लियावणबंधे ?
अल्लियावणबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—लेसणा-बंधे, उच्चयबंधे, समुच्चयबंधे, साहणणाबंधे। (श० ८।३५६)

१४. 'लेसणाबंधे' त्ति श्लेषणा—श्लथद्रव्येण द्रव्ययोः संबन्धनं तद्रूपो यो बन्धः स तथा। (वृ० प० ३९८)
१५. उच्चयः—ऊर्ध्वं चयनं—राशीकरणं तद्रूपो बन्ध उच्चयबन्धः। (वृ० प० ३९९)
१६. सङ्गतः—उच्चयापेक्षया विशिष्टतर उच्चयः समुच्चयः स एव बन्धः समुच्चयबन्धः। (वृ० प० ३९९)
१७. संहननं—अवयवानां सङ्घातनं तद्रूपो यो बन्धः स संहननबन्धः। (वृ० प० ३९९)

१८. से किं तं लेसणाबंधे ?
लेसणाबंधे—जण्णं कुट्टाणं, कोट्टिमाणं, खंभाणं, पासायाणं,
'कुट्टिमाणं' ति मणिभूमिकानां। (वृ० प० ३९९)
१९. कट्ठाणं, चम्माणं, घडाणं, पडाणं, कडाणं छुहा-चिक्खल्ल-सिलेस-
श्लेषो—वज्रलेपः (वृ० प० ३९९)
२०. लक्ख-महुसित्थमाईएहिं लेसणएहिं बंधे समुप्पज्जइ।
आदिशब्दात् गुग्गुलरालाखल्यादिग्रहः। (वृ० प० ३९९)
२१. जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं लेसणाबंधे। (श० ८।३५७)
२२. से किं तं उच्चयबंधे ? उच्चयबंधे—जण्णं तणरासीण वा, कट्ठरासीण वा, पत्तरासीण वा, तुसरासीण वा,
२३. भुसरासीण वा, गोमयरासीण वा, अवगररासीण वा उच्चत्तेणं बंधे समुप्पज्जइ।
'अवगररासीण व' त्ति कचवरराशीनाम्। (वृ० प० ३९९)
२४. जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं उच्चयबंधे। (श० ८।३५८)

---
*लय : धिन भगवंत रो जो ज्ञान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. बंध समुच्चय स्यूं कह्यो ? जिन भाखै तसु भाव।
अगड सरोवर अणखण्यो, पाल सहित ते तलाव ॥

२६. नदी द्रह नें बावडी, पुक्खरणी कमलंत।
दीर्घिका नें गुंजालिका, सर वलि सर नीं पंत ॥

२७. पंक्ति वलि सर-सर तणी, वलि बिल-पंक्ती जाण।
देवकुल देहरो नें सभा, वलि पो—देवा नो स्थान ॥

२८. थूभ खाई परिहा वलि, गढ कोट ते प्राकार।
अट्टालग कहि बुरज नें, चरिय अनें वलि द्वार ॥

२९. गोपुर नें तोरण वलि, प्रासाद घर सामान।
शरण लेण पिण घर अछै, हाट-श्रेणि पहिछाण ॥

३०. संघाडा नें आकारै वलि, त्रिक चोक पंथ एह।
चच्चर बहु पंथ बहु गली, चोमुख स्थानक जेह ॥

३१. महापंथ ए आदि दे, छूहा ते चूनो पिछाण।
तिण करिनें ए बंधियै, वलि कर्दम करि जाण ॥

३२. सिलेस ते वज्र लेप थी, विशेष ऊंच करेह।
बंध ऊपजे बंध जुडै, समुच्चय-बंध कहेह ॥

३३. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्ट काल संख्यात।
समुच्चय-बंध कह्यो तसु, जगतारक जगनाथ ॥

३४. स्यूं साहणणा बंध छै ? जिन कहै द्विविध संध।
देश-साहणणा बंध कह्यो, सर्व-साहणणा बंध ॥

## दूहा

३५. देश करीनें देश नों, संहनन बंध संबंध।
देश-साहणणा बंध ते, शकट अंगादिक संध ॥

३६. सर्व करीनें सर्व नों, संहनन बंध संबंध।
सर्व-साहणणा बंध ते, क्षीर नीर जिम संध।

३७. *देश-साहणणा बंध स्यूं ? जिन कहै जेह पिछाण।
शकट गाडो नें रथ वलि, लघु गाडी ते जाण ॥

३८. जुग्ग प्रसिद्ध गोल देश में, ते दोय हस्त प्रमाण।
उपशोभित वेदिका करि, एह विशेष जंपान ॥

३९. गिल्लि अंबाडी गज तणी, थिल्लि तुरंग पिलाण।
अथवा अंबाड़ी ऊंट नीं, ते पिण थिल्लि पिछाण ॥

*लय : धिन भगवंत रो जी ज्ञान

२५. से किं तं समुच्चयबंधे ?
समुच्चयबंधे—जण्णं अगड-तडाग-

२६. नदी-दह-वावी-पुक्खरिणी-दीहियाणं, गुंजालियाणं, सराणं, सरपंतियाणं

२७. सरसरपंतियाणं, बिलपंतियाणं देवकुल-सभ-प्पव-

२८. थूभ-खाइयाणं, फरिहाणं, पागारट्टालग-चरिय-दार-

२९. गोपुर-तोरणाणं, पासाय-घर-सरण-लेण-आवणाणं,

३०. सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-

३१. महापह-पहमादीणं, छुहा-चिक्खल्ल-

३२. सिला-समुच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ

३३. जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सखेज्जं कालं। सेत्तं समुच्चयबंधे। (श० ८।३५९)

३४. से किं तं साहणणाबंधे ?
साहणणाबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देससाहणणाबंधे य, सव्वसाहणणाबंधे य। (श० ८।३६०)

३५. देशेन देशस्य संहननलक्षणो बन्धः—सम्बन्धः शकटाङ्गादीनामिवेति देशसंहननबन्धः।

३६. सर्वेण सर्वस्य संहननलक्षणो बन्धः—सम्बन्धः क्षीरनीरादीनामिवेति सर्वसंहननबन्धः। (वृ० प० ३९९)

३७. से किं तं देससाहणणाबंधे ?
देससाहणणाबंधे—जण्णं सगड-रह-जाण-
'सगड' त्ति गन्त्री 'रह' त्ति स्यन्दनः 'जाण' त्ति यानं—लघुगन्त्री। (वृ० प० ३९९)

३८. जुग्ग-
'जुग्ग' त्ति युग्यं गोल्लविषयप्रसिद्धं द्विहस्तप्रमाणं वेदिकोपशोभितं जम्पानं। (वृ० प० ३९९)

३९. गिल्लि-थिल्लि-
'गिल्लि' त्ति हस्तिन उपरि कोल्लरं यन्मानुषं गिलतीव 'थिल्लि' त्ति अड्डपल्लाणं। (वृ० प० ३९९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. शिविका कूट आकार छै, आच्छादित जंपान।
पुरुष प्रमाण जंपान नें, संदमाणी कहि जान ।।

४०. सीय-संदमाणी-
'सीय' त्ति शिबिका—कूटाकारेणाच्छादितो जम्पान-विशेषः 'संदमाणिय' त्ति पुरुषप्रमाणो जम्पानविशेषः। (वृ० प० ३९९)

४१. लोही ते मंडकादिक भणी, पचवा नों भाजन एह।
वलि कडाहा लोह नां, वलि कुड़छा छै जेह ।।

४१. लोही-लोहकडाह-कडुच्छुय-
'लोहि' त्ति मण्डकादिपचनभाजनं 'लोहकडाहे' त्ति भाजनविशेष एव 'कडुच्छुय' त्ति परिवेषणभाजनम् (वृ० प० ३९९)

४२. आसण शयन थंभा वलि, भंड माटी नों जन्य।
अमत्र भाजन विशेष छै, उपकरण तेहथी अन्य ।।
४३. ए सहु नां देशे करि, देश नुं बंध है ताय।
देश-साहणणा बंध ते, ऊपजै छै इम आय ।।

४२,४३. आसण-सयण-खंभ-भंडमत्तोवगरणमादीणं देससाहणणाबंधे समुप्पज्जइ।
'भंड' त्ति मृन्मयभाजनं 'मत्त' त्ति अमत्रं भाजन-विशेषः 'उवगरणत्ति' नानाप्रकारं तदन्योपकरणमिति। (वृ० प० ३९९)

४४. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त रहै, उत्कृष्ट काल संख्यात।
देश-साहणणा बंध ए, भाख्यो श्री जगनाथ ।।
४५. सर्व-साहणणा बंध स्यूं ? क्षीर नीर आदि देह।
सर्व-साहणणा-बंध कह्यूं, अल्लियावण-बंध एह ।।

४४. जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं देससाहणणाबंधे। (श० ८।३६१)
४५. से किं तं सव्वसाहणणाबंधे ?
सव्वसाहणणाबंधे—से णं खीरोदगमाईणं। से त्तं सव्वसाहणणाबंधे। ····सेत्तं अल्लियावणबंधे। (श० ८।३६२)

४६. हिवै स्यूं शरीर-बंध छै ? जिन कहै दुविध अमोघ।
पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय कह्यो, प्रत्यय वर्त्तमान-प्रयोग ।।

४६. से किं तं सरीरबंधे ?
सरीरबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुव्वपयोगपच्चइए य, पडुप्पन्नपयोगपच्चइए य। (श० ८।३६३)

**सोरठा**

४७. आसेवित प्राक्काल, प्रयोग जीव व्यापारमय।
वेदना कषाय न्हाल, आदि देई समुद्घात जे ।।
४८. प्रत्यय कारण तेह, जे शरीर-बंध नें विषे।
ते बंध भणी कहेह, पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय ।।
४९. बीखरिया प्रदेश, पाछो लेवो तेहनों।
बंध रचना सुविशेष, बंध कहीजै जेहनें ।।
५०. पूर्व काले जान, कदेइ जिण पाम्यो नथी।
ते कहियै वर्त्तमान, प्रयोग-प्रत्यय जे विषे ।।
५१. ते शरीर नो बंध, बीखरिया प्रदेश नों।
संहरवो फिर संध, समुद्घात केवल विषे ।।
५२. प्रयोग तसु व्यापार, प्रत्यय कारण जे विषे।
समय पंचमें सार, प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्यय ।।

४७. प्राक्कालासेवितः प्रयोगो—जीवव्यापारो वेदनाकषायादिसमुद्घातरूपः (वृ० प० ३९९)
४८. प्रत्ययः—कारणं यत्र शरीर बन्धे स तथा स एव पूर्वप्रयोगप्रत्ययिकः (वृ० प० ३९९)

५०-५२. प्रत्युत्पन्नः—अप्राप्तपूर्वो वर्त्तमान इत्यर्थः प्रयोगः—केवलिसमुद्घातलक्षणव्यापारः प्रत्ययो यत्र स तथा स एव प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिकः। (वृ० प० ३९९)

५३. *पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय किसुं ? जिन कहै नेरइया आदि।
संसार भव नें विषे रह्या, सर्व जीव नें लाधि ।।

५३. से किं तं पुव्वपयोगपच्चइए ?
पुव्वपयोगपच्चइए—जण्णं नेरइयाणं संसारत्थाणं सव्वजीवाणं

*लय : धिन भगवंत रो जी ज्ञान



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. तत्थ तत्थ कहितां तिहां-तिहां समुद्घात करै तास।
क्षेत्र नों बहुलपणों कह्यो, आधारभूत विमास ।।

५५. तेसु-तेसु इण शब्द थी, समुद्घात नों जाण।
कारण नों बहुलपणो कह्यो, अखिल न्याय दिल आण ।।

५६. तिहां तिहां क्षेत्र नैं विषे, ते ते कारण विषे न्हाल।
शरीर थी बाहिर काढ़िया, जीव प्रदेश विशाल ।।

५७. समुद्घाते करि बीखरचा, संकोचै जीव प्रदेश।
तसु बंध रचना ऊपजै, पूर्व-प्रयोग कहेस ।।

५८. ते जीव प्रदेशां नैं विषे, तेजस कार्मण शरीर।
तास प्रदेश नों बंध हुवै, ते ग्रहिवूं सुण धीर ।।

वा०—'जीवप्पदेसाणं बंधे समुप्पज्जइ' इहां जीव प्रदेश नों बन्ध ऊपजै, एहवुं पाठ कह्यु। पिण शरीर-बंध नां अधिकार थकी जीव प्रदेश नैं विषे रह्या तेजस कार्मण शरीर नां प्रदेश नों बंध कहिवूं, इहां शरीर-बंध नों अधिकार छै ते माटै। शरीर-बंध इण पक्षे तो समुद्घाते करि बीखरिया जीव नां प्रदेशां नैं संकोचै तिहां बंध उपजै, ते भणी जीव-प्रदेश नों बंध कह्यो। पिण जीव नां प्रदेशां नैं विषे तेजसादिक शरीर नों बंध छै, ते इहां ग्रहिवूं। शरीर बंध नों अधिकार छै, ते माटै ए पूर्व-प्रयोग-प्रत्यय शरीर बंध कह्यो।

५९. वर्त्तमान-प्रयोग-प्रत्यय किसो? जिन कहै केवली संत।
केवल समुद्घाते करि, सर्व लोक पूरंत ।।

६०. दंड कपाट नैं मंथ करी, अंतर पूरै सोय।
जीव प्रदेशां नैं चिउं समैं, विस्तारत सर्व लोय[1] ।।

६१. तठा पछै समुद्घात थी, निवर्त्तमानपणेह।
पंचम आदि समा विषे, किसै समय हुवै एह?

६२. पंचमा समय विषे तिको, अंतर प्रति संहरंत।
तेजस नैं कार्मण तणो, बंध तदा उपजंत ।।

६३. स्यूं कारण हेतू थकी? कहियै उत्तर तास।
समुद्घात थी केवली, निवर्त्त-काले जास ।।

६४. पोता नां जीव प्रदेश नों, एकपणुं अवलोय।
तेह संघात पाम्या हुई, पंचम समये होय ।।

६५. तेहनीं अनुवृत्ति करी, तेजस कार्मण दोय।
शरीर प्रदेश नों बंध तदा, उपजै छै अवलोय ।।

६६. शरीर-बंध अधिकार थी, तेजस कार्मण बंध।
उपजै इम कह्यो पाठ में, श्री जिन-वयण अमंद ।।

---

१. इस ढाल में गाथा ६० से ६८ तक कई गाथाएं वृत्ति के आधार पर रची गई हैं। फिर भी इनके सामने वृत्ति उद्धृत नहीं की गई है। इसका करण इन गाथाओं से आगे की वार्तिका में अविकल रूप से वृत्ति का वह अंश उद्धृत किया गया है।

५४. तत्थ तत्थ
'तत्थ तत्थ' त्ति अनेन समुद्घातकरणक्षेत्राणां बाहुल्य-माह— (वृ० प० ३९९)

५५. तेसु तेसु कारणेसु
'तेसु तेसु' त्ति अनेन समुद्घातकारणानां वेदनादीनां बाहुल्यमुक्तं। (वृ० प० ३९९)

५७. समोहण्णमाणाणं जीवप्पदेसाणं बंधे समुप्पज्जइ। सेत्तं पुव्वपयोगपच्चइए। (श० ८।३६४)
समुद्धन्यमानानां समुद्घातं शरीराद् बहिर्जीवप्रदेश-प्रक्षेपलक्षणं गच्छताम्। (वृ० प० ३९९)

वा०—'जीवपएसाणं' ति इह जीवप्रदेशानामित्युक्तावपि शरीरबन्धाधिकारात्तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इति न्यायेन जीवप्रदेशाश्रिततैजसकार्म्मणशरीरप्रदेशानामिति द्रष्टव्यं, शरीरिबन्ध इत्यत्र तु पक्षे समुद्घातेन विक्षिप्य सङ्कोचितानामुपसर्जनीकृततैजसादिशरीरप्रदेशानां जीवप्रदेशानामेवेति।
(वृ० प० ३९९)

५९. से किं तं पडुप्पन्नपयोगपच्चइए?
पडुप्पन्नपयोगपच्चइए—जण्णं केवलनाणिस्स अणगारस्स केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स

६१,६२. ताओ समुग्घायाओ पडिनियत्तमाणस्स अंतरा मंथे वट्टमाणस्स तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ।

६३. किं कारणं? ताहे से

६४. पएसा एगत्तीगया भवंति



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. यदपि छठादि समय विषे, तेजसादि बंध होय।
किण कारण ते नहिं कह्यो ? उत्तर आगल जोय॥
६८. अभूतपूर्वपणें करी, पंचम समयज होय।
षष्टम प्रमुख समय विषे, भूतपूर्वपणे जोय॥

**वा०**—वर्तमान-प्रयोग शरीर-बंध किणनें कहियै ? तेहनों उत्तर—केवल समुद्घाते करि प्रथम समय दंड, द्वितीय समय कपाट, तृतीय समय मंथकरण, चतुर्थे समय अंतरा पूरै। इण लक्षणे करि बिस्तरिया जीव रा प्रदेश छै। केवल समुद्घात थकी निवर्त्तमान छते तेह प्रदेशां नैं पाछा संहरै ते वर्तमान-प्रयोग-प्रत्यय शरीर-बंध हुई।

इहां शिष्य पूछै—स्वामी ! समुद्घात प्रति निवर्त्तमानपणुं तो पंचमादिक च्यारूं समय नैं विषे छै, तो ए वर्त्तमान-प्रयोग-प्रत्यय किसा समय नैं विषे हुई ? जद गुरु कहै—निवर्त्तन-क्रिया नैं मध्य पंचमें समये मंथ नैं विषे वर्त्तमान छै, ते समय वर्त्तमान प्रयोग-प्रत्यय शरीर-बंध हुई।

बलि शिष्य पूछै—स्वामी ! छठादिक समय नैं विषे पिण तेजसादिक शरीर संघात ऊपजै छै, तेणे समये किम न हुई ? गुरु कहै—अभूतपूर्वपणैं करि पंचम समय नैं विषेज ए बंध हुई, पंचमे समय नैं विषे तेजस कार्मण नो बंध थयो। तेहवो बंध गये काले कदेइ नथी थयो, ते भणी पंचमें समयेज ए बंध हुई, अनैं छठादिक समय नैं विषे भूतपूर्वपणैंज हुवैं। जे पंचम समय नैं विषे तेजस कार्मण शरीर नो बंध कियो, तेहिज छठादि समय नैं विषे होवैं, पिण अनेरो नहीं ते माटै।

'अंतरा मंथे वट्टमाणस्स तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ' एहवो पाठ कह्यो। मध्य मंथ नैं विषे वर्त्तमान नैं तेजस कार्मण ए बिहुं नो बंध कहितां संघात ऊपजै इत्यर्थः।

वलि शिष्य पूछै—स्यूं कारण थकी—स्यूं हेतु थकी ए बंध ऊपजै ? तिवारै गुरु कहै—तिवारै समुद्घात निवृत्ति काल नैं विषे ते केवली नां जीव नां प्रदेश एकपणुं पाम्यां—संघात पाम्या हुई ते जीव प्रदेशां नीं अनुवृत्ति करकै तैजसादिक शरीर प्रदेश नों बंध ऊपजै 'तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ'। तेजस कार्मण ते जीव नां प्रदेश विषे रह्या छै। ते तेजस कार्मण शरीर तेहनो बंध ऊपजै, इसो बखाण करिवो।

शरीर-बंध इति अत्र पक्षे 'तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ' तेजस कार्मण आश्रय-भूतपणां थकी तेजस कार्मण शरीर वाला जीव नां प्रदेश, तेहनों बंध ऊपजै, इम कहिवो।

**वा०**—केवलिसमुद्घातेन दण्डकपाटमथिकरणान्तर-पूरणलक्षणेन 'समुपहतस्य' विस्तारितजीवप्रदेशस्य 'ततः' समुद्घातात् प्रतिनिवर्त्तमानस्य प्रदेशान् संहरतः,

समुद्घातप्रतिनिवर्त्तमानत्वं च पञ्चमादिष्वनेकेषु समयेषु स्यादित्यतो विशेषमाह—'अन्तरामंथे वट्टमाणस्स' त्ति निवर्त्तनक्रियाया अन्तरे—मध्येऽवस्थितस्य पञ्चमसमय इत्यर्थः।

यद्यपि च षष्ठादिसमयेषु तैजसादिशरीरसङ्घातः समुत्पद्यते तथाऽप्यभूतपूर्वतया पञ्चमसमय एवासौ भवति शेषेषु तु भूतपूर्वतयैवेतिकृत्वा।

'अन्तरामंथे वट्टमाणस्से' त्युक्तमिति 'तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ' त्ति तैजसकार्मणयोः शरीरयोः 'बन्धः' सङ्घातः समुत्पद्यते।

'किं कारणं' कुतो हेतोः ? उच्यते—'ताहे' त्ति तदा समुद्घातनिवृत्तिकाले 'से' त्ति तस्य केवलिनः 'प्रदेशाः' जीवप्रदेशाः 'एगत्तीगय' त्ति एकत्वं गताः—संघातमापन्ना भवंति, तदनुवृत्त्या च तैजसादिशरीरप्रदेशानां बन्धः समुत्पद्यत इति प्रकृतम्।

शरीरिबन्ध इत्यत्र तु पक्षे 'तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ' त्ति तैजसकार्मणाश्रयभूतत्वात्तैजसकार्मणाः शरीरिप्रदेशास्तेषां बन्धः समुत्पद्यत इति व्याख्येयम्।

(वृ० प० ३९९,४००)

६९. वर्त्तमान-प्रयोग ए बंध कह्यो, शरीर-बंध कहेस।
आठमा शतक नों आखियो, नवम उदेशक देश॥
७०. एक सौ छप्पनमीं कही, ढाल विशाल उदार।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' संपति सार॥

६९. सेत्तं पडुप्पन्नपयोगपच्चइए। सेत्तं सरीरबंधे।

(श० ८।३६५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १५७

### दूहा

१. हिव स्यूं शरीर-प्रयोग बंध ? शरीर औदारिकादि ।
तसु प्रयोग जीव व्यापार थी, बंध हुवै अविवादि ।।
२. जिन कहै शरीर-प्रयोग-बंध, पंच प्रकारे जाण ।
औदारिक-शरीर जे, प्रयोग-बंध पिछाण ।।
३. वैक्रिय नैं आहारक वलि, तेजस कार्मण ताय ।
शरीर-प्रयोग-बंध ए, सर्व ठाम कहिवाय ।।
४. औदारिक तनु प्रयोग-बंध, कितै प्रकार कहाय ?
जिन कहै पंच प्रकार ते, सांभलजे चित ल्याय ।।

५. एकेंद्री बे० ते० चउ०, पंचेंद्रिय पिछाण ।
औदारिक-तनु-प्रयोग बंध, सहु ठामे वच जाण ।।

६. एकेंद्री औदारिक तनु-प्रयोग-बंध विचार ।
कितै प्रकार कह्यो प्रभु ? जिन कहै पंच प्रकार ।।

७. पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, इण आलावे जाण ।
भेद औदारिक तनु तणां, पद अवगाहण संठाण ।।

८. तिम इहां पिण कहिवा सहु, जाव पर्याप्त जेह ।
गर्भज मनु पंचेंद्रिय, औदारिक तनु तेह ।।
९. अपर्याप्ता गर्भज नां, मनुष्य पंचेंद्री जान ।
तसु औदारिक तनु तणो, प्रयोग-बंध पिछान ।।

*गुणगेहा गुणिजन ! प्रभु वचन-रस पीजियै ।। (ध्रुपदं)

१०. औदारिकादि तनु प्रयोग-बंध प्रभु !
किण कर्म उदय करि ह्योयो ए ?
जिन कहै वीर्य-अंतराय-क्षयादिक,
शक्ति लहो अवलोयो ए ।।
११. ते वीर्य जोग सहित वर्त्तै छै,
जोग मन वच काया नां जाणी ।
वीर्य सजोग कह्यो तिण कारण,
ए प्रथम बोल पहिछाणी ।।
१२. छै बहु द्रव्य तथाविध पुद्गल, जे जीव रै ताह्यो ।
ते माटै सद्द्रव्य कह्या छै, ए द्वितीय बोल कहिवायो ।।

*लय : सस्नेहा भवियण परम नाण खप कीजिए

१. से किं तं सरीरप्पयोगबंधे ?

२,३. सरीरप्पयोगबंधे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओरालियसरीरप्पयोगबंधे, वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे, आहारगसरीरप्पयोगबंधे, तेयासरीरप्पयोगबंधे, कम्मासरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।३६६)

४. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ;
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

५. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे, बेइंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे जाव पंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।३६७)

६. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

७. पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे एवं एएणं अभिलावेणं भेदो जहा ओगाहणसंठाणे ओरालियसरीरस्स

८. तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्तागब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे य,

९. अप्पज्जत्तागब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे य । (श० ८।३६८)

१०. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
गोयमा ! वीरिय-

११. सजोग-

१२. सद्दव्वयाए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## दूहा

१३. जीव सवीर्यपणै करी, सजोगपणां करि धार।
सद्द्रव्यपणैं करि वलि, एम कह्या वृत्तिकार ।।

१४. प्रथम वीर्य सजोग ते, सद्द्रव्य करिकै ताय।
अर्थ धर्मसी इम कियो, ए बिहुं बोल कहाय ।।

१५. *तथा प्रमाद-प्रत्यय कारण करि, वलि कर्म करि कहियै।
एकेंद्री जाति प्रमुख कर्म ते, उदयवर्त्ति संग्रहियै ।।

१६. जोगं च कहितां जोग कायादिक, वलि भव तिर्यंचादि।
वलि आउखो तिर्यंचादिक नों, उदयवर्ति इम लाधि[1] ।।

१७. ए वीर्य सजोग प्रमुख पद आश्री, औदारिक तनु ताह्यो।
प्रयोग नाम कर्म उदय करीनैं, औदारिक-तनु-प्रयोग बंधायो ।।

वा०—वीर्य ते वीर्यांतराय क्षयादिके कीधी शक्ति, योग ते मन प्रमुख योग, ते सहित वर्त्तै ते सयोग कहियै सद्—विद्यमान, द्रव्य तथाविध पुद्गल जेह जीव नैं तेह सद्द्रव्य कहियै। वीर्य-प्रधान सयोग ते वीर्य सयोग, तेहिज जे सद्द्रव्य तेहनों भाव तिणै करी। एतलै सवीर्यपणैं सजोगपणैं सद्द्रव्यपणैं जीव नैं। तथा 'पमादपच्चय' त्ति प्रमाद-प्रत्यय थकी, प्रमाद लक्षण कारण थकी। 'कम्मं च' त्ति—कर्म ते एकेंद्रिय जात्यादिक उदयवर्त्ति। 'जोगं च' त्ति—जोग ते कायजोगादिक। 'भवं च' त्ति—भव ते तिर्यंच भवादिक अनुभूयमान। 'आउयं च' त्ति—आउखो ते तिर्यंच आयुषादिक उदयवर्त्ति। पडुच्च आश्रयी नैं 'ओरालिय' त्ति—औदारिक शरीर प्रयोग संपादक जे नाम ते औदारिक शरीर प्रयोग नाम, ते कर्म नां उदय करीनैं औदारिक शरीर प्रयोग नाम। ते कर्म नां उदय करीनैं औदारिक शरीर-प्रयोग-बंध हुइं, इति शेष।

ए पूर्वे कह्या ते सवीर्य सजोग सद्द्रव्यतादिक पद औदारिक शरीर प्रयोग नाम कर्म उदय नां विशेषणपणैं वखाणवा।

एतलै जीव नैं सवीर्यपणैं सजोगपणैं सद्द्रव्यपणैं तथाविध औदारिक शरीर प्रयोग पुद्गल नैं हेतुभूतपणैं करि तथा प्रमाद-प्रत्यय तथा कर्म एकेंद्रिय जात्यादिक उदयवर्त्ति, जोग काया-जोगादिक, भव तिर्यंचादिक, अनुभूयमान ते भोगवतां छतां, आउखो तिर्यंच आउखादिक उदयवर्त्ति, एतलां नैं आश्रयी नैं औदारिक शरीर प्रयोग-बंध ऊपजै।

वीर्यसयोग सद्द्रव्यता कारणभूत है जेहने विषे, एहवो विवक्षित कर्मोदय इत्यादि प्रकार थी अथवा औदारिक-शरीर प्रयोग बन्ध में ते स्वतंत्र रूप में कारणभूत वर्णै तिहां मूल प्रश्न तो औदारिक शरीर प्रयोग बन्ध किण कर्म नां उदय थी हुवै? ए छै।

१५. पमादपच्चया कम्मं च

१६. जोगं च भवं च आउयं च

१७. पडुच्च ओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएणं ओरालियसरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।३६६)

वा०—'वीरियसजोगसद्दव्वयाए' त्ति वीर्यं—वीर्यान्तरायक्षयादिकृता शक्तिः योगाः—मनःप्रभृतयः सह योगैर्वर्त्तत इति सयोगः सन्ति—विद्यमानानि द्रव्याणि—तथाविधपुद्गला यस्य जीवस्यासौ सद्द्रव्यः वीर्यप्रधानः सयोगो वीर्यसयोगः स चासौ सद्द्रव्यश्चेति विग्रहस्तद्भावस्तत्ता तया वीर्यसयोगसद्द्रव्यतया, सवीर्यतया सयोगतया सद्द्रव्यतया जीवस्य, तथा 'पमायपच्चय' त्ति 'प्रमाद-प्रत्ययात्' प्रमादलक्षणकारणात् तथा 'कम्मं च' त्ति कर्म्म च एकेन्द्रिय-जात्यादिकमुदयवर्त्ति, 'जोगं च' त्ति 'योगं च' काययोगादिकं' 'भवं च' त्ति 'भवं च' तिर्यग्भवादिकमनुभूयमानम् 'आउयं च' त्ति 'आयुष्कं च' तिर्यगायुष्काद्युदयवर्त्ति 'पडुच्च' त्ति 'प्रतीत्य' आश्रित्य 'ओरालिए' त्यादि औदारिकशरीरप्रयोगसम्पादकं व तदौदारिकशरीरप्रयोगनाम तस्य कर्म्मण उदयेनौदारिकशरीरप्रयोगबन्धो भवतीति शेषः,

एतानि च वीर्यसयोगसद्द्रव्यतादीनि पदान्यौदारिकशरीरप्रयोगनामकर्मोदयस्य विशेषणतया व्याख्येयानि।

वीर्यसयोगसद्द्रव्यतया हेतुभूतया यो विवक्षितकर्मोदयस्तेनेत्यादिना प्रकारेण, स्वतंत्राणि वैतान्यौदारिकशरीरप्रयोगबन्धस्य कारणानि, तत्र च पक्षे यदौदारिक-

*लय : सस्नेहा भवियण! परम नाण खप कीजियै

१. इस ढाल में गाथा ११ से १६ तक प्रायः गाथाओं में मूल पाठ का विस्तार वृत्ति के आधार पर किया गया है, किन्तु वृत्ति का वह अंश यहां उद्धृत नहीं किया गया है। इसका कारण इन गाथाओं से आगे वार्तिका में उस अंश को अविकल रूप से उद्धृत कर दिया गया है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनैं उत्तर में अन्यान्य अनेक कारणां नो अभिधान करैं छै, ए किम ? विवक्षित कर्मोदय अैं सहकारी कारणरूप गिणाय छै। इण अपेक्षा थीज ते कारणां नां अभिधान किया छै।

अनैं धर्मसी एहवूं कह्यु—वीर्य, सजोग, सद्द्रव्यपणैं करिनैं, प्रमाद-प्रत्यय करि, कर्म, जोग, अनैं आउखा नैं आश्रयी नैं औदारिक प्रयोग शरीर नाम कर्म नैं उदय करी ए सर्व अपर्याप्त वेलाइं जाणवूं। तेणें समय औदारिक शरीर-बांधै, पांच क्रिया लागै छै। पांच शरीर बांधतां पांच क्रिया लागैं, इम धर्मसी कह्यो इत्यर्थः।

१८. एकेंद्री औदारिक तनु प्रयोग-बंध, किण कर्म उदै प्रभु ! ह्योयो ?
जिन कहै एवं चेव इमज ए, पूरववत अवलोयो॥

वा०—इहां एकेंद्री सूत्र नैं पूर्व सूत्र सरिखु कह्यु, तो पिण इहां पुच्छा में—एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

इम एकेंन्द्री को नाम लेइ औदारिक शरीर नीं पूछा कीधी, ते भणी उत्तर में पिण एकेंद्री नों नाम कह्यु—'एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे' इसो कहिवो। एकेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध नां अधिकार थकी। इम आगल पिण विचार कहिवो।

१९. पृथ्वीकाय एकेंद्री औदारिक-तनु प्रयोग इम लेवूं।
एवं जाव वनस्पतिकाइया, बे० ते० चउरिंद्री इम कहेवूं॥

२०. हे प्रभुजी ! तिर्यंच-पंचेंद्री औदारिक तनु लेवो।
प्रयोग-बंध किण कर्म उदय करि ? जिन कहै एवं चेवो॥

२१. हे प्रभु ! मनुष्य-पचेंद्री औदारिक-शरीर प्रयोग-बंध जाणी।
किसा कर्म नें उदय करि नें ? हिव जिन भाखै वाणी॥

२२. वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणें करि, प्रमाद-प्रत्यय कहायो।
जाव मनुष्य आउखो उदयवर्त्ति, ते आश्रयी नैं ताह्यो॥

२३. मनुष्य पंचेंद्री औदारिक तनु, प्रयोग संपादक जेहो।
संपादक उपजावणहारा, ते नामकर्म उदय करि एहो॥

२४. मनुष्य-पंचेंद्रिय औदारिक-तनु, प्रयोग-बंध इम होयो।
तास विशेष अर्थ पूर्व वखाण्यो, तिम इहां पिण अवलोयो॥

२५. अंक नव्यासी नुं देश कह्यु ए, इकसौ सतावनमीं ढालो।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमालो।

शरीरप्रयोगबन्धः कस्य कर्म्मण उदयेन ? इति पृष्टे यदन्यान्यपि कारणान्यभिधीयन्ते तद्विवक्षितकर्मोदयः।
(वृ० प० ३७८)

१८. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ? एवं चेव।

१९. पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे एवं चेव, एवं जाव वणस्सइकाइया। एवं बेइंदिया, एवं तेइंदिया, एवं चउरिंदिया। (श० ८।३७०)

२०. तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ? एवं चेव।
(श० ८।३७१)

२१. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

२२. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमादपच्चया जाव (सं० पा०) आउयं च पडुच्च

२३. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएणं

२४. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे।
(श० ८।३७२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १५८

### दूहा

१. हिव पांचूंइ शरीर नां, देश-बंध सर्व-बंध।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दे जिनचंद ॥

२. हे प्रभु ! औदारिक तनु-प्रयोग-बंध पिछाण।
देश-बंध स्यूं एह छै ? तथा सर्व-बंध जाण ?

२. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ?

३. जिन भाखै सुण गोयमा ! देश-बंध पिण होय।
सर्व-बंध पिण जे हुइ, न्याय तास इम जोय ॥

३. गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि। (श० ८।३७३)

४. तेल तपायो तेहनीं, भरी कडाही मांहि।
तिण मांहै ते पूड़लो, प्रथम प्रक्षेपे ताहि ॥

४. तत्र यथाऽपूपः स्नेहभृततप्ततापिकायां प्रक्षिप्तः। (वृ० प० ४००)

५. तेल ग्रहै पहिलै समय, पिण मूकै नवि कोय।
पूर्व तेल ग्रह्यो नहीं, ते माटै अवलोय ॥

५. प्रथमसमये घृतादि गृह्णात्येव (वृ० प० ४००)

६. बीजी तीजी वार वलि, शेष समय घालेह।
नवो तेल ग्रहै पूड़लो, पूर्व ग्रह्यो मूकेह ॥

६. शेषेषु तु समयेषु गृह्णाति विसृजति च। (वृ० प० ४००)

७. इण रीते ए जीवड़ो, पूर्व भव नुं तेह ॥
छांडी नें अन्य भव तणो, प्रथम शरीर बंधेह ॥

८. उत्पत्ति स्थानक नें विषे, शरीर अर्थे सोय।
प्रथम समय पुद्गल ग्रहै, सर्व बंध ए होय ॥

७,८. एवमयं जीवो यदा प्राक्तनं शरीरकं विहायान्यद्-गृह्णाति तदा प्रथमसमये उत्पत्तिस्थानगतान् शरीर-प्रायोग्यपुद्गलान् गृह्णात्येवेत्ययं सर्वबन्धः। (वृ० प० ४००)

९. द्वितीय आदि जे समय में, पुद्गल ग्रहै मूकंत।
देश-बंध तिणनें कह्यो, पूवा नै दृष्टंत ॥

९. ततो द्वितीयादिषु समयेषु तान् गृह्णाति विसृजति चेत्येवं देशबन्धः। (वृ० प० ४००)

***जय जय ज्ञान जिनेन्द्र नों ॥ (ध्रुपदं)**

१०. हे भगवंत ! एकेंद्रिय औदारिक हो तनु-प्रयोग-बंध।
स्यूं देस-बंध सर्व-बंध छै ?
हिव जिन भाखै हो एवं उभय कहंद ॥

१०. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ? एवं चेव।

११. इमहिज पृथ्वीकाइया, जाव मनुष्य लग हो दस दंडक जोय।
जेह औदारिक तनु तणां, देशबंध पिण हो सर्व-बंध पिण होय ॥

११. एवं पुढविक्काइया एवं जाव— (श० ८।३७४)
मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ?
गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि। (श० ८।३७५)

१२. हे प्रभु ! औदारिक-तनु-प्रयोग-बंध हो काल थकी सुविचार।
केतलो काल अछै तसु ? जिन भाखै हो हिव उत्तर सार ॥

१२. ओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

१३. सर्व-बंध एक समय ते, देश-बंध हो जघन्य समयो एक।
उत्कृष्ट तीन पल्योपम, समय ऊणो हो कहीजै सुविशेख ॥

१३. गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं। (श० ८।३७६)

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

१४. सर्व-बंध ए तास, एक समय आख्यो अछै ।
पूवा दृष्टांत जास, प्रथम समय ते सर्व बंध ॥
१५. देश-बंध अवलोय, एक समय नों जघन्य थी ।
तास न्याय इम होय, चित्त लगाई सांभलो ॥
१६. वाऊकाय जिवार, मनुष्य तिरि पंचेंद्रिय ।
वैक्रिय करी तिवार, ते तनु छांडी नें वलि ॥
१७. औदारिक नुं तेह, सर्व-बंध इक समय करि ।
वलि तेहनुं इम लेह, देश-बंध करतो छतो ॥
१८. समय रही मृत्यु पाय, तदा जघन्य थी समय इक ।
देश-बंध कहिवाय, औदारीक शरीर नों ॥
१९. समय ऊण पल्य तीन, देश-बंध उत्कृष्ट स्थिति ।
औदारिक नीं चीन, तास न्याय इम सांभलो ॥
२०. औदारिक नीं जोय, उत्कृष्ट स्थिति पल्य तीन नीं ।
तास विषे अवलोय, सर्व-बंध पहिलै समय ॥

२१. ते माटै इम न्हाल, समय ऊण पल्य तीन जे ।
देश-बंध नो काल, उत्कृष्ट औदारिक तणो ॥

२२. *एकेंद्रिय औदारिक तणो,
प्रयोग-बंध हो प्रभु ! काल थी संध ।
केतलो काल हुवै अछै, जिन भाखै हो एक समय सर्व-बंध ॥
२३. देश-बंध ते जघन्य थी, तसु कहियै हो एक समय सुविचार ।
उत्कृष्ट काल इतो हुवै, समय ऊणो हो वर्ष बावीस हजार ॥

## सोरठा

२४. जघन्य समय इक केम, वायू औदारिक जिको ।
वैक्रिय करि फुन तेम, औदारिक पडिवज्जतां ॥

२५. सर्व-बंध थइ तेह, देश-बंध इक समय रहि ।
मरण लह्यां थी एह, देश-बंध पिण इक समय ॥
२६. उत्कृष्ट सहस्र बावीस, प्रथम समय में सर्व-बंध ।
शेष समय सुजगीस, देश-बंध पृथ्वीपणें ॥

२७. *पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, औदारिक तनु हो कितो काल रहै एह ?
श्री जिन भाखै गोयमा ! सर्व-बंध हो एक समय रहेह ॥
२८. देश-बंध ते जघन्य थी, खुड्डाग भव हो त्रि समयूण विचार ।
उत्कृष्ट थी रहै एतलुं, समय ऊणो हो वर्ष बावीस हजार ॥

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१४. 'सव्वबंधं एक्कं समयं' ति अपूपदृष्टान्तेनैव तत्सर्व-बन्धकस्यैकसमयत्वादिति । (वृ० प० ४००)
१५. 'देसबंधे' इत्यादि, (वृ० प० ४००)

१६. तत्र यदा वायुर्मनुष्यादिर्वा वैक्रियं कृत्वा विहाय च । (वृ० प० ४००)
१७,१८. पुनरौदारिकस्य समयमेकं सर्वबन्धं कृत्वा पुनस्तस्य देशबन्धं कुर्वन्नेकसमयानन्तरं म्रियते तदा जघन्यत एकं समयं देशबन्धोऽस्य भवतीति । (वृ० प० ४००)

१९. 'उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं समयऊणाइं' ति कथं ? (वृ० प० ४००)
२०. यस्मादौदारिकशरीरिणां त्रीणि पल्योपमान्युत्कर्षतः स्थितिः, तेषु च प्रथमसमये सर्वबन्धकः इति । (वृ० प० ४००)
२१. समयन्यूनानि त्रीणि पल्योपमान्युत्कर्षत औदारिक-शरीरिणां देशबन्धकालो भवति । (वृ० प० ४००)
२२. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं
२३. देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयूणाइं । (श० ८।३७७)

२४. 'देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं' ति कथं ? वायुरौदा-रिकशरीरी वैक्रियं गतः पुनरौदारिकप्रतिपत्तौ (वृ० प० ४००)
२५. सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धकश्चैकं समयं भूत्वा मृतः इत्येवमिति, (वृ० प० ४००)
२६. एकेन्द्रियाणामुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि स्थिति-स्तत्रासौ प्रथमसमये सर्वबन्धकः शेषकालं देशबन्धः । (वृ० प० ४००)
२७. पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा ।
गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं,
२८. देसबंधे जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयूणाइं ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

२९. बे सौ छप्पन जाण, इतली आवलिका तणो।
खुड्डाग भव पहिछाण, अल्प आउखो एह छै ।।

३०. पैंसठ सहस्र सुजोय, वली पंच सय तीस षट।
खुड्डाग भव ए होय, अंतर्मुहूर्त्त नैं मभै ।।

३१. उस्वास निःस्वास मांय, जाभा सतरै क्षुल्लक भव।
तास अंश कहिवाय, तेरसौ पंचाणूंए ।।

वा०—इहां उक्त लक्षण 'पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस' एक मुहूर्त्त गत क्षुल्लक-भव ग्रहण-राशि नैं ३७७३ एक मुहूर्त्तगत उस्वास-राशि नों भाग दीधां जेतला आवै, तेतला एक उस्वास में क्षुल्लक भव हुवै अनैं शेष रहै ते अंश राशि हुवै।

इहां ए अभिप्राय—६५५३६ नैं ३७७३ नों भाग दीधां १७ तो पूर्ण आवै अनै अठारमां नां १३९५ अंश रहै। तिण कारण एक श्वासोश्वास में १७ भव भाभेरा कहियै।

तिहां जे ए पृथ्वीकायिक तीन समय विग्रहे करी आयो, ते त्रीजे समये सर्व बन्धक शेष नैं विषे देश-बन्ध थइ नैं क्षुल्लक भव ग्रहण अभिव्यापी मूओ थको अविग्रहे करी आव्यो जिवारै, तिवारै सर्व बन्धक ईज हुइं। इम जे विग्रह समय तीन ते ऊणो क्षुल्लक कहियै।

३२. तिहां थी पृथ्वीकाय, तीन समय विग्रह करी।
आयो तास कहाय, तीजे समये सर्व-बंध ।।
३३. शेष समय रै मांय, देश-बंध भव क्षुलक में।
मूओ थको कहिवाय, त्रिसमयूणज क्षुलक भव ।।
३४. बावीस सहस्र सुसंध, उत्कृष्ट स्थिति पृथ्वी तणो।
प्रथम समय सर्व-बंध, शेष समय छै देश-बंध ।।
३५. देश-बंध इण न्याय, वर्ष बावीस हजार ते।
समय ऊण कहिवाय, पृथ्वीकाय तणोज ए ।।

३६. *सर्व विषे सर्व बंध, इम कहियै हो इक समय प्रमाण।
देश बंध नों अर्थ ए, हिव आगल हो सुणज्यो बखाण ।।
३७. वैक्रिय शरीर जेहनें नहीं, अप तेउ हो वनस्पति विकलिंद।
तास औदारिक तनु तणो,
प्रयोग-बंध हो तेहनीं स्थिति कथिंद ।।

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

२९. दोन्नि सयाइं नियमा छप्पन्नाइं पमाणओ होंति।
आवलियपमाणेणं खुड्डागभवग्गहणमेयं ।।
(वृ० प० ४००)

३०. पणसट्ठि सहस्साइं पंचेव सयाइं तह य छत्तीसा।
खुड्डागभवग्गहणा हवंति अंतोमुहुत्तेणं ।।
(वृ० प० ४००)

३१. सत्तरस भवग्गहणा खुड्डागा हुंति आणुपाणंमि।
तेरस चेव सयाइं पंचाणउयाइं अंसाणं ।।
(वृ० प० ४००, ४०१)

वा०—इहोक्तलक्षणस्य ६५५३६ मुहूर्त्तगतक्षुल्लकभव-ग्रहणराशेः सहस्रत्रय-शतसप्तकत्रिसप्ततिलक्षणेन ३७७३ मुहूर्त्तगतोच्छ्वासराशिना भागे हृते यल्लभ्यते तदेकत्रोच्छ्वासे क्षुल्लकभवग्रहणपरिमाणं भवति, तच्च सप्तदशः, अवशिष्टस्तूक्तलक्षणोऽशराशिर्भवतीति,

अयमभिप्रायः—येषामंशानां त्रिभिः सहस्रैः सप्तभिश्च त्रिसप्तत्यधिकशतैः क्षुल्लकभवग्रहणं भवति तेषामंशानां पञ्चनवत्यधिकानि त्रयोदशशतानि अष्टादशस्यापि क्षुल्लकभवग्रहणस्य तत्र भवन्तीति।

तत्र यः पृथिवीकायिकस्त्रिसमयेन विग्रहेणागतः स तृतीयसमये सर्वबन्धकः शेषेषु देशबन्धको भूत्वा आक्षुल्लकभवग्रहणं मृतः, मृतश्च सन्नविग्रहेणागतो यदा तदा सर्वबन्धक एव भवतीति, एवं च ये ते विग्रहसमयास्त्रयस्तैरूनं क्षुल्लकमित्युच्यते।
(वृ० प० ४०१)

३६. एवं सव्वेसिं सव्वबंधो एक्कं समयं,

३७,३८. देसबंधो जेसिं नत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं जा सा ठिती सा समयूणा कायव्वा,
अयमर्थः—अप्तेजोवनस्पतिद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. इहां सहु नों देश-बंध ते,
जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणी समया तीन।
उत्कृष्ट थी जे यां तणी,
स्थिति उत्कृष्टी हो समय ऊण सुचीन।।

क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं जघन्यतो देशबन्धो यतस्तेषां वैक्रियशरीरं नास्ति, वैक्रियशरीरे हि सत्येकसमयो जघन्यतः औदारिकदेशबन्धः पूर्वोक्तयुक्त्या स्यादिति। (वृ० प० ४०१)

**सोरठा**

३९. अप वर्ष सात हजार, तेउ नीं त्रिण दिवस निशि।
वनस्पती नीं धार, उत्कृष्ट स्थिति दश सहस्र वर्ष।।

३९. तत्रापां वर्षसहस्राणि सप्तोत्कर्षतः स्थितिः, तेजसामहोरात्राणि त्रीणि, वनस्पतीनां वर्षसहस्राणि दश, (वृ० प० ४०१)

४०. बेंद्री द्वादश वास, तेंद्री गुणपच्चास दिन।
चउरिंद्री षट मास, ए उत्कृष्टी स्थिति कही।।

४०. द्वीन्द्रियाणां द्वादशवर्षाणि त्रीन्द्रियाणामेकोनपञ्चाशदहोरात्राणि चतुरिन्द्रियाणां षण्मासाः। (वृ० प० ४०१)

४१. एक समय सर्व-बंध, तेह समय करि ऊण जे।
देश-बंध स्थिति संध, ए उत्कृष्टपणें करी।।

४१. तत एषां सर्वबन्धसमयोना उत्कृष्टतो देशबन्धस्थितिर्भवतीति (वृ० प० ४०१)

४२. *वलि जसु वैक्रिय तनु अछै, वाउकाय नै हो पंचेंद्री तिर्यंच।
मनुष्य तणें वैक्रिय वलि, जघन्य देश बंध हो समय एक सुसंच।।

४२. जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं देसबंधो जहण्णेणं एक्कं समयं,
ते च वायवः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च, (वृ० प० ४०१)

**सोरठा**

४३. वैक्रिय करिनैं ताय, वायु तिरि पं० मनुष्य ए।
औदारिक में आय, सर्व बंध पहिलै समय।।
४४. वलि इक समय विचार, देश बंध रहिनें मरै।
इण न्याये अवधार, देश बंध इक समय स्थिति।।

४५. *पंचेंद्री तिरि वायु मनुष्य नैं,
स्थिति उत्कृष्टी हो देश बंध नीं एम।
स्थिति जिका छै जेहनी,
समय ऊणो हो कहिवी ए तेम।।

४५. उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समयूणा कायव्वा जाव मणूस्साणं देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं। (श० ८।३७८)

**सोरठा**

४६. वायू तीन हजार, तिरि पंचेंद्रिय मनुष्य नीं।
तीन पल्य सुविचार, ए उत्कृष्टी स्थिति तसु।।

४६. तत्र वायूनां त्रीणि वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः स्थितिः, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च पल्योपमत्रयम्, (वृ० प० ४०१)

४७. समय एक सर्व-बंध, तेह समय ऊणी जिका।
देश-बंध स्थिति संध, ए उत्कृष्टपणें करी।।
४८. कह्यो औदारिक तास, प्रयोग बंध नों काल ए।
हिव तेहनोंज विमास, कहियै छै अंतर प्रति।।

४७. इयं च स्थितिः सर्वबंधसमयोना उत्कृष्टतो देशबंधस्थितिरेषां भवति। (वृ० प० ४०१)
४८. उक्त औदारिकशरीरप्रयोगबन्धस्य कालोऽथ तस्यैवान्तरं निरूपयन्नाह— (वृ० प० ४०१)

४९. *औदारिक तनु-बंध नों,
कितो आंतरो हो प्रभु! काल थी होय?

४९. ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिव जिन भाखै जूजुओ,
सर्व-बंध नों हो देश-बंध नों सोय ।।

५०. सर्व-बंध नों आंतरो,
जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणो समया तीन ।
उत्कृष्ट सागर तेंतीस नों,
पूर्व कोड़ी हो समय अधिक सुचीन ।।

**सोरठा**

५१. सर्व-बंध नो जाण, जघन्य थकी ए आंतरो ।
खुड्डाग भव पहिछाण, तीन समय कर ऊण किम ?

५२. तीन समय नीं ताहि, विग्रह गति करि आवियो ।
औदारिक रै मांहि, अणाहारक बे समय धुर ।।

५३. तृतीय समय सर्व-बंध, ते खुडाग भव रहि मुओ ।
औदारिक तनु संध, तेह विषे वलि ऊपनो ।।

५४. प्रथम समय सर्व-बंध, इम सर्व-बंध नुं आंतरो ।
त्रि समयूण कथंद, खुड्डाग भव नों इह विधे ।।

५५. उत्कृष्ट अंतर तास, सागरोपम तेतीस नों ।
पूर्व कोड़ प्रकाश, एक समय वलि अधिक किम ?

५६. मनुष्य आदि भव मांय, अविग्रह गति आवियो ।
प्रथम समय कहिवाय, सर्व बंध कारक तसु ।।

५७. त्यां रहि पूरव कोड़, नरक सातमीं ऊपनों ।
तथा सव्वट्ठसिद्ध जोड़, वलि त्रिण समय विग्रहे ।।

५८. औदारिक में आय, विग्रह नां बे समय धुर ।
अणाहारिक कहिवाय, सर्व बंध तृतीय समय ।।

५९. अणाहारिक नां जेह, दोय समय ते मांहि थी ।
एम समय काढेह, घाल्यो पूरव कोड़ में ।।

६०. पूरव कोड़ सर्व बंध, तेह स्थानके घालियो ।
बध्यो समय इक संध, निमल न्याय अवलोकियै ।।

६१. इम सर्व बंध नों जान, अंतर उत्कृष्टो कह्यो ।
तेतीस सागर मान, पूर्व कोड़ समय अधिक ।।

६२. *औदारिक देश बंध नुं,
जघन्य आंतरो हो इक समय नुं जाण ।
उत्कृष्ट सागर तेतीस नों,
तीन समया हो अधिका पहिछाण ।

---

५०. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडि-समयाहियाइं ।

५१. सर्वबन्धान्तरं जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं कथं ? (वृ० प० ४०१)

५२. त्रिसमयविग्रहेणौदारिकशरीरिष्वागतस्तत्र द्वौ समयावनाहारकः । (वृ० प० ४०१)

५३. तृतीयसमये सर्वबन्धकः क्षुल्लकभवं च स्थित्वा मृत औदारिकशरीरिष्वेवोत्पन्नः (वृ० प० ४०१)

५४. तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकः, एवं च सर्वबन्धस्य सर्वबन्धस्य चान्तरं क्षुल्लकभवो विग्रहगतसमयत्रयोनः, (वृ० प० ४०१)

५५. उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि पूर्वकोटेः समयाभ्यधिकानि सर्वबन्धांतरं भवतीति, कथं ? (वृ० प० ४०१)

५६. मनुष्यादिष्वविग्रहेणागतस्तत्र च प्रथमसमय एव सर्वबन्धको भूत्वा, (वृ० प० ४०१)

५७,५८. पूर्वकोटिं च स्थित्वा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिर्नारकः सर्वार्थसिद्धको वा भूत्वा त्रिसमयेन विग्रहेणौदारिकशरीरी संपन्नस्तत्र च विग्रहस्य द्वौ समयावनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकः (वृ० प० ४०१)

५९. औदारिकशरीरस्यैव च यौ तौ द्वावनाहारसमयौ तयोरेकः पूर्वकोटीसर्वबन्धसमयस्थाने क्षिप्तः, (वृ० प० ४०१)

६०. ततश्च पूर्णा पूर्वकोटी जाता एकश्च समयोऽतिरिक्तः, (वृ० प० ४०१)

६१. एवं च सर्वबन्धस्य सर्वबन्धस्य चोत्कृष्टमन्तरं यथोक्तमानं भवतीति । (वृ० प० ४०१)

६२. देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं तिसमयाहियाइं । (श०, ८।३७६)

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

६३. औदारिक तनु तास, देश बंध नों आंतरो।
जघन्य समय इक जास, तास न्याय निसुणो हिवै॥

६३. देशबन्धान्तरं जघन्येनैकं समयं, कथं ? (वृ० प० ४०१)

६४. देश बंध करि काल, अविग्रह-गति ऊपनो।
प्रथम समय में न्हाल, सर्व बंध कारक वली॥

६४. देशबन्धको मृतः सन्नविग्रहेणैवोत्पन्नस्तत्र च प्रथम एव समये सर्वबन्धकः। (वृ० प० ४०१)

६५. दूजा समय मझार, देश-बंध छै ते भणी।
जघन्य समय इक धार, देश-बंध नुं अंतरो॥

६५. द्वितीयादिषु च समयेषु देशबन्धकः सम्पन्नः, तदेवं देशबन्धस्य देशबन्धस्य चान्तरं जघन्यत एकः समयः सर्वबन्धसम्बन्धीति। (वृ० प० ४०१)

६६. देश-बंध औदार, उत्कृष्ट अंतर तेहनों।
तेतीस सागर धार, तीन समय करि अधिक किम ?

६६. उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि त्रिसमयाधिकानि देशबन्धस्य देशबन्धस्यान्तरं भवतीति, कथं ? (वृ० प० ४०२)

६७. देश-बंध करि काल, तेतीस सागर स्थितिपणें।
उपनो तेह निहाल, काल करी वलि त्यां थकी॥

६७. देशबन्धको मृत उत्पन्नश्च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुः सर्वार्थसिद्धादौ, (वृ० प० ४०२)

६८. करि विग्रह समया तीन, उपनो औदारिकपणें।
बे समय अणाहारक चीन, तृतिय समय थयो सर्व-बंध॥

६९. तुर्य समय देश-बंध, इम सागर तेतीस ए।
अधिक समय त्रिण संध, उत्कृष्ट अंतर देश-बंध॥

६८,६९. ततश्च च्युत्वा त्रिसमयेन विग्रहेणौदारिकशरीरी संपन्नस्तत्र च विग्रहस्य समयद्वयेऽनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकस्ततो देशबन्धकोऽजनि, एवं चोत्कृष्टमन्तरालं देशबन्धस्य देशबन्धस्य च यथोक्तं भवतीति। (वृ० प० ४०२)

७०. औदारिक-बंध जाण, अंतर कह्यो सामान्य थी।
विशेष थी हिव आण, कहियै छै अंतर तसु॥

७०. औदारिकबन्धस्य सामान्यतोऽन्तरमुक्तमथ विशेषतस्तस्य तदाह— (वृ० प० ४०२)

७१. *एकेंद्री औदारिक तनु,
तास बंध नो हो अंतर कितो कहिवाय ?
श्री जिन भाखै जूजुओ,
सर्व-बंध नुं हो देश-बंध नुं ताय॥

७१. एगिंदियओरालियपुच्छा।

७२. सर्व-बंध नुं अंतरो,
जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणा समया तीन।
उत्कृष्ट बावीस सहस्र नों,
एक समय वलि हो अधिको है सुचीन॥

७२. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयाहियाइं।

## सोरठा

७३. एकेंद्री तनु औदार, सर्व-बंध नुं अंतरो।
जघन्य क्षुल्लक भव धार, तीन समय करि ऊण किम ?

७३. एकेन्द्रियस्यौदारिकसर्वबन्धान्तरं जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं, कथं ? (वृ० प० ४०२)

७४. विग्रह त्रि समयेन, आयो पृथव्यादिक विषे।
ते विग्रह वर्त्तेन, अणाहारक बे समय धुर॥

७४. त्रिसमयेन विग्रहेण पृथिव्यादिष्वागतस्तत्र च विग्रहस्य समयद्वयमनाहारकः (वृ० प० ४०२)

७५. तृतीय समय सर्व-बंध, तिहां क्षुल्लक भव ग्रहण ए।
ऊण समय त्रिण संध, इतो काल रहिनैं मुओ॥

७५. तृतीये च समये सर्वबन्धकस्ततः क्षुल्लकं भवग्रहणं त्रिसमयोनं स्थित्वा मृतः (वृ० प० ४०२)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. अविग्रह करि तेह, उपजो नैं सर्व-बंध थयो।
यथोक्त अंतर एह, सर्व-बंध नुं जाणवूं॥
७७. एकेंद्री तनु औदार, उत्कृष्ट अंतर सर्व-बंध।
वर्ष बावीस हजार, एक समय करि अधिक किम ?
७८. अविग्रह करि कोय, आयो पृथ्वी नैं विषे।
प्रथम समय ते होय, सर्व-बंधकारक तदा॥
७९. पछै बावीस हजार, वर्ष समय ऊणो रही।
काल कियो तिण वार, तीन समय विग्रह करी॥
८०. अन्य पृथव्यादिक मांहि, उपनो तिहां बे धुर समय।
अणाहारक थइ ताहि, सर्व-बंध तीजै समय॥
८१. अणाहारक नां जोय, दोय समय पूर्वे कह्या।
तेह मांहिलो सोय, समयो इक काढी करी॥
८२. समय ऊण बावीस, सहस्र वर्ष जे देश बंध।
ते मांहै सुजगीस, एक समय ते घालतां॥
८३. वर्ष बावीस हजार, पूरा ए इहविध थया।
एक समय रह्यो लार, अधिकेरो इम जाणियै॥
८४. एकेंद्री तनु औदार, सर्व-बंध नुं अंतरो।
वर्ष बावीस हजार, समय अधिक उत्कृष्ट इम॥

८५. *एकेंद्रि तनु औदारिक नां
देश-बंध नों हो जघन्य अंतर जाण।
एक समय तसु आखियो,
उत्कृष्टो हो अंतर्मुहूर्त्त आण।

**सोरठा**

८६. एकेंद्री तनु औदार, देश-बंध नुं अंतरो।
जघन्य थकी सुविचार, एक समय ते किम हुइं ?
८७. देश-बंध करि काल, अविग्रह करि ऊपनों।
पहिले समय निहाल, सर्व-बंध थइनैं पछै॥
८८. दूजे समये देख, देश-बंध वलि ते थयो।
एक समय इम पेख, देश बंध नों अंतरो॥
८९. एकेंद्री तनु औदार, देश बंध नों अंतरो।
उत्कृष्टो सुविचार, अंतर्मुहूर्त्त किम हुइं ?
९०. वाऊ औदारीक, देश-बंधकारक थको।
वैक्रिय पाय सधीक, त्यां अंतर्मुहूर्त्त रही॥
९१. तनु औदारिक तेह, सर्व-बंध रहिनैं वलि।
देश-बंध ह्वै जेह, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त इम॥

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

७६. अविग्रहेण च यदोत्पद्य सर्वबन्धक एव भवति तदा सर्वबन्धयोर्यथोक्तमंतरं भवतीति। (वृ० प० ४०२)
७७. उत्कृष्टतः सर्वबन्धान्तरं द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि समयाधिकानि भवन्ति, कथम् ? (वृ० प० ४०२)
७८. अविग्रहेण पृथिवीकायिकेष्वागतः प्रथम एव च समये सर्वबन्धकः, (वृ० प० ४०२)
७९,८०. ततो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि स्थित्वा समयोनानि विग्रहगत्या त्रिसमयाऽन्येषु पृथिव्यादिषूत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारको भूत्वा तृतीयसमये सर्वबन्धकः सम्पन्नः, (वृ० प० ४०२)
८१. अनाहारकसमययोश्चैकः (वृ० प० ४०२)

८२. द्वाविंशतिर्वर्षसहस्रेषु समयोनेषु क्षिप्तस्तत्पूरणार्थम्, (वृ० प० ४०२)

८४. ततश्च द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि समयश्चैकेन्द्रियाणां सर्वबन्धयोरुत्कृष्टमन्तरं भवतीति। (वृ० प० ४०२)
८५. देसबन्धंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। (श० ८।३८०)

८६. तत्रैकेन्द्रियौदारिकदेशबन्धान्तरं जघन्येनैकं समयं, कथम् ? (वृ० प० ४०२)
८७. देशबन्धको मृतः सन्नविग्रहेण सर्वबन्धको भूत्वा एकस्मिन् समये, (वृ० प० ४०२)
८८. पुनर्देशबन्धक एव जातः, एवं च देशबन्धयोर्जघन्यत एकः समयोऽन्तरं भवतीति। (वृ० प० ४०२)
८९. 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं' ति कथम् ? (वृ० प० ४०२)
९०. वायुरौदारिकशरीरस्य देशबन्धकः सन् वैक्रियं गतस्तत्र चान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा (वृ० प० ४०२)
९१. पुनरौदारिकशरीरस्य सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धक एव जातः, एवं च देशबन्धयोरुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्तमन्तरमिति। (वृ० प० ४०२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. *पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, तेहनीं पूछा हो कीधी गोयम जाण ।
श्री जिन भाखै सांभलो, सर्व-बंध नों हो उत्तर इम आण ।।
९३. जिम एकेंद्री सर्व-बंध नों, अंतर आख्यो हो पूर्वे पहिछाण ।
तिमहिज पृथ्वीकाय नों, सर्व-बंध नों हो अंतर ए जाण ।।
९४. पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, देश-बंध नों हो अंतर अवलोय ।
जघन्य थकी इक समय छै, उत्कृष्टो हो तीन समया होय ।।

९२. पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा ।

९३. सव्वबंधंतरं जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्वं ।

९४. देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि समया ।

## सोरठा

९५. एकेंद्री पृथ्वीकाय, तास देश-बंध अंतरो ।
जघन्य थकी कहिवाय, एक समय ते किम हुइं ?
९६. पृथ्वीकायिक जेह, देश-बंध मूओ थको ।।
अविग्रह करि तेह, पृथ्वीपणेंज ऊपनों ।।
९७. एक समय अवलोय, सर्व बंध थइनैं वलि ।
देश-बंध ते होय, इम अंतर इक समय ह्वै ।।

९८. एकेंद्री पृथ्वीकाय, देश-बंध नों अंतरो ।
उत्कृष्टो कहिवाय, त्रिण समया ते किम हुइं ?
९९. पृथ्वीकायिक जेह, देश-बंध मूओ छतो ।
तीन समय नीं तेह, विग्रह गति करिनैं तिको ।।
१००. उपनो पृथ्वी मांहि, अणाहारक बे धुर समय ।
तीजे समये ताहि, सर्व-बंध थइ नैं वलि ।।
१०१. देश-बंध ते होय, इह विध त्रिण समयां तणो ।
उत्कृष्टो अवलोय, देश-बंध नुं अंतरो ।।

९५. 'पुढविकाइए' त्यादि, देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं ....त्ति कथं ? (वृ० प० ४०२)
९६. पृथिवीकायिको देशबन्धको मृतः सन्नविग्रहगत्या पृथिवीकायिकेष्वेवोत्पन्नः (वृ० प० ४०२)
९७. एकं समयं च सर्वबन्धको भूत्वा पुनर्देशबन्धको जातः एवमेकसमयो देशबन्धयोर्जघन्येनान्तरं । (वृ० प० ४०२)
९८. 'पुढविकाइए' त्यादि....उक्कोसेणं तिन्नि समय त्ति, कथम् ? (वृ० प० ४०२)
९९. तथा पृथिवीकायिको देशबन्धको मृतः सन् त्रिसमयविग्रहेण, (वृ० प० ४०२)
१००. तेष्वेवोत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारकः तृतीयसमये च सर्वबन्धको भूत्वा पुनः (वृ० प० ४०२)
१०१. देशबन्धको जातः, एवं च त्रयः समया उत्कर्षतो देशबन्धयोरन्तरमिति । (वृ० प० ४०२)

१०२. *जिम कह्या पृथ्वीकाइया, इमहिज कहिवा हो जाव चउरिंद्री देख ।
वायुकाय वर्जी करी, णवरं कहिवो हो एतलोज विशेष ।।
१०३. सर्व-बंध नों अंतरो, उत्कृष्टो हो कहियै इम जोय ।
जिका स्थिति छै जेहनीं, समयाधिक हो कहिवूं अवलोय ।।

१०२. जहा पुढविक्काइयाणं एवं जाव चउरिंदियाणं वाउक्काइयवज्जाणं, नवरं—
१०३. सव्वबंधंतरं उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समयाहिया कायव्वा ।

## सोरठा

१०४. पृथ्वी जिम कहिवाय, अप थी चउरिंद्री लगै ।
तेह देखाड़ै न्याय, चित्त लगाई सांभलो ।।
१०५. अपकाय नों जोय, जघन्य सर्व-बंध अंतरो ।
खुड्डाग भव अवलोय, तीन समय ऊणो कह्यं ।।
१०६. वलि अपकाय मभार, सर्व-बंध नों अंतरो ।
उत्कृष्टो अवधार, सप्त सहस्र समय अधिक ।।
१०७. देश बंध अपकाय, जघन्य समय इक अंतरो ।
उत्कृष्टो कहिवाय, तीन समय नुं जाणिवो ।।

१०४. अथाप्कायिकादीनां बन्धान्तरमतिदेशत आह— (वृ० प० ४०२)
१०५. अप्कायिकानां जघन्यं सर्वबन्धान्तरं क्षुल्लकभवग्रहणं त्रिसमयोनं (वृ० प० ४०२)
१०६. उत्कृष्टं तु सप्त वर्षसहस्राणि समयाधिकानि (वृ० प० ४०२)
१०७. देशबन्धान्तरं जघन्यमेकः समय उत्कृष्टं तु त्रयः समयाः (वृ० प० ४०२)

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०८. वाऊ वर्जी एम, तेऊ प्रमुख तणोज पिण।
कहिवुं सगलो तेम, णवरं विशेष एतलुं ॥
१०९. सर्व-बंध नो सोय, उत्कृष्टो इम अंतरो।
निज-निज स्थिति अवलोय, समय अधिक सर्व स्थान जे ॥
११०. वर्जी वाऊकाय, ते माटै वाऊ तणो।
भेद जुदो कहिवाय, आगल कहियै छै हिवै ॥

१११. *वाऊ सर्व-बंध अंतरो, जघन्य क्षुल्लक भव हो ऊणा समया तीन।
उत्कृष्ट अंतर एतलो, तीन सहस्र वर्ष हो समय अधिक सुचीन ॥

११२. वाऊ देश-बंध अंतरो, जघन्य थकी ते हो कहियै समयो एक।
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त नों, वारू कहियै हो तेहनों न्याय विशेख ॥

## सोरठा

११३. वाऊ तनु औदार, देश-बंध कारक छतो।
वैक्रिय पाय तिवार, अंतर्मुहूर्त्त रहि वलि ॥
११४. औदारिक सर्व-बंध, द्वितीय समये देश-बंध।
उत्कृष्ट अंतर संध, अंतर्मुहूर्त्त इह विधे ॥

११५. *पंचेंद्री तिर्यंच नों, औदारिक नों हो बंध-अंतर पूछंत।
श्री जिन भाखै जूजुओ, सर्व-बंध नुं हो देश-बंध नुं विरतंत ॥
११६. सर्व-बंध नों अंतरो, जघन्य क्षुल्लक भव हो उणा समया तीन।
उत्कृष्ट अंतर एतलो, पूर्व कोड़ी हो समय अधिक सुचीन ॥

## दूहा

११७. सर्व-बंध नुं अंतरो, जघन्य क्षुल्लक भव जाण।
तीन समय ऊणो तिको, पूर्ववत पहिछाण ॥
११८. तिरि पंचेंद्री सर्व-बंध, उत्कृष्ट अंतर तास।
पूर्व कोड़ समयाधिक, तसु इम न्याय प्रकाश ॥
११९. पंचेंद्री तिर्यंच जे, अविग्रह उत्पन्न।
सर्व-बंधकारक तदा, पहिले समय सुजन्न ॥
१२०. पाछै पूर्व कोड़ जे, समय ऊण रहि सोय।
विग्रह-गति त्रिण समय करि, तिरि पंचेंद्री होय ॥
१२१. दोय समय धुरला जिके, अनाहारक नां जाण।
तीजा समय विषे थयो, सर्व-बंध पहिछाण ॥
१२२. अनाहारक नां बे समय, पूर्वे आख्या पेख।
तेह मांहिलो समय इक, काढी नैं सुविशेष ॥

---

*लय : वीर सुणो मोरी विनती

१०८. एवं वायुवर्जानां तेजःप्रभृतीनामपि, नवरम्—
(वृ० प० ४०२)
१०९. उत्कृष्टं सर्वबन्धान्तरं स्वकीया स्वकीया स्थितिः समयाधिका वाच्या। (वृ० प० ४०२)
११०. अथातिदेशे वायुकायिकवर्जानामित्यनेनातिदिष्टबन्धान्तरेभ्यो वायुबन्धान्तरस्य विलक्षणता सूचितेति वायुबन्धान्तरं भेदेनाह— (वृ० प० ४०२)
१११. वाउक्काइयाणं सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं समयाहियाइं।
११२. देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। (श० ८।३८१)

११३. वायुरौदारिकशरीरस्य देशबन्धकः सन् वैक्रियबन्धमन्तर्मुहूर्त्तं कृत्वा (वृ० प० ४०२)
११४. पुनरौदारिकसर्वबन्धसमयानन्तरमौदारिकदेशबन्धं यदा करोति तदा यथोक्तमन्तरं भवतीति।
(वृ० प० ४०२)
११५. पंचिंदियतिरिक्खजोणियओरालियपुच्छा।

११६. सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी समयाहिया।

११७. तत्र सर्वबन्धान्तरं जघन्यं भावितमेव
(वृ० प० ४०२)
११८. उत्कृष्टं तु भाव्यते— (वृ० प० ४०२)

११९. पञ्चेन्द्रियतिर्यङ् अविग्रहेणोत्पन्नः प्रथम एव च समये सर्वबन्धकः (वृ० प० ४०२)
१२०. ततः समयोनां पूर्वकोटिं जीवित्वा विग्रहगत्या त्रिसमयया तेष्वेवोत्पन्नः (वृ० प० ४०२)
१२१. तत्र च द्वावनाहारकसमयौ तृतीये च समये सर्वबन्धकः संपन्नः (वृ० प० ४०२,४०३)
१२२. अनाहारकसमययोश्चैकः (वृ० प० ४०३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२३. एक समय ऊणो तिको, पूर्व कोड़ ते मांहि।
घाल्यां एक समय बध्यो, अनाहारक नों ताहि ।।
१२४. इतलै पूर्व कोड़ में, एक समय अधिकाय।
उत्कृष्ट अंतर सर्व-बंध, तिरि-पंचेंद्री ताय ।।

१२५. *तिरि पंचेंद्री नों वलि, देश-बंध नों हो अंतर अवलोय।
जिम एकेंद्री नुं कह्यं, तिम कहिवो हो तिरि-पंचेंद्री नों जोय ।।

**सोरठा**

१२६. तिरि-पंचेंद्री ताय, देश-बंध नुं अंतरो।
जघन्य थकी कहिवाय, एक समय ते किम हुवै ?
१२७. देश-बंध करि काल, सर्व-बंध धुर समय रहि।
थयो देश-बंध न्हाल, एक समय इम अंतरो ।।
१२८. तिरि-पंचेंद्री ताय, औदारिक देश-बंध नों।
उत्कृष्ट अंतर पाय, अंतर्मुहूर्त्त किम तसु ?
१२९ औदारिक तनु तेह, वैक्रिय तनु प्रतिपन्न थयो।
अंतर्मुहूर्त्त रहेह, वलि औदारिक-तनुपणें ।।

१३०. प्रथम समय सर्व-बंध, द्वितीयादि समया विषे।
देश-बंध नों संध, अंतर्मुहूर्त्त इम हुई ।।

१३१. *जिम तिरि-पंचेंद्री कह्यो, ए तो अंतर हो सगलो सुविचार।
तेम मनुष्य नों अंतरो, जाव उत्कृष्टो हो अंतर्मुहूर्त्त धार ।।

१३२. †औदारिक बंध तणो अंतर, प्रकारान्तरइं करी।
आखियै ते सांभलो हिव, परम प्रीत हिये धरी ।।

१३३. *प्रभु ! एकेंद्रीपणां थकी, नोएकेंद्री हो बेंद्रियादिक मांहि।
भव करिनें जे जीवड़ो, वलि पाम्यो हो एकेंद्रिपणुं ताहि ।।
१३४. इम एकेंद्रिय नों जिके, तनु ओदारिक हो तेहनों अंतरो जान।
काल थी केतलो काल ह्वै ? इम पूछ्यो हो गोयम गुणखान ।।

१३५. †सर्व-बंध नैं सर्व-बंध, संघात अंतर आखियै।
देश-बंध नों देश-बंध, संघात उत्तर दाखियै ।।

१३६. *श्री जिन भाखै सांभलै, सर्व-बंधन हो अंतर जघन्य थी जोय।
दोय क्षुल्लक भव ग्रहण ते, त्रिण समया हो ऊणो अवलोय ।।
१३७. हिव अंतर उत्कृष्ट थी, सागरोपम हो कह्या दोय हजार।
संख्याता वर्ष अधिक वलि, हिवं बिहुं नों हो वारू न्याय विचार ।।

* लय : वीर सुणो मोरी वीनती
† लय : पूज मोटा भांजे तोटा

१२३,१२४. समयोनायां पूर्वकोट्यां क्षिप्तस्तत्पूरणार्थमेक-स्त्वधिक इत्येवं यथोक्तमन्तरं भवतीति,
(वृ० प० ४०३)

१२५. देसबंधंतरं जहा एगिंदियाणं तहा पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं,

१२६. जघन्यमेकः समयः, कथम् ? (वृ० प० ४०३)

१२७. देशबन्धको मृतः सर्वबन्धसमयानन्तरं, देशबन्धको जात इत्येवं, (वृ० प० ४०३)

१२८. उत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्त्तं, कथम् ? (वृ० प० ४०३)

१२९. औदारिकशरीरी देशबन्धकः सन् वैक्रियं प्रतिपन्न-स्तत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरौदारिकशरीरी जातः
(वृ० प० ४०३)

१३०. तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको द्वितीयादिषु तु देश-बन्धक इत्येवं देशबन्धयोरन्तर्मुहूर्त्तमन्तरमिति
(वृ० प० ४०३)

१३१. एवं मणुस्साण वि निरवसेसं भाणियव्वं जाव उक्को-सेणं अंतोमुहुत्तं। (श० ८।३८२)

१३२. औदारिकबन्धान्तरं प्रकारान्तरेणाह—
(वृ० प० ४०३)

१३३, १३४. जीवस्स णं भंते ! एगिंदियत्ते, नोएगिंदियत्ते, पुणरवि एगिंदियत्ते एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधं-तरं कालओ केवच्चिरं होइ ?
'नोएगिंदियत्ते' त्ति द्वीन्द्रियत्वादौ (वृ० प० ४०३)

१३६. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गह-णाइं तिसमयूणाइं,

१३७. उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भ-हियाइं



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## दूहा

१३८. सर्व-बंध नों अंतरो, जघन्य क्षुल्लक भव दोय।
तीन समय ऊणो कह्यो, तास न्याय हिव जोय॥

१३९. †जे तीन समया विग्रह करिनैं, एकेन्द्रियपणुं लह्युं।
अनाहारक बे समय धुर, वाट वहितां ते थयुं॥

१४०. समय तृतीये सर्व बंधक, क्षुल्लक भव ऊणो तदा।
जीवितव्य भोगवी नैं ते, मरण पाम्यो छै यदा॥

१४१. पछै नोएकेंद्रिय ते, बेंद्रियादिक त्रसपणैं।
इक क्षुल्लक भव ग्रहणजीवी, मरण पाम्यो छै तिणैं॥

१४२. †अविग्रह गति एकइंद्रिय, वली आवी ऊपनों।
इम प्रथम समये सर्व-बंधक, तेह भव नों नीपनों॥

१४३. इम सर्व-बंधक अनें जे वलि, सर्व-बंध नों अंतरो।
तीन समया ऊण जे, बे क्षुल्लक भव भाख्यो खरो॥

## दूहा

१४४. उत्कृष्टो जे अंतरो, सागर दोय हजार।
संख्याता वर्ष अधिक छै, तसु हिव न्याय विचार॥

१४५. †अविग्रह गति एकइन्द्रिय, ऊपनो धुर समय ही।
सर्व बंधक थइ वरस, बावीस सहस्र तिहां रही॥

१४६. मरी त्रस में ऊपनों, इह उदधि दोय हजार ही।
वर्ष संख्या अधिक ए त्रस-काय स्थिति उत्कृष्ट ही॥

१४७. वलि इकेंद्रिय विषे उपनों, सर्व-बंधक ते थयो।
त्रसपणैं बिच जे रह्यो, उत्कृष्ट अन्तर ते कह्यो॥

१४८. जे सर्वं-बंधज समय-हीनज, एकेंद्रिय पहिलै भवै।
उत्कृष्ट भवस्थिति नैं विषे, प्रक्षेप कीधां पिण हुवै॥

१४९. संख्यात स्थानज तणां जे, वलि भेद संख्याता सही।
ते भणी वर्ष संख्यात अधिका, कह्या तेह विरुध नहीं॥

१५०. *देश-बंध नों अंतरो, जघन्य क्षुल्लक भव हो अधिको समयो एक।
उत्कृष्ट बे सहस्र उदधि छै, वर्ष संख्याता हो कह्या अधिक विशेख॥

## सोरठा

१५१. एकेंद्रिय कहाय, देश-बंध करतो मरी।
बेंद्रियादिक मांय, खुड्डाग-भव जीवी वलि॥

---

†लय : पूज मोटा भांजे तोटा
*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१३८. यत् सर्वबन्धान्तरं तज्जघन्येन द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे त्रिसमयोने, कथम्? (वृ० प० ४०३)

१३९. एकेन्द्रियस्त्रिसमयया विग्रहगत्योत्पन्नस्तत्र च समयद्वयमनाहारको भूत्वा, (वृ० प० ४०३)

१४०. तृतीयसमये सर्वबन्धं कृत्वा तदूनं क्षुल्लकभवग्रहणं जीवित्वा मृतः (वृ० प० ४०३)

१४१. अनेकेन्द्रियेषु क्षुल्लकभवग्रहणमेव जीवित्वा मृतः (वृ० प० ४०३)

१४२. अविग्रहेण पुनरेकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्य सर्वबन्धको जातः (वृ० प० ४०३)

१४३. एवं च सर्वबन्धयोरुक्तमन्तरं जातमिति (वृ० प० ४०३)

१४४. उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं' ति, कथम्? (वृ० प० ४०३)

१४५. अविग्रहेणैकेन्द्रियः समुत्पन्नस्तत्र च प्रथमसमयं सर्वबन्धको भूत्वा द्वाविंशतिं वर्षसहस्राणि जीवित्वा (वृ० प० ४०३)

१४६. मृतस्त्रसकायिकेषु चोत्पन्नः तत्र च संख्यातवर्षाभ्यधिकसागरोपमसहस्रद्वयरूपामुत्कृष्टत्रसकायिककायस्थितिमतिवाह्य (वृ० प० ४०३)

१४७. एकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्य सर्वबन्धको जात इत्येवं सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तरं भवति। (वृ० प० ४०३)

१४८. सर्वबन्धसमयहीनएकेन्द्रियोत्कृष्टभवस्थितेस्त्रसकायस्थितौ प्रक्षेपणेऽपि, (वृ० प० ४०३)

१४९. संख्यातस्थानानां संख्यातभेदत्वेन संख्यातवर्षाभ्यधिकत्वस्याव्याहतत्वादिति (वृ० प० ४०३)

१५०. देसबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं (श० ८।३८३)

१५१. एकेन्द्रियो देशबन्धकः सन् मृत्वा द्वीन्द्रियादिषु क्षुल्लकभवग्रहणमनुभूय (वृ० प० ४०३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. एकेंद्रिय में आय, अविग्रह धुर समय में।
सर्व-बंध जे थाय, देश-बंध द्वितिये समय॥

१५३. ते माटै कहिवाय, खुड्डाग भव इह विध हुइं।
एक समय अधिकाय, जघन्य देश-बंध अंतरो॥

१५४. उत्कृष्ट दोय हजार, वर्ष संख्याता अधिक वलि।
विच त्रस भव स्थितिकार, तास भावना पूर्ववत॥

१५५. *प्रभु ! पृथ्वीकायपणां थकी, ते नोपृथ्वी हो अपकायादि मांय।
ऊपजी नें ते जीवड़ो, वलि ऊपजै हो पृथ्वीकाय में आय॥

१५६. पृथ्वीकाय एकेंद्रिय, तनु औदारिक हो प्रयोग-बंध नों जाण।
काल थी अंतर केतलो ? जिन भाखै हो सुणजो वर वाण॥

१५७. सर्व-बंध जघन्य अंतरो, दोय क्षुल्लक भव हो ऊणा समया तीन।
पूरवली पर भावना, उत्कृष्टो हो काल अनंतो चीन॥

## दूहा

१५८. काल अनंतपणुं इहां, वनस्पती नीं जाण।
काय-स्थिति नां काल नीं, अपेक्षया पहिछाण॥

१५९. *तास विभजन अर्थे कहै, अनंत काल नां हो समया नीं राश।
अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी, तेण समय करि हो अपहरतां तास॥

१६०. अनंती ते अवसर्प्पणी, वलि अनंती हो उत्सर्प्पिणी होय।
काल अपेक्षाय मान ए, क्षेत्र अपेक्षा हो हिव आगल जोय॥

१६१. क्षेत्र थी लोक अनंत ही, तास अर्थ इम हो सुणजो सहु कोय।
अणंत काल नां समय नीं, राशि भेली करि हो तसु अपहरै जोय॥

१६२. लोक तणां आकाश नां, प्रदेशे करि हो समय अपहरै तेह।
अनंता लोक हुवै तदा, ए चरचा में हो विरला समभेह॥

## सोरठा

१६३. अनंत लोक नां जोय, जिता आकाश प्रदेश छै।
तिता समय नीं होय, अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी॥

१६४. *पुद्गल परावर्त्तन तिके, असंख्याता हो होवै तिण मांहि।
एक पुद्गलपरावर्त्त विषे, कालचक्र हो अनंता हुवै ताहि॥

१६५. दस कोड़ाकोड़ सागर तणो, अवसर्प्पिणी हो काल होवै एक।
दस कोड़ाकोड़ सागर तणो, उत्सर्प्पिणी हो काल एक संपेख॥

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१५२. अविग्रहेण चागत्य प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा द्वितीये देशबन्धको भवति। (वृ० प० ४०३)

१५३. एवं च देशबन्धान्तरं क्षुल्लकभवः सर्वबन्धसमयातिरिक्तः। (वृ० प० ४०३)

१५४. 'उक्कोसेण' मित्यादि सर्वबन्धान्तरभावनोक्तप्रकारेण भावनीयमिति। (वृ० प० ४०३)

१५५. जीवस्स णं भंते ! पुढविक्काइयत्ते, नोपुढविक्काइयत्ते, पुणरवि पुढविक्काइयत्ते

१५६. पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधंतरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

१५७. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—

१५८. कालानन्तत्वं वनस्पतिकायस्थितिकालापेक्षयाऽनन्तकालमित्युक्तं (वृ० प० ४०३)

१५९. तद्विभजनार्थमाह— (वृ० प० ४०३)
अणंताओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ,
अयमभिप्रायः—तस्यानन्तस्य कालस्य समयेषु अवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिणीसमयैरपह्रियमाणेषु (वृ० प० ४०३)

१६०. अनन्ता अवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिण्यो भवन्तीति (वृ० प० ४०३)

१६१, १६२. खेत्तओ अणंता लोगा—
अयमर्थः—तस्यानन्तकालस्य समयेषु लोकाकाशप्रदेशैरपह्रियमाणेष्वनन्ता लोका भवन्ति। (वृ० प० ४०३)

१६४. असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा,

१६५. दशभिः कोटीकोटीभिरद्धापल्योपमानामेकं सागरोपमं दशभिः सागरोपमकोटीकोटीभिरवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिण्यप्येवमेव। (वृ० प० ४०३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६. बीस कोड़ाकोड़ सागर तणो, कालचक्र हो एक ह्वै वच सत्त ।
कालचक्र अनंता तणो, एक होवै हो पुद्गलपरावत्त ॥

१६६. ता अवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिण्योऽनन्ताः पुद्गलपरावर्तः (वृ० प० ४०३)

## दूहा

१६७. हिवै पुद्गलपरावर्त्त नों, असंख्याता नों जान ।
नियम प्रमाण कहै हिवै, जिन वच अमिय समान ।

१६७. पुद्गलपरावर्त्तानामेवासंख्यातत्वनियमनायाह— (वृ० प० ४०३)

१६८. *आवलिका नें भाग असंख्यातमो,
असंख्याता हो समया जे दृष्ट ।
पुद्गलपरावर्त्त एतला, सर्व-बंध नों हो अंतर उत्कृष्ट ॥

१६८. ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो । असंख्यातसमयसमुदायश्चावलिकेति (वृ० प० ४०३)

१६९. देश-बंध नों अंतरो,
जघन्य क्षुल्लक भव हो समय अधिक ए भाग ।
उत्कृष्ट काल अनंत नों, जाव आवलिका हो असंख्यातमें भाग ॥

१६९. देसबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइ-भागो ।

## सोरठा

१७०. पृथ्वीकायिक ताहि, देश-बंध करतो मरी ।
नोपृथ्वी रै मांहि, खुड्डाग भव जीवी मुओ ॥

१७०. पृथिवीकायिको देशबंधकः सन्मृतो नोपृथिवीकायिकेषु क्षुल्लकभवग्रहणं जीवित्वा मृतः सन् । (वृ० प० ४०३)

१७१ वली अविग्रह संध, पृथ्वी विषेज ऊपनों ।
प्रथम समय सर्व-बंध, देश-बंध द्वितीय समय ॥

१७१. पुनरविग्रहेण पृथिवीकायिकेष्वेवोत्पन्नः, तत्र च सर्व-बन्धसमयानन्तरं देशबन्धको जातः (वृ० प० ४०३)

१७२. सर्व-बंध नो जेह, एक समय तै अधिक ए ।
क्षुल्लक भवे करि तेह, जघन्य देश बंध अंतरो ॥

१७२. एवं च सर्वबन्धसमयेनाधिकमेकं क्षुल्लकभवग्रहणं देशबन्धयोरन्तरमिति । (वृ० प० ४०३)

१७३. *जिम कह्या पृथ्वीकाइया,
इमहिज कहिवूं हो वनस्पति वर्जी जाण ।
जाव मनुष्य नां दंडक लगै,
वनस्पति नुं हो भेद जुदो हिव आण ॥

१७३. जहा पुढविक्काइयाणं एवं वणस्सइकाइयवज्जाणं जाव मणुस्साणं ।

१७४. वनस्पति नें जघन्य थी, सर्व बंधंतर हो दोय क्षुल्लक भव होय ।
एवं चेव ए पाठ थी, तीन समय करि हो ऊणो अवलोय ॥

१७४. वणस्सइकाइयाणं दोण्णि खुड्डाइं एवं चेव, 'एवं चेव' त्ति करणात् त्रिसमयोने इति दृश्यम् (वृ० प० ४०४)

## सोरठा

१७५. तीन समय नीं ताहि, विग्रह गति करि जीवड़ो ।
वनस्पती रै मांहि, आवी नें उपनो तदा ॥

१७५. वनस्पतिकायिकस्त्रिसमयेन विग्रहेणोत्पन्नः (वृ० प० ४०४)

१७६. धुर बे समया संध, अनाहारक नां जाणवा ।
तृतीय समय सर्व-बंध, खुड्डाग भव जीवी करी ॥

१७६. तत्र च विग्रहस्य समयद्वयमनाहारकस्तृतीये समये च सर्वबन्धको भूत्वा क्षुल्लकभवं च जीवित्वा । (वृ० प० ४०४)

१७७. वलि पृथव्यादिक मांहि, खुड्डाग भव रहिनें वलि ।
अविग्रह करि ताहि, वनस्पती में ऊपनो ॥

१७७. पुनः पृथिव्यादिषु क्षुल्लकभवमेव स्थित्वा पुनरवि-ग्रहेण वनस्पतिकायिकेष्वेवोत्पन्नः (वृ० प० ४०४)

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७८. प्रथम समय सर्व-बंध, इम सर्व-बंध नों अंतरो।
दोय क्षुल्लक भव संध, तीन समय करि ऊण जे॥

१७९. *वनस्पती सर्व-बंध नों, उत्कृष्टो हो असंख्यातो काल।
असंख्याती अवसर्प्पिणी, असंख्याती हो उत्सर्प्पिणी न्हाल॥
१८०. क्षेत्र थकी कहियै हिवै, असंख्याता हो लोकाकाश प्रदेश।
इता कालचक्र जाणवो, देश-बंध नों हो एवं चेव कहेस॥

## सोरठा

१८१. वनस्पती नों ताहि, उत्कृष्ट अंतर सर्व-बंध।
पृथ्वी प्रमुख मांहि, कायस्थिति अद्धा जितो॥
१८२. देश बंधंतर एम, एहवूं पाठ मझै कह्यं।
तास न्याय धर प्रेम, वृत्ति थकी कहियै अछै॥
१८३. पृथिव्यादिक नो जेम, देश बंधंतर जघन्य छै।
वनस्पती नों एम, खुड्डाग भव समयाधिकं॥
१८४. वनस्पती भव छेह, देश-बंध करतो मरी।
पृथिव्यादिक हुवै तेह, खुड्डाग भव जीवी वलि॥
१८५. वनस्पती ते होय, सर्व-बंध पहिलै समय।
द्वितीय देश-बंध जोय, समयादिक भव क्षुल्लक इम॥
१८६. उत्कृष्ट पृथ्वी-काल, तरु देश-बंध अंतरो।
न्याय पूर्ववत न्हाल, काल असंख्याता तणो॥

१८७. *हे भदंत! बहु जीव नैं, औदारिक नां हो देश-बंधगा कहेस।
सर्व-बंधगा अबंधगा? कुण कुण सेती हो यावत अधिक विशेष॥

१८८. जिन कहै सर्व थोड़ा अछै, औदारिक नां हो सर्व-बंधगा सोय।
उत्पत्ति समय विषेज ह्वै,
एक समय नुं हो तास काल अवलोय॥
१८९. अबंधगा विसेसाहिया, विग्रहगतिया हो अथवा सिद्ध विचार।
सर्व-बंधग नीं अपेक्षया, अबंधगा ते हो विसेसाहिया धार॥

१९०. देश-बंधगा असंखगुणा, देश-बंधग नों हो असंखगुणो छै काल।
भावना एह नीं विशेष थी,
आगल कहिसै हो इम टीका में निहाल॥
१९१. अंक नव्यासी नों देश ए, एकसौ नैं हो अठावनमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय थी,
सुखदायक हो 'जय-जश' हरष विशाल॥

---

*लय : वीर सुणो मोरी वीनती

१७८. प्रथमसमये च सर्वबन्धकोऽसाविति सर्वबन्धयोस्त्रि-समयोने द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे अन्तरं भवत इति। (वृ० प० ४०४)
१७९. उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं—असंखेज्जाओ ओस्सप्पि-णीओ उस्सप्पिणीओ कालओ,
१८०. खेत्तओ असंखेज्जा लोगा, एवं देसबंधंतरं पि उक्को-सेणं पुढविकालो। (श० ८।३८४)

१८१. 'उक्कोसेण' मित्यादि, अयं च पृथिव्यादिषु कायस्थिति-कालः (वृ० प० ४०४)
१८२, १८३. 'एवं देसबंधंतरंपि' त्ति यथा पृथिव्यादीनां देशबन्धान्तरं जघन्यमेवं वनस्पतेरपि, तच्च क्षुल्लक-भवग्रहणं समयाधिकं। (वृ० प० ४०४)

१८६. उत्कर्षेण वनस्पतेर्देशबन्धान्तरं 'पृथिवीकालः' पृथिवी-कायस्थितिकालोऽसंख्यातावसर्प्पिण्युत्सर्प्पिण्यादिरूप इति। (वृ० प० ४०४)
१८७. एएसि णं भंते! जीवाणं ओरालियसरीरस्स देसबंध-गाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
१८८. गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा ओरालियसरीरस्स सव्वबंधगा,
तेषामुत्पत्तिसमय एव भावात् (वृ० प० ४०४)
१८९. अबंधगा विसेसाहिया
यतो विग्रहगतौ सिद्धत्वादौ च ते भवन्ति, ते च सर्व-बन्धकापेक्षया विशेषाधिकाः (वृ० प० ४०४)
१९०. देसबंधगा असंखेज्जगुणा। (श० ८।३८५)
देशबन्धकालस्यासंख्यातगुणत्वात्, एतस्य च सूत्रस्य भावनां विशेषतोऽग्रे वक्ष्याम इति (वृ० प० ४०४)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध स्थिति-सूचक यन्त्र

| प्रथम यंत्र | सर्व बंध स्थिति | देश बंध स्थिति |
|---|---|---|
| समुच्चय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नीं स्थिति | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा तीन पल्योपम । |
| एकेंद्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नीं स्थिति । | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा बावीस हजार वर्ष । |
| पृथ्वीकाय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नीं स्थिति । | एक समय | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय ऊणा बावीस हजार वर्ष । |
| आउ तेउ वनस्पति बेइंद्रिय तेइंद्रिय चउरिंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नीं स्थिति । | एक समय | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट जेहनैं जेतली उत्कृष्टी स्थिति छै ते एक समय ऊणी कही । |
| वाउ औदारिक-शरीर प्रयोग-बंध नीं स्थिति । | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा तीन हजार वर्ष । |
| तिर्यंच पंचेंद्री मनुष्य औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नीं स्थिति । | एक समय | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक समय ऊणा तीन पल्योपम । |

### औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नो अंतर-सूचक यन्त्र

| द्वितीय यंत्र | सर्व बंध नों अंतर | देश बंध नों अंतर |
|---|---|---|
| समुच्चय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नों अंतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट तेतीस सागर पूर्व कोडि एक समय अधिक । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय अधिक तेतीस सागर। |
| एकेंद्री औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नों अंतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक बावीस हजार वर्ष । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त । |
| पृथ्वीकाय औदारिक-शरीर प्रयोग-बंध नो-अंतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक बावीस हजार वर्ष । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय। |
| आउ, तेउ, वनस्पति, बेंद्री, तेंद्री, चउरिंद्री औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नों अंतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक जेहनैं जेतली उत्कृष्ट स्थिति । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट तीन समय । |
| वाउ औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नों अंतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट एक समय अधिक तीन हजार वर्ष । | जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त । |
| तिर्यंच पचेंद्री मनुष्य औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नों अंतर काल थकी केतलो काल ? | जघन्य तीन समय ऊणो खुडाग भव, उत्कृष्ट पूर्व-कोडि एक समय अधिक । तिर्यंच-पंचेंद्रि मरी आंतरा रहित तिर्यंच-पंचेंद्रीपणैं ऊपजै ते माटै पूर्व कोड़ समयाधिक । इमहिज मनुष्य । | जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त । |

**जीव एकेंद्रियपणें हुंतो ते नोएकेंद्रियपणें ऊपजी नैं वलि एकेंद्रियपणें हुइं इम एकेंद्रिय शरीर प्रयोग बंध नुं अंतर काल थकी केतलो काल ? तेहनों उत्तर**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीजा यंत्र नां प्रथम कोठा नें विषं छै—

| तृतीय यंत्र | सर्व-बंध ते सर्व-बंध नों अंतर | देश-बंध ते देश-बंध नों अंतर |
|---|---|---|
| एकेंद्रियपणैं नो-एकेंद्रियपणैं वलि एकेंद्रियपणैं। | जघन्य तीन समय ऊणा बे खुडाग भव, उत्कृष्ट दो हजार सागर संख्याता वर्ष अधिक। | जघन्य एक समय अधिक खुडाग भव, उत्कृष्ट बे सहस्र सागर संख्याता वर्ष अधिक। |
| पृथ्वी, अप, तेउ, वाउ, तीन विकलेंद्री, तिर्यंच-पंचेंद्री, मनुष्य। | जघन्य तीन समय ऊणा बे खुडाग भव, उत्कृष्ट वनस्पति-काल—असंख्यात पुद्गल-परावर्त्तन। | जघन्य एक समय अधिक खुडाग भव, उत्कृष्ट अनंतो काल—वनस्पति नों काल। |
| वनस्पति | जघन्य तीन समय ऊणा बे खुडाग भव, उत्कृष्ट असंख्याता अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी। | जघन्य एक समय अधिक खुडाग भव, उत्कृष्ट असंख्याती अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी। |

ए औदारिक-शरीर नां देश-बंधका सर्व-बंधका अबंधका में कुण कुण थकी अल्प बहुत्व तुल्य विशेषाधिक—

| चतुर्थ यंत्र | सर्वबंधका | अबंधका | देशबंधका |
|---|---|---|---|
| अल्पबहुत्व | सर्व थी थोड़ा | विसेसाहिया | असंख्यात[]गुणा |

## ढाल : १५६

### दूहा

१. हिव आगल वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बंध पिछाण।
तास निरूपण नें अरथ, कहियै जिनवच जाण।।

*श्री जिन एहवो भाख्यो जी।
परम प्रीतवंता गोयम नें भिन-भिन दाख्यो जी।। (ध्रुपदं)

२. वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बंध प्रभु! कितै प्रकार कहीजै?
जिन कहै दोय प्रकार प्ररूप्या, तास भेद इम लीजै।।

३. एकेंद्री-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध कहीजै।।
वलि पंचेंद्रि-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध लहीजै।।

४. जो एकेंद्रिय-वैक्रिय-शरीर, तो स्यूं वाऊकायो?
कै अवाऊ-एकेंद्रि-तनु-प्रयोग-बंध कहायो?

५. इम एणे आलावे करि जिम, अवगाहण संठाणो।
वैक्रिय तनु नां भेद कह्या तिम, इहां पिण कहिवा जाणो।।

---

*लय : सतगुरु एहवो भाख्यो जी

१. अथ वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धनिरूपणायाह—
(वृ० प० ४०४)

२. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

३. एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य पंचेंदियवेउव्विय-सरीरप्पयोगबंधे य। (श० ८।३८६)

४. जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे किं वाउक्काइयएगिंदियसरीरप्पयोगबंधे? अवाउक्काइयएगिंदिय-सरीरप्पयोगबंधे?

५. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्विय-सरीरभेदो तहा भाणियव्वो।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. जाव पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध, देव-अनुत्तर संधो।
अपर्याप्ता सर्वार्थसिद्ध नां, यावत प्रयोग-बंधो॥

७. हे भदंत ! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध पहिछाणी।
किसै कर्म नैं उदय करि ह्वै ? हिव जिन उत्तर जाणी॥

८. वीर्य सजोग सद्‌द्रव्यपणैं करि, जाव आऊ आश्री जे।
तथा वैक्रिय करण लब्धि प्रति, आश्री वैक्रिय लीजे॥

**सोरठा**

९. जाव शब्द रै मांहि, प्रमाद-प्रत्यय कर्म वलि।
जोग अनैं भव ताहि, ते सगला कहिवा इहां॥

१०. लब्धि पडुच्च कहाय, वाऊ तिरि पंचेंद्रिय।
वलि मनुष्य पेक्षाय, एह सूत्र आख्यो इहां॥

११. तिरि पं० वाऊकाय, वलि मनुष्य नां सूत्र में।
लब्धि पडुच्चज थाय, आगल पाठ इसो अछै।

१२. सूत्र नरक सुर साधि, लब्धि शब्द छांडी करी।
वीरिय सजोग आदि, आगल पाठ इसो अछै॥

१३. *वाऊ एकेंद्रिय तनु पूछा, भाखै श्री जिन भेवो।
वीर्य सजोग सद्‌द्रव्यपणैं करि, तिमज पाठ तनु चेवो॥

१४. यावत वैक्रिय करण लब्धि, आश्रयी नैं वाऊ जोयो।
एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंधज होयो॥

१५. रत्नप्रभा पृथ्वी नारक प्रभु ! पंचेंद्रिय अवलोयो।
वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बंध, किण कर्म उदय करि होयो ?

१६. जिन कहै वीर्य सजोग सद्‌द्रव्यपणैं जाव कहिवायो।
आयू आश्री रत्नप्रभा नां, वैक्रिय जाव बंधायो॥

१७. एवं यावत अधो सातमी, पृथ्वी लगै पिछाणो।
तिरि पंचेंद्रिय वैक्रिय पूछा, हिव जिन भाखै वाणी॥

१८. वीर्य सजोग सद्‌द्रव्य वाऊकाय कही तिम कहियै।
मनुष्य पंचेंद्रि वैक्रिय शरीर, इणहिज रीते लहियै॥

१९. असुरकुमार देव पंचेंद्री, वैक्रिय यावत बंधो।
रत्नप्रभा जिम एवं यावत, थणियकुमारा संधो॥

६. जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीय-वेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध जाव (सं० पा०) पयोगबंधे य। (श० ८।३८७)

७. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

८. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए, जाव (सं० पा०) आउयं च लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।३८८)

९. पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च।

१०. 'लद्धिं व' त्ति वैक्रियकरणलब्धिं वा प्रतीत्य, एतच्च वायुपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यानपेक्ष्योक्तम्। (वृ० प० ४०६)

११. तेन वायुकायादिसूत्रेषु लब्धिं वैक्रियशरीरबन्धस्य प्रत्ययतया वक्ष्यति, (वृ० प० ४०६)

१२. नारकदेवसूत्रेषु पुनस्तां विहाय वीर्यसयोगसद्‌द्रव्यतादीन् प्रत्ययतया वक्ष्यतीति (वृ० प० ४०६)

१३. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगपुच्छा। गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए एवं चेव

१४. जाव लद्धिं पडुच्च वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधे। (श० ८।३८९)

१५. रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोग-बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

१६. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधे,

१७. एवं जाव अहेसत्तमाए। (श० ८।३९०)
तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरपुच्छा।

१८. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जहा वाउक्काइयाणं।
मणुस्सपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे एवं चेव।

१९. असुरकुमारभवणवासिदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोग-बंधे जहा रयणप्पभापुढविनेरइयाणं। एवं जाव थणियकुमारा।

*लय : सतगुरु एहवो भाख्यो जी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. एवं व्यंतर अनैं जोतिषी, द्वादश कल्पज एवं ।
कल्पातीत नव-ग्रीवेयक, वली अनुत्तर देवं ।।
२१. देश नव्यासी ढाल एकसौ, गुणसठमीं ए ताजी ।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति जाझी ।।

२०. एवं वाणमंतरा । एवं जोइसिया । एवं सोहम्मकप्पोवया वेमाणिया । एवं जाव अच्चुयगेवेज्जकप्पातीया वेमाणिया । अणुत्तरोववाइयकप्पातीया वेमाणिया एवं चेव । (श० ८।३९१)

## ढाल : १६०

### दूहा

१. वैक्रिय शरीर नौं हिवै, देश-बंध सर्व-बंध ।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दै जिनचंद ।।
२. हे प्रभुजी ! वैक्रिय-तनु-प्रयोग-बंध अवलोय ।
देश-बंध वा सर्व-बंध ह्वै ? जिन कहै दोनूं जोय ।।

२. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ?
गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि ।

३. वाऊकाय एकेंद्रिय, कहियै एवं चेव ।
रत्नप्रभा नारक इमज, जाव अनुत्तर देव ।।

*जिन-वच लीजै रे, सतगुरु सीखड़ली ।
ए थी मोठी नहिं छै रे, साकर सूंखड़ली ।।
(ध्रुपदं)

३. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे वि एवं चेव । रयणप्पभापुढविनेरइया एवं चेव । एवं जाव अणुत्तरोववाइया । (श० ८।३९२)

४. वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध प्रभु ! काल थकी कितो काल ?
जिन भाखै सर्व-बंध जघन्य थी, एक समय लग न्हाल ।।

४. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! सव्वबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं,

### सोरठा

५. वैक्रिय शरीर मांहि, ऊपजतो धुर समय जे ।
तथा लब्धि थी ताहि, वैक्रिय करतो धुर समय ।।

५. वैक्रियशरीरिषूत्पद्यमानो लब्धितो वा तत् कुर्वन् समयमेकं सर्वबन्धको भवतीत्येवमेकं समयं सर्वबन्ध इति । (वृ० प० ४०६)

६. *उत्कृष्टा बे समया कहियै, औदारिक तनु न्हालो ।
वैक्रिय पड़िवजतां धुर समये, सर्व-बंध ते भालो ।।
७. द्वितीय समय मरि देव नरक ह्वै, वैक्रिय तनु बांधंत ।
प्रथम समय सर्व-बंध कहीजै, इम बे समया हुंत ।।

६,७. उक्कोसेणं दो समया ।
औदारिकशरीरी वैक्रियतां प्रतिपद्यमानः सर्वबन्धको भूत्वा मृतः पुनर्नारकत्वं देवत्वं वा यदा प्राप्नोति तदा प्रथमसमये वैक्रियस्य सर्वबन्धक एवेतिकृत्वा वैक्रियशरीरस्य सर्वबन्धक उत्कृष्टतः समयद्वयमिति । (वृ० प० ४०६)

८. वैक्रिय तनु नौं देश-बंध ए, जघन्य समय इक जाणी ।
उत्कृष्टो तेतीस सागर है, समय ऊण पहिछाणी ।।

८. देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं (श० ८।३९३)

*लय : चौरासी में भमतां रे भमतां



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

| | |
|---|---|
| ९. वैक्रिय तनु सुविचार, देश-बंध धुर समय किम ?<br>औदारिक तनु धार, वैक्रिय पडिवजतो छतो ।। | ९. 'देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं' ति, कथं ? औदारिक-शरीरी वैक्रियतां प्रतिपद्यमानः (वृ० प० ४०६) |
| १०. प्रथम समय सर्व बंध, देश बंध द्वितीय समय ।<br>पाम्यो मरणज मंद, जघन्य थकी इक समय इम ।। | १०. प्रथमसमये सर्वबन्धको भवति द्वितीयसमये देशबन्धो भूत्वा मृत इत्येवं देशबन्धो जघन्यत एकं समयमिति । (वृ० प० ४०६) |
| ११. उत्कृष्टो अवलोय, तेतीस सागरोपम रहै ।<br>समय ऊण ते होय, ते किण रीत कहीजियै ? | ११. 'उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयऊणाइं' ति, कथम् ? (वृ० प० ४०६) |
| १२. नरक तथा सुर मांय, उत्कृष्टी स्थिति नें विषे ।<br>ऊपजतो कहिवाय, समय ऊण तेतीस उदधि ।। | १२. देवेषु नारकेषु चोत्कृष्टस्थितिषूत्पद्यमानः प्रथमसमये सर्वबन्धको वैक्रियशरीरस्य ततः परं देशबन्धकस्तेन सर्वबन्धकसमयेनोनानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कर्षतो देशबन्ध इति (वृ० प० ४०६) |
| १३. *वाऊकाय एकेंद्री पूछा, तब भाखै जिनराय ।<br>सर्व-बंध स्थिति एक समय नीं, हिव तसु कहियै न्याय ।। | १३. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियपुच्छा ।<br>गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, |

**सोरठा**

| | |
|---|---|
| १४. वाऊ तनु औदार, तेह थकी वैक्रिय गयो ।<br>प्रथम समय सुविचार, सर्वबंधकारक थयो ।। | १४,१५. वायुरौदारिकशरीरी सन् वैक्रियं गतस्ततः प्रथम-समये सर्वबन्धकः द्वितीयसमये देशबन्धको भूत्वा मृतः इत्येवं जघन्येनैको देशबन्धसमयः। (वृ० प० ४०६) |
| १५. दूजे समये संध, देश-बंध थइ नें मुओ ।<br>जघन्य थकी सर्व-बंध, एक समय वैक्रिय पवन ।। | |
| १६. *वाऊ वैक्रिय देश-बंध ते, जघन्य समय इक लहियै ।<br>उत्कृष्टो अंतर्मुहूर्त्त ते, न्याय तास इम कहियै ।। | १६. देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं । (श० ८।३९४) |

**सोरठा**

| | |
|---|---|
| १७. वाऊ तनु औदार, तेह थकी वैक्रिय गयो ।<br>अंतर्मुहूर्त्त धार, उत्कृष्टो रहै जीवतो ।। | १७. वैक्रियशरीरेण स एव यदाऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रमास्ते तदोत्कर्षतो देशबन्धोऽन्तर्मुहूर्त्तम् (वृ० प० ४०६) |
| १८. लब्धी वैक्रिय वाय, अंतर्मुहूर्त्त थी अधिक ।<br>वैक्रिय नहिं रहिवाय, अवश्य औदारिक फुन हुइं ।। | १८. लब्धिवैक्रियशरीरिणो जीवतोऽन्तर्मुहूर्त्तात्परतो न वैक्रियशरीरावस्थानमस्ति, पुनरौदारिकशरीरस्या-वश्यं प्रतिपत्तेरिति । (वृ० प० ४०६) |
| १९. *रत्नप्रभा नारक नीं पूछा, तब भाखै जगभाण ।<br>सर्व-बंध कारक स्थिति तेहनीं, एक समय पहिछाण ।। | १९. रयणप्पभापुढविनेरइयपुच्छा ।<br>गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, |
| २०. देश-बंधकारक ते जघन्य थी, दस सहस्र वर्ष विचार ।<br>तीन समय ऊणाज कहीयै, तास न्याय इम धार ।। | २०. देसबंधे जहण्णेणं दसवाससहस्साइं तिसमयूणाइं |

**सोरठा**

| | |
|---|---|
| २१. तीन समय नीं जाण, विग्रह-गति करि ऊपनों ।<br>रत्नप्रभा में आण, जेह जघन्य स्थिति नें विषे ।। | २१. त्रिसमयविग्रहेण रत्नप्रभायां जघन्यस्थितिर्नारकः समुत्पन्नः, (वृ० प० ४०६) |

---

*लय : चौरासी में भमतां रे भमतां



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. धुरला समया दोय, अनाहारक नां जाणवा ।
तृतीय समये सोय, सर्व-बंधकारक थयो ।।

२२. तत्र च समयद्वयमनाहारकस्तृतीये च समये सर्वबन्धकः
(वृ० प० ४०६)

२३. वैक्रिय नुं इम देख, धुर त्रिण समया ऊण जे ।
वर्ष सहस्र दस पेख, देश-बंध स्थिति जघन्य थी ।।

२३. ततो देशबन्धको वैक्रियस्य तदेवमाद्यसमयत्रयन्यूनं वर्ष-सहस्रदशकं जघन्यतो देशबन्धः,
(वृ० प० ४०६, ४०७)

२४. *रत्नप्रभा नारक नों देश-बंध, उत्कृष्टो जे काल ।
समय ऊण इक सागर कहियै, न्याय तास इम न्हाल ।।

२४. उक्कोसेणं सागरोवमं समयूणं ।

### सोरठा

२५. रत्नप्रभा में संध, अविग्रह उत्कृष्ट स्थिति ।
प्रथम समय सर्व-बंध, शेष समय ए देश-बंध ।।

२५. अविग्रहेण रत्नप्रभायामुत्कृष्टस्थितिर्नारकः समुत्पन्नः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको वैक्रियशरीरस्य ततः परं देशबन्धकः
(वृ० प० ४०७)

२६. *एवं यावत अधो सप्तमी, णवरं देश-बंध चीन ।
जेहनीं जेतलो जघन्य स्थिति छै, ऊणी समया तीन ।।

२६. एवं जाव अहे सत्तमा, नवरं—देसबंधे जस्स जा जहण्णिया ठिती सा तिसमयूणा कायव्वा

### सोरठा

२७. विग्रह समया तीन, ते ऊणी जे जघन्य स्थिति ।
सर्व नरक में लीन, जघन्य देश-बंध काल ए ।।

२७. देशबन्धश्च जघन्यो विग्रहसमयत्रयन्यूनो निजनिज-जघन्यस्थितिप्रमाणो वाच्यः । (वृ० प० ४०७)

२८. *जाव सर्व नारक उत्कृष्टो, देश-बंध नों काल ।
उत्कृष्टी स्थिति जेह नरक में, समय ऊण ते न्हाल ।।

२८. जाव उक्कोसिया सा समयूणा ।

२९. पंचेंद्री-तिर्यंच मनुष्य में, जिम कहि वाऊकाय ।
तिमहिज पाठ सर्व इहां कहिवा, निमल विचारी न्याय ।।

२९. पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाणं

### सोरठा

३०. वैक्रिय तनु सर्व-बंध, तिरि-पं० मनु इक समय छै ।
देश-बंध इम संध, जघन्य थकी इक समय ह्वै ।।

३०. पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां वैक्रियसर्वबन्ध एकं समयं देशबन्धस्तु जघन्यतः एकं समय (वृ० प० ४०७)

३१. उत्कृष्टो अवलोय, अंतर्मुहूर्त्त काल जे ।
जाव शब्द में जोय, तास न्याय कहूं वृत्ति थी ।।

३१. उत्कर्षेण त्वन्तर्मुहूर्त्तम् । (वृ० प० ४०७)

३२. नारक मुहूर्त्त भिन्न, चिउं तिर्यंच मनुष्य विषे ।
सुर अर्द्ध मास प्रपन्न, उत्कृष्ट विकुर्वण अद्धा[1] ।।

३२. अंतमुहुत्तं निरएसु होइ चत्तारि तिरियमणुएसु ।
देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणा कालो ।।
(वृ० प० ४०७)

### दूहा

३३. एह वचन सामर्थ थी, अंतर्मुहूर्त्त च्यार ।
देश-बंध नों काल ते, मतंतरे इम धार ।।

३३. इति वचनसामर्थ्यादन्तर्मुहूर्त्तचतुष्टयं तेषां देशबन्ध इत्युच्यते तन्मतान्तरमित्यवसेयमिति ।
(वृ० प० ४०७)

---

***लय : चौरासी में भमतां रे भमतां**

१. इस संदर्भ में जीवाभिगम (३।१२६) की गाथा इस प्रकार है—
भिन्नमुहुत्तो नरएसु, तिरियमणुएसु होंति चत्तारि ।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणा भणिया ।।



Jain Education International    For Private & Personal Use Only    www.jainelibrary.org

३४. ते माटै पंचेंद्री तिरि, मनुष्य विषे अवधार।
देश-बंध उत्कृष्ट थी, अंतर्मुहूर्त्त च्यार।।

३५. *असुर नाग जावत सुर अनुत्तर, जिम नारक तिम जाणं।
णवरं जेहनें स्थिति जिका छै, तेहिज भणी पिछाणं।।

३६. जाव अनुत्तरवासी सुरवर, वैक्रिय तास शरीरं।
सर्व-बंध नों काल समय इक, भाखै जिन महावीरं।।

३७. देश-बंध जघन्य इकतीस सागर, ऊणी समया तीन।
उत्कृष्टी सागर तेतीसज, एक समय छै हीन।।

३८. अंक नव्यासी नों देश कह्यु ए, एक सौ साठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल।।

३५. असुरकुमार-नागकुमार जाव अणुत्तरोववाइयाणं जहा नेरइयाणं, नवरं—जस्स जा ठिती सा भाणियव्वा

३६. जाव अणुत्तरोववाइयाणं सव्वबंधे एक्कं समयं।

३७. देसबंधे जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं तिसमयूणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं।
(श० ८।३६५)

## ढाल : १६१

### दूहा

१. वैक्रिय तनु प्रयोग-बंध, आख्यो तेहनों काल।
हिव तेहनां अंतर प्रतै, कहियै वचन रसाल।।

†जिन जी जयवंता।। (ध्रुपदं)

२. वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध नों, प्रभु ! काल थी अंतर कितनो रे?
जिन कहै अंतर सर्व-बंध नों, जघन्य थी एक समय नों रे।।

### सोरठा

३. औदारिक तनु जेह, वैक्रिय शरीर पाय कै।
प्रथम समय में तेह, सर्व-बंधकारक थयो।।

४. द्वितीये समये ताहि, देश-बंध थइ नें मुओ।
सुर तथा नारक मांहि, वैक्रिय शरीर नें विषे।।

५. अविग्रह उत्पन्न, प्रथम समय सर्व-बंध कहै।
इम इक समय वचन्न, सर्व-बंध नों अंतरो।।

६. †उत्कृष्ट काल अनंत पिछाणी, कालचक्र अनंता जाणी।
जाव आवलिका नें भाग असंख, पुद्गलपरावर्त्त पंक।।

### सोरठा

७. औदारिक तनु ताहि, वैक्रिय शरीर प्रति गयो।
तथा वैक्रिय मांहि, देवादिक में ऊपनों।।

१. उक्तो वैक्रियशरीरप्रयोगबन्धस्य कालः, अथ तस्यैवान्तरं निरूपयन्नाह— (वृ० प० ४०७)

२. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं

३. औदारिकशरीरी वैक्रियं गतः प्रथमसमये सर्वबन्धकः (वृ० प० ४०७)

४. द्वितीये देशबन्धको भूत्वा मृतो देवेषु नारकेषु वा वैक्रियशरीरिषु (वृ० प० ४०७)

५. अविग्रहेणोत्पद्यमानः प्रथमसमये सर्वबन्धक इत्येवमेकः समयः सर्वबन्धान्तरमिति (वृ० प० ४०७)

६. उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंताओ जाव (सं० पा०) आवलियाए असंखेज्जइभागो।

७. औदारिकशरीरी वैक्रियं गतो वैक्रियशरीरिषु वा देवादिषु समुत्पन्नः (वृ० प० ४०७)

*लय : चौरासी में भमतां रे भमतां
†लय : समझू नर विरला



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. प्रथम समय सर्व-बंध, पछै देश-बंध करि मरी ।
वनस्पत्यादिक संध, काल अनंतो त्यां रही ॥

९. वैक्रिय-शरीरवंत, तेहमें उपजी धुर समय ।
सर्व-बंध ते हुंत, अनंत काल इम अंतरो ॥

१०. *देश-बंध पिण इमहिज होय, जघन्य समय इक जोय ।
उत्कृष्ट काल अनंतो कहियै, न्याय पूर्ववत लहियै ॥

११ वाउकाय वैक्रिय-तनु पृच्छा, जिन कहै सुण धर इच्छा ।
सर्व-बंध नुं अंतर जानं, जघन्य अंतर्मुहूर्त्त मानं ॥

## सोरठा

१२. वाऊ-तनु औदार, ते वैक्रिय गति धुर समय ।
सर्व-बंध अवधार, मर वलि वाऊ इज थयो ॥

१३. तसु अपर्याप्त काल, वैक्रिय शक्ति न तेहमें ।
अंतर्मुहूर्त्त न्हाल, पछै पर्याप्त ते थइ ॥

१४. ते वैक्रिय प्रारंभ, सर्व-बंध पहिले समय ।
अंतर्मुहूर्त्त लंभ, अंतर इम सर्व-बंध नों ॥

१५. *वाउकाय वैक्रिय तनु दृष्ट, अंतर सर्व-बंध उत्कृष्ट ।
पल्य तणो असंख्यातमों भाग, तास न्याय इम माग ॥

## सोरठा

१६. वाऊ तनु औदार, वैक्रिय-गत पहिलै समय ।
सर्व-बंध अवधार, पछै देश-बंध थइ मुओ ॥

१७. पछै औदारिक वाय, तेह विषे बहु भव किया ।
पल्य तणोंज कहाय, असंख्यातमों भाग रही ॥

१८. वैक्रिय अवश्य करंत, तत्र सर्व-बंध धुर समय ।
यथोक्त अंतर हुंत, सर्व-बंध नों इह विधे ॥

१९. *वाउकाय वैक्रिय तनु जाणी, देश-बंध नों पिछाणी ।
सर्व-बंध तणो जिण रीत, जघन्य उत्कृष्ट संगीत ॥

२०. तिरि पंचेंद्रिय वैक्रिय पृच्छा, जिन कहै सुण धर इच्छा ।
सर्व-बंध नुं अंतर जन्य, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य ॥

---

*लय : समभू नर विरला

८. स च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा देशबन्धं च कृत्वा मृतः ततः परमनन्तं कालमौदारिकशरीरिषु वनस्पत्यादिषु स्थित्वा (वृ० प० ४०७)

९. वैक्रियशरीरवत्सूत्पन्नः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको जातः, एवं च सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तरं भवतीति (वृ० प० ४०७)

१०. एवं देसबंधंतरं पि । (श० ८।३९६)
जघन्येनैकं समयमुत्कृष्टतोऽनन्तं कालमित्यर्थः, भावना चास्य पूर्वोक्तानुसारेणेति (वृ० प० ४०७)

११. वाउक्काइयवेउव्वियसरीरपुच्छा ।
गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

१२. वायुरौदारिकशरीरी वैक्रियमापन्नः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा मृतः पुनर्वायुरेव जातः । (वृ० प० ४०७)

१३. तस्य चापर्याप्तकस्य वैक्रियशक्तिर्नाविर्भवतीत्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रेणासौ पर्याप्तको भूत्वा । (वृ० प० ४०७)

१४. वैक्रियशरीरमारभते, तत्र चासौ प्रथमसमये सर्वबन्धको जात इत्येवं सर्वबन्धान्तरमंतर्मुहूर्त्तमिति । (वृ० प० ४०७)

१५. उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं ।

१६. वायुरौदारिकशरीरी वैक्रियं गतः, तत्प्रथमसमये च सर्वबन्धकस्ततो देशबन्धको भूत्वा मृतः । (वृ० प० ४०७)

१७. ततः परमौदारिकशरीरिषु वायुषु पल्योपमासंख्येयभागमतिवाह्य

१८. अवश्यं वैक्रियं करोति, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकः, एवं च सर्वबंधयोर्यथोक्तमन्तरं भवतीति (वृ० प० ४०७)

१९. एवं देसबंधंतरं पि । (श० ८।३९७)

२०. तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधंतरंपुच्छा ।
गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. उत्कृष्ट पृथक पूर्व-कोड़ि, आगल न्याय सुजोड़ि ।
देश-बंध अंतर पिण एम, मनुष्य तणों पिण तेम ।।

२१. उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहुत्तं । एवं देसबंधंतरं पि । एवं मणूसस्स वि । (श० ८।३९८)

**सोरठा**

२२. पंचेंद्रिय तिर्यंच, वैक्रिय तनु सर्व-बंध नों ।
अंतर जघन्य सुसंच, अंतर्मुहूर्त्त किण विधे ?

२२. 'तिरिक्खे' त्यादि, सव्वबन्धंतरं जहन्नेणं 'अंतोमुहुत्तं' ति, कथं ? (वृ० प० ४०७)

२३. तिरि पंचेंद्री जोय, वैक्रिय गत पहिलै समय ।
सर्व-बंध ते होय, पछै देश-बंधकारकः ।।

२३. पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वैक्रियं गतः तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकस्ततः परं देशबन्धकः (वृ० प० ४०७)

२४. अंतर्मुहूर्त्त काल, देश-बंध वैक्रिय रही ।
वलि औदारिक न्हाल, सर्व-बंधकारक थई ।।

२४. अन्तर्मुहूर्त्तमात्र तत औदारिकस्य सर्वबन्धको भूत्वा (वृ० प० ४०७)

२५. समय विषेज जगीस, देश-बंधकारक हुवो ।
तिहां अंतर्मुहूर्त्त रहीस, वलि वैक्रिय मन ऊपनी ।।

२६. वैक्रिय वली करंत, सर्व-बंध पहिलै समय ।
बिहुं सर्व-बंध नो हुंत, अंतर्मुहूर्त्त अंतरो ।।

२५,२६. समयं देशबन्धको जातः पुनरपि श्रद्धेयमुत्पन्ना वैक्रियं करोमीति पुनर्वैक्रियं कुर्वतः प्रथमसमये सर्वबन्धः, एवं च सर्वबन्धयोर्यथोक्तमन्तरं भवतीति (वृ० प० ४०७)

**वा०**—इहां तिर्यंच वैक्रिय नों सर्व-बंध नों अंतर अंतर्मुहूर्त्त नों कह्यो, ते अंतर्मुहूर्त्त नां असंख्याता भेद छै । तेहथी बे अंतर्मुहूर्त्त नैं पिण अंतर्मुहूर्त्त कहियै ।

२७. पंचेंद्रिय तिर्यंच, वैक्रिय तनु सर्व-बंध नों ।
उत्कृष्ट अंतर संच, पृथक पूर्व कोड़ किम ?

२७. 'उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं' ति कथम् ? (वृ० प० ४०७)

२८. पंचेंद्री तिर्यंच, पूर्व कोड स्थिति नों धणी ।
वैक्रिय करतां संच, सर्व-बंध पहिलै समय ।।

२८. पूर्वकोट्यायुः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको वैक्रियं गतः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धकः (वृ० प० ४०७)

२९. पछै देशबंध सोय, कालांतर पामी मरण ।
तिरि-पंचेंद्री होय, कोड़ि-पूर्व नैं आउखै ।।

३०. पूर्व जनम सहीत, सप्त वार अथवाज अठ ।
तिरि पंचेंद्री लभीत, कोड़ि-पूर्व नैं आउखै ।।

२९,३०. ततो देशबन्धको भूत्वा कालान्तरे मृतस्तत्र पूर्वकोट्यायुः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्ष्वेवोत्पन्नः पूर्वजन्मना सह सप्ताष्टौ वा वारान् (वृ० प० ४०७)

३१. सप्तम भव में तेह, तथा आठमां भव विषे ।
वैक्रिय तनू करेह, सर्व-बंध पहिलै समय ।।

३२. पछै देश-बंध होय, इम दोनूं सर्व-बंध नों ।
उत्कृष्ट अंतर जोय, पृथक पूर्व-कोड़ि वरस ।।

३१,३२. ततः सप्तमेऽष्टमे वा भवे वैक्रियं गतः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धं कृत्वा देशबन्धं करोतीति, एवं च सर्वबन्धयोरुत्कृष्टं यथोक्तमन्तरं भवतीति । (वृ० प० ४०७)

३३. देश बंधंतर एम, कहिवो पूरव भावना ।
तिरि-पंचेंद्री जेम, कहिवो इमहिज मनुष्य नैं ।।

३३. 'एवं देशबंधंतरंपि' त्ति, भावना चास्य सर्वबन्धान्तरोक्तभावनानुसारेण कर्त्तव्येति । (वृ० प० ४०७)

३४. हिव वैक्रिय तनु जेह, प्रयोग-बंध नुं अंतरो ।
अन्य प्रकारे तेह, कहियै छै निसुणो तिको ।।

३४. वैक्रियशरीरबन्धान्तरमेव प्रकारान्तरेण चिन्तयन्नाह— (वृ० प० ४०७)

३५. *हे भगवंत ! जीव नैं ताम, वाउकायपणुं पाम ।
पछै हुवो अवाउकाय, ऊपनो पृथव्यादिक मांय ।।

३५. जीवस्स णं भंते ! वाउक्काइयत्ते, नोवाउक्काइयत्ते

३६. ते वलि थयो वाउ एकेंदी, वैक्रिय तनु प्रयोग बंधी ।
तसु वैक्रिय अंतर तनु केतो? जिन कहै सुण धर चेतो ।।

३६. पुणरवि वाउकाइयत्ते वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियपुच्छा ।

*लय : समझू नर विरला



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. सर्व-बंध नों अंतर जघन्न, अंतर्मुहूर्त्त प्रपन्न ।
उत्कृष्ट थकी अनंतो काल, वनस्पति अद्धा न्हाल ।।

**सोरठा**

३८. वाउ अवाऊ वाय, वैक्रिय सर्व-बंधक तणो ।
अंतर जघन्य कहाय, अंतर्मुहूर्त्त किण विधे ?
३९. वाऊ वैक्रिय पाय, सर्व-बंध पहिलै समय ।
मरि हुवै पृथ्वीकाय, खुड्डाग भव रहिनैं तिको ।।

४०. वलि ह्वै वाऊकाय, त्यां पिण केइक क्षुलक भव ।
रही वैक्रिय वाय, सर्व-बंध पहिलै समय ।।

४१. वैक्रिय तनु नों जोय, अंतर बेहुं सर्व-बंध नों ।
घणां क्षुलक भव होय, इम बहु अंतर्मुहूर्त्त ह्वै ।।
४२. अंतर्मुहूर्त्त मांय, घणां क्षुलक भव जिन कह्या ।
ते माटै कहिवाय, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी ।।

४३. उत्कृष्ट काल अनंत, वाऊ वैक्रिय तनू छतो ।
वनस्पत्यादिक हुंत, काल अनंत तिहां रही ।।
४४. वलि हुवै वाऊकाय, वैक्रिय शरीर लाधस्यै ।
अनंत काल इम थाय, उत्कृष्ट अंतर सर्व-बंध ।।
४५. वाउ अवाऊ वाय, सर्व-बंध अंतर कह्यो ।
इणहिज रीत कहाय, देश-बंध पिण जाणवुं ।।

४६. *हे प्रभुजी ! जीव रत्नप्रभाइं, नारकपणें ते थाइं ।
नोरत्नप्रभा नें विषे उपजंत, वलि रत्नप्रभा में गच्छंत ?

४७. जिन कहै सर्व बंधंतर तास, जघन्य सहस्र दश वास ।
अंतर्मुहूर्त्त अधिक वलि न्हाल, उत्कृष्ट वणस्सइ-काल ।।

**सोरठा**

४८. रत्न प्रभा में संध, वर्ष सहस्र दश स्थिति विषे ।
प्रथम समय सर्व-बंध, पछै देशबंध थइ मरी ।।
४९. पचेंद्री तिर्यंच, सन्नी विषेज ऊपनो ।
अंतर्मुहूर्त्त संच, रहि वलि रत्नप्रभा गयो ।।
५०. प्रथम समय सर्व-बंध, इम बेहुं सर्व-बंध नों ।
यथोक्त अंतर संध, जघन्य थकी ए जाणवो ।।
५१. प्रथम रत्नप्रभा मांहि, त्रिसमय विग्रह थयो ।
तो पिण दस सहस्र ताहि, तीन समय ऊणी न ह्वै ।।

*लय : समभू नर विरला

३७. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो ।

३८. 'सव्वबंधंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति कथम् ।
(वृ० प० ४०८)
३९. वायुर्वैक्रियशरीरं प्रतिपन्नः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको भूत्वा मृतस्ततः पृथिवीकायिकेषूत्पन्नः तत्रापि क्षुल्लकभवग्रहणमात्रं स्थित्वा (वृ० प० ४०८)
४०. पुनर्वायुर्जातः, तत्रापि कतिपयान् क्षुल्लकभवान् स्थित्वा वैक्रियं गतः, तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धको जातः (वृ० प० ४०८)
४१. ततश्च वैक्रियस्य सर्वबन्धयोरन्तरं बहवः क्षुल्लकभवास्ते च बहवोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, (वृ० प० ४०८)
४२. अन्तर्मुहूर्त्ते बहूनां क्षुल्लकभवानां प्रतिपादितत्वात्, ततश्च सर्वबन्धान्तरं यथोक्तं भवतीति
(वृ० प० ४०८)
४३. वायुर्वैक्रियशरीरीभवन् मृतो वनस्पत्यादिष्वनन्तकालं स्थित्वा, (वृ० प० ४०८)
४४. वैक्रियशरीरं पुनर्यदा लप्स्यते तदा यथोक्तमन्तरं भविष्यतीति (वृ० प० ४०८)
४५. एवं देसबंधंतरं पि । (श० ८।३९९)

४६. जीवस्स णं भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते, नोरयणप्पभापुढविनेरइयत्ते पुणरवि रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते —पुच्छा ।
४७. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

४८. रत्नप्रभानारको दशवर्षसहस्रस्थितिक उत्पत्तौ सर्वबन्धकः, ततः उद्धृतस्तु (वृ० प० ४०८)
४९. गर्भजपञ्चेन्द्रियेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा रत्नप्रभायां पुनरप्युत्पन्नः (वृ० प० ४०८)
५०. तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धक इत्येवं सूत्रोक्तं जघन्यमन्तरं सर्वबन्धयोरिति, (वृ० प० ४०८)
५१. अयं च यद्यपि प्रथमोत्पत्तौ त्रिसमयविग्रहेणोत्पद्यते तदापि न दशवर्षसहस्राणि त्रिसमयन्यूनानि भवन्ति
(वृ० प० ४०८).

५२. अन्तर्मुहूर्त्त काल, तेह मांहि थी समय त्रिण।
दस सहस्र वर्ष में न्हाल, प्रक्षेप्यां पूरण हुवै॥
५३. अंतर्मुहूर्त्त काल, तो पिण ते विगटै नहीं।
भेद असंख निहाल, अंतर्मुहूर्त्त नां अछै॥
५४. उत्कृष्ट काल अनंत, रत्नप्रभा धुर समय में।
सर्व-बंधको हुंत, नीकल तिरि-पं० मनुष्य ह्वै॥
५५. वनस्पत्यादिक मांय, काल अनंत रही वलि।
रत्नप्रभा में जाय, सर्व-बंधकारक हुवै॥

५६. *देश-बंध नुं अंतर तास, जघन्य अंतर्मुहूर्त्त विमास।
उत्कृष्ट काल अनन्त निहालो, वनस्पती नों कालो॥

**सोरठा**

५७. रत्नप्रभा रै मांय, देश-बंध करतो मरी।
तिरि-पंचेंद्री थाय, अंतर्मुहूर्त्त आउखै॥
५८. ते मरि नै उपजंत, रत्नप्रभा नारक विषे।
द्वितीय समय में हुंत देश-बंधकारक तदा॥
५९. जघन्य थकी इम जोय, देश-बंध नुं अंतरो।
अंतरर्मुहूर्त्त होय, उत्कृष्ट पूर्व भावना॥

६०. *एवं यावत सातमीं जोय, णवरं विशेष ए होय।
सर्व नरक नैं विषे पहिछाणी, जेहनीं जघन्य स्थिति
जिका जाणी॥

६१. सर्व-बंध नों अंतर तास, कांइ जघन्य थकी सुविमास।
अंतर्मुहूर्त्त अधिको कहिवो, शेष थाकतो तिमहिज लहिवो॥

**सोरठा**

६२. सकरप्रभा थी जाण, एक तीन अरु सप्त दश।
सतर बावीस पिछाण, सागर ए स्थिति जघन्य है॥
६३. जघन्य स्थिति थी जोय, अंतरर्मुहूर्त्त अधिक ही।
सर्व-बंध नों होय, जघन्य थकी अंतर कह्यो॥
६४. उत्कृष्टो इम न्हाल, सर्व-बंध नों अंतरो।
वनस्पती नों काल, असंखेज्ज पुद्गल परा॥
६५. सकरप्रभा थी मन्य, देश-बंध नों अंतरो।
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य, उत्कृष्ट वनस्पति अद्धा॥

६६. *पंचेंद्री-तिर्यंच मनुष्य नों पेख, वाउकाय जिम देख।
जघन्य अंतर्मुहूर्त्त अंतर हुंत, उत्कृष्ट काल अनंत॥

*लय : समभू नर विरला

५२. अन्तर्मुहूर्त्तस्य मध्यात्समयत्रयस्य तत्र प्रक्षेपात्
(वृ० प० ४०८)
५३. न च तत्प्रक्षेपेऽप्यन्तर्मुहूर्त्तस्यान्तर्मुहूर्त्तत्वव्याघातस्तस्यानेकभेदत्वादिति (वृ० प० ४०८)
५४, ५५. रत्नप्रभानारक उत्पत्तौ सर्वबन्धकस्तत उद्धृतश्चानन्तं कालं वनस्पत्यादिषु स्थित्वा पुनस्तत्रैवोत्पद्यमानः सर्वबन्धक इत्येवमुत्कृष्टमन्तरमिति,
(वृ० प० ४०८)

५६. देसबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो

५७. रत्नप्रभानारको देशबन्धकः सन् मृतोऽन्तर्मुहूर्त्तायुः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्तयोत्पद्य (वृ० प० ४०८)
५८. मृत्वा रत्नप्रभानारकतयोत्पन्नः, तत्र च द्वितीयसमये देशबंधकः (वृ० प० ४०८)
५९. इत्येवं जघन्यं देशबन्धान्तरमिति, 'उक्कोसेण' मित्यादि, भावना प्राग्युक्तानुसारेणेति
(वृ० प० ४०८)

६०. एवं जाव अहेसत्तमाए, नवरं—जा जस्स ठिती जहण्णिया

६१. सा सव्वबंधंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव।

६२. द्वितीयादिपृथिवीषु च जघन्या स्थितिः क्रमेणैकं त्रीणि सप्त दश सप्तदश द्वाविंशतिश्च सागरोपमाणीति।
(वृ० प० ४०८)

६६. पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाणं



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. असुरकुमार नें नागकुमार, यावत सुर सहसार।
रत्नप्रभा जिम कहिवो संपेख, णवरं इतरो विशेख ।।
६८. सर्व-बंध नों अंतर एह, जेहनीं जघन्य स्थिति जेह।
अंतर्मुहूर्त्त अधिक कहेव, शेष विस्तार तं चेव ।।

## सोरठा

६९. असुर जाव सहसार, सुर उत्पत्ति पहिलै समय।
सर्व-बंध अवधार, जघन्य स्थिति निज भोगवी ।।

७०. तिरि-पंचेंद्री मांय, अंतर्मुहूर्त्त भव करी।
मर त्यां उपजै आय, सर्व-बंध वलि ते हुवो ।।

७१. इम वैक्रिय नों तास, सर्व बंधंतर जघन्य थी।
तसु स्थिति जघन्य विमास, अंतर्मुहूर्त्त अधिक इम ।।

७२. असुरादिक नीं जोय, जघन्य स्थिति ओलखावियै।
वर्ष सहस्र दस होय, भवनपती व्यंतर तणी ।।
७३. देव जोतिषि माहि, भाग आठमों पल्य तणो।
सौधर्म स्वर्गे ताहि, जघन्य स्थिति छै एक पल्य ।।
७४. साधिक पल्ल ईशाण, सणंतकुमारे बे उदधि।
महेन्द्र कल्पे माण, सागर बे जाझी कही ।।
७५. ब्रह्म सप्त दधि सार, दस सागर लंतक विषे।
महाशुक्र दस च्यार, अष्टम सतरै जघन्य स्थिति ।।
७६. जघन्य स्थिति ए जोय, अंतर्मुहूर्त्त अधिक ही।
जघन्य थकी अवलोय, सर्व-बंध नों अंतरो ।।
७७. उत्कृष्ट-काल अनंत, न्याय पूर्ववत जाणवूं।
श्री जिन वचन सोहंत, शंका मूल म आणवूं ।।

७८. *हे भगवंत ! जीव जे ताहि, आनत सुरपणें थाइ।
नोआनत थइ वलि सुर आनत, अंतर कितो कहावत ?
७९. जिन कहै सागर अठारै तास, अधिका है पृथक वास।
उत्कृष्ट काल अनंत प्रसिद्धा, वनस्पति नों अद्धा ।।

## सोरठा

८०. आनत कल्पे देव, ऊपजतां पहिलै समय।
ए सर्व-बंध कहेव, उदधि अठार तिहां रही।
८१. चवी मनुष्य में आय, आयु पृथक-वर्ष रही।
वलि आनत सुर थाय, सर्व-बंध पहिलै समय ।।

*लय : समभू नर विरला

६७. असुरकुमार-नागकुमार जाव सहस्सारदेवाणं—एएसिं जहा रयणप्पभापुढविनेरइयाणं, नवरं—

६८. सव्वबंधंतरं जस्स जा ठिती जहण्णिया सा अंतोमुहुत्त-मब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव। (श० ८।४००)

६९. असुरकुमारादयस्तु सहस्रारान्ता देवा उत्पत्तिसमये सर्वबन्धं कृत्वा स्वकीयां च जघन्यस्थितिमनुपाल्य (वृ० प० ४०८)

७०. पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तायुष्कत्वेन समुत्पद्य मृत्वा च तेष्वेव सर्वबन्धका जाताः (वृ० प० ४०८)

७१. एवं च तेषां वैक्रियस्य जघन्यं सर्वबन्धान्तरं जघन्या तत्स्थितिरन्तर्मुहूर्त्ताधिका वक्तव्या, (वृ० प० ४०८)

७२. तत्र जघन्या स्थितिरसुरकुमारादीनां व्यन्तराणां च दशवर्षसहस्राणि (वृ० प० ४०८)

७३-७५. ज्योतिष्काणां पल्योपमाष्टभागः सौधर्मादिषु तु 'पलियमहियं दो सार साहिया सत्त दस य चोद्दस य सत्तरस य' इत्यादि। (वृ० प० ४०८)

७७. उत्कृष्टं त्वनन्तं कालं, यथा रत्नप्रभानारकाणामिति (वृ० प० ४०८)

७८. जीवस्स णं भंते ! आणयदेवत्ते, नोआणयदेवत्ते पुणरवि आणयदेवत्ते पुच्छा।

७९. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अट्ठारससागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो।

८०. आनतकल्पीयो देव उत्पत्तौ सर्वबन्धकः, स चाष्टादश-सागरोपमाणि तत्र स्थित्वा (वृ० प० ४०८)

८१. ततश्च्युतो वर्षपृथक्त्वं मनुष्येषु स्थित्वा पुनस्तत्रैवो-त्पन्नः प्रथमसमये चासौ सर्वबन्धकः (वृ० प० ४०८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. बिहुं सर्व-बंध नों धार, जघन्य थकी तसु अंतरो।
आख्या उदधि अठार, अधिका पृथक-वर्ष इम ॥
८३. उत्कृष्ट काल अनंत, आनत सुर चव नर थई।
वनस्पत्यादिक हुंत, वलि आनत सुर सर्व-बंध ॥

८४. *आनत नोआनत वलि आनत, देश-बंध नों पावत।
जघन्य पृथक-वर्ष अंतर न्हाल, उत्कृष्ट वणस्सइ-काल ॥

**सोरठा**

८५. आनत सुर भव छेह, देशबंध करतो चवी।
मनुष्यपणें ऊपजेह, वर्ष-पृथक नैं आउखै ॥
८६. वलि आनत सुर थाय, सर्व-बंध थइ देश-बंध।
जघन्य थकी इम पाय, देश बंधांतर पृथक-वर्ष ॥
८७. इहां यद्यपि सर्व-बंध, समयाधिक वर्ष-पृथक ह्वै।
तथापि तेहनों संध, वर्ष-पृथक में वंछियै ॥
८८. उत्कृष्ट काल अनंत, आनत सुर चव नर थइ।
वनस्पत्यादिक हुंत, वलि आनत सर्व देश-बंध ॥

८९. *इम जाव अच्चु नवरं स्थिति जास, तिका सर्व बंधांतरे तास।
जघन्य पृथक-वर्ष अधिकज कहिवुं, शेष पूर्ववत लहिवुं ॥

९०. ग्रैवेयक कल्पातीत नीं पृच्छा, सर्व-बंधांतर इच्छा।
जघन्य बावीस उदधि पृथक-वास, उत्कृष्ट अनंत काल तास ॥

९१. देश-बंधांतर जघन्य थी ताय, वास-पृथक कहिवाय।
उत्कृष्ट वनस्पति नों काल, न्याय पूर्ववत न्हाल ॥

**सोरठा**

९२. हरिभद्र सूरि कृत तेह, 'जीव-समास' विषे कह्युं।
तृतीय कल्प सूं लेह, सहसार नां सुर जिकै ॥
९३. जघन्य थकी आख्यात, नव दिन मनु आयू थकी।
तृतीय कल्प उपपात, यावत अष्टम कल्प में ॥
९४. आनतादिक कल्प चार, नवमासायू मनु थकी।
उपजै इम वृत्तिकार, कह्युं मतांतर तेहनें ॥
९५. 'सूत्र थकी ए विरुद्ध, 'जीव-समास' विषे कह्युं।
बातां विविध असुद्ध, प्रकरण टीका में कही ॥

८२. इत्येवं सर्वबन्धान्तरं जघन्यमष्टादश सागरोपमाणि वर्षपृथक्त्वाधिकानीति (वृ० प० ४०८)

८३. उत्कृष्टं त्वनन्तं कालं, कथम् ? स एव तस्माच्च्युतोऽनन्तं कालं वनस्पत्यादिषु स्थित्वा पुनस्तत्रैवोत्पन्नः प्रथमसमये चासौ सर्वबन्धक इत्येवमिति (वृ० प० ४०८)

८४. देशबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो

८५. स एव देशबन्धकः संश्च्युतो वर्षपृथक्त्वं मनुष्यत्वमनुभूय (वृ० प० ४०८)

८६. पुनस्तत्रैव गतस्तस्य च सर्वबन्धानन्तरं देशबन्ध इत्येवं सूत्रोक्तमन्तरं भवति। (वृ० प० ४०८)

८७. इह च यद्यपि सर्वबन्धसमयाधिकं वर्षपृथक्त्वं भवति तथापि तस्य वर्षपृथक्त्वादनर्थान्तरत्वविवक्षया न भेदेन गणनमिति, (वृ० प० ४०८)

८९. एवं जाव अच्चुए, नवरं—जस्स जा ठिती सा सव्वबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव। (श० ८।४०१)

९०. गेवेज्जाकप्पातीतापुच्छा।
गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं—वणस्सइकालो।

९१. देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो (श० ८।४०२)

९२-९४. अथ सनत्कुमारादिसहस्रारान्ता देवा जघन्यतो नवदिनायुष्केभ्यः आनताद्यच्युतान्तास्तु नवमासायुष्केभ्यः समुत्पद्यन्त इति जीवसमासेऽभिधीयते,······ केवलं मतान्तरमेवेदमिति। (वृ० प० ४०८, ४०९)

*लय : समभू नर विरला



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६. चउवीसम शतकेह, चउवीसम उद्देशके।
मनुष्य थकी उपजेह, सनतकुमारादिक विषे।
९७. जघन्य थकी तो जोय, पृथक-वर्षायु मनु थकी।
उत्कृष्टो अवलोय, पूर्व-कोड़ आयू थकी।।
९८. ते कारण थी जेह, जीव-समास विषे कही।
नव दिन नव मासेह, एह सूत्र थी नहिं मिलै[1] ।। (ज० स०)

९९. *अनुत्तर विमान नीं पूछा सुजन्न,
सर्व बंधांतर जघन्न।
इकतीस उदधि पृथक-वर्ष थात,
उत्कृष्ट सागर संख्यात।।
१००. देश-बंध नों अंतर तास, जघन्य थी पृथक वास।
उत्कृष्ट सागरोपम संख्यातं, विमल न्याय अवदातं।।

**सोरठा**

१०१. अनुत्तर विमान नों जोय, सर्व-बंध देश-बंध नों।
उत्कृष्ट अंतरो सोय, संख्याता सागर कह्यो।।

१०२. अनुत्तर विमान थीज, चवी अनंतो काल जे।
निश्चै रुलै नहींज, तिण सूं संख्याता उदधि।।
१०३. हिवै वैक्रिय जेह, देश बंधगादिक तणो।
अल्पबहुत्व कहेह, चित्त लगाई सांभलो।।
१०४. *ए प्रभु ! जीव वैक्रिय तनु केरा,
देश सर्व-बंध घणेरा।
अबंधगा कुण कुण थी पेख,
यावत अधिक विशेख ?
१०५. सर्व थी थोड़ा वैक्रियवंत, सर्व-बंधगा जंत।
एक समय नों काल छै ताय,
तिण सूं सर्व थी थोड़ा कहाय।।

१०६. देश बंधगा असंखगुण पाय, काल असंखगुणा रै न्याय।
अबंधगा अनंतगुणा कहाय, सिद्ध वनस्पत्यादि पेक्षाय।।
१०७. अंक निव्यासी नो देश निहाल, एक सौ इकसठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद,
'जय-जश' हरष अह्लाद।।

*लय : समभू नर बिरला

९६, ९७. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जति ? मणुस्साणं जहेव सक्करप्पभाए उववज्जमाणाणं तहेव नव वि गमा भाणियव्वा, नवरं सणंकुमारट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा[1]। (भ० श० २४।३५१)

९९. जीवस्स णं भंते ! अणुत्तरोववाइयपुच्छा।
गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं।
१००. देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं। (श० ८।४०३)

१०१. अनुत्तरविमानसूत्रे तु 'उक्कोसेण' मित्यादि, उत्कृष्टं सर्वबन्धान्तरं देशबन्धान्तरं च संख्यातानि सागरोपमाणि, (वृ० प० ४०९)
१०२. यतो नानन्तकालमनुत्तरविमानच्युतः संसरति।
(वृ० प० ४०९)
१०३. अथ वैक्रियशरीरदेशबन्धकादीनामल्पत्वादिनिरूपणायाह— (वृ० प० ४०९)
१०४. एएसि णं भंते ! जीवाणं वेउव्वियसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा ?

१०५. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधगा,
तत्र सर्वस्तोका वैक्रियसर्वबन्धकास्तत् कालस्याल्पत्वात् (वृ० प० ४०९)
१०६. देसबंधगा असंखेज्जगुणा, अबंधगा अणंतगुणा।
(श० ८।४०४)
देशबन्धका असंख्यातगुणास्तत्कालस्य तदपेक्षयाऽसंख्येयगुणत्वात्, अबन्धकास्त्वनन्तगुणा सिद्धानां वनस्पत्यादीनां च तदपेक्षयाऽनन्तगुणत्वादिति।
(वृ० प० ४०९)

१. इस ढाल की ९६ एवं ९७ वीं गाथा के सामने उद्धृत भगवती के पाठ में स्थिति के बारे में सनतकुमार देवों की भोलावण दी गई है, किन्तु सनतकुमार देवों के प्रसंग में शर्कप्रभा नारकी की भोलावण दे दी गई है। इसलिए इस सन्दर्भ में चौवीसवें शतक का १०८ वां सूत्र द्रष्टव्य है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध स्थिति-सूचक यन्त्र :**

| प्रथम यंत्र | सर्वबंध स्थिति | | देशबंध स्थिति | |
|---|---|---|---|---|
| | जघन्य | उत्कृष्ट | जघन्य | उत्कृष्ट |
| समुच्चय वैक्रिय शरीर प्रयोग-बन्ध नीं स्थिति | १ समय | २ समय | १ समय | ३३ सागर १ समय ऊण |
| वाउ वैक्रिय शरीर प्रयोग-बन्ध···· | जघन्य-उत्कृष्ट १ समय | | १ समय | अंतर्मुहूर्त्त |
| रत्नप्रभा वैक्रिय शरीर प्रयोग-बन्ध···· | ,, | | ३ समय ऊण दस हजार वर्ष | १ समय ऊण १ सागर |
| शेष ६ नरक अनैं १० भवनपति, व्यंतर जोतिषि वैमानिक···· | ,, | | ३ समय ऊणी जेहनैं जेतली स्थिति छै तेतली | १ समय ऊण जेहनैं जेतली स्थिति छै तेतली |
| तिर्यंच पचेंद्री मनुष्य···· | ,, | | १ समय | अंतर्मुहूर्त्त |

**वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध नो अंतर-सूचक यन्त्र**

| द्वितीय यन्त्र | सर्वबंध अंतर | | देशबंध अंतर | |
|---|---|---|---|---|
| वैक्रिय अंतर | जघन्य १ समय | उत्कृष्ट अनंत वणस्सइ काल | जघन्य १ समय | उत्कृष्ट अनंत वणस्सइ काल |
| वाउ-वैक्रिय अंतर | अंतर्मुहूर्त्त | पल्य नों असंख्यातमो भाग | अंतर्मुहूर्त्त | पल्य नों असंख्यातमों भाग |
| पचेंद्री तिर्यंच, मनुष्य वैक्रिय अंतर | अंतर्मुहूर्त्त | प्रत्येक पूर्व कोड़ि | अंतर्मुहूर्त्त | प्रत्येक पूर्व कोड़ि |

**जीव वाउकायपणें ऊपजी पछै नोवाउकायपणें थइ पुनरपि वाउकायपणें ऊपजै तेहनै अंतर नो यंत्र। इमहिज तिर्यञ्च पंचेन्द्री, मनुष्य, नारकी अनैं देवता नो पिण जाणवो**

| तृतीय यंत्र | सर्वबंध अंतर | | देशबंध अंतर | |
|---|---|---|---|---|
| वाउ, तिर्यंच पंचेंद्री, मनुष्य | जघन्य अंतर्मुहूर्त्त | उत्कृष्ट अनंतकाल— वनस्पति काल | जघन्य अंतर्मुहूर्त्त | उत्कृष्ट अनंत काल— वनस्पति काल |
| रत्नप्रभा नोरत्नप्रभा पुनरपि रत्नप्रभा | अंतर्मुहूर्त्त अधिक १० हजार वर्ष | वनस्पति काल | अंतर्मुहूर्त्त | वनस्पति काल |
| शेष छह नरक, भवन-पत्यादि जाव सहसार देवलोक | अंतर्मुहूर्त्त अधिक जेहनैं जेतली स्थिति | वनस्पति काल | अंतर्मुहूर्त्त | वनस्पति काल |
| आणतादिक जाव नव ग्रैवेयक | प्रत्येक वर्ष अधिक जेहनैं जेतली स्थिति | वनस्पति काल | प्रत्येक वर्ष | वनस्पति काल |
| चार अनुत्तर विमान नां सुरपणैं | प्रत्येक वर्ष ३१ सागर | संख्याता सागर | प्रत्येक वर्ष | संख्याता सागर |

**वैक्रिय शरीर नां देशबंधक सर्वबंधक अबंधक में अल्पबहुत्व यंत्र**

| चतुर्थ यंत्र | सर्वबंधक | देशबंधक | अबंधक |
|---|---|---|---|
| अल्पबहुत्व | सर्व थी थोड़ा | असंखगुणा | अनंतगुणा |



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## ढाल : १६२

### दूहा

१. आहारक-तनु-प्रयोग-बंध, हे प्रभु ! कितै प्रकार ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! कह्यो एक आकार ॥

१. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते । (श० ८।४०५)

२. जो एक आकार परूपियो, तो स्यूं मनुष्य मझार ।
आहारक-तनु-प्रयोग-बंध, कै अमनुष्य विचार ?

२. जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणुस्साहारगसरीरप्पयोग-बंधे ? अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे ?

३. श्री जिन भाखै मनुष्य में, आहारक शरीर थाय ।
मनुष्य विना अन्य जीव में, आहारक तनु नहिं पाय ॥

३. गोयमा ! मणुस्साहारगसरीरप्पयोगबंधे नो अमणु-स्साहारगसरीरप्पयोगबंधे ।

४. इम इण आलावे करी, जिम अवगाहण संठाण ।
पन्नवण[1] पद इकवीस में, आख्यो तिम पहिछाण ॥

४. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे

५. जावत आहारक लब्धिवंत, प्रमत्तसंजती सोय ।
सम्यक्‌दृष्टि पज्जत्त ते, वर्ष संख्यायु होय ॥

६. कर्मभूमि गर्भज मनु, आहारक शरीर थाय ।
लब्धि बिना जे प्रमत्त में, यावत आहारक नांय ॥

५, ६. जाव इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तसंखेज्ज-वासाउयकम्मभूमागब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरप्प-योगबंधे नो अणिड्ढिपत्तपमत्त जाव (सं० पा०) आहारगसरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।४०६)

७. हे भगवंत ! ते आहारक-तनु-प्रयोग-बंध ताय ।
किसा कर्म उदय ह्वै ? तब भाखै जिनराय ॥

७. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

८ वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणें, जाव इहां लग जाण ।
आहारक लब्धि प्रतै वलि, आश्रयी नैं पहिछाण ॥

८. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव (सं० पा०) लद्धिं वा पडुच्च

९. आहारक-तनु-प्रयोग ते, नाम कर्म है तास ।
उदय करि आहारक-तनु-प्रयोग-बन्ध विमास ॥

९. आहारगसरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं आहारग-सरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।४०७)

*हरष धर सांभलो गोयमजी ॥ (ध्रुपदं)

१०. हे प्रभुजी ! आहारक तनु साहिबजी,
स्यूं देश-बंध सर्व-बंध हो निस्नेही ।
जिन भाखै देश-बन्ध छै गोयमजी !
सर्व-बन्ध पिण संध हो गणधारी ॥

१०. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ?
गोयमा ! देसबंधे वि सव्वबंधे वि । (श० ८।४०८)

११. बन्ध आहारक शरीर प्रयोग नों,
काल थकी कितो काल होय ?
जिन भाखै सर्व-बंध नों,
एक समय अद्धा जोय ॥

११. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केव-च्चिरं होइ ?
गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं

१२. देश-बंध ते जवन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त न्हाल ।
उत्कृष्टो पिण तेहनों, अंतर्मुहूर्त्त काल ॥

१२. देसबंधे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं । (श० ८।४०९)

---

***लय : घोड़ी तो आई थांरा देश में**

१. पण्ण. २१।७३,७४



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

१३. जघन्य अनै उत्कृष्ट, अंतर्मुहूर्त्त मात्र इज।
आहारक शरीर इष्ट, पछै ओदारिक अवश्य ग्रहै।।

१३. जघन्यतः उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्तमात्रमेवाहारकशरीरी भवति, परत औदारिकशरीरस्यावश्यं ग्रहणात् (वृ० प० ४०६)

१४. ते अंतर्मुहूर्त्त मांहि, प्रथम समय में सर्व-बन्ध।
उत्तर काले ताहि, देशबंधकारक कह्यूं।।

१४. तत्र चान्तर्मुहूर्ते आद्यसमये सर्वबन्धः उत्तरकालं च देशबन्ध इति। (वृ० प० ४०६)

१५. अथ हिव आहारक तेह, शरीर-प्रयोग-बंध नुं।
अंतर-काल कहेह, चित्त लगाई सांभलो।।

१५. अथाहारकशरीरप्रयोगबन्धस्यैवान्तरनिरूपणायाह— (वृ० प० ४०६)

१६. *हे प्रभुजी ! आहारकतनु-प्रयोग-बंध सुजोय।
तेहनुं अंतर काल थी, कितो काल ते होय?
(परम गुण आगला प्रभुजी)

१६. आहारगसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

१७. जिन भाखै सुण गोयमा ! सर्व-बन्ध नुं न्हाल।
अंतर आख्यो जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त काल।।

१७. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं।

## सोरठा

१८. मनु आहारक तनु पाय, सर्व-बंध पहिलै समय।
पछै देशबंध थाय, अंतर्मुहूर्त्त रही करी।।

१८. मनुष्य आहारकशरीरं प्रतिपन्नस्तत्प्रथमसमये च सर्वबन्धकस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रं स्थित्वा (वृ० प० ४०६)

१९. पछै ओदारिक थात, त्यां पिण अंतर्मुहूर्त्त रही।
वलि आहारक अवदात, करिवा नों कारण थयो।।

१९. औदारिकशरीरं गतस्तत्राप्यन्तर्मुहूर्तं स्थितः, पुनरपि च तस्य संशयादि आहारकशरीरकरणकारणमुत्पन्नं ततः पुनरप्याहारकशरीरं गृह्णाति। (वृ० प० ४०६)

२०. प्रथम समय सर्व-बंध, इम बेहुं सर्व-बन्ध नों।
अंतरकाल कहंद, अंतर्मुहूर्त्त नों थयो।।

२०. तत्र च प्रथमसमये सर्वबन्धक एवेति, एवं च सर्वबन्धान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, द्वयोरप्यन्तर्मुहूर्त्तयोरेकत्वविवक्षणादिति। (वृ० प० ४०६)

२१. *आहारक तनु नों आंतरो, उत्कृष्ट काल अनंत।
अनंतीज अवसर्पिणी, वलि उत्सर्प्पिणी हुंत।।

२१. उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंताओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ कालओ

२२. क्षेत्र थकी कहियै हिवै, लोक अनंता जोय।
अर्द्ध पुद्‌गलपरावर्त्त है, देश ऊण अवलोय।।

२२. खेत्तओ अणंता लोगा—अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

## सोरठा

२३. अपार्द्ध पुद्‌गल ख्यात, अर्द्ध मात्र नें आखियो।
ते अर्द्ध पूर्ण पिण थात, तिण सूं अर्द्ध देश ऊण ए।।

२३. 'अपार्धम्' अपगतार्द्धमर्द्धमात्रमित्यर्थः 'पुद्‌गलपरावर्त्तं' प्रागुक्तस्वरूपं, अपार्द्धमप्यर्द्धतः पूर्णं स्यादत आह देशोनमिति (वृ० प० ४०६)

---

*लय : घोड़ी तो आई थांरा देश में



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### दूहा

२४. देश-बन्ध नुं अंतरो, उत्कृष्ट काल अनंत।
सम्यक्त चरण गमाय नें, वनस्पती में जंत॥

२५. *हे प्रभुजी ! आहारक तनु, देशबन्धगा देख।
सर्व-बन्धगा अबन्धगा, कुण-कुण जाव विशेख ?

२६. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, आहारक तनु नां जोय।
काल नां अल्पपणां थकी, सर्व-बंधगा सोय॥

२७. संख्यातगुणा देश-बंधगा, बहुलपणो जे काल।
असंख्यातगुणा तो हुवै नहीं, श्रमण संख्याता न्हाल॥

२८. अबंधगा छै अनंतगुणा, सिद्ध अरु स्थावर पंच।
त्रस मांहै पिण जीवड़ा, आहारक विण जे संच॥

### सोरठा

२९. हिव तेजस शरीर, प्रयोग-बंध नें आश्रयी।
गोयम प्रश्न गंभीर, उत्तर जिन आपै तसु॥

३०. *हे प्रभुजी ! तेजस तनु, प्रयोग-बंध विचार।
कितै प्रकार परूपिया ? जिन कहै पंच प्रकार॥

३१. एकेंद्रिय तेजस तनु, बे० ते० चउरिंद्री जाण।
पंचेंद्रिय तेजस तनु, प्रयोग-बंध पिछाण॥

३२. एकेंद्रिय तेजस तनु, कितै प्रकारे जाण ?
इम इण आलावे करी, जिम ओगाहण संठाण॥

३३. जाव पज्जत्त सव्वट्ठसिद्धगा, कल्पातीत वैमानिक देव।
पंचेंद्रिय तेजस तनु, प्रयोग-बन्ध कहेव।

३४. अपज्जत्तगा सव्वट्ठसिद्धगा, कल्पातीत अनुत्तर देव॥
पंचेंद्रिय तेजस तनु, प्रयोग-बंध कहेव॥

*लय : घोड़ी तो आई थांरा देश में

२४. एवं देसबंधंतरं वि। (श० ८।४१०)
जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पुनरपार्द्धं पुद्गलपरावर्त देशोनं। (वृ० प० ४०६)

२५. एएसि णं भंते ! जीवाणं आहारगसरीरस्स देसबंधगाणं सव्वबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

२६. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा
तत्र सर्वस्तोका आहारकस्य सर्वबन्धकास्तत्सर्वबन्धकालस्याल्पत्वात्, (वृ० प० ४०६)

२७. देसबंधगा संखेज्जगुणा
देशबन्धकाः संख्यातगुणास्तद्देशबंधकालस्य बहुत्वात्, असंख्यातगुणास्तु ते न भवन्ति यतो मनुष्या अपि संख्याताः किं पुनराहारकशरीरदेशबन्धकाः ? (वृ० प० ४०६)

२८. अबंधगा अणंतगुणा। (श० ८।४११)
आहारकशरीरं हि····ततश्च सिद्धवनस्पत्यादीनामनन्तगुणत्वादनन्तगुणास्त इति (वृ० प० ४०६)

२९. अथ तैजसशरीरप्रयोगबन्धमधिकृत्याह— (वृ० प० ४०६)

३०. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

३१. एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे बेइंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे जाव पंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४१२)

३२. एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? एवं एएणं अभिलावेणं भेदो जहा ओगाहणसंठाणे

३३. जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतवेमाणियदेवपंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे य।

३४. अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीतवेमाणियदेवपंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे य। (श० ८।४१३)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. हे भगवंत ! तेजस तनु, प्रयोग-बन्ध पहिछाण।
किसा कर्म नें उदय करी ? तब भाखै जगभाण ।।

३५. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

३६. वीर्य सजोग सद्द्रव्यपणें, यावत पाठ सुजोय।
अथवा आउखा आश्रयी, तेह तणो बंध होय ।।

३६. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव (सं० पा०) आउयं वा पडुच्च

३७. तेजस शरीर प्रयोग ते, नाम कर्म उदय करि सोय।
तेजस नाम शरीर नों, प्रयोग-बंध इम होय ।।

३७. तेयासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं तेयासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४१४)

३८. तेजस-तनु-प्रयोग-बंध ते, स्यूं देश-बंध सर्व-बंध ?
जिन भाखै देश-बंध छै, पिण सर्व-बंध न कहंद ।।

३८. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे ? सव्वबंधे ?
गोयमा ! देसबंधे, नो सव्वबंधे। (श० ८।४१५)

## सोरठा

३९. तेजस शरीर जाण, तेह अनादिपणां थकी।
देश-बंध पहिछाण, सर्व-बंध कहियै नहीं ।।

३९. तैजसशरीरस्यानादित्वान्न सर्वबन्धोऽस्ति। (वृ० प० ४१०)

४०. सर्व-बंध नें सोय, पुद्गल नों पहिलो समय।
उपादान अवलोय, तिण सूं ए नहिं सर्व-बंध ।।

४०. तस्य प्रथमतः पुद्गलोपादानरूपत्वादिति। (वृ० प० ४१०)

४१. *हे भगवंत ! तेजस तनु, प्रयोग-बंध विचार।
कितो काल हुवै काल थी ? जिन कहै दोय प्रकार ।।

४१. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

४२. आदि-रहित अंत-रहित ते, अभव्य नें अवलोय।
आदि-रहित अंत-सहित जे, ए भवसिद्धिक जोय ।।

४२. अणादीए वा अपज्जवसिए, अणादीए वा सपज्जवसिए। (श० ८।४१६)
तत्रायं तैजसशरीरबन्धोऽनादिरपर्यवसितोऽभव्यानां अनादिः सपर्यवसितस्तु भव्यानामिति। (वृ० प० ४१०)

४३. हे प्रभुजो ! तेजस तनु, प्रयोग-बंध नुं पेख।
अंतर काल थी केतलो? हिव जिन भाखै विशेख ।।

४३. तेयासरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

४४ आदि-रहित अन्त-रहित नों, अंतरो नहिं अवलोय।
तेजस तनु अभव्य तणो, सदा काल रहै सोय ।।

४४. गोयमा ! अणादीयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

४५. आदि-रहित अंत-सहित नें, एहनों पिण अन्तर नांहि।
ए सिद्ध तेजस क्षय करी, फिर नहिं पामै ताहि ।।

४५. अणादीयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं। (श० ८।४१७)

४६. हे भगवंत ! ए जीवड़ा, तेजस तनु नां पेख।
देश-बंधगा अबंधगा, कुण-कुणथी जाव विशेख ?

४६. एएसि णं भंते ! जीवाणं तेयासरीरस्स देसबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

४७. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, तेय-अबंधगा सिद्ध।
देशबंधगा अनंतगुणा, सर्व संसारिक लिद्ध ।।

४७. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा तेयासरीरस्स अबंधगा, देसबंधगा अणंतगुणा। (श० ८।४१८)
तत्र सर्वस्तोकास्तैजसशरीरस्याबन्धकाः सिद्धानामेव तदबन्धकत्वात्, देशबन्धकास्त्वनन्तगुणास्तद्देशबन्धकानां सकलसंसारिणां सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वादिति। (वृ० प० ४१०)

---

* लय : घोड़ी तो आई थांरा देश में



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. देश नव्यासी नों अंक ए, इकसौ बासठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

## ढाल : १६३

### दूहा

१. हे भदंत ! कार्मण तनु, प्रयोग-बंध विचार।
किते प्रकार कह्यो अछै ? जिन कहै अष्ट प्रकार ।।
२. ज्ञानावरणी कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध।
जाव अंतराय कार्मण, तनु प्रयोग-बंध संध ।।
३. ए आठूंइ कर्म नें, इण अक्षरे करि जान।
कार्मण तनु प्रयोग-बंध, आख्या श्री भगवान ।।
४. कर्म अष्ट बंधवा तणी, जूजुइ करणी जेह।
पूछै गोयम गणहरू, श्री जिन उत्तर देह ।।
५. पाप कर्म बंधवा तणी, करणी सावज जोय।
पुन्य कर्म बंधवा तणी, करणी निरवद्य होय ।।
६. तास विस्तार सुणो हिवै, श्री जिन वच अवलोय।
सावज निरवद्य ओलखो, प्रगट पाठ ए जोय ।।

१. कम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—
२. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे जाव अंतराइय-कम्मासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४१६)

*तीर्थ-नायक पुण्य पाप री करणी प्रकासी ।। (ध्रुपदं)

७. ज्ञानावरणी कर्म-शरीर प्रयोग-बंध, किण कर्म उदय करी थूल ?
जिन कहै ज्ञान नैं ज्ञानवंत थी सामान्यपणें प्रतिकूल ।।

७. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
गोयमा ! नाणपडिणीययाए
ज्ञानस्य श्रुतादेस्तदभेदात् ज्ञानवतां वा या प्रत्यनीकता—सामान्येन प्रतिकूलता सा तथा तया। (वृ० प० ४११)

८. श्रुतज्ञान श्रुतज्ञान नां दाता, त्यांरो णिण्हवण ते अपलापं।
ज्ञान नहीं तथा ए नहिं सतगुरु, इम करिवै करि थापं ।।

८. नाणणिण्हवणयाए,
ज्ञानस्य—श्रुतस्य श्रुतगुरूणां वा या निह्नवता—अपलपनं (वृ० प० ४११)

९. श्रुतज्ञान नीं अंतराय पाड़ै, पढतां नैं विघ्न करेह।
श्रुतज्ञान तथा ज्ञानवंत थी, अप्रीति द्वेष धरेह ।।

९. नाणंतराएणं, नाणप्पदोसेणं,
'नाणंतराएण' त्ति ज्ञानस्य—श्रुतस्यान्तरायः तद्ग्रहणादौ विघ्नो यः स तथा तेन, 'नाणपओसेणं' त्ति ज्ञाने—श्रुतादौ ज्ञानवत्सु वा यः प्रद्वेषः—अप्रीतिः (वृ० प० ४११)

* लय : राजा राघव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. ज्ञान तणो तथा ज्ञानवंत नीं, करै आशातना मति-हीन।
हेलै निंदै खिसै करै अवज्ञा, पाप कर्म में लीन।।

१०. नाणच्चासातणयाए,
ज्ञानस्य ज्ञानिनां वा याऽत्याशातना—हीलना
(वृ० प० ४११)

११. ज्ञान ज्ञानी नों विसंवाद जोग करै, ज्ञान तणो व्यभिचार।
देखाड़वा नें अर्थे प्रजूंझै, मन वचन काया नां व्यापार।।

११. नाणविसंवादणाजोगेणं
ज्ञानस्य ज्ञानिनां वा विसंवादनयोगो—व्यभिचार-
दर्शनाय व्यापारो यः स तथा तेन। (वृ० प० ४११)

१२. सूत्र में किहांइक दया कही छै, किहां हिंसा कही सूत्र मांय।
इत्यादिक विसंवाद बतायां, ज्ञानावरणी कर्म बंधाय।।

**सोरठा**

१३. 'नदी प्रमुख नीं आण, कामी नहिं हणवा तणो।
तिण कारण पहिछाण, तसु हिंसा कहियै नहीं।।

१४. *कृष्ण बारमों जिन अंतगड में, तेरमो समवायंग मझार।
समझ पड़्यां विण वीर वचन में, कहै विसंवाद व्यभिचार।।

**सोरठा**

१५. अनागत चोवीस, पूरव भव नां नाम में।
कृष्ण नाम सुजगीस, समवायंगे तेरमो।।
१६. आगल बारै नाम, इम पच्चीस तिहां नाम छै।
इक द्रव्य जिन नां ताम, दोय नाम छै ते भणी।।
१७. आनंद सुनंद ताम, कृष्ण नाम पहिलां अछै।
एक तणां बे नाम, एह बड़ां नीं धारणा।।

१५-१७. सेणिय[1] सुपास[2] उदए[3] पोट्टिल[4] अणगारे तह
दढाऊ[5] य।
कत्तिय[6] संखे[7] य तहा नंद[8] सुनंदे[9] सतए[10] य
बोद्धव्वा।।१।।
देवई[11] चेव सच्चई[12], तह वासुदेव[13] बलदेवे[14]।
रोहिणी[15] सुलसा[16] चेव, तत्तो खलु रेवई[17] चेव।।२।।
तत्तो हवइ मिगाली,[18] बोद्धव्वे खलु तहा भयाली[19]।
दीवायणे[20] य कण्हे,[21] तत्तो खलु नारए[22] चेव।।३।।
अंबडे[23] दारुमडे[24] य, साई[25] बुद्धे य होइ बोद्धव्वे।
उस्सप्पिणी आगमेस्साए, तित्थगराणं तु पुव्वभवा❀।।४।।
(समवाओ, प० स० २५२)

१८. अंतगड रै मांहि, अरिष्टनेम जिन इम कह्यो।
कृष्ण होसी तूं ताहि, अमम नाम जिन बारमों।।
१९. ते माटै इम जाण, अमम नाम रै स्थानके।
कृष्ण नाम पहिछाण, इण न्याये जिन बारमों'।। (ज० स०)

१८. कण्हाइ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं
वयासी—....अममे नामं अरहा भविस्ससि।
(अंतगडदसाओ ५।१८)

२०. *ए छ प्रकार करि ज्ञानावरणी कर्म, शरीर-प्रयोग-बंध सोय।
नाम कर्म नें उदय करीनें, ज्ञानावरणी प्रयोग-बंध होय।।

२०. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स
उदएणं नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे।
(श० ८।४२०)

❀उक्त नामों में 'वासुदेवे' कृष्ण का नाम है। उसकी संख्या तेरहवीं है। उससे पहले नन्द और सुनन्द—ये दो नाम एक ही तीर्थंकर के हैं। इस दृष्टि से कृष्ण का नाम बारहवां ही प्रमाणित होता है।

* लय : राजा राघव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

२१. 'ए षट कारण धार, ज्ञानावरणी बंध नां।
सावज आज्ञा बार, तिण कारण ए पाप कर्म॥
२२. शरीर नाम कर्म ताहि, तास उदय जोग प्रवर्त्तै।
मोह उदय ए मांहि, अशुभ जोग तिण कारणै॥'
(ज० स०)

२३. *दर्शणावरणी कर्म शरीर-प्रयोग-बंध, किण कर्म उदय करि थूल ?
जिन कहै दर्शण दर्शणवंत थी, सामान्यपणैं प्रतिकूल॥
२४. इम जिम ज्ञानावरणी कह्यो, तिम दर्शणावरणी ग्रहिवूं।
णवरं इतो विशेष जाणवो, दर्शण नामज कहिवूं॥
२५. जाव दर्शण नों विसंवाद जोग करि, दर्शण नो व्यभिचार।
देखाड़वा नैं अर्थे प्रजूंभै, मन वचन काया नां व्यापार॥
२६. ए छ प्रकार करि दर्शणावरणी कर्म, शरीर-प्रयोग-बंध सोय।
नाम कर्म नैं उदय करिनैं, दर्शणावरणी प्रयोग-बंध होय॥

२३. दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
गोयमा ! दंसणपडिणीययाए।
२४. एवं जहा नाणावरणिज्जं, नवरं दंसणनामं घेतव्वं
२५. जाव (सं० पा०) दंसणविसंवादणाजोगेणं
२६. दंसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे।
(श० ८।४२१)

**सोरठा**

२७. इहां दर्शण पहिछाण, चक्षू-दर्शण आदि नों।
प्रत्यनीकादि जाण, वृत्ति मझे ए वारता॥

वा०—चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शण नों प्रत्यनीक। तीन दर्शण तो क्षयोपशम भाव अनैं केवलदर्शण खायिक भाव। तेहनीं अवज्ञा करै—ए देखवा में स्यूं छै ? ते सिद्धां में केवलदर्शण ढुगढुगापुरी छै। तथा केवल-दर्शणवंत नीं प्रत्यनीकादिकपणों करै तथा चक्षु दर्शन थी जिन तथा साधां रा दर्शण करै तेहनों प्रत्यनीकादिकपणों अवज्ञा करै, हेलणा करै, तेहथी दर्शणावरणी कर्म बन्धै।

२७. इह दर्शनं—चक्षुर्दर्शनादि। (वृ० प० ४११)

२८. 'ए षट कारण धार, दर्शणावरणी बन्ध नां।
सावज आज्ञा बार, तिण कारण ए पाप कर्म॥
२९. शरीर नाम कर्म ताहि, तास उदय जोग प्रवर्त्तै।
मोह उदय ए मांहि, अशुभ जोग तिण कारणै'॥
(ज० स०)

३०. *सातावेदनी कर्म शरीर प्रयोग-बंध, प्रभु ! किसै कर्म उदयेण ?
जिन कहै प्राण नीं अनुकंपा करि, भूत नीं अनुकंपा करेण॥

३१. जिम सप्तम शत[1] दुःषम उदेशे, छठे उदेशे ताहि।
तिहां साता असाता वेदनी नों, वर्णन छै तिण मांहि॥

३०. सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
गोयमा ! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए।
३१. एवं जहा सत्तमसए दुस्समउद्देसए

*लय : राजा राघव
१. भ. श० ७।११४



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

३२. दु:षमदुषमा आर, तेहनों जे विस्तार छै।
छठा उदेश मझार, दुषम उदेशो नाम तसु ॥

३३. *यावत परितापना न उपावै, सातावेदनी कर्म ताय।
शरीर प्रयोग नाम कर्म उदय करि, सातावेदनी जाव बंधाय ॥

३३. जाव (सं० पा०) अपरियावणयाए सायावेयणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं साया-वेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४२२)

३४. असातावेदनी कर्म नीं पूछा, तब भाखै जिनराय।
पर नें दुख नों देवो तिणे करि, पर नें सोग पमाय ॥

३४. असायावेयणिज्जपुच्छा (सं पा०)
गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए।

३५. जिम सप्तम शत दुषम उदेशे, छठा उदेशा मांय।
यावत पर नें परितापना दे तो, असाता वेदनी बंधाय ॥

३५. जहा सत्तमसए दुस्समाउद्देसए (७।११६) जाव परियावणयाए असायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोग-नामाए कम्मस्स उदएणं असायावेयणिज्जकम्मासरीर-प्पयोगबंधे। (श० ८।४२३)

## सोरठा

३६. 'कर्म वेदनी तास, साता असाता भेद बे।
तिण कारण सुविमास, पुन्य पाप कहियै तसु ॥

३७. सातावेदनी पुन्य, तसु करणी निरवद्य प्रवर।
कर्म असात जघुन्य, तसु करणी सावज कही ॥

३८. सातावेदनी बंध, शरीर नाम कर्म उदय करि।
शुभ जोग प्रवर्तै संध, मोह-रहित छै ते भणी ॥

३९. असातावेदनी बंध, नाम उदय जोग प्रवर्त्तै।
मोह उदय ए संध, अशुभ जोग इण कारणै' ॥
(ज० स०)

४०. *मोह कार्मण शरीर प्रयोग बंध, प्रभु ! किसा कर्म उदयेण ?
श्री जिन भाखै तीव्र क्रोध करि, तीव्र मान माया लोभेण ॥

४०. मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
गोयमा तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए, तिव्वमाययाए, तिव्वलोभयाए,

४१. तीव्र मिथ्यात मोह उदय करिनें, तीव्र चारित्र मोह उदयेण।
मोह कर्म तनु प्रयोग नाम कर्म, उदय जाव बंध तेण ॥

४१. तिव्वदंसणमोहणिज्जयाए, तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे।
(श० ८।४२४)

तीव्रमिथ्यात्वतयेत्यर्थः (वृ० प० ४१२)

## सोरठा

४२. पूर्वे तीव्र क्रोधादि, कषाय नीं प्रकृति तिका।
चारित्र मोहे लाधि, ए नोकषाय नव प्रकृति ॥

४२. कषायव्यतिरिक्तं नोकषायलक्षणमिह चारित्रमोहनीयं ग्राह्यं, तीव्रक्रोधतयेत्यादिना कषायचारित्रमोहनीयस्य प्रागुक्तत्वादिति। (वृ० प० ४१२)

४३. 'मोह कर्म ए पाप, नाम उदय जोग प्रवर्त्तै।
कार्य मोह मिलाप, अशुभ सावज इण कारणै ॥

४४. सप्तम अष्टम जाण, गुणठाणे नवमें वलि।
इहां शुभ जोग पिछाण, प्रथम शतक उद्देश धुर ॥

४४. तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया, ते णं नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा।
(भ० श० १।३४)

* लय : राजा राघव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. तिहां पिण पाप बंधाय, दशमें बन्धै कर्म षट।
कषाय थकी कहाय, शुभ जोगे करि पुन्य बंध' ॥
(ज० स०)

४६. नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?
गोयमा ! महारंभयाए, महापरिग्गहयाए
'महारंभयाए' त्ति अपरिमितकृष्याद्यारम्भतयेत्यर्थः
(वृ० प० ४१२)

४६. *नरकायु कार्मण शरीर प्रयोग बंध, प्रभु ! किसै कर्म उदयेण ?
जिन कहै अपरिमित कृष्यादि महारंभ करि, महापरिग्रह करि जेण ॥

४७. पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।४२५)
'कुणिमाहारेणं' ति मांसभोजनेनेति (वृ० प० ४१२)

४७. पंचेंद्रिय-वध मंस भोजन करि, नरकायु कर्म तनु प्रयोग।
नाम उदय नरकायु कर्म तनु, जाव प्रयोग-बन्ध जोग ॥

४८. तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा ! माइल्लयाए,
'माइल्लयाए' त्ति परवञ्चनबुद्धिवत्तया,
(वृ० प० ४१२)

४८. तिर्यंचायु कार्मण तनु पूछा, तब भाखै जिनराय।
परवंचन नीं बुद्धिपणें करि, ते माइल्लयाए कहाय ॥

४९. नियडिल्लयाए
निकृतिः—वञ्चनार्थं चेष्टा मायाप्रच्छादनार्थं मायान्तरमित्येके अत्यादरकरणेन परवञ्चनमित्यन्ये,
(वृ० प० ४१२)

४९. नियडिल्लयाए ते माया ढांकण, अन्य माया कहै एक।
अन्य आचार्य कहै अत्यादर करि, परवंचन थी पेख ॥

५०. अलियवयणेणं, कूडतुल-कूडमाणेणं तिरिक्खजोणियाउयकम्मा जाव (सं पा०) पयोगबंधे ।
(श० ८।४२६)

५०. अलियवयण ते झूठ बोलवे, कूड-तोल कूड-माप।
तिर्यंचायु कर्म जाव प्रयोग-बंध, एम कहै जिन आप ॥

५१. मणुस्साउयकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा ! पगइभद्दयाए, पगइविणीययाए, साणुक्कोसयाए,

५१. मनुष्यायु कार्मण शरीर नीं पूछा, जिन कहै स्वभाव थी भद्र।
स्वभाव थकी विनीतपणें करि, अनुकंपा सहित अखुद्र ॥

५२. अमच्छरियाए मणुस्साउयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं मणुस्साउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे ।
(श० ८।४२७)
मत्सरिकः परगुणानामसोढा तद्भावनिषेधोऽमत्सरिकता तया (वृ० प० ४१२)

५२. मच्छर-भाव ते पर गुण न सहै, तसु निषेध अमच्छर भाव।
मनुष्यायु कार्मण जाव प्रयोग-बंध, ए शुभ मनु आयु कहाव ॥

५३. देवाउयकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा ! सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं

५३. देवायु कार्मण शरीर नीं पूछा, तब भाखै जगभाण।
सरागपणें करि चारित्र पालवै, देश-विरति करि माण ॥

५४. बालतवोकम्मेणं, अकामनिज्जराए देवाउयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं देवाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे । (श० ८।४२८)

५४. बाल तपोकर्म अज्ञान कष्ट थी, अकाम निर्जरा करीनें।
देवायु कार्मण जाव प्रयोग-बन्ध, हिंसा रहित आदरी नें ॥

* लय : राजा राघव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

५५. 'नरकायू नां धार, कारण चिहुं सावज कह्या।
चिहुं जिन आज्ञा बार, पाप प्रकृति है ते भणी ॥
५६. तिरि आयू नां धार, ते पिण ए कारण चिहुं।
सावज आज्ञा बार, ए पिण प्रकृति पाप नीं ॥
५७. तिर्यंच युगलिया जंत, तेह तणो जे आउखो।
पुन्य प्रकृति दीसंत, निश्चै जाणै केवली ॥

**वा०**—जघन्य आउखा वाला तिर्यंच, मनुष्य उत्कृष्ट कोड़ पूर्व स्थितिक तिर्यंच नैं विषे ऊपजतां ए छठा गमा नैं विषे अध्यवसाय माठा कह्या, शतक २४ उदेशे २० में। ते माठा अध्यवसाय थी कोड़ पूर्व तिर्यंचायु बांध्यो। इण लेखै ए कोड़ पूर्व स्थिति तिर्यंचायु पाप री प्रकृति छै, अशुभ अध्यवसाय थी बन्ध्यो ते माटै। खोटा अध्यवसाय थी पुन्य री प्रकृति बंधै नहीं।

अनै कोड़ पूर्व ऊपरंत तिर्यंच युगलिया नों आउ हुवै छै ते पुन्य री प्रकृति छै ? कै पाप री प्रकृति छै ? एहवूं सूत्रे खोल्यो नथी। कोइ नैं पाप री प्रकृति स्थापै ते पिण निश्चै न कहै। अनै कोइ नैं पुन्य री प्रकृति थापै ते पिण निश्चै न कहै। ते पिण कहै—निश्चय केवली जाणै।

५८. मनुष्य आयु नां ताहि, बहुलपणैं कारण चिहुं।
निरवद्य आज्ञा मांहि, पुन्य प्रकृति ए ते भणी ॥
५९. असन्नी मनुष्य नों जोय, आयु पाप प्रकृति अछै।
तेह तणो अवलोय, कथन इहां कीधो नहीं ॥
६०. देव आयु नां देख, कारण चिहुं निरवद्य कह्या।
चिउं आज्ञा में पेख, पुन्य प्रकृति ए ते भणी ॥'[1]

**वा०**—सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठितीओ जातो जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु उक्कोसेणं पुव्वकोडी-आउएसु उववज्जेज्जा……। (भ० श० २४।२६७)
सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठितीओ जाओ, जहा सण्णिपंचिदियतिरिक्खजोणियस्स……।
(भ० श० २४।२७९)

---

१. चार गति पुण्य की प्रकृति है या पाप की ? इस सम्बन्ध में कई मान्यताएं हैं। जयाचार्य ने इस सन्दर्भ में स्वतंत्र रूप से लम्बी चौड़ी समीक्षा की है। अपने अभिमत को संवादी प्रमाण से पुष्ट करने के लिए उन्होंने आचार्य भिक्षु द्वारा कृत 'श्रद्धा निर्णय री चौपाई' की दसवीं ढाल से आठ गाथाएं १०।४३-५० उद्धृत की हैं। उनको उसी रूप में यहां दिया जा रहा है—

**कर्म ग्रन्थ मांहै कर्मां री प्रकृत, पुन्य पाप री प्रकृत न्यारी ठहराइ।**
**तिण मांहै पिण छै झूठ अनेक, ते पिण विकलां नैं खबर न कांइ ॥**
**इण पाखंड मत रो निरणो कीजो ॥**
**तिर्जंच नें मिनख तणो आउखो, तिण नें कहै छै एकंत पुन।**
**तिण में असनी मनुष्य तणो आउखो, आ तो पाप तणी प्रकृत छै जबुन ॥**
**पांच स्थावर सुषम अप्रज्यापता छै, त्यांरा पिण आउखा नें कहै छै पुन।**
**यांरो पिण छै तिर्जंच रो आउखो, पाप री प्रकृत जावक जबुन ॥**
**पांच स्थावर नें वले तीन विकलंद्री, त्यां अप्रज्यापता रो आउखो जबुन।**
**आ पिण पाप री प्रकृत उघाड़ी, सूतर में कठेय न दीसै पुन ॥**
**इत्यादिक छै तिर्जंच रो आउखो, विविध प्रकार कह्यो जिनराय।**
**त्यां में कैकां रो आउखो पाप री प्रकृत, कैकां रो आउखो दीसै पुन रै मांय ॥**

—→



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. आयुकर्म अवलोय, पुण्य पाप कहियै बिहुं।
सावज निरवद सोय, प्रत्यक्ष करणी पेखलो ॥

६२. पुन्य आयु कर्म जेह, तनु नाम कर्म नें उदय करि।
जोग भला प्रवर्त्तेह, मोह रहित कारंज अछै ॥

६३. पाप आउखो पेख, तनु नाम उदय जोग प्रवर्त्तै।
मोह सहित सुविशेख, ते माटै अशुभ जोग छै' ॥

(ज० स०)

६४. *शुभ नाम कर्म शरीर नीं पूछा, तब भाखै जिनराय।
काया सरल ते काय करीनें, अन्य भणी ठगै नांय ॥

६५. भाव सरल ते अन्य ठगवा नों, मन प्रवर्तै नांहि।
भाषा सरल ते वचन करीनें, ठगै नहिं कोइ ताहि ॥

६६. जेहवो करै तेहवो इज बोलै, न करै विपरीत मंद।
ते अविसंवादन जोग करीनें, शुभ नाम कर्म जाव बन्ध ॥

६७. काय सरल भाव सरल भाषा सरल, वर्त्तमान काल आश्री
धार।
अविसंवाद जोग अतीत वर्त्तमान, बे काल आश्री विचार ॥

६८. अशुभ नाम कर्म शरीर नीं पूछा, तब भाखै जिनराय।
काया तणो पिण सरल नहीं ए, काया करी ठगै अन्य ताय ॥

६९. भाव तणो पिण सरल नहीं जे, ठगवा नों प्रवर्त्तै मन्न।
भाषा तणो पिण सरल नहीं ए, वचन करि ठगै अन्न ॥

६४. सुभनामकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा ! काउज्जुययाए
कायर्जुकतया परावञ्चनपरकायचेष्टया
(वृ० प० ४१२)

६५. भावुज्जुययाए, भासुज्जुययाए
भावर्जुकतया परावञ्चनपरमनःप्रवृत्त्येत्यर्थः, भाषर्जुकतया भाषाऽऽर्जवेनेत्यर्थः (वृ० प० ४१२)

६६. अविसंवादणाजोगेणं सुभनामकम्मा जाव (सं० पा०)
पयोगबंधे। (श० ८।४२९)
विसंवादनं—अन्यथाप्रतिपन्नस्यान्यथाकरणं तद्रूपो-योगो—व्यापारस्तेन वा योगःसम्बन्धो विसंवादनयोगस्तन्निषेधादविसंवादनयोगस्तेन (वृ० प० ४१२)

६७. इह च कायर्जुकतादित्रयं वर्तमानकालाश्रयं, अविसंवादनयोगस्त्वतीतवर्तमानलक्षणकालद्वयाश्रय इति
(वृ० प० ४१२)

६८. असुभनामकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा ! कायअणुज्जुययाए

६९. भावअणुज्जुययाए, भासअणुज्जुययाए

---

***लय : राजा राघव**

वा०—इहां केयक तिर्यंच रो आउखो पुन्य री प्रकृति दीसै इम कह्यु। ते तिर्यंच युगलिया नो पुन्य प्रकृति हुवै ते पिण केवली जाणै अनैं युगलिया विना अनेरा तिर्यंच रो आउखो तो पाप री प्रकृति छै।

**च्यारे प्रकारे बांधै तिर्जंच रो आउषो, ते च्यारूंइ बोल सावज नहिं रूड़ा।**
**त्यां सूं तो पाप री प्रकृत बंधै छै, त्यांरो आउखो पुन कहै ते कूड़ा ॥**
**तिर्जंच युगलिया रो शुभ आउषो, ते तो पुन री प्रकृत दीसती जाणो।**
**अन्य तिर्जंच रो आउषो पाप री प्रकृत, ते सूतर सूं बुद्धिवंत करसी पिछाणो ॥**
**माठा माठा अधवसाय सूं बंधै आउषो, ते आउषो पाप री प्रकृत जाणो।**
**शंका हुवै तो भगोती सूतर में जोवो, चोवीसमैं शतक गमां सूं पिछाणो ॥**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. जेहवो करै तेहवो नहिं बोलै, जे करै विपरीत मंद।
ते विसंवादन जोग करीनैं, अशुभ नाम कर्म जाव बन्ध॥

७०. विसंवादणाजोगेणं असुभनामकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं असुभनामकम्मासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४३०)

### सोरठा

७१. 'नाम कर्म अवलोय, पुण्य पाप कहियै बिहुं।
सावज निरवद्य सोय, प्रत्यक्ष करणी पेखलो॥
७२. शुभ नाम कर्म जेह, तनु नाम कर्म नें उदय करि।
जोग भला प्रवर्त्तेह, मोह रहित कारज अछै॥
७३. अशुभ नाम कर्म सोय, तनु नाम उदय जोग प्रवर्त्तै।
मोह सहित ए होय, ते माटै अशुभ जोग छै'॥
(ज० स०)

७४. *ऊंच गोत्र कर्म शरीर नीं पूछा, तब भाखै जगतार।
जाति तणो मद अणकरिवै करि, न करै कुल-अहंकार॥
७५. वलि बल नों मद अणकरिवै करि, रूप नों मद निवार।
तप तणो पिण मद करै नहीं, लाभ नों मद परिहार[1]॥
७६. श्रुत भण्यां नों पिण मद न करै, ठकुराइ नों तजै अहंकार।
या करिकै ऊंच गोत्र कर्म तनु, जाव प्रयोग-बन्ध धार॥
७७. नीच गोत्र कार्मण तनु पूछा, जाति मदे करि संध।
कुल बल जाव ऐश्वर्य मदे करि, नीच गोत्र कर्म जाव बंध॥

७४. उच्चागोयकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा! जातिअमदेणं, कुलअमदेणं
७५,७६. बलअमदेणं, रूवअमदेणं, तवअमदेणं, सुयअमदेणं, लाभअमदेणं, इस्सरियअमदेणं उच्चागोयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं उच्चागोयकम्मासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४३१)
७७. नीयागोयकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा! जातिमदेणं, कुलमदेणं, बलमदेणं जाव (सं० पा०) इस्सरियमदेणं नीयागोयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नीयागोयकम्मासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४३२)

### सोरठा

७८. 'गोत्र कर्म अवलोय, पुन्य पाप कहियै बिहुं।
सावज निरवद्य सोय, प्रत्यक्ष करणी पेखलो॥
७९. ऊंच गोत्र कर्म जेह, तनु नाम कर्म नें उदय करि।
जोग भला प्रवर्त्तेह, मोह रहित कारज अछै॥
८०. नीच गोत्र कर्म न्हाल, तनु नाम उदय जोग प्रवर्त्तै।
मोह सहित ए भाल, ते माटै अशुभ जोग छै'॥
(ज० स०)

८१. *अन्तराय कर्म तनु नीं पूछा, तब भाखै जिनराय।
दान तणी अन्तराय देवा थी, लाभ नीं दे अन्तराय॥
८२. भोग उवभोग नैं वीर्य नीं पिण, अन्तराय दे अन्ध।
शरीर नाम कर्म उदय करीनैं, अन्तराय कर्म नो बन्ध॥

८१. अंतराइयकम्मासरीरपुच्छा (सं० पा०)
गोयमा! दाणंतराएणं, लाभंतराएणं,
८२. भोगंतराएणं, उवभोगंतराएणं, वीरियंतराएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगबंधे। (श० ८।४३३)

---

*लय : राजा राघव

१. अंगसुत्ताणि भाग दो ८।४३१ में तपमद के बाद श्रुतमद और लाभमद, ऐसा पाठ है। जोड़ में तप के बाद लाभ और फिर श्रुत का ग्रहण किया है। अंगसुत्ताणि में यह क्रम उक्त पाठ के पाठान्तर में रखा गया है। जयाचार्य को प्राप्त आदर्श में यही क्रम होगा। सामने उद्धृत पाठ अंगसुत्ताणि के आधार पर है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

### सोरठा

८३. 'अन्तराय बन्ध धार, दानादिक अन्तराय दे।
ए करणी आज्ञा बार, अन्तराय कर्म पाप इम'॥
(ज० स०)

८४. *अंक नव्यासी नु देश कह्यु ए, एकसौ नें तेसठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशाल॥

## ढाल : १६४

### दूहा

१. ज्ञानावरणी कार्मण-शरीर-प्रयोग-बंध।
देश-बंध स्यूं छै प्रभु! कै सर्व-बंध कथियंद?
२. जिन भाखै देशबंध ह्वै, सर्वबंध नहिं होय।
एवं यावत अंतराय-कर्म कहीजै सोय॥
३. कार्मण अनादिपणां थकी, सर्व-बंध नहिं होय।
सर्व-बंध नें प्रथम समय, पुद्गल ग्रहण सुजोय॥

†स्वाम! थारा ज्ञान तणी बलिहारी,
ए तो भिन-भिन भेद उचारी।
नाथ! थांरी करणी री बलिहारी,
शुद्ध न्याय छाण्या तंतसारी॥
स्वाम! थारो ज्ञान अपरंपर भारी॥ (ध्रुपदं)

४. हे प्रभुजी! ज्ञानावरणी कार्मण-शरीर-प्रयोग-बंध।
काल थकी केतलो काल होवै? जिन कहै द्विविध संध॥

५. आदि-रहित अरु अंत-रहित, ए तो कर्म अभव्य नां धारी।
आदि-रहित अरु अंत-सहित, भवसिद्धिया कर्म नें जारी॥
६. इम जिम तेजस शरीर तणो, संचिट्ठणा काल उचारी।
तिमहिज ज्ञानावरणी कर्म कहिवो, जाव अंतराय धारी।
७. प्रभुजी! ज्ञानावरणी कार्मण, तनु प्रयोग बंध धारी।
अंतर काल थी होवै केतलो? जिन कहै दोय प्रकारी॥
८. आदि-रहित अंत-रहित अभव्य कर्म, अंतर नथी विचारी।
आदि-रहित अंत-सहित भव्य कर्म, अंतर नहीं लिगारी॥

१. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
२. गोयमा! देसबंधे, नो सव्वबंधे! एवं जाव अंतराइयं। (श० ८।४३४)

४. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ? गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
५. अणादीए वा अपज्जवसिए, अणादीए वा सपज्जवसिए।
६. एवं जाव अंतराइयस्स। (श० ८।४३५)

७. नाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते! कालओ केवच्चिरं होइ?
८. गोयमा! अणादीयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणादीयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

*लय : राजा राघव
†लय : गावत मेरी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. इम जिम तेजस शरीर तणो कह्यो, अंतर नों अधिकारी।
तिमहिज ज्ञानावरणी कर्म कहिवो, जाव अंतराय धारी ।।
१०. ए प्रभु! जीवां नैं ज्ञानावरणी, कर्म नां देश बंध कर्त्तारी।
वलि अबंधक नें कुण-कुण थी, जाव अल्प बहुत्व धारी ।।
११. इम जिम तेजस तनु नों आख्यो, तिम ज्ञानावरणी उचारी।
इम आयु वर्जी जाव अंतराय, आउखा नीं पूछा न्यारी ।।
१२. सर्व थी थोड़ा जीव आयु कर्म नां, देश बंध कर्त्तारी।
आयु बंध नों काल थोड़ो छै, ते माटै थोड़ा उचारी ।।
१३. तेह थकी आयु कर्म अबंधगा, संख्यातगुणा विचारी।
अबंध काल ते बहु गुणपणां थी, संख्यातगुणा उचारी ।।

**सोरठा**

१४. इहां प्रेरक पूछंत, देशबंधक थी अबंधगा।
संखेज्जगुणा कहंत, असंखगुणा किम नां कह्या?
१५. मनुष्य अनैं तिर्यंच, तीन-तीन पल्य आउखो।
देव नारकी संच, तेतीस सागर त्यां लगै ।।
१६. अबंध काल असंख्यात, जीवतव्य प्रति आश्रयी।
असंख्यात गुणो थात, ते न कह्यो किण कारणैं?
१७ उत्तर तास कहेह, अनंतकायिका जीव जे।
ते आश्री सूत्र एह, संख्यात जीवित हीज ते ।।
१८. ते आउ तणां अबंध, अनंतकायिका जीवड़ा।
देश-बंध थी संध, संख्यातगुणा होवै अछै ।।
१९. आउ तणां अबंध, सिद्धादिक जो तेह विषे।
प्रक्षेपियै सुखकंद, तो पिण संखगुणाज ह्वै ।।
२०. अनंत सिद्धादि अबंध, ते पिण अनंतकाय नों।
आयु बंधका संध, तेहनैं भाग अनंतमें ।।
२१. वलि कोइ कहिसै एम, जो आउखा कर्म नां।
अबंधक छता तेम, बंधकारक होवै तदा ।।
२२. सर्व-बंध नों तास, संभव किम नहिं तेहनें?
उत्तर तास विमास, चित्त लगाई सांभलो ।।
२३. सहु आयू परकत्त, अछती नहिं छै तेहनें।
औदारिकादिक वत्त, तिण कारण नहिं सर्वबंध ।

**वा०**—पूर्वे आउखो बंध्यो, ते भोगवतां आगला भव नों नवो आयु बंधै ते माटै सर्व बंध नहीं । किंचित मात्र पिण आउखा री प्रकृति पूर्वे बंधी न हुवै अनैं नवो आउखो बांधै तो सर्व बन्ध हुई, औदारिक शरीर नो नयो निर्माण करै तेहनैं सर्वबंध हुवै । इण रीते किणही जीव रै आउखा नों बंध हुवै नहीं, ते माटै सर्व बंध नहीं ।

९. एवं जाव अंतराइयस्स । (श० ८।४३६)

१०. एएसि णं भंते ! जीवाणं नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स देसबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) अप्पाबहुगं,

११. जहा तेयगस्स (सं० पा०) एवं आउयवज्जं जाव अंतराइयस्स । (श० ८।४३७)

१२. आउयस्स पुच्छा ।
गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स देसबंधगा, सर्वस्तोकत्वमेषामायुर्बन्धाद्धायाः स्तोकत्वात्
(वृ० प० ४१२)

१३. अबंधगा संखेज्जगुणा । (श० ८।४३८)
अबन्धाद्धायास्तु बहुगुणत्वात्, तदबन्धकाः संख्यातगुणाः
(वृ० प० ४१२)

१४. नन्वसंख्यातगुणास्तदबन्धकाः कस्मान्नोक्ताः ?
(वृ० प० ४१२)

१६. तदबन्धाद्धाया असंख्यातजीवितानाश्रित्यासंख्यातगुणत्वात् (वृ० प० ४१२)

१७. उच्यते—इदमनन्तकायिकानाश्रित्य सूत्रं, तत्र चानन्तकायिकाः संख्यातजीविता एव । (वृ० प० ४१२)

१८. ते चायुष्कस्याबन्धकास्तद्देशबन्धकेभ्यः संख्यातगुणा एव भवन्ति । (वृ० प० ४१२)

१९. यद्यबन्धकाः सिद्धादयस्तन्मध्ये क्षिप्यन्ते तथाऽपि तेभ्यः संख्यातगुणा एव ते, (वृ० प० ४१२)

२०. सिद्धाद्यबन्धकानामनन्तानामप्यनन्तकायिकायुर्बन्धकापेक्षयानन्तभागत्वादिति । (वृ० प० ४१२)

२१. ननु यदायुषोऽबन्धकाः सन्तो बन्धकाः भवन्ति
(वृ० प० ४१२)

२२. तदा कथं न सर्वबन्धसंभवस्तेषाम् ? उच्यते,
(वृ० प० ४१२)

२३. न हि आयुःप्रकृतिरसती सर्वा तैर्निबध्यते औदारिकादिशरीरवदिति न सर्वबन्धसंभव इति ।
(वृ० प० ४१२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. पूरव आयू कर्म, बंध्यो छतोज छै तसु।
तिण कारण ए मर्म, सर्व-बंध कहियै नथी।।
२५. अन्य प्रकारे जाण, औदारिकादिक नें हिवै।
चिंतवियै सुविहाण, कहियै छै विस्तार ते।।

२६. *हे प्रभु ! जे औदारिक तनु नों, जसु सर्व-बंध हुवै सारी।
ते प्रभु ! वैक्रिय नुं स्यूं बंधक, अथवा अबंधक धारी ?
२७. श्री जिन भाखै बंधक नहिं छै, एह अबंध विचारी।
एक समय औदारिक वैक्रिय नुं, बंधक नहिं ह्वै तिवारी।।

२८. हे प्रभु ! जे औदारिक तनु नों, जसु सर्व-बंध ह्वै सारी।
ते प्रभु !आहारक तनु नों स्यूं बंधक, अथवा अबंधक सारी ?
२९. श्री जिन भाखै बंधक नहिं छै, एह अबंध विचारी।
एक समय औदारिक आहारक नों, बंधक नहिं ह्वै तिवारी।।
३०. हे भगवंत ! ओदारिक तनु नों, जसुं सर्व-बंध ह्वै सारी।
ते प्रभु ! स्यूं तेजस नों बंधक, अथवा अबंधक धारी ?
३१. श्री जिन भाखै एह बंधक छै, विरह-रहित ए धारी।
सदा सहचारीपणां थी बंधक, अबंधक नहिं छै लिगारी।।

३२. जो प्रभु ! बंधक तो स्यूं देश-बंध, अथवा सर्व-बंध कारी ?
श्री जिन भाखै देश-बंध ह्वै, सर्व-बंध परिहारी।।
३३. हे प्रभुजी ! औदारिक तणो जसु, सर्व-बंध ह्वै सारी।
ते प्रभु ! स्यूं कार्मण नों बंधक, अथवा अबंधक धारी ?
३४. श्री जिन भाखै एह बंधक छै, विरह-रहित ए धारी।
सदा सहचारीपणां थी बंधक, अबंधक नहिं छै लिगारी।।
३५. जो प्रभु ! बंधक तो स्यूं देशबंध, अथवा सर्व-बंध कारी ?
श्री जिन भाखै देश बंध ह्वै, सर्व-बंध परिहारी।।
३६. हे प्रभुजी ! औदारिक तणो जसु, देश-बंध कर्त्तारी।
ते प्रभु ! वैक्रिय नों स्यूं बंधक, अथवा अबंधक धारी ?
३७. जिन कहै बंधक नहिं छै अबंधक, जिम सर्वबंध करि उचारी।
तिमज देशबन्ध करिकै भणवो, जाव कार्मण धारी।।

३८. हे प्रभु ! वैक्रिय शरीर तणो जसु, सर्व-बन्ध कर्त्तारी।
ते प्रभु ! स्यूं औदारिक नों बंधक, अथवा अबन्धक धारी ?
३९. श्री जिन भाखै बन्धक नहीं छै, एह अबन्धक धारी।
आहारक तनु नों पिण इम कहिवो, पूर्व रीत प्रकारी।।
४०. जेहनुं वैक्रिय तनु नों सर्व-बंध, तसु तेजस कार्मण धारी।
जेहनं वैक्रिय तसु औदारिक नों भणियो, तिमहिज कहिवुं विचारी।।

*लय : गावत मेरी

२५. प्रकारान्तरेणौदारिकादि चिन्तयन्नाह—
(वृ० प० ४१२)

२६. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स सव्वबंधे, से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?
२७. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।
न ह्येकसमये औदारिकवैक्रिययोर्बन्धो विद्यत इति कृत्वा नो बन्धक इति (वृ० प० ४१३)
२८. आहारगसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?

२९. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।
एवमाहारकस्यापि (वृ० प० ४१३)
३०. तेयासरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?

३१. गोयमा ! बंधए नो अबंधए।
तैजसस्य पुनः सदैवाविरहितत्वाद् बन्धको देशबन्धकेन, (वृ० प० ४१३)

३२. जइ बंधए किं देसबंधए ? सव्वबंधए ?
गोयमा ! देसबंधए नो सव्वबंधए ?
३३. कम्मासरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?

३४. गोयमा ! बंधए, नो अबंधए।

३५. जइ बंधए किं देसबंधए ? सव्वबंधए ?
गोयमा ! देसबंधए नो सव्वबंधए। (श० ८।४३९)
३६. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स देसबंधे, से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?
३७. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए। एवं जहेव सव्वबंधेणं भणियं तहेव देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स। (श० ८।४४०)
३८. जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधे, से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?
३९. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए। आहारगसरीरस्स एवं चेव
४०. तेयगस्स कम्मगस्स य जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. जाव वैक्रिय नों सर्व-बंध जसु, तेजस कर्म नों धारी।
देश-बन्ध पिण सर्व-बन्ध नहिं, पूर्व न्याय प्रकारी ॥
४२. हे प्रभु ! वैक्रिय शरीर तणो जसु, देश-बन्ध कर्त्तारी।
ते प्रभु !स्यूं औदारिक नों बन्धक, अथवा अबन्धक धारी ?
४३. जिन कहै नहिं बंधक छै अबंधक, जिम सर्व-बंध करि उचारी।
तिमज देश-बन्ध करिकै भणवो, जाव कार्मण धारी ॥

४४. हे प्रभु ! आहारक शरीर तणो जसु, सर्व-बन्ध कर्त्तारी।
ते प्रभु ! स्यूं औदारिक नों बंधक, अथवा अबंधक धारी ?
४५. जिन कहै नहिं बंधक छै अबंधक, वैक्रिय नों पिण धारी।
इणहिज रीत विचारी कहिवो, आहारक साथ विचारी ॥
४६. आहारक नों सर्व-बंध जसु वलि, तेजस कर्म नुं धारी।
जिम औदारिक संघाते भणियो, तिमहिज भणवो विचारी ॥
४७. हे प्रभु ! आहारक शरीर तणो जसु, देश-बंध कर्त्तारी।
ते प्रभु ! स्यूं औदारिक नों बंधक, अथवा अबंधक धारी ?
४८. इम जिम आहारक शरीर तणां सर्व-बंध संघात उचारी।
तिम देश-बंध संघाते भणवो, जाव कार्मण धारी ॥

४९. तेजस नों प्रभु ! देश-बंध जसु, औदारिक नों ते धारी।
स्यूं प्रभु ! बंधक अथवा अबंधक? जिन कहै दोनूं विचारी ॥

**सोरठा**

५०. विग्रह गति वर्त्तमान, कह्यो अबंधक तेहनैं।
रह्यो अविग्रह जान, वलि बंधक हुवै इण विधे ॥
५१. तेहिज उत्पत्ति खेत, प्राप्ति सर्व-बंध धुर समय।
देश-बंध इण हेत, द्वितीयादि समया विषे ॥

५२. *जो होवै बंधक तो स्यूं देशबंध, अथवा सर्व-बंधकारी ?
जिन कहै देश-बंध कारक ह्वै, सर्व-बंध कर्त्तारी ॥
५३. वैक्रिय नों स्यूं बंधक अबंधक, एवं चेव उचारी।
इमहिज आहारक तनु नों होवै, पूर्व रीत प्रकारी ॥
५४. तैजस नों देशबंध होवै जेहनैं, कार्मण नों स्यूं धारी ?
जिन कहै बंधक पिण न अबंधक, विरह-रहित विचारी ॥
५५ जो बंधक तो स्यूं देश-बंधक, कै सर्व-बंध कर्त्तारी ?
श्री जिन भाखै देश-बंधक ह्वै, सर्व-बंधक परिहारी ॥

५६. प्रभु ! कर्म शरीर नों देश-बंधक जसु, स्यूं औदारिक नुं धारी ?
जिम तेजस नीं वक्तव्यता कही, तिम कार्मण नीं विचारी ॥

*लय : गावत मेरी

४१. जाव देसबंधए नो सव्वबंधए। (श० ८।४४१)

४२. जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स देसबंधे, से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?
४३. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए। एवं जहेव सव्वबंधणं भणियं तहेव देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स। (श० ८।४४२)
४४. जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स सव्वबंधे, से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?
४५. गोयमा ! नो बंधए अबंधए। एवं वेउव्वियस्स वि।
४६. तेया-कम्माणं जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं। (श० ८।४४३)
४७. जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स देसबंधे, से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ?
४८. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए। एवं जहा आहारगस्स सव्वबंधेणं भणियं तहा देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स। (श० ८।४४४)
४९. जस्स णं भंते ! तेयासरीरस्स देसबंधे, से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ? गोयमा ! बंधए वा, अबंधए वा।

५०. तत्र विग्रहे वर्तमानोऽबन्धकोऽविग्रहस्थः पुनर्बन्धकः। (वृ० प० ४१३)
५१. स एवोत्पत्तिक्षेत्रप्राप्तिप्रथमसमये सर्वबंधक द्वितीयादौ तु देशबन्धक इति। (वृ० प० ४१३)

५२. जइ बंधए किं देसबंधए ? सव्वबंधए ? गोयमा ! देसबंधए वा सव्वबंधए वा।
५३. वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ? एवं चेव। एवं आहारगस्स वि।
५४. कम्मगसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ? गोयमा ! बंधए, नो अबंधए।
५५. जइ बंधए किं देसबंधए ? सव्वबंधए ? गोयमा ! देसबंधए, नो सव्वबंधए।

(श० ८।४४५)

५६. जस्स णं भंते ! कम्मासरीरस्स देसबंधे, से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए ? अबंधए ? गोयमा ! नो बंधए अबंधए। जहा तेयगस्स वत्तव्वया भणिया तहा कम्मगस्स वि भाणियव्वा जाव—



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. कार्मण नों देश-बंधक ह्वै जसु, तेजस नों सुविचारी ।
जाव देश-बंध कारक होवै, सर्व-बंधक परिहारी ।।

५७. तेयासरीरस्स जाव (सं० पा०) देसबंधए, नो सव्व-बंधए । (श० ८।४४६)

**सोरठा**

५८. हिवै औदारिक आदि, देश-बंध सर्व-बंधगा ।
अबंधगा संवादि, अल्पबहुत्व कहियै तसु ।।

५८. अथौदारिकादिशरीरदेशबन्धकादीनामल्पत्वादिनिरूपणायाह— (वृ० प० ४१३)

५९. *प्रभु ! जीवां रै औदारिकादि पांचूं तनु, देश-सर्व-बंध कारी ?
अबंधगा में कुण-कुण सेती, जाव विशेष विचारी ?

५९. एएसि णं भंते ! जीवाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेयाकम्मासरीरगाणं देसबंधगाणं सव्वबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा ?

६०. सर्व थी थोड़ा आहारक तनु नां, सर्व-बंधगा विचारी ।
चउद पूर्वधर करै प्रयोजनै, प्रथम समय अद्धा धारी[1] ।।

६०. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्व-बंधगा
यस्मात्ते चतुर्दशपूर्वधरास्तथाविधप्रयोजनवन्त एव भवन्ति (वृ० प० ४१३)

६१. ते आहारक नां देश-बंधगा, संख्यातगुणा विचारी ।
देश-बंधक नों काल घणो छै, ते माटै एम उचारी[2] ।।

६१. तस्स चेव देसबंधगा संखेज्जगुणा
देसबन्धकालस्य बहुत्वात् (वृ० प० ४१४)

६२. वैक्रिय तनु नां सर्व-बंधगा, असंखगुणा सुविचारी ।
आहारक थी असंख्यातगुणा छै, वैक्रिय नां कर्त्तारी[3] ।।

६२. वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधगा असंखेज्जगुणा,
तेषां तेभ्योऽसंख्यातगुणत्वात् (वृ० प० ४१४)

६३. तेहिज वैक्रिय नां देश-बंधगा, असंखेज्जगुणा धारी ।
सर्व-बंध नां काल थकी ए, असंखगुणा सुविचारी ।।

६३. तस्स चेव देसबंधगा असंखेज्जगुणा,
सर्वबन्धाद्धापेक्षया देशबन्धाद्धाया असंख्यातगुणत्वात् (वृ० प० ४१४)

**सोरठा**

६४. अथवा सर्व-बंधकार, प्रतिपद्यमानका जिका ।
देश-बंधगा धार, पूर्व प्रतिपन्नाज ह्वै ।।

६४. अथवा सर्वबन्धकाः प्रतिपद्यमानकाः देशबन्धकास्तु पूर्वप्रतिपन्नाः, (वृ० प० ४१४)

६५. प्रतिपद्यमान थकीज, पूर्व प्रतिपन्ना बहु ।
वैक्रिय सर्व-बंध थीज, असंखगुणा देश बंध इम[4] ।।

६५. प्रतिपद्यमानकेभ्यश्च पूर्वप्रतिपन्नानां बहुत्वात्, वैक्रियसर्वबन्धकेभ्यो देशबन्धका असंख्येयगुणाः, (वृ० प० ४१४)

६६. *तेहथी तेजस कार्मण नां अबंधगा, अनंतगुणा अवधारी ।
वनस्पति वर्जी सर्व जीवां थी, सिद्ध अनंतगुणा सारी[5] ।।

६६. तेयाकम्मगाणं अबंधगा अणंतगुणा
वनस्पतिवर्जसर्वजीवेभ्यः सिद्धानामनन्तगुणत्वादिति (वृ० प० ४१४)

६७. तेहथी औदारिक नां सर्व-बंधक, अनंतगुणा सुविचारी ।
तेह वनस्पति प्रमुख जाणवा, अनंत जीव अवधारी[6] ।।

६७. ओरालियसरीरस्स सव्वबंधगा अणंतगुणा,
ते च वनस्पतिप्रभृतीन् प्रतीत्य प्रत्येतव्याः (वृ० प० ४१४)

---

*लय : गावत मेरी

१. सर्व थोड़ा आहारक नां सर्वबंधगा ।
२. आहारक नां देशबंधगा संख्यातगुणा ।
३. वैक्रिय नां सर्वबंधगा असंख्यातगुणा ।
४. वैक्रिय नां देशबंधगा असंख्यातगुणा ।
५. तेजस कार्मण नां अबंधगा अनंतगुणा ।
६. औदारिक नां सर्वबंधगा अनंतगुणा ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. तेहनां अबंधगा विसेसाहिया, ए विग्रह गति कारी।
सिद्ध अत्यंतज अल्पपणें करि, वंछ्या नहिं इहवारी॥

**सोरठा**

६९. बनस्पती सर्व बंध, अति बहु छै तिण कारणै।
तास अबंधक संध, विशेष अधिक कह्या अछै[1]॥

७०. *तेहथी औदारिक नां देस-बंधगा, असंखेज्जगुणा धारी।
असंख्यातगुणो काल ते माटै, असंखगुणाज उचारी[2]॥

७१. औदारिक नां देश-बंधगा थी, तेजस कर्म नां धारी।
देस-बंधगा विसेसाहिया, आगल न्याय उचारी॥

**सोरठा**

७२. सहु संसारी जंत, तेजस नैं कार्मण तणां।
देश-बंधगा हुंत, पिण ते संसारी विषे॥

७३. विग्रहगतिया जाण, औदारिक सर्व-बंधगा।
वैक्रिय आदि पिछाण, तास बंधगा पिण वलि॥

७४. औदारिक देश-बंध, तेह थकी ए अधिक छै।
ते माटै ए संध, विसेसाहिया जाणवा[3]॥

७५. *तेजस कर्म नां देश-बंध थकी, वैक्रिय तनु नां विचारी।
अबंधगा विसेसाहिया आख्या, तास न्याय इम धारी[4]॥

**सोरठा**

७६. वैक्रिय नों बंधकार, बहुलपणें सुर नारका।
शेष अबंधक धार, सिद्धा वलि अबंधगा॥

७७. तिहां सिद्धा सुविचार, तेजसादि देश-बंध थी।
विशेष अधिका धार, वैक्रिय अबंधक छै तिके॥

७८. वैक्रिय बंध विण जाण, तेजस कर्म बंधक तिके।
वैक्रिय अबंध पिछाण, सिद्ध पिण तास अबंधगा॥

७९. ते माटै पहिछाण, तेजस नैं कार्मण तणां।
देश-बंधक थी जाण, वैक्रिय अबंध सिद्ध बध्या॥

८०. *वैक्रिय तणां अबंधगा थी, आहारक तणां सुविचारी।
अबंधगा विसेसाहिया आख्या, हिव तसु न्याय उचारी[5]॥

६८. तस्स चेव अबंधगा विसेसाहिया
एते हि विग्रहगतिकाः सिद्धादयश्च भवन्ति, तत्र च सिद्धादीनामत्यन्ताल्पत्वेनेहाविवक्षा
(वृ० प० ४१४)

७०. तस्स चेव देसबंधगा असंखेज्जगुणा

७१. तेयाकम्मगाणं देसबंधगा विसेसाहिया

७२. यस्मात् सर्वेऽपि संसारिणस्तैजसकार्मणयोर्देशबन्धका भवन्ति (वृ० प० ४१४)

७३. तत्र च ये विग्रहगतिका औदारिकसर्वबन्धका वैक्रिया-दिबन्धकाश्च (वृ० प० ४१४)

७४. ते औदारिकदेशबन्धकेभ्योऽतिरिच्यन्त इति ते विशेषाधिका इति। (वृ० प० ४१४)

७५. वेउव्वियसरीरस्स अबंधगा विसेसाहिया

७६. यस्माद्वैक्रियस्य बन्धकाः प्रायो देवनारका एव शेषास्तु तदबन्धकाः सिद्धाश्च (वृ० प० ४१४)

७७. तत्र च सिद्धास्तैजसादिदेशबन्धकेभ्योऽतिरिच्यन्ते इति ते विशेषाधिका उक्ताः (वृ० प० ४१४)

८०. आहारगसरीरस्स अबंधगा विसेसाहिया।
(श० ८।४४७)

---

*लय : गावत मेरी

१. औदारिक नां अबंधगा विसेसाहिया।

२. औदारिक नां देशबंधगा असंख्यातगुणा।

३. तेजस कार्मण नां देशबंधगा विसेसाहिया।

४. वैक्रिय नां अबंधगा विसेसाहिया।

५. आहारक नां अबंधगा विसेसाहिया।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

८१. आहारक मनुष्य मझार, वैक्रिय अन्य में पिण हुवै।
वैक्रिय बंध थी धार, अल्प आहारकबंधगा॥

८१. यस्मान्मनुष्याणामेवाहारकशरीरं वैक्रियं तु तदन्येषामपि, ततो वैक्रियबन्धकेभ्य आहारकबन्धकानां स्तोकत्वेन। (वृ० प० ४१४)

८२. वैक्रिय अबंधकार, तेह थकी अधिका अछै।
आहारक अबंध धार, ते माटै विसेसाहिया॥

८२. वैक्रियाबन्धकेभ्य आहारकाबन्धका विशेषाधिका इति। (वृ० प० ४१४)

८३. *सेवं भंते! अंक नव्यासी नुं, ढाल इकसौ चोसठमीं भारी।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति सारी॥

८३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति (श० ८।४४८)

अष्टमशते नवमोद्देशकार्थः ॥८।९॥

## ढाल : १६५

**दूहा**

१. नवम उदेशक नैं विषे, कह्या अर्थ बंधादि।
शील श्रुत संपन्न पुरुष, तेह विचारै साधि॥
२. ते माटै श्रुतादि करि, संपन्न पुरुष विशेष।
प्रभूत वस्तु विचारणा, आखै दशमुद्देश॥

१,२. अनन्तरोद्देशके बन्धादयोऽर्था उक्ताः, तांश्च श्रुतशीलसम्पन्नाः पुरुषा विचारयन्तीति श्रुतादिसम्पन्नपुरुषप्रभृतिपदार्थविचारणार्थो दशम उद्देशकः (वृ० प० ४१७)

३. राजगृह यावत इमज, वदै गोयम धर प्रेम।
अन्यतीर्थिक प्रभु इम कहै, जाव परूपै एम॥

३. रायगिहे नगरे जाव एवं वयासी—अण्णउत्थिया णं भंते! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति—

४. इम निश्चै करि शील श्रेय, क्रिया थकी शिव पाय।
ज्ञान तणों कारण नहीं, ए धुर मत कहिवाय॥

४. एवं खलु सीलं सेयं
इहान्ययूथिकाः केचित् क्रियामात्रादेवाभीष्टार्थसिद्धिमिच्छन्ति न च किञ्चिदपि ज्ञानेन प्रयोजनम् (वृ० प० ४१७)

५. एक कहै श्रुत हीज श्रेय, ज्ञान थकी शिव थाय।
क्रिया नों कारण नहीं, ए मत द्वितीय कहाय॥

५. सुयं सेयं
अन्ये तु ज्ञानादेवेष्टार्थसिद्धिमिच्छन्ति न क्रियातः (वृ० प० ४१७)

६. इक कहै केवल शील थी, केवल श्रुत थी मुक्त।
ए बिहुं ग्रहै पिण एक पक्ष, ए तीजो मत उक्त॥

६. सुयं सीलं सेयं। (श० ८।४४९)

७. ते किम हे प्रभु! एह इम, तब भाखै जिनराय।
जे अन्यतीर्थी इम कहै, यावत मिथ्या वाय॥

७. से कहमेयं भंते! एवं?
गोयमा! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु।

८. हूं पिण गोतम इम कहूं, जाव परूपूं एम।
च्यार जाति नां पुरुष म्है, आख्या कहियै जेम॥

८. अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि—
एवं खलु मए चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

*लय : गावत मेरी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*ज्ञानी देव नों जग जश छायो, यां तो भिन-भिन भेद बतायो ।
हलुकर्मी सुण हरषायो, प्रभु शासण-तिलक कहायो ।।
(ध्रुपदं)

९. शील क्रिया करि सहित एक पिण,
श्रुत ज्ञान सम्यक्त नांह्यो हां रे लाला ।
ज्ञान सम्यक्त सहित एकपिण, शील क्रिया नहिं पायो,
भंग ए दूजो कहायो ।।

९. सीलसंपन्ने नामं एगे नो सुयसंपन्ने, सुयसंपन्ने नामं एगे नो सीलसंपन्ने,

१०. शील क्रिया करी सहित एक पिण, श्रुत ज्ञान सम्यक्त पायो ।
शील क्रिया करि रहित एक बली, श्रुत ज्ञान सम्यक्त नांह्यो ।।
चतुर्थो भंग बतायो ।।

१०. एगे सीलसंपन्ने वि, सुयसंपन्ने वि । एगे नो सीलसंपन्ने नो सुयसंपन्ने

११. तत्र प्रथम पुरुष-जाति प्रकारज, तेह पुरुष कहिवायो ।
शील क्रिया करि सहित छै पिण, अश्रुतवंत कहायो ।
ज्ञान सम्यक्त न पायो ।।

११. तत्थ णं जे से पढमे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं असुयवं—

१२. स्व बुद्धि करके निवर्त्यो पाप थी, धर्म न जाण्यो ताह्यो ।
एह पुरुष म्है गोतम आख्यो, देश आराधक मांह्यो ।
वृत्तौ बाल-तपस्वी फलायो ।।

१२. उवरए, अविण्णायधम्मे । एस णं गोयमा ! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते ।
'उपरत' निवृत्तः स्वबुद्ध्या पापात् 'अविज्ञातधर्मा' भावतोऽनधिगतश्रुतज्ञानो बालतपस्वीत्यर्थः ।
(वृ० प० ४१८)

वा०—अनेरा आचार्य कहै—गीतार्थ री नेश्राय बिना अगीतार्थ तप करिवा तत्पर, इम वृत्ति में कह्यो, ते लेखै । पिण ए गीतार्थ री आज्ञा बिना अपछंदो अगीतार्थ प्रथम गुणठाणे संभवै ।

वा० गीतार्थानिश्रिततपश्चरणनिरतोऽगीतार्थ इत्यन्ये
(वृ० प० ४१८)

जे दूजे भांगे अविरति सम्यग्दृष्टि नैं देश-विराधक कह्यो अनैं एहनैं प्रथम भांगे देश-आराधक कह्यो ते माटै ए सम्यक्त्व-रहित क्रिया करिवा तत्पर साधु वेषे अपछंदो जाणवो ।

१३. 'देश थोड़ो सो अंश आराधै, मोक्ष मारग नों ताह्यो ।
वृत्ति मध्यें इह रीत कह्यो, शुद्ध करणी निरवद्य इण न्यायो ।
प्रथम गुणठाणे कहायो ।।

१३. देशं—स्तोकमंशं मोक्षमार्गस्याराधयतीत्यर्थः सम्यग्बोधरहितत्वात् क्रियापरत्वाच्चेति (वृ० प० ४१८)

१४. देश आराधक प्रथम गुणठाणे, आख्यो ए किण न्यायो ।
विरति नहीं पिण निर्जरा लेखैं, श्री जिनवर फुरमायो ।
करणी ए आज्ञा मांह्यो ।।

१५. असोच्चा केवली रै अधिकारे, विभंग अज्ञानी रा ताह्यो ।
शुभ अध्यवसाय परिणाम कह्या छै, विशुद्ध लेस्या कहायो ।
धर्म ध्यान अर्थ रै मांह्यो ।।

१५. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं····अण्णया कयावि सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं-विसुज्झमाणीहिं····विभंगे नामं अण्णाणे समुप्पज्जइ । (भ० श० ९।३३)

१६. तामली सोमल ऋषि नीं कही, अनित्य-चिंतवणा पाठ मांह्यो ।
वीर नीं अनित्य-चिंतवणा भगवती में, सूत्र उववाई रै मांह्यो ।
भेद धर्म ध्यान नुं आयो ।।

१६. तए णं तस्स तामलिस्स बालतवस्सिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स···· (भ० श० ३।३६)

*लय : ज्ञानी गुरुजी रो जग जश छायो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. प्रथम गुणठाणे सुव्रती कह्या, उत्तराध्येन सातमां मांह्यो।
मनुष्य मरीनें मनुष्य हुवै ते, सुव्रती निर्जरा न्यायो।
व्रत संवर नहिं पायो॥

१८. शुभ पराक्रम थी व्यंतर सुख पाया, जंबूद्वीपपन्नत्ति मांह्यो।
व्यंतर में मिथ्यातीज ऊपजै, शुभ करणी इण न्यायो।
प्रथम गुणठाणा मांह्यो॥

१९. सुमुख गाथापति सुदत्त मुनि नें, असणादिक वहिरायो।
दायक जोग करण शुद्ध दाख्या, परीत्त संसारज पायो।
मनुष्य नों आयु बंधायो॥

२०. गज भव सुसला री दया पाली नें, परीत संसारज पायो।
मनुष्य तणो आउखो बांध्यो, तो मिथ्यादृष्टि इण न्यायो।
सूत्र ज्ञाता रै मांह्यो॥

२१. खंधक संन्यासी नें जिन-वंदन री, आज्ञा गोयम दीधी ताह्यो।
सूत्र भगवती रा बीजा शतक रै, प्रथम उदेशा मांह्यो।
शुद्ध करणी इण न्यायो॥

२२. प्रकृति भद्र अरु प्रकृति विनीतज, दया अमच्छर भायो।
च्यार प्रकार मनुष्य आयु बांधै, तो मनुष्य मरी मनुष्य थायो।
ए पिण धुर गुणठाणा मांह्यो॥

२३. सरागसंजम संजमासंजम, बालतपे करि ताह्यो।
अकामनिर्जरा करि सुर होवै, ए च्यारुंइ निरवद्य पायो।
चिउं जिन आज्ञा मांह्यो॥

२४. सरागसंजम संजमासंजम, बिहुं कहै आज्ञा मांह्यो।
बालतप अकामनिर्जरा, आज्ञा बारै किम थायो।
विचारी जोवो न्यायो'॥
(ज० स०)

२५. सर्वविरति साधु सर्व-आराधक, मोक्षमारग नां बतायो।
तीजा भांगा नां आगल कहिस्यै, वीर वचन वर न्यायो।
प्रवर ए आज्ञा मांह्यो॥

२६. तत्र ते बीजो पुरुष-प्रकारज, तेह पुरुष कहिवायो।
अशीलवंत ते क्रिया-रहित छै, पिण श्रुतवंत सवायो।
ज्ञान समदृष्टि ए मांह्यो॥

२७. पाप थकी ते निवर्त्यो नहीं छै, धर्म जाणपणो पायो।
एह पुरुष म्हैं गोतम! भाख्यो, देश-विराधक मांह्यो।
चोथे गुणठाणे कह्यो॥

१७. वेमायाहिं सिक्खाहिं जे नरा गिहिसुव्वया।
उवेंति माणुसं जोणिं कम्मसच्चा हु पाणिणो॥
(उत्तर० ७।२०)

१८. तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य·········
सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं····पच्चणुभवमाणा
विहरंति (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति वृ० प० ३१)

१९. तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं
गाहगसुद्धेणं दायगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं
सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए,
मणुस्साउए निबद्धे, (विवागसुयं २।१।२३)

२०. तए णं तुमं मेहा! ताए पाणाणुकंपयाए जाव
सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए माणुस्साउए
निबद्धे, (नाया० १।१८२)

२१. तए णं से खंदए कच्चायणसगोत्ते भगवं गोयमं एवं
वयासी—गच्छामो णं गोयमा! तव धम्मायरियं
धम्मोवदेसयं समणं भगवं महावीरं वंदामो जाव पज्जु-
वासामो।
अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं।
(भ० श० २।३९)

२२. चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्साउयत्ताए कम्मं पगरेंति,
तं जहा—पगतिभद्दताए, पगतिविणीययाए, साणुक्को-
सयाए, अमच्छरिताए। (ठाणं ४।६३०)

२३. चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्म पगरेंति, तं
जहा—सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवो-
कम्मेणं, अकामणिज्जराए। (ठाणं ४।६३१)

२६. तत्थ णं जे से दोच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं
सुयवं—

२७. अणुवरए, विण्णायधम्मे। एस णं गोयमा! मए
पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते।
'अणुवरए विन्नायधम्मे' त्ति पापादनिवृत्तो विज्ञातधर्मा
चाविरतिसम्यग्दृष्टिरितिभावः (वृ० प० ४१८)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

२८. चारित्र पाय विराध, तथा चरण पायो नथी ।
देश-विराधक लाध, वृत्तिकार इणविध कह्यो ॥

२९. *तत्र जे तीजा पुरुष नों प्रकारज, तेह पुरुष कहिवायो ।
शीलवंत क्रियावंत अछै ए, वलि श्रुतवंत सवायो ।
ज्ञान समदृष्टि ए मांह्यो ॥

३०. पाप थकीज निवर्त्यो छै ते, विज्ञात-धर्म शोभायो ।
एह पुरुष म्हैं गोतम ! भाख्यो, सर्व-आराधक पायो ।
संत मुनिवर सुखदायो ॥

३१. तत्र जे चतुर्थ पुरुष प्रकारज, तेह पुरुष कहिवायो ।
शीलवंत क्रियावंत नहीं ए, अश्रुतवंत कहायो ।
ज्ञान समदृष्टि न पायो ॥

३२. पाप थकी निवर्त्यो नहीं ते, धर्म जाणपणो न आयो ।
एह पुरुष म्हैं गोतम ! भाख्यो, सर्व-विराधक मांह्यो ।
मिथ्याती क्रिया विण ताह्यो ॥

## सोरठा

३३. श्रुत शब्दे करि माण, ज्ञान दर्शण बिहुं संग्रह्या ।
धर्म तणोज अजाण, मिथ्यादृष्टी तत्व थी ॥

३४. श्रावक नें पिण ताहि, व्रतां तणी अपेक्षया ।
तीजा भांगा मांहि, एहवूं न्याय जणाय छै ॥

३५. *अष्टम शत देश दशम उदेशक, इकसौ पैंसठ ढाल मांह्यो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष सवायो ।
सरस सुख संपति पायो ॥

२८. 'देसविराहए' त्ति देशं····चारित्रं विराधयतीत्यर्थः प्राप्तस्य तस्यापालनादप्राप्ते र्वा (वृ० प० ४१८)

२९. तत्थ णं जे से तच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं सुयवं—

३०. उवरए, विण्णायधम्मे । एस णं गोयमा ! मए पुरिसे सव्वाराहए पण्णत्ते ।

३१. तत्थ णं जे से चउत्थे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं असुयवं—

३२. अणुवरए, अविण्णायधम्मे । एस णं गोयमा ! मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते । (श० ८।४५०)

३३. श्रुतशब्देन ज्ञानदर्शनयोः संगृहीतत्वात् न हि मिथ्यादृष्टिर्विज्ञातधर्मा तत्त्वतो भवतीति (वृ० प० ४१८)

## ढाल : १६६

## सोरठा

१. सर्व आराधक ताम, तीजा भांगा में कह्यो ।
आराधना अभिराम, तास विस्तार कहै हिवै ॥

## दूहा

२. आराधना प्रभु ! कतिविधा ? जिन कहै तीन प्रकार ।
ज्ञान दर्शन चारित्र तणी, आराधना सुविचार ॥

१. अथाराधनामेव भेदत आह— (वृ० प० ४१८)

२. कतिविहा णं भंते आराहणा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—
नाणाराहणा, दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा ।
(श० ८।४५१)

*लय : ज्ञानी गुरुजी को जग जश छायो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. पंच प्रकारे ज्ञान है, तथा ज्ञान श्रुत नाण।
आराधना कालादिके, भणें पवर गुणखाण॥
४. दर्शण ते सम्यक्त्व नीं, आराधना सुखकार।
निःसंकितपणुं आदि दे, पालै तसु आचार॥
५. चारित्र सामायक प्रमुख, तसु आराधन सार।
निरतिचारे पालवो, धर उपयोग उदार॥
६. ज्ञान तणी आराधना, कतिविध हे भगवन्न!
जिन कहै तीन प्रकार है, उत्कृष्ट मभिम जघन्न॥

७. उत्कर्षा ज्ञान-आराधना, ज्ञान कार्य अनुष्ठान।
तास विषे प्रयत्न अति, गाढो उद्यम आन॥
८. तास विषे प्रयत्न अति, गाढो उद्यम नांय।
तिम बहु हीणो पिण नहीं, ते मज्झिम कहिवाय॥
९. ज्ञान कृत्य कार्य विषे, अतिहि अल्प प्रयत्न।
अति थोड़ो उद्यम करै, कहियै तास जघन्न॥
१०. दर्शण तणी आराधना, कतिविध हे भगवन्न!
जिन कहै तीन प्रकार है, उत्कृष्ट मभिम जघन्न॥

११. चरित्र तणी आराधना, कतिविध हे भगवन्न!
जिन कहै तीन प्रकार है, उत्कृष्ट मभिम जघन्न॥

१२. आखी तीन आराधना, हिव आराधन भेद।
मांहोमांहि फलावियै, सुणजो आण उमेद॥

*जोयजो रे जिन-वचनामृत वारू॥(ध्रुपदं)

१३. जेहनें हे भगवन! उत्कृष्टी, ज्ञान आराधना होइ हो।
तेहनें उत्कृष्टी दर्शण नीं, आराधना अवलोइ हो?
१४. जेहनें उत्कृष्टी दर्शण नीं, आराधना हुवै सोइ।
तेहनें ज्ञान तणी आराधन, उत्कृष्टी अवलोइ?
१५. जिन भाखै उत्कृष्ट ज्ञान नीं, आराधना जसु होइ।
तेहनें दर्शन नीं आराधना, उत्कृष्ट मभिम सुजोइ॥

**सोरठा**

१६. उत्कृष्ट ज्ञान आराध, तसु दर्शण आराधना।
उत्कृष्ट मभिम सुलाध, जघन्य न हुवै स्वभाव थी॥

१७. *जेहनें वलि उत्कृष्ट दर्शण नीं, आराधना हुवै सोइ।
ज्ञान आराधना तसुं उत्कृष्टी, जघन्य मभिम पिण होइ॥

*लय : रामजी नार गमाई हो

३. तत्र ज्ञानं पञ्चप्रकारं श्रुतं वा तस्याराधना—कालाद्यु-
पचारकरणम्, (वृ० प० ४१६)
४. दर्शनं—सम्यक्त्वं तस्याराधना—निश्शंकितत्वादितदा-
चारानुपालनम् (वृ० प० ४१६)
५. चारित्रं—सामायिकादि तदाराधना—निरतिचारता
(वृ० प० ४१६)
६. नाणाराहणा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया,
मज्झिमा, जहण्णा। (श० ८।४५२)
७. 'उक्कोसिय' त्ति उत्कर्षा ज्ञानाराधना ज्ञानकृत्या-
नुष्ठानेषु प्रकृष्टप्रयत्नता (वृ० प० ४१६)
८. 'मज्झिम' त्ति तेष्वेव मध्यमप्रयत्नता
(वृ० प० ४१६)
९. 'जहन्न' त्ति तेष्वेवाल्पतमप्रयत्नता
(वृ० प० ४१६)
१०. दंसणाराहणा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया,
मज्झिमा, जहण्णा। (श० ८।४५३)
११. चरित्ताराहणा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसिया,
मज्झिमा, जहण्णा। (श० ४५४)
१२. अथोक्ताऽराधनाभेदानामेव परस्परोपनिबन्धमभिधातु-
माह— (वृ० प० ४१६)

१३. जस्स णं भंते! उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स
उक्कोसिया दंसणाराहणा?
१४. जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया
नाणाराहणा?
१५. गोयमा! जस्स उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स दंस-
णाराहणा उक्कोसा वा अजहण्णुक्कोसा वा,

१६. उत्कृष्टज्ञानाराधनावतो हि आद्ये द्वे दर्शनाराधने
भवतो न पुनस्तृतीया, तथास्वभावत्वात्तस्येति।
(वृ० प० ४१६)
१७. जस्स पुण उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स नाणाराहणा
उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा।
(श० ८।४५५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## सोरठा

१८. उत्कृष्ट दर्शन आराध, तेह तणें जे ज्ञान नीं।
आराधना त्रिहुं लाध, संभव त्रिहुं प्रयत्न नों ।।

१९. *जेहनें प्रभु ! उत्कृष्ट ज्ञान नीं, आराधना छै ताहि ।
तेहनें उत्कृष्टी चारित्र नीं, आराधना ए थाइ ?

२०. जेहनें उत्कृष्टी चारित्र नीं, आराधना ए थाइ ।
तेह तणें उत्कृष्ट ज्ञान नीं, आराधना सुखदाइ ?

२१. जिन भाखै उत्कृष्ट ज्ञान नीं, आराधना जसु पाइ ।
तेहनें चारित्र नीं आराधन, उत्कृष्ट मज्झिम कहाइ ।।

२२. †उत्कृष्ट ज्ञान आराधवंत नें, पवर चरण प्रभाव थी ।
तसु जघन्य उद्यम चरण नों नहिं, तथाविध स्वभाव थी ।।

२३. *तेहनें उत्कृष्टी चारित्र नीं, आराधना सुखदाइ ।
ज्ञान आराधना तसु उत्कृष्टी, जघन्य मज्झिम पिण थाइ ।।

२४. †उत्कृष्ट चरण आराधवंत नें, ज्ञान नीं त्रिहुं जाणियै ।
जघन्य मज्झिम उत्कृष्ट त्रिहुं नों, उद्यम तास वखाणियै ।।

२५. *जेहनें प्रभु ! उत्कृष्ट दर्शण नीं, आराधना घट मांहि ।
तेहनें चारित्र नीं आराधना, उत्कृष्टी वरदाइ ?

२६. जेहनें उत्कृष्टी चारित्र नीं, आराधना वरदाइ ।
तेहनें उत्कृष्टी दर्शण री, आराधना ए थाइ ?

२७. जिन कहै जसु उत्कृष्ट दर्शण नीं, आराधना सुखदाइ ।
तेहनें चरित्र आराधना, भजना कर त्रिहुं पाइ ।।

२८. †उत्कृष्ट दर्शणवंत नें, चारित्र नीं त्रिहुं जाणियै ।
उत्कृष्ट मज्झिम जघन्य, चारित्र तणों उद्यम आणियै ।।

२९. *वलि जेहनें उत्कृष्ट चारित्र नीं, आराधना अधिकाइ ।
दर्शण आराधना तसु उत्कृष्टी, निश्चै करिनें थाइ ।।

३०. †उत्कृष्ट चरण आराधवंत नें, दर्शण तणी आराधना ।
जघन्य मज्झिम नहिं हुवै, उत्कृष्ट ईज सुसाधना ।।

३१. प्रकृष्ट चरण केड़ै अछै, प्रकृष्ट दर्शण निर्मलो ।
उत्कृष्ट चारित्रवंत नें, उत्कृष्ट दर्शण छै भलो ।।

१८. उत्कृष्टदर्शनाराधनावतो हि ज्ञानं प्रति त्रिप्रकारस्यापि प्रयत्नस्य सम्भवोऽस्तीति, (वृ० प० ४१६)

१९. जस्स णं भंते ! उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा ?

२०. जस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स उक्कोसिया नाणाराहणा ?

२१. गोयमा ! जस्स उक्कोसिया नाणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा अजहण्णुक्कोसा वा ।

२२. उत्कृष्टज्ञानाराधनावतो हि चारित्रं प्रति नाल्पतमप्रयत्नता स्यात् तत्स्वभावात्तस्येति । (वृ० प० ४१६)

२३. जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स नाणाराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा । (श० ८।४५६)

२४. उत्कृष्टचारित्राराधनावतस्तु ज्ञानं प्रति प्रयत्नत्रयमपि भजनया स्यात् । (वृ० प० ४१६)

२५. जस्स णं भंते ! उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा ?

२६. जस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा ?

२७. गोयमा ! जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा ।

२८. उत्कृष्टदर्शनाराधनावतो हि चारित्रं प्रति प्रयत्नस्य त्रिविधस्याप्यविरुद्धत्वादिति (वृ० प० ४१६)

२९. जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स दंसणाराहणा नियमा उक्कोसा । (श० ८।४५७)

३०. उत्कृष्टायां तु चारित्राराधनायामुत्कृष्टैव दर्शनाराधना (वृ० प० ४१६)

३१. प्रकृष्टचारित्रस्य प्रकृष्टदर्शनानुगतत्वादिति (वृ० प० ४१६)

*लय : रामजी नार गमाई हो

†लय : पूज मोटा भांजै तोटा



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

३२. हिवै आराधन भेद, तसु फल 'देखाड़वा अरथ।
गोयम प्रश्न उमेद, उत्तर श्री जिन आखियै॥

३२. अथाराधनाभेदानां फलप्रदर्शनायाह—
(वृ० प० ४१६)

३३. *उत्कृष्ट ज्ञान आराधन प्रति प्रभु! आराधी नें तेही।
कति भव ग्रहण करीनें सीझै, यावत अंत करेई?

३३. उक्कोसियण्णं भंते! नाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति?

३४. जिन कहै कितलाइक तिणहिज भव, सीझै शिवपुर जाइ।
उत्कृष्ट चरण आराधना तिण में, तिण सूं ए फल पाइ॥

३४. गोयमा! अत्थेगतिए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति,
उत्कृष्टचारित्राराधनायाः सद्भावे, (वृ० प० ४२०)

३५. कोइक दूजो भव करि सीझै, यावत अंत करेइ।
ए बीजा नर भव नीं अपेक्षा, न्याय जणावै एही॥

३५. अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंतं करेति। (पा० टि० ४)

३६. कोइ कल्प सौधर्म प्रमुख में, उपजै सुर पद पाई।
अथवा कोई कल्पातीते, ऊपजवूं तसु थाई॥

३६. अत्थेगतिए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जति।
(श० ८।४५८)
'कप्पोवएसु व' त्ति····सौधर्मादिदेवलोकोपगेषु····
(वृ० प० ४२०)

३७. उत्कृष्ट दर्शण आराधना प्रभुजी! आराधी नें तेही।
केतला भव ग्रहणे करि सीझै, एवं चेव कहेई॥

३७. उक्कोसियण्णं भंते! दंसणाराहणा आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति एवं चेव (सं० पा०)
(श० ८।४५९)

**सोरठा**

३८. उत्कृष्ट ज्ञान आराध, आखी छै तिण रीत सूं।
दर्शण नीं तिम साध, उत्कृष्टी आराधना॥

३९. *हे प्रभु! उत्कृष्ट चारित्र आराधना, आराधी नें जेही।
एवं चेव पूर्ववत कहिवूं, णवरं विशेष एही॥

३९. उक्कोसियण्णं भंते! चरित्ताराहणा आराहेत्ता एवं चेव नवरं (सं० पा०)

४०. तिहां कह्यो केइ कल्प में ऊपजै, ते इहां कहिवूं नांही।
कल्पातीत विषे केइ ऊपजै, इम कहिवूं इण मांहि॥

४०. अत्थेगतिए कप्पातीएसु उववज्जति।
(श० ८।४६०)

**सोरठा**

४१. उत्कृष्ट चारित्रवंत, सौधर्मादिक कल्प में।
उपजवूं नहि हुंत, कल्पातीते ऊपजै॥

४१. उत्कृष्टचारित्राराधनावतः सौधर्मादिकल्पेष्वगमनाद्।
(वृ० प० ४२०)

४२. उत्कृष्ट चरण आराध, जो शिव पद तिण भव नहीं।
पंच अणुत्तर साध, तेह विषे जे ऊपजै॥

४२. सिद्धिगमनाभावे तस्यानुत्तरसुरेषु गमनात्
(वृ० प० ४२०)

४३. उत्कृष्ट चरण आराध, कोइक तिण भव शिव लहै।
कोइक बीजे भव लाध, नर भव तणी अपेक्षया॥

४४. कोइक कल्पातीत, पंच अणुत्तर सुर हुवै।
सहु कहिवूं इण रीत, कल्प विषे कहिवूं नथी॥

**वा०**—'कोई पूछै इहां कह्यो—उत्कृष्ट चारित्र नीं आराधना वालो कल्पातीत में ऊपजै तो जघन्य चारित्र नीं आराधना वालो कल्पातीत में ऊपजै कै नहीं?

*लय : रामजी नार गमाई हो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेहनों उत्तर—जिम उत्कृष्ट चारित्र नीं आराधना वालो तिण भव तथा तीजै भव मोक्ष जाय। अनैं तीजैं भव मोक्ष जाय, तेहनीं उत्कृष्टी आराधना पिण हुइं अनैं जघन्य मज्झिम पिण हुइं। तथा जिम असन्नी नरक जाय तो पहिली नरक नैं विषेहीज जाय, आगल न जाय। अनैं पहिली नरके जाय ते सन्नी पिण जाय असन्नी पिण जाय। तिम उत्कृष्ट चारित्र नीं आराधना वालो तो सिद्ध तथा कल्पातीत नैं विषेईज ऊपजै, कल्प नैं विषे न ऊपजै। अनैं कल्पातीत नैं विषे ऊपजै ते उत्कृष्ट चारित्र नीं आराधना वालो पिण ऊपजै अनै जघन्य मज्झिम वालो पिण ऊपजै। अभव्य मुनि-लिंगे अधिक तप थी कल्पातीत—नवमा ग्रैवेयक नैं विषे ऊपजै छै, तो जघन्य चारित्र नीं आराधना वालो किम न ऊपजै? इण न्याय जघन्य चारित्र वालो पिण कल्पातीत नैं विषे ऊपजतो दीसै छै।' (ज० स०)

४५. *मज्झिम ज्ञान आराधना प्रभुजी ! आराधी नैं तेही।
केतला भव ग्रहणे करि सीझै, यावत अन्त करेई ?

४५. मज्झिमियण्णं भंते ! नाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ?

४६. जिन कहै केइक बीजा भव में, सीझै—मुक्ति सिधावै।
वर्त्तमान नर भव नीं अपेक्षा, दूजो नर भव पावै॥

४६. गोयमा ! अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्व-दुक्खाणं अंतं करेति,
अधिकृतमनुष्यभवापेक्षया द्वितीयेन मनुष्यभवेन (वृ० प० ४२०)

**सोरठा**

४७. जे जाये निर्वाण, ते उत्कृष्ट ज्ञान बिन।
उत्पत्ति कदेय म जाण, तिण सूं भव दूजो कह्यो॥
४८. मज्झिम ज्ञान आराध, एहनैं सुर पद छै सही।
उत्कृष्ट ज्ञान न लाध, तिण सूं तिण भव शिव नहीं॥

४७. भावे पुनरुत्कृष्टमवश्यम्भावीत्यवसेयं, निर्वाणान्यथाऽनुपपत्तेरिति (वृ० प० ४२०)

४९. *मज्झिम ज्ञान आराधन वालो, तीजो भव न उलंघे।
वर्त्तमान नर भव नीं अपेक्षा, तीजे नर भव चंगे॥

४९. तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ। (श० ८।४६१)
अधिकृतमनुष्यभवग्रहणापेक्षया तृतीयं मनुष्यभवग्रहणाम, (वृ० प० ४२०)

५०. मज्झिम दर्शन आराधना प्रभुजी ! आराधी नैं तेही।
मज्झिम ज्ञान आराधना नों फल, भाख्यो तेम कहेई॥
५१. मज्झिम चरित्त आराधना पिण इम, मज्झिम ज्ञान दर्शण नीं।
वलि मज्झिम चारित्र नीं आराधना, एक सरीखी वरनी॥

५०. मज्झिमियण्णं भंते ! दंसणाराहणं आराहेत्ता एवं चेव
५१. एवं मज्झिमियं चरित्ताराहणं पि (सं० पा०) (श० ८।४६२,४६३)

**सोरठा**

५२. पूर्वे भाखी एह, मज्झिम ज्ञान दर्शण तणी।
आराधना गुणगेह, ते सहु चारित्र सहित छै॥

५३. *हे प्रभु ! ज्ञान नीं जघन्य आराधना, आराधी नैं तेही।
केतला भव ग्रहणे करि सीझै, यावत अन्त करेई ?

५३. जहण्णियण्णं भंते ! नाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति ?

५४. जिन कहै तीजै भव केइ सीझै, सत्त अठ भव न उलंघे।
जघन्य दर्शण आराधना पिण इम, सुर नर पनर उमंगे॥

५४. गोयमा ! अत्थेगतिए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ। (श० ८।४६४)
एवं दंसणाराहणं पि,

---

* लय : रामजी नार गमाई हो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**सोरठा**

५५. चरित्त आराधन सार, तेहनों इज ए फल कह्यो।
इम कह्यो टीकाकार, ते थी चारित्र सहित ए।।
५६. अठ भव चरित्त प्रधान, श्रुत सम्यक्त्व देश व्रत नां।
असंख्यात भव जान, एहवो आख्यो छै तिहां।।
५७. चरण आराधन रहीत, ज्ञान दर्शण आराधना।
भव असंख पिण रीत, अष्टईज भव नहिं वृत्तौ।।

५८. 'चरम रात्रि गोशाल, सम्यक्त पायो भगवती।
शतक पनरमें न्हाल, लाखां भव तेहनां कह्या।।

५९ सर्व थी थोड़ा ताहि, जीव चरित-आतम तणां।
संख्याता अर्थ मांहि, दशमुद्देश शत बारमें।।
६०. पंच चारित्र थी जाण, चरित्ताचरित्त कह्यो जुदो।
ते माटै पहिछाण, अधिक तास भव संभवै।।
६१. इत्यादिक वर न्याय, वली वृत्ति अवलोकतां।
भव असंख जणाय, समदृष्टी श्रावक तणां।।'
(ज० स०)

वा०—कोई पूछै—जघन्य चारित्र नीं आराधना वालो कल्पातीत नैं विषे ऊपजै कै नहीं ? तेहनुं उत्तर सूत्रे करी कहै छै—पन्नवणा पद पन्द्रह में कह्यो—विजय विमाण नों देवता अनागत काले सौधर्म देवलोके सुरपणै केतली इंद्रिय करिस्यै ? इम पूछ्यो जद भगवंत कह्यो—पांच, दस, पन्द्रह तथा संख्याती इंद्रिय करिस्यै, इम कह्यो। जो संख्याती में एक भव नीं पांच इंद्रिय लेखवै तो पिण चार भव प्रथम देवलोक नां देवता नां अनैं चार भव मनुष्य नां—एवं आठ अनै एक भव विजय विमाण नों—नव, एक भव पूर्व भव मनुष्य मरी विजय विमाण में ऊपनों ते—दस अनै एक भव मनुष्य नों—ग्यारह। एवं ग्यारह भव तो थया अनैं संख्याती इंद्रिय कही तिण में अधिक भव लेखवै तो पन्द्रह भव तांइ री नां नहीं। अनैं इहां जघन्य चारित्र नीं आराधना वाला रा उत्कृष्ट पन्द्रह भव कह्या अनैं मझिम चारित्र नीं आराधना वालो तीजो नर भव उल्लंघै नहीं, इम कह्या माटै तेहनां पांच भव हुइं। पांच भव उपरंत वाला रै जघन्य चारित्र नीं आराधना संभवै। इण न्याय जघन्य चारित्र नीं आराधना वालो पिण तप रूप अधिक करणी थकी विजय विमाण ऊपजतो दीसै छै।

६२. *जघन्य चारित्र नीं आराधना पिण इम, केइक शिव भव तीजै।।
सात आठ भव पुण न उलंघै, एम इहां पिण लीजै।

---

*लय : रामजी नार गमाई हो

५५. यतश्चारित्राराधनाया एवेदं फलमुक्तम्—
(वृ० प० ४२०)
५६. 'अट्ठभवा उ चरित्ते' त्ति श्रुतसम्यक्त्वदेशविरति-भवास्त्वसंख्येया उक्ताः। (वृ० प० ४२०)
५७. ततश्चरणाराधनारहिता ज्ञानदर्शनाराधना असंख्येयभविका अपि भवन्ति, न त्वष्टभविका एवेति।
(वृ० प० ४२०)
५८. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि पडिलद्ध-सम्मत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था।
(भ० श० १५।१४१)
५९. एयासि णं भंते ! ...........
गोयमा ! सव्वत्थोवाओ चरित्तायाओ........।
(भ० श० १२।२०५)
'सव्वत्थोवाओ चरित्तायाओ' त्ति चारित्रिणां संख्याततत्वात्। (भग० वृ० प० ५९१)

वा०—विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स अतीया अणंता। बद्धेल्लगा पंच, पुरेक्खडा पंच वा दस वा पण्णरस वा संखेज्जा वा।...........
(पण्णवणा १५।१३९)

६२. एवं चरित्ताराहणं पि (सं० पा०)
(पा० टि० १)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. देश अष्टम शत दशम उदेशो, ढाल इकसौ छासठमीं आखी।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' संपति राखी ॥

## ढाल : १६७

### दूहा

१. चारित्र जीव परिणाम ते, पूर्वे आख्या ताम।
पुद्गल नों परिणाम हिव, कहियै अर्थ अमाम ॥

१. अनन्तरं जीवपरिणाम उक्तोऽथ पुद्गलपरिणामाभिधानायाह— (वृ० प० ४२०)

२. कितले भेदे हे प्रभु ! पुद्गल-परिणाम जाण ?
जिन कहै पंचविध वर्ण गंध, वलि रस फर्श संठाण ॥

२. कतिविहे णं भंते ! पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा— वण्णपरिणामे, गंधपरिणामे, रसपरिणामे, फासपरिणामे, संठाणपरिणामे। (श० ८।४६७)

३. कतिविध वर्ण-परिणाम प्रभु ! जिन कहै पंच प्रकार।
काल-वर्ण-परिणाम है, जाव शुक्ल-वर्ण सार ॥

३. वण्णपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णपरिणामे जाव सुक्किलवण्णपरिणामे।

४. एणे आलावे करि, द्विविध गन्ध-परिणाम।
पंचविध रस-परिणाम है, फर्श आठविध ताम ॥

४. एवं एएणं अभिलावेणं गंधपरिणामे दुविहे, रसपरिणामे पंचविहे, फासपरिणामे अट्ठविहे। (श० ८।४६८)

५. कतिविध प्रभु ! संठाण है ? जिन कहै पंचविध जाण।
परिमंडल वट्ट त्रंस चतुरंस आयत संठाण ॥

५. संठाणपरिणामे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिमंडलसंठाणपरिणामे जाव आयतसंठाणपरिणामे। (श० ८।४६९)
यावत्करणाच्च 'वट्टसंठाणपरिणामे तंससंठाणपरिणामे चउरंससंठाणपरिणामे' त्ति दृश्यम् (वृ० प० ४२०)

### सोरठा

६. पुद्गल नों अधिकार, आख्यो छै वलि तेहथी।
पुद्गल नोंज विचार, कहियै छै ते सांभलो ॥

६. पुद्गलाधिकारादिदमाह— (वृ० प० ४२०)

*भंग पुद्गल तणां सांभलो। (ध्रुपदं)

७. प्रभु ! पुद्गलास्तिकाय नों, एक प्रदेश परमाणु जी।
पुद्गल राशि छै तेहनों, प्रदेश निरंश अंश जाणु जी ॥

७. पुद्गलास्तिकायस्य—एकाणुकादिपुद्गलराशेः प्रदेशो—निरंशोंऽशः पुद्गलास्तिकायप्रदेशः—परमाणुः। (वृ० प० ४२१)

### सोरठा

८. 'इक अणुकादि प्रसंस, पुद्गलराशि तणो तिको।
प्रदेश निरंश अंश, प्रदेश परमाणू कह्यो ॥

* लय : मम करो काया माया कारमी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. पुद्गल राशि नों ताय, परमाणु खंध थी मिल्यो।
तसु प्रदेश कहिवाय, जुदो नहीं तिण कारणें॥
१०. पुद्गल राशि नों जाण, खंध थकी जे नहिं मिल्यो।
ते परमाणु पिछाण, ए प्रदेश तुल्य जाणवो॥
११. जे परमाणू होय, प्रदेस करिकै तुल्य है।
ते माटै ए जोय, प्रदेश करि बोलावियो॥
१२. भूत भविष्यत काल, ते नय वचन करी इहां।
परमाणू पिण न्हाल, प्रदेश संज्ञा कर कह्यं॥
१३. वर्त्तमान जे काल, तेह तणीज अपेक्षया।
परमाणू नें न्हाल, अप्रदेश बहु ठामें कह्यं॥'
(ज० स०)

१४. *पुद्गलास्तिकाय नों हे प्रभु! एक प्रदेश छै ताय।
एक द्रव्य तास कहियै अछै? ए धुर भंग कहिवाय॥

१४. एगे भंते! पोग्गलत्थिकायपदेसे किं दव्वं?

## सोरठा

१५. गुण पर्याय सहीत, द्रव्य कहीजै तेहनें।
आश्रयभूत प्रतीत, द्रव्य छै गुण पर्याय नों॥

**वा०**—यद्यपि परमार्थ थकी गुण पर्याय बिहुं नों एकपणों हीज हुवै, परन्तु सहभावी तो गुण अनें क्रमभावी पर्याय इण लक्षणे करि नें भेद हुवै। आगम में कह्यो छै—

**गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।**
**लक्खणं पज्जवाणं तु उभओ अस्सिया भवे॥**

गुण नों आश्रय द्रव्य अनें एक केवल द्रव्य नै विषे रहै ते गुण अनै पर्याय नों लक्षण ते द्रव्य, गुण बिहुं नै विषे रहै। अत्र टीका—उभयाश्रितं द्रव्यगुणाश्रितमित्यर्थः। एतलै द्रव्य गुण नैं आश्रित पर्याय छै।

१५. द्रव्यं—गुणपर्यायियोगि. (वृ प० ४२१)

१६. *कै द्रव्य नों इक देश छै? द्रव्य नों अवयव जेह।
देश कहीजै छै तेहनें, इक वच भंग ए बेह॥
१७. तिम बहु वचन नां भंग बे, तसु बहु द्रव्य कहिवाय।
कै द्रव्य नां देश कहियै घणां, ए बहु वच भंग बे थाय॥
१८. ए त्रिहुं भंग एक संजोगिया, हिवै दोय संजोगिया च्यार।
एक वचन बहु वचन थी, कहियै छै अधिक उदार॥
१९. अथवा द्रव्य एक नें द्रव्य नों, एकज देश कहिवाय।
ए विकल्प कह्यो पंचमो, हिवै छठा तणों सुणो न्याय॥
२०. अथवा द्रव्य एक नें द्रव्य नां, देश घणां कहिवाय।
छट्ठो ए विकल्प आखियो, सातमां नों हिवै न्याय॥
२१. अथवा बहु द्रव्य नें द्रव्य नों, एकज देश कहिवाय।
विकल्प ए कह्यो सातमों, आठमां नों हिवै न्याय॥

१६,१७. दव्वदेसे? दव्वाइं? दव्वदेसा?
द्रव्यदेशो—द्रव्यावयवः, एवमेकत्वबहुत्वाभ्यां प्रत्येकविकल्पाश्चत्वारः (वृ० प० ४२१)

१८. द्विकसंयोगा अपि चत्वार एव? (वृ० प० ४२१)

१९. उदाहु दव्वं च दव्वदेसे य?

२०. उदाहु दव्वं च दव्वदेसा य?

२१. उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसे य?

*लय : मम करो काया माया कारमी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. अथवा बहु द्रव्य नें द्रव्य नां, देश बहु कहिवाय।
विकल्प ए कह्यो आठमों, उत्तर दे जिनराय॥
२३. कदा एक द्रव्य कहियै तसु, द्रव्य अनेरा थी जाण।
अलग रह्योज परमाणुओ, इक द्रव्य कहियै पिछाण॥
२४. कदाचित द्रव्य नों देश इक, अन्य द्रव्य सूं मिल्यो जाय।
द्रव्य नों देश कहियै तसु, विकल्प द्वितीय ए पाय॥

२५. शेष षट भंग पावै नहीं, एक परमाणु मांय।
इक वचने धुर भंग बे, तेह लहै इण न्याय॥

**सोरठा**

२६. इकसंयोगिक धार, बहु वचने कर भंग बे।
द्विकसंयोगिक च्यार, ए षट नहिं परमाणु में॥

२७. *पुद्गलास्तिकाय नां हे प्रभु ! दोय प्रदेश विशेष।
स्यूं द्रव्य कै द्रव्य देश इक ? तिमज अठ भंग पूछेस॥
२८. जिन कहै कदाचित द्रव्य इक, दोय परमाणुआ ताय।
द्विप्रदेशिक खंधपणें परिणम्या, एक द्रव्य तास कहिवाय॥
(प्रथम भांगो हुवै इह विधे)
२९. कदा द्रव्य नों इक देश छै, द्विप्रदेशिक खंध ताय।
अन्य द्रव्य मांहि जाये मिल्यो, ए द्वितीय भंग कहिवाय॥

३०. दोय प्रदेशियो खंध ते, थया जूजुआ परमाणु दोय।
कदाचित बहु द्रव्य इह विधे, भंग तीजो इम होय॥

३१. तेहिज दोय परमाणुआ, द्विप्रदेशिया खंध थया नांय।
अन्य द्रव्य साथ संबंध करै, द्रव्य नां बहु देश इण न्याय॥
(ए भंग चतुर्थो इम ह्वै कदा)
३२. तेहिज दोय परमाणुआ, परमाणुपणें रह्यो एक।
एक अन्य द्रव्य मांहै मिल्यो, तदा द्रव्य इक देश इक देख।
(पंचम भंग इम ह्वै कदा)

३३. शेष त्रिण भंग होवै नहीं, असंभव थकी अवलोय।
ते भणी चरम चिहुं भंग नों, करिवूं निषेध सुजोय॥

३४. पुद्गलास्तिकाय नां हे प्रभु ! तीन प्रदेश विशेष।
स्यूं द्रव्य कै द्रव्य देश इक, तिमज अठ भंग पूछेस॥

२२. उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य ?

२३. गोयमा ! सिय दव्वं,
स्याद्द्रव्यं द्रव्यान्तरासम्बन्धे सति, (वृ० प० ४२१)
२४. सिय दव्वदेसे,
स्याद्द्रव्यदेशो द्रव्यान्तरसम्बन्धे सति,
(वृ० प० ४२१)
२५. नो दव्वाइं, नो दव्वदेसा, नो दव्वं च दव्वदेसे य, नो दव्वं च दव्वदेसा य, नो दव्वाइं च दव्वदेसे य, नो दव्वाइं च दव्वदेसा य। (श० ८।४७०)
शेषविकल्पानां तु प्रतिषेधः, परमाणोरेकत्वेन बहुत्वस्य द्विकसंयोगस्य चाभावादिति। (वृ० प० ४२१)

२७. दो भंते ! पोग्गलत्थिकायपदेसा किं दव्वं ? दव्वदेसे ?—पुच्छा।
२८. गोयमा ! सिय दव्वं,
यदा तौ द्विप्रदेशिकस्कन्धतया परिणतौ तदा द्रव्यं,
(वृ० प० ४२१)
२९. सिय दव्वदेसे,
यदा तु द्व्यणुकस्कन्धभावगतावेव तौ द्रव्यान्तरसम्बन्धमुपगतौ तदा द्रव्यदेशः (वृ० प० ४२१)
३०. सिय दव्वाइं,
यदा तु तौ द्वावपि भेदेन व्यवस्थितौ तदा द्रव्ये
(वृ० प० ४२१)
३१. सिय दव्वदेसा,
यदा तु तावेव द्व्यणुकस्कन्धतामनापद्य द्रव्यान्तरेण सम्बन्धमुपगतौ तदा द्रव्यदेशाः। (वृ० प० ४२१)
३२ सिय दव्वं च दव्वदेसे य।
यदा पुनस्तयोरेकः केवलतया स्थितो द्वितीयश्च द्रव्यान्तरेण सम्बन्धस्तदा द्रव्यं च द्रव्यदेशश्चेति पञ्चमः (वृ० प० ४२१)
३३. सेसा पडिसेहेयव्वा। (श० ८।४७१)
शेषविकल्पानां तु प्रतिषेधोऽसम्भवादिति
(वृ० प० ४२१)
३४. तिण्णि भंते ! पोग्गलत्थिकायपदेसा किं दव्वं ? दव्वदेसे ?—पुच्छा।

*लय : मम करो काया माया कारमी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. जिन कहै द्रव्य एक ते कदा, तीन परमाणुआ ताय ।
त्रि प्रदेश खंधपणें परिणम्या, द्रव्य इक छै इण न्याय ॥
(प्रथम भंगो इम ह्वै कदा)

३६. द्रव्य नों देश इक छै कदा, त्रिप्रदेशिक खंध ताय ।
अन्य द्रव्य मांहे जाइ मिल्यो, ए द्वितीय भंग कहिवाय ॥[1]

३७. तीन प्रदेशियो खंध ते, थया जूजुआ परमाणु तीन ।
बहु द्रव्य तास कहियै कदा, भंग तीजो इम लीन ॥

३८. अथवा जे तीन परमाणुआ, बे द्विप्रदेशिक खंधपणें थाय ।
एक परमाणुपणें रह्यो, बहु द्रव्य पिण इम थाय ॥
(अन्य प्रकार भंग तृतीय इम)

३९. तेहिज तीन परमाणुआ, अन्य द्रव्य मांहै मिल्या जाय ।
द्रव्य नां देश बहु इम ह्वै, ए भंग चोथो कहिवाय ॥

४०. अथवा बे द्विप्रदेशिक छता, एक केवल छतो ताय ।
ए बिहुं अन्य द्रव्य सूं मिल्यां, देश बहू इम थाय ॥
(भंग चोथो वलि इम हुवै)

४१. तेहिज तीन परमाणुआ, परमाणुपणें रह्यो एक ।
बे अन्य द्रव्य मांहे मिल्या, इक देशपणें सुविशेख ॥
(द्रव्य इक देश इक पंचमो)

४२. अथवा जे तीन परमाणुआ, द्विप्रदेशिक खंध देख ।
इक अन्य द्रव्य मांहे मिल्यां, द्रव्य इक देश इक पेख ॥
(भंग पंचम पिण इम हुवै)

४३. तेहिज तीन परमाणुआ, परमाणुपणें रह्यो एक ।
भेद करि बे अन्य द्रव्य मिल्यां, द्रव्य इक देश बहु देख ॥
(भंग छठो इम ह्वै कदा)

४४. तेहिज तीन परमाणुआ, परमाणुपणें रह्या दोय ।
एक अन्य द्रव्य मांहे मिल्यां, द्रव्य बहु देश इक होय ॥
(सप्तम भंग इहविध हुवै)

४५. अष्टम भंग न संभवै, तोन प्रदेश तिण न्याय ।
द्रव्य नैं द्रव्य नां देश ते, बहु वचने नहिं थाय ॥

४६. पुद्गलास्तिकाय नां हे प्रभु ! च्यार प्रदेश विशेष ।
स्यूं द्रव्य कै द्रव्य-देश इक, तिमज अठ भंग पूछेस ॥

३५. गोयमा ! सियदव्वं,
यदा त्रयोऽपि त्रिप्रदेशिकस्कन्धतया परिणतास्तदा द्रव्यं
(वृ० प० ४२१)

३६. सिय दव्वदेसे,
यदा तु त्रिप्रदेशिकस्कन्धता परिणता एव द्रव्यान्तर-सम्बन्धमुपगतास्तदा द्रव्यदेशः (वृ० प० ४२१)

३७. यदा पुनस्ते त्रयोऽपि भेदेन व्यवस्थिता,
(वृ० प० ४२१)

३८. द्वौ वा द्व्यणुकीभूतावेकस्तु केवल एव स्थितस्तदा 'दव्वाइं' ति (वृ० प० ४२१)

३९. यदा तु ते त्रयोऽपि स्कन्धतामनागता एव,

४०. द्वौ वा द्व्यणुकीभूतावेकस्तु केवल एवेत्येवं द्रव्यान्तरेण संबद्धास्तदा 'दव्वदेसा' इति । (वृ० प० ४२१)

४१. अथवैकः केवल एव स्थितो द्वौ तु द्व्यणुकतया परिणम्य द्रव्यान्तरेण संबद्धौ तदा 'दव्वं च दव्वदेसे य' त्ति
(वृ० प० ४२१)

४२. यदा तु तेषां द्वौ द्व्यणुकतया परिणतावेकश्च द्रव्यान्तरेण संबद्धः (वृ० प० ४२१)

४३. यदा तु तेषामेकः केवल एव स्थितो द्वौ च भेदेन द्रव्यान्तरेण संबद्धौ तदा 'दव्वं च दव्वदेसा य' त्ति
(वृ० प० ४२१)

४४. यदा पुनस्तेषां द्वौ भेदेन स्थितावेकश्च द्रव्यान्तरेण संबद्धस्तदा 'दव्वाइं च दव्वदेसे य' त्ति,
(वृ० प० ४२१)

४५. अष्टमविकल्पस्तु न संभवति, उभयत्र त्रिषु प्रदेशेषु बहुवचनाभावात्, (वृ० प० ४२१)

४६. चत्तारि भंते ! पोग्गलत्थिकायपदेसा किं दव्वं ?— पुच्छा ।

१. गाथा ३६ में 'सिय दव्वदेसे' के अनुसार दूसरा भंग बतलाया गया है । उसके बाद भगवती में—एवं सत्तभंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसे य, नो दव्वाइं च दव्वदेसा य (८।४७२) इस प्रकार संक्षिप्त पाठ देकर सातों भंगों की सूचना दी गई है । भगवती की जोड़ (३७ से ४४) में प्रत्येक भंग को स्वतन्त्र रूप में निरूपित किया गया है । इसलिए जोड़ के समानान्तर उक्त पाठ को न रखकर वृत्ति को उल्लिखित किया गया है ।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. जिन कहै भंग आठूं हुवै, सप्त पूर्ववत न्याय।
बहु वच दोनूं स्थानक विषे, अष्टम भंग कहिवाय।।

### सोरठा

४८. दो परमाणू होय, अन्य द्रव्य में बे मिल्यां।
द्रव्य देश बहु जोय, बहु द्रव्य नैं बहु देश इम।।

४९. *च्यार प्रदेश विषे रह्यां, विकल्प आठ सुख्यात।
पंच षट सप्त प्रदेश इम, जाव प्रदेश असंख्यात।।

५०. पुद्गलास्तिकाय नां हे प्रभु! अनंत प्रदेश विशेष।
स्यूं द्रव्य प्रश्न उत्तर तसु, अठ भंग आख्या जिनेश।।

५१. अष्ट शत दशम नों देश ए, इकसौ सतसठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल।।

४७. गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, अट्ठ वि भंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य।
प्रदेशचतुष्टयादौ त्वष्टमोऽपि संभवति, उभयत्रापि बहुवचनसद्भावादिति। (वृ० प० ४२१)

४९. जहा चत्तारि भणिया एवं पंच, छ, सत्त जाव असंखेज्जा। (श० ८।४७३)

५०. अणंता भंते! पोग्गलत्थिकायपदेसा किं दव्वं? एवं चेव जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य। (श० ८।४७४)

## ढाल : १६८

### दूहा

१. परमाणु प्रमुख तणी, वक्तव्यता कही एह।
लोकाकाशे ते भणी, लोकाकाश कहेह।।

२. हे प्रभु! लोकाकाश नां, किता प्रदेश कहेस?
जिन कहै लोक आकाश नां, असंख्यात प्रदेश।।

३. प्रदेश नां अधिकार थी, प्रदेश नोंज विचार।
कहियै छै अधिकार ते, सांभलजो धर प्यार।।

४. इक-इक जीव तणां प्रभु! किता जीव प्रदेश?
जिन कहै लोकाकाश नां, इता प्रदेश कहेस।।

५. समुद्घात केवल विषे, सर्व लोक आकाश।
व्यापी नैं रहै ते भणी, लोक प्रमाणे तास।।

६. जीव प्रदेश बहुलपणैं, कर्म प्रकृति करि जेह।
अनुगत सहित ते भणी, वक्तव्यता कहूं तेह।।

१. अनन्तरं परमाण्वादिवक्तव्यतोक्ता, परमाण्वादयश्च लोकाकाशप्रदेशावगाहिनो भवन्तीति तद्वक्तव्यतामाह— (वृ० प० ४२१)

२. केवतिया णं भंते! लोयागासपदेसा पण्णत्ता? गोयमा! असंखेज्जा लोयागासपदेसा पण्णत्ता। (श० ८।४७५)

३. प्रदेशाधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ४२१)

४. एगमेगस्स णं भंते! जीवस्स केवइया जीवपदेसा पण्णत्ता?
गोयमा! जावतिया लोयागासपदेसा, एगमेगस्स णं जीवस्स एवतिया जीवपदेसा पण्णत्ता। (श० ८।४७६)

५. यस्माज्जीवः केवलिसमुद्घातकाले सर्वं लोकाकाशं व्याप्यावतिष्ठति तस्माल्लोकाकाशप्रदेशप्रमाणास्त इति (वृ० प० ४२१)

६. जीवप्रदेशाश्च प्रायः कर्मप्रकृतिभिरनुगता इति तद्वक्तव्यतामभिधातुमाह— (वृ० प० ४२१)

*लय : मत करो काया माया कारमो



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*रे गोयम ! सांभलजे चित ल्याय ।। (ध्रुपदं)

७. कर्म-प्रकृति प्रभु ! किती परूपी ? तब भाखै जिनराय ।
अष्ट कर्म नीं प्रकृति कही छै, ज्ञानावरणी जाव अंतराय ।।

८. नारक नें किती कर्म-प्रकृति प्रभु! जिन कहै आठ विचार ।
इम कर्म प्रकृति अठ सर्व जीवां रै, जाव वैमानिक धार ।।

९. हे प्रभु ! ज्ञानावरणी कर्म नां, अविभाग पलिछेद ।
केतला आप परूप्या प्रभुजी ! जिन कहै अनंता सुवेद ।।

**सोरठा**

१०. ज्ञानावरणी कर्म, ज्ञान तणां अविभाग जे ।
पलिच्छेद प्रति मर्म, जिता आवरै तेतला ।।

११. तथा दलिक पेक्षाय, अविभाग पलिछेद ते ।
कह्या अनंता ताय, ते परमाणू रूप छै ।।

१२. परिच्छेद ते अंश, विभाग खंड रहित जसु ।
निरंश अंश कहंस, अविभाग पलिछेद ते ।।

१३. *नारकी नें ज्ञानावरणी कर्म नां, केतला हे भगवंत !
अविभाग-पलिछेदा परूप्या ? जिन कहै गोयम अनंत ।।

१४. इमहिज कहिवूं सर्व जीवां नें, जाव वैमानिक पृच्छा ।
अनंता अविभाग-पलिछेदा छै, ए जिन उत्तर इच्छा ।।

१५. ज्ञानावरणी नां अविभाग-पलिछेदा कह्या,
तिम आठ कर्म नां भणवा ।
जाव वैमानिक नें अंतराय नां, इणहिज रीते थुणवा ।।

१६. इक-इक जीव नें हे भगवंत जी ! इक-इक जीव प्रदेशे ।
तेह प्रदेश तणेंज विषे जे, कर्म सूं वींट्यो विशेषे ।।

१७. ज्ञानावरणी नां किता अविभागज पलिछेद प्रदेश करेह ।
आवेढिय परिवेढिए कहितां, अत्यंत वींट्यो एह ।।

वा०—अथवा आवेढिय कहितां वींटी नें परिवेढिए कहितां परिवेष्टित इति वृत्ती । अनें टबा में कह्यो—आवेढिए कहितां अत्यंत वींटी रह्यो छै ।

*लय : आधाकर्मी थानक में

७. कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं । (श० ८।४७७)

८. नेरइयाणं भंते ! कति कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ । एवं सव्वजीवाणं अट्ठ कम्मपगडीओ
ठावेयव्वाओ जाव वेमाणियाणं । (श० ८।४७८)

९. नाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवतिया
अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।
(श० ८।४७९)

१०. ज्ञानावरणीयं यावतो ज्ञानस्याविभागान् भेदान्
आवृणोति तावन्त एव तस्याविभागपरिच्छेदा:
(वृ० प० ४२२)

११. दलिकापेक्षया वाऽनन्ततत्परमाणुरूपा:
(वृ० प० ४२२)

१२. परिच्छिद्यन्त इति परिच्छेदा—अंशास्ते च सविभागा
अपि भवन्त्यतो विशेष्यन्ते—अविभागाश्च ते परिच्छेदा-
श्चेत्यविभागपरिच्छेदा: निरंशा अंशा इत्यर्थ:
(वृ० प० ४२२)

१३. नेरइयाणं भंते ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिया
अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।
(श० ८।४८०)

१४, एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।

१५. एवं जहा नाणावरणिज्जस्स अविभागपलिच्छेदा
भणिया तहा अट्ठण्ह वि कम्मपगडीणं भाणियव्वा जाव
वेमाणियाणं अंतराइयस्स । (श० ८।४८१)

१६,१७. एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपदेसे
नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिएहिं अविभाग-
पलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए ?
आवेष्टितपरिवेष्टितोऽत्यन्तं परिवेष्टित इत्यर्थ: ।
(वृ० प० ४२२)

वा०—आवेष्ट्य परिवेष्टित इति वा
(वृ० प० ४२२)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. जिन कहै कदा समस्त प्रकारे, वलि अत्यंत वींटाणो ।
कदा समस्त अत्यंत न वींट्यो, तेहनों न्याय पिछाणो ।।

१८. गोयमा ! सिय आवेढिय-परिवेढिए, सिय नो आवे-ढिय-परिवेढिए ।

## सोरठा

१९. केवलज्ञानी जेह, ज्ञानावरणी कर्म करि ।
वींट्या नहिं छै तेह, तिण सूं नहिं वींट्या कदा ।।

१९. केवलिनं प्रतीत्य तस्य क्षीणज्ञानावरणत्वेन तत्प्रदेशस्य ज्ञानावरणीयाविभागपलिच्छेदैरावेष्टनपरिवेष्टनाभावादिति (वृ० प० ४२२)

२०. *जो आवेष्टित परिवेष्टित ह्वै, तो निश्चै करि न्हाल ।
ज्ञानावरणी नां अनंत अंश करि, ए वीर वचन सुविशाल ।।

२०. जइ आवेढिय-परिवेढिए नियमा अणंतेहिं । (श० ८।४८२)

२१. इक-इक नारक नें हे भगवंत ! इक-इक जीव प्रदेशे ।
ज्ञानावरणी नां किता अविभागज-पलिछेदी वींटेसे ?

२१. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स एगमेगे जीवपदेसे नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिएहिं अविभाग-पलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए ?

२२. जिन कहै निश्चै अनंते करिकै, जेम नारक नैं कहीव ।
एवं जाव वैमानिक कहिवो, णवरं मनुष्य जिम जीव ।।

२२. गोयमा ! नियमं अणंतेहिं । जहा नेरइयस्स एवं जाव वेमाणियस्स, नवरं—मणूसस्स जहा जीवस्स । (श० ८।४८३)

२३. इक-इक जीव नें हे भगवंत जी, इक-इक जीव प्रदेशे ।
दर्शणावरणी कर्म नें कितलै, प्रदेश करि वींटेसे ?

२३. एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपदेसे दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवतिएहिं अविभाग-पलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए ?····

२४. इम जिम ज्ञानावरणी नें आख्युं, तिमहिज दंडक भणवा ।
जाव वैमानिक नें इम जावत, अंतराय नें थुणवा ।

२४. एवं जहेव नाणावरणिज्जस्स तहेव दंडगो भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स । एवं जाव अंतराइयस्स भाणियव्वं,

२५. णवरं वेदनी आयु नाम गोत्र फुन, चिहुं कर्म नें जाणी ।
मनुष्य नें नारक जिम भणवुं, शेषं तं चेव पिछाणी ।।

२५. नवरं—वेयणिज्जस्स, आउयस्स, नामस्स, गोयस्स—एएसिं चउण्ह वि कम्माणं मणूसस्स जहा नेरइयस्स तहा भाणियव्वं । सेसं तं चेव । (श० ८।४८४)

वा०—वेदनी आयु नाम गोत्र नैं विषे वलि जीव पद हीज भजनाइं करि कहिवो । सिद्ध नीं अपेक्षा करिकै । अनैं मनुष्य पद नैं विषे भजना नहीं ते मनुष्य नैं विषे वेदनीयादिक चार कर्म नियमा पावै छै, ते माटै । णवरं वेयणिज्जस्स इत्यादि पाठ कहिवूं ।

वा०—वेदनीयायुष्कनामगोत्रेषु पुनर्जीवपद एव भजना वाच्या सिद्धापेक्षया, मनुष्यपदे तु नासौ, तत्र वेदनीयादीनां भावादित्येतदेवाह—'नवरं वेयणिज्जस्से' त्यादि । (वृ० प० ४२२)

## सोरठा

२६. ज्ञानावरणी एह, शेष कर्म संघात हिव ।
चिंतवियै छै तेह, चित्त लगाई सांभलो ।।

२६. अथ ज्ञानावरणं शेषैः सह चिन्त्यते— (वृ० प० ४२२)

२७. *हे प्रभु ! जेहनें ज्ञानावरणी, दर्शणावरणी तास ।
जेहनें दर्शणावरणी कर्म तसुं, ज्ञानावरणी विमास ।।

२७. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं ? जस्स दंसणावरणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

२८. जिन कहै जसुं ज्ञानावरणी तसु, निश्चै दर्शणावरणी ।
जसुं दर्शणावरणी तसुं निश्चै, ज्ञानावरणी उच्चरणी ।।

२८. गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जं तस्स दंसणावरणिज्जं नियमं अत्थि, जस्स णं दरिसणावरणिज्जं तस्स वि नाणावरणिज्जं नियमं अत्थि । (श० ८।४८५)

---

*लय : आधाकर्मी थानक में



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. हे प्रभु ! जेहनं ज्ञानावरणी, तेहनें वेदनीय होय ।
जेहनें वेदनी कर्म अछै, तसुं ज्ञानावरणी जोय ?

३०. जिन कहै जेहनें ज्ञानावरणी, नियमा वेदनी ताहि ।
जसु वेदनी तसुं ज्ञानावरणी, कदा होवै कदा नांहि ।।

### सोरठा

३१. कर्म वेदनी जाण, तेरम चउदम पिण गुणे ।
ज्ञानावरणी माण, केवलज्ञानी रै नथी ।।

३२. *हे प्रभु ! जेहनें ज्ञानावरणी, मोहणी कर्म है तास ।
जेहनें मोहणी कर्म छै तेहनें, ज्ञानावरणी विमास ?

३३. जिन कहै ज्ञानावरणी तास मोहणी, कदा होवै कदा नांहि ।
जसु मोहणी तसु ज्ञानावरणी, निश्चैई छै ताहि ।।

### सोरठा

३४. ज्ञानावरणी जोय, बारम गुणठाणा लगै ।
कर्म मोहणी सोय, बारम गुणठाणे नथी ।।

३५. *हे प्रभु ! जेहनें ज्ञानावरणी, तेहनें आयु विख्यात ।
जिम ज्ञानावरणी कह्यो वेदनी साथे, तिम कहिवो आयु संघात ।।

३६. इमहिज ज्ञानावरणी कर्म ते, कहिवो नाम संघात ।
इमहिज गोत्र संघाते भणवो, ते इम कहिवो विख्यात ।।

३७. ज्ञानावरणी जसु आयु नाम गोत्र, निश्चैइ कहिवाइं ।
जेहनें आयु नाम नें गोत्र छै, तेहनें ज्ञानावरणी भजनाइं ।।

३८. जेहनें ज्ञानावरणी तेहनें, ह्वै निश्चै अंतराय ।
जेहनें अन्तराय तेहनें, ज्ञानावरणी निश्चै पाय ।।

३९. हे प्रभु ! जेहनें दर्शणावरणी, कर्म वेदनी तास ?
जेहनें वेदनी कर्म अछै तसु, दर्शनावरणी विमास ?

४०. ज्ञानावरणी जिम कह्या ऊपरला, सात कर्म संघात ।
दर्शणावरणी पिण तिम कहिवूं, ऊपरला छ कर्म साथ ।।

४१. जेहनें दर्शणावरणी कर्म छै, वेदनीं तसु नियमाइं ।
जेहनें वेदनी कर्म छै तेहनें, दर्शणावरणी भजनाइं ।।

४२. जेहनें दर्शणावरणी कर्म छै, मोहणी तसु भजनाइं ।
जेहनें मोहणी छै तसु निश्चै, दर्शणावरणी थाइं ।।

४३. जसु दर्शणावरणी तसुं आयु, नाम गोत्र नियमाइं ।
जेहनें आयु नाम गोत्र तसु, दर्शणावरणी भजनाइं ।।

*लय : आधाकर्मी थानक में

२९. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ? जस्स वेयणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

३०. गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमं अत्थि जस्स पुण वेयणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि । (श० ८।४८६)

३१. अकेवलिनो हि वेदनीयं ज्ञानावरणीयं चास्ति, केवलिनस्तु वेदनीयमस्ति न तु ज्ञानावरणीयमिति । (वृ० प० ४२४)

३२. जस्स णं भंते ! नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं ? जस्स मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं ?

३३. गोयमा ! जस्स नाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स नाणावरणिज्जं नियमं अत्थि । (श० ८।४८७)

३४. अक्षपकस्य हि ज्ञानावरणीयं मोहनीयं चास्ति, क्षपकस्य तु मोहक्षये यावत् केवलज्ञानं नोत्पद्यते तावज्ज्ञानावरणीयमस्ति न तु मोहनीयमिति । (वृ० प० ४२४)

३५. जस्स णं भंते! नाणावरणिज्जं तस्स आउयं? एवं जहा वेयणिज्जेण समं भणियं तहा आउएण वि समं भणियव्वं (सं० पा०)

३६. एवं नामेण वि, एवं गोएण वि समं,

३७. उक्तप्रकारेण भजनायाः सर्वेषु तेषु भावात् (वृ० प० ४२४)

३८. अंतराइएण जहा दरिसणावरणिज्जेण समं तहेव नियमं परोप्परं भाणियव्वाणि । (श० ८।४८८)

३९. जस्स णं भंते ! दरिसणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ? जस्स वेयणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं ?

४०-४४. जहा नाणावरणिज्जं उवरिमेहिं सत्तहिं कम्मेहिं समं भणियं तहा दरिसणावरणिज्जं पि उवरिमेहिं छहिं कम्मेहिं समं भाणियव्वं जाव अंतराइएणं । (श० ८।४८९)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. जेहनैं दर्शणावरणी तेहनैं, निश्चै ह्वै अन्तराय।
अंतराय जसु दर्शणावरणी, निश्चै करिनैं थाय।।

४५. हे भगवंतजी ! जेहनैं वेदनी, कर्म मोहणी तास।
जेहनैं मोहणी कर्म छै तेहनैं, वेदनी कर्म विमास ?

४६. जिन कहै जसु वेदनी तसु मोहणी, कदा होवै कदा नांय।
जेहनैं मोहणी तेहनैं वेदनी, निश्चै करिनैं थाय।।

**सोरठा**

४७. कर्म वेदनी जाण, चवदम गुणठाणा लगै।
मोह कर्म पहिछाण, धुर ग्यारा गुणठाण में।।

४८. *हे प्रभु ! जेहनैं वेदनी छै तसु, आयु नाम गोत्र होय।
जेहनैं आयु नाम गोत्र छै, तेहनैं वेदनी जोय ?

४९. जिन कहै जसु वेदनी तसु आयु, नाम गोत्र नियमाइं।
जेहनैं आयु नाम गोत्र तसु, वेदनी निश्चै थाइं।।

५०. हे प्रभु ! जेहनैं कर्म वेदनी, तेहनैं छै अन्तराय।
जेहनैं अन्तराय कर्म छै तेहनैं, वेदनी पिण कहिवाय ?

५१. जिन कहै जेहनैं वेदनी छै तसु, अन्तराय भजनाइं।
जेहनैं अन्तराय कर्म छै तेहनैं, वेदनी निश्चै थाइं।।

**सोरठा**

५२. कर्म वेदनी जोय, चवदम गुणठाणा लगै।
अन्तराय अवलोय, धुर द्वादश गुणठाण में।।

५३. *हे प्रभु ! जेहनैं मोहणी कर्म छै, तास आउखो कहाय।
जेहनैं कर्म आउखो तेहनैं, मोहणी कहियै ताय ?

५४. जिन कहै जेहनैं मोह कर्म तसु, आयु निश्चै थाय।
जेहनैं आयु तेहनैं मोहणी, कदा होवै कदा नांय।।

५५. इम जसु मोहणी तास नाम गोत्र, अन्तराय नियमाइं।
नाम गोत्र अन्तराय छै जेहनैं, तेहनैं मोह भजनाइं।।

**सोरठा**

५६. मोह ग्यारम लग जाण, अन्तराय बारम लगै।
चवदम लग पहिछाण, नाम गोत्र नैं आउखो।।

४५. जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं ? जस्स मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ?

४६. गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं नियमं अत्थि। (श० ८।४६०)

४७. अक्षीणमोहस्य हि वेदनीयं मोहनीयं चास्ति, क्षीणमोहस्य तु वेदनीयमस्ति न तु मोहनीयमिति
(वृ० प० ४२४)

४८,४९. जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स आउयं ? जस्स आउयं तस्स वेयणिज्जं ?
एवं एयाणि परोप्परं नियमं। जहा आउएण समं एवं नामेण वि गोएण वि समं भाणियव्वं।
(श० ८।४६१)

५०. जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं ? जस्स अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं ?

५१. गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं नियमं अत्थि। (श० ८।४६२)

५२. वेदनीयं अंतरायं चाकेवलिनामस्ति केवलिनां तु वेदनीयमस्ति न त्वन्तरायं, (वृ० प० ४२४)

५३. जस्स णं भंते ! मोहणिज्जं तस्स आउयं ? जस्स आउयं तस्स मोहणिज्जं ?

५४. गोयमा ! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं नियमं अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि।

५५. एवं नामं गोयं अंतराइयं च भाणियव्वं।
(श० ८।४६३)

यस्य मोहनीयं तस्य नाम गोत्रमन्तरायं च नियमादस्ति, यस्य पुनर्नामादित्रयं तस्य मोहनीयं स्यादस्त्यक्षीणमोहस्यैव, स्यान्नास्ति क्षीणमोहस्येवेति। यतोऽक्षीणमोहस्यायुर्मोहनीयं चास्ति क्षीणमोहस्य त्वायुरेवेति। (वृ० प० ४२४)

---

* लय : आधाकर्मी थानक

५७. *हे प्रभु ! जेहनें आयु कर्म छै, तेहनें नाम कहाइं ?
जेहनें नाम कर्म छै तेहनें, कर्म आउखो थाइं ?
(हो प्रभुजी ! मया करो महाराज)

५७. जस्स णं भंते ! आउयं तस्स नामं ? जस्स नामं तस्स आउयं ?

५८. जिन कहै जेहनै आयु कर्म तसु, नाम कर्म नियमाइं।
जेहनै नाम छै तेहनें आयु, ए पिण निश्चै थाइं।।

५८. गोयमा ! दो वि परोप्परं नियमं।
जस्स आउयं तस्स नियमा नामं जस्स नामं तस्स नियमा आउयं इत्यर्थः। (वृ० प० ४२४)

५९. इमहिज जेहनें आयु कर्म छै, गोत्र तास नियमाइं।
जेहनें गोत्र छै तेहनें आयु, ते पिण निश्चै थाइं।।

५९. एवं गोत्तेण वि समं भाणियव्वं। (श० ८।४६४)

६०. हे प्रभु ! जेहनें आयु कर्म छै, तेहनें छै अन्तराय।
जेहनें अन्तराय कर्म छै तेहनै, आयु कर्म कहाय ?

६०. जस्स णं भंते ! आउयं तस्स अंतराइयं ? जस्स अंतराइयं तस्स आउयं ?

६१. जिन कहै जेहनें आयु कर्म तसु, अन्तराय भजनाइं।
जेहनें अन्तराय तेहनें आयु, निश्चै करिनें थाइं।।

६१. गोयमा ! जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स आउयं नियमं अत्थि। (श० ८।४६५)

६२. हे प्रभु ! जेहनें नाम कर्म छै, तेहनें गोत्रज होय।
जेहनें गोत्र कर्म छै तेहनें, नाम कर्म अवलोय।।

६२. जस्स णं भंते ! नामं तस्स गोयं जस्स गोयं तस्स नामं ?

६३. जिन कहै जेहनें नाम कर्म तसु, गोत्र कर्म नियमाइं।
जेहनें गोत्र कर्म छै तेहनें, निश्चै नाम कहाइं।।

६३. गोयमा ! दो वि एए परोप्परं नियमा अत्थि। (श० ८।४६६)
यस्य नाम तस्य नियमाद् गोत्रं यस्य गोत्रं तस्य नियमान् नाम। (वृ० प० ४२४)

६४. हे प्रभु ! जेहनें नाम कर्म छै, तेहनें छै अन्तराय।
जेहनें अन्तराय कर्म अछै तसु, नाम कर्म कहिवाय ?

६४. जस्स णं भंते ! नामं तस्स अंतराइयं ? जस्स अंतराइयं तस्स नामं ?

६५. जिन कहै जेहनें नाम कर्म तसु, अन्तराय भजनाइं।
जेहनें अन्तराय कर्म अछै तसु, नाम कर्म नियमाइं।।

६५. गोयमा ! जस्स नामं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स नामं नियमं अत्थि। (श० ८।४६७)

६६. हे प्रभु ! जेहनें गोत्र कर्म छै, तेहनें छै अन्तराय।
जेहनें अन्तराय कर्म छै तेहनें, गोत्र कर्म कहिवाय ?

६६. जस्स णं भंते ! गोयं तस्स अंतराइयं ? जस्स अंतराइयं तस्स गोयं ?

६७. जिन कहै जेहनें गोत्र कर्म तसु, अन्तराय भजनाइं।
जेहनें अन्तराय कर्म अछै तसु, गोत्र कर्म नियमाइं।।

६७. गोयमा ! जस्स गोयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण अंतराइयं तस्स गोयं नियमं अत्थि। (श० ८।४६८)

**सोरठा**

६८. पूर्वे कर्म आख्यात, पुद्गलात्मक अछै तिके।
ते माटै हिव आत, पुद्गल शब्दे जीव नें।।

६८. अनन्तरं कर्मोक्तं तच्च पुद्गलात्मकमतस्तदधिकारादिदमाह— (वृ० प० ४२४)

६९. *जीव प्रभु ! स्यूं पोग्गली पोग्गले ! तब भाखै जिनराय।
जीव भणी पोग्गली पिण कहियै, पोग्गल पिण कहिवाय।।

६९. जीवे णं भंते ! किं पोग्गली ? पोग्गले ?
गोयमा ! जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि।
(श० ८।४६९)

**सोरठा**

७०. इन्द्रिय सहित कहीव, जीव भणी कह्यो पोग्गली।
पुद्गल संज्ञा जीव, इन्द्रिय रहित जीव छै।।

७०. पुद्गलाः—श्रोत्रादिरूपा विद्यन्ते यस्यासौ पुद्गली, 'पुग्गले वि' त्ति पुद्गल इति सञ्ज्ञा जीवस्य तत्तद्योगात् पुद्गल इति। (वृ० प० ४२४)

*लय : आधाकर्मी थानक



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१. किण अर्थे प्रभुजी ! इम कहियै, जीव पोग्गली जाण ।
पोग्गल पिण वलि जीव नें आख्यो ? जिन कहै सांभल वाण ।।
७२. यथा दृष्टांते छत्र सहित नर, छत्री तास कहीजै ।
दंड संयुक्त नैं दंडी कहियै, न्याय हिये धारीजै ।।
७३. घड़ संयुक्त नै घड़ी कहीजै, पट सहित पटी पेख ।
कर—शुण्डे करिनें संयुक्त, करी—हस्ती सुविशेख ।।
७४. इण दृष्टान्ते करी जीव पिण, श्रोतादि इन्द्रिय-सहीत ।
तेह इन्द्रिय आश्रयी जीव नैं, पोग्गली कहियै वदीत ।।
७५. वलि ते जीव प्रति आश्रयी नै, पुद्गल संज्ञा कहीव ।
तिण अर्थे गोतम ! इम आख्यो, पोग्गली पोग्गल जीव ।।

७६. हे प्रभु ! नारक स्यूं छै पोग्गली, अथवा पोग्गल कहियै ?
श्री जिन भाखै दोनूं इ कहियै, न्याय पूर्ववत लहियै ।।
७७. एवं जाव वैमानिक कहिवूं, णवरं इतलो विशेख ।
जेहनै जेतला इन्द्रिय ह्वै तसु, तेता इन्द्रिय पेख ।।
७८. सिद्ध प्रभु ! स्यूं पोग्गली पोग्गल ? जिन कहै पोग्गली नांय ।
पोग्गल संज्ञा तास कहीजै, किण अर्थे इम वाय ?

७९. जिन कहै जाव पडुच्च पोग्गल छै, तिण अर्थे ए कहंत ।
सिद्ध न पोग्गली, पोग्गल कहियै, सेवं भंते ! सेवं भंत ! ।।

८०. अष्टम शतके दसम उदेशो, इक सौ अड़सठमीं ढाल ।
भिक्खू भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरख विशाल ।।

**गीतक-छन्द**

१. पार्श्वदेव प्रसाद-वह्नि प्रदीप्त भक्त्याऽऽहूति बल ।
नाममंत्रोच्चरणविधि स्यूं दग्ध विघ्नेन्धन प्रबल ।।
२. अनघशान्ति क्रियाग्र अष्टम शतक व्याख्यामंदिरम् ।
विरचितं शिल्पी यथा अतिकुशलक्षेमकरं चिरम् ।।

अष्टमशते दशमोद्देशकार्थः ।।८।१०।।

७१. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि ?
७२. गोयमा ! से जहानामए छत्तेणं छत्ती, दंडेणं दंडी,
७३. घडेणं घडी, पडेणं पडी, करेणं करी,
७४. एवामेव गोयमा ! जीवे वि सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली,
७५. जीवं पडुच्च पोग्गले । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि ।
(श० ८।५००)
७६. नेरइए णं भंते ! किं पोग्गली ? पोग्गले ?
एवं चेव ।
७७. एवं जाव वेमाणिए नवरं—जस्स जइ इंदियाइं तस्स तइ भाणियव्वाइं । (श० ८।५०१)
७८. सिद्धे णं भंते ! किं पोग्गली ? पोग्गले ?
गोयमा ! णो पोग्गली, पोग्गले । (श० ८।५०२)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिद्धे णो पोग्गली, पोग्गले ?
७९. गोयमा ! जीवं पडुच्च । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिद्धे नो पोग्गली, पोग्गले ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श० ८।५०३,५०४)

१,२. सद्भक्त्याहुतिना विवृद्धमहसा पार्श्वप्रसादाग्निना,
तन्नामाक्षरमंत्रजप्तिविधिना विघ्नेन्धनप्लोषितः ।
सम्पन्नोऽनघशान्तिकर्म्मकरणे क्षेमादहं नीतवान्,
सिद्धिं शिल्पिवदेतदष्टमशतव्याख्यानसन्मन्दिरम् ।।
(वृ० पृ० ४२५)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# परिशिष्ट

१. सूर्य का उदयास्त-विधि चित्र[1]

२. तापक्षेत्र का चित्र[2]

३. तमस्काय का चित्र[3]

४. कृष्णराजि का चित्र[4]

५. गणना कालबोधक यन्त्र[5]

---

१. देखें पृष्ठ १ गाथा १०

२. देखें पृष्ठ ३ गाथा ३८

३. देखें पृष्ठ १५६ गाथा २, वहां परिशिष्ट संख्या सूचक अंक छूट गया है।

४. देखें पृष्ठ १६२ गाथा २, वहां परिशिष्ट संख्या सूचक अंक छूट गया है।

५. देखें पृष्ठ १७७ गाथा ५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१

## सूर्य का उदयास्त-विधि चित्र

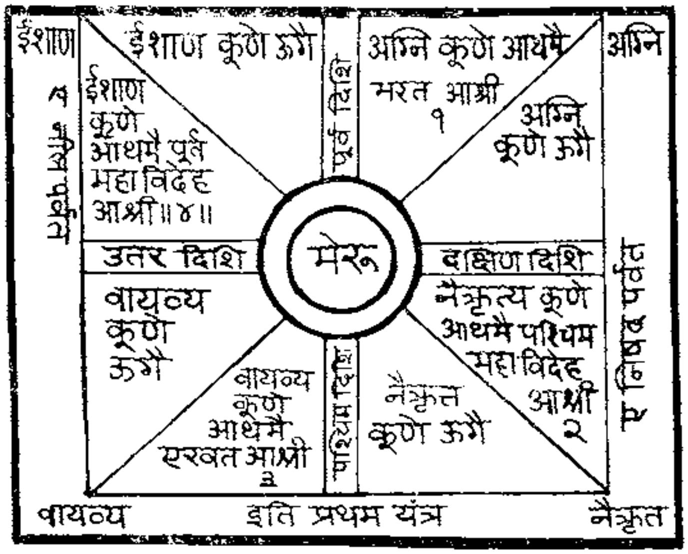


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## २

# तापक्षेत्र का चित्र

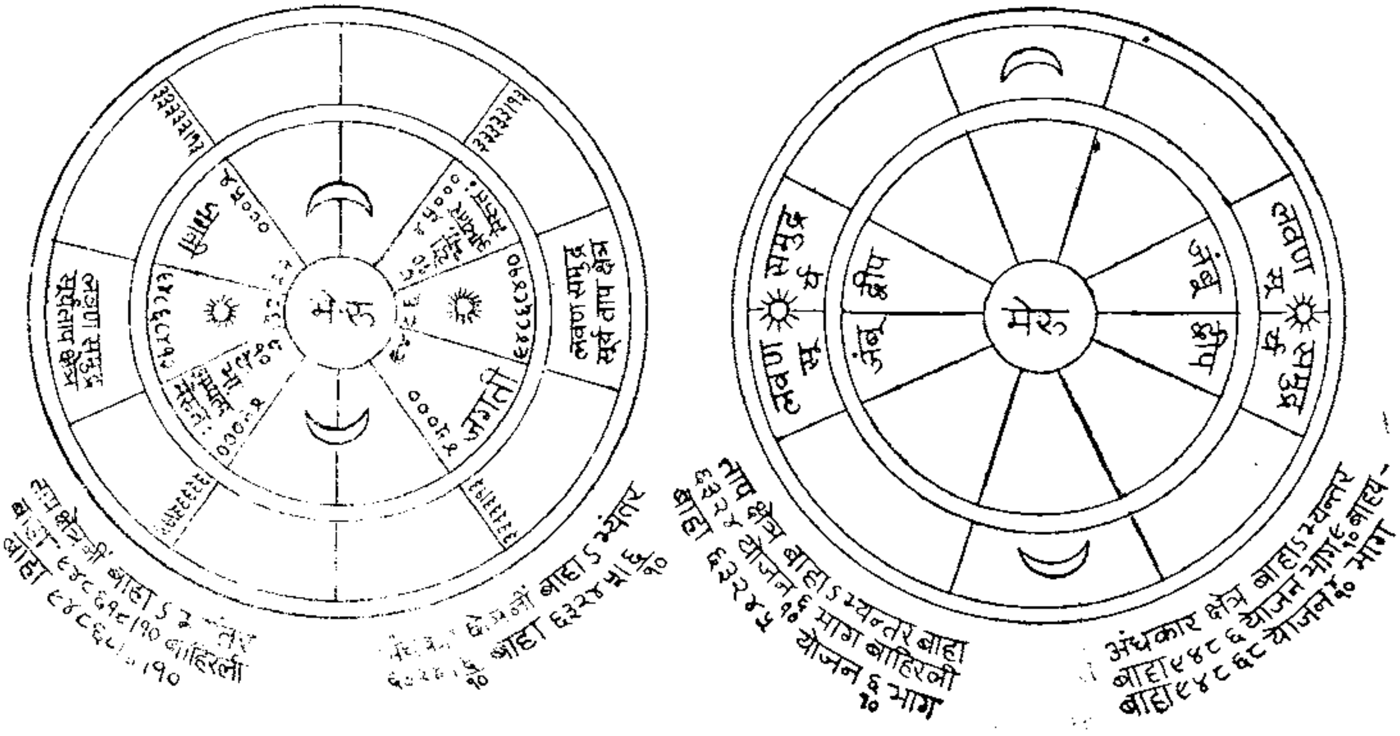

# ३

## तमस्काय का चित्र

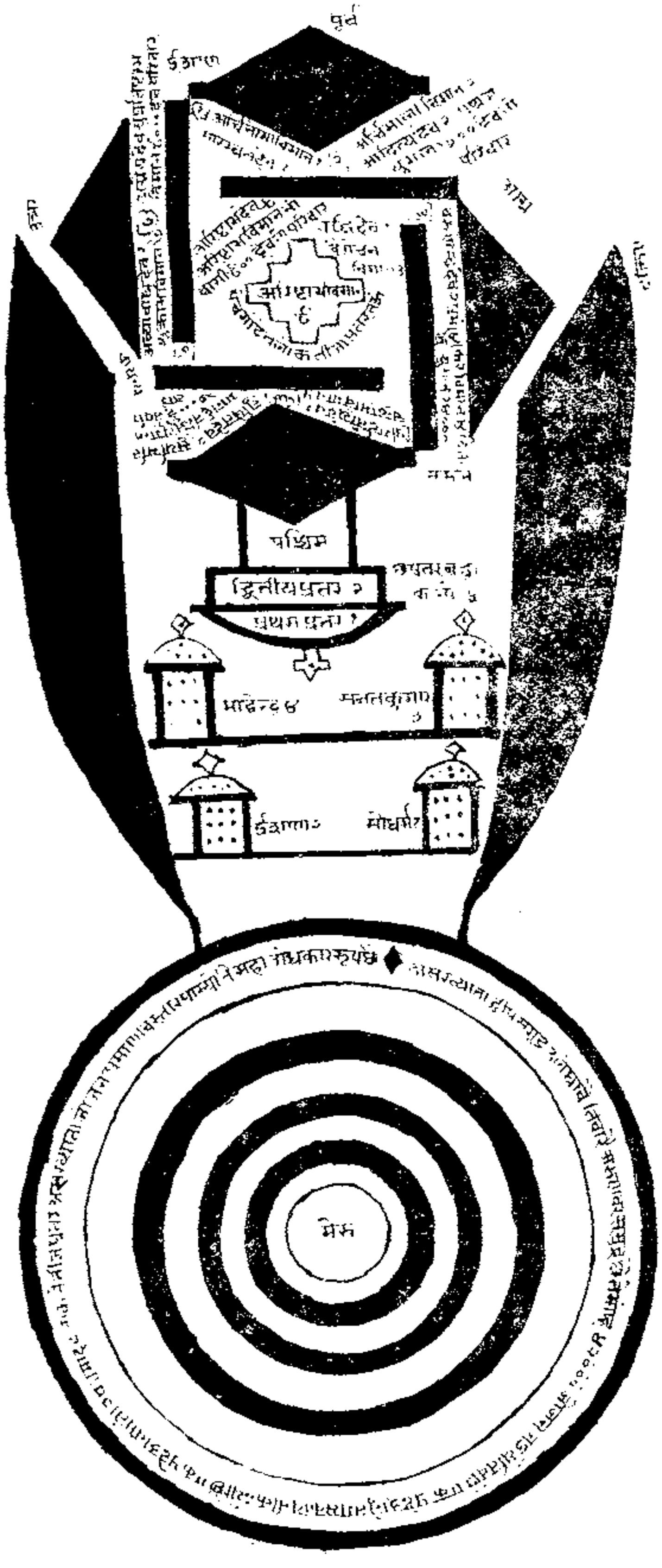


Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# ४
# कृष्णराजि का चित्र

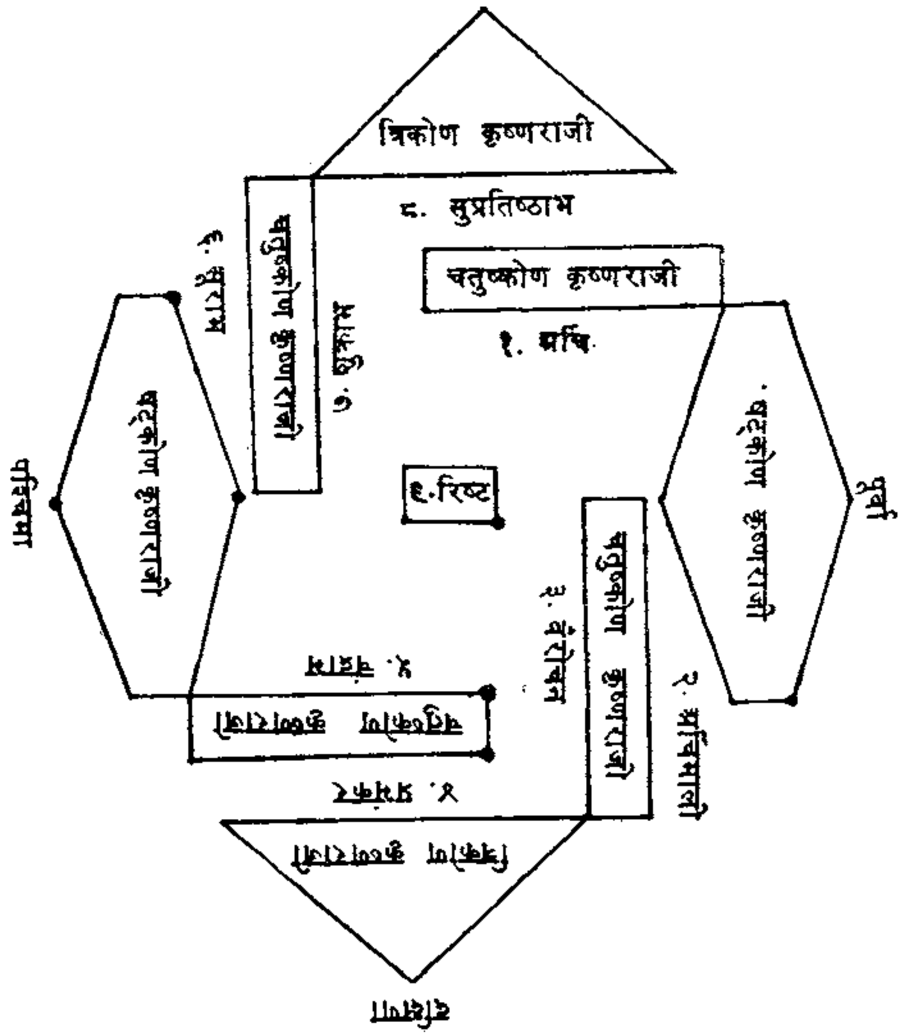
त्रिकोण कृष्णराजी
८. सुप्रतिष्ठाभ
चतुष्कोण कृष्णराजी
१. अर्चि
षट्कोण कृष्णराजी
पूर्वा
९. रिष्ट
चतुष्कोण कृष्णराजी
३. वैरोचन
२. अर्चिमाली
पश्चिमा

# गणना कालबोधक यन्त्र

| | समय प्रमाण | | |
|---|---|---|---|
| १ | सर्वेभ्य: सूक्ष्मतर: समय: | | |
| २ | असंख्यातै: समयैरावलिका | | |
| ३ | संख्यातावलिकाभिरुच्छ्वास: | | |
| ४ | त एव संख्येया नि:श्वास: | | |
| ५ | द्वयोरपि काल: प्राणु: | | |
| ६ | सप्तभि: प्राणुभि: स्तोक: | | |
| ७ | सप्तभि: स्तोकैलव: | | |
| ८ | सप्तसप्तत्या लवानां मुहूर्त: | | |
| ९ | त्रिंशता मुहूर्तैरहोरात्र: | | |
| १० | तै: पंचदशभि: पक्ष: | | |
| ११ | द्वाभ्यां पक्षाभ्यां मास: | | |
| १२ | मासद्वयेन ऋतु | | |
| १३ | ऋतुत्रयेण अयनम् | | |
| १४ | अयनद्वयेन संवत्सर: | | |
| १५ | तै: पंचभिर्युगम् | | |
| १६ | विंशत्या युगै वर्षशतम् | | |
| १७ | तैर्दशभिर्वर्षसहस्रम् | | |
| १८ | तेषां शतेन वर्षलक्षम् | | |
| १९ | तेषां चतुरशीत्या पूर्वांगम् | ८४००००० अत्रांकद्वयं बिंदव: पंच | |
| २० | पूर्वम् | ७०५६०००००००००० | अंका: ४ बिंदव: १० |
| २१ | त्रुटितांगम् | ५९२७०४००००००००००००००० | ,, ६ ,, १५ |
| २२ | त्रुटितम् | ४९७८७१३६०००००००००००००००००००० | ,, ८ ,, २० |
| २३ | अडडांगम् | ४१८२११९४२४ | ,, १० ,, २५ |
| २४ | अडडम् | ३५१२९८०३१६१६ | ,, १२ ,, ३० |
| २५ | अववांगम् | २९५०९०३४६५५७४४ | ,, १४ ,, ३५ |
| २६ | अववम् | २४७८७५८९११०८२४९६ | ,, १६ ,, ४० |
| २७ | हूहूकांगम् | २०८२१५७४८५३०९२९६६४ | ,, १८ ,, ४५ |
| २८ | हूहूकम् | १७४९०१२२८७६५९८०९१७७६ | ,, २० ,, ५० |
| २९ | उत्पलांगम् | १४६९१७०३२१६३४२३९७०९१८४ | ,, २२ ,, ५५ |
| ३० | उत्पलम् | १२३४१०३०७०१७२७६१३५५७१४५६ | ,, २४ ,, ६० |
| ३१ | पद्मांगम् | १८३६६४६५७८९४५११९५३८८००२३०४ | ,, २६ ,, ६५ |
| ३२ | पद्मम् | ८७०७८३१२६३१३९००४१२५९२१९३५३६ | ,, २७ ,, ७० |
| ३३ | नलिनांगम् | ७३१४५७८२६१०३६७६३४६५७७४४२५७०२४ | ,, २९ ,, ७५ |
| ३४ | नलिनम् | ६१४४२४५७३९०७०८८१३११२५०५१७५९००१६ | ,, ३१ ,, ८० |
| ३५ | अर्थनिपुरांगम् | ५१६११६६४२०९८७५४०३०१४५०४३४७७५६१३४४ | ,, ३३ ,, ८५ |
| ३६ | अर्थनिपुरम् | ४३३५३७९३६२९५३३८५३२१८३६५२११५१५२०९६ | ,, ३५ ,, ९० |
| ३७ | अयुतांगम् | ३६४१७१९०२६६४८८०८४३६७०३४२६७७७६७२८४३२६ | ,, ३७ ,, ९५ |
| ३८ | अयुतम् | ३०५९०४३९८२३८४९९९०८६८३०८७८४९३२४५१८८३४१७६ | ,, ३९ ,, १०० |
| ३९ | नयुतांगम् | २५६९५९६९४५२०३३९९२३२९३७९३७९३४३२५९५८२०७०७८४ | ,, ४१ ,, १०५ |
| ४० | नयुतम् | २१५८४६१४३३९७०८५५३५५६६७८६७८६४८३३८०४८९३९४५८५६ | ,, ४३ ,, ११० |
| ४१ | प्रयुतांगम् | १८१३१०७६०४५३५५१८४९८७६१००९००६४६०३९६११०९१४५१९०४ | ,, ४५ ,, ११५ |
| ४२ | प्रयुतम् | १५२३०१०३८७८०९८३५५३०९५९२४७५६५४२६७३२७३३१६८१९५९९३६ | ,, ४७ ,, १२० |
| ४३ | चूलिकांगम् | १२७९३२८७२५७६०२६१८५२७२५७६७९५४९५८४५५४९५८६१२८४६३४६२४ | ,, ४९ ,, १२५ |
| ४४ | चूलिका | १०७४६३६१२९६३८६१९९५६२८९६४५०८२१६५१०२६१६५२३४७९०९३०८४१६ | ,, ५१ ,, १३० |
| ४५ | शीर्षप्रहेलिकांगम् | ९०२६९४३४८८९६४४०७६३२८३३०१८६९०१८६८६१९७८७९७२२४३८१९०६९४४ | ,, ५२ ,, १३५ |
| ४६ | शीर्षप्रहेलिका | ७५८२६३२५०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ | ,, ५४ ,, १४० |

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## प्रज्ञापुरुष जयाचार्य

छोटा कद, छरहरा बदन, छोटे-छोटे हाथ-पांव, श्यामवर्ण, दीप्त ललाट, ओजस्वी चेहरा—यह था जयाचार्य का बाहरी व्यक्तित्व।

अप्रकंप संकल्प, सुदृढ़ निश्चय, प्रज्ञा के आलोक से आलोकित अन्तःकरण, महामनस्वी, कृतज्ञता की प्रतिमूर्ति, इष्ट के प्रति सर्वात्मना समर्पित, स्वयं अनुशासित, अनुशासन के सजग प्रहरी, संघ-व्यवस्था में निपुण, प्रबल तर्कबल और मनोबल से सम्पन्न, सरस्वती के वरदपुत्र, ध्यान के सूक्ष्म रहस्यों के मर्मज्ञ—यह था उनका आंतरिक व्यक्तित्व।

तेरापंथ धर्मसंघ के आद्यप्रवर्तक आचार्य भिक्षु के वे अनन्य भक्त और उनके कुशल भाष्यकार थे। उनकी ग्रहण-शक्ति और मेधा बहुत प्रबल थी। उन्होंने तेरापंथ की व्यवस्थाओं में परिवर्तन किया और धर्मसंघ को नया रूप देकर उसे दीर्घायु बना दिया।

उन्होंने राजस्थानी भाषा में साढ़े तीन लाख श्लोक प्रमाण साहित्य लिखा। साहित्य की अनेक विधाओं में उनकी लेखनी चली। उन्होंने भगवती जैसे महान् आगम ग्रंथ का राजस्थानी भाषा मे पद्यमय अनुवाद प्रस्तुत किया। उसमे ५०१ गीतिकाए हैं। उसका ग्रंथमान है—साठ हजार पद्य प्रमाण।

- जन्म—१८६० रोयट (पाली मारवाड़)
- दीक्षा—१८६९ जयपुर
- युवाचार्य पद—१८९४ नाथद्वारा
- अग्रणी—१८८१
- आचार्य पद—१९०८ बीदासर
- स्वर्गवास—१९३८ जयपुर
- निर्वाण-शताब्दी—२०३७-३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org